हिन्दी समिति-ग्रन्थमाला—८४

समाज-सेवा का क्षेत्र

[प्रथम खण्ड]

लेखक

आर्थर ई. फिंक

स्कूल आफ सोशल वर्क, नार्थ कैरोलाइना विश्वविद्यालय

ईवरेट ई. विल्सन

स्कूल आफ सोशल वर्क, नार्थ कैरोलाइना विश्वविद्यालय

मेरिल बी. कोनोवर

स्कूल आफ सोशल वर्क, पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय

अनुवादक

डॉ० शम्भुनाथ सिंह

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, संस्कृत विश्वविद्यालय

वाराणसी

हिन्दी समिति, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश, लखनऊ

समर्पण

उन विश्वविद्यालयों को
जहाँ इस ग्रन्थ के लेखक
अध्यापन-कार्य करते हैं।

प्रकाशकीय

पिछले कुछ वर्षों में सामाजिक समस्याओं को लेकर गम्भीर चिन्तन की परम्परा विकसित हुई है। यूरोप तथा अमेरिका में इस संबंध में काफी कार्य हुआ है और सामाजिक सेवा एक व्यवस्थित विज्ञान एवं कला का रूप लेने की स्थिति में आ गयी है। द्वितीय महायुद्ध के बाद एक ओर दुनिया तेज़ी से छोटी होती जा रही है, उसी अनुपात से चिन्तन की गहराई भी बढ़ी है। मनुष्य को केन्द्र बनाकर इधर इतना अधिक कार्य हुआ है कि उसे देखते हुए वैज्ञानिकों का यह कथन सत्य नहीं प्रतीत होता कि मनुष्य, मनुष्य का शत्रु हो गया है। सामाजिक चिन्तन के क्षेत्र में मनुष्य को लेकर इतने सारे प्रयोग वैज्ञानिकों के इस तर्क को व्यर्थ सिद्ध करने के लिए काफ़ी हैं।

'सामाजिक सेवा का क्षेत्र' विषयक यह पुस्तक भी मनुष्य को केन्द्र बनाकर किये गये चिन्तन की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयत्न है। श्री आर्थर ई फिंक प्रभृति की लिखी हुई मूल पुस्तक की अंग्रेज़ी में काफी ख्याति है। हिन्दी में इस पुस्तक के अनुवाद की आवश्यकता पिछले कई वर्षों से अनुभव की जा रही थी। विश्वविद्यालयों में इधर सामाजिक सेवा विषय के पठन-पाठन की ओर लोगों का ध्यान गया है और पद-पद पर गम्भीर सामाजिक अध्ययनों की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है। इसी आवश्यकता के चलते हिन्दी समिति ने यह कार्य हाथ में लिया। पुस्तक काफ़ी बड़ी थी और छपने पर पृष्ठ-संख्या तथा मूल्य की अधिकता के कारण विद्यार्थियों की पहुँच के बाहर हो जाती, इसलिए हमने इसे दो खण्डों में प्रकाशित करने का निश्चय किया। प्रमुख सामाजिक प्रश्नों पर अलग-अलग अध्यायों में विचार होने के कारण पुस्तक के मूल्यांकन में इस कारण कोई बाधा नहीं उपस्थित होगी, ऐसा हमें विश्वास है।

इस खण्ड में सुधारात्मक सेवाओं, विद्यालयों में किये जाने वाले असामान्य विद्यार्थियों के सुधार के लिए प्रयत्नों, समाज में बालकों और युवकों की अवस्था सुधारने के लिए किये गये कार्यों, सामूहिक समाज-सेवाओं तथा समाज-कल्याण सम्बन्धी अन्य प्रश्नों पर बहुत गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसीलिए यह पुस्तक जहाँ एक ओर समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त आवश्यक है वहीं सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए भी पथनिर्देश का कार्य करने वाली सिद्ध होगी।

डॉ० शम्भुनाथ सिंह ने बड़े ही श्रम से इस पुस्तक का अनुवाद किया है। वे हिन्दी के मर्मज्ञ विद्वान् हैं और रचनात्मक साहित्यस्रष्टा के रूप में उनकी ख्याति है। इस कार्य में सामाजिक सेवा के प्रसिद्ध विद्वान् श्री राजाराम शास्त्री का निर्देश समिति को बराबर प्राप्त होता रहा है, यह हमारे लिए अत्यन्त सौभाग्य की बात है। उन्होंने कृपा करके पूरे अनुवाद को सम्पादित किया है, इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

ठाकुर प्रसाद सिंह
सचिव, हिन्दी समिति

प्रस्तावना

हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए यह आवश्यक है कि इनमें उच्च कोटि के प्रामाणिक ग्रन्थ अधिक से अधिक संख्या में तैयार किये जायँ। शिक्षा-मंत्रालय ने यह काम अपने हाथ में लिया है और इसे बड़े पैमाने पर करने की योजना बनायी है। इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रन्थों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रन्थ भी लिखाये जा रहे हैं। यह काम राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा प्रकाशकों की सहायता से आरम्भ किया गया है। कुछ अनुवाद और प्रकाशन-कार्य शिक्षा-मंत्रालय स्वयं अपने अधीन करा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान् और अध्यापक हमें इस योजना में सहयोग प्रदान कर रहे हैं। अनूदित और नये साहित्य में भारत सरकार की शब्दावली का ही प्रयोग किया जा रहा है ताकि भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओं में एक ही पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

यह पुस्तक भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय की ओर से हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित की जा रही है। इसके अंग्रेजी संस्करण के लेखक सर्वश्री आर्थर ई० फिंक, ईवरेट ई० विल्सन और मेरिल बी० कोनोवर हैं और इसका हिन्दी अनुवाद डॉ० शम्भुनाथ सिंह ने किया है। आशा है कि भारत सरकार द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन सम्बन्धी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जायेगा।

महम्मद अली करीम चागला

शिक्षामंत्री

भारत सरकार

अनुवादकीय वक्तव्य

जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक को ज्ञात है, हिन्दी में सामाजिक सेवाकार्य-विषयक विदेशी भाषा के किसी भी ग्रन्थ का अनुवाद अब तक नहीं प्रकाशित हुआ है। भारत में इस विषय को एक स्वतंत्र शास्त्र के रूप में अभी कुछ वर्षों से ही मान्यता मिलने लगी है। अतः यदि हिन्दी में इस विषय के मौलिक ग्रन्थ नहीं लिखे गये तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। वस्तुतः यह विषय उतना सैद्धान्तिक नहीं है, जितना व्यावहारिक, और व्यावहारिक रूप में हमारे देश में समाज-सेवा या समाज-कल्याण सम्बन्धी कार्यों का महत्त्व प्राचीन काल से ही कितना भी अधिक क्यों न रहा हो, पर इसमें सैद्धान्तिक ऊहापोह और वाद-प्रतिवाद के लिए अधिक अवसर न होने के कारण इसे एक शास्त्र के रूप में कभी भी स्वीकृति नहीं मिली थी। इस दृष्टि से यह हमारे देश के लिए एक सर्वथा नवीन शास्त्र है। पाश्चात्य देशों में भी इसको शास्त्र के रूप में मान्यता प्राप्त हुए अधिक दिन नहीं हुए। जैसा इस ग्रन्थ को पढ़ने से विदित होगा, अमेरिका में इस विषय को एक स्वतंत्र शास्त्र के रूप में मान्यता प्राप्त हुए बीस-पचीस वर्ष से अधिक नहीं हुए। यही स्थिति यूरोपीय देशों की भी है। हमारे देश की वर्तमान शिक्षा-पद्धति बहुत कुछ पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति की प्रतिच्छाया है। इसी कारण सामाजिक सेवाकार्य को यहाँ भी एक स्वतंत्र शास्त्र मानकर विद्यालयों और विश्ववि ालयों की उच्च कक्षाओं में अध्यापन की आवश्यकता पहले नहीं समझी जाती थी।

किन्तु स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हमारे देश में भी समाज-सेवा और समाज-कल्याण-सम्बन्धी कार्यों की ओर सरकारी और गैर-सरकारी अभिकरणों का ध्यान गया है और विभिन्न राज्यों में इस कार्य के लिए अलग विभागों अथवा मंत्रालयों की स्थापना हो गयी है। कई विश्वविद्यालयों में इस विषय के अध्यापन तथा प्रशिक्षण के लिए अलग संस्थानों की स्थापना की गयी है। किन्तु काशी-विद्यापीठ के अतिरिक्त अन्य सभी विश्वविद्यालयों में इस विषय की शिक्षा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से होती है। समाज-सेवा-कार्य ही नहीं, अन्य किसी भी विषय की शिक्षा हिन्दी भाषा के माध्यम से तभी सम्भव हो सकती है जबकि उन-उन विषयों से सम्बन्धित पाठ्य ग्रन्थ हिन्दी भाषा में उपलब्ध हों। अन्य वैज्ञानिक और प्राविधिक विषयों की पाठ्य पुस्तकें तो हिन्दी में थोड़ी-बहुत मिल भी जाती हैं, पर सामाजिक सेवाकार्य से सम्बन्धित मौलिक या अनूदित ग्रन्थों का नितान्त अभाव है।

अतः बाध्य होकर इस विषय के अध्यापकों को तद्विषयक अंग्रेजी पुस्तकों से ही काम लेना पड़ता है, जिसका अनिवार्य परिणाम होता है कि वे हिन्दी भाषा के माध्यम से अध्यापन करने में असमर्थ होते हैं, क्योंकि इस विषय से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दों का हिन्दी भाषा में अभी तक विकास नहीं हो सका है। अंग्रेजी के माध्यम से अध्यापन का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि छात्रों को भी इस विषय की अंग्रेजी पुस्तकों का ही अध्ययन करना तथा परीक्षाओं में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ही प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है। अतः केवल राष्ट्रभाषा हिन्दी के भण्डार को समृद्ध बनाने की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सामाजिक सेवाकार्य की सम्यक् शिक्षा के प्रसार के लिए भी यह अत्यन्त आवश्यक है कि विदेशी भाषाओं, विशेषकर अंग्रेजी में लिखी गयी इस विषय की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया जाय, ताकि इस विषय के अध्यापकों और छात्रों को तथा व्यावहारिक क्षेत्र में कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं को अपने कार्य में अधिक सुविधा प्राप्त हो सके और वे आसानी से उन पुस्तकों द्वारा अध्यापन, अध्ययन तथा ज्ञान-संवर्द्धन कर सकें।

प्रस्तुत ग्रन्थ "समाज-सेवा का क्षेत्र" इस विषय की प्रसिद्ध अमेरिकन पुस्तक 'दि फील्ड आफ सोशल वर्क" का हिन्दी रूपान्तर है। अमेरिका में इस विषय पर हजारों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। यही नहीं, वहाँ सामाजिक सेवाकार्य की विविध शाखाओं से सम्बन्धित अनेक पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। समय-समय पर प्रकाशित और वितरित होने वाली पुस्तिकाओं, विज्ञप्ति-पत्रों और प्रतिवेदनों की संख्या तो अनगिनत है। परिणामस्वरूप वहाँ सामाजिक सेवाकार्य-विषयक पारिभाषिक शब्दों का भण्डार बहुत समृद्ध है। वहाँ सामाजिक सेवाकार्य का व्यावहारिक क्षेत्र भी इतना व्यापक है कि हजारों की संख्या में विश्वविद्यालयों के प्रशिक्षित स्नातक इस कार्य में लगे हुए हैं। येकार्यकर्ता जिन अभिकरणों के माध्यम से, और जिन क्षेत्रों में कार्य करते हैं, उनमें विविध विषयों, कार्यों और कौशलों के लिए हजारों पारिभाषिक शब्द निर्मित हो चुके हैं और अब भी बराबर नये-नये पारिभाषिक शब्दों का निर्माण अथवा विकास होता जा रहा है। अतएव वहाँ के वातावरण में इस विषय पर मौलिक ग्रन्थों का लिखा जाना बहुत स्वाभाविक और सरल कार्य है। किन्तु हमारे देश में इस विषय के मौलिक ग्रन्थों की रचना अभी इसलिए नहीं हो पा रही है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी में अथवा किसी भी प्रादेशिक भाषा में इस विषय से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दों का विकास अभी तक नहीं हुआ है, जिसका प्रधान कारण यह है कि अभी तक सामाजिक-सेवा कार्य के क्षेत्र का ही समुचित विस्तार और वर्गीकरण नहीं हो सका है। बालकों, वृद्धों और विकलांग तथा अक्षम व्यक्तियों की सहायता और सेवा का कार्य हमारे यहाँ अभी बिलकुल प्रारम्भिक अवस्था में है। सामुदायिक संघटनों, चिकित्सकीय सामाजिक सेवा-कार्य, मनोरंजनात्मक कार्यक्रम

वृद्धों और बच्चों के व्यवस्थापन तथा पालन-गृह-सम्बन्धी सेवाओं का कार्य भी केवल नाममात्र के लिए कहीं-कहीं प्रयोगात्मक रूप में प्रारम्भ हुआ है। जहाँ ये कार्य हो रहे हैं, वहाँ भी इनके लिए अंग्रेजी नामों या अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों का ही प्रयोग किया जाता है।

ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि सामाजिक सेवाकार्य-सम्बन्धी मौलिक ग्रन्थों की रचना की प्रतीक्षा न करके विदेशी भाषाओं की इस विषय की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद किया जाय और अनुवाद-कार्य द्वारा ही एतद्विषयक पारिभाषिक शब्दों का निर्माण एवं विकास किया जाय। अनूदित पारिभाषिक शब्द हर दशा में मान्य ही होंगे, यह निश्चित नहीं होता, और यह आवश्यक भी नहीं है। वस्तुतः पारिभाषिक शब्दों के प्रचलन का आधार व्यवहार है। यदि व्यावहारिक क्षेत्र में ये शब्द प्रचलित हो जाते हैं, तभी उन्हें सही अर्थ में पारिभाषिक शब्द कहा जा सकता है, अन्यथा वे कृत्रिम और अप्रचलित ही रह जायेंगे। अतः ज्यों-ज्यों व्यावहारिक सेवाकार्य का क्षेत्र व्यापक और विस्तृत होता जायगा, इस विषय के पारिभाषिक शब्दों का विकास भी स्वाभाविक रूप से अधिक होता जायगा। किन्तु जब तक ऐसा नहीं होता तब तक के लिए अनूदित पारिभाषिक शब्दों से ही काम चलाना होगा। इनमें से जो शब्द चल जायेंगे वे रह जायेंगे और जो नहीं चल पायेंगे, उनकी जगह व्यावहारिक क्षेत्र में नये शब्दों का अपने आप विकास हो जायेगा।

अनुवाद का सम्बन्ध केवल भाषा से ही नहीं, विषय-वस्तु से भी होता है। अतः भाषा के अन्तर्गत पारिभाषिक शब्दावली की प्रचुरता होने से अनुवाद-कार्य में आसानी होती है, किन्तु ये पारिभाषिक शब्द तभी विकसित हो सकते हैं, जब कि उनसे सम्बन्धित विषय का भी समुचित विकास हो चुका हो। जैसा पहले कहा जा चुका है, सामाजिक सेवाकार्य का हमारे देश में एक स्वतंत्र शास्त्र के रूप में अभी समुचित विकास नहीं हो सका है। अतः इस विषय के किसी विदेशी भाषा के ग्रन्थ के अनुवाद में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुवाद में भी उन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। सामाजिक सेवाकार्य एक ऐसा विषय है, जिसका सीधा सम्बन्ध देश-विशेष की वर्तमान सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति और उनके संघटनात्मक स्वरूप से है। विभिन्न देशों में ये स्थितियाँ भिन्न-भिन्न ढंग की हैं। अतः एक देश में सामाजिक सेवाकार्य की जो पद्धति विकसित होगी, वह अन्य देशों की पद्धतियों से बिलकुल अभिन्न नहीं हो सकती, क्योंकि विभिन्न देशों की सामाजिक समस्याएँ उन-उन देशों की सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक ढाँचे के अनुसार भिन्न होती हैं। अमेरिका में सामाजिक सेवाकार्य का विकास वहाँ की परिस्थितियों के अनुसार हुआ है। वे

परिस्थितियाँ भारतीय परिस्थितियों से बहुत भिन्न हैं। अतः अनुवाद-कार्य में एक बहुत बड़ी कठिनाई यह उपस्थित होती है कि उन विषयों और समस्याओं को, जो भारतीय वातावरण में वर्तमान नहीं हैं तथा जिनसे भारतीय पाठक अपरिचित हैं, अपनी भाषा में किस तरह उपस्थित किया जाय कि पाठकों तक उनका सरलतापूर्वक सम्प्रेषण हो सके। हमारे देश में परिवार एक बड़ी इकाई है, जिसमें परिवार के स्वामी के बाल-बच्चों के साथ उसके माता-पिता और बहन-भाई भी सम्मिलित माने जाते हैं। किन्तु अमेरिका में परिवार एक लघुतम इकाई है, जिसमें वयस्क पुत्र या वृद्ध माता-पिता प्रायः सम्मिलित नहीं किये जाते। इस कारण वहाँ वृद्धों के भरण-पोषण या पालन की समस्या गम्भीर रूप में उपस्थित रहती है। इसके लिए वहाँ वृद्धावास-गृहों, वृद्धावस्था-वृत्ति, वृद्धों के लिए मनोरंजनात्मक कार्यक्रम, वृद्ध-पालन-सेवा आदि योजनाओं का विकास हुआ है। पर हमारे देश में वृद्धों की समस्याओं ने उतना उग्र रूप नहीं धारण किया है, क्योंकि यहाँ वयस्क पुत्र का यह धार्मिक और नैतिक उत्तरदायित्व माना जाता है कि वह अपने वृद्ध माता-पिता का पालन-पोषण करे। अतएव यहाँ वृद्धों के लिए सामाजिक सेवा की सम्भवतः अबतक कोई भी योजना कहीं नहीं लागू हुई है। इस पुस्तक में एक अध्याय (अध्याय १३) केवल वृद्धों की समस्याओं से ही सम्बन्धित है। इसी तरह इस पुस्तक में अनेक ऐसे विषयों का विश्लेषण तथा तत्सम्बन्धी कार्यक्रमों का विवरण दिया गया है, जिनका हमारे देश की परिस्थिति में या तो अस्तित्व ही नहीं है अथवा यदि अस्तित्व है भी तो उन्होंने उग्र समस्या का रूप नहीं धारण किया है। जो समस्याएँ अमेरिका के समान यहाँ भी वर्तमान हैं, उनमें से भी अधिकांश के लिए हमारे देश में अभी सामाजिक सेवा-सम्बन्धी कार्यक्रमों का प्रारम्भ नहीं हुआ है।

अतः अनुवाद करते समय इस बात का बराबर ध्यान रखा गया है कि जो प्रथाएँ या पद्धतियाँ हमारे यहाँ प्रचलित नहीं हैं, उनके लिए उनसे मिलती-जुलती भारतीय प्रथाओं या पद्धतियों के नामों का प्रयोग किया जाय और जो यहाँ के लिए बिलकुल अपरिचित प्रथाएँ या पद्धतियाँ हैं, उन्हीं के लिए नये पारिभाषिक शब्द निर्मित किये जायँ। उदाहरण के लिए, इङ्गलैण्ड में 'कम्युनिटी चेस्ट' की प्रथा बहुत पहले से प्रचलित रही है, जो अमेरिका में भी एक आन्दोलन के रूप में विकसित हुई थी। भारत में इससे मिलती-जुलती दान और धर्मादा की प्रथा बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। अतः 'कम्युनिटी चेस्ट' के लिए धर्मादा और दानादाय इन दो शब्दों का प्रयोग किया गया है। उसी तरह 'आम्स हाउस' (Alms house) के लिए 'भिक्षुक-गृह' और 'दान-गृह' इन दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। किन्तु "सेटिलमेण्ट हाउसेज़" या 'सेटिलमेण्ट', फोस्टर-होम, फोस्टर केयर, जुविनाइल कोर्ट, फेमिली सोसाइटी, होम मेकिंग सर्विस, केस वर्क आदि सेवा-

पद्धतियों की प्रथा न तो हमारे यहाँ पहले से रही है और न अभी तक उनका विकास हो सका है, अतः इनके पर्याय शब्द हमारी भाषाओं में वर्तमान नहीं हैं। इसी कारण इनके लिए क्रमशः व्यवस्थापन-गृह, व्यवस्थापन, पालन-गृह, पालन-सेवा, बाल-न्यायालय, पारिवारिक-समिति, गृहकार्य-सहायता-सेवा और वैयक्तिक सेवा-कार्य जैसी पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण करना पड़ा है। मूल ग्रन्थ में इस प्रकार के सैकड़ों शब्दों का सैकड़ों बार प्रयोग हुआ है, जिनका भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप रूपान्तर करना पड़ा है। निश्चय ही ये शब्द अभी कृत्रिम प्रतीत होंगे, किन्तु यदि सामाजिक सेवाकार्य-सम्बन्धी विद्यालयों और संस्थानों द्वारा इन शब्दों का व्यवहार किया जाने लगेगा तो कालान्तर में ये ही स्वाभाविक प्रतीत होने लगेंगे। वस्तुतः पारिभाषिक शब्द अधिकतर निर्मित और कृत्रिम ही होते हैं, जो बाद में बहुप्रयुक्त होकर स्वाभाविक लगने लगते हैं।

अनुवाद-कार्य के प्रसंग में पारिभाषिक शब्दों के चुनाव में मुझे काशी-विद्यापीठ के समाज-विज्ञान-विभाग के प्राध्यापक श्री० राजाराम शास्त्री और श्री रमाशंकर पाण्डेय से विशेष सहायता प्राप्त हुई है। ये दोनों विद्वान् भारतीय सांस्कृतिक परम्परा से पूर्ण परिचित हैं, साथ ही उन्हें अमेरिका जाकर वहाँ के सामाजिक सेवा-कार्य के व्यावहारिक क्षेत्र का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने का भी अवसर प्राप्त हो चुका है। अतः उनके सुझावों से अधिक-से-अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न किया गया है। अर्थशास्त्र, राजनीति, राजनय, चिकित्साशास्त्र आदि विषयों से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दों का अनुवाद भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा प्रकाशित पारिभाषिक शब्द-संग्रह के आधार पर किया गया है। अनुवाद में इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया गया है कि भाषा सरल और सुबोध हो और कृत्रिम न प्रतीत हो। इसके लिए प्रायः स्वतंत्र अनुवाद करना पड़ा है, क्योंकि शाब्दिक अनुवाद से हिन्दी रूपान्तर की भाषा कृत्रिम ही नहीं, दुर्बोध भी हो जाती। इस सम्बन्ध में एक बड़ी कठिनाई अमेरिकन अंग्रेजी के ऐसे मुहावरों के अनुवाद की भी रही है जिन्हें केवल अमरीकी जनता ही समझ सकती है। अमेरिकन अंग्रेजी में बहुत-से शब्द इंग्लैण्ड की अंग्रेजी से भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण के लिए, 'पब्लिक' शब्द का विशेषण रूप में प्रयोग अमेरिका में अधिकतर 'राजकीय' या 'सरकारी' शब्द के लिए होता है, जब कि इङ्गलैण्ड में उसका प्रयोग 'सार्वजनिक' या 'लोक' शब्द के अर्थ में होता है। इस तरह 'पब्लिक असिस्टेन्स या पब्लिक एजेन्सी' शब्द का अर्थ इस ग्रन्थ में सर्वत्र सरकारी सहायता और सरकारी अभिकरण के अर्थ में ही हुआ है। अतः अनुवाद करते समय 'पब्लिक' के लिए अधिकतर राजकीय या सरकारी शब्द का ही प्रयोग किया गया है। अनेक सरकारी विभागों तथा राजकीय सहायताप्राप्त संघटनों के नामों के आगे विभाग या प्रभाग नहीं लगा रहता, जैसे—वेटेरन ऐडमिनिस्ट्रेशन,

वर्क्स प्राग्रेस एडमिनिस्ट्रेशन, टेम्पोरेरी रिलीफ ऐडमिनिस्ट्रेशन, नेशनल हेल्थ सर्विस, कम्युनिटी चेस्ट आदि। इन शब्दों का शाब्दिक अनुवाद ही प्रस्तुत किया गया है, जैसे—सेवा-निवृत्त सैनिक-प्रशासन, श्रम-प्रगति-प्रशासन, अस्थायी सहायता-प्रशासन, राष्ट्रीय स्वास्थ्य-सेवा, सामुदायिक दानादाय या सामुदायिक दान-पेटिका। पाठकों को प्रसंगानुकूल इन शब्दों को समझने में सुविधा हो, इसीलिए यहाँ उनका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

पाठकों की सुविधा के लिए ग्रन्थ के अन्त में ऐसे पारिभाषिक शब्दों तथा अमरीकी संस्थाओं, राजकीय विभागों और कानूनों के नामों की एक संक्षिप्त सूची दे दी गयी है, जिनका इस ग्रन्थ में प्रयोग हुआ है। जो पाठक मूल अंग्रेजी पुस्तक पढ़ते हैं और उसमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का हिन्दी रूपान्तर जानना चाहते हैं, उनके लिए अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित पारिभाषिक शब्दावली दे दी गयी है और जो केवल अनूदित ग्रन्थ को ही पढ़कर उसमें प्रयुक्त हिन्दी पारिभाषिक शब्दों और नामों के मूल अंग्रेजी रूपों की जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिए लिए हिन्दी-अंग्रेजी शब्द-सूची प्रस्तुत की गयी है। सबसे अन्त में उन संक्षिप्त-नामों तथा उनके हिन्दी रूपान्तर की सूची भी दे दी गयी है, जिनका मूल तथा अनूदित ग्रन्थ में प्रयोग हुआ है। आशा है, इस श्रमसाध्य अनुवाद से हिन्दी में समाज-सेवा-कार्य से सम्बन्धित अध्ययनाध्यापन-कार्य में सहायता मिलेगी।

तृतीय संस्करण की भूमिका

सामाजिक सेवाकार्य के क्षेत्र में जिस तीव्रता से प्रगति हो रही है, उसे देखते हुए इस पुस्तक का एक और संस्करण प्रकाशित करना आवश्यक प्रतीत होता है। मनुष्य की आवश्यकताओं और अभावों की पुकार पहले से भी अधिक बढ़ती जा रही है। वे आवश्यकताएँ नाना प्रकार की हैं और कभी-कभी उनका दबाव बहुत अधिक हो जाता है। सहायता-सम्बन्धी अन्य वृत्तियों, जैसे चिकित्सा, अध्यापन आदि के क्षेत्र में इन आवश्यकताओं की ओर बराबर ध्यान रखा जाता है और उन्हीं को दृष्टि में रखने के कारण नयी-नयी उपचार-पद्धतियों और सेवाओं का आविष्कार तथा विकास बराबर होता जा रहा है। उसी तरह सामाजिक कार्यकर्ता भी, चाहे वे वैयक्तिक सेवाकार्य, सामूहिक सेवाकार्य अथवा सामुदायिक संघटन में से किसी भी क्षेत्र में क्यों न कार्य करते हों, सदैव उन समस्याओं का सामना करते रहते या उनके प्रभाव का अनुभव करते रहते हैं, जो समाज के लोगों द्वारा उनके सामने उपस्थित की जाती हैं। अतः वे भी अन्य वृत्तिक क्षेत्रों के समान अपने क्षेत्र में नयी सेवाओं का विकास या प्रारम्भ कर रहे हैं, पुरानी सेवाओं का नवीनीकरण कर रहे हैं। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में कभी-कभी किसी ऐसी सेवा-पद्धति का जो समयानुकूल नहीं रह गयी है या अनुपयोगी हो गयी है, त्याग भी कर देना पड़ता है। इस तरह व्यावहारिक क्षेत्र में, वृत्तिक पत्र-पत्रिकाओं में, वृत्तिक सभाओं और सम्मेलनों में तथा सामाजिक सेवाकार्य-विद्यालयों में नवीन पद्धतियों और विचारों के अन्वेषण और अध्ययन का कार्य निरन्तर जारी है।

सामाजिक सेवाकार्य की प्रगति आज कितनी त्वरित गति से हो रही है और उसका क्षेत्र कितना व्यापक हो गया है, इसके प्रमाणों में से एक यह भी है कि इस पुस्तक का तृतीय संस्करण तैयार करने के लिए केवल मूल लेखक से काम नहीं चल सका, अतः इस संस्करण में इसके तीन लेखक हैं। मूल लेखक का यह मत है कि सामाजिक सेवाकार्य-जैसे व्यापक क्षेत्र वाले विषय पर पुस्तक लिखने के लिए अकेले एक लेखक की अपेक्षा कई लेखकों का होना आवश्यक एवं अधिक अच्छा है, क्योंकि तब उसमें अन्य व्यक्तियों के अनुभव और विचार-धारा का भी समावेश हो सकेगा। इसी कारण इस संस्करण में वैयक्तिक समाज-सेवाकार्य वाला अध्याय लिखने का उत्तरदायित्व श्री एवरेट विल्सन को और सामूहिक समाज-सेवा-कार्य तथा सामुदायिक संघटन वाले अध्याय लिखने का भार डा० मेरिल

कोनोवर को दे दिया गया। इन सहयोगी लेखकों ने उदाहरण के रूप में दी गयी सामग्री के चुनाव में भी पूरी तरह सहायता की है।

पाठक देखेंगे कि इस संस्करण में कई नये अध्याय जोड़ दिये गये हैं, जैसे पहला अध्याय जिसमें उन विविध प्रकार की समस्याओं के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, जो सामाजिक अभिकरणों के पास लोगों द्वारा समाधान के लिए लायी जाती हैं, वैयक्तिक समाज-सेवा-कार्य-सम्बन्धी अध्याय तथा वृद्धों के लिए की जाने वाली सामाजिक सेवा से सम्बन्धित अध्याय। इस अन्तिम अध्याय की आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई, यह बात वृद्धता से सम्बन्धित विविध समस्याओं की बढ़ती हुई व्यापक जानकारी की ओर दृष्टिपात करने पर आसानी से समझी जा सकती है। मूल लेखक का यह मत है कि इस पुस्तक के पूर्ववर्ती संस्करणों में वैयक्तिक सेवाकार्य के सम्बन्ध में पर्याप्त विवेचना नहीं की जा सकी थी और इस संस्करण में श्री विल्सन द्वारा लिखे गये 'वैयक्तिक समाज-सेवाकार्य' शीर्षक अध्याय से उस अभाव की पूर्ति हो गयी है। पूर्वस्नातक-कक्षाओं के विद्यार्थियों को प्रस्तावनात्मक पाठ्यक्रम पढ़ाते समय जो अनुभव प्राप्त हुए, उन्हीं से प्रेरित होकर जनता की समस्याओं से सम्बन्धित अध्याय लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई। नये जोड़े गये अध्यायों के अतिरिक्त उदाहरण रूप में प्रस्तुत सामग्रियों का चुनाव भी फिर से किया गया है।

इस संस्करण में सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची भी बढ़ा दी गयी है और उसमें अबतक की नवीनतम पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं आदि को सम्मिलित कर लिया गया है। साथ ही इस सूची में से कई पुस्तकों के नाम निकाल दिये गये हैं, जो इस ग्रन्थ के सन् १९४९ वाले संस्करण की संदर्भ ग्रन्थ-सूची में सम्मिलित थे। इस संस्करण के सोलहवें अध्याय में इस विषय से सम्बन्धित चलचित्रों को उपलब्ध करने या उनके विषय में जानकारी प्राप्त करनेवालों के उपयोग के लिए, उनके निर्माताओं, वितरकों आदि के पतों की सूची जोड़ दी गयी है। सामाजिक सेवाकार्य के उद्देश्य की सिद्धि के लिए निर्मित ऐसे चलचित्र, जो उपयोग के योग्य होते हैं, अथवा जिनके आधार पर नये चलचित्र बनाये जा सकते हैं, इतनी संख्या में निरन्तर तैयार होते रहते हैं कि उनके नामों की सूची बनाना व्यर्थ समझ कर उसके लिए प्रयास ही नहीं किया गया और उनके उपलब्धि-स्रोतों की सूची दे देना ही पर्याप्त समझा गया।

इस ग्रन्थ के अन्य संस्करणों की भाँति इस संस्करण को तैयार करने में भी हमें अनेकों व्यक्तियों और स्रोतों से सहायता प्राप्त हुई है। यद्यपि स्थानाभाव के कारण इस संस्करण में प्रथम और द्वितीय संस्करणों की भमिकाएँ नहीं दी जा रही हैं, किन्तु उन भूमिकाओं में विभिन्न व्यक्तियों और स्रोतों के प्रति जो आभार व्यक्त किया गया था, वह अब भी बना हुआ है और यहाँ पुनः उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हम अपना कर्तव्य समझते

हैं। इस संस्करण में उदाहरण-सामग्री प्रस्तुत करने वाले प्रत्येक विद्वान् या कार्यकर्ता ने इस ग्रन्थ को और भी अच्छा बनाने के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। उनके अतिरिक्त जिन अन्य विद्वानों ने हमें सुझाव दिये उनके नाम ये हैं —एलन कीथ-लूकास, इसाबेल के० कार्टर, जो हॉफ़र, हर्बर्ट आप्टेकार, एनी मे पेम्बर्टन, सी० विल्सन एण्डर्सन, अर्नेस्ट विटी और रेबेका रैण्डल्फ। देश भर के विभिन्न महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में सामाजिक सेवाकार्य-विषयक प्रस्तावनात्मक पाठ्यक्रम का शिक्षण करने वाले अनेक अध्यापकों ने उदारतापूर्वक इस ग्रन्थ के पूर्ववर्ती संस्करणों के बारे में कक्षा में पढ़ाने के समय अपने अनुभवों का विवरण ग्रन्थ के लेखक और प्रकाशक को भेजा है तथा इस ग्रन्थ को और भी अच्छा बनाने के सम्बन्ध में अनेक सुझाव दिये हैं। नार्थ कैरोलाइना विश्व-विद्यालय के सामाजिक सेवाकार्य-विद्यालय के कार्यालय में काम करने वाली श्रीमती ब्रूस स्टीफेन्स, श्रीमती डॉनल्ड फाउस और श्रीमती ट्विला स्टीवेन्स ने इस ग्रन्थ की पाण्डु-लिपि के लिए संक्षिप्त-वाचन, टंकण और प्रूफ-संशोधन का कार्य करके हमारी जो सहायता की है, उसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

अन्त में उन विश्वविद्यालयों को धन्यवाद देना आवश्यक है, जिनमें इस ग्रन्थ के तीनों लेखक अध्यापन-कार्य करते हैं। ग्रन्थ का यह संस्करण हमारे उन तीनों विश्वविद्यालयों को समर्पित किया गया है, क्योंकि इन संस्थाओं ने सामाजिक सेवाकार्य की शिक्षा का जैसा समर्थन किया तथा अवलम्बन प्रदान किया है और ठोस तथा आधारिक उदार कला-शास्त्र-शिक्षा को जिस तरह प्रोत्साहित किया है, वह अविस्मरणीय और अत्यन्त श्लाघ्य है।

आर्थर ई० फिंक	**ईवरेट ई० विलसन**	**मेरिल बी० कोनोवर**
चैपेल हिल, एन० सी०	चैपेल हिल, एन० सी०	पिट्सबर्ग, पी० ए०
		१० फरवरी, १९५०।

विषय-सूची

पारिभाषिक शब्दावली

अध्याय १

लोगों की समस्याएँ

प्रत्येक व्यक्ति के साथ कठिनाइयाँ आती हैं। यद्यपि पुस्तक के आरम्भ में ही ऐसा कहने से यह प्रतीत हो सकता है कि लेखक का स्वर निराशावादी है, किन्तु थोड़ी ही देर तक विचार करने के बाद पाठक को अपने व्यक्तिगत जीवन की अनेक परेशानियाँ याद आने लगेंगी। उसे उन उलझनों का भी ध्यान आयेगा, जो उसके पारिवारिक-जीवन में या उसके मित्रों के जीवन में अथवा बिलकुल अपरिचित व्यक्तियों के जीवन में वर्तमान हैं और जिनकी जानकारी उसे है। यदि पाठक कुछ और विचार करेगा तो उसे ज्ञात होगा कि हममें से अधिकतर लोग अपनी उलझनों को दूर करने का कुछ-न-कुछ उपाय करते हैं। इस काम में हमें अपने परिवार के व्यक्तियों, मित्रों अथवा चर्च और स्कूल-जैसी सामाजिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों से सहायता मिलती है। अभी कुछ ही वर्षों से समाज में ऐसी ही एक अन्य सामाजिक संस्था का संघटन हुआ है, जिसे समाज-सेवा एजेंसी कहा जाता है। उसके अन्तर्गत परिवार सेवा-समिति, बाल-निकेतन, बाल-निर्देशन चिकित्सालय, अस्पताल का समाज-सेवा विभाग, न्यायालय का परि-वीक्षण विभाग, जनपद-कल्याण विभाग आदि अनेक प्रकार के अभिकरण आते हैं। लोग उक्त एजेंसियों के सम्मुख अपनी जो उलझनें लेकर आते हैं और उन अभिकरणों के प्रतिनिधि उनकी परेशानियों को दूर करने का जो उपाय करते हैं, उनमें से कुछ के संबंध में हम अगले अध्यायों में विचार करेंगे।

इस अध्याय में प्रख्यात समाजसेवी अभिकरणों के अनुभवों[1] में से चुनकर कुछ उदाहरण उपस्थित किये जा रहे हैं। यहाँ उन्हें उद्धृत करने का उद्देश्य ऐसी भूमिका तैयार करना है, जिसके आधार पर उपर्युक्त अभिकरणों तथा उनके सेवा-कार्यों के संबंध

१. "ली स्टीनर ने अपनी पुस्तक 'जनता अपनी परेशानियाँ कहाँ ले जाती है।" (बोस्टन, हाग्टन मफलिन कम्पनी, १९४५) में यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि परेशानियों में डूबे व्यक्ति उन्हें दूर करने के कितने उपाय करते हैं और उनकी समस्याओं को सुलझाने तथा आर्थिक सहायता करने के लिए किस तरह अनगिनत प्रकार के साधनों का उपयोग होता है।

में विचार किया जा सके। समाज-सेवी अभिकरणों से सहायता प्राप्त करने के लिए की गयी प्रार्थनाओं को यहाँ उद्धृत करके हम उनका प्रचारात्मक प्रदर्शन करने का प्रयास नहीं कर रहे हैं। यद्यपि इस देश में दिन-प्रतिदिन जिस तरह की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती रहती हैं; उन सबके उदाहरण यहाँ नहीं दिये गये हैं; फिर भी जो उदाहरण उपस्थित किये जा रहे हैं, वे उनका काफी दूर तक प्रतिनिधित्व करते हैं।

बैनेट-दम्पत्ति

एथेल हैरिस का बचपन गरीबी में बीता था। उन्होंने लारी बेनेट से विवाह किया। उस समय श्री बैनेट सेना में नौकरी करते थे। विवाह के समय एथेल ने सोचा था कि अब उनके सुख के दिन आ गये हैं। किन्तु विवाह के पूर्व ही, १९ वर्ष की अवस्था में वह गर्भवती हो गयी थीं और उनके परिवार वालों ने उनसे सम्बन्ध-त्याग सा कर लिया था। सेना की नौकरी से अलग होने के बाद श्री बैनेट एथेल को लेकर अपने समाज के लोगों के बीच आ गये। एथेल का अवैध पुत्र भी उनके साथ था। श्री बैनेट के परिवार वालों ने एथेल को स्वीकार नहीं किया। वे उनकी आलोचना और अपमान करने का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देते थे। श्री बैनेट को भी उत्तरोत्तर उस अवैध पुत्र 'डेविड' की उपस्थिति अधिक खलने लगी। अब, जब भी वह शराब पीते हैं, डेविड के प्रति बहुत क्रूर हो जाते हैं। डेविड को लेकर उन दोनों के बीच प्रायः झगड़ा हो जाया करता है। इस समय डेविड के अतिरिक्त उनके अपने चार बच्चे और हैं जो सभी पाँच से लेकर एक वर्ष तक के बीच की उम्र के हैं। डेविड, जिसकी उम्र सात वर्ष की है, स्कूल के नियमों का उल्लंघन करने के लिए कई बार दोषी पाया गया है और दो बार स्कूल से निकाला भी जा चुका है। उसको सँभालना अब उसकी माँ की शक्ति के बाहर हो गया है। इसलिए अब उसे एक पालन-गृह में प्रविष्ट करा दिया गया है। श्रीमती बेनेट अपनी यह राय जाहिर कर चुकी हैं कि डेविड को दत्तक पुत्र बना लिया जाय, लेकिन श्री बैनेट इस पर आपत्ति करते हैं।

श्रीमती बैनेट का कहना है कि जब से श्री बैनेट शराब अधिक पीने लगे हैं, उनकी उलझनें बढ़ती जा रही हैं और अब वह उनके तथा बच्चों के भरण-पोषण के लिए भी पर्याप्त धन नहीं देते हैं। जब तक वह यह सब सहन कर सकती थीं, उन्होंने सहन किया, पर अन्त में उन्हें पारिवारिक-न्यायालय में अपना मामला पेश करना पड़ा। फलस्वरूप परिवार के अपालन के अपराध में श्री बैनेट को एक वर्ष के कारावास का दण्ड मिला। इस परिवार को अब जनपद-कल्याण विभाग की ओर से आश्रित बच्चों की सहायता के लिए निर्मित कोश से आर्थिक सहायता मिलती है।

ली बून

ली की अवस्था १२ वर्ष की है और वह पाँचवीं कक्षा में पढ़ता है। वह स्कूल से भाग जाया करता है और उसके सुधरने के लक्षण नहीं दिखाई पड़ते। इसलिए उसे बाल-न्यायालय द्वारा परिवीक्षण में रखा गया था। तीन मास बाद उसे चोरी करने और भागने के अपराध में फिर न्यायालय के सम्मुख उपस्थित किया गया। उसके परिवार की स्थिति को देखते हुए न्यायालय ने उसे किसी उपयुक्त पालन-गृह में भेजना ही उसके हित में उचित समझा।

मोनरो-दम्पति के पालन-गृह में वह कई मास तक बहुत अच्छी तरह रहा। जार्ज नाम का एक और लड़का भी उस गृह में रहता था। वह भी पालन के लिए ही वहाँ भेजा गया था। बड़े दिन के ठीक पहले जार्ज अपने घर चला गया और ली अब अपने कमरे में अकेला रह गया।

बड़े दिन की छुट्टी में ली भी अपने घर गया और स्कूल खुलने पर फिर मोनरो-दम्पत्ति के पास चला आया। किन्तु इस बार एक ही रात रहने के बाद वह अपने घर भाग गया। घर जाकर उसने कहा कि पालन-गृह में वह अकेला था और वहाँ उसे अपने भाइयों के बिना अच्छा नहीं लगा। उसे फिर मोनरो के पालन-गृह में भेज दिया गया।

जनवरी के अन्तिम सप्ताह में उसके स्कूल की प्रधानाचार्य ने जन-कल्याण विभाग को टेलीफोन पर यह बताया कि वह ली से इस कदर तंग आ चुकी हैं कि अब उसे अपने स्कूल में रखना उचित नहीं समझतीं।

श्रीमती लीना ब्राउन

श्रीमती लीना ब्राउन ने वृद्धावस्था की सहायता के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा है, जिसमें उन्होंने दावा किया है कि उनकी अवस्था ६७ वर्ष की है। किन्तु अपनी अवस्था प्रमाणित करने में उन्हें कठिनाई पड़ रही है। उनके पास अपनी जन्मतिथि का प्रमाण-पत्र नहीं है, क्योंकि वह जब पैदा हुई थीं, उस समय उनके जनपद में जन्मतिथि का प्रमाण-पत्र देने का नियम प्रचलित नहीं था। उनके पास अपने विवाह का प्रमाण-पत्र भी नहीं है। उनके प्रथम पति की मृत्यु कई वर्ष पहले हो चुकी थी। इसके अलावे जब उनका विवाह हुआ था, उस समय उनकी अवस्था १६ वर्ष की ही थी और अपने माँ-बाप की अनुमति लिए बिना ही उन्होंने विवाह किया था। साथ ही वह यह भी जानती हैं कि उस समय उनके पति ने उनकी उम्र गलत बतायी थी। छः वर्ष पूर्व उन्होंने दूसरी शादी की थी, किन्तु दूसरे पति के साथ वह केवल एक हीं वर्ष तक रह सकीं। उनका ख्याल है कि वह एक अन्य राज्य में हृद्-रोग से मर गये। उनके पास उनका पारि-

वारिक बाइबिल भी नहीं है। वह किसी दूसरे राज्य में रहनेवाली उनकी बहन के पास है। उन्होंने अपनी अवस्था को प्रमाणित करने के लिए पारिवारिक बाइबिल के उस पृष्ठ का, जिस पर उनकी जन्म-तिथि लिखी है, फोटोस्टैट आवेदन-पत्र के साथ दिया है। किन्तु कार्यकर्ता का कहना है कि केवल फोटो पर्याप्त नहीं है, उन्हें उक्त बाइबिल भी उपस्थित करनी होगी। इस बात से श्रीमती ब्राउन विचलित हो उठती हैं। उनकी जीवन-बीमा की पालिसी को भी प्रमाण रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह भी हाल की ही है, केवल छः वर्ष पहले की। श्रीमती ब्राउन की एक जुड़वाँ बहन भी हैं, जो वृद्धावस्था की सहायता पा रही हैं। श्रीमती ब्राउन ने कार्यकर्ता से पूछा, "क्या मेरी बहन का सहायता पाना ही मेरे पक्ष में एक पुष्ट प्रमाण नहीं है?" कार्यकर्ता ने उत्तर दिया, "नहीं, क्योंकि प्रत्येक प्रार्थना-पत्र की अलग-अलग जाँच होती है।"

जनपद में एक वर्ष तक रहने वाला व्यक्ति ही उक्त सहायता पाने का अधिकारी होता है। श्रीमती ब्राउन को इसे प्रमाणित करने में भी कठिनाई हो रही है, क्योंकि गत वर्ष में वे जिन चार स्थानों में रहीं, उनके नाम-पते वह निश्चित रूप से नहीं बता सकीं।

सहायता पाने का अधिकारी होने की एक शर्त यह भी है कि प्रार्थी अपनी आय के साधनों का पूर्ण विवरण दे। श्रीमती ब्राउन का लड़का, जो अपना निजी काम करता है, उनकी कुछ सहायता करता है। यही उनकी एकमात्र आय है। लड़का अपनी माँ को प्रतिसप्ताह अधिक से अधिक पाँच डालर दे सकता है। इस से अधिक देना उसके लिए सम्भव नहीं है, क्योंकि उसकी आय अनिश्चित है और व्यय बहुत अधिक है। इसके अतिरिक्त उसे अपने परिवार का भी भरण-पोषण करना पड़ता है।

राबर्ट कॉल और लोइस कॉल

राबर्ट कॉल की अवस्था ३३ वर्ष और उनकी पत्नी लोइस कॉल की अवस्था ३० वर्ष की है। उनके चार बच्चे हैं, जिनमें से दो पालन-गृह की देखरेख में हैं। एक लड़की, जो ६ वर्ष की है, शिशु-अवस्था से ही पालन-गृह में है। राबर्ट कॉल इसे अपनी सन्तान नहीं मानते। एक और लड़की नैन, जो १२ वर्ष की है, चार वर्ष से पालन-गृह में है। शेष दो सन्तानें माँ-बाप के साथ रहती हैं। उनमें से एक लड़की, जो ९ वर्ष की है, पालन-गृह से लौट कर अपने माँ-बाप के पास आ गयी है। उस पर यह आरोप है कि वह पालन-गृह में रहने के अयोग्य है, क्योंकि उसकी प्रवृत्ति विकल, आक्रमणशील और नकारात्मक है। श्रीमती कॉल यह सिद्ध करने के लिए कृतसंकल्प हैं कि वह उस लड़की को सुधार सकती हैं। किन्तु लड़की के लक्षण यह बताते हैं कि उसको मानसिक चिकित्सा की आवश्यकता है। एक अन्य लड़का, जो दो वर्ष का है, घर ही रहता है। लेकिन

माँ उसकी व्यवस्था करने में भी परेशानी का अनुभव करती है और अभी हाल में यह शिकायत आयी है कि वह उस बच्चे की उपेक्षा करती है।

उक्त १२ वर्ष वाली लड़की नैन को लेकर ही उसकी माँ को सबसे अधिक परेशानी है। नैन अपने पालन-गृह में अच्छी तरह रह रही है। वह अपनी पालक माता पर पूर्णतया निर्भर रहती है। उसके परिवार वाले भी उससे मिलने जाते हैं, जिससे उसे मानसिक सुख प्राप्त होता है। किन्तु उसमें अपनी माँ के प्रति भावुकतापूर्ण प्रेम के लक्षण नहीं दिखाई पड़ते। वह अपनी माँ और पालक माता के बीच के झगड़े में फँस गयी है।

उसकी माँ संबंधित एजेंसी से, पालक माता से तथा कार्यकर्ता से निरंतर झगड़ती रहती हैं। उनकी शिकायत है कि नैन बहुत दुबली है। उन्हें इस बात का भी दुख है कि उनकी पुत्री को रात में साढ़े सात बजे सो जाना पड़ता है और स्कूल का काम बहुत अधिक करना पड़ता है और साथ ही बहुत-सा घरेलू काम-धंधा भी करना पड़ता है। उनका अनुमान है कि नैन को आवश्यकता से अधिक धार्मिक शिक्षा दी जाती है, क्योंकि वह अभी से मिशनरी बनने की बात करने लगी है। उन्हें यह भी बताया गया है कि नैन भद्दे कपड़ों में स्कूल जाती है। श्रीमती कॉल का कहना है कि उनके आने पर नैन उनसे अधिक बातें नहीं करती। उनका विश्वास है कि एजेंसी ने उन्हें तिरस्कृत करने के लिए ही उनकी लड़की को पालन-गृह में भेजा है।

कॉल और श्रीमती कॉल में बहुत दिनों से वैवाहिक कलह होता आ रहा है। श्रीमती कॉल का कहना है कि उनके पति उनको पीटते हैं। इसके प्रमाणस्वरूप वह अपने शरीर पर चोट के निशान भी दिखाती हैं। उनका पति पालन-गृहों में अपने बच्चों को देखने कभी नहीं जाते और उनकी सारी जिम्मेदारी अपनी पत्नी पर ही छोड़े रहते हैं। वह अपने पति को त्याग देने का विचार कर रही हैं, क्योंकि "वह उन्हीं को दुख देते हैं, जो उन्हें प्यार करते हैं।" इन सबसे बड़ी और प्रमुख बात यह है कि वह सोचती हैं कि पत्नी और माता के रूप में उनका जीवन असफल हो गया है।

रीता क्लार्क

रीता की अवस्था १३ वर्ष की है। अपने जीवन के प्रारंभिक नौ वर्ष उसने अपने माता-पिता तथा छः भाई-बहनों के साथ दो कमरों वाले एक घर में बिताये। जब रीता चार वर्ष की थी, तभी एक मोटर-दुर्घटना में उसके पिता की दोनों टाँगें जाती रहीं। पुनर्वास के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद भी वे भीख माँगने का कार्य करने लगे। रीता की माँ पर दुश्चरित्रता और अति मदिरापान का अपराध लग चुका है और वह दो बार सरकारी कृषि-फार्म में कार्य करने का दण्ड भी भोग चुकी हैं। यद्यपि

अब वह दण्ड-भोग से मुक्त हो चुकी हैं, पर इस समय वह कहाँ हैं, यह अज्ञात है। रीता के माँ-बाप कई वर्ष पूर्व एक दूसरे से अलग हुए थे। तभी से उसके बाप दूर-दूर के स्थानों में भीख माँगा करते हैं। उनका वर्तमान पता भी अज्ञात है।

साढ़े तीन वर्षों तक रीता स्थानीय जन-कल्याण विभाग के संरक्षण में रही है। इस अवधि में वह बारी-बारी से आठ पालन-गृहों में रह चुकी है। राजकीय प्रशिक्षण-स्कूल में स्थान खाली होने तक वह स्थानीय अवरोधन-गृह में रख दी गयी है।

डॉनल्ड

डॉनल्ड की अवस्था ११ वर्ष की है। वह स्कूल में परेशानी में था। इतना ही नहीं कि वह कक्षा का कार्य नहीं करता था, वह अपनी कक्षा के किसी भी छात्र के साथ मेल-जोल नहीं रख पाता था। गत वर्ष भी, जब वह चौथी कक्षा में था, उसकी समस्याएँ इसी प्रकार की थीं। मनोवैज्ञानिक परीक्षण से ज्ञात हुआ कि उसका स्कूल का काम उसकी जन्मजात योग्यता से बहुत कम था और उसे अपने अधिकतर सहपाठियों से अच्छा कार्य करना चाहिए था। जहाँ वह रहता था, वहाँ भी पास-पड़ोस में संभवतः उसकी किसी से मित्रता नहीं थी। अधिकांश समय वह अकेले ही रहता था।

घर पर भी उसका मन प्रसन्न नहीं रहता था, यद्यपि इस बात का प्रमाण है कि वह अपनी माँ को प्रेम करता है। दो वर्ष पूर्व उसकी माँ मानसिक रोग का शिकार हो गयी और फलस्वरूप उसे छः मास तक बाहर रहना पड़ा। इस बीच डॉनल्ड अपने पिता के साथ, जो उसे लेने के लिए एक दूरवर्ती राज्य से आया था, रहा। उसके माँ-बाप कई वर्ष से अलग-अलग रह रहे थे और पाँच वर्ष पूर्व, जब कि डॉनल्ड ने अभी पढ़ाई शुरू ही की थी, उन्होंने संबंध-विच्छेद कर लिया था। तलाक के बाद डॉनल्ड को उसकी माता के संरक्षण में रख दिया गया था और यह निश्चित हुआ था कि प्रतिवर्ष ग्रीष्म ऋतु में डॉनल्ड एक महीने तक अपने पिता के साथ रह सकता है। तीन वर्ष पूर्व उसके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। उस वर्ष अपने पिता के साथ एक मास तक रहकर लौटने के बाद ही उसके जीवन में जो गड़बड़ी शुरू हुई, वह फिर कभी ठीक नहीं हुई। वास्तव में यह स्थिति उस समय और भी अधिक खराब हो गयी जब उसकी माँ अस्पताल से घर लौटी और डॉनल्ड अपने पिता के पास से अपनी माँ के पास वापस आया।

अध्यापक और प्रधानाचार्य का कहना है कि डॉनल्ड बुरा या मूर्ख लड़का नहीं है। और वे हैरान हैं कि उसकी सहायता किस प्रकार करें।

श्रीमती लीना फर्गुसन

श्रीमती लीना फर्गुसन, जिनकी अवस्था पचास वर्ष की है, नगर के शेरिफ द्वारा राजकीय मानसिक-चिकित्सालय में भेज दी गयी हैं। प्रवेश के समय, जब तक उनका

साक्षात्कार होता रहा, वह निरंतर खिन्न बनी रहीं। जब वह अपने आपसे बातचीत करती थीं तो उससे ज्ञात होता था कि उन्हें इस बात का बिलकुल ज्ञान नहीं है कि वह कहाँ हैं। कुछ देर बाद उन्होंने कहा कि वह एक दरिद्रालय में हैं और बाद में कहा कि वह जेल में हैं। जब सामाजिक कार्यकर्ता ने उन्हें बताया कि दो चिकित्सकों ने उनकी परीक्षा की है और अब उन्हें उस मानसिक चिकित्सालय में ही रहना होगा तो उन्होंने कहा कि मुझे तो किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है, पर यदि यहाँ रहना ही पड़ेगा तो जैसी ईश्वर की इच्छा। वह जोर देकर कहती हैं कि जब तक यहाँ रहेंगी, ईश्वर उनकी देख-रेख करेगा। वह यह भी कहती हैं कि उन्हें यही चिन्ता है कि ईश्वर ने उनके जिम्मे जो कार्य सौंपे हैं, उन्हें करने के लिए दिन के घंटे कम पड़ते हैं।

चिकित्सकों को उनके सामाजिक जीवनवृत्त की आवश्यकता थी। उक्त कार्यकर्ता के बहुत प्रयत्नकरने पर काफी समय बाद वह अपने जीवन की कुछ बातें बताकर अपना सामाजिक जीवन-वृत्त तैयार करने में सहायता करने को तैयार हुईं। बाद में उन्होंने उस सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा पूछ गये सभी प्रश्नों का पूर्ण रूप से उत्तर दिया।

चिकित्सक द्वारा उनका साक्षात्कार किये जाने के बाद, वह नर्स और सामाजिक कार्यकर्ता के साथ अस्पताल के वार्ड में गयीं। जाते समय उन्होंने कहा कि सब कुछ समाप्त हो गया। कार्यकर्ता ने उत्तर दिया कि क्यों नहीं वह आज से एक नये और पहले से बिलकुल भिन्न जीवन का प्रारम्भ मानती हैं? अलग होते समय उन्होंने कहा, "मैं आशा करती हूँ कि कुछ ऐसा ही होगा।"

श्रीमती फ्लॉयड और जिमी जौ

श्रीमती फ्लॉयड, जिनकी अवस्था ५४ वर्ष की है, अपने पति के मरने के बाद से आश्रित बच्चों की सहायता पाती रही हैं। जब उनका आधिग्रस्त पुत्र जिमी १६ वर्ष का हो गया और उसके लिए आश्रित बच्चों की सहायता बंद हो गयी तब से वह और उसका पुत्र सामाजिक सुरक्षा की एक छोटी रकम पर गुजर कर रहे हैं। किन्तु यह भी अगले वर्ष जब जिमी १८ वर्ष का हो जायगा, बन्द हो जायगी।

जिमी १७ वर्ष की आयु में भी बिलकुल असहाय है, क्योंकि वह गूंगा होने से अपनी भावनाओं को केवल शारीरिक अनुभावों और अस्फुट गूँ-गूँ की ध्वनियों द्वारा ही अभिव्यक्त कर सकता है। श्रीमती फ्लॉयड ने अपनेको पूर्णतया अपने पुत्र की सेवा के लिए ही अर्पित कर दिया है और इसी में उनका सारा समय निकल जाता है। अभी हाल में जब उन्हें एक आपरेशन कराने के लिए जाना था, तो उसके पहले वह जिमी के साथ अपने जनपदगृह में सप्ताहान्त बिताने के लिए गयी थीं। वहाँ एक ही रात में उन्होंने

समझ लिया कि जब तक वह अस्पताल में रहेंगी तब तक के लिए जिमी को अकेले वहाँ नहीं छोड़ा जा सकता। तब उनके कुछ सहधर्मियों ने आर्थिक सहायता की, ताकि उनका पुत्र भी अस्पताल में उनके साथ तब तक रह सके जब तक वह आपरेशन तथा उसके बाद स्वस्थ होने तक अस्पताल में रहेंगी।

अब वह अपने घर लौट आयी हैं, पर अब एक और गंभीर आपरेशन कराने की समस्या उनके सामने आ खड़ी हुई है। इस समय उनकी सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि जिमी की देख-रेख के लिए क्या किया जाय? क्या उसे राज्य द्वारा ऐसे बच्चों के लिए संचालित विशेष स्कूल में भेज दें या आपरेशन के समय उसे फिर अपने साथ ही अस्पताल में रखें? पर क्या उनके सहधर्मी लोग इसके लिए उनकी सहायता करेंगे? और यदि वह आपरेशन में जीवित न बचीं तो? यदि बचकर घर आ गयीं तब भी उनके पुत्र को तो उनसे अधिक दिनों तक जीवित रहना ही चाहिए। फिर उनके मरने के बाद उनके पुत्र को कौन सँभालेगा? और यदि कोई सँभालनेवाला मिल भी जाय, तो क्या वह उसी तरह उसकी सेवा और देख-रेख करेगा जैसे वह अब तक करती रही हैं?

फारेस्ट परिवार

श्री फारेस्ट, जिनकी अवस्था ३४ वर्ष की है, कृषि-फार्म में काम कर चुके हैं और हाल तक एक सूती मिल में काम करते थे। दो वर्ष पूर्व उनके एकमात्र ६ वर्षीय पुत्र का शिक्षारम्भ होने वाला था। उसी समय उनके सर में ऐसी चोट लगी कि उनके मस्तिष्क में विकृति उत्पन्न होने से वाक्शक्ति में अवरोध आ गया, चलने में भी कठिनाई होने लगी और उनका मस्तिष्क बच्चों-जैसा हो गया, डाक्टरों ने बताया कि अब उनका ठीक होना असंभव है।

उनकी पत्नी, जिनकी अवस्था ३९ वर्ष की थी और जिनकी शिक्षा तीसरी कक्षा तक हुई थी, वह स्थानीय सूती मिल में काम करती थीं। वह फुरसत रहने पर ही काम करने जाती थीं, किन्तु जब उनके पति की हालत ठीक नहीं रहती थी तो वह उनकी तथा अपने आठ वर्षीय पुत्र की देख-भाल करने के लिए घर पर ही रह जाती थीं। इधर कुछ दिनों से मिल में भी आधे समय तक ही काम होता है।

इन कारणों से श्रीमती फारेस्ट ने जनपद-कल्याण विभाग के पास सहायता के लिए आवेदन-पत्र भेजा है।

फ्रैंकलिन गार्डनर

१६ वर्षीय बालक फ्रैंकलिन अस्पताल में भरती हुआ। उसकी जाँघें, बाहें, गर्दन और चेहरा बुरी तरह जल गये थे। उसकी ५२ वर्षीय माँ भी, जो और भी बुरी तरह

जली थी, साथ ही अस्पताल में भरती की गयी थी। जलने की घटना पहले तो फ्रैंकलिन ने यों बतायी थी कि जब वह और उसकी माँ तम्बाकू के खलिहान में तम्बाकू की पत्ती छुड़ा रहे थे, उसी समय बारूद के एक द्रव्य में उसका जलता सिगरेट चला गया था, जिसके कारण विस्फोट होने से यह दुर्घटना हुई थी। अस्पताल में दो हफ्ते रहने के बाद उसने सही बात बतायी। इस बीच उसके बीमार पिता उसे अस्पताल में देखने एक बार गये थे। सही बात यह थी कि दुर्घटना के दिन वह अपने पिता के साथ काम कर रहा था। उसके पिता ने उसे अपने साथ कहीं जाने को कहा, पर फ्रैंकलिन ने कहा कि उसकी तबीयत ठीक नहीं है, जिससे वह वहाँ नहीं जाना चाहता। इस पर उसके पिता ने उससे कहा कि फिर घर पर ही रहकर अपनी माँ की सहायता करो। उसने सामाजिक कार्यकर्ता से यह बात स्वीकार की कि उस दिन वह बीमार नहीं था, पिता से झूठ कहा था। उसने यह भी बताया कि सिगरेट के कारण विस्फोट नहीं हुआ था। बल्कि उसने स्वयं डब्बे में से कुछ बारूद निकाल कर उसमें दियासलाई से आग लगा दी और डब्बे को काफी दूर नहीं हटाया और तभी उसकी माँ बड़े जोर से चिल्लायी। माँ ने उससे बारूद से खेलने को मना किया था लेकिन वह कितना जिद्दी था! कितना अच्छा हुआ होता यदि वह उस दिन प्रातः पिता के साथ चला गया होता, तब ऐसा नहीं हो पाता।

अस्पताल में भरती होने के एक हफ्ते बाद ही उसकी माँ मर गयी। पर यह बात उससे छिपायी गयी। प्रश्न यह उपस्थित था कि उससे यह शोक-समाचार कैसे बताया जाय और कौन बतावे, सामाजिक कार्यकर्ता, डाक्टर, नर्स या अस्पताल का चपरासी, अथवा उसका पिता या परिवार का कोई व्यक्ति?

श्रीगोल्ड

श्री गोल्ड की अवस्था ७० वर्ष की है। वह कई वर्षों से अपनी विवाहिता पुत्री श्रीमती सिंगर के साथ रह रहे हैं। एक वर्ष तक वह लेखा-विभाग में नौकरी करते थे। छः मास पूर्व उनके ४१ वर्ष के पुत्र की मृत्यु हो गयी जिसका उन्हें असह्य धक्का लगा। उस धक्के के कुप्रभाव से वह अब भी पूर्णतः मुक्त नहीं हो सके हैं। सात वर्ष तक वह अपने परिवार के साथ, जो अब एक दूसरे राज्य में जाकर रहने लगा है, प्रेमपूर्वक रह चुके थे। अपने परिवार के अन्य राज्य में चले जाने के बाद कई मास तक वह एक सुसज्जित कमरे में बड़े ठाट से रहकर खूब मौज से खाते-पीते रहे। उसके बाद वह अपनी पुत्री श्रीमती सिंगर के पास रहने के लिए चले गये। श्रीमती सिंगर धीरे-धीरे अपने पिता से ऊबने लगीं। पिता उनके लिए भार-से प्रतीत होने लगे, क्योंकि उनका अपना परिवार भी उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। वह जानती हैं कि उनके पिता स्नेह के लिए उन

पर आसाधारण रूप से आश्रित हैं, पर साथ ही वह यह भी अनुभव करती हैं कि अपने पति और बच्चों के प्रति उनका उत्तरदायित्व अधिक है। वस्तुतः यह द्विधा आर्थिक प्रश्न को लेकर नहीं है, क्योंकि उनके पिता आधे समय वाला कोई काम करके कुछ आय कर लेते हैं, सामाजिक सुरक्षा-निधि से कुछ आय हो जाती है तथा उन्होंने पहले से भी कुछ धन बचाकर रखा है। उनकी उम्र को देखते हुए उनका स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा है। पाँच या छः वर्ष पूर्व उनके पित्ताशय में आपरेशन हुआ था। इसके अतिरिक्त धमनी-संकोच की हल्की शिकायत भी है, यद्यपि डाक्टरों का कहना है कि इस उम्र के व्यक्तियों में इसका होना स्वाभाविक होने से यह चिन्ता की बात नहीं है।

सामाजिक कार्यकर्ता से श्रीमती सिंगर इस संबंध में जो बातें करती हैं, उससे उनकी द्विधात्मक भावनाओं का पता चलता है। क्या उनका अपने रागात्मक भावों को इस तरह विभक्त रखना उनके तथा उनके परिवार के पक्ष को ध्यान में रखते हुए न्यायसंगत माना जायगा? दूसरी ओर उनके पिता ने जीवन भर उनके लिए जो किया है, उसे ध्यान में रखते हुए उनकी देख-भाल करना क्या उनका कर्तव्य नहीं है? यदि उनके पिता उनके परिवार से अलग कहीं अकेले नहीं रहना चाहते, और परिवार में उनके रहने से श्रीमती सिंगर की कठिनाइयाँ बढ़ती हैं और यदि वह किसी वृद्ध-आवास-गृह में जाने को किसी भी तरह तैयार नहीं हैं तो इस संबंध में अन्य क्या उपाय अपनाया जा सकता है? क्या उन्हें किसी अन्य व्यक्ति के पास नहीं रखा जा सकता है जो पैसा लेकर उनकी देख-भाल करे?

रीता हेन्स

रीता की अवस्था १५ वर्ष की है। वह आवारागर्दी की आदत तथा घर से भाग कर एक महीने तक किसी अज्ञात स्थान में रहने के कारण पकड़ कर एक राजकीय प्रशिक्षण स्कूल में भेज दी गयी थी। उसके माँ-बाप अलग-अलग रहते हैं। स्कूल छोड़ने के बाद रीता ने अपनी माँ के साथ ही रहना पसन्द किया।

रीता के घर लौटने के कुछ दिनों बाद उसकी बहन ने, जिसका विवाह हो चुका था, यह सूचना दी कि उसकी माँ बच्चों को रीता के ऊपर छोड़ कर रात-रात भर गायब रहती और बहुत शराब पीती है, और इस तरह बच्चों की चिन्ता बिलकुल नहीं करती है। इसके याद रीता का उसकी माँ से झगड़ा हो गया और वह माँ को छोड़कर अपनी दादी के पास चली गयी। १६ वर्ष की अवस्था में रीता ने पढ़ना छोड़ कर नौकरी कर ली। कुछ दिनों तक अपने एक चाचा-चाची के साथ रहने के बाद वह अपनी एक अन्य विवाहिता बहन के घर चली गयी। उसके वहाँ जाने के कुछ ही दिनों बाद बड़ी

बहन ने फोन पर बताया कि रीता की नौकरी छूट गयी। कुछ दिनों बाद ४०० मील दूरवर्ती एक स्थान से तार आया कि रीता का विवाह हो रहा है। पर बाद में पता चला कि उसका विवाह नहीं हुआ। रीता एक परिवार के साथ एक हिस्से में रहती थी। सामाजिक कार्यकर्ता ने उसके साथ जाकर उसके लिए एक महिला-आवास-गृह में रहने की बातचीत पक्की कर दी। पर निर्धारित समय पर रीता वहाँ नहीं गयी। बाद में उसने कार्यकर्ता को फोन पर बताया कि वह उसके दफ्तर में अमुक समय स्वयं आकर मिलेगी। पर वह अपने वचन के अनुसार दफ्तर में नहीं गयी। अतः उसकी गिरफ्तारी के लिए वारण्ट जारी किया गया ताकि उसे कचहरी में हाजिर करके उसकी समुचित व्यवस्था की जा सके।

जेन हिल्टन

१५ वर्षीया जेन अविवाहिता है, पर उसे छः मास का गर्भ है। उसका घर एक छोटे शहर में है। कई मास पूर्व वह वहाँ से भाग कर इस शहर में आयी थी। यहाँ आने के कई मास बाद उसे अपने गर्भवती होने का पता चला। अब वह अपने घर लौटने को तैयार नहीं है। उसके बाप का कहना है कि वह जेन के लिए कोई भी आर्थिक जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं है, क्योंकि उनको पहले विवाह से चार संतानें हैं और दूसरे विवाह से छः। जेन को प्रसूति-गृह में भेजने के लिए आवश्यक कागजात पर उन्होंने बिना ननु-नच के हस्ताक्षर कर दिये।

उसके पैतृक नगर में रहनेवाली उसकी एक चाची ने उसे अपने साथ रखकर उसकी देख-भाल करने की इच्छा प्रकट की है, पर जेन इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं है। वह अपनी उक्त चाची के साथ रह चुकी है और उसे याद है कि उसकी चाची उसके साथ कितनी कड़ाई से बर्ताव करती थी, और उसे लड़कों के साथ बाहर जाने की अनुमति कभी नहीं देती थी। वहीं पर रहते समय वह चोरी से बाहर जाकर उस व्यक्ति से मिला करती थी, जिसके कारण वह गर्भवती हुई थी। वह व्यक्ति स्वीकार नहीं करता कि इस कृत्य के लिए वह जिम्मेदार है और उसके पास जो पत्र लिखे जाते हैं, उनमें से किसी का उत्तर नहीं देता है।

बच्चा पैदा होने के पहले जेन इस संबंध में निश्चय नहीं कर सकी थी कि आगे वह क्या करेगी। बच्चा पैदा होने के कुछ दिन बाद, (और बच्चा पैदा होते समय उसे बहुत कष्ट हुआ) उसका पिता उसे देखने आया, पर उसने उसके और उसके बच्चे का भार उठाने में अपने को बिलकुल असमर्थ बताया। इसके अतिरिक्त उसका यह भी कहना था कि अपने मुहल्ले में इस अवैध बच्चे का पालन करने में बहुत-सी कठिनाइयों का

सामना करना पड़ेगा। जेन और उसके पिता इस बात पर सहमत हैं कि बच्चे को किसी को दे देना ही सर्वोत्तम उपाय है, यद्यपि जेन बच्चे को, जो पुत्र है, प्यार करती है और कह नहीं सकती कि बच्चे को अपने से कैसे अलग कर पायेगी।

एक दिन नजदीक के ही एक शहर में रहने वाली उसकी एक चचेरी बहन प्रसूति-गृह में आयी। जेन उसके साथ कुछ दिनों तक रह चुकी है। उसने यह माँग की कि जेन और उसके बच्चे को प्रसूति-गृह से मुक्त करके उसके साथ जाने दिया जाय। इस संबंध में जेन निश्चित नहीं थी कि वह क्या करे। उसका ख्याल था कि उसकी वह बहन अपने बच्चों की देख-भाल के लिए उसे अपने घर ले जाना चाहती है। इसके छः ही दिनों बाद जेन के उक्त बहन ने उसके पिता को राजी कर लिया कि वह उसे प्रसूति-गृह से जेन को मुक्त कराने के लिए कागजात पर हस्ताक्षर कर दे। उसका पिता आकर उसे प्रसूति-गृह से बाहर ले गया और घर ले जाने के बहाने उसने उसे उसकी चचेरी बहन के घर भेज दिया।

हावर्ड फैमिली

श्री हावर्ड और उनकी पत्नी की अवस्था चालीस से ऊपर है। उनके परिवार में क्रमशः १९ और ७ वर्ष के उनके दो पुत्र और ४ वर्ष की एक लड़की है। श्रीमती हावर्ड ने किसी समाचार पत्र में गृह-कार्य सेवा-योजना के संबंध में एक लेख पढ़कर परिवार-सेवा विभाग को टेलीफोन किया।

श्रीमती हावर्ड को प्लूरिसी की बीमारी हो गयी है और वह अस्पताल में चली गयी हैं, जहाँ उन्हें कम-से-कम दस दिन तक रहना होगा। उन्होंने एक अर्धवैतनिक नौकरानी भी रखी है, जो सप्ताह में दो दिन उनके घर काम करने आती है। श्री हावर्ड को सन्देह है कि उनकी अनुपस्थिति में उनका बड़ा पुत्र जो सीनियर हाईस्कूल का छात्र है, अन्य बच्चों की देख-भाल ठीक से कर सकेगा। श्रीमती हावर्ड की बहन उनकी चार वर्षीया पुत्र मेरी को अपने साथ ले गयी हैं। फिर भी श्री हावर्ड को इस बात की चिन्ता है कि वह कैसे काम चलायेंगे ? यदि उन्हें गृह-सहायक-सेवा प्राप्त हो जाय तो वह खुशी से उसका व्यय उठाने को तैयार हैं। इधर डाक्टरों का कहना है कि अस्पताल छोड़ने के बाद श्रीमती हावर्ड को पूर्ण स्वस्थ होने के लिए दो सप्ताह देख-भाल और विश्राम की आवश्यकता है।

श्रीमती इला जानसन

५४ वर्षीय श्रीमती जानसन के पति की मृत्यु कई वर्ष पहले हो गयी थी। तब से वह "आश्रित बच्चों की सहायता" (डिपेंडेंट चिल्ड्रेन ग्रांट) पाती हैं। उनकी पाँच

लड़कियाँ हैं। उनमें से एक जिसकी अवस्था २२ वर्ष की है, विवाहिता है, नौकरी करती है और कहीं अन्यत्र रहती है। शेष लड़कियाँ जो १४ से २४ वर्ष की अवस्था की हैं, श्रीमती जानसन के साथ रहती हैं। उनमें से सबसे बड़ी हेजेल जो किसी कारखाने में काम करती है, अपने वेतन का कुछ भाग परिवार के खर्च के लिए देती है। शेष तीनों लड़कियाँ जो क्रमशः १४, १६ और १८ वर्ष की हैं, जूनियर या सीनियर हाईस्कूल में पढ़ती हैं। जिस समय मेरी ने अट्ठारहवाँ वर्ष पूरा किया, तभी उसके परिवार को मिलनेवाली आश्रित बच्चों की सहायता बंद कर दी गयी, क्योंकि अब परिवार को हेजेल के वेतन से मिलनेवाली सहायता पर्याप्त समझी गयी। मेरी को हाईस्कूल पास करने में अभी दो वर्ष बाकी हैं और वह उसे कर लेना चाहती है। अनुदान बंद हो जाने से परिवार पर सचमुच एक बड़ा संकट आ पड़ा है। अब क्या हो ? क्या नौकरी करनेवाली लड़की हेजेल अपने वेतन से परिवार की अधिक सहायता करे या मेरी पढ़ाई बंद करके कहीं काम करने जाय ? क्या श्रीमती जानसन ही, जिसे कभी कहीं काम करने का कोई अनुभव नहीं है, अब कहीं काम-धंधा ढूंढ़े या वह अपने परिवार को लेकर उस छोटे से शहर से जहाँ वह रहती है, किसी बड़े शहर में चली जाय अथवा २४ वर्षीया हेजेल अपने विवाह के विचार का परित्याग कर दे ?

श्रीमती विक्टोरिया जोन्स

अमेरिकन रेडक्रास की एक कार्यकर्त्री ने परिवार सेवा-अभिकरण को अभिकरण द्वारा दी जानेवाली कानूनी सहायता तथा परामर्श के संबंध में टेलीफोन किया। बुलाये जाने पर उक्त कार्यकर्त्री श्रीमती जोन्स अभिकरण के सम्मुख अपनी कठिनाइयाँ बताने के लिए गयीं।

पाँच मास पूर्व जब श्रीमती जोन्स का श्री जोन्स से विवाह हुआ था, उस समय से वह पति के साथ अपने सास-ससुर के घर रहने लगीं। एक महीने बाद ही जोन्स सेना में भरती हो गये। उनकी अपने पति के परिवार के साथ निभ नहीं सकी, इसलिए वह एक दूरवर्ती शहर में रहने वाले अपने माँ-बाप के पास लौट गयीं। बड़े दिन की छुट्टी में श्री जोन्स अपनी पत्नी से मिलने उसके घर गये और इस बात पर राजी हो गये कि जब तक वह सेना की नौकरी से मुक्त नहीं हो जाते, उनकी पत्नी अपने माँ-बाप के पास ही रहेंगी। अभी हाल में वह अपने पति के वेतन में से प्राप्त होने वाला निर्वाह चेक (एलाटमेण्ट चेक) लेने के लिए जब अपने सास-ससुर के घर गयीं तो उन्हें पता चला कि उनके पति उनकी गैर जानकारी में वहाँ जाकर वह 'चेक' भुना ले गये थे। उन्होंने श्रीमती जोन्स को बाद में सूचित किया कि अब वह अपनी पत्नी को निर्वाह-धन

(एलाटमेण्ट) नहीं देंगे। वह शराब पीने लगे थे और पति-पत्नी में झगड़े भी हुए। अतः श्रीमती जोन्स ने अपने पति का घर छोड़ दिया और उसी शहर में रहने वाले अपने एक भाई के यहाँ चली गयीं।

श्रीमती जोन्स के पिता ने उससे कहा कि तुम तलाक दे दो, उसमें जो खर्च हो मैं दूँगा और तलाक हो जाने के बाद तुम मेरे पास चली आना। जब उसके पति ने यह खबर सुनी तो उन्होंने क्रुद्ध होकर कहा कि वह स्वयं उन्हें तलाक का खर्च देंगे, परन्तु अब तक उन्हें उनसे कोई भी धन प्राप्त नहीं हुआ।

परिवार-सेवा अभिकरण के दफ्तर में श्रीमती जोन्स ने बताया कि वह नहीं जानतीं कि वह तलाक ही चाहती हैं या और कुछ। उनके कथनानुसार अच्छा होता यदि किसी से वह इस प्रश्न पर खुलकर विचार-विमर्श करतीं और अपनी भावनाओं को सुलझा कर यह समाधान पा जातीं कि वह क्या करना चाहती हैं ?

श्रीमती जान लेन

श्रीमती लेन के हाथों में चर्म-रोग हो गया है, जिसकी दवा वह एक चिकित्सालय (क्लिनिक) में करा रही हैं। डाटरों का खयाल है कि उनके चर्मरोग का उनके दाम्पत्य-जीवन से कोई संबंध अवश्य है। श्रीमती जान के अनुसार भी ऐसा संभव है, क्योंकि उनका अपने पति के साथ बहुत दिनों से असन्तोषजनक सम्बन्ध चला आ रहा है। एक बार जब उनके पति कहीं रात भर गायब थे तो इसी बात पर वह उनसे अलग तक हो गयी थीं। इसके अतिरिक्त कई ऐसे अवसर भी आये, जब उन्होंने तलाक देने तक का गंभीरतापूर्वक विचार किया था।

श्रीमती लेन ३० वर्ष की और उनके पति ३५ वर्ष के हैं। विवाह के समय वह १५ वर्ष की और जान लेन २० वर्ष के थे। उनकी एक १३ वर्ष की पुत्री और एक ७ वर्ष का पुत्र है। श्रीमती जोन्स जब ८ वर्ष की थीं, तभी से बराबर बीमार रहा करती हैं। जब वह २४ वर्ष की थीं तो तपेदिक हो जाने के कारण उन्हें ३ वर्ष तक एक क्षय-आरोग्य-शाला में रहना पड़ा। उस अवधि में उनकी पुत्री उनके माँ-बाप और पुत्र उनके सास-ससुर के साथ रहते रहे। श्रीमती लेन का कहना है कि उनके पति यह समझते ही नहीं हैं कि बीमारी में कितना कष्ट होता है। वह स्वयं कभी बीमार नहीं पड़ते, जीवन भर में वह केवल एक दिन बीमार थे।

श्रीमती लेन के कथनानुसार श्री लेन कभी-कभी बहुत अधिक शराब पिया करते हैं। वह एक सूती मिल में रात के ११ बजे से सुबह के ७ बजे वाली पाली में काम करते हैं। श्रीमती लेन ने इस बात की कोशिश की है कि उनके पति सामाजिक कार्यकर्ता के

पास आकर अपने वैवाहिक-जीवन की समस्याओं के संबंध में कुछ बतायें, किन्तु उनके पति वहाँ नहीं गये। उनका कहना है कि जहाँ तक मेरा संबंध है, मेरे वैवाहिक जीवन में कोई गड़बड़ी नहीं है।

जान मार्टिन

जान की अवस्था १५ वर्ष की है। उनके कुल छः भाई बहन हैं। उसे लोक-कल्याण विभाग (पब्लिक वेलफेयर डिपार्टमेंट) के पास भेजा गया है। उनके बाप जिनकी आय का कोई भरोसा नहीं था, अन्त में परिवार को छोड़कर भाग गये थे और माँ ने दूसरा विवाह कर लिया था। दूसरा बाप (स्टेप फादर) बच्चों के प्रति कटु-व्यवहार करता था। उनकी माँ के बाद गृहस्थी की देख-रेख एक गृह-सेवक (हाउस कीपर) करता है। जान सामाजिक कार्यकर्ता के साथ एक पालन-गृह देखने गया था। उसने अपने दूसरे पिता को पीटा था, इस कारण अब वह उसका घर छोड़कर किसी पालन-गृह में रहना चाहता है। अभिकरण ने उसे एक पालन-गृह बताया, जिसमें जान से छोटी उम्र के चार और लड़के रहते थे। यह तय हुआ कि उसका दूसरा पिता भी कभी-कभी एक निश्चित अवधि के अन्तर पर उससे मिलने आ सकता है। किन्तु जान उससे मिलना नहीं चाहता था और कहता था, "वह व्यक्ति मेरी शक्ति से घृणा करता है।" उसकी बहनों और भाइयों को अन्य पालन-गृहों में भेज दिया गया है। जान अपने पहले वाले स्कूल में ही पढ़ना और अपनी अर्द्धवैतनिक नौकरी को जारी रखना चाहता है, यद्यपि उसका पालन-गृह शहर के एक दूरस्थ भाग में है। प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जान अपने खर्च के लिए अपने पास से कितना धन दे। अन्त में निश्चित होता है कि वह स्वयं अपने कपड़ों का खर्चा देगा और पालन-गृह का अन्य व्यय लोक-कल्याण विभाग वहन करेगा। प्रश्न—क्या पालक माँ-बाप (फास्टर पैरेन्ट्स), जान और अभिकरण के बीच कुछ अन्य मामले भी सुलझाने के लिए हैं ?

जोन मिम्स

१३ वर्षीया जोन को बाल अपराध के लिए पविार-न्यायालय (फेमिली कोर्ट) में उपस्थित किया गया है। २४ वर्षीय पीटर्सन को भी उस नाबालिग लड़की को अपराध करने के लिए बहकाने के जुर्म में उस न्यायालय में लाया गया है, क्योंकि जोन ने पीटर्सन के साथ एक रात बितायी थी। जोन के पिता श्री मिम्स ने पीटर्सन पर मुकदमा चलाया है। कचहरी का कार्यकर्ता (सामाजिक कार्यकर्ता) जब उससे जोन की सहायता करने की बात करता है तो वह नाराज होता है। मिम्स का कहना है कि वह अपनी लड़की को स्वयं ठीक कर लेगा और उसके निजी मामलों में

कचहरी की सहायता की कोई आवश्यकता नहीं । उक्त कार्यकर्ता का उत्तर यह है कि न्यायालय तो पीटर्सन के बारे में फैसला देगा, जोन के बारे में नहीं, फिर भी जोन के कल्याण के सम्बन्ध में सोचना न्यायालय का उत्तरदायित्व है ।

पीटर्सन का अपराध सिद्ध हो गया और उसे दण्ड दिया गया । बाद में पता चला कि उसको दिये गये दण्ड का एक भाग उसके इस अपराध के लिए था कि उसने इसके पूर्व गुजारा देने की आज्ञा का उल्लंघन किया था । प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ था कि जोन ने स्वयं पीटर्सन को बहकाया था और उसे झूठ बताया था कि वह १८ वर्ष की है ।

श्रीमती मिम्स का कहना है कि उन्होंने जोन के लिए कई बार प्रार्थना की है और उसके संबंध में अत्यधिक चिंतित रहती हैं । उनके कहने से पता चलता है कि जोन के बिगड़ने में सबसे अधिक दोष उनके पति मिम्स का है और डाक्टरों ने भी उनसे यही कहा है । जोन कहती है कि वह अपने पिता से डरती है और उनसे किसी विषय पर बातें नहीं कर सकती । उसका यह भी कहना है कि उसके माता-पिता बहुत अच्छी तरह मिलकर नहीं रहते, झगड़ते रहते हैं ।

पिता को इस बात की उतनी चिन्ता नहीं है कि जोन की क्या सहायता होनी चाहिए, जितनी इस बात की कि उसे कचहरी में जाना पड़ा, जिससे उनके परिवार की बेइज्जती हुई । जब सामाजिक कार्यकर्ता उनसे कहता है कि आप जोन को अच्छी तरह समझ सकें, इस बात में मैं आपकी सहायता करना चाहता हूँ तो श्री मिम्स को उसकी बातें बुरी लगती हैं और वह झगड़ते हुए कार्यकर्ता से पूछते हैं कि "अच्छा बताइये, मैं क्या करूँ?" अब कार्यकर्ता मुश्किल में पड़ता है ।

जेक मायर्स

जेक मायर्स जिसकी अवस्था १२ वर्ष की है मर्था और जेसी मायर्स की सबसे छोटी सन्तान है । श्रीमती मायर्स का विवाह २० वर्ष पहले हुआ था । विवाह होने से पहले ही उनकी तीन संतानें हो चुकी थीं । सबसे बड़ी सन्तान का पालन-पोषण उसकी मामी ने ने किया । दूसरी संतान एक अनाथालय में रखी गयी थी । तीसरी संतान का पालन उसकी नानी के घर में हुआ । शेष तीनों वैध संतानों का जन्म उसके विवाह के बाद हुआ । एक लड़का जान जिसका विवाह हो चुका है, किसी दूसरे राज्य में रहता है । दूसरी संतान पैट्रीशिया का भी, जो १८ वर्ष की है, विवाह हो चुका है ।

श्रीमती मायर्स एक मानसिक-चिकित्सालय में थीं । उन्हें (डीमेन्शिया प्रीकॉक्स) मानसिक जीर्णता नामक बीमारी हो गयी थी । उनके परिवीक्षण-काल में ही जैक पैदा हुआ था । एक वर्ष पूर्व मानसिक चिकित्सालय में श्रीमती मायर्स की मृत्यु हो गयी ।

उसके एक मास बाद ही उनके पति मायर्स भी दिल और गुर्दे (वृक्क) की बीमारी से मर गये।

श्री मायर्स जब मृत्यु-शय्या पर थे, उस समय उनका सबसे छोटा लड़का जैक अपने चाचा के साथ रहता था। उसका चाचा उसे पीटता था और उसे उसके दोस्तों से मिलने नहीं देता था, क्योंकि उसका अनुमान था कि अन्य लड़के उसके साथ दुर्व्यहार करते हैं। उसकी चाची उसे हर समय जली-कटी सुनाती रहती थी। उसकी बहन पैट्रिशिया उसे अपने घर ले गयी। वह अपने पति, दो बच्चों तथा चचेरी सास के साथ एक मकान में रहती थी। वहाँ जैक को जमीन पर पुआल की चटाई बिछाकर सोने को मिलता था।

जब उसका मामला बाल-न्यायालय में उपस्थित किया गया तो न्यायालय ने यह बात मान ली कि पैट्रिशिया के उस छोटे-से मकान में इतने लोगों का रहना संभव नहीं है, अतः न्यायालय की आज्ञा से जैक एक पालन-गृह में रखा गया। जैक ने ऊपर-ऊपर से अपने को पालन-गृह के अनुरूप ढाला। यह व्यवस्था भी सोची गयी कि अट्ठाईस लड़कों के लिए जो पास के ही एक पब्लिक-स्कूल में पढ़ते थे, एक छात्रावास स्थापित किया जाय। प्रारंभ में जैक उस छात्रावास में जाना नहीं चाहता था और इस बात पर जोर देता था कि वह अपने भाई जोन के साथ रहेगा, यद्यपि जान बाह्यतः जैक को अपने पास रखने के लिए तैयार था। फिर भी जैक को यह बात समझनी आवश्यक थी कि उसे जान के साथ रहने की जिद नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उसकी पत्नी को शीघ्र ही बच्चा होने वाला है, जिससे उसके घर में पर्याप्त स्थान नहीं रह जायगा। फलस्वरूप जैक उस छात्रावास में रहने लगा और एक सप्ताह वहाँ रहकर और वहाँ के लोगों द्वारा अपना लिये जाने पर उसके मन में यह बात बैठने लगी कि यही उसके रहने के लिए सर्वाधिक उचित स्थान है।

श्रीमती पैट्रिशिया नोलन

श्रीमती नोलन की अवस्था तीस वर्ष की है। तीन वर्ष पूर्व उन्होंने अपने पति को तलाक दे दिया था, क्योंकि वह उनके दोनों बच्चों के भरण-पोषण के लिए रुपया नहीं देते थे। उन दोनों बच्चों में एक लड़का था, जिसकी अवस्था दस वर्ष की थी और एक लड़की थी, जो सात वर्ष की थी। अब वह अपने दोनों बच्चों को लेकर अपने वृद्ध माँ-बाप के साथ रहती हैं। अभी हाल में ही उनके पिता की मृत्यु हो गयी है और अब वह तथा उनकी माँ इस बात के लिए बहुत चिंतित हैं कि उनके पिता की बीमारी में जो दवाएँ उधार आयी थीं, उनका मूल्य कहाँ से चुकाया जाय। वह एक होटल में परिचारिका का काम करती हैं, अतः उनकी आय का साधन, उनका वेतन तथा उनके माँ-बाप को मिलने

वाली वृद्धावस्था की सहायता ही रहा है, पर अपने पिता की बीमारी में, उनकी परिचर्या करने के लिए, उन्हें अपनी नौकरी भी छोड़ देनी पड़ी है।

अब श्रीमती नोलन की समझ में नहीं आता कि वह क्या करें। उनकी माँ अपनी एक दूसरी लड़की के पास जाकर रहने तथा उसी के साथ जीवन निर्वाह करने की तैयारी कर रही हैं। इधर मकान-मालिक बराबर पिछले किराये का तकाजा कर रहा है। इसके अतिरिक्त वह उस मकान में फिर से रंग तथा मरम्मत कराना चाहता है, अतः नोलन को उस मकान से निकलना ही पड़ेगा।

श्रीमती नोलन परिवार-सेवा अभिकरण के पास आती हैं। वह बहुत उलझन में हैं कि क्या करें क्या न करें। क्या वह अपने बच्चों को किसी संस्था या पालन-गृह में रख दें या अपने पास ही रखें ?

कार्ल सेट्जर

कार्ल की अवस्था तेरह वर्ष की है। उसके माँ-बाप एक दूसरे को तलाक दे चुके हैं। कार्ल अपनी माँ के साथ रहता था, किन्तु जब उसे लगातार अनेक कठिनाइयों में फँसना पड़ा तो न्यायालय ने उसे उसके पिता के पास रख दिया, क्योंकि उसके पिता का दूसरा विवाह सन्तोषजनक प्रतीत होता था। किन्तु कार्ल और उसकी सौतेली माँ में पटती नहीं थी। न पटने के अनेक कारणों में से एक यह भी है कि उसकी सौतेली माँ उसे उसकी माँ के पास जाने की अनुमति नहीं देती। अन्त में कार्ल वहाँ से भागकर अपनी माँ के पास चला गया और उसके पिता ने यह घोषित कर दिया कि वह अपने लड़के को दुबारा नहीं देखना चाहता। कार्ल की माँ ने भी दूसरा विवाह कर लिया था और वह उसे अपने पास ही रखना चाहती थी, किन्तु उसका पति जेल में था और उसे स्वयं मजदूरी करनी पड़ती थी। कार्ल चोरी के कई मामलों में फँसा। न्यायालय ने उसे राजकीय प्रशिक्षण-स्कूल में भेजना उचित न जानकर एक बाल-संस्था में भेजा।

यहाँ कार्ल किसी को अपना दोस्त नहीं बना सका। सब उसको तंग करते थे। छोटे बच्चे उससे डरते थे और बड़े लड़के उसे पीटा करते थे। कार्ल का कहना है कि उसे अपनी माँ की बहुत याद आती है और वह उसे बहुत प्यार करता है। अतः उसे सप्ताह में एक दिन अपनी माँ से मिलने की आज्ञा मिल जाती है, किन्तु उसकी माँ के घर की अवस्था को देखते हुए कार्ल को उसके यहाँ रात में रहने की अनुमति नहीं मिलती। तीन वर्षों से उसके पिता के साथ उसका कोई संबंध नहीं है, किन्तु इधर कुछ दिनों से वह अपने पिता के संबंध में अनेक प्रकार की बातें करने लगा है। ये बातें पालिका माता, अधीक्षक तथा सामाजिक कार्यकर्ता के पास तक पहुँची हैं। अन्त में वह सामाजिक

कार्यकर्ता से कहता है कि उसे उसके पिता से मिलते रहने की अनुमति मिलनी चाहिए। साथ ही वह अपनी माँ से भी मिलना जारी रखना चाहता है।

श्रीमती शा और उनके बच्चे

चार वर्ष पहले श्री शा अपनी पत्नी और दस वर्ष तक की अवस्था वाले पाँच बच्चों को छोड़कर एक दूसरे राज्य में चले गये। एक वर्ष बाद पाँचों बच्चे एक बाल-संस्था में भर्ती किये गये। प्रारंभ के दो वर्षों तक श्रीमती शा अपने बच्चों से मिलने प्राय: आया करती थीं, किन्तु जब से वह संस्था वहाँ से हटकर आठ मील दूर देहात में चली गयी हैं, तब से वह बच्चों से मिलने बहुत कम आयी हैं। वह शहर के एक कैफेटेरिया में सप्ताह के सातों दिन काम करती हैं और अपने भाई तथा उसके एक मित्र जिम के साथ एक चार कमरे वाले मकान में रहती हैं।

उक्त संस्था के कार्यकर्ता, पालिका माँ, अधीक्षक तथा सामाजिक कार्यकर्ता इस बात के लिए चिन्तित हैं कि श्रीमती शा प्रत्यक्षत: अपने बच्चों में दिलचस्पी नहीं दिखलातीं। पिछले अगस्त से, जब कि वह संस्था शहर से हटायी गयी थी, अब तक के सात महीनों में वह केवल दो बार अपने बच्चों से मिलने आयी हैं। पहले, बच्चे ही संस्था से अपनी माँ के पास चले जाते थे और उनके साथ कुछ दिन रहते थे, किन्तु अबकी दोनों बार नवम्बर और जनवरी में वह स्वयं बच्चों से मिलने आयीं और मिलकर चली गयीं। एक बार वह अपने एक लड़के से मिलकर जब बस पकड़ने जा रही थीं उस समय उनकी एक लड़की से उनकी मुलाकात हुई। श्रीमती शा बिली को, जिसकी अवस्था चौदह वर्ष की है, औरों से अधिक प्यार करती हैं। वह एकदम बहरा है और उसे उसकी माँ ने ओठों से पढ़ना सिखाया है।

बाबी को, जो तेरह वर्ष का है, देखकर उन्हें अपने पति की याद आती है।

इवेलेन ट्रॉय

इवेलेन एक सात वर्ष की बालिका है। एक मानसिक चिकित्सक ने उसे बाल-मानसिक चिकित्सा-केन्द्र में भेजा है। स्कूल तथा घर दोनों जगह उसकी मानसिक दशा उलझन और अस्थिरतापूर्ण रहती है। हाल की कुछ घटनाएँ, जिनकी ओर केन्द्र के अधिकारियों का ध्यान गया है, उसके छोटे भाई से संबंधित हैं। एक बार उसने अपने छोटे भाई को सुलाने वाली दवा की अधिक मात्रा खिला दी थी और दूसरी बार उसे सीढ़ियों से ढकेल दिया था। ये दोनों कार्य उस छोटे बच्चे के लिए संघातक थे।

इवेलेन मझली लड़की है। उसका बड़ा भाई दस वर्ष का है और छोटा चार वर्ष का। इवेलेन जब माँ के गर्भ में थी तो उसका बाप चाहता था कि लड़का हो और माँ

चाहती थी कि लड़की हो। बाप सबसे छोटे लड़के को जिसे इवेलेन ने ढकेल दिया था, अधिक चाहता है। उसके परिवार के ऊपर बहुत कर्ज है। यद्यपि उसका बाप दो काम करता है—एक जगह वह क्लर्क है और कार्यालय के समय के उपरान्त वह टैक्सी चलाता है। परिवार में बीमारियों का ताँता लगा रहता है। विशेषरूप से उसकी माँ बहुत बीमार रहती है। उसका बाप प्रायः कहा करता है कि उसकी माँ की बीमारी एक बहाना मात्र है। इस तरह पति-पत्नी में वर्षों से बारबर वैवाहिक झगड़े चले आ रहे हैं। उसकी माँ उसके बाप से दस वर्ष छोटी है।

कुमारी एडना टाइलर

कुमारी एडना की अवस्था ४३ वर्ष की है। एक वर्ष पूर्व वह एक मानसिक चिकित्सालय में भर्ती हुई थीं। दो महीने बाद वह कुछ दिनों के लिए अपने परिवार के पास भेज दी गयीं। उनके परिवार में उनकी वृद्धा दुर्बल माता, एक पंगु भाई और बारह वर्ष की उनकी एक छोटी बहन थी। चार मास बाद परिवार वालों ने उन्हें फिर मानसिक चिकित्सालय में पहुँचा दिया।

पाँच महीने बाद उनकी चिकित्सक ने, जो चिकित्सालय के महिला-विभाग की प्रधान थीं, यह संस्तुति की कि उन्हें अपने समाज में काम करने के लिए भेजा जा सकता है। कुमारी टाइलर ने अपने जीवन का अधिकांश भाग उस राज्य के एक देहाती पहाड़ी इलाके के एक कृषि-फार्म में रह कर बिताया था और अब वह अपने परिवार में लौटना नहीं चाहती थीं। उनका अनुमान है कि उनके परिवारवाले उन्हें अपने घर में अथवा अपने निकट भी नहीं रखना चाहते। जैसा वह पहले भी कर चुकी हैं, वह किसी कारखाने में काम करना तथा शहर में मकान लेकर रहना अधिक पसंद करती हैं, किन्तु चिकित्सक और सामाजिक कार्यकर्ता का विश्वास है कि यह उनके लिए उचित नहीं होगा। इसके विपरीत उनकी राय है कि उन्हें शहर के बाहरी मुहल्ले में किसी पालक-परिवार के संरक्षण-गृह में रहना चाहिए। कुमारी टाइलर और सामाजिक कार्यकर्ता साथ-साथ राजकीय रोजगार दफ्तर में गये, किन्तु वहाँ कुमारी टाइलर की आवश्यकताओं के अनुरूप किसी कार्य की व्यवस्था नहीं हो सकी। इसके बाद चिकित्सक ने यह राय दी कि उन्हें किसी ऐसी संस्था में काम करना चाहिए, जहाँ वह रह भी सकें। ऐसी कई संस्थाएँ थीं, जैसे—क्षय-चिकित्सालय, बाल-आरोग्यशाला, निजी चिकित्सा-गृह (नर्सिंग होम), वृद्धावास, निजी मानसिक-चिकित्सालय आदि, किन्तु मिस टाइलर की जिद्द थी कि वह बहुत-सी संस्थाओं में रहकर ऊब चुकी हैं, अब वह किसी ऐसी संस्था में काम नहीं करना चाहतीं।

श्री वाकर और श्रीमती वाकर

श्री वाकर की अवस्था साठ वर्ष और श्रीमती वाकर की अवस्था अट्ठावन वर्ष है। उनकी तीन संतानें हैं—दो लड़कियाँ और एक लड़का। ये तीनों दूर-दूर के नगरों में रहते हैं। वाकर और उनकी पत्नी ने जीवन भर रुपया बचाया, जिसके कारण अब उनका अपना एक छोटा-सा मकान है और अब उनके ऊपर कोई कर्ज नहीं है। तीन मास पहले श्री वाकर भयंकर हृद्रोग से पीड़ित हुए। अभी हाल में चिकित्सकों को यह पता चला है कि उनके पेट में फोड़ा भी है। यह संभव नहीं दीखता कि अब वह एक वर्ष के पहले काम करने लायक हो सकेंगे। उसके बाद भी यदि वह बचे रह जाते हैं तो वह मकान बनाने का काम करने लायक नहीं हो सकेंगे। केवल कुर्सी पर बैठकर काम कर सकते हैं।

अपने पति की बीमारी के पहले श्रीमती वाकर एक नर्स की सहायिका के रूप में काम करती थीं और उन्हें प्रतिसप्ताह पच्चीस डालर मिलता था। पति के बीमार हो जाने पर उनकी देख-भाल करने के लिए उन्होंने वह नौकरी छोड़ दी। उनकी तीनों विवाहित संतानें उनकी सहायता नहीं करतीं, क्योंकि उनके परिवार स्वयं बढ़ते जा रहे हैं और उन्हें स्वयं अपना खर्चा चलाना मुश्किल है। श्री वाकर और उनकी पत्नी के पास आय के जितने साधन थे, उन्होंने उन सबका इस्तेमाल कर लिया है। इस समय उनकी कोई आय नहीं है। इसके पूर्व उन्होंने कभी सहायता नहीं माँगी थी।

जार्ज वाट्स

जार्ज वाट्स का बायाँ हाथ एक मोटर दुर्घटना में बुरी तरह कुचल गया था, अतः उसे अस्पताल भेजा गया, जहाँ उसका हाथ कलाई के नीचे से काट दिया गया। वह बीस वर्ष का अविवाहित युवक है और अब तक अपने पिता के साथ अपने पारिवारिक कृषि-फार्म में काम करता रहा है। इस कार्य में ५ एकड़ जमीन में तम्बाकू की खेती होती है, और मुख्यतः उसी से उस फार्म का खर्चा चलता है। जार्ज को तीसरी श्रेणी तक शिक्षा प्राप्त हुई है और उसने अन्य किसी प्रकार के कार्य का प्रशिक्षण नहीं प्राप्त किया है।

अब उसके और उसके परिवार के सामने अनेक समस्याएँ उपस्थित हैं। उसके परिवार में उसके पिता, माँ, दो बड़े तथा चार छोटे बहन भाई हैं। प्रश्न यह है कि उसका अपस्ताल तथा आपरेशन का खर्चा कहाँ से दिया जाय? क्या उसको कृत्रिम हाथ लगवा दिया जाय? यदि लगवाया जाय तो वह कैसा हाथ हो, केवल प्रदर्शन के लिए कृत्रिम हाथ या कार्योपयोगी हुक टाइप का हाथ। फिर इस कृत्रिम हाथ का मूल्य कहाँ से

आयेगा ? क्या उसके प्रशिक्षण और पुनः प्रशिक्षण की अब कोई संभावना है ? क्या व्यावसायिक पुनर्वास-कार्यालय उसकी कुछ सहायता कर सकता है ?

हैरी ह्वाइट परिवार

श्री और श्रीमती ह्वाइट अब तक अपना जीवन-निर्वाह किसी प्रकार करते रहे हैं। तीन मास पूर्व क्षयरोग हो जाने से श्री हैरी ह्वाइट को काम करना बंन्द कर देना पड़ा। अब उनकी पत्नी, जिनकी अवस्था चौंतीस वर्ष की है, स्थानीय कल्याण-विभाग से सहायता माँगने के लिए आवेदन पत्र में हिचक रही हैं, क्योंकि अब तक उन्होंने हमेशा कमाकर ही खाया है। उनके पाँच और तेरह बरस के बीच के तीन बच्चे हैं। श्री ह्वाइट और उनकी पत्नी ने जितना रुपया बचाया था, अब वह सब समाप्त हो चला है। श्री ह्वाइट ने राजकीय आरोग्यशाला में भर्ती होने के लिए आवेदन पत्र दिया है और स्थान पाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जनपदीय कल्याण-परिषद् ने उनके बच्चों की सहायता के लिए अनुदान देना स्वीकृत कर लिया है। श्री ह्वाइट के आरोग्यशाला में चले जाने के बाद उक्त अनुदान कम कर दिया जायगा। श्रीमती ह्वाइट ने नौकरी करने का भी विचार किया, पर उन्हें पता चला कि नौकरी से जो आय होगी, वह उनके घर और बच्चों के खर्च के लिए पर्याप्त नहीं होगी।

श्री ह्वाइट आरोग्यशाला में एक वर्ष तक रहने के पश्चात् घर वापस आते हैं, पर नौकरी पर जाने के पूर्व उन्हें कई महीनों तक विश्राम करना होगा। पूरे परिवार के निर्वाह के लिए उनके पास पर्याप्त रुपया नहीं है, इसलिए स्कूल के अधिकारियों ने उनके बच्चों के लिए दोपहर का भोजन निःशुल्क देने के लिए टिकटों की व्यवस्था कर दी है। व्यावसायिक पुनर्वास-विभाग का एक प्रतिनिधि श्री ह्वाइट से उनके घर आकर मिल चुका है और उन्हें काम दिलाने के संबंध में उनसे परामर्श कर चुका है।

श्री ह्वाइट बीमारी प्रारम्भ होने के डेढ़ वर्ष बाद निरोग होकर पुनः काम करने लगे हैं। इस तरह अब वह बिना किसी बाहरी सहायता के अपने परिवार का भरण-पोषण कर रहे हैं।

सूज़न वाइल्ड

सूज़न की अवस्था पन्द्रह और सोलह वर्ष के बीच की है। उसे श्री और श्रीमती होम्स के पालन-गृह में रखा गया है। होम्स की अपनी छः और तीन वर्ष की दो लड़कियाँ भी उन्हीं के साथ रहती हैं। सूज़न की माँ का पता नहीं है। उसका पिता बहुत अधिक शराब पीता है और अपने परिवार के साथ बहुत कम संबंध रखता है। उसके परिवार में सूज़न के अलावा उसके छः और भाई और बहनें थीं। सूज़न के पालक माता-पिता

यह महसूस करते हैं कि सूज़न को विशेष नियंत्रण में रखना चाहिए और रात में उसको बाहर निकलने देना ठीक नहीं है। उन्हें भय है कि सूज़न भी कहीं अपनी दो बड़ी बहनों का ही अनुकरण न करे, जिन्हें अविवाहित अवस्था में ही बच्चे हो गये थे। सूज़न अपनी एक बड़ी बहन, केरेन का चित्र ताख पर रखने को इच्छुक रहती है। केरेन हाई स्कूल में पढ़ते समय पाठ्येतर कार्यक्रमों में बहुत भाग लेती थी। सूज़न की पालिका माँ उसकी इस व्यक्ति पूजा की प्रवृत्ति को समाप्त करना चाहती है। उनका कहना है कि सूज़न केरेन की बहुत-सी व्यवहार-विधियों और ढंगों का अनुकरण करती है। उन्हें सूज़न के स्कूल के मित्रों से और भी भय है, क्योंकि उन्हें पता है कि जब सूज़न अपने घर पर रहती थी तो अपनी माँ के काम पर चले जाने पर अपने घर में पुरुषों को बुलाया करती थी।

स्कूल के निर्देशक-अध्यापक के कथनानुसार सूज़न एक सामान्य कोटि वाली तृतीय श्रेणी की छात्रा है। फिर भी जैसा उसके अध्यापक बतलाते हैं, वह अपनी योग्यता के अनुसार परिश्रम से कार्य करती है। इस वर्ष उसके स्कूल के अधिकारियों को उसके व्यवहार के संबंध में कोई आशंका या चिन्ता नहीं है।

अब इस समय उसके पालक माता-पिता इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि वे सूज़न को अपने घर में अधिक नहीं रख सकते। कुछ दिनों पूर्व श्री होम्स एक मोटर दुर्घटना में घायल हो गये थे। इसके अतिरिक्त उनके घर के और भी खर्चे बढ़ गये हैं। साथ ही उन्हें अपने अन्य दो बच्चों की चिन्ता करनी है। एक बात और भी है कि जब कभी वे दोनों पति-पत्नी सूज़न के विषय में बात शुरू करते हैं तो अन्त में उनमें झगड़ा हो जाता है। अन्त में वे इस संबंध में सूज़न तथा अभिकरण के कार्यकर्ता से बातचीत करते हैं। जब श्री होम्स ने सूज़न से इस संबंध में पूछा तो उसने कहा कि उसे यहाँ बहुत अच्छा लगता है और वह यहीं रहना चाहती है। एक सप्ताह बाद श्री होम्स ने अभिकरण को टेलीफोन किया कि सूज़न को लेकर उनमें और उनकी पत्नी में भारी झगड़ा हो गया है और अन्त में उन दोनों ने निश्चय किया है कि अब सूज़न को अपने घर में हरगिज़ नहीं रहने देंगे।

सामूहिक कार्य-अभिकरणों के पास लायी गयी समस्याएँ

एक माँ समुदाय-गृह में यह शिकायत लेकर आती है कि उसका लड़का सड़क पर खेलने वाले बच्चों के झुण्ड के साथ आवारागर्दी करता है और उसे डर है कि उस पर कोई विपत्ति आ जायगी। क्या समुदाय-गृह उन बच्चों में कोई रचनात्मक कार्य करने की रुचि उत्पन्न कर सकता है और इस तरह उन्हें बेमतलब घूमने, लड़ने-झगड़ने और चोरी करने के कार्यों से विरत कर सकता है?

जन-कल्याण विभाग का एक कार्यकर्ता सामुदायिक केन्द्र में आता है और बतलाता है कि विभाग के आश्रित जो वृद्ध सज्जन उसके द्वारा निर्मित क्वार्टरों के कमरों में रहते हैं, वे वहाँ बहुत अकेलापन महसूस करते हैं। न तो उनके पास कोई काम होता है और न वे पास-पड़ोस में किसी को जानते ही हैं। उन्हें अन्य लोगों से मिलने तथा समान रुचि और आवश्यकता वाले व्यक्तियों से बातचीत करने का भी अवसर नहीं मिलता। क्या सामुदायिक केन्द्र उनके लिए कोई कार्यक्रम प्रारम्भ कर सकता है? क्या उन सज्जनों को कुछ ऐसे व्यक्ति मिल सकते हैं, जो उनके सामान्य सामाजिक जीवन को पुनः वापस ला सकें? क्या उन वृद्धों के लिए अलग से विशेष कार्यक्रम निर्धारित करना उचित होगा अथवा केन्द्र द्वारा चलाये जाने वाले नियमित कार्यक्रमों में ही भाग लेना उनके लिए अधिक अच्छा होगा?

\+ \+ \+

९ से ११ वर्ष तक उम्र की लड़कियों का एक दल इसाई युवती-संघ (वाई० डब्लू० सी० ए०) से यह माँग करती है कि उनके लिए एक क्लब स्थापित किया जाय। क्या उनके लिए एक नेता और एक कमरे की व्यवस्था की जा सकती है? उस उम्र की लड़कियों के लिए किस प्रकार के कार्य अधिक उपयुक्त होंगे? उनकी प्रमुख सामाजिक, भावात्मक और शैक्षणिक आवश्यकताएँ क्या हैं? क्या उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं और रुचियों के अनुरूप कार्यक्रम देने के लिए संघ के पास सामग्री और क्षमता है?

\+ \+ \+

एक नये और विकासमान उपनगर के व्यवसायियों का एक क्लब वे उस क्षेत्र में स्थापित एक ईसाई युवक-संघ (वाई० एम० सी० ए०) के यहाँ इसलिए पहुँचा कि उनके लिए अवकाश के समय में मनोरंजन के कार्यक्रमों तथा संगठनात्मक कार्यों की कोई सुविधा नहीं है, क्या संघ उनकी सहायता कर सकता है? क्या संघ उस समुदाय को, अपने कार्य स्वयं संचालित और संगठित करने में सहायता दे? क्या वह इस क्षेत्र में एक भवन प्राप्त करे? क्या वे लोग ऐसे विकेन्द्रित कार्यक्रम उपस्थित करें, जिनमें चर्च, स्कूल तथा परिवारों से भी सहायता ली गयी हो? उनमें सर्वोत्तम मार्ग क्या है और इस सम्बन्ध में निर्णय करने के लिए विचार-विमर्श करने वाले कौन लोग हों?

\+ \+ \+

एक बाल-न्यायालय को ऐसे बालकों की जानकारी है, जो ग्रीष्मावकाश शिविर के अनुभवों से लाभ उठा सकते हैं। क्या स्काउट शिविर उनके लिए कुछ ऐसी सुविधा और अवसर प्रदान कर सकता है? वे बालक कितने विकृत हैं? क्या वे शिविर के अन्य बालकों के साथ मिल-जुलकर रह सकेंगे? अथवा वे उनसे अपने को पृथक् ही रखेंगे?

शिविर के अन्य बालक इन बालकों को किस रूप में अपनायेंगे अथवा ये लोग उन बालकों को किस रूप में ग्रहण करेंगे ? क्या शिविर के प्रबन्धकों को भी यह बता दिया जाय कि ये लड़के बाल-न्यायालय की ओर से भेजे गये हैं अथवा यह बात केवल शिविर के निर्देशक को ही मालूम रहनी चाहिए ? इस प्रकार की स्थिति का क्या समाधान होना चाहिए ?

+ + +

एक बाल संस्था के सामने यह कठिनाई उपस्थित है कि उसमें रहने वाले बालकों के पास खाली समय के लिए कोई कार्यक्रम नहीं है और वे ऊबने का अनुभव करते हैं । उस संस्था में रहने वाले बालकों के सामने यह समस्या तो है, किन्तु साथ ही उनमें अनेक क्षमताएँ भी हैं, जैसी सभी संस्थाओं के बालकों में होती है । वह संस्था एक सामुदायिक समाज-सेवी को इस काम के लिए नियुक्त करती है कि वह अवकाश के समय में बालकों के लिए कार्यक्रम का संयोजन करे और उनके सामूहिक जीवन के सम्बन्धों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करे । इस प्रकार की स्थिति में किस प्रकार के कार्य सर्वाधिक उचित होंगे ? इस कार्यक्रम को चलाने में वहाँ रहनेवाले बालकों का क्या हाथ हो सकता है ? संस्था की समग्र सेवा की दृष्टि से उन बालकों के सामूहिक कार्य एवं मनोरंजन के कार्यक्रमों का क्या महत्त्व है ? उनकी सामूहिक जीवन-व्यवस्था कार्य के लिए दल विभाजन, शैक्षणिक दल-विभाजन तथा अन्य प्रकार औपचारिक और अनौपचारिक दल-संगठनों का सर्वाधिक रचनात्मक उपयोग किस रूप में हो सकता है ?

+ + +

एक समुदाय-गृह में रहने वाली माताओं का एक दल यह अनुभव करता है कि वहाँ चलने वाले कार्यक्रमों में सभी परिवारों के सामूहिक सहयोग के लिए अधिकाधिक अवसर मिलना चाहिए । समुदाय-गृह उनकी सहायता के लिए क्या कर सकता है ? कार्यक्रम किस प्रकार संयोजित हों ? उनका प्रारम्भ कौन करे ? इसके लिए किस प्रकार के कार्य सर्वाधिक उचित हैं ? उनमें किन्हें निमंत्रित करना चाहिए ? सभी परिवार उनमें किस प्रकार से रुचि ले सकते हैं ?

+ + +

सभी सामूहिक एवं मनोरंजन-सम्बन्धी कार्यक्रमों के लिए व्यावहारिक रूप से यह समस्या उत्पन्न होती है कि उनमें कौन-सा कार्य रखा जाय जो नवयुवकों को आकर्षित कर सके ? ऐसे समय में जब कि इस उम्र के लोग एक ओर तो बड़े लोगों के नियंत्रण से स्वतंत्र होकर उच्छृंखल होते जा रहे हैं और दूसरी ओर उन्हें बड़ों की सहायता की भी सबसे अधिक आवश्यकता है, उनके निजी उत्तरदायित्व तथा उन्हें दिये जाने वाले निर्देशन के बीच किस प्रकार संतुलन हो, जिनसे इन कार्यक्रमों में उनकी रुचि बनी रहे

और वे अपने वास्तविक उत्तरदायित्व को समझ सकें तथा अपने से बड़ों से पर्याप्त सहायता भी प्राप्त कर सकें ?

सामुदायिक संघटन-अभिकरणों के पास लायी गयी समस्याएँ

एक सुरक्षा-प्रायोजना के इर्द-गिर्द देश के विभिन्न भागों से आये हुए लोगों की एक नयी बस्ती बस गयी है। उनकी आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, जातीय और शैक्षणिक पृष्ठभूमियाँ परस्पर इतनी भिन्न हैं कि वे एक दूसरे के लिए अजनबी-सी हैं। वे अपने मूल समुदाय से कट गये हैं और इस नये समुदाय में उनकी जड़ें अभी गहरी नहीं जा सकी हैं। इन विभिन्न तत्त्वों को परस्पर मिलाकर एक नवीन समुदाय संघटित करने के लिए क्या किया जाय, जिससे वे अपने को उस समुदाय का अंग समझ सकें तथा उन्हें सामाजिक अनुशासन, नौकरी, मनोरंजन तथा धार्मिक क्रियाओं-सम्बन्धी सुविधाएँ प्राप्त करने का अवसर मिल सके।

\+ \+ \+

सामुदायिक दान-पेटी में पर्याप्त धन एकत्र हुआ है, किन्तु एकत्र धनराशि से अधिक सहायता प्राप्त करने के प्रार्थनापत्र आये हैं। दान की पेटी-प्रबन्ध करनेवाली समिति के सामने यह समस्या है कि वह किस सिद्धान्त के आधार पर अपनी विभिन्न उप-समितियों और कर्मचारियों के माध्यम से वैयक्तिक सेवा-कार्य, सामूहिक सेवा-कार्य, सामुदायिक संगठन और स्वास्थ्य तथा अन्य कल्याण-कार्यों से सम्बन्धित आवश्यकताओं की प्राथमिकता का निर्णय करे तथा किसी विशेष वैयक्तिक सेवा-कार्य और स्वास्थ्य-सम्बन्धी कार्यक्रम को इसी प्रकार के अन्य कार्यों की तुलना में किस आधार पर प्राथमिकता दे। समुदाय को यह कैसे ज्ञात होगा कि कौन-सा अभिकरण गुण और मात्रा दोनों ही दृष्टियों से उन आवश्यकताओं की पूर्ति सबसे अधिक सफलतापूर्वक कर रहा है, जिनके लिए उसकी स्थापना हुई है ? किन आवश्यकताओं की पूर्ति वैयक्तिक सहायता-कोश से हो और किन की राजकीय कर की सहायता से हो ?

\+ \+ \+

स्वास्थ्य और कल्याण-संघ से यह कहा गया है कि वह एक स्वयंसेवक-समिति संघटित करे, जिसका काम स्वयंसेवक बनाना, उन्हें प्रशिक्षित करना तथा अस्पतालों, मनोरंजन अभिकरणों वैयक्तिक सेवा-कार्यक्रमों अथवा अन्य स्वास्थ्य तथा कल्याण-कार्यों में उन स्वयंसेवकों को लगाना होगा। इन कार्यों में स्वयंसेवकों की आवश्यकता तो होती ही है स्वयंसेवकों को भी ऐसे कार्यों के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित करने का अवसर मिलता है। स्वयंसेवकों के लिए कम से कम कितने प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है ताकि वे यथोचित

सेवा-कार्य कर सकें ? उनकी भर्ती के समय अयोग्य व्यक्तियों की पहचान कैसे हो तथा सक्षम स्वयंसेवकों को कैसे प्रोत्साहित किया जाय ?

+ + +

एक व्यापक समाज-सेवा-संघ के अंग के रूप में काम करने वाली सामुदायिक समिति-केन्द्र से दो भिन्न समुदायों ने उनके कार्यकर्ताओं की सेवा की माँग की है। एक समुदाय के सामने बढ़ते हुए बाल-अपराधों की समस्या है और वह अपने प्रयत्नों एवं रुचि के समुचित नियोजन में सामुदायिक समिति की सहायता चाहता है। दूसरे समुदाय के सामने विभिन्न जातीय समूहों के बीच बढ़ते हुए तनाव की समस्या है। केन्द्र किस आधार पर यह निश्चय करे कि किस समुदाय की आवश्यकता अधिक तात्कालिक है ? किसे प्राथमिकता दी जाय ?

+ + +

एक समुदाय मानसिक स्वास्थ्य-सम्बन्धी सुविधा और सेवा प्राप्त करने के लिए चिन्तित है। राज्य के मानसिक स्वास्थ्य-विभाग अथवा किसी गैर-सरकारी अभिकरण का प्रतिनिधि भेजा जा सकता है,जो यह निश्चित करने में समुदाय के लोगों की सहायता करे कि उसे किन सुविधाओं या सेवाओं की आवश्यकता है ? वे सुविधाएँ और सेवाएँ कौन दे ? उनके लिए व्यय की क्या व्यवस्था हो ? और उसमें काम करने वालों का चुनाव कौन करे ? किस तरह ऐसे निर्णय किये जायँ जो सबके लिए लाभदायक हों ?

+ + +

एक परिवार और बाल-सेवा-अभिकरण ने जिसके कार्यक्रम सुनिश्चित रूप से चलते हैं, सामुदायिक दान-पेटी से आर्थिक सहायता की माँग की है, ताकि वह एक पड़ोस के ऐसे मुहल्ले में, जहाँ अब तक कोई सेवा-कार्य नहीं होता, अपना एक शाखा-कार्यालय खोल सके। पेटिका के प्रबन्धक यह निर्णय किस प्रकार करें कि उक्त समुदाय को सेवा की आवश्यकता है ? क्या इस समय इस सेवा-कार्य का ही अन्य कार्यों की अपेक्षा अधिक महत्त्व है ? क्या इस आवश्यकता की पूर्ति सबसे अधिक इसी अभिकरण से हो सकती है ? इन सब बातों का निर्णय कैसे हो ?

+ + +

एक समुदाय इस बात के लिए कुख्यात है कि वह असंगठित है, उसमें नागरिक अभिमान नहीं है। स्वास्थ्य और जन-कल्याण के कार्य उसमें बहुत कम होते हैं तथा उसमें बीमारियों, बाल-अपराधों एवं सामान्य अपराधों की अधिकता है। इस समुदाय की सहायता कैसे की जाय ताकि वह अपनी सहायता स्वयं कर सके ?

+ + +

एक समुदाय में कई वर्षों से एक सामुदायिक दान-पेटिका की व्यवस्था है, जिसमें एकत्र धन से प्रतिवर्ष सम्बन्धित सेवा-अभिकरणों की सहायता की जाती है। ऐसे अभिकरणों में से सभी तो नहीं, पर उस समुदाय में अधिकांश स्वास्थ्य और समाज-सेवा का कार्य करनेवाले अभिकरण सम्मिलित है। इस वर्ष समुदाय के प्रतिनिधियों ने एक ऐसी पद्धति से एक निर्णय किया है, जिससे समुदाय के बहुमत की इच्छा की अभिव्यक्ति हो जाती है। वह निर्णय यह है कि एक संयुक्त कोष स्थापित करने के लिए प्रयत्न किया जाय। मान लीजिए कि कुछ अभिकरण इस प्रयत्न में सम्मिलित होना अस्वीकार करते है और बाद में अपने कोश के लिए अलग धन एकत्र करने का प्रयत्न करते हैं तो क्या होगा ? संयुक्त कोश की ओर से एक लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। मान लीजिए जितना धन एकत्र होता है, उसमें से विभिन्न अभिकरणों के हिस्से का निश्चित धन संयुक्त कोश द्वारा देने का निर्णय किया जाता है, किन्तु उपर्युक्त असहयोग करने वाले अभिकरण अपने हिस्से के धन को लेना अस्वीकार करते हैं तो ऐसी स्थिति में यह जानने का क्या उपाय है कि समुदाय के हित की दृष्टि से कौन-सा रास्ता अपनाया जाय ?

अध्याय २

यूरोपीय पृष्ठभूमि में सामाजिक सेवाओं का विकास

आधुनिक समाज में सामाजिक सेवा

हमरा देश इस प्रकार के कार्यों को, जिन्हें सामान्यत: समाज कल्याण-कार्य कहा जाता है, निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण समझता है, क्योंकि वह उनके लिए प्रतिवर्ष अरबों डालर खर्च करता है और उन कार्यों से लाखों मनुष्यों का जीवन प्रभावित होता है। जान जे कार्सन ने अपने द्वारा उठाये गये प्रश्न कि 'क्या हम समाज-कल्याण के व्यय को वहन कर सकते हैं?' का स्वयं उत्तर दिया है। वह अनुमान लगाते हुए कहते हैं कि १९५४ में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सामाजिक कल्याण पर लगभग ११ अरब डालर खर्च किया गया और १९६० तक यह धनराशि २० अरब डालर तक पहुँच जायगी। इस सम्बन्ध में काफी मतभेद होने पर भी कि यह धन किस प्रकार खर्च किया जाय, किसके द्वारा और कौन-सी सेवाएँ प्रदान की जायँ, उन कार्यकर्ताओं की योग्यताएँ क्या हों, जिनके द्वारा इस प्रकार की सेवाएँ दी जाती हैं और सेवा प्राप्त करने वालों पर किस सीमा तक नियंत्रण रखा जाय? इस विषय में पर्याप्त मतैक्य है कि अमेरिका-जैसे प्रजातांत्रिक देश में सामाजिक कार्य आवश्यक है।[१]

हमारे कार्यों और रुचि पर एक दृष्टि डालने से इस कथन की पुष्टि हो जायगी। हमारी अर्थ-व्यवस्था मुख्यत: औद्योगिक और व्यापारिक है, इसमें कृषि का स्थान गौण

१. कार्सन, जान जे०—"कैन वी एफोर्ड वेलफेयर ?" कम्युनिटी खण्ड २९; मार्च १९५४; पृष्ठ १३१, १३२, १४० गम्भीर और वास्तविक पूर्ण ज्ञान के लिए पढ़िए—इवलाइन एम० बर्न्स—"दी रोल आफ गवर्नमेण्ट इन सोशल वेलफेयर"—सोशल वर्क जर्नल, खण्ड ३५, जुलाई १९५४, पृष्ठ ९५–१०२, १२०–१२५ तथा राष्ट्रीय समाज-कल्याण-सम्मेलन का कार्य-विवरण, १९५४, पृष्ठ ६५–८४।

है। इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था के क्षेत्र में सर्वत्र अपूर्णताएँ होती हैं। घाटेवाली (डिफिसिट) अर्थ-व्यवस्था में ये अपूर्णताएँ चिन्ता का विषय नहीं होतीं, अधिक से अधिक इसके परिणामस्वरूप और अधिक उपयुक्त उत्पादन-पद्धति की आवश्यकता की ओर लोगों को ध्यान देना पड़ेगा। किन्तु आधिक्य की अर्थ-व्यवस्था में यही अपूर्णताएँ इस पद्धति की कार्य-विधि के दोषों की ओर संकेत करती हैं। जब औद्योगिक और व्यापारिक व्यवस्था के यंत्र की गति मंद हो जाती है अथवा टूट जाती है तो उस समय भी मानव-आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था तो होनी ही चाहिए। उद्योग तथा वाणिज्य एक या डेढ़ करोड़ कर्मचारियों तथा उनके आश्रितों के भाग्य या अपर्याप्त पारिश्रमिक का लोगों पर पड़नेवाले प्रभाव की परवाह नहीं करते, न तो वे मानव-मूल्यों की रक्षा के लिए धन व्यय करने की ही चिन्ता करते हैं। जहाँ तक शारीरिक दृष्टि से अक्षम और वृद्ध व्यक्तियों का प्रश्न है, ऐसा अनुभव होता है कि इनकी विपत्ति में सहारा देने का अभी हाल तक बहुत कम प्रयत्न किया गया है।

दयनीय आवास-व्यवस्था, चिन्त्य स्वास्थ्य, मनोरंजन की सुविधाओं की कमी और सामुदायिक चेतना का निम्न स्तर, इन सब की प्रतिच्छाया समुदाय में स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। समुदाय में बच्चे स्कूलों से इसलिए भाग जाते हैं कि भीड़ की व्यवस्था के अन्तर्गत बच्चों के वैयक्तिकीकरण की आवश्यकता की ओर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया है। आचरण-विधि और दृष्टिकोण के निर्माण की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्था परिवार है, पर उसमें भी हमें कलह, असंगति, कुंठा तथा निराशा ही दिखलाई पड़ती है। अस्पतालों में असंतुलित और विकृत मस्तिष्क वाले, संस्थाओं में दुर्बल मस्तिष्क वाले और जेलों में निराश और दुर्भाग्यग्रस्त लोग भरे हुए हैं। वृद्धों, आश्रित बच्चों, अंधों और पंगुओं को कौन पूछता है?

इन कमियों और विकृतियों का कोई पूर्ववर्ती कारण न हो ऐसी बात नहीं, साथ ही ये गत तीन सौ वर्षों के हमारे औद्योगिक और व्यापारिक विकास से भी असम्बद्ध नहीं हैं। ये उस अत्यधिक प्रतियोगितापूर्ण पद्धति के अविच्छिन्न अंग प्रतीत होते हैं जिसमें सफलता को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है और जिसका विकास "मुक्त व्यापार" के आर्थिक और सामाजिक दर्शन के आधार पर हुआ है। जो भी हो, इस व्यवस्था के अन्तर्गत संभवतः अपरिहार्य रूप से एक ऐसी वृत्ति का विकास हुआ, जिसने सेवाओं के रूप में ऐसा "सम्बन्ध-सूत्र" प्रस्तुत किया, जिसने मानवीय क्षमताओं के पूर्ण उपयोग की सम्भावनाओं को जन्म दिया। वस्तुतः सामाजिक कार्य की इस विकासशील वृत्ति का लक्ष्य समुदाय और व्यक्ति के बीच क्षमताओं के एक ऐसे संघटन को जन्म देना था, जिससे ऐसे व्यक्तियों को अच्छे ढंग से जीवन व्यतीत करने में सहायता

पहुँचायी जा सके जो साधनविहीन या अल्प साधन वाले हैं अथवा जो उपलब्ध साधनों का ठीक उपयोग नहीं कर पाते ।

वर्तमान समाज में इस वृत्ति की कार्य-भूमिका के सम्बन्ध में यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि इसका कार्य किसी व्यक्ति या समुदाय को सुखी बनाने की जिम्मेदारी लेना नहीं है, अपितु इसके दो उद्देश्य हैं, पहला ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करना, जिनके परिणाम स्वरूप अधिक संतोषजनक जीवन-यापन संभव हो सके; दूसरा, व्यक्ति में (और समुदाय में भी) वे क्षमताएँ उत्पन्न करना, जिनसे वह उस जीवन को अच्छी तरह ही नहीं, बल्कि रचनात्मक ढंग से भी बिता सकें । किन्तु इसके लिए किसी व्यक्ति या समुदाय से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह अपनी वर्तमान जीवन-विधि या स्वतंत्रता का त्याग कर दे और न तो यही आवश्यक है कि वह अपनी वर्तमान आस्थाओं और विश्वासों से बिलकुल भिन्न और विपरीत जीवन-दर्शन को अपना ले । वृत्ति के रूप में समाज सेवा-कार्य व्यक्ति और समुदाय को जो सेवाएँ प्रदान करना चाहता है, उनसे यदि आवश्यकताओं की पूर्ति संभव हो तो उन्हें स्वीकार किया जा सकता है, अन्यथा उन्हें अस्वीकार भी किया जा सकता है ।

उद्भव और विकास

मनुष्य के आचार और दृष्टिकोण का विश्लेषण करने पर इस धारणा को बल मिलता है कि मनुष्य का सामूहिक जीवन एक दूसरे को सहायता प्रदान करने की भावना के साथ-साथ आक्रमण और स्वाधिकार की प्रवृत्ति से परिचालित है । अगर ऐसी बात न होती तो मानव-समाज का अपने वर्तमान रूप तक पहुँचना संदिग्ध ही था । केवल मानव-जीवन के स्वाधिकार और प्रतियोगिता वाले पहलू की ओर ही ध्यान आकृष्ट करना पर्याप्त नहीं है, बल्कि इसे संतुलित रखनेवाले सहायता और सहयोग के पहलू को भी हमें ध्यान में रखना होगा । बहुत पहले रूसी विचारक क्रोपोत्किन ने परस्पर सहायता के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए कहा था कि इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि मनुष्य डारविन के योग्यतम मनुष्य के जीवित रहने के सिद्धान्त से भिन्न सिद्धान्तों द्वारा अब तक प्रगति और विकास के इस सोपान तक पहुँचा है । पारस्परिक सहायता के आधार पर परिवार, कुल, राज्य या आधुनिक समाज का निर्माण हुआ है । इसके अतिरिक्त मनुष्यों के किसी समूह को कभी एक साथ रहने के लिए वाध्य करने वाला और कोई उपाय नहीं ।

यहूदी और ईसाई धर्म के बहुत पूर्व परोपकार और परहित की भावना को प्राचीन-काल के मनुष्यों के साहित्य और जीवन में अभव्यक्ति मिली थी । यहूदी और उत्तरवर्ती

इसाई धर्म ने परस्पर सहायता को धर्म का अंग मान लिया। लगभग बीस शताब्दियों तक हमारी भाई-चारे की भावना ईसाई धर्म की शिक्षाओं और उपदेशों की सीमा में ही अभिव्यक्ति पाती रहीं। मठों की ओर से गरीबों को भोजन, वस्त्र, आवास और आश्रय दिया जाता था। यद्यपि सामन्ती समाज बहुत पहले से ही परस्पर निर्भरता के आधार पर ही निर्मित हुआ था, किन्तु किसी राज्य ने इन सम्बन्धों को स्पष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया। गतिहीन संसार में, ऐसे संसार में जहाँ सान्त्वना और सुख के लिए इहलोक की ओर न देखकर परलोक की ओर देखा जाता था, ये सम्बन्ध स्थिर बने रहे।

वैज्ञानिक क्रान्ति के रूप में एक बार जब विचारोद्वेलन और पुनर्जागरण प्रारम्भ हो गया, जिसके परिणाम-स्वरूप मनुष्य के मानस-क्षितिज और भौतिक जगत् की सीमा विस्तृत हो गयी, तब मनुष्य और चर्च के तथा स्वामी और दास के ये सम्बन्ध नहीं रह गये। यथास्थिति की अवस्था बदल गयी और उसी से नवीन ढंग के राज्य का उदय हुआ। इंग्लैंड ऐसा ही राज्य है। अमेरिका में और आजकल अन्य देशों में होने वाले सामाजिक कार्यों की पृष्ठभूमि के रूप में इंग्लैंड में किये गये राजकीय सहायता-कार्यों के इतिहास का यहाँ संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

असुखकर स्थितियों के सम्बन्ध में विचार करते समय, जैसा स्वाभाविक है, सामाजिक दु:ख की बढ़ती हुई समस्याओं का कारण दमन और अधिकाधिक दमन को माना जाता था। सामन्तवाद के टूटने के उपरान्त हजारों, लाखों मजदूर निराश्रित हो गये और नौकरी तथा स्थायित्व हेतु हताश होकर इधर-उधर निरुद्देश्य घूमते रहे। धार्मिक मठों की समाप्ति के बाद समाज में बढ़ती हुई गरीबी और भी स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगी और ऐसे व्यक्तियों के झुंड के झुंड जो सामान्य रूप से पहले चर्चों में शरण और आश्रय पाते थे, सड़कों के किनारे दिखलाई पड़ने लगे।

इस व्यापक विपत्ति को रोकने के लिए इग्लैंड में भिक्षावृत्ति को बन्द करने वाले कानून बनाये गये। सन् १५३६ ई० में संसद ने एक कानून बनाया, जिसके अनुसार प्रत्येक रविवार को दान-संग्रह कर सकते थे, उसमें स्थानीय अधिकारियों को बीमार तथा अक्षम गरीबों की सहायता करने का अधिकार दिया गया था। भिक्षावृत्ति और भिक्षुओं को हतोत्साहित करने एवं सबल और निरोग भिक्षुओं को उनके स्थान पर शीघ्र लौटाने और यदि इस मार्ग के लिए आवश्यक हो तो उन्हें बेंत मारने तथा अंग-भंग करने की भी व्यवस्था की गयी थी। उस कानून के अनुसार व्यक्तिगत रूप से किसी को भिक्षा देने से रोक लगा दी गयी थी और उस प्रतिबन्ध का उल्लंघन करने वालों पर दिये गये धन का दस गुना जुर्माना करने की व्यवस्था की गयी थी। यह व्यवस्था चाहे कितनी भी कठोर क्यों न रही हो, पर उसका महत्त्व इस बात में है कि जहाँ तब तक चर्चों द्वारा गरीबों

को अनियमित रूप में सहायता दी जाती थी, वहीं अब राज्य द्वारा तत्सम्बन्धी नियमों की व्यवस्था कर दी गयी।

पर बहुत जल्द ही यह महसूस किया जाने लगा कि स्वेच्छापूर्वक संस्थाओं को दान दिये जाने के परिणाम-स्वरूप पर्याप्त धन नहीं इकट्ठा हो पाता था और न तो उससे ऐसे स्थायी कर्मचारी ही रखे जा सकते थे जो थोड़ी बहुत भी सहायता का कार्य करते। सन् १५७२ में गरीबों की जाँच-पड़ताल करने वाले ओवरसियरों को नागरिक अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया जिनका काम स्थानीय लोगों से कर के रूप में एकत्र धन को गरीबों की सहायता के रूप में वितरित करवाना था। इसके चार वर्ष के भीतर ही प्रत्येक जनपद के न्यायाधीशों को यह अधिकार दे दिया गया कि वे खरीदकर अथवा किराये पर मकान लेकर सुधार-गृहों की व्यवस्था करें। इन सुधार-गृहों में काम करने के लिए सामग्री और सुविधा दी जाती थी ताकि वहाँ रहने वाले बेकार गरीबों को काम करने की आदत पड़े और साथ ही उनके परिश्रम के अनुसार उनको सहायता भी मिलती रहे।

प्रारम्भ के इन वर्षों की स्थिति के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए डि कॉर्ल जेवनिस ने सन् १९४३ में अपने ग्रन्थ "इग्लैंड्स रोड टू सोशल सिक्योरिटी" में लिखा था —

"आठवें हेनरी से लेकर एलिजाबेथ के समय तक जो अधिनियम बनाये गये, उनमें इस सिद्धान्त और परम्परा की स्थापना हुई कि स्थानीय नागरिकों की मदद वहीं से धन एकत्र करके स्थानीय लोगों के ही प्रबन्धकत्व में गरीबों की जाँच-पड़ताल करनेवाले जिम्मेदार अफसरों की सहायता से की जाय। इस तरह एक ऐसी पद्धति का विकास हुआ जिसके द्वारा काम करने में अक्षम व्यक्तियों की आर्थिक सहायता तथा शारीरिक दृष्टि से योग्य व्यक्तियों को काम दिलाने का प्रबन्ध जन-सहयोग द्वारा किया जाने लगा जिसमें सरकार भी अनुदान देती थी।

दो शताब्दियों तक गरीबी को नियन्त्रित करने के लिए दमन के तरीकों का सहारा लेने के बाद सरकार ने धीरे-धीरे और हताश होकर अन्त में यह बात स्वीकार की कि जो नागरिक अपना जीवन-यापन करने में असमर्थ हैं, उनकी सहायता करना उसका आवश्यक कर्त्तव्य है। सन् १३४९ से लेकर सन् १६०१ तक इंग्लैंड के शासकों ने जो अनुभव प्राप्त किये, उनके आधार पर यह विश्वास पक्का हो गया कि इंग्लैंड में गरीबों की दुर्दशा का उन्मूलन दण्ड द्वारा नहीं हो सकता, बल्कि उनकी वैयक्तिक आवश्यकताओं को समझ-कर सामाजिक साधनों और सहयोग की सहायता से ही उसे पूरा किया जा सकता है।[२]

२. De Schweinitz, Karl, England's Road to Social Security. **फिलेडेल्फिया, यूनिवर्सिटी आफ पेन्सिलवेनिया प्रेस, १९४३, पृष्ठ—२९. यह**

एलिजाबेथ कालीन निर्धनता-कानून

एलिजाबेथ के शासन के अन्तिम दिनों में उस समय तक प्रचलित गरीबी और भिक्षा-वृत्ति-सम्बन्धी बेढंगे और अस्पष्ट कानूनों को एक ऐसा सुलझा हुआ समन्वित रूप प्रदान किया गया, जिसे एलिजाबेथ कालीन निर्धनता-कानून कहा जाता है। यह कानून १५९८ ई० में स्वीकार किया गया था और १६०१ ई० में उसका संशोधन हुआ था। इस कानून द्वारा इंग्लैंड तथा अमेरिका में तीन सौ वर्षों से अधिक काल तक प्रचलित गरीबों के सहायता-सम्बन्धी नियमों के अव्यवस्था-आधार में नियमितता लायी गयी और उसे एक सुनिश्चित आधार प्रदान किया गया। १६०१ ई० के कानून में, जिसे अधिनियम ४३ एलिजाबेथ कहा जाता है; सहायता प्राप्त करनेवालों की तीन कोटियाँ निर्धारित की गयी थीं; शारीरिक दृष्टि से सक्षम निर्धन व्यक्ति, काम करने में अक्षम (अकारगर) निर्धन व्यक्ति और आश्रित बालक। सक्षम निर्धन व्यक्तियों के लिए काम करने से इनकार करने पर एक निश्चित काल तक जेल की सजा की व्यवस्था की गयी थी। दूसरी कोटि अकारगर व्यक्तियों के लिए भिक्षुक-गृह में शरण देने की व्यवस्था की गयी थी। ऐसे बच्चों के लिए जिनका भरण-पोषण उनके माता-पिता या दादा-दादी नहीं कर सकते थे, उनमें बालकों को २४ वर्ष की उम्र तक तथा बालिकाओं को २१ वर्ष की उम्र तक या विवाहित होने तक काम सिखाने की व्यवस्था की गयी थी। इस कानूनी व्यवस्था को कार्यरूप में परिणत करने के लिए प्रत्येक तहसील में जमीन, मकानों और चर्चों की आर्थिक आय पर कर लगाया गया तथा पूरक रूप में व्यक्तिगत अर्थ और भूमि के दान तथा कुछ कानूनों के उल्लंघन करने पर लगाये गये जुर्माने का धन था।

यद्यपि कुछ लोग इस कानून को प्रत्येक युग के लिए आदर्श समझते थे, किन्तु शीघ्र ही इसमें कुछ बढ़ाने, कुछ काट-छाँट करने और कहीं-कहीं उसे परिवर्तित करने की आवश्यकता हुई। परिणामस्वरूप निर्धन लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते थे, वे ऐसी तहसीलों से, जहाँ सहायता की व्यवस्था ठीक नहीं थी, उन तहसीलों में जाते थे, जहाँ सहायता की समुचित व्यवस्था न होने पर भी कम-से-कम वे आराम से रह सकते थे। कई शताब्दियों पूर्व १३४९ ई० के मजदूर-अधिनियम द्वारा संसद ने मजदूरों पर अपनी तहसील छोड़कर कहीं अन्यत्र जाने पर रोक लगा दी थी, किन्तु मजदूरों की आर्थिक

समस्या इतनी कठिन हो गयी थी कि कोई भी व्यक्ति एक ही स्थान पर बँधा रहकर भूखों मरने के लिए तैयार नहीं था। सन् १६६२ के बन्दोबस्ती कानून द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि प्रत्येक तहसील उन्हीं व्यक्तियों की जिम्मेदारी लेगी, जो उसकी सीमा में वैध रूप से निवास करते हैं। इस वैधता का तात्पर्य प्रायः उस स्थान पर जन्म से रहना था। जो लोग किसी तहसील में अवैध रूप से निवास करते थे, उन्हें अपनी खास तहसील में लौटा दिया जा सकता था। जबकि नवागंतुक किसी को तहसील में इस बात का विश्वास दिलाने पर ही कि वे जनता पर भारस्वरूप नहीं होंगे, स्वीकार किया जा सकता था।

निर्धनता-कानून के प्रसार-स्वरूप श्रम-गृह-परीक्षण का विकास हुआ। तहसीलों में सहायता पाने वालों के नामों और धनराशि की जो सूची रखी जाती थी यद्यपि उसे अपरिवर्तनीय माना जाता था, फिर भी वह निरन्तर बढ़ती ही जाती थी। सूचियों के बढ़ते हुए इस रूप को देखकर सम्भवतः विवश होकर श्रम-गृहों में काम कराने की व्यवस्था करनी पड़ी। सन् १६९७ का कानून बनने के बाद ब्रिस्टल में कुछ ऐसा प्रयोग किया गया, जिससे व्यय में कुछ कमी दिखाई पड़ी, जिससे श्रम-सम्बन्धी सहायता-कार्य के प्रसार के लिए प्रेरणा मिली। तहसीलों को यह अनुमति दे दी गयी कि वे औरों के सहयोग से श्रम-गृहों की स्थापना करायें, जिनमें निर्धनों को रखा और उनसे काम कराया जा सके। जो लोग काम करने से इनकार करते थे, उनका नाम सूची से काट दिया जाता था और सहायता बन्द कर दी जाती थी। परिस्थिति उस समय और बिगड़ गयी जब तहसीलों को यह अधिकार दे दिया गया कि वे स्वस्थ शरीर वाले निर्धनों को ठीके पर दूसरे स्थानों पर काम करने के लिए भेज सकती हैं। वस्तुतः यह एक प्रकार से शोषकों को निमन्त्रित करना था, जो मानबीय श्रम की कम से कम कीमत लगाकर उसे नीलाम पर खरीद सकते थे। यह प्रथा उन कुछ वर्षों में इतने अधिक अन्यायपूर्ण और अपमानजनक रूप में प्रचलित थी कि अन्त में १७८२ में बाध्य होकर संसद को उस पर रोक लगा देनी पड़ी।

बाद में भत्ता देने की पद्धति अपनायी गयी, जिससे बेकारों और किसी प्रकार ऊपरी रोजी कमाने वाले निर्धन व्यक्तियों की तकलीफें और बढ़ गयीं। इससे हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि किसी विशेष व्यक्ति ने जान-बूझकर इंग्लैंड के मजदूरों की स्थिति दयनीय बनाने के लिए इस तरह के प्रयत्न किये, जबकि इसके विपरीत सच बात यह है कि वहाँ मजदूरों की स्थिति सुधारने के लिए जो कानून बनाये गये, उनका उल्टा ही परिणाम हुआ। शरीर से सक्षम निर्धनों को गरीबों की जाँच पड़ताल करने वाले ओवरसियरों द्वारा काम दिलाने तथा उन्हें अपने जन्म स्थान में ही रोक रखने की व्यवस्था की गयी थी। किन्तु ओवरसियर मजदूरों को मजदूरी देने के लिए जो धन पाते थे, जब वह मजदूरों और उनके परिवार के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त नहीं मालूम पड़ा तो सहायता-कोशों से पूरक अनु-

दान देने की भी व्यवस्था की गयी । मजदूरी-सम्बन्धी सहायता की इस व्यवस्था का विपरीत परिणाम यह हुआ कि समूचे देश में मजदूरी की दर बहुत गिर गयी और मजदूरी करने वाली समस्त जनता अधिकाधिक निर्धन होती गयी । कौन मालिक मजदूरों को अधिक मजदूरी देना पसन्द करता, जबकि वह जानता था कि सरकार तो उनकी सहायता के लिए अनुदान देगी ही ? जीवन-यापन करने योग्य मजदूरी देने के लिए क्या आवश्यकता रह गयी जबकि यह निश्चित था कि अपर्याप्त मजदूरी देने पर सरकारी सहायता अवश्य मिलेगी। अत: जिस पार्लियामेण्ट ने भत्ता देने का कानून बनाया था उसी ने यदि श्रम-गृह-सम्बन्धी कानून को रद्द कर दिया तो इससे मजदूरों को कोई विशेष सन्तोष नहीं हुआ । इन्हीं सब प्रत्यक्ष बातों के आधार पर अंग्रेज पादरी टॉमस माल्थस ने अपने प्रसिद्ध आबादी के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और यह भविष्यवाणी की कि इंग्लैंड में खाद्य-सामग्री के उत्पादन के अनुपात में जनसंख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी ।

सन् १८३४ का परिवर्धित निर्धनता-कानून

दो शताब्दियों तक इंग्लैंड परिवर्तनशील सामाजिक व्यवस्था के संघर्ष में लगा रहा । सामन्ती व्यवस्था विघटित हो गयी थी, समाज पर चर्च का नियन्त्रण बहुत शिथिल हो गया था, और देश में एक व्यापारिक और औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था की जड़ मजबूत हो गयी थी । किन्तु इस बीच मजदूरों और उनके आश्रितों की आर्थिक स्थिति उत्तरोत्तर गिरती गयी थी । सन् १८३४ ई० में संसदीय आयोग ने एक प्रतिवेदन उपस्थित किया, जिसका लक्ष्य एलिजाबेथ कालीन तथा परवर्ती निर्धनता-क़ानूनों का परिवर्धन करना था । उस प्रतिवेदन के आधार पर एक नया कानून बनाया गया, जिसमें इन सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया था—"चुनाव के लिए न्यूनतम योग्यता का सिद्धान्त, श्रम-गृहों की पुन:स्थापना और नियन्त्रण का केन्द्रीयकरण ।"

इन सिद्धान्तों का विश्लेषणपूर्ण वर्णन करते हुए वेब्स दम्पति ने उन्हें "दमन चक्र का ढाँचा" कहा है। चुनावार्थ न्यूनतम योग्यता के सिद्धान्त का यह अर्थ था कि "सर्वाधिक गरीब व्यक्तियों की स्थिति निम्नतम श्रेणी के उन व्यक्तियों के—जो कि अपने उद्यम पर निर्वाह करते हैं—समान नहीं होती।" यह माना गया कि सहायता प्राप्त करने वाले साधनहीन व्यक्ति की दशा किसी भी हालत में उन मजदूरों के समान स्तर की नहीं होनी चाहिए जो अपनी रोजी खुद कमाते हैं, भले ही उनकी मज़दूरी चाहे जितनी भी कम क्यों न हो । इसके बाद, मानो इतना ही पर्याप्त नहीं था, अधिकारियों के हाथ में श्रम-गृहों में भेज देने की धमकी का अस्त्र भी दे दिया गया । शारीरिक दृष्टि से सक्षम निर्धन लोग श्रम-गृहों में सहायता के लिए आवेदन-पत्र दे सकते थे, किन्तु श्रम-गृह में रहने और उसका

किराया देने से इन्कार करने पर उन्हें किसी भी प्रकार की सहायता से वंचित किया जा सकता था। श्रम-गृहों के बाहर सहायता-कार्य बहुत कम कर दिये गये थे। केवल नियन्त्रण के केन्द्रीयकरण का तीसरा सिद्धान्त ही ऐसा था, जो अतीतोन्मुखी न होकर भविष्योन्मुखी था। उस के अनुसार तीन निर्धनता-सम्बन्धी आयुक्तों की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी थी, जिनका काम देश भर में निर्धनता-कानून-सम्बन्धी कार्यों और सेवाओं को संघटित और परस्पर संयोजित करना था। अब सहायता-सम्बन्धी कार्यों के प्रबन्ध का केन्द्र तहसीलें नहीं रह गयीं, उनकी जगह पर निर्धनता-कानून जिलों अथवा संघों का संगठन करने की व्यवस्था की गयी, जिनका प्रबन्ध एक अवैतनिक-अभिभावक-परिषद् के हाथ में दिया गया। इस तरह सहायता की समस्या किसी स्थानीय इकाई की समस्या से अधिक महत्त्वपूर्ण है, इस बात को स्वीकार करने की दिशा में यह पहला कदम था।

१८३४ और १९०९ ई० के बीच निर्धनता-सम्बन्धी कानूनों में अनेक परिवर्तन किये गये, जिनका समग्र प्रभाव यह हुआ कि १८३४ के कानून के सिद्धान्तों से उनकी पद्धति बिलकुल भिन्न हो गयी। सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन ये थे, जिनके अनुसार कुछ असुविधा-ग्रस्त वर्गों के लिए विशेष सुरक्षा की व्यवस्था की पद्धति का विकास हुआ। पराश्रित बच्चों के लिए जनपदीय स्कूलों और पालन-गृहों की व्यवस्था की गयी, उसी तरह बीमारों के लिए अस्पतालों, दवाखानों और रोगी-गृहों, पागलों और दुर्बल मस्तिष्क वालों के लिए विशेष संस्थाओं, और अंधों तथा बहरों के लिए विशेष स्कूलों की व्यवस्था की गयी।

किन्तु उस शताब्दी के उन ७५ वर्षों में समाज में जो मौलिक परिवर्तन हुए उनकी गति मोड़ने में ये नयी व्यवस्थाएँ भी निरर्थक सिद्ध हुईं। औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव ब्रिटिश जनता की जड़ों तक पहुँच गया था। जिस तरह एक बर्फ का गोला बर्फीली चोटी से नीचे लुढ़कते समय लगातार बड़ा होता जाता है, उसी तरह औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप निम्नवर्ग की निर्धनता आवास की दुर्व्यवस्था, चिन्त्य स्वास्थ्य तथा स्वच्छता की दुर्व्यवस्था तथा अन्य अनेक कुप्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ते रहे। १९०९ ई० तक इंग्लैंड में निर्धनता-कानून में १८३४ ई० के सुधार से भी अधिक मौलिक सुधारों की आवश्यकता महसूस की जाने लगी।

१९०९ का निर्धनता कानून-सम्बन्धी प्रतिवेदन

इंग्लैंड अथवा इंग्लैंड का मजदूर-वर्ग इस माने में भाग्यशाली था कि निर्धनता-कानूनों तथा बेकारों के सम्बन्ध में जो सरकारी आयोग नियुक्त हुआ था, उसमें वेब्ब दम्पति (ब्रिटिश वेब्ब और सिडनी वेब्ब) जैसे लोग थे, जो अपनी विरोधी आवाज बराबर उठाते

रहते थे । श्रीमती वेब्ब आयोग की सरकारी सदस्या थीं । पति-पत्नी दोनों ने ब्रिटेन की सामाजिक और औद्योगिक परिस्थिति से सम्बन्धित आधारभूत समस्याओं पर पर्याप्त तर्कपूर्ण विचार व्यक्त किया । अत: यह संयोग की बात नहीं थी कि १९०९ ई० के उस प्रतिवेदन तथा उसकी स्वीकृति के बाद उन सिद्धान्तों को शक्ति मिलती, जो रोगियों की अच्छी चिकित्सा और पुनर्वास, सुविधाओं की सार्वभौमिकता (कोई अन्य उपयुक्त शब्द न मिलने से जिसे हम अनिवार्यता कह सकते हैं) पर विशेष बल देते थे । इस नयी व्यवस्था के अनुसार दमन की जगह निर्धनता के निवारण और श्रम-गृहों में केवल दण्डित लोगों को भेजने की जगह मजदूरी की आवश्यकता वाले सभी व्यक्तियों को भेजने की नीति स्वीकार की गयी । इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त भी स्वीकार किया गया कि सरकार आवश्यकता पड़ने पर समाज और समुदाय दोनों की सर्वाधिक हित की दृष्टि से दबाव की नीति का भी प्रयोग करेगी । विशेष रूप से भिक्षावृत्ति को रोकने, पागलों को पागलखाने भेजने, बच्चों को अयोग्य माता-पिता के पास से हटाने, अनिवार्य रूप से टीका लगवाने, बच्चों से मजदूरी न कराने तथा उन्हें अनिवार्यत: स्कूल भेजने के सम्बन्ध में सरकार को दबाव की नीति को अपनाने का अधिकार दिया गया था ।

वेब्ब दम्पत्ति के शब्दों में यदि १८३४ के कानून के सिद्धान्त दमन के ढाँचे थे तो १९०९ के कानून के सिद्धान्त निरोध के ढाँचे थे । निषेधात्मक दृष्टिकोण की जगह क्रियात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया, जिसके कारण मानवीय शक्तियों के अधिक उपयोग की सम्भावना बढ़ गयी । १८वीं और १९वीं शताब्दी में इंग्लैंड का औद्योगिक विकास "मुक्त व्यापार" के जिस सिद्धान्त के आधार पर हुआ था, उसी जगह अब यह सिद्धान्त मान्य होने लगा कि व्यक्ति और राज्य एक दूसरे पर आश्रित हैं तथा उनमें से प्रत्येक का दूसरे के प्रति कुछ अनिवार्य कर्त्तव्य है । श्रम कानून-सम्बन्धी आयोग में बहुमत और अल्पमत के प्रतिवेदनों को कार्यरूप में व्यवहृत करने के लिए जो प्रयत्न किये गये, उन पर एक दृष्टि डालने से उपर्युक्त सिद्धान्त-सम्बन्धी विचार परिवर्तन की बात स्पष्ट हो जायगी । बहुमत के प्रतिवेदन में यह माँग की गयी थी कि निर्धनता-क़ानून को व्यापक शक्तिशाली और मानवीय बनाया जाय, पर अल्पमत ने यह विचार व्यक्त किया था कि निर्धनता-क़ानून को समाप्त कर तथा निर्धन-गृहों को भंग करके उनकी जगह राष्ट्रीय आधार पर नौकरियों की व्यवस्था की जाय । जैसा प्राय: हुआ करता है कि उसके बाद की पीढ़ियों के लोगों ने उस काल के अल्पमत के सिद्धान्तों को ही स्वीकार किया और बाद में वही बहुमत द्वारा स्वीकार हुआ । आधुनिक इंग्लैंड का सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी संगठन यद्यपि पूर्ण नहीं है, फिर भी वह एलिजाबेथ कालीन निर्धनता-क़ानून से उतना ही आगे बढ़ा हुआ है, जितना आधुनिक युग के हवाई जहाज तत्कालीन बैलगाड़ियों से आगे जा चुके हैं ।

सन् १९०९ के बाद की प्रगति

सन् १९०९ से लेकर अब तक इस सम्बन्ध में जो कानून बने हैं, उनसे उपर्युक्त कथन की पुष्टि हो जाती है। १९११ ई० में राष्ट्रीय बीमा-कानून बना, जिसमें बीमारी और बेकारी से सुरक्षा के लिए अनिवार्य रूप से बीमा कराने की व्यवस्था की गयी थी।[3] सन् १९२५ ई० में विधवाओं, अनाथों और वृद्धों के लिए अंशदान-वृत्ति-कानून (कान्ट्री-ब्यूटरी पेन्शन ऐक्ट) बना, जिससे वृद्धावस्था और मृत्यु से सुरक्षा के सिद्धान्त को बढ़ावा मिला। उस कानून के अनुसार निम्नलिखित वर्गों के व्यक्तियों को नकद धन देने की व्यवस्था की गयी थी——(१) बीमा कराये हुए व्यक्तियों के मर जाने पर उनकी विधवा पत्नियों को वृत्ति तथा उनके आश्रित बच्चों को अस्थायी भत्ता, (२) बीमा कराये हुए व्यक्तियों के अनाथ बच्चों को बाल्यावस्था में भत्ता, (३) बीमा कराये हुए व्यक्तियों के लिए वृद्धावस्था-वृत्ति तथा ६५ से ७० वर्ष तक की उम्रवाले बीमा कराये हुए पुरुषों के लिए वृत्ति।

अल्पमत द्वारा समर्थित पुराना निर्धनता-कानून सन् १९२९ के स्थानीय शासन-कानून के कारण करीब-करीब समाप्त-सा हो गया है। अभिभावकों की परिषदें भंग कर दी गयीं और उनके कार्यों का दायित्व जनपद (ग्रामीण) तथा नगर-परिषदों को दे दिया गया जिनकी स्थापना स्थानीय प्रशासन की वृहत्तम इकाइयों के रूप में १९वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में हुई थी। इन परिषदों का काम स्वास्थ्य, शिक्षा तथा अन्य क्षेत्रों के सामान्य प्रशासन के साथ-साथ जनता की सहयोग-समितियों द्वारा सहायता का प्रबन्ध करना भी था।

२८ जून १९३४ के बेकारी-कानून द्वारा समूचे ग्रेट ब्रिटेन में राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने के लिए एक बेरोजगार-सहायता-परिषद् की स्थापना की गयी। इस कानून के अनुसार उन बेरोजगारों की सहायता करने की व्यवस्था की गयी थी, जिनका बीमा नहीं हो सका था अथवा जिनके बीमा की अवधि समाप्त हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त उसमें किसी भी ऐसे व्यक्ति को जो वृद्धावस्था की वृत्ति के रूप में साप्ताहिक सहायता प्राप्त करता है अथवा उस स्त्री को जो साठ वर्ष की हो चुकी है और विधवा-पोषण के रूप में

३. डि स्वायिनित्स का कहना है कि इस कानून की नवीनता के महत्त्व की तुलना उस विधान के महत्त्व से की जा सकती है, जिसके कारण सन् १५३६ से सन् १६०१ ई० के बीच राज्य नागरिकों की भुखमरी से रक्षा करना अपना उत्तरदायित्व समझने लगा।——वही—पृष्ठ २०८।

प्रतिसप्ताह सहायता लेने की अधिकारिणी है," पूरक वृत्ति देने की व्यवस्था भी की गयी थी। यहाँ डि स्वायिनित्स के विचारों को एकबार पुनः उद्धृत करना आवश्यक है—

"राष्ट्रीय स्तर पर सहायता की इस व्यवस्था का बेरोजगारों, वृद्धों, युद्ध-पीड़ितों आदि पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। इन वर्गों के बाहर के लोगों की सहायता जनपदीय परिषदों द्वारा होती रही, किन्तु सामाजिक सुरक्षा के बृहत्तर कार्यक्रमों में उन परिषदों का हाथ कम होता गया। उस कार्यक्रम में बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में अभावों से रक्षा के लिए तीन प्रकार की सहायता की व्यवस्था थी। प्रथम प्रकार की सहायता जो सबसे अधिक दी जाती थी सामाजिक बीमा के रूप में थी। उसके बाद राष्ट्रीय सहायता की भी व्यवस्था थी और जो व्यक्ति इन दोनों श्रेणियों में नहीं आ पाते थे, उनके लिए लोक-सहायता की व्यवस्था की गयी थी।[४]

बेवरिज का प्रतिवेदन

२० नवम्बर, सन् १९४२ को सामाजिक बीमा तथा तत्सम्बन्धी अन्य सेवाओं के सम्बन्ध में विचार करने के लिए संघटित एक अन्तर्विभागीय समिति के अध्यक्ष सर विलियम बेवरिज (अब लार्ड बेवरिज) ने ब्रिटिश सरकार के पास समिति का प्रतिवेदन उपस्थित किया। करीब १८ महीने तक सर विलियम और उनके सहयोगियों ने "सामाजिक बीमा तथा तत्सम्बन्धी अन्य सेवाओं, जिनमें मजदूरों की क्षति-पूर्ति के, तत्सम्बन्धी संस्तुति आदि भी सम्मिलित थे, लिए राष्ट्रीय स्तर पर चलने वाले वर्तमान कार्यक्रमों का बड़े परिश्रम से पर्यवेक्षण किया था। उस प्रतिवेदन में चार मुख्य सिद्धान्तों पर जोर दिया गया था। (१) सहायता की सीमा का ऐसा विस्तार, जिसमें प्रत्येक नागरिक आ सके, (२) उत्पादक शक्ति के मुख्य खतरों को—बीमारी, बेरोजगारी, दुर्घटना, वृद्धावस्था, प्रसवावस्था—एक ही बीमा की कोटि में रखने की व्यवस्था, (३) अंश-दान की राशि की समानता चाहे अंश-दान देने वालों की आय कितनी भी क्यों न हो, और (४) उसी तरह दिये जाने वाले लाभ की राशि में भी समानता, चाहे लाभ पाने वाले की आय कितनी भी क्यों न हो, प्रत्येक व्यक्ति को जो इसके लिए योग्य हो इसका अधिकार देना।

जिस समय बेवरिज-प्रतिवेदन तैयार हो रहा था, इंग्लैंड एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए होने वाले युद्ध में लगा था। देश में एक संयुक्त सरकार राज्य कर रही थी, किन्तु द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के पहले ही संसद में उस प्रतिवेदन पर विचार प्रारम्भ हो गया था। जून सन् १९४५ में एक कानून बना, जिसमें बेवरिज-

४. वही पृष्ठ २२६।

प्रतिवेदन की एक संस्तुति के आधार पर एक साल तक पारिवारिक भत्ता देने की व्यवस्था स्वीकार की गयी थी। १९४५ के जुलाई मास में देश में लेबर-पार्टी का शासन हो गया, जिसने उस प्रतिवेदन की अधिकांश संस्तुतियों को मान लिया। ५ जुलाई, १९४८ से राष्ट्रीय बीमा-कार्यक्रम पूरी तरह लागू हो गया।

ब्रिटेन की तत्कालीन सामाजिक सेवाएँ

इंग्लैंड में अबतक बेरोजगारों का बीमा, राष्ट्रीय स्वास्थ्य, अंश-दान-वृत्ति तथा मजदूरों की क्षति-वृत्ति से सम्बन्धित जो कानून प्रचलित थे, उन सबका स्थान अब राष्ट्रीय बीमा कार्यक्रम ने ले लिया। ग्रेट ब्रिटेन में स्कूल छोड़ने की उम्र के बाद के वे सभी व्यक्ति जो निम्नलिखित तीन श्रेणियों के अन्तर्गत आते हैं, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए अपनी श्रेणी के अनुरूप अंश-दान देते हैं। वे श्रेणियाँ ये हैं––(१) नौकरी करने वाले व्यक्ति, (२) अपने निजी काम में लगे व्यक्ति, (३) बेरोजगार व्यक्ति, इन सभी श्रेणियों के प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्रीय बीमा कार्य में लाभ प्राप्त करने का अधिकार है; प्रसूतावस्था, बीमारी, बेकारी, कारखानों में शारीरिक क्षति, नौकरी से अवकाश-प्राप्ति, वैधव्य, अभिभावकत्व और मृत्यु से सम्बन्धित अनुदान।

उक्त कार्यक्रम से सम्बन्धित सेवाएँ निम्नलिखित हैं––(१) पारिवारिक भत्ता, (२) राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा और (३) राष्ट्रीय सहायता। पारिवारिक भत्ता के नियम के अनुसार किसी भी व्यक्ति को प्रथम सन्तान के बाद की प्रत्येक सन्तान के लिए आठ शिलिंग प्रतिसप्ताह भत्ता मिलता है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य-सेवा के नियम के अनुसार ग्रेट ब्रिटेन का प्रत्येक स्त्री, युवक और बच्चा अस्पतालों और दन्त-चिकित्सालयों में निश्शुल्क चिकित्सा कराने और दवा पाने का अधिकारी है। इसके लिए पूरा व्यय सरकारी कर की आय से दिया जाता है। राष्ट्रीय सहायता-कार्यक्रम उन लोगों के लिए है, जो किसी-न-किसी कारण से राष्ट्रीय बीमा-कार्यक्रम के अन्तर्गत नहीं आ पाते। राष्ट्रीय सहायता का लक्ष्य ऐसे लोगों की, जो राष्ट्रीय बीमा-कार्यक्रम के चालू होने के प्रारम्भिक दिनों में, इतना अंशदान नहीं दे सकते थे कि उन्हें नौकरी से अवकाश प्राप्त करने पर बीमा का लाभ या अन्य प्रकार के लाभ प्राप्त होते अथवा ऐसे लोगों की, जिनकी विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति उनकी बीमा से नहीं हो सकती, सहायता की व्यवस्था करना था।

इस कार्यक्रम का जो ५ जुलाई, १९४८ ई० को लागू हुआ, सबसे अधिक स्पष्ट और सुबोध विवरण "ब्रिटिश सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित ब्रिटेन की सामाजिक सुरक्षा का शासन-पत्र जुलाई सन् १९४८" नामक पुस्तिका में मिलता है। उसका अन्तिम वक्तव्य यह है––

"अतः ब्रिटेन में सामाजिक प्रगति के मार्ग में एक नयी मंजिल की यात्रा के प्रारम्भ की दृष्टि से इस ५ जुलाई का बहुत महत्त्व है। यह दावा कोई नहीं करता कि यह नया शासन-पत्र (चार्टर) बिलकुल निर्दोष है। निश्चय ही इसमें भी बाद में व्यावहारिक अनुभव द्वारा जो कमियाँ दिखाई पड़ेंगी, उनके आधार पर संशोधन और संवर्धन होंगे। किन्तु कमियों के बावजूद यह शासन-पत्र सामाजिक सुरक्षा की पूर्णता की ओर होनेवाली प्रगति के मार्ग पर ब्रिटेन को सबसे अगला स्थान दिलानेवाला था.......।"

कुल मिलाकर यह शासन-पत्र प्रभाव की दृष्टि से व्यक्ति के प्रति समुदाय के कर्त्तव्य की अभिव्यक्ति है। व्यक्ति अपने कार्य और सामाजिक आचार के द्वारा समुदाय की सहायता करता है और समुदाय इसके बदले में व्यक्ति की, उसकी आवश्यकता के समय, सहायता करता है और अन्तिम रूप में देखने पर व्यक्ति का ही महत्त्व सबसे अधिक प्रतीत होता है। अंश-दान की पद्धति को जारी रखने का यही अर्थ था कि व्यक्ति को दिया जानेवाला सामाजिक लाभ भिक्षा या दान के रूप में नहीं है, बल्कि उसमें व्यक्ति का अंश-दान भी सम्मिलित है। कोरे दान या भिक्षा से व्यक्ति मानसिक रूप में दिवालियेपन का अनुभव करने लगता है, किन्तु अंश-दान के कारण व्यक्ति जितना लाभ पाता है उसका पूरा मूल्य उसे खुद नहीं चुकाना होता, जिससे यह सिद्ध होता है कि समाज व्यक्ति के प्रति अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं है।

सैद्धान्तिक रूप में यह योजना पूर्णतः सरकारी धन से परिचालित सेवाओं और पूर्णतःदान के धन से चलनेवाले सेवा-कार्यों के बीच एक समझौता है, और उसी तरह यह प्रशासन की दृष्टि से भी दायित्व केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के बीच की कड़ी है। दोनों में ही परिवर्तित होती रहने वाली आवश्यकताओं के अनुसार समझौता के सम्बन्ध का रूप परिवर्तनशील बना रह सकता है। इस तरह यह योजना ऐसी है कि इसका लचीलापन भी बना रह सकता है और साथ ही उसकी एकरूपता की विशेषताएँ भी नष्ट नहीं हो सकती हैं।

इस समूची योजना का मूल तत्त्व संभवतः यह है कि उसमें उत्तरदायित्व का विभाजन केन्द्रीय सरकार, स्थानीय अधिकारियों और व्यक्ति के बीच कर दिया गया है, किन्तु अन्ततोगत्वा यह सब कुछ व्यक्ति के लिए ही किया गया है। ब्रिटेन-जैसे लोकतान्त्रिक देश में जैसा होना चाहिए था इस योजना द्वारा वैसा ही हुआ है।"[५]

ब्रिटिश जनता इन सेवाओं को राज्य द्वारा दया के वशीभूत होकर किया जाने वाला दान-जैसा कार्य नहीं समझती। ये ऐसी सेवाएँ हैं, जिन्हें चुने हुए विश्वस्त प्रतिनिधियों

५. **"ब्रिटेन्स चार्टर आफ सोशल सिक्योरिटी"—ब्रिटिश सूचना विभाग—१९४८—पृष्ठ २२ से २४ तक।**

के माध्यम से चलनेवाला एक प्रगतिशील लोकतान्त्रिक राज्य उत्तरदायित्वपूर्ण जनता के अधिकार के रूप में स्वीकार करता है। यही नहीं इन सेवाओं का महत्त्व इस अर्थ में भी है कि आज के कठिन प्रतियोगितावादी जगत् में अपने देश की रक्षा करने के लिए वे जनता के जीवन में शक्ति और संकल्प का संचार करती हैं और इस तरह वे रोजगार में लगाये गये लाभार्थ धन की तरह हैं। यदि हम १३४९ ई० के श्रमिक-अधिनियम-सम्बन्धी दमन-पूर्ण कानून से आज की इन सेवाओं की तुलना करते हैं, जिनमें जनता की उत्पादन-शक्ति, स्वास्थ्य, सुरक्षा, रचनात्मक शक्ति और सुखों पर विशेष बल दिया गया है, तो दोनों में महान् अन्तर दिखाई पड़ता है। यह योजना लोकतन्त्रवाद के साँचे में ढली जाति के मानवतावादी दृष्टिकोण की रचनात्मक देन है।[६]

निजी और ऐच्छिक सेवा में यूरोपीय पृष्ठभूमि

यूरोप में आधुनिक राज्यों के उदय के पहले भी चर्च के माध्यम से पुराने ढंग के सेवा-कार्यों की पद्धति प्रचलित थी। धार्मिक उपदेशों के आधार पर व्यक्ति और संस्थाएँ दयाभावना से प्रेरित होकर गरीबों को भिक्षा, गृह-विहीनों को आवास तथा रोगियों को सेवा-शुश्रूषा और आराम देने की व्यवस्था करती थीं। भिक्षा और आवास दान के रूप में मठों और अस्पतालों की व्यवस्था की, इनमें से अस्पताल तो चन्दे के धन से चलते थे, जिनमें बीमारों, अनाथों और वृद्धों को रखा जाता था। पूरे मध्यकाल में धार्मिक संघों (गिल्ड्स) और पेशागत समितियों द्वारा भी भोजन और आवास देने की प्रथा प्रचलित थी।

किन्तु उन दयालु व्यक्तियों और संस्थाओं का उद्देश्य चाहे कितना भी सद्भावना-युक्त क्यों न रहा हो, पर उनके इस प्रकार के निजी दान में कोई नियमितता या समन्वय नहीं था। इसके कारण भिक्षा-वृत्ति और पराश्रयता घटी नहीं, बल्कि अविवेकपूर्ण ढंग से

६. **बेवरिज योजना तथा उसके बाद की प्रगति के सम्बन्ध में और अधिक जानकारी के लिए पाठकों को निम्नलिखित पुस्तकें पढ़नी चाहिए, एच० विलियम बेवरिज—"सोशल इन्श्योरेन्स ऐण्ड एलाइड सर्विसेज", मैकमिलन, १९४२, न्यूयार्क। पब्लिक वेल्फेयर नामक पत्रिका में प्रकाशित "सोशल सिक्योरिटी इन ब्रिटेन" शीर्षक लेख, जनवरी १९४७, फरवरी १९४७। मार्था डि० रिंग की बेवरिज रिपोर्ट पर लिखी गयी "सोशल सिक्योरिटी फार ग्रेट ब्रिटेन" शीर्षक समीक्षा। सोशल सिक्योरिटी बुलेटिन, अंक ६, जनवरी १९४३, पृष्ठ ३ से ३० तक। इस**

दिये जानेवाले दान के कारण बहुत-से लोग अधिकतर उसी पर आश्रित रहने लगे। एलिजाबेथ कालीन निर्धनता-सम्बन्धी कानूनों द्वारा पूर्वप्रचलित लोक-सहायता-सम्बन्धी अराजकता के बीच एक नियमितता लाने का प्रयत्न किया गया, किन्तु जर्मनी में हैम्बर्ग और एल्बरफेल्ड नामक नगरों में संघटित रूप से सेवा करने का कार्य १८वीं और १९ वीं शताब्दी में पहलेपहल प्रारम्भ हुआ। हैम्बर्ग में इस सम्बन्ध में पहला कदम एक केन्द्रीय समिति की स्थापना तथा नगर के सेवा-कार्य के लिए, कई उप विभागों में विभाजन के रूप में उठाया गया। प्रत्येक उप विभाग में एक ओवरसियर या निरीक्षक की नियुक्ति की गयी, जो स्वेच्छापूर्वक काम करने वाले स्वयंसेवकों के सहयोग से कार्य करता था। ये कार्यकर्त्ता अपने क्षेत्रों में रहने वाले गरीबों के पास जाते थे और उन्हें सहायता पहुँचाने तथा उन क्षेत्रों में गरीबी और दुखों के कारणों का पता लगाने का प्रयत्न करते थे। प्रत्येक कार्यकर्त्ता को अपने क्षेत्र के गरीबों के साथ मित्रतापूर्ण और घनिष्ठ सम्पर्क रखना पड़ता था। इस तरह कार्यकर्ताओं का गरीबों के पास जाना, नगर के विभिन्न उप-विभागों में विभाजन, नगर के सभी सेवा-कार्यों का नगर के केन्द्रीय परिषद् द्वारा निर्देशन और संगठन आदि बातें इस योजना की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ थीं। सरकारी तौर पर नियुक्त और वेतनभोगी केवल एक व्यक्ति—केन्द्रीय समिति का अध्यक्ष होता था। इस योजना का प्रारम्भ पहले हैम्बर्ग में सन् १७८८ ई० में हुआ और १८५२ ई०में एल्बर-फेल्ड में भी इसे लागू किया गया। इस अवधि के बीच कार्य ज्यों-ज्यों बढ़ता गया इस बात पर विशेष जोर दिया जाने लगा कि जरूरतमंद व्यक्ति और कार्यकर्ता के बीच का सम्बन्ध और घनिष्ठ हो। कार्यकर्ता को सहायता देने के लिए दिये गये अधिकारों में और वृद्धि की जाय और निर्धनता के कारणों के निवारण के लिए अधिक प्रयत्न किया जाय। यद्यपि हैम्बर्ग और एल्बरफेल्ड में सेवा-कार्यों का प्रारम्भ व्यक्तिगत रूप से प्रारम्भ हुआ और उन कार्यों के लिए नेतृत्व, स्वयंसेवक एवं उन कार्यों के लिए सरकारी सहायता भी मिलने लगी और वे नगरपालिका-अधिनियम के अन्तर्गत अपना लिये गये। इनका महत्त्व इसी बात में है कि उनमें उन सिद्धान्तों को बहुत पहले अपना लिया गया था, जिन्हें अमेरिका और इंग्लैंड में परवर्ती काल के दान और सेवा-सम्बन्धी संगठनों के आन्दोलन में बहुत बाद में अपनाया गया।

सम्बन्ध में सबसे अधिक स्पष्ट, पूर्ण और अद्यतन विवरण एस० पेनीलोप हाल की इस पुस्तक में दिया गया है—"दि सोशल सर्विसेज आफ माडर्न इंग्लैंड"—रुटलेज एण्ड केगन पॉल, १९५२, लंदन।

दान संगठन संघ

अब यही स्थिति जर्मनी के स्थान पर इंग्लैंड में थी। एल्बरफेल्ड में संगठित सेवा-कार्य के प्रारम्भ के बाद दो दशकों के भीतर ही संसार का प्रथम दान-संगठन-संघ संगठित हुआ। उस बीच बहुत-सी ऐसी संस्थाएँ विकसित हुई थीं, जिनमें परोपकार की भावना तो बहुत थी, पर उनका आपस में बहुत कम सम्बन्ध था। हर संस्था अपने रास्ते पर चलती थी और इस बात की चिन्ता नहीं करती थी कि जो काम और संस्थाएँ कर रही हैं, उसे दुहराने से क्या लाभ अथवा व्यक्तिगत सहायता से संचालित कल्याण-कार्यों में समग्र प्रभाव की दृष्टि से उनका क्या उत्तरदायित्वपूर्ण योग होना चाहिए? परिस्थिति ऐसी बिगड़ गयी थी कि उसे ठीक करने के लिए कदम उठाना आवश्यक हो गया। सन् १८६९ में लंदन में एक संस्था का संगठन हुआ, जिसका नाम था "दान-सहायता-संघटक तथा भिक्षा-वृत्ति-निवारक समिति" दूसरे ही वर्ष इसका नाम बदलकर "दान संगठन संघ" कर दिया गया।

जैसा नाम से ही प्रकट है, इस संस्था का लक्ष्य उस समय वर्तमान कल्याण-कार्य-सम्बन्धी समितियों और अभिकरणों के बीच समन्वय स्थापित करना था। सहायता देने का कार्य उन संस्थाओं के जिम्मे ही रहने दिया गया, जैसा वे पहले से करती आ रही थीं। दान-संगठन-समिति का उद्देश्य एक ऐसे तन्त्र और कार्य-विधि का विकास करना था, जिसके द्वारा सहायता-कार्यों की पुनरावृत्ति और प्रतियोगिता न हो और वे शीघ्रता-पूर्वक तथा अल्प व्यय में सम्पन्न हो सकें। एक केन्द्रीय समिति बनायी गयी, जिसके अधीन जिला समितियों का संगठन किया गया। जिला-समितियाँ केन्द्रीय संस्था के पंजीकरण केन्द्र और कार्य को शीघ्र निबटाने वाले कार्यालय के रूप में काम करती थीं। उनका काम ऐसे व्यक्तियों की सहायता करना भी था, जो निर्धनता-कानून के अन्तर्गत नहीं आते थे, किन्तु उनकी सहायता बहुत जाँच-पड़ताल के बाद की जाती थी। जिला-समितियों और निर्धनता-कानून से सम्बन्धित अधिकारियों के बीच ऐसे सहयोग का प्रबन्ध किया गया कि सेवा-कार्यों की पुनरावृत्ति न होने पाये और समुचित कार्य-विभाजन हो सके। इस संस्था का महत्त्व केवल इस बात के लिए नहीं है कि उसने व्यक्तिगत प्रेरणा और परोपकार की भावना से परिचालित लंदन के गरीबों के बीच किये जाने वाले सेवा-कार्यों का समन्वयपूर्ण संगठन किया, उसकी ख्याति इसलिए भी है कि अन्य नगरों, विशेषकर अमेरिका के नगरों में, उसी के आदर्श का अनुकरण किया गया।

ऊपर यूरोप में सरकारी और गैर सरकारी तौर पर किये जाने वाले सेवा-कार्यों का जो आवश्यक रूप से संक्षिप्त विवरण दिया गया है, उससे अमेरिका में किये जाने वाले सेवा-कार्यों की पृष्ठभूमि को समझने में सहायता मिल सकती है। अतः इस पुस्तक के

शेष भाग में विगत तीन शताब्दियों में अमेरिका में किये जानेवाले कार्यों के अनुभव पर ही विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया जायगा।[७]

सहायक ग्रन्थ-सूची

जैनेट बेवरिज, "बेवरिज एण्ड हिज प्लैन" लंदन, हाडर एण्ड स्टाटन, १९५४।

एच० विलियम बेवरिज (नाउ लार्ड), "सोशल इन्श्योरेन्स एण्ड दि एलाइड सर्विसेज"—न्यूयार्क, दि मैकमिलन कम्पनी—१९४२।

हेलेन बासनक्वेट, "सोशल वर्क इन लंदन", १८६९-१९१२—लंदन जॉन मरे—१९१४।

कार्ल डि स्वायिनित्स, "इंग्लैंड्स रोड टु सोशल सिक्योरिटी"—फिलाडेल्फिया, पेन्सिल्वानिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४३।

एम० पेनीलोप हॉल—"दि सोशल सर्विसेज आफ माडर्न इंग्लैंड"—लंदन, रुटलेज एण्ड केगन पॉल, १९५२।

स्टुवर्ट अल्फ्रेड क्वीन—"सोशल वर्क इन दि लाइट आफ हिस्ट्री"—फिलाडेल्फिया, जे० बी० लिपिन काट कम्पनी, १९२२।

बी० सीबोम राउन्ट्री—"पावर्टी एण्ड प्रोग्रेस—ए सेकेण्ड सोशल सर्वे आफ यार्क"—न्यूयार्क, लांगमैन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी, १९४१।

रिचार्ड एम० टिटमस—"प्राब्लम्स आफ सोशल पालिसी"—न्यूयार्क, लांगमैन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी, १९५०।

विट्रिश वेब और सिडनी वेब—"इंग्लिश पुअर ला पालिसी"—लंदन और न्यूयार्क, लांगमैन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी, १९१०।

७. यूरोप में किये जाने वाली सामाजिक सेवाओं के विकास और उनकी पृष्ठ-भूमि के विशेष विवरण के लिए निम्नलिखित पुस्तक देखिए—वाल्टर फिड लैण्डर—"ऐन इन्ट्रोडक्शन टु सोशल वेल्फेयर" न्यूयार्क, प्रेन्टिस हॉल, १९५५, अध्याय १–३।

अध्याय ३

अमेरिका में समाज सेवाएँ

दानगृह से सामाजिक सुरक्षा तक

निर्धन सहायता-सम्बन्धी अमरीकी अनुभव

पिछले अध्याय में अमेरिका की सहायता-सम्बन्धी पद्धतियों के विकास की पृष्ठभूमि के रूप में इंग्लैंड के निर्धनता कानून की एक स्थूल रूप-रेखा दी जा चुकी है। अमेरिका में आनेवाले उपनिवेशियों में अधिकांश इंग्लैंड के थे और वे अपने साथ इंग्लैंड के विचारों, कानूनों, रीति-रिवाजों और संस्थाओं को भी लेते आये थे। दान-गृह की प्रथा भी उसी प्रकार इंग्लैंड से लायी गयी वस्तु है। इस नये देश में बसने वाले लोग निर्धनता को कभी सम्माननीय नहीं समझ सकते थे। यहाँ के लोगों के लिए निर्धनता किसी नैतिक दोष के फलस्वरूप प्राप्त एक वैयक्तिक वस्तु थी, इसलिए निर्धनों की सहायता की ओर उनकी रुचि का कम होना स्वाभाविक था। इसलिए उस समय केवल स्थानीय दान-गृह या भिक्षुक-गृह थे, जिनमें बच्चे-बूढ़े, स्वस्थ और बीमार, विकृत मस्तिष्क और स्वस्थ मस्तिष्कवाले, मृगी के रोगी और अन्धे, दुर्बल मस्तिष्कवाले, शराबी और अनाथ सभी एक साथ रखे जाते थे। इंग्लैंड की तरह यहाँ भी दान-गृहों के स्वस्थ व्यक्तियों को खेती के काम पर और बच्चों को काम सिखाने के लिए भेजा जा सकता था। जो व्यक्ति निर्धन-गृहों (दान-गृह वस्तुतः निर्धन-गृह ही थे) में भेजे जाने से किसी तरह बचे रह जाते थे, उनकी सहायता उनके घर पर ही की जाती थी। उस समय हम निर्धनता को रोकने के लिए दमन का सहारा लेते थे, हमने सहायता-कार्य के उत्तरदायित्व को स्थानीय समुदायों में ही केन्द्रित कर दिया था, सरकारी नियन्त्रण और निरीक्षण को कम से कम स्वीकार किया गया और अन्त में इंग्लैंड में सामाजिक सुरक्षा कानून बनने के एक पीढ़ी बाद ही हमारे देश में भी सामाजिक सुरक्षा-कानून पारित हो गया।

स्थानीय जन-कल्याण

जन-कल्याण अपेक्षाकृत एक नया शब्द है। १६०१ के एलिजाबेथ-कानून और उसके १८३४ ई० के परिवर्धन में इस शब्द का कहीं प्रयोग नहीं हुआ था। निराश्रयिता

एक स्थानीय समस्या थी और यद्यपि निराश्रितों को सरकारी अधिकारियों द्वारा सहायता मिलती थी, पर इसे न तो जन-कार्य कहा जाता, था नकल्याण-कार्य। आज हम लोग जन-कल्याण की बातें करते थकते नहीं हैं, पर यदि हम उसके विकास और प्रगति के इतिहास पर एक दृष्टि डालें तो हमें आश्चर्य होगा कि हम उस प्रारम्भिक काल से अब तक कितना आगे बढ़ आये हैं और साथ ही हम यह अनुमान भी कर सकते हैं कि अभी हमें कितना और आगे जाना है।

जन-कल्याण का कार्य जिन लोगों और परिस्थितियों (जो अनिवार्यतः समस्याएँ नहीं थीं) से सम्बन्धित था वे स्थानीय थे और सहायता करने वाली सरकारी इकाइयों का रूप बहुत ही छोटा था अथवा परम्परागत रूप में वे पीड़ितों की सहायता करने वाली इकाइयों के रूप में ही मान्य थीं। हमारे देश में उपनिवेश-युग में सहायता का कार्य तहसीलों, कस्बों, नगरों और जनपदों द्वारा होता था, पूरे उपनिवेश द्वारा नहीं। उप-निवेशों की जगह राज्य स्थापित हो जाने के बाद भी प्रायः एक शताब्दी तक पूर्वी समुद्रतट के अधिकांश राज्यों में वही पद्धति प्रचलित रही। इस अध्याय में यही दिखाया जायगा कि स्थानीय स्तर पर होनेवाले सेवा-कार्य किस तरह राज्यस्तर पर और बाद में अमरीकी संघ राज्य बन जाने पर संघीय स्तर पर होने लगे।

स्थानीय जन-कल्याण से राज्य-जन-कल्याण की ओर

उपनिवेश युग तथा राज्यों की स्थापना के प्रारम्भिक दिनों से लेकर अब तक स्थानीय समुदायों द्वारा सेवा-कार्य किसी-न-किसी रूप में होता आ रहा है। यह सहायता या तो व्यक्तियों को उनके घर पर ही दी जाती थी अथवा किसी संस्था के माध्यम से दी जाती थी, जिसे सामान्य दान-गृह या निर्धन-गृह कहा जाता था। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया यह स्पष्ट होने लगा कि कुछ सेवाएँ ऐसी हैं, जो अत्यधिक व्ययसाध्य हैं और कुछ का संचालन स्थानीय समुदायों की शक्ति के बाहर होने के कारण किसी न किसी संस्था द्वारा होना आवश्यक है। इसका एक सबसे पुराना उदाहरण वर्जिनिया का पागलों का अस्पताल है, जिसकी स्थापना १७७३ में हुई थी। प्रत्येक नगर, जनपद या तहसील में पागलों की कुछ संख्या होती थी, जो जेलों अथवा निर्धन-गृहों में भेज दिये जाते थे, किन्तु किसी स्थानीय इकाई में पागलों की इतनी संख्या नहीं होती थी कि उनके लिए एक अलग संस्था स्थापित की जाय, अतः ऐसे पीड़ित व्यक्तियों की, चाहे वे कहीं के क्यों न हों, सहायता के लिए राज्य से कुछ आशा लगाना स्वाभाविक ही था। नगर, जनपद और तहसीलों के लिए एक सुविधा यह हो गयी कि अब इस तरह के सहायता-कार्यों के व्यय का कुछ

भार राज्य भी वहन करने लगा। बाद में (सन् १८२२ ई० में केन्टुकी में) बहरे और गूंगों की संस्था की स्थापना करने की ओर सरकार का ध्यान गया, फिर १८३७ ई० में ओहियो में अंधों १८४८ ई० में मासाशूचेट्स में अपराधी बालकों तथा दुर्बल मस्तिष्क के लिए संस्थाएँ स्थापित हुईं। इस तरह की संस्थाओं की यह सूची पूर्ण नहीं है और न इसमें आज तक की संस्थाएँ सम्मिलित हैं। इस सूची का उद्देश्य सिर्फ यह दिखलाना था कि सभी प्रकार के जरूरतमंद लोगों, अपराधियों और विकलांगों के लिए दी गयी सहायताएँ स्थानीय समुदायों से प्रारम्भ और विकसित होकर राज्य के कार्यक्षेत्र में कैसे सम्मिलित हो गयीं।

जब तक कल्याण-सम्बन्धी सेवाएँ स्थानीय समुदाय द्वारा संचालित होती रहीं कल्याण-सम्बन्धी संगठनों की कोई आवश्यकता नहीं थी। गरीबों की देख-रेख करने वाले ओवरसियर ही स्वयं नगद धन के रूप में या अन्य किसी प्रकार की सहायता देने का पूरा कार्य करते थे और साथ ही निर्धन-गृहों का प्रबन्ध भी करते थे। इस सेवा के अतिरिक्त केवल एक ही स्थानीय सेवा और उपलब्ध थी—जेल या सुधार-गृह की सेवा—जिसका संचालन सेरिफ के कार्यालय द्वारा होता था, किन्तु जब राज्य ने पराश्रितों, विकलांगों और अपराधियों आदि का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया तो इसके लिए कुछ निश्चित संगठनों का होना आवश्यक हो गया। माशासूचेट्स पहला राज्य था, जिसमें इस प्रकार का एक राज्य-स्तर का संगठन निर्मित किया गया। १८६२ ई० में माशासूचेट्स राजकीय दान-समिति नाम की संस्था स्थापित हुई, जिसे राज्य भर की सहायता व सुधार-सम्बन्धी संस्थाओं की समस्त पद्धति का निरीक्षण और परीक्षण करने तथा ऐसी संस्थाओं के संचालन और अल्पव्यय-साध्य संचालन के लिए अपने सुझाव और संस्तुति उपस्थित करने का अधिकार दिया गया। इसके अतिरिक्त उस संस्था के मंत्री को यह कार्य सौंपा गया कि वह कुछ बाहरी कामों से, जैसे बेकार निर्धनों की जो किसी एक राज्य के निवासी नहीं होते थे और जिन्हें राज्य गिरफ्तार कर सकता था, से सम्बन्धित काम का संचालन और निरीक्षण करे। इन शक्तियों के प्रयोग से राज्य को बेकार निर्धनों के इधर-उधर भागने से रोकने तथा निर्धनों की राज्य या स्थानीय स्तरों पर की जानेवाली सहायता-सम्बन्धी कार्यों पर कुछ नियन्त्रण रख सकने में सफलता मिली।

निरीक्षण से प्रकाशन की ओर

पहले राज्य के अन्तर्गत काम करनेवाली दान-समिति के कार्यों की यह सीमा बाँध दी गयी थी कि वह केवल निरीक्षण, परीक्षण करने तथा प्रतिवेदन और संस्तुति प्रस्तुत करने का ही काम कर सकती है, किन्तु बाद में ऐसी परिषदों की स्थापना हुई, जिनको

प्रशासन और नियन्त्रण का भी अधिकार था, उदाहरण के लिए रोडे आइलैण्ड और विसकान्सिन नामक राज्यों की परिषदों का नाम लिया जा सकता है। उन समितियों के वैतनिक और पूरे समय तक काम करने वाले सदस्यों को राज्य के दान अभिकरणों को चलाने और निर्देशन करने का अधिकार दिया गया। वे कर्मचारियों को वेतन पर नियुक्त करते, उन्हें उत्साहृति करते, अर्थ-सम्बन्धी मदों का नियन्त्रण करते और अभिकरणों तथा संस्थाओं के आचार-सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण करते थे। इस तरह के प्रत्यक्ष नियन्त्रण के फलस्वरूप जन-कल्याण का कार्यक्रम संस्थागत रूप ग्रहण करने लगा, किन्तु परम्परागत रूप में स्थानीय स्तर पर भी सहायता-कार्य जारी रहा। कुछ नियन्त्रण-समितियाँ विभिन्न प्रकार के सुझावों और दबाव द्वारा भी स्थानीय सहायता कार्य के स्तर को ऊँचा करने, जरूरतमंद लोगों की अतिरिक्त सेवा करने के लिए प्रोत्साहन देने और पहले से चले आ रहे सेवा-कार्यों, विशेषकर दान-गृहों तथा अन्य स्थानीय संस्थाओं-जैसे जेल और सुधार-गृह आदि की स्थिति सुधारने का प्रयत्न करती थीं।

अतीत की ओर दृष्टि डालने पर यह पता चलता है कि बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में, पहले जिन बातों पर बल दिया जाता था, उनकी जगह अन्य बातों पर बल दिया जाने लगा। प्रारम्भ में एलिजाबेथ कालीन इंग्लैंड और उपनिवेशी अमेरिका दोनों में ही स्थानीय समुदायों का ध्यान सहायता-सम्बन्धी आवश्यकताओं की ओर बहुत धीरे-धीरे गया। जब सहायता-सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अगला कदम उठाया गया तो लोगों ने उसे स्वेच्छापूर्वक स्वीकार नहीं किया। इसके पूर्व दो प्रस्ताव रखे गये थे। पहला यह कि सहायता का कार्य अधिक-से-अधिक लोगों की रुचि के अनुकूल होना चाहिए और दूसरा यह कि सहायता लेने वाले अथवा सायता लेने की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों की राजकीय कोश से सहायता लेने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। इन दोनों प्रस्तावों के बाद ही उपर्युक्त कदम उठाया गया था। निर्धन और विकलांग व्यक्तियों की अयोग्यता-सम्बन्धी विश्वास में परिवर्तन होने पर राज्य की दान और नियन्त्रण समितियाँ उनका प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती थीं। उनका उद्देश्य "दान और सुधार" के क्षेत्र में भी व्यापारिक पद्धतियों का उपयोग करना अर्थात् प्रशासन-सम्बन्धी कार्यक्षमता बढ़ाना, अपव्यय को समाप्त करना और इस तरह यदि मुनाफा न दिखाया जा सके तो कम से कम सहायता कार्यों का व्यय कम दिखाना था।

अस्तु, १९१७ ई० तक विगत तीन शताब्दियों की निषेधात्मक दृष्टि की जगह विधेयात्मक दृष्टि को अपनाया जाना प्रारम्भ हो गया। अब जन-कल्याण को ऐसा कार्य समझा जाने लगा, जिसमें रचनात्मक संभावनाएँ थीं। यद्यपि यह सत्य है कि कुछ ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हें सहायता की हमेशा आवश्यकता थी, और कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे, जो

स्वयं अपने जीवन-यापन का उपाय न करके सरकारी कोश पर ही निर्भर रहना पसन्द करते थे, पर दूसरी ओर असुविधाग्रस्त लोगों में से अधिकांश ऐसे थे, जिन्हें अपने पुनर्वास और आत्मनिर्भरता के लिए ही सहायता की आवश्यकता थी। इस अन्तिम बात पर जब लोगों का विश्वास हो गया तो उसे कार्यान्वित करने के लिए प्रभावशाली संगठन की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। यद्यपि मिसूरी राज्य के कन्सॉस नगर में बहुत पहले, १९१० ई० में ही एक जन-कल्याण-परिषद् के निर्माण की बात सोची गयी थी, किन्तु इस दिशा में सक्रिय कदम १९१७ ई० में इलिनोरस और नार्थ कैरोलिना नामक राज्यों में उठाया गया, जब कि वहाँ राज्य-स्तर पर ऐसे कार्यों के संगठन का आन्दोलन चल पड़ा था। उसी वर्ष नार्थ कैरोलिना में राज्य भर के लिए एक दान और लोक-कल्याण-परिषद् की स्थापना हुई। उसमें सात अवैतनिक सदस्य थे, जिनके द्वारा परिषद् के अधिशासी अधिकारी (इक्जिक्यूटिव आफिसर) के रूप में एक आयुक्त की नियुक्ति की गयी थी तथा परिषद् और आयुक्त को सेवाओं के अध्ययन जाँच-पड़ताल, निर्देशन, एवं उनके सम्बन्ध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करना, अज्ञापत्र देना आदि कार्यों का दायित्व दिया गया था। आयुक्त का काम विशेष रूप से पराश्रित और अपराधी बालकों के लिए आश्रय का प्रबन्ध करना था। इस कार्यक्रम में एक बिलकुल नवीन बात यह थी कि उसमें जनपदीय शिक्षा-परिषद् के सहयोग से अपने-अपने क्षेत्र के लिए जन-कल्याण अधीक्षकों की नियुक्ति करें। इलिनोरस राज्य के कार्यक्रम कई दृष्टियों से नार्थ कैरोलिना के कार्यक्रमों से भिन्न थे। वहाँ जन-कल्याण आयुक्त-परिषद् का कार्य केवल सलाह देना था, वास्तविक अधिकार राज्य के जन-कल्याण विभाग तथा गवर्नर द्वारा नियुक्त किये गये निदेशक के हाथ में थे। साथ ही राजकीय सहायता तथा बंदीगृहों के प्रशासन के साथ ही बन्दियों को पैरोल पर छोड़ना तथा उनके निरीक्षण का भी उत्तरदायित्व इस विभाग पर था।

१९१७ ई० से १९२९ ई० के बीच अधिकांश राज्यों में राज्य-स्तर पर कल्याण-कार्यों के संगठन और समन्वय का आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था। प्रत्येक राज्य परिस्थिति और समय की माँग के अनुसार अपनी समस्याओं को अपने ढंग से सुलझाने का प्रयत्न करता था। इस तरह कुछ राज्यों में कल्याण-विभाग स्थापित किया गया, जिसके अधिशासी अधिकारी की नियुक्ति गवर्नर द्वारा होती थी और उसकी सहायता के लिए एक सलाहकार-परिषद् होती थी तथा अन्य राज्यों में गवर्नर द्वारा नियुक्त परिषदें होती थीं, जो कल्याण-विभाग का कार्य करने के लिए प्रशासकों का चुनाव करती थीं। इस तरह सेवा-कार्य का कुछ उत्तरदायित्व प्रबन्ध-विभाग का और कुछ परिषद् का होता है। कुछ राज्य ऐसे भी हैं, जिनमें तीन या पाँच सदस्यों की एक परिषद् होती है जो प्रशासन का कार्य

भी करती है। कुछ राज्यों में सुधार, सहायता, स्वास्थ्य, मानसिक रोग और कानून-सम्बन्धी सभी सेवाएँ एक ही विभाग या परिषद् के अधीन होती हैं और अन्य राज्यों में मुख्यतया ऐतिहासिक कारणों से दो या दो से अधिक परिषदें, विभाग या आयोग होते हैं, जिनके कार्य-क्षेत्र बँटे होते हैं। कुछ राज्यों में संस्थागत और गैर संस्थागत सेवा-कार्यों को अलग-अलग, संगठन की दृष्टि से विभाजित कर दिया गया है। अस्तु, इस बात का महत्त्व नहीं है कि प्रशासन का उत्तरदायित्व किसे दिया गया अथवा सेवा-सम्बन्धी अभिकरण एक था या कई थे, वरन् महत्त्व की बात यह है कि राज्यों में कल्याण-विभागों और परिषदों द्वारा सेवा-कार्यों के निरीक्षण और प्रशासन को समन्वित करने तथा स्थानीय समुदायों और राजकीय अभिकरणों को एक सूत्र में बाँधने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। किन्तु समस्त प्रगति के बीच निर्धनों की सहायता का कार्य स्थानीय नगरों, कस्बों और जनपदों में ही होता रहा।

संघीय शासन और जन-कल्याण

सामाजिक कार्य के क्षेत्र में जन-कल्याण का अर्थ सरकारी सहायता से चलनेवाली वे सेवाएँ हैं, जिनका लक्ष्य कष्टों का निवारण, अक्षमता की रोक-थाम, अक्षम लोगों का पुनर्वास और व्यक्ति तथा समूह को आत्मनिर्भर बनाना है। यद्यपि इस परिभाषा को समग्र रूप में स्वीकार करने के सम्बन्ध में किन्हीं भी दो पाठकों की सम्मति एक-जैसी नहीं होगी, फिर भी कम-से-कम इस बात पर वे एकमत होंगे कि इस प्रकार की सेवाओं को शुरू करने और चलाने के लिए राजस्व आवश्यक है। इस सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है कि जन-कल्याण के अन्तर्गत कष्ट-निवारण, अक्षमता की रोकथाम, अक्षम लोगों का पुनर्वास, व्यक्तियों की आत्म-निर्भरता आदि कार्य आ सकते हैं या नहीं। किन्तु इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि जन-कल्याण-कार्यों के मूल तत्त्व, अन्य प्रशासन-सम्बन्धी सेवाओं, जैसे जन-स्वास्थ्य, जन-सुरक्षा, जन-शिक्षा, तामीरात विभाग आदि के कार्यों से बिलकुल भिन्न हैं। यद्यपि सामाजिक सेवा के कुछ कार्यों द्वारा उपर्युक्त शासन-सम्बन्धी सेवाओं में से कुछ के कार्यों की पुनरावृत्ति हो जाती है, फिर भी सरकारी कार्यों को जन-कल्याण-कार्यों से आसानी से अलग करके पहचाना जा सकता है और यह बताया जा सकता है कि कौन जन-कल्याण-विभाग का कार्य है और कौन नहीं।

सन् १९२९ के पूर्व के जन-कल्याण संगठनों का स्वरूप ऐसा नहीं था कि समूचे संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के अधिकांश समुदायों के जीवन पर उनका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता। अमरीकी सरकार के तीन कार्य-क्षेत्र थे--राष्ट्र, राज्य और स्थानीय इकाइयाँ। इनमें से राष्ट्र की ओर से समाज-सेवा का कुछ भी कार्य नहीं होता था। सन् १८५४ में

पागलों की देख-भाल के बारे में उपस्थित विधेयक के सम्बन्ध में राष्ट्रपति पियर्स द्वारा निषेधाधिकार का प्रयोग किये जाने के बाद से राष्ट्रीय सरकार संविधान के जन-कल्याण-सम्बन्धी अधिनियम को बहुत ही सीमित रूप में स्वीकार करती थी। इस कारण उसके जन-कल्याण-सम्बन्धी कार्य परम्परागत रूप में स्वीकृत संघीय, विवादहीन क्षेत्रों तक ही सीमित रहते थे। राज-कोष, गृह, श्रम और न्याय, इन चार विभागों द्वारा की जाने-वाली सेवाएँ जन-कल्याण के अन्तर्गत मानी जाती थीं। इनमें से संयुक्तराष्ट्र जन-स्वास्थ्य विभाग की जो राज-कोश विभाग के अन्तर्गत था, सेवाएँ बहुत पहले से प्रचलित थीं। इस विभाग द्वारा सन् १७९८ में ही नाविकों के लिए एक स्वास्थ्य-बीमा योजना लागू की गयी थी। बाद के वर्षों में इस विभाग के द्वारा अधीक्षण, शोध, शिक्षण और प्रकाशन आदि द्वारा जन-स्वास्थ्य के कार्यों को आगे बढ़ाने के साथ-साथ नाविकों, समुद्री तट-रक्षकों, सरकारी कर्मचारियों तथा संघीय कैदियों के लिए सहायता-केन्द्रों और अस्पतालों की भी व्यवस्था की जाने लगी। रेड इंडियनों की सहायता के लिए स्थापित एक विशेष कार्यालय भी जो अब गृह-विभाग के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया है, बहुत पहले से उनकी सहायता का कार्य करता आ रहा है। इस कार्यालय की सेवाओं का मुख्य उद्देश्य रेड इण्डियनों को आत्म-निर्भर बनाना तथा उनकी सांस्कृतिक विशिष्टता की रक्षा करना था। प्रथम महायुद्ध के अनुभवों के बाद संघीय व्यावसायिक शिक्षा-परिषद् के निदेशन में सन् १९२० में शारीरिक दृष्टि से अक्षम विकलांगों के पुनर्वास के लिए एक योजना प्रारम्भ की गयी। प्रारम्भ में इसका उद्देश्य केवल विकलांग सैनिकों और नाविकों को पुनर्वासित करना था, किन्तु बाद में इस योजना के अन्तर्गत अन्य विकलांग व्यक्तियों की भी सहायता की जाने लगी। १९२१ ई० में वेटरन्स ब्यूरो ने नाविकों और सैनिकों के पुनर्वास का कार्य अपने हाथ में ले लिया। बाद में (सन् १९३३ में) उक्त परिषद् के अन्य कार्य भी शिक्षा-विभाग तथा गृह-विभाग को दे दिये गये। श्रम-विभाग ने महिला-समिति और बाल-समिति के माध्यम से अकेले अन्य किसी भी अभिकरण की तुलना में इतना अधिक कार्य किया है कि उसी के आधार पर संघीय सरकार के जन-कल्याण-सम्बन्धी कार्यों का अनुमान किया जा सकता है। अध्ययन, शोध, अधीक्षण, मन्त्रणा, व्याख्या तथा प्रकाशन आदि द्वारा बाल-समिति ने बहुत पहले ही यह सिद्ध कर दिया कि इस शताब्दी के प्रथम दशक में जिन लोगों ने इस समिति का प्रारम्भ किया था, उनकी आशाओं का फलीभूत होना निश्चित था। चौथा विभाग न्याय-विभाग है, जिसने जेल समिति और प्रतिज्ञाबद्ध कारावकाश समिति (पैरोल) के माध्यम से जन-कल्याण का कार्य किया है। सन् १९३० के पूर्व ये सेवाएँ एक कारावास-अधीक्षक के आधीन थीं, इसके लिए पाँच दण्ड संस्थाएँ थीं, जिनमें से तीन पुरुषों के लिए बन्दी-सुधार-गृह थे, जो वाशिंगटन

के मेकनील द्वीप, कन्साँस के लीवेन वर्थ और जार्जिया के अटलान्टा नामक स्थानों में क्रमश: सन् १८९०, १८९५, १९०२ में स्थापित हुए थे, । एक पुरुषों के लिए सुधार-गृह ओहियो के चिलीकोथे में १९१६ में खोला गया था और पश्चिमी वर्जिनिया के आल्डरसन नामक स्थान में १९२७ में स्त्रियों के लिए भी एक संस्था कायम की गयी थी । सन् १९११ में ही कारावास-प्रशासन की संयुक्त व्यवस्था के रूप में प्रतिज्ञाबद्ध कारावकाश प्राप्त (पैरोल) कैदियों के अधीक्षण की पद्धति का प्रारम्भ किया गया। उसी तरह सन् १९२५ में संघीय स्तर पर परिवीक्षण की पद्धति आरम्भ की गयी, किन्तु इन दोनों सेवाओं का कार्य-क्षेत्र सन् १९३० में, संगठित संयुक्तराष्ट्र-कारावास-समिति की स्थापना के पूर्व सीमित था ।

हमारे राष्ट्रीय इतिहास की प्रथम डेढ़ शताब्दियों में किये जाने वाले कार्यों पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि वे संकीर्ण और असंदिग्ध संघीय कार्य सीमाओं के भीतर ही परिसीमित थे । उस अवधि में हमारी राष्ट्रीय सरकार संविधान के भीतर से किसी प्रकार रास्ता बनाकर इस प्रकार के कार्यों का संचालन करती रही । राष्ट्रपति पियर्स ने सन् १८१९ में कानेक्टिकट प्रान्त में और १८२६ में केन्टुकी प्रान्त में बहरों और गूँगों की शिक्षा के लिए भूमि के अनुदान के सम्बन्ध में उपस्थित किये गये विधेयकों को इसलिए अस्वीकार कर दिया कि यह विषय संघीय सरकार के क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आता । इस तरह संघीय सरकार की सीमा के अन्तर्गत रेड इण्डियनों, संयुक्त राज्य का कानून भंग करनेवाले अपराधियों, नाविकों, युद्ध में वीरता दिखानेवाले सैनिकों और सरकारी कर्मचारियों के विषयों को ही वैधानिक माना जाता था ।

अस्तु, सन् १९१२ में बाल-समिति की स्थापना से संघीय सरकार की जन-कल्याण-सम्बन्धी धारणा में उदारता और परिवर्तन के समावेश की सूचना मिलती है । यद्यपि बाल-समिति-सम्बन्धी विधेयक में समिति का उद्देश्य देश की जनता के प्रत्येक वर्ग के बच्चों और उनके जीवन से सम्बन्धित प्रश्नों की जाँच करना और प्रतिवेदन उपस्थित करना बतलाया गया था और इस तरह उसमें सीधे-सीधे बाल-सम्बन्धी कार्य करने की जगह तत्सम्बन्धी सूचना-संग्रह और शोध पर ही जोर दिया गया था, फिर भी उसमें पहली बार यह स्वीकृति मिली थी कि अमेरिका के बच्चों के लिए किये जानेवाले कल्याण के कार्यों में संघीय सरकार का भी योग होना चाहिए ।

संघ द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता और अनुदान

संघ सरकार की ओर से राज्यों को सेवा-कार्य के लिए दिये जानेवाले अनुदान और सहायता से सम्बन्धित नीति में उदारता और विस्तार आ जाने के कारण संघीय स्तर पर

चलनेवाले जन-कल्याण के कार्यक्रमों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। सन् १७८७ में नार्थ वेस्ट आर्डिनेन्स द्वारा पहली बार किसी राज्य को इस बात के लिए भूमि का अनुदान दिया गया कि उसके बेचने से जो आय हो, उसको वह राज्य-संघ द्वारा निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयोग करे। बाद में सन् १८६२ के मारिल कानून द्वारा निर्धारित शैक्षणिक उद्देश्यों, जैसे किसी भूमि अनुदान से संचालित कालेज की सहायता की पूर्ति के लिए भी अनुदान देने की व्यवस्था की गयी। इस तरह अन्य सेवाओं के लिए भी भूमि-अनुदान दिया जाने लगा, जैसे सन् १८९९ में अल्बामा के बालिका-औद्योगिक-विद्यालय को, १९१० में आरिजोना के तथा १८९८ में न्यू मैक्सिको के अंध, बधिर, मूक-आश्रमों तथा विद्यालयों को, १८८९ में मोन्टाना के बधिर-मूक-आश्रम को, १९१० में आरिजोना के तथा १८९० में इडाहो के दान-संचालित दण्ड और सुधार-संस्थाओं को और १८८९ में मोन्टाना के तथा १८९८ में न्यू मैक्सिको के सुधार-विद्यालयों को।

शीघ्र ही भूमि-अनुदान से आर्थिक अनुदान की ओर भी कदम बढ़ाया गया। १८३७ में कांग्रेस ने राज्य कोश का धन राज्यों को कर्ज के रूप में वितरित किया, यद्यपि यह आशा की गयी कि वह कर्ज वापिस मिलेगा। १८८७ ई० में राज्यों के कृषि-केन्द्रों को, और एक वर्ष बाद युद्ध से लौटे निराश्रित सैनिकों के लिए निर्मित संस्थाओं को, और फिर १८९० में भूमि-अनुदानप्राप्त विद्यालयों को आर्थिक सहायता देने का कार्य प्रारम्भ हो गया। इन अनुदानों के बाद ही अन्य प्रकार की सेवाओं के लिए भी अनुदान देने का कार्य प्रारम्भ हुआ, जैसे वन-विभागीय सेवा (सन् १९११), कृषि-प्रसार-कार्य (१९१४), सड़क-विभाग (१९१६), व्यावसायिक शिक्षा (१९१७), यौन रोग-नियन्त्रण (१९१८), व्यावसायिक पुनर्वास (१९२०) और जच्चा-बच्चा-स्वास्थ्य-कल्याण (१९२१)। सेवा-कार्यों से सम्बन्धित इस प्रारम्भिक प्रगति की तुलना आज के जन-कल्याण-सम्बन्धी प्रगति से करने पर दोनों में बहुत कम सम्बन्ध दिखलाई पड़ता है, फिर भी आज राज्यों और संघ की ओर से अनुदान, अर्ध अनुदान या आर्थिक सहायता प्राप्त कर जो सेवाकार्य किये जा रहे हैं, उनके मूल में संघ द्वारा सहायता प्रदान करने का तत्कालीन सिद्धान्त निहित है। १९२० की व्यापारिक तेजी के काल में संघीय सरकार ने नवीन सेवा-कार्यों का प्रारम्भ नहीं किया, सन् १९३० की मंदी की समाप्ति के पहले संघीय सरकार इस बात के लिए दृढ़तापूर्वक कटिबद्ध हो गयी कि सहायता कार्यों में न केवल स्थानीय समुदायों और राज्यों का आर्थिक अंशदान प्राप्त होना चाहिए, बल्कि उनका संघीय सरकार के साथ मिलकर इस प्रकार का कार्य करना भी वांछनीय और आवश्यक है। यह परम्परा आज चलती जा रही है और द्वितीय महायुद्ध के बाद के कार्यक्रमों के लिए संघीय सरकार की ओर से अनुदान अब भी मिलता जा

रहा है। इन कार्यक्रमों में से मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों के लिए सबसे अधिक अनुदान मिलता है।

सन् १९२९ के पूर्व की असंस्थागत सेवाएँ

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही कुछ असंस्थागत सेवा-कार्य, जैसे अंधों, वृद्धों और आश्रित बच्चोंवाली विधवाओं को वृत्ति देने के सम्बन्ध में कानूनों का निर्माण प्रारम्भ हो गया था। यद्यपि अपने मूल व्यावहारिक रूप में ये सेवाएँ अधिक व्यापक नहीं थीं, किन्तु बाद में उनमें व्यापकता आती गयी और अन्त में १९३५ में वे सामाजिक सुरक्षा कानून के अन्तर्गत सम्मिलित कर ली गयीं। इस तरह उन्हीं को इस शताब्दी के जन-कल्याण कार्यों का मुख्य और विशिष्ट रूप मानना चाहिए।

जरूरतमंद अंधों की सहायता—अंधों की देखभाल सन् १९२९ के पूर्व कुछ स्थानों में गैर सरकारी और कुछ में सरकारी संस्थाओं द्वारा की जाती थी। कभी-कभी इस काम में संस्थाओं की सहायता ली जाती थी, किन्तु अधिकतर उनकी शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा पुनश्शिक्षण का प्रबन्ध सरकारी तौर पर किया जाता था। पराश्रित बच्चों और वृद्धों को सरकारी सहायता मिलने के प्रारम्भ होने के बहुत पहले इस बात के लिए आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था कि अंधों को सरकार की ओर से भत्ता मिलना चाहिए, क्योंकि बाजार में मजदूरी करने अथवा आत्मनिर्भर होने के लिए पर्याप्त धन अर्जन करने की दृष्टि से ये प्रायः असुविधा की स्थिति में होते हैं। १८४० ई० में ही इण्डियाना राज्य में निर्धन अंधों की सहायता के लिए एक परिनियम स्वीकृत किया गया था। उसके बाद सन् १८६६ में न्यूयार्क शहर की नगर-महापालिका के आल्डरमैन की समिति तथा कार्यकारिणी परिषद् ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया, जिसमें अंधों द्वारा, सहायता के लिए दिये गये आवेदन-पत्रों पर विचार करने की पद्धति निश्चित की गयी थी। गत शताब्दी के अन्त के पूर्व ही ओहियो राज्य ने अंधों की सहायता के लिए एक कानून बनाया था। सन् १८९८ का यह कानून तथा सन् १९०४ में स्वीकृत एक और कानून, दोनों ही बाद में अवैधानिक घोषित कर दिये गये। किन्तु १९०८ में एक और कानून बना, जिसे वैधानिकता का सामना करना पड़ा। इस बीच दो और राज्यों ने भी इसी प्रकार के कानून बनाये थे और अंधों को भत्ता देने के सम्बन्ध में उदाहरण उपस्थित किया था। वे राज्य थे इलिनोएस और विसकान्सिन, जिनमें क्रमशः १९३० और सन् १९०७ में कानून बने थे। इस तरह १९१० ई० तक तीन राज्यों में अंधों को सरकारी सहायता देने की नीति स्वीकार कर ली गयी थी, किन्तु अब तक बच्चोंवाली विधवाओं और वृद्धों को वृत्ति देने की व्यवस्था किसी भी राज्य में नहीं हुई थी। अगले दशक में आठ और राज्यों में

अंधों की सहायता के सम्बन्ध में कानून बनाये गये, ये सभी कानून सन् १९११ (कन्सॉस राज्य) और सन् १९१७ (नेब्रास्का राज्य) के बीच बने। सन् १९२९ तक और अनेक राज्यों ने भी इस प्रकार के कानून बनाये।

विधवाओं और बच्चों की सहायता—निर्धनता कानून-सम्बन्धी सिद्धान्तों तथा परम्परागत गैर-सरकारी सेवा-कार्यों से आगे बढ़ने की दिशा में एक कदम यह भी था कि विधवाओं और आश्रित बच्चोंवाली माताओं की आर्थिक सहायता सरकार की ओर से की जाने लगी। कई शताब्दियों तक निर्धनता-कानून के आधार पर आश्रित बच्चों के साथ जैसा व्यवहार होता रहा, उससे न जाने कितने परिवारों और बच्चों का जीवन, निर्धनतापूर्ण और संस्थाओं पर आश्रित रहने वाला हो गया था और इससे यह सिद्ध हो गया कि इस दिशा में किये गये सेवा-कार्यों की समस्त पद्धति में शक्ति का भयंकर अपव्यय होता रहा। पालन-गृह-आन्दोलन जो १८५३ में गैर-सरकारी तत्त्वावधान में प्रारम्भ हुआ था, बच्चों की देख-भाल की दिशा में सबसे पहला नवीनता-सूचक कदम था, किन्तु सन् १९०९ में ह्वाइट-हाउस में जो सम्मेलन हुआ, उसमें यह मत प्रगट किया गया कि बच्चों और माताओं को उनके घरों में रखकर ही उनकी सहायता करनी चाहिए। सम्मेलन ने यह घोषणा की कि जब तक अत्यन्त आवश्यक और विवशतापूर्ण कारण न हों बच्चों को उनके घर से अलग नहीं करना चाहिए। निर्धनता को अपने आप में एक आवश्यक और विवशतापूर्ण कारण नहीं स्वीकार किया गया। सम्मेलन ने घोषणा की कि यदि बच्चों को उनके घर में ही रखकर सहायता देनी हो तो "यह कार्य इस पद्धति और उन स्रोतों की सहायता से होना चाहिए, जो किसी समुदाय की सहायता-सम्बन्धी सामान्य नीति के अनुरूप हों, सरकारी सहायता की अपेक्षा गैर सरकारी दान से इस कार्य का किया जाना अधिक उपयुक्त होगा।" सम्मेलन में इस बात के महत्त्व को स्वीकार किया गया कि बच्चों के जीवन-निर्माण में उनकी माताओं का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। तथा अपने घर में जीवन के प्रारम्भिक दिन व्यतीत करना भी बच्चों के विकास की दृष्टि से बहुत आवश्यक है, सम्मेलन द्वारा अभिव्यक्त इस मत से बच्चों की देख-भाल की दिशा में एक नवीन धारणा का प्रारम्भ हुआ।

अमेरिका में माताओं की सहायता-सम्बन्धी पहला कानून अप्रैल, सन् १९११ में मिसूरी राज्य के एक जनपद—जैक्सन जनपद के लिए निर्मित हुआ। उस कानून में यह कहा गया था कि ऐसी जरूरतमंद माताओं को जिनके पति मर चुके हों अथवा जेलों में हों और जिनके बच्चे १४ वर्ष से कम उम्र के हों, भत्ता मिलेगा। उसी वर्ष जून मास में इलिनोएस राज्य में पूरे राज्य के लिए इसी प्रकार का एक "माता-पिता-सहायता-कोश-कानून" बनाया गया। उस कानून द्वारा प्रत्येक जनपद के बाल-न्यायालय को सहायता

प्राप्त करने के योग्य बच्चों और माँ-बाप की पात्रता का निश्चय करने तथा बच्चों की देखभाल के लिए उचित आर्थिक सहायता की रकम निर्धारित करने का अधिकार दिया गया था। इलिनोएस के बाद कोलोरैडो राज्य ने भी सन् १९१२ में ऐसा ही एक मातृ-क्षति पूर्ति-कानून लागू किया।

एक बार हो जाने के बाद यह आन्दोलन तेजी से फैलने लगा। सन् १९१९ के अन्त तक ३९ राज्यों और २ अधीनस्थ प्रदेशों में विभिन्न नामों से निम्नलिखित विषयों के कानून निर्मित हुए--"माताओं की वृत्ति, माताओं का भत्ता, बाल-कल्याण, मातृ-सहायता कोश, विधवाओं की क्षति-पूर्ति, आश्रित बच्चों की आर्थिक सहायता, "आश्रित बच्चों को अपने घरों में रखने के लिए कानून का निर्माण"। इन सबका उद्देश्य एक ही था। अगले दशक में अर्थात् सन् १९२९ के अन्त तक ५ अन्य राज्यों और कोलम्बिया जिले ने भी इस प्रकार के कानून बनाने में उपर्युक्त राज्यों का अनुसरण किया। परिणाम स्वरूप सन् १९३० की मंदी के समय तक ४४ राज्यों कोलम्बिया जिला और अलास्का तथा हरवर्ड के अधीनस्थ प्रदेशों में बच्चों को उनके घर में रखकर ही सहायता देने का नियम स्वीकार कर लिया गया था।

वृद्धावस्था-वृत्ति--काल-क्रम की दृष्टि से अंधों और आश्रित बच्चों की माताओं की सहायता का कार्य वृद्धों की सहायता-सम्बन्धी कार्य से पहले प्रारम्भ हुआ। अंधों की आर्थिक सहायता से सम्बन्धित पहला कानून सन् १८४० में बनाया गया था, और विधवाओं को वृत्ति देने की व्यवस्था से सम्बन्धित पहला कानून (राज्य व्यापक) सन् १९११ में पारित हुआ था। किन्तु वास्तव में वृद्धावस्था-वृत्ति-सम्बन्धी अमेरिका में पहला कानून सन् १९२३ में विधि-पुस्तिका में आया। (यद्यपि इसके पूर्व १९१४ में आरिजोना राज्य में भी एक कानून बना था, पर वह बाद में अवैधानिक घोषित कर दिया गया। अलास्का के अधीनस्थ प्रदेश में अवश्य सन् १९१५ में इस प्रकार का एक कानून बना और सही अर्थ में उसी को इस विषय का सर्वप्रथम अमेरिकी कानून मानना चाहिए।)

सन् १९२३ के बहुत पहले ही यह स्पष्ट हो गया था कि निर्धनता कानून के सिद्धान्तों और पद्धतियों के अनुसार दी जानेवाली सहायता से उसके उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो रही थी। इससे न केवल सहायता प्राप्त करने वाले व्यक्ति की नैतिक शक्ति क्षीण हो जाती थी, बल्कि वस्तुतः उससे उस व्यक्ति तथा उस परिवार की, जिसका वह अंग था, हानि भी होती थी। इस तरह ऐसी सहायता बहुत महँगी सिद्ध हुई। यद्यपि प्रतिव्यक्ति की औसत सहायता की रकम कम थी, किन्तु निर्धनता की स्थायी स्थिति के कारण सम्पूर्ण सहायता कार्य के व्यय की पूरी रकम बहुत बड़ी होती थी। दान-गृहों की दयनीय स्थिति का ज्ञान सामान्य जनता को भी होने लगा। उनकी स्थिति की दयनीयता के बारे में

सामाजिक कार्यकर्त्ताओं और जनता के बीच के सार्वजनिक काम करनेवाले सचेत व्यक्तियों को तो जानकारी हो ही गयी थी, सामान्य व्यवसायियों और कर-दाताओं तक भी उनकी खबरें पहुँचने लगी थीं। इतनी बड़ी आवश्यकता की पूर्ति के लिए गैर सरकारी रूप में दी जाने वाली सहायता पर्याप्त नहीं हो सकती थी, चाहे उसका उद्देश्य कितना भी पवित्र क्यों न हो? गैर सरकारी संस्थाओं की सहायता कुछ जरूरतमंद वृद्ध लोगों तक ही सीमित रह जाती थी। उस समय तक अमेरिका में सामाजिक बीमा-योजना का प्रारम्भ नहीं हो सका था। यह आश्चर्य की बात है कि वृद्धों की सहायता की आवश्यकता के लिए इतने पुष्ट कारणों के होते हुए भी अमेरिका में उनकी सरकारी सहायता का कार्य पहले नहीं प्रारम्भ हुआ। जब वृद्धावस्था-वृत्ति का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और उसके ठोस परिणाम भी दिखाई पड़ने लगे, उस समय भी उसके प्रभावों का उतना प्रचार नहीं हुआ, जितना अंधों और आश्रित बच्चों की सहायता-सम्बन्धी कार्यों का। आरिजोना के सन् १९१४ के कानून तथा अलास्का के अधीनस्थ प्रदेश के १९१५ के कानून को जो अवैधानिक घोषित कर दिये गये थे, यदि छोड़ दिया जाय तो अमेरिका में मोन्टाना राज्य को ही इस बात का श्रेय है कि उसने सर्वप्रथम वृद्धावस्था-वृत्ति-सम्बन्धी एक ऐसा विधेयक स्वीकृत किया, जो अवैधानिक नहीं माना गया। उसी वर्ष अर्थात् सन् १९२३ में एक अन्य राज्य नेवादा में भी ऐसे कानून बने, जो न्यायालयों में अवैधानिक नहीं सिद्ध हो सके (यद्यपि पेन्सिलवानिया राज्य का कानून अवैधानिक घोषित कर दिया गया।) मंदी का काल प्रारम्भ होने के पहले ही निम्नलिखित राज्यों में भी इस प्रकार के कानून बन गये——विसकान्सिन (१९२५), केन्टुकी (१९२६), मेरीलैण्ड (१९२७), केलिफोर्निया, मिनेसोटा, उटा और वियोमिंग (१९२९)। इस तरह ९ राज्यों और एक संघ-शासित प्रदेश ने वृद्धों की सहायता से सम्बन्धित निर्धनता-कानून के सिद्धान्त से अलग हटकर नया रास्ता अपना लिया।

यद्यपि निर्धनता-कानून अभी भी बना हुआ था, पर उसके मूल में निहित इस सिद्धान्त के प्रति गंभीर सन्देह उत्पन्न हो गये थे कि उससे मानवीय आवश्यकताओं की सम्यक् पूर्ति हो सकती है। यदि अंधों, बच्चों और वृद्धों की सहायता से सम्बन्धित पुराने विवरणों को देखा जाय तो यह पता चलेगा कि सन् १९११ और १९२९ के बीच बच्चों के लिए किये जाने वाले कार्यों की गतिशीलता तथा उसके पूर्व की तीन शताब्दियों में तत्सम्बन्धी कार्यों की अवहेलना के बीच कोई सम्बन्ध-सूत्र अवश्य है। साथ ही यह बात भी स्पष्ट हो जायगी कि सन् १९२९ के पूर्व वृद्धों की देख-भाल के कार्यों की मंद गति तथा उसके बाद के पारित तत्सम्बन्धी कानून में सन्निहित उदारता नहीं, बल्कि आत्यन्तिक उद्विग्नता के बीच भी एक स्पष्ट समवाय सम्बन्ध है। पिछले दशकों में वृद्धों के प्रति जो निरन्तर

बढ़ती हुई सद्भावना दिखाई पड़ी, उसका प्रभाव वृद्धावस्था-सुरक्षा-कानून पर पड़ना अवश्यम्भावी था ।

१९२९ के बाद के जन-कल्याण कार्य

एक बार जब हमें यह ज्ञात हो गया कि १९२९ की विध्वंस लीला ने प्रथम महायुद्ध के बाद की दार्शनिक विचार-धारा को समाप्त कर दिया है तो जनता की समस्याओं को देखने तथा उन समस्याओं के और जनता के प्रति हमारे व्यवहार में मौलिक परिवर्तन हो गया तथा तत्सम्बन्धी नये मार्ग सामने आ गये । उच्च अधिकारियों द्वारा बार-बार विश्वास दिलाये जाने पर भी आर्थिक सम्पन्नता कहीं भी नहीं दिखलाई पड़ रही थी । मंदी पूरे जोर के साथ आ पहुँची थी । समाज में इस मंदी का यह प्रभाव पड़ा कि लाखों मजदूर अपने परिवारों के भरण-पोषण के लिए जीविका अर्जित करने में असमर्थ हो गये, जनता––सामान्य और सीधी सादी जनता, भूख और बीमारी से तड़पने लगी; पराश्रित हो गये व्यक्ति निराशा और कुंठा से ग्रस्त हो गये, अधिकता के इस देश अमेरिका में भुखमरी की विध्वंस-लीला देखकर जनता में विद्रोह की लहरें उठने लगीं । इस प्रकार की उथल-पुथल की स्थिति में सन्तुलन खोजने और जनता की अनन्त आवश्यकताओं की तात्कालिक पूर्ति करने का कार्य निर्धनता-कानून के सिद्धान्तों की ओर लौटने से नहीं, बल्कि उन्हें त्यागने से ही हो सकता था । इंग्लैंड में सन् १९०९ के वेब्ब-अल्पमत-प्रतिवेदन में इस बात की पहले ही भविष्यवाणी की जा चुकी थी । यह बात सच है कि सन् १९२९ और १९३२ के बहुमूल्य वर्षों में हम नवीनता की ओर से सशंकित होकर प्राचीनता को ही पकड़े रहने का प्रयत्न करते रहे । फिर भी १९३३ और १९३५ के जन-कल्याण-सम्बन्धी कानूनों के सम्बन्ध में नवीन विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई, यद्यपि इन विचार-धाराओं को कानूनी स्वीकृति बाद में मिली, पर नवीनता के इस युग का प्रारम्भ उन दिनों और घटनाओं से मानना चाहिए, जिनके कारण अन्त में ये विधेयक स्वीकृत हो सके ।

गैर सरकारी अभिकरणों से सरकारी अभिकरणों की ओर

सन् १९२९ तक सामाजिक कार्य के क्षेत्र में गैर सरकारी अभिकरणों की ही प्रमुखता थी । यह कार्य व्यक्तिगत सहायता से चलनेवाले अभिकरणों के तत्त्वावधान में काम करने-वाले कार्यकर्ताओं के द्वारा ही मुख्य रूप से किया जाता था । इन कार्यकर्ताओं और अभिकरणों ने अपने प्रयत्नों द्वारा सेवा-कार्य-क्षेत्र में एक विशेष स्तर का निर्माण किया था । उन्होंने मुख्यतः वैयक्तिक तत्त्वावधान में ही सामाजिक कार्यों के प्रशिक्षण का प्रारम्भ और विकास किया था । वे सार्वजनिक क्षेत्र में काम करनेवाले कार्यकर्ताओं के प्रति घृणा तो नहीं, पर प्रायः अविश्वास का भाव रखते थे । इसके अतिरिक्त गैर

सरकारी अभिकरणों, विशेषकर पारिवारिक सहायता-समितियों ने सहायता-कार्य करने का अधिक-से-अधिक भार अपने ऊपर ले लिया था। इस प्रक्रिया में सहायता-सम्बन्धी कार्यों की कुछ विशेष विधियों और कौशलों का विकास हुआ था और वे कार्यकर्ता इस प्रकार की सेवाओं के मूल्य को, सेवकों और सेवा प्राप्त करनेवाले दोनों की दृष्टि से, अच्छी तरह समझ चुके थे।

इन बातों को ध्यान में रखने पर तथा वास्तविकता के इस पक्ष पर विचार करने पर कि जन-कल्याण-कार्य का क्षेत्र अयोग्य और राजनीति के पिट्ठू व्यक्तियों से भरा हुआ था, यह बात आसानी से समझ में आ जायगी कि गैर सरकारी अभिकरणों का सरकारी अभिकरणों द्वारा सहायता कार्य के लिए सरकारी धन के उपयोग किये जाने के प्रस्ताव के प्रति सन्देहशील होना स्वाभाविक ही था। इस सम्बन्ध में उनका यह आग्रह था कि गैर सरकारी अभिकरण सहायता-कार्य करने के लिए पूर्णतः योग्य और इच्छुक हैं। प्रारम्भ में इसका आशय इतना ही था कि सामुदायिक कोश-संग्रह के प्रयत्नों का विस्तार किया जाय तथा विभिन्न गैर सरकारी अभिकरणों को मिलनेवाली सहायता के फल-स्वरूप उनकी बढ़ती हुई आय का बुद्धिमत्तापूर्वक उपयोग किया जाय। किन्तु बेकारों और पराश्रितों की माँगें इतनी बढ़ गयीं कि उनकी पूर्ति गैर सरकारी कोशों द्वारा होना सम्भव नहीं था। अनेक प्रभावशाली व्यक्तियों तथा बहुत-से गैर सरकारी अभिकरणों ने यह स्वीकृति दे दी कि राजकीय कोश से इस कार्य के लिए धन अवश्य खर्च किया जाय, किन्तु उस धन का वितरण गैर सरकारी अभिकरण ही करें। अनेक वर्षों के प्रयोगों के बाद अन्त में यह निर्णय किया गया कि सरकारी धन का उपयोग सरकारी अभिकरणों द्वारा किये जानेवाले सहायता-कार्य में ही किया जाय।

सन् १९२९ की वसन्त ऋतु में अमेरिका में बेकारों की संख्या करीब ३० लाख थी। वसन्त ऋतु में इस संख्या में कमी की आशा की जाती थी, किन्तु इस आशा के विपरीत वह बढ़ती-बढ़ती सन् १९३० की जनवरी में ४० लाख हो गयी। अगला वर्ष समाप्त होते-होते यह संख्या बढ़कर ७० लाख हो गयी। १९३३ ई० की वसन्त ऋतु में अमेरिका में कुल बेकारों की संख्या १३० से १५० लाख के बीच थी। इन संख्याओं को देखते समय इस बात की ओर भी दृष्टिपात किया जा सकता है कि अमेरिका में काम में लगे लोगों की आबादी में से मजदूरों की संख्या ४ करोड़ ८० लाख थी।

गैर सरकारी सामाजिक कार्य-अभिकरण जो अब तक अधिकांश सहायता-कार्य करते आ रहे थे, इस भयंकर स्थिति और विस्तृत कार्य-क्षेत्र को देखकर चिन्तित हो गये। उनका सिद्धान्त उन्हें यह बोझ उठाने के लिए विवश करना था। इसका अर्थ यह था कि वे व्यक्तिगत स्रोतों से धन-संग्रह करने का अभूतपूर्व प्रयत्न करें। सामुदायिक दान-

पेटी में पहले प्रतिवर्ष तीस लाख डालर धन एकत्र होता था, किन्तु अब सन् १९३१ में ५० लाख डालर, १९३२ में ७० लाख डालर और १९३३ में १ करोड़ डालर एकत्र करने की माँग की गयी थी और फिर भी यह देखा गया कि सहायता-सम्बन्धी जो माँगें पूरी नहीं की जा सकीं, उनकी मात्रा दी गयी सहायता की तुलना में कई गुना अधिक थी। जो सामुदायिक दान-पेटिकाएँ पहले विभिन्न कोशों के लिए अलग-अलग रखी जाती थीं, जैसे——उदार सामुदायिक कोश, यहूदी-कोश आदि, वे अब एक में मिला दी गयीं, किन्तु इसके बाद भी जो धन इकट्ठा होता था, वह आवश्यक धनराशि का एक अंश मात्र ही होता था।

गैर सरकारी अभिकरणों द्वारा कोश-संग्रह के प्रयत्नों के अतिरिक्त वैयक्तिक दान और कुछ व्यक्तियों के माध्यम से बेकारों को काम दिलाने में सहायता करने का आन्दोलन भी प्रारम्भ हुआ। हर जगह "काम में हिस्सा बँटाओ" और "काम दो" की योजनाएँ प्रस्तुत की गयीं और अन्त में उन्हें संगठित करने के लिए प्रतिभाशाली व्यक्ति मिल भी गये। प्रत्येक क्षेत्र के बेकारों को काम दिलाने के लिए क्षेत्रीय सहायता-योजना लागू की गयी, जिसे उस क्षेत्र के रहने वाले लोग मिलकर चलाते थे। इस योजना में निस्संदेह स्थानीय और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व पर ही बल दिया गया था। चालू सड़कों के नुक्कड़ों पर सेव बेचने की योजना भी वैसी ही थी।

किन्तु काम इतना अधिक था कि वैयक्तिक दान से उसका चलना सम्भव नहीं था। सरकारी अभिकरण जो उस समय कार्य कर रहे थे, इस परिस्थिति की भयंकरता की बात सोचकर और भी शक्तिहीन हो गये। सरकारी जनकल्याण-विभागों तथा व्यक्तियों और सरकार के संयुक्त प्रयत्न से चलनेवाले सहायता-कोशों की व्यवस्था भी पर्याप्त नहीं सिद्ध हुई। समस्याएँ और उन्हें सुलझाने की दृष्टि जिस तरह वैयक्तिक नहीं रह गयीं थीं उसी तरह अब वे स्थानीय भी न बनी रह सकीं। अतः अगला कदम——सम्पूर्ण उत्तर-दायित्व में राज्य द्वारा हिस्सा बटाना——अनिवार्य हो गया। फलस्वरूप तात्कालिक कार्यक्रम को चलाने के लिए पहले से चले आ रहे सरकारी विभागों के अतिरिक्त अन्य राजकीय संस्थाओं की भी स्थापना की गयी। इनमें से सबसे प्रथम महत्त्वपूर्ण राजकीय अभिकरण का नाम "अस्थायी संकटकालीन सहायता प्रशासन" था और यह अभिकरण जन-कल्याण विभाग से एकदम पृथक् था।

प्रथम अस्थायी संकटकालीन सहायता-प्रशासन

२३ सितम्बर, सन् १९३१ को न्यूयार्क में बेकारों की राजकीय सहायता के लिए अस्थायी तात्कालिक सहायता-व्यवस्था से सम्बन्धित एक कानून बनाया गया। नगरों

और जनपदों में बेकारों की सहायता के लिए उनके पूरे व्यय का ४० प्रतिशत अनुदान देने के लिए राजकीय कोश का निर्माण किया गया। यही नहीं, देश को "टेम्प्रेरी इमर्जेन्सी रिलीफ ऐडमिनिस्ट्रेशन को "टेरा" ही कहा जाता था। सहायता कार्यों के उचित और कुशल प्रबन्ध के लिए नियम बनाने और उन्हें व्यवहृत करने का अधिकार भी दिया गया। अक्तूबर में न्यूयार्क के गवर्नर फ्रैंक्लिन डि रूज वेल्ट ने हैरी हप्किन्स को, जो एक अनुभवी सामाजिक कार्यकर्त्ता थे, "टेरा" का अधिशासी सचिव नियुक्त किया। सन् १९३१ के अन्त तक न्यू जर्सी और पेन्सिलवानिया में भी संकटकालीन सहायता-संगठनों की स्थापना की गयी और दूसरे ही वर्ष विस्कान्सिन, रोड आइलैण्ड, इलीनोएस और ओहियो में भी उनकी सहायता हो गयी। उनके लिए जो कोश निर्मित हुआ था, उसकी राशि अभूतपूर्व थी। न्यूयार्क में जो दो करोड़ डालर का प्रांरम्भिक कोश प्रारम्भ किया गया था, वह वर्ष भर के कुल व्यय के आधे के बराबर ही था। पेन्सिलवानिया में वर्ष का अन्त होते-होते प्रारम्भिक कोश की राशि को और भी बढ़ाना पड़ा तथा अन्य राज्यों में भी ऐसा ही हुआ। कोश के निर्माण के समान ही तत्सम्बन्धी उस कानून में निहित सिद्धान्तों का भी महत्त्व था, जिसके अनुसार बेकारी से उत्पन्न कष्टों को दूर करने में सहायता पहुँचाने का, स्थानीय समुदाय और राज्य दोनों का सम्मिलित उत्तरदायित्व था।

राज्य द्वारा किये जाने वाले इन प्रयत्नों के बावजूद देश की स्थिति उत्तरोत्तर बिगड़ती ही गयी। कई राज्यों में बेकारों की सहायता के लिए राजकीय कोश के धन के प्रयोग में वैधानिक रुकावट आ गयी, अन्य राज्यों, विशेषकर छोटे और अनौद्योगिक राज्यों में, उसके लिए पर्याप्त आर्थिक साधन नहीं थे। परिस्थिति को और अंधकारमय बनाने वाली एक अन्य बात यह थी कि कई स्थानीय समुदाय इतना धन संग्रह करने में असमर्थ थे कि उन्हें उसके अनुपात में राजकीय अनुदान मिल सके। कुछ व्यक्ति और समूह तो ऐसे भी थे, जो इस तथ्य को ही नहीं स्वीकार करते थे कि देश में आर्थिक मंदी और भुखमरी की स्थिति आ गयी है। उच्च सरकारी कर्मचारियों, प्रमुख उद्योगपतियों तथा उनके प्रतिभाशाली प्रबन्ध-सहायकों के वैयक्तिक दान के आधार पर समस्या को हल करने के साहसपूर्ण प्रयत्न भी उत्तरोत्तर व्यर्थ सिद्ध होते जा रहे थे। अतः इस आन्दोलन में संघीय सरकार का भाग लेना भी अनिवार्य हो गया।

सीनेट के दो सदस्यों—कास्टिगान और लॉफोलेटे—ने इस बात के लिए पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की कि इस कार्य के लिए संघीय सरकार द्वारा राज्यों को सहायता मिलनी चाहिए। किन्तु संघ सरकार द्वारा यह बोझ या उसका आंशिक भार भी उठाये जाने के लिए अभी उपयुक्त समय नहीं आया था। उन सदस्यों के प्रयत्न तत्काल फलीभूत नहीं हुए क्योंकि कांग्रेस ने उनके साहसपूर्ण प्रस्तावों को सुन तो लिया,

किन्तु फरवरी १९३२ को प्रशासन की सलाह से तत्सम्बन्धी विधेयकों को अस्वीकृत कर दिया। एक ही प्रकार के तर्क बार-बार दिये जाते थे, जो ये थे कि इससे सरकार की प्रतिष्ठा को धक्का लगेगा, युगों से प्रचलित स्थानीय उत्तरदायित्व और सहायता के सिद्धान्त को छोड़ देना पड़ेगा, राज्यों के अधिकारों में हस्तक्षेप होगा, एक नवीन नौकरशाही का जन्म होगा और संघीय सहायता आखिरकार एक प्रकार का भिक्षा-दान ही तो है।

संघीय आपत्कालीन सहायता-कानून

किन्तु मामला वहीं समाप्त नहीं हुआ। छः मास के भीतर ही काँग्रेस ने एक कानून निर्मित किया जिसका नाम था "आपत्कालीन सहायता और निर्माण-कानून।" इसके द्वारा "पुनर्निर्माण-अर्थनिगम" को यह अधिकार दिया गया कि वह तीस करोड़ डालर के संघीय कोश का धन "जरूरतमंद तथा पीड़ित लोगों के सहायतार्थ काम और अन्य प्रकार की व्यवस्था करने और बेकारी से उत्पन्न कठिनाइयों से मुक्ति दिलाने के लिए राज्यों को कर्ज दे। शीघ्र ही यह पता चल गया कि यह धन-राशि अपर्याप्त थी। सारे देश में परिस्थिति और भी खराब होती चली गयी। इसी बीच चुनाव हुआ, जिसके फलस्वरूप शासन बदल गया। दो महीने बाद, सन् १९३३ की मई में नव-निर्वाचित काँग्रेस ने संघीय आपत्कालीन सहायता-विधेयक स्वीकृत किया, जिसके अनुसार सहायता-कार्य के लिए ५० करोड़ डालर का कोश अलग कर दिया गया। उन राज्यों को जो संघीय अनुदान के बराबर स्वयं भी धन-राशि देने में समर्थ थे समकक्षता के आधार पर अनुदान दिये गये और अन्य राज्यों को जो ऐसा करने में समर्थ नहीं थे, बिना किसी शर्त के अनुदान देने की व्यवस्था की गयी। इस तरह एक वर्ष के भीतर ही १० अरब की धनराशि वितरित की गयी।

संघीय आपत्कालीन सहायता-कानून ने पूर्ववर्ती सभी कानूनों को निरर्थक कर दिया। इसके कारण तीन शताब्दी पुराना निर्धनता-कानून बेकार हो गया। इसका महत्त्व इस बात में था कि इसके द्वारा संघीय सरकार ने १० करोड़ जनता के कल्याण का उत्तरदायित्व ग्रहण करने का सिद्धान्त स्वीकार किया। इसमें यह व्यवस्था की गयी कि संघीय सरकार राज्यों और स्थानीय समुदायों के बेकारों के सहायता-सम्बन्धी खर्च में उनके साथ सहयोग तथा उनका नेतृत्व करेगी।

कार्य-भार सँभालने के प्रथम दिन ही २२ मई, सन् १९३३ को प्रशासक हेरी हापकिन्स ने सात राज्यों को पहला अनुदान स्वीकृत किया। जून के अन्त तक ४५ राज्यों को अनुदान दिया जा चुका था। उसी वर्ष नवम्बर महीने में नागरिक श्रम-प्रशासन-योजना का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इस योजना का उद्देश्य अधिक-से-अधिक मजदूरी के चालू दर पर नागरिक श्रम-कार्यों में लगाना था। यह योजना मार्च, १९३४ तक चलती रही। इस काल में इसमें ४० लाख मजदूरों को जिनमें आधे पहले बेकार थे और जिनका नाम

सहायतार्थ-सूची में नहीं था, काम दिया गया। नागरिक श्रम-प्रशासन का स्वीकृत उद्देश्य नागरिकों को काम देकर तथा इस तरह मुद्रा को निरंतर प्रचलन में रखकर आर्थिक व्यवस्था को गति प्रदान करना था। किन्तु आधे वर्ष से कम समय में ही १० अरब डालर का खर्च संघीय सरकार के लिए भी बहुत मँहगा सिद्ध हुआ।

नागरिक श्रम-प्रशासन की समाप्ति से लेकर श्रम-प्रगति-प्रशासन के प्रारम्भ तक अनेक प्रयोगों और उपायों का अवलम्बन किया गया। इनमें से जनता की कष्ट-मुक्ति से सम्बन्धित कुछ कार्यक्रम ये थे "संकट ग्रस्त क्षेत्रों" अथवा "संकट ग्रस्त आबादी वाले क्षेत्रों" (जैसे, ईमारती लकड़ी वाले वे जंगली-क्षेत्र जहाँ की सारी लकड़ी कट चुकी है अथवा वे कोयला-क्षेत्र जिनका कोयला निकाला जा चुका है) में सहायता कार्य, देहाती क्षेत्रों में सहायता कार्य (जैसे, पुनर्व्यवस्था-प्रबन्ध, कृषि-क्षेत्र सुरक्षा-प्रबन्ध) और शहरी क्षेत्रों में सहायता कार्य (जैसे, संघीय और स्थानीय कोशों की सहायता से चलने वाले तात्कालिक निर्माण कार्यक्रम)।

सन् १९३५ की जनवरी में राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट ने यह घोषणा की—"संघीय सरकार अब इन सहायता कार्यों को हर्गिज नहीं चलायेगी।" कहीं इसका अर्थ यह न समझ लिया जाय कि इस घोषणा का तात्पर्य सन् १६०१ के एलिजाबेथ कानून की ओर लौटना था, अतः यहीं यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि राष्ट्रपति रूजवेल्ट का उद्देश्य इस बात पर जोर देना था कि राज्यों के अन्तर्गत सहायता-कार्य स्थानीय समुदायों द्वारा ही होना चाहिए। और इसके अतिरिक्त दो अन्य सेवाएँ भी उपलब्ध होने से सहायता-सम्बन्धी सेवा कार्य की विशेष आवश्यकता नहीं थीं। इनमें से एक तो संघ सरकार के निदेशन में चलने वाला रोजगार-सहायता का तात्कालिक कार्यक्रम था और दूसरा कार्यक्रम सामाजिक सुरक्षा-कानून बनाने के सम्बन्ध में था, जो अभी विचाराधीन था। इस तरह सिद्धान्त रूप में इन दो कार्यक्रमों द्वारा प्रायः सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती थी, जैसे काम करने में सक्षम लोगों के लिए काम दिलाना, जिन लोगों को कार्य करने का पर्याप्त अनुभव था, ऐसे बेरोजगारों के लिए बेकारी बीमा-योजना, अवकाशप्राप्त कर्मचारियों को वृद्धावस्था-वृत्ति देना, काम करने में अक्षम युवकों, वृद्धों और अंधों की सहायता का कार्यक्रम और अन्त में उन लोगों की जो किसी भी श्रेणी में नहीं आते, स्थानीय सहायता।

श्रम-प्रगति-प्रशासन

संसार का अब तक का सबसे बड़ा रोजगार दिलाने में श्रम-सहायता से सम्बन्धित कार्यक्रम "श्रम-प्रगति-प्रशासन" के रूप में सन् १९३५ की मई में प्रारम्भ हुआ, जिसके

लिए करीब ५० अरब डालर का कोश अलग कर लिया गया था। यद्यपि इस योजना में काट-छाँट और परिवर्तन होते रहे और उसका नाम भी बाद में बदल गया। (नाम बदल कर रोजगार-परियोजना-प्रशासन हो गया) किन्तु उसने रोजगार-सम्बन्धी कार्य-क्रमों को जारी रखा। इन कार्यक्रमों में मजदूरी का व्यय तो संघ सरकार देती थी और राज्य अथवा स्थानीय समुदाय उस कार्यक्रम को प्रवर्तित करते तथा परियोजना-सम्बन्धी सामग्रियों के मूल्य का कुछ भाग देते थे।

सी० सी० सी० और एन० वाई० ए०

दो अन्य विकास-कार्यों का उल्लेख भी आवश्यक है, नागरिक संरक्षण दल (सी० सी० सी०) और राष्ट्रीय युवक-प्रशासन (एन० वाई० ए०)। इन दोनों के नामों से ही पता चल जाता है कि वे युवकों के लिए थे। इन सेवाओं में सहायता को अपने आप एक उद्देश्य नहीं स्वीकार किया गया था, बल्कि उसे राष्ट्र के प्राकृतिक और मानवीय साधनों के संरक्षण और विकास के माध्यम में स्वीकार किया गया था। सी० सी० सी० के शिविरों में अधिकतर सहायता चाहने वाले परिवारों के युवकों को रखा जाता था जिनसे, संरक्षण-सम्बन्धी परियोजनाओं, जैसे जंगल लगाना, आग लगने से जंगलों की रक्षा करना, भूमि-क्षरण-नियन्त्रण, बाढ़ नियन्त्रण आदि—में काम कराया जाता था। एन० वाई० ए० की परियोजनाएँ भी कम उम्र वाले प्रौढ़ों के लिए थीं। उनमें निम्नलिखित कार्य किये जाते थे :—(क) हाई स्कूल और कालेज की पढाई में सहायता चाहने वाले छात्रों को पढ़ाना, (ख) अन्य युवा लोगों को रचनात्मक कार्य-सम्बन्धी परियोजनाओं में लगाकर सहायता करना, (ग) पेशा-सम्बन्धी प्रशिक्षण, सलाह, मशविरा देना, नौकरी दिलाने आदि से सम्बन्धित सेवाएँ और (घ) अवकाश के समय में रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था।

यद्यपि सन् १९३३ के बाद की इन योजनाओं में से किसी के सम्बन्ध में भी पूर्णता का दावा किसी ने नहीं किया और उन योजनाओं के प्रवर्तकों ने तो और भी नहीं किया, फिर भी उनमें कितनी कल्पना, मनोबल और शक्ति लगायी गयी थी, इसका अनुमान पूरी तरह तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक कि विगत पाँच वर्षों के अल्पकाल में ही घटित हुए गहरे परिवर्तनों का पूरा ज्ञान न हो जाय। राष्ट्रपति पियर्स की गतिहीन जन-कल्याण-सम्बन्धी नीति की जगह अब मानव-कल्याण-सम्बन्धी एक गतिशील विचार-धारा ने ले ली। सरकार चाहे वह संघ की हो, चाहे किसी राज्य या स्थानीय निकाय की, उसका काम उस जनता की, जो सरकार बनाती है, रक्षा और भलाई करना है। अतः यदि सन् १८५४ की कल्याण-सम्बन्धी नीतियों से सन् १९३३ में जनता की आवश्यकताओं

की पूर्ति नहीं हो सकी तो इस बात से अधिक वास्तविकता और मानवीयता किसमें हो सकती थी कि जनकल्याण-कार्य के क्षेत्र का अधिक से अधिक विस्तार किया जाता ।

सामाजिक सुरक्षा-कानून

सन् १९३० की मंदी तथा आपत्कालीन सहायता और श्रमकार्यों के अनुभव ने यह स्पष्ट कर दिया कि बेकारी, वृद्धावस्था, बीमारी तथा कार्यशक्ति की अक्षमता, तथा माताओं और बच्चों के कल्याण-सम्बन्धी कुछ विकट समस्याओं के हल के लिए अधिक ठोस कार्यक्रम की आवश्यकता है । तदनुरूप विधान की ओर ध्यान दिया गया, जिसके फलस्वरूप सामाजिक सुरक्षा-कानून बना ।

सामाजिक सुरक्षा-कानून १४ अगस्त, सन् १९३५ को पारित हुआ । इस कानून तथा उसके परवर्ती संशोधनों के तीन मुख्य पक्ष हैं । पहले पक्ष का सम्बन्ध सामाजिक सुरक्षा की रूप-रेखा से, दूसरे का लोक सहायता-सम्बन्धी उपायों से और तीसरे का जन-स्वास्थ्य और कल्याण-सम्बन्धी सेवाओं, विशेषकर बच्चों के सेवा-कार्यों से है । उसकी सामाजिक सुरक्षा-सम्बन्धी धाराओं में सामाजिक बीमा के सिद्धान्तों को आधार बनाकर बेकारी की स्थिति तथा वृद्धावस्था और मृत्यु से सम्बन्धित आर्थिक सुरक्षा के निमित्त मजदूरों द्वारा अंशदान तथा उनके लिए सरकार की ओर से दिये जाने वाले अंशदान की व्यवस्था की गयी है । बेकारी बीमा (अथवा क्षतिपूर्ति) के लिए संघ और राज्यों के सम्मिलित सहयोग से कार्य करने की व्यवस्था की गयी है और वृद्धावस्था में तथा मृत्यु के बाद उत्तराधिकारियों की सुरक्षा-बीमा का प्रबन्ध पूर्णतः संघ सरकार के हाथ में दिया गया है ।

सरकारी सहायता के लिए यह व्यवस्था की गयी है कि वृद्धों, अंधों, आश्रित बच्चों और स्थायी रूप से तथा पूर्णतः विकलांग व्यक्तियों की सहायता से सम्बन्धित आर्थिक एवं प्रशासकीय प्रबन्ध संघ और राज्यों की सरकारों के सहयोग से होगा । इसके लिए आय के स्रोत मुख्यतः संघ और राज्य और कुछ दशाओं में राज्यों के स्थानीय समुदाय (प्रायः जनपद) थे ।

इस कानून के अबतक के संशोधित स्वरूप का तीसरा भाग (क) जच्चा-बच्चा स्वास्थ्य (ख) विकलांग बच्चों की सेवाओं और (ग) बाल-कल्याण-सम्बन्धी सेवाओं की व्यवस्था से सम्बन्धित है । इसके लिए काँग्रेस द्वारा निर्धारित अनुदान तथा संघ और राज्य सरकारों की समकक्षता पर आधारित आर्थिक सहायता से कोश-निर्माण करने के नियम बनाये गये हैं । इन कोशों का प्रबन्ध संघ, राज्य और स्थानीय निकायों के सहयोग से तथा जनता की सहायता से किये जाने का नियम स्वीकार किया गया । व्यावसायिक पुनर्वास और जनस्वास्थ्य-सम्बन्धी कुछ बातें जो पहले सन् १९३५ के

सुरक्षा कानून के अन्तर्गत थीं अब १९४३ के संशोधित व्यावसायिक पुनर्वास कानून, जिसे "बार्डेन लाफ्लोटे-कानून" कहा जाता है और सन् १९४४ के जनस्वास्थ्य-सेवा-कानून के अन्तर्गत ले ली गयीं।

बेकारी बीमा—सामाजिक सुरक्षा-कानून के अबतक के संशोधित रूप का कुछ और परीक्षण करने से उसमें निहित सिद्धान्तों तथा कुछ सीमा तक उसके व्यावहारिक प्रयोग को समझने में सहायता मिल सकती है। बेकारी-सुरक्षा-कानून के अनुसार संघ सरकार उन उद्योगपतियों पर जो इस कानून की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं, उनके यहाँ काम करने वाले कर्मचारियों के कुल वेतन का तीन प्रतिशत उत्पादन-कर लगाती है। उद्योग-पति राज्य के बेकारी-बीमा-कानून के अनुसार अपने-अपने राज्यों को कर देते हैं और संघीय कर के हिसाब-किताब के समय वे राज्य सरकार का कर देने के बाद क्षतिपूर्ति के रूप में संघीय कर की ९० प्रतिशत धनराशि की छूट पा जाते हैं। शेष १० प्रतिशत कर वे सीधे संघ सरकार को देते हैं।

सामाजिक सुरक्षा-कानून की व्यवस्था के अनुसार राज्यों ने स्वीकार्य बेकारी-बीमा-कानून बनाये हैं जिससे संघीय सरकार को दिये जाने वाले अपने कर के अनुपात में उद्योगपति उससे कर्ज लेने के लिए अधिकारी हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त उस सामाजिक सुरक्षा-कानून में यह नियम भी स्वीकार किया गया है कि राज्यों को प्रशासन-सम्बन्धी कार्यों के लिए अनुदान देने के प्रस्ताव की संस्तुति श्रम-सचिव द्वारा तभी की जायगी जबकि उन राज्यों के तत्सम्बन्धी कानूनों में कुछ अन्य स्वीकार्य बातें होंगी।[१] इन दो आवश्यक शर्तों के फलस्वरूप राज्यों के कानूनों में अनेक प्रकार के नियम बनाये गये हैं, जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण ये हैं—

(१) योग्यता के आधार पर कर्मचारियों की नियुक्ति और निर्वाह।

(२) प्रत्येक व्यक्ति का, जिसका बेकारी की क्षतिपूर्त्ति-सम्बन्धी दावा अस्वीकृत हो गया है एक निष्पक्ष न्यायालय के सम्मुख अपनी शिकायत उपस्थित करने की सुविधा और अवसर देना।

(३) आवश्यकतानुसार प्रतिवेदन उपस्थित करना।

(४) केवल सार्वजनिक रोजगार-दफ्तर के माध्यम से ही बेकारी-क्षतिपूर्ति की भुगतान।

१. यद्यपि सिद्धान्त रूप में संघ सरकार प्रशासन-सम्बन्धी व्यय के लिए राज्यों को धन देती है, किन्तु व्यावहारिक रूप में यह बात सही नहीं है, क्योंकि संघ सरकार राज्यों को वस्तुतः वही धन देती है, जो उसे उन राज्यों से दस प्रतिशत उत्पादन कर के रूप में मिलता है।

(५) राज्य के बेकारी-कोश में एकत्र समस्त धन को बेकारी-न्यास-कोश में जमा करने के लिए राजकोश विभाग के सचिव के पास भेजना।

(६) राज्यों द्वारा बेकार-न्यास-कोश से निकाले गये धन को केवल बेरोजगारों के हित में खर्च करना।

(७) किसी बेकार व्यक्ति को बेकारी की क्षतिपूर्ति का धन देने से इन्कार नहीं किया जायेगा यदि वह निम्नलिखित कारणों से कोई काम करना अस्वीकार करता है, (क) उसको दी जाने वाली नौकरी की जगह हड़ताल, तालाबन्दी या अन्य किसी श्रम-सम्बन्धी झगड़े के कारण रिक्त हुई है अथवा मजदूरी के घंटे और काम की दशा उस स्थान के अन्य कारखानों की तुलना में उपयुक्त नहीं है, (ख) अथवा नौकरी देने की यह शर्त है कि उस व्यक्ति को इस आशय के अनुबन्ध-पत्र "पीला-कुत्ता-अनुबन्ध" पर हस्ताक्षर करना पड़ेगा कि वह केवल कम्पनी द्वारा संचालित मजदूर-संघ का सदस्य हो सकेगा और अन्य किसी स्वीकृत मजदूर-संगठन का सदस्य न हो सकेगा और यदि पहले से होगा तो उससे इस्तीफा दे देगा।

बेकारी बीमा की सुविधा सभी मजदूरों को नहीं मिलती। संघीय कर-कानून जिसके अनुसार अंशदान का प्रबन्ध होता है, सामान्यतया ऐसे मालिकों पर ही लागू होता है, जो चार या उससे अधिक मजदूरों को काम पर लगाते हैं तथा "उनसे चालू वर्ष के विभिन्न सप्ताहों के बीस दिनों तक काम कराते हैं।"[२] अन्य मजदूरों को यह सुविधा नहीं मिलती क्योंकि वे ऐसी जगहों पर काम करते हैं जो 'कर-कानून' की सीमा में नहीं आते। उस सीमा से बाहर वाले रोजगारों में सबसे महत्त्वपूर्ण ये हैं—

(१) कृषि-सम्बन्धी काम।

(२) किसी घर, स्थानीय कालेज, क्लब या स्थानीय कालेज के छात्रसंघ या छात्रा-परिषद् की नौकरी।

(३) किसी व्यवसायी के रोजगार से सम्बन्धित नियमित नौकरियों से भिन्न आकस्मिक मजदूरी।

(४) किसी व्यक्ति की अपने पुत्र, पुत्री या पति की नौकरी और २१ वर्ष से कम उम्र वाले व्यक्ति या बालक की अपने माता-पिता की नौकरी।

(५) संयुक्त राज्य (संघ) की नौकरी।

(६) किसी राज्य या उसके किसी अधीनस्थ विभाग की नौकरी।

२. कई राज्यों में बेकारी-बीमा-कानून ऐसे कारखानों में काम करने वाले मजदूरों पर भी लागू होता है, जिनमें चार से कम मजदूर ही काम करते हैं।

(७) किसी विदेशी सरकार की नौकरी।

(८) पूर्णतः धार्मिक, परोपकारार्थ, वैज्ञानिक, साहित्यिक अथवा शैक्षणिक उद्देश्य वाले अथवा बालकों के प्रति निष्ठुरता के व्यवहार की रोक-थाम करने वाले या किसी अलाभकर अभिकरण की नौकरी।

(९) कुछ अन्य निर्दिष्ट फुटकर नौकरियाँ।

७९वें काँग्रेस में दस अगस्त, सन् १९४६ को 'पब्लिक ला' ७१९ में जो संशोधन किया गया, उसके अनुसार जहाजी श्रमिकों को भी जो पहले बेकारी-बीमा-कानून के अन्तर्गत नहीं रखे गये थे, अब उसके अन्तर्गत मान लिया गया। जहाजी श्रमिकों को १९३५ के कानून में भी बेकारी-क्षतिपूर्ति अथवा वृद्धावस्था-बीमा की सुविधा नहीं दी गयी थी। उस कानून में सन् १९३९ में जो संशोधन हुए, उनके अनुसार जहाजी श्रमिकों को वृद्धावस्था-बीमा और उत्तराधिकारी बीमा की सुविधा तो मिल गयी, किन्तु बेकारी-बीमा की सुविधा उन्हें अब भी नही दी गयी।

संघीय कानून में निर्दिष्ट कर केवल मालिकों पर और ऐसे मालिकों पर जो प्रत्येक चालू वर्ष में कर्मचारियों को तीन हजार डालर वेतन देते हैं, लगता है।

जब किसी मजदूर की नौकरी समाप्त हो जाती है तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपने स्थान के निकटतम स्थित सार्वजनिक रोजगार दफ्तर में जाकर इसकी सूचना दे और पुनः नौकरी प्राप्ति के लिए अपना नाम पंजीकृत कराये और अपने शारिरिक स्वास्थ्य तथा काम करने की इच्छा का प्रमाणपत्र दे। प्रतीक्षा-अवधि (प्रायः यह अवधि एक या दो सप्ताह की होती है यद्यपि मेरीलैंड और नेवादा राज्यों में प्रतीक्षा-अवधि नहीं रखी गयी है) की समाप्ति के बाद वह बेकारी-क्षतिपूर्ति सहायता पाने का अधिकारी हो जाता है। उसे क्षतिपूर्ति-सम्बन्धी जो सहायता दी जाती है वह उसकी औसत साप्ताहिक आय के निश्चित अनुपात में होती है (मोटे तौर पर ५० डालर प्रति सप्ताह वेतन पाने वाले को उसका आधा सहायता के रूप में दिया जाता है), यह सहायता कुछ निश्चित सप्ताहों तक अथवा सहायता-सम्बन्धी धन के कुल योग की एक निश्चित सीमा तक ही दी जाती है। अधिकांश राज्यों में अधिक-से-अधिक २० से २६ सप्ताहों तक बेकारी क्षतिपूर्ति-सम्बन्धी यह सहायता दी जाती है, किन्तु कुछ निश्चित अयोग्यताओं वाले व्यक्तियों को यह सहायता नही मिलती, जैसे स्वेच्छापूर्वक नौकरी छोड़ देना, किसी उपयुक्त काम को अस्वीकार करना, बुरे आचरण के लिए नौकरी से बर्खास्तगी या किसी कारखाने में मालिक-मजदूर-संघके, जिसमें वह मजदूर भाग लेता रहा है, कारण कारखाने का काम बन्द हो जाना। विभिन्न प्रान्तों के कानूनों में भिन्नता होने के कारण इस प्रकार की परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर उनका सामना करने के लिए विभिन्न राज्यों

की नीतियों में एकरूपता नहीं है। कुछ राज्यों में क्षतिपूर्ति-सहायता बाद के लिए स्थगित कर दी जा सकती है और कुछ अन्य राज्यों में उपयुक्त परिस्थिति उत्पन्न होने पर सहायता कम या बन्द कर दी जा सकती है।

यदि कोई मजदूर कई वर्षों से नौकरी कर रहा हो और फिर बीमारी के कारण उसकी नौकरी छूट जाय तो ऐसी हालत में बेकारी की सहायता देने का नियम प्रायः नहीं है, किन्तु चार राज्य इस नियम के अपवाद हैं। इनमें से तीन राज्यों में बीमारी या अक्षमता के कारण मजदूरों के काम पर न जाने की स्थिति में अक्षमता-सहायता देने का अलग नियम है। किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि मजदूर राज्य के बेकारी-बीमा-अधिनियमों के अन्तर्गत आता हो। चौथे राज्य में राज्य श्रमिक-क्षतिपूर्ति-अधिकरण के माध्यम से अस्थायी अक्षमता-सहायता देने की व्यवस्था है। बेकारी और अक्षमता की सहायता का उद्देश्य उसे नौकरी का स्थानापन्न बनाना नहीं है बल्कि नौकरी छूटने और पुनः नौकरी पर जाने की बीच की अवधि में होने वाली आयक्षति से मजदूरों की रक्षा करना है।

वृद्धावस्था और उत्तराधिकारी बीमा—सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम का एक अंग वृद्धावस्था और उत्तराधिकारी-बीमा भी है, जिसे संक्षिप्त रूप में ओ० ए० यस० आई० (ओल्ड ऐज एण्ड सरवाइवर्स इन्श्योरेंस) कहा जाता है। इस योजना में अवकाशप्राप्त वृद्धों के हितार्थ तथा नौकरी करने वाले मजदूरों की मृत्यु के उपरान्त कानून के नियमानुसार घोषित उनके हिताधिकारियों को सहायता देने की व्यवस्था की गयी है। सन् १९३५ के कानून तथा सन् १९४९ के तत्सम्बन्धी संशोधनोंके अनुसार उन नौकरियों को, जिनका उल्लेख बेकारी-बीमा-अधिनियम की धाराओं में हुआ था, इस योजना में सम्मिलित नहीं किया गया था, फिर भी इस योजना की सीमा में ३ करोड़ ५० लाख मजदूर आ जाते थे। जहाँ तक बेकारी-बीमा का सम्बन्ध है, यह व्यवस्था अब भी करीब-करीब अपरिवर्तित रूप में वर्तमान है, किन्तु सन् १९५० के संशोधनों के अनुसार उसकी सीमा में ७० से ८० लाख तक मजदूर और आ गये। सन् १९५४ के संशोधनों के बाद ओ० ए० यस० आई० के अन्तर्गत एक करोड़ और मजदूरों की वृद्धि हो गयी।

सन् १९५० और सन् १९५४ के संशोधनों के कारण वस्तुतः उद्योग एवं व्यवसाय में लगे सभी मजदूरों, कृषिक्षेत्र में काम करनेवाले कर्मचारियों या परिचालकों, बहुत से घरेलू नौकरों, अधिकांश—किन्तु सभी नहीं—किसी निजी रोजगार (औद्योगिक, व्यावसायिक, पेशागत) में लगे व्यक्तियों के लिए अब वृद्धावस्था और उत्तराधिकारी-बीमा अनिवार्य हो गयी है। इसके अतिरिक्त अलाभकर संस्थाओं, स्थानीय सरकारों एवं राज्य के कर्मचारियों को वृद्धावस्था और उत्तराधिकारी-बीमा-योजना में स्वेच्छापूर्वक सम्मिलित होने की भी व्यवस्था की गयी है। इस समय तक संयुक्त राज्य अमेरिका के

मजदूरों एवं कर्मचारियों का एक बहुत बड़ा भाग ओ० ए० यस० आई० के कार्यक्रम में अनिवार्यतावश अथवा स्वेच्छापूर्वक भाग लेने लगा है। किन्तु यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि और अतिरिक्त कर्मचारी भी अन्य सरकारी अवकाश-प्राप्ति नियमों के अन्तर्गत आ जाते हैं, जैसे संघीय सरकारी सेवा, राज्यों और स्थानीय निकायों की कुछ अवकाश-प्राप्ति-सम्बन्धी पद्धतियाँ जिनको अभी संघीय कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं किया गया है, रेल-विभाग और सेना के अवकाश-प्राप्ति-नियम।

बीमावृत्ति का स्वरूप—अवकाश-प्राप्ति-सम्बन्धी मासिक वृत्ति उन मजदूरों को मिलती है जिनकी अवस्था ६५ वर्ष या उससे अधिक की हो चुकी है और जो बीमा-नियमों के अन्तर्गत आनेवाली नौकरियों से अवकाश प्राप्त कर चुके हैं। उनकी पत्नियों को भी यह लाभ मिल सकता है यदि उनकी अवस्था ६५ वर्ष या उससे अधिक की है। यदि किसी मजदूर की पत्नी ६५ वर्ष से कम उम्र की है और उसका अवकाशप्राप्त पति जीवित है तथा उनके आश्रित बच्चे भी हैं तो वह भी यह लाभ प्राप्त करने की अधिकारिणी है। यदि कोई ६५ वर्ष या उससे अधिक उम्र वाली औरत नौकरी से अवकाश प्राप्त कर चुकी है और उसका पति उस पर आश्रित है तो उस पति को भी यह लाभ मिलता है। अवकाशप्राप्त मजदूरों के १८ वर्ष से कम उम्र वाले बच्चों को भी जो स्कूल में पढ़ते हों, यह लाभ प्राप्त करने का अधिकार है। अवकाशप्राप्त मजदूरों के आश्रित बच्चों और पत्नियों को मिलने वाली वृत्ति उन मजदूरों की (जो मुख्य हिताधिकारी होते हैं) वृत्ति की आधी होती है।

किसी बीमाकृत मजदूर या कर्मचारी की मृत्यु के बाद उसके परिवार के बचे हुए लोगों की अतिरिक्त सुरक्षा के लिए उनकी सहायता के रूप में एक मुश्त धन देने की भी व्यवस्था है, किन्तु उसके लिए यह शर्त है कि यदि उसकी विधवा पत्नी अकेली है तो उसकी अवस्था ६५ वर्ष से अधिक की होनी चाहिए, किन्तु यदि उसके आश्रित बच्चे हैं अथवा वह स्वयं पति द्वारा तलाक दी हुई और उस पर आश्रित रहनेवाली है तो उसकी अवस्था जो भी हो, उसे यह लाभ मिलेगा। इसके अतिरिक्त मृत मजदूर या कर्मचारी के १८ वर्ष से कम उम्र वाले बच्चे या बच्चों को, और यदि उसके बच्चे या विधवा पत्नी न हो तो उस पर आश्रित उसके माँ-बाप को भी यह लाभ पाने का अधिकार है। किसी मजदूर स्त्री के मर जाने पर उसका आश्रित पति इस लाभ का हकदार होता है। किसी मजदूर की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पत्नी और आश्रित बच्चों को अथवा यदि वह स्त्री है तो उसके विधुर पति या आश्रित बच्चों को उस लाभ का जो उसे जीवित रहने पर अवकाश-प्राप्ति-वृत्ति के रूप में प्राप्त होता, तीन-चौथाई भाग सहायता के रूप में मिलता है।

बीमाकृत मजदूर स्थायी रूप में अथवा चालू समय के लिए ही बीमाकृत होते हैं। अतः किसी मजदूर के बीमा के स्वरूप पर ही उसको या उसके आश्रितों या उत्तराधिकारियों को मिलने वाले लाभ का रूप भी निर्धारित होता है। किसी व्यक्ति का बीमा स्थायी तभी माना जाता है, जब वह उसके लिए निर्धारित शर्तें पूरी करता है। वे शर्तें ये हैं—(१) सन् १९५० के बाद के प्रत्येक वर्ष के दो तिमाहियों में से कम-से-कम एक तिमाही उसे काम पर होना चाहिए। (२) जिस तिमाही में उसकी अवस्था २१ वर्ष की हो जाय, उसके बाद प्रत्येक वर्ष की हर दो तिमाहियों में से कम-से-कम एक में उसने काम किया हो। (३) कुल मिलाकर उसने कम-से-कम ६ तिमाही काम किया हो। यदि किसी मजदूर ने अपने पूरे कार्यकाल के ४० तिमाहियों तक (१० वर्ष तक) काम कर लिया है तो उसका बीमा स्थायी ही नहीं शाश्वत रूप से हो जाता है। चालू समय का बीमा उस व्यक्ति का होता है, जिसने अपनी मृत्यु या अवकाश-प्राप्ति (वृद्धावस्था बीमा सहायता के लिए अवकाश-प्राप्त व्यक्ति ही अधिकारी हो सकता है) के ठीक पहले ३ वर्ष के भीतर कम से कम ६ तिमाहियों तक काम किया हो। कार्यकाल के चतुर्थांश का अर्थ प्रत्येक पञ्चांग वर्ष की एक तिमाही है, जिसमें बीमाकृत कर्मचारियों को ५० डालर या उससे अधिक वेतन दिया जाता है। अपने निजी रोजगार में लगे व्यक्ति के लिए आवश्यक कार्य-काल के चतुर्थांश का अर्थ पञ्चांग वर्ष की वह तिमाही है, जिसमें उसने कम से कम १०० डालर की आमदनी की है। जिस वर्ष ऐसे व्यक्तियों की वार्षिक आय ४०० डालर या उससे अधिक की होती है, उस वर्ष उन्हें आवश्यक कार्यकाल की चार तिमाहियों में कार्य करने की अनिवार्यता होती है।

अवकाश-प्राप्ति के बाद कोई कर्मचारी सामाजिक सुरक्षा कानून के अन्तर्गत पुनः नौकरी करके अपनी वृत्ति के अतिरिक्त १२०० डालर वार्षिक वेतन के रूप में ले सकता है। यदि वह इससे अधिक वेतन लेता या आय करता है तो उसके मासिक लाभ-भुगतान पर इसका प्रभाव पड़ता है। किन्तु ७२ वर्ष की उम्र के बाद यह प्रतिबन्ध नहीं रहता और तब उसे चाहे जितनी आय हो उसके मासिक लाभ-भुगतान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

किसी अवकाशप्राप्त कर्मचारी को या मृत कर्मचारी के उत्तराधिकारियों को मिलने वाला मासिक लाभ-भुगतान तभी मिल सकता है जब कि उस कर्मचारी की वार्षिक आय ४२०० डालर से अधिक की न हो। प्रत्येक अवकाशप्राप्त कर्मचारी को मिलने वाली मासिक वृत्ति ३० डालर से कम की नहीं होती। एक अवकाशप्राप्त कर्मचारी की अधिकतम मासिक वृत्ति १०८.५० डालर, एक कर्मचारी और उसकी पत्नी का सम्मिलित मासिक लाभ-भुगतान १६२.८० डालर और एक परिवार का मासिक लाभ-भुगतान २०० डालर तक होता है। यह नियम १९५४ के संशोधनों के आधार पर

बना है, जिसके अनुसार पूर्ववर्ती लाभक्रम में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है और उसमें पर्याप्त वृद्धि हो गयी है।

सन् १९५४ के संशोधनों के अनुसार निम्नलिखित कर-तालिका (आय का प्रतिशत) लागू की गयी है।

पञ्चांग वर्ष	कर्मचारी	मालिक	निजी व्यवसायी
१९५४–१९५९	२	२	३
१९६०–१९६४	२½	२½	३¾
१९६५–१९६९	३	३	४½
१९७०–१९७४	३½	३½	५¼
१९७५ और बाद तक	४	४	६

आय और व्यय की उपर्युक्त तालिका में निर्दिष्ट धन की व्यवस्था एक कोश "संघीय वृद्धावस्था और उत्तराधिकारी बीमा-न्यास-कोश" द्वारा की जाती है। इस कोश का प्रबन्ध एक न्यास-परिषद् द्वारा किया जाता है, जिसके सदस्य कोश-विभाग, श्रम-विभाग, स्वास्थ्य-विभाग, शिक्षा-विभाग और कल्याण-विभाग के सचिव होते हैं। कोश-विभाग का सचिव न्यास-परिषद् का प्रबन्ध न्यासी की हैसियत से करता है।[3]

सहायक ग्रन्थ-सूची

पुस्तक और पुस्तिकाएँ

एडिथ एबाट—पब्लिक असिस्टेन्स; अमेरिकन प्रिंस्पुल्स एण्ड पालिसीज–शिकागो, शिकाओ युनिवर्सिटी प्रेस—१९४०।

सोफोनिस्बा ब्रेकिन रिज—पब्लिक वेल्फेयर ऐडमिनिस्ट्रेशन इन दि युनाइटेड स्टेट्स (सं० रा०)—शिकागो, शिकागो युनिवर्सिटी प्रेस—१९३८।

जोसेफाइन सी० ब्राउन—पब्लिक रिलीफ, १९२९–१९३९—न्यूयार्क, हेनरी होल्ट एण्ड कम्पनी, १९४०।

३. सामाजिक सुरक्षा-कानून का विवेचन यहाँ बाद के लिए स्थगित किया जा रहा है, ताकि सम-सामयिक सामाजिक सेवा-कार्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर अगले अध्याय में पुनः विचार किया जा सके। सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित शेष बातों का वर्णन पुनः सातवें अध्याय में स्थानीय कल्याण-विभाग की सेवाओं की चर्चा के प्रसंग में किया जायगा।

इब्लाइन एम० बर्नस्---दि अमेरिकन सोशल सिक्योरिटी सिस्टम---बोस्टन, हाप्टन मिफ्लिन कम्पनी, १९४९।

वाल्टर ए० फ्रीड लैण्डर---इन्ट्रोडक्शन टू सोशल वेल्फेयर---न्यूयार्क, प्रिन्टिस हॉल, १९५५।

डोमेनिको गाग्लियार्डो---अमेरिकन सोशल इन्श्योरेन्स---न्यूयार्क, हार्पर एण्ड ब्रदर्स, १९४९।

विलियम हेबर और विल्बर जे कोहेन---रीडिंग्स इन सोशल सिक्योरिटी---न्यूयार्क, प्रिन्टिस हाल, १९४८।

राबर्ट डब्लू केल्सो---दि हिस्ट्री आफ पुअर रिलीफ इन मासाशूचेट्स, १६२०-१९२०---बोस्टन, हाप्टन मिफ्लिन कम्पनी, १९२२।

मेरी डि लेन और फ्रान्सिस स्टीगमुलर, फ्रैन्सिस---अमेरिका ऑन रिलीफ---न्यूयार्क, हारकोर्ट, ब्रेस ऐण्ड कम्पनी---१९३८।

अध्याय ४

अमेरिका में सामाजिक सेवाएँ
चर्च से दान-संघटन-समिति के आन्दोलन तक

अमेरिका में निजी सेवा कार्यों का विकास

जरूरतमन्द और अभागे लोगों की सेवा का कार्य सबसे पहले प्रारम्भ करने का श्रेय चर्चों और चर्च-समितियों को था। उनकी दृष्टि में दान प्राप्त करने के अधिकारी सही अर्थ में धार्मिक आस्थावाले व्यक्ति ही थे। बाद में विभिन्न राष्ट्रीय जातियों के लिए दान-समितियाँ स्थापित हुईं, जो इसी प्रकार के कार्य करने लगीं; जैसे—अंग्रेजों की सेण्ट ऐण्ड्रयूज़ समिति (सन् १७५६), जर्मनों की जर्मन-समिति (सन् १७८४), फ्रांन्सीसियों की फ्रेञ्च परोपकार-समिति (सन् १८०७)। दस वर्षों के उपरान्त गरीबों की समस्याओं से सम्बन्धित सहायता कार्य करने वाली बहुत-सी संस्थाएँ स्थापित हुईं, जिनमें से पहली संस्था न्यूयार्क-समिति थी। इसका उद्देश्य गरीबी के कारणों का पता लगाना तथा उसकी रोक-थाम के लिए उपाय करना था।

गरीबों की दशा सुधारने के लिए संघटित समिति

नगरों में रहनेवाले गरीबों की तात्कालिक समस्याओं को सुलझाने की दृष्टि से जो संस्थाएँ प्रारम्भ में स्थापित हुई थीं, उनमें से न्यूयार्क शहर में सन् १८४३ में गरीबों की दशा सुधारने के लिए संस्थापित समिति सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और गहरा प्रभाव उत्पन्न करनेवाली थी। उस समिति के प्रथम विधान के अनुसार उसका उद्देश्य "... दरिद्रों की नैतिक और शारीरिक दशा का उत्थान, और इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उनकी उपयुक्त सहायता करना" था। निर्धन व्यक्तियों की सहायता करने के साथ ही यह समिति उन परिस्थितियों का, जिनमें वे जीवन बिताते थे तथा उनकी निर्धनता के कारणों का अध्यन भी करती थी। समिति की ओर से उन परिस्थितियों में सुधार करने तथा भविष्य में उन्हें न बिगड़ने देने के उपाय भी किये जाते थे।

जिस समय इस समिति ने अपना कार्य आरम्भ किया, न्यूयार्क शहर में तीस-चालीस संस्थाएँ कार्य कर रही थीं, जिनमें से प्रत्येक किसी एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए

सहायता कार्य करती थी। उक्त समिति ने यह नियम बनाया कि वह उन व्यक्तियों की, जिनका कि उत्तरदायित्व सरकारी अधिकारियों पर है या जो अन्य संस्थाओं में सहायता प्राप्त करते हैं, सहायता नहीं करेगी। उसके अनुसार "हमारा काम जनता के बीच से, सहायता और देख भाल के लिए, ऐसे व्यक्तियों को ही जिनकी नैतिक और शारीरिक दशा को ऊँचा उठाया जा सकता है, चुनना और अन्य लोगों को अस्वीकार कर देना है।"[१]

पहले शहर को कई जनपदों में और जनपदों को प्रखण्डों में विभाजित किया गया। प्रत्येक जनपद के लिए एक सलाहकार-समिति और प्रत्येक प्रखण्ड के लिए एक पर्यवेक्षक की व्यवस्था की गयी। पर्यवेक्षक जो सभी पुरुष होते थे, अवैतनिक स्वयंसेवक होते थे।

सहायता-कार्य के अतिरिक्त समिति का उद्देश्य गरीबों की परिस्थिति सुधारने का कार्य करना भी था। प्रारम्भ में उसने गरीबों के आवास और स्वच्छता के लिए कार्य करना आरम्भ किया। कहा जाता है कि समिति की एक उपसमिति ने उसकी कार्यकारिणी परिषद् को सन् १८५३ में गरीबों की गृह-समस्या के सम्बन्ध में जो प्रतिवेदन दिया था, वह अमेरिका में इस विषय पर प्रथम प्रतिवेदन था। सन् १८५५ में मुख्यतः इस समिति के उद्योग से एक आदर्श "श्रमिक-गृह" का निर्माण हुआ था। इस समिति ने अपने प्रारम्भिक जीवन-काल में जो प्रयत्न किये, उन्हीं के फलस्वरूप निम्नलिखित कार्य सम्पन्न हो सके—"दूध में मिलावट रोकने के लिए एक विधेयक की स्वीकृति, निर्धन रोगियों के लिए दातव्य औषधालयों की स्थापना, एक सार्वजनिक स्नानागार और धुलाई-घर का निर्माण, पंगुओं और विकलांगों के लिए एक विशेष संस्था की स्थापना, सन् १८४९ में न्यूयार्क-बाल-अनाथालय को अपने अधीन ले लेने का कार्य, दुश्चरित्र बालकों की शिक्षा और उत्थान तथा उन्हें प्रतिज्ञाबद्ध करने के लिए एक सुधार और अनुशासन-गृह की स्थापना।"

अपने इतिहास के आगामी काल अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक समिति ने अनेक प्रकार के कार्य किये, जिनमें से कुछ ये हैं—"माताओं और बच्चों को नगर के बाहर खुली हवा में घूमने के लिए प्रबन्ध (बाद में इसके लिए मकानों और शिविरों की भी व्यवस्था की गयी), व्यावसायिक विद्यालय (जो बाद में सार्वजनिक व्यवस्था के अन्तर्गत ले लिये गये) और सन् १८९७ में हार्टले हाउस नामक एक निर्धन-आवास-गृह की स्थापना।"

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर सन् १९३९ तक जब कि उक्त समिति न्यूयार्क दान-संघटन-समिति में मिल गयी, वह जनता के जीवन को दुःखमय बनानेवाली परि-

१. ब्राण्ट लिलियन—"ग्रोथ एण्ड डेवलपमेण्ट आफ ए० आई. सी. पी. एण्ड सी. ओ. एस." न्यूयार्क, सन् १९४२, पृष्ठ १९।

स्थितियों के सुधार के कार्य को आगे बढ़ाती रही। उसने जिन कार्यों को प्रोत्साहित, अग्रसर या प्रारम्भ किया वे आज पूर्णत: स्वीकृत सामाजिक सेवा-कार्यों के अंग माने जाते हैं, जैसे—क्षय-रोग के अस्पताल, पाठशालाओं के बच्चों के स्वास्थ्य से सम्बन्धित सेवा-कार्य, जच्चा-बच्चा स्वास्थ्य-सुधार-गृह, स्कूल में छात्रों को भोजन, दाँत के अस्पताल, श्रम-सहायता-योजना, विधवा-सहायता-वृत्ति के लिए विधेयक, यौन-रोग-अस्पताल, स्वास्थ्य-केन्द्र, व्यवसाय-निर्देशन-केन्द्र, मानसिक-स्वास्थ्य-गृह, वृद्ध-आवास, तथा वृद्धों के लिए कमरों की व्यवस्था।

अन्य नगरों ने भी ए० आई० सी० पी० (निर्धन-दशा-सुधारक-समिति) का अनुसरण करते हुए वैयक्तिक ढंग पर किये जानेवाले सहायता-कार्य तथा जनता की दुःखमय परिस्थितियों के सुधार और रोकथाम के प्रयत्नों पर ही अधिक जोर दिया। इस प्रकार निम्नलिखित स्थानों में इस तरह की संस्थाओं की स्थापना हुई—ब्रकलिन की ए०आई० सी० पी० (सन् १८५३), बाल्टीमोर की ए० आई० सी० पी० (१८४९), बोस्टन की अंशदान-समिति (१९५१) फिलाडेल्फिया की निर्धनता-निरोध तथा निर्धन-सहायता-समिति (१८५६), शिकागो की सहायता और अर्थ-दान-समिति (१८५४), सेण्ट लुई अंश-दान-समिति (१८६०) सेण्ट पॉल-निर्धन-सहायता-समिति (१८७६)। इनमें से अन्तिम समिति दान-संघटन-आन्दोलन के प्रारम्भ के ठीक पूर्व स्थापित हुई थी।

अमेरिका में दान-संघटन-समिति-आन्दोलन

वाट्सन ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में दान-संघटन-आन्दोलन से सम्बन्धित अपने ग्रन्थ में उक्त सभी प्रारम्भकालीन सहायता-समितियों का महत्त्व स्वीकार करते हुए यह अनुमान किया है कि वे समितियाँ दान-संघटन-समिति के आन्दोलन के कारण उच्छिन्न या प्रभावहीन हो गयीं। वाट्सन के विचारों का सार तत्त्व यह है कि यद्यपि स्थापना के समय ए० आई० सी० पी० का उद्देश्य ही अच्छा था, पर वह भी बाद में अन्य संस्थाओं-जैसी ही एक सामान्य सहायता-संस्था बन कर रह गयी, क्योंकि वह बदलती हुई परिस्थितियों के साथ कदम मिला कर नहीं चल सकी।

लन्दन में सी० ओ० एस० (दान-संघटन-समिति) की स्थापना के बाद चार वर्षों के भीतर ही अमेरिका को, गृह-युद्ध की बरबादी के बाद सन् १८७३ की भयंकर मन्दी का सामना करना पड़ा। अमेरिकी इतिहास में पहली बार ऐसा अवसर आया जब कि यह अनुभव किया गया कि तत्कालीन परिस्थितियों से उत्पन्न बेकारी की समस्या 'स्थानीय मामला' नहीं है, उसका राष्ट्रीय महत्त्व है। सैकड़ों स्थानीय सहायता-समितियों के रहते हुए भी अथवा शायद उनके होने के कारण ही यह बात सामान्य तौर पर मान ली

गयी कि व्यक्तिगत दान-सम्बन्धी सहायता की वर्तमान पद्धतियाँ अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अक्षम और अपर्याप्त हैं। फिलाडेल्फिया और बोस्टन-जैसे नगरों की निजी संस्थाओं ने हैम्बर्ग और एल्बरफेल्ड की निर्धन-सहायता-पद्धति को कुछ सीमा तक अपनाया था, किन्तु न्यूयार्क के बफेलो नामक स्थान में एस० एच० गुर्टीन नामक एक पादरी ने, जिसे लन्दन की दान-संघटन समिति में कार्य करने का पूर्व अनुभव था, सन् १८७७में अमेरिका में उस तरह की पहली संस्था की स्थापना की। बफेलो नगर को आठ जनपदों में विभाजित किया गया और प्रत्येक जनपद के लिए एक समिति का निर्माण और कई परिवार-पर्यवेक्षकों की नियुक्ति हुई। यह संख्या सहायता-कोश के प्रबन्ध आदि का कार्य नहीं करती थी। उसने यह घोषित कर दिया था कि उसका एकमात्र उद्देश्य वर्तमान स्थानीय दानकार्यों को संघटित करने में सहायता करना है, और उससे संबद्ध प्रत्येक संस्था को अपनी स्वतंत्रता बनाये रखने का अधिकार होगा। इस नवनिर्मित समिति ने धर्म, राजनीति और राष्ट्रीयता के आधार पर कार्य करने की नीति से अपने को बिलकुल अलग रखने का निश्चय किया। प्रारम्भ में जरूरतमन्द लोगों की व्यक्तिगत समस्याओं का पता लगाने और उन्हें तत्कालीन सहायता-अभिकरणों के पास भेजने में समिति का उद्देश्य इस बात को प्रमाणित करना था कि उस समय के नगरपालिका-संचालित सहायता-कार्य की पद्धति में सुधार की कितनी अधिक आवश्यकता थी। समिति को इस उद्देश्य में सफलता मिली और साथ ही वह सार्वजनिक कार्यों में रुचि रखनेवाले बहुत-से नागरिकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने में भी सफल हुई।

छ: वर्षों के भीतर ही २५ नगरों ने दान-संघटन-आन्दोलन के निम्नलिखित मूल सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया—(१) सहायता के लिए आवेदन पत्र-देनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के मामले की जाँच करना, (२) उनका केन्द्र में पंजीकरण, (३) किसी समुदाय के सभी अभिकरणों के बीच सहयोग का भाव, और (४) मुख्य रूप से स्वेच्छापूर्वक कार्य करने वाले, तथा मैत्री-भावना से युक्त अवैतनिक पर्यवेक्षकों की सेवाओं का उपयोग। सन् १८८३ तक समस्त पूर्वी और मध्य पश्चिमी अमेरिका में ये समितियाँ प्रारम्भ हो चुकी थीं। सबसे पहले जिन स्थानों में ये समितियाँ स्थापित हुई थीं, उनमें से कुछ के नाम ये हैं—न्यू हैवेन, फिलाडेल्फिया, ब्रूक्लिन, सिलाक्यूज़, न्यू पोर्ट (रोड आइलैण्ड) बोस्टन, इण्डियानापोलिस, डेट्रायट, सिनसिनाटी, बाल्टीमोर, कोलम्बिया जनपद, न्यूयार्क। इन समितियों में कुछ का नाम दान-संघटन-समिति (चैरिटी आर्गेनाइजेशन-सोसाइटी) था और कुछ के इससे कुछ भिन्न नाम थे, जैसे—सोसाइटी फ़ार आर्गेनाइज़िग चैरिटी (फिलाडेल्फिया), ब्यूरो आफ चैरिटी (ब्रूक्लिन), एसोशियेटेड चैरिटीज़ (बोस्टन)। नाम चाहे जो भी हों, उन सब के काम एक ही थे अर्थात् जो साधनहीन

अथवा अत्यन्त अल्प साधनवाले थे, उनकी आवश्यकताओं की सफलतापूर्वक पूर्ति के लिए समुदाय के सहायता-स्रोतों का संघटन करना ही उनका प्रमुख कार्य था।

जो आन्दोलन इतने व्यापक रूप में स्वीकृति प्राप्त कर सका, उसमें उसके योग्य विशेषताएँ भी अवश्य रही होंगी। वस्तुतः प्रत्येक दृष्टि से इसके लिए वह समय बहुत ही उपयुक्त था और उसी तरह यह आन्दोलन भी उस समय के बिलकुल उपयुक्त था। एलिजाबेथ कालीन निर्धनता-कानून के अन्तर्गत काम करने वाली बची संस्थाओं की अल्प-व्ययता के कारण उनका सार्वजनिक-सहायता-कार्य भिक्षुओं तक ही सिमट कर रह गया था। वैयक्तिक दानकार्य ने, जो विभिन्न स्थानों में असंख्य रूपों में प्रारम्भ होता रहा, अब उन उद्योगपतियों की व्यक्तिवादिता को अपना लिया,जो निरन्तर प्रसारशील आर्थिक व्यवस्था में उत्तरोत्तर अधिकाधिक सम्पत्तिशाली होते गये। प्रत्येक धनी दाता किसी भी सहायता-संस्था पर, जो उसका दान लेना स्वीकार करती, अपनी व्यक्तिगत उदारता की विशिष्ट मुहर लगाने की बात सोचता था। परिणामस्वरूप सहायता कार्यों की पुनरा-वृत्ति और दान की रकम का अपव्यय तो बहुत हुआ, पर सहायता का कार्य अधिक नहीं हो सका और जितने लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति की गयी, उनसे अधिक लोगों की आवश्यकताएँ बिना पूरी किये ही रह गयीं। बड़े-बड़े शहरों और कोड़ियों औद्योगिक नगरों के निर्माण और विकास के साथ ही वह परम्परागत 'पड़ोसी-धर्म' भी लुप्त हो गया, जो अपेक्षाकृत सरल सामाजिक व्यवस्था का एक विशिष्ट अंग होता है। इससे साथ ही इस औद्योगिक समाज-व्यवस्था में यह धारणा भी बलवती हो गयी थी कि निर्ध-नता व्यक्ति के चरित्रगत दोषों का सूचक है और उसे दूर करने के लिए दान प्राप्त करने वाले व्यक्ति को दान-दाता या उसके प्रतिनिधि के वैयक्तिक प्रभाव से अधिक से अधिक अभिभूत करना आवश्यक है।

किन्तु इन तमाम परिस्थितियों के होते हुए भी दान-संघटन-आन्दोलन का शुरू होना सम्भव न होता यदि उसके लिए सक्रिय और शक्तिदायक नेतृत्व बना-बनाया तैयार न मिला होता। ऐसा नेतृत्व देश में और बाहर भी सहायता के लिए वर्तमान था। वस्तुतः मानववादी आन्दोलन का समूचा इतिहास इस बात का साक्षी है कि जो परि-स्थितियाँ मानव की दयनीय अवस्था और तत्सम्बन्धी आवश्यकताओं को उत्पन्न करती हैं, वे ही उन आवश्यकताओं की पूर्ति की चिन्ता करनेवाले व्यक्तियों को भी जन्म देती हैं। किसी भी समाज व्यवस्था में अन्तर्निहित बुराइयाँ जब उग्र रूप धारण कर लेती हैं तो किस तरह उनसे उत्पन्न क्षति की पूर्ति करनेवाले उपाय भी निकट आते हैं, यह बात इंग्लैंड के सन् १८३२ के बाद के सुधार-आन्दोलनों तथा अमेरिका में प्रारम्भकालीन झूठे व्यक्तियों और जेल-सुधारकों के मानवतावादी विचारों और प्रयत्नों के अध्ययन से

पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है। इन देशों में समाज को औद्योगिक क्रान्ति ने भयंकर रूप से प्रभावित किया था। फलतः सामाजिक विचारकों और समाज-सुधारकों के प्रयत्नों के साथ मानवतावादी विचारों का स्वर भी ऊँचा उठने लगा और सुविधापूर्ण तथा बचत वाली आर्थिक व्यवस्था के कारण भी उन प्रयत्नों को मदद मिली। इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उस नेतृत्व का उदय था, जिसने मानवीय साधनों के अपेक्षाकृत अधिक उचित उपयोग के लिए दिशा-निर्देशन किया। इस आन्दोलन में गत्यात्मक विकास के वे सभी सिद्धान्त वर्तमान थे, जो किसी भी सफल आन्दोलन के लिए आवश्यक हैं, जैसे—आन्दोलन की प्रत्यक्षीकृत आवश्यकता, उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए आवश्यक ज्ञान और अनुभवों का एक विकासशील कोश, उसके लिए उपलब्ध या अन्वेषणीय भौतिक साधन और इन सबको एक सूत्र में पिरो कर समन्वित करने वाला वह प्रेरक नेतृत्व जो किसी सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति को लक्ष्य बनाकर चलनेवाला हो।

दान-संघटन-समिति-आन्दोलन का विस्तार

सामाजिक कार्य के वर्तमान क्षेत्र का पर्यवेक्षण करने पर यह बात तुरन्त स्पष्ट हो जाती है कि उसके भीतर किये जाने वाले कार्यों तथा तत्संबंधी अभिरुचियों की तीन मुख्य श्रेणियाँ या समूह हैं, प्रथम—व्यक्ति की समस्याओं से सम्बन्धित कार्य; द्वितीयः—व्यक्तियों की एक सामूहिक इकाई से सम्बन्धित कार्य; तृतीय—मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले साधनों के विकास का कार्य। इन तीनों समूहों को क्रमशः वैयक्तिक समाज-सेवा-कार्य, समूहगत समाज-सेवा-कार्य और सामुदायिक संघटन-कार्य नाम दिये गये हैं। दान-संघटन-आन्दोलन के कार्य उपर्युक्त प्रथम और तृतीय, इन दो समूहों में विभाजित हैं और सामाजिक स्थापना का कार्य द्वितीय समूहके अन्तर्गत आते हैं। सामूहिक समाज-सेवा के कार्यों के सम्बन्ध में बाद के किसी अध्याय में विचार किया जायगा, किन्तु दान-संघटन-समिति द्वारा किये जाने वाले वैयक्तिक सेवा-कार्य और सामुदायिक संघटन-सम्बन्धी कार्यों पर यहीं विचार कर लेना आवश्यक है।

यह धारणा कि जरूरतमन्द लोगों के कष्ट उन्हीं के दुष्कर्मों और गलतियों के परिणाम हैं, सामाजिक व्यवस्था को सभी प्रकार के उत्तरदायित्व से मुक्त कर व्यक्ति को उन्हीं परिस्थितियों में छोड़ देना उचित समझती थी, जिनके कारण वह निर्धन और भिक्षुक बन गया था। जब तक यह धारणा व्याप्त रही, सहायता-कार्यों का स्वरूप भी इतना अनाकर्षक बना रहा कि लोगों का उनकी ओर आकृष्ट होना असम्भव था। फलतः निःशुल्क सलाह, प्रबोधन-कला और कठोरतापूर्ण प्रोत्साहन पर अधिक से अधिक धन व्यय किया गया। किन्तु नवोद्भूत सामाजिक चेतना और वर्तमान आर्थिक तथा

सामाजिक व्यवस्था के अधिकाधिक ज्ञान के कारण उपर्युक्त धारणा, जो सामान्य लोगों के लिए बहुत सीधी और सहज थी, समाप्तप्राय हो गयी और निर्धनता एवं कष्ट को जन्म देने वाले कुछ ऐसे कारणों की ओर भी ध्यान दिया जाने लगा, जो व्यक्ति के भीतर नहीं, उसके बाहर स्थित होते हैं। यद्यपि यह नवीन धारणा भी "कारणों" के आंशिक ज्ञान पर ही आधारित थी, (और यह बात समझ में आने लायक भी है), फिर भी उसका महत्त्व आन्तरिक से अधिक बाह्य कारणों पर बल देने के कारण है। पर यह कहना अधिक सही होगा कि इस धारणा की प्रवृत्ति की दो धाराएँ हो गयीं—प्रथम धारणा के अनुसार मानव-चरित्र के अध्ययन से सम्बन्धित नवीन ज्ञान-विधान के प्रकाश में वैयक्तिक सेवा-कार्य को आगे बढ़ाया जाता रहा (चरित्र के लिए अधिक पारिभाषिक शब्द 'व्यवहार' का प्रयोग बाद में प्रारम्भ हुआ) और दूसरी धारा के अनुसार समाज के वर्तमान ढाँचे के भीतर ऐसा परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया जाने लगा ताकि बाह्य सामाजिक कारणों का व्यक्ति के ऊपर अधिक कष्टदायक प्रभाव न पड़े।

इस प्रकार के प्रारम्भिक प्रयत्नों में आवास-समस्या को हल करने का प्रयत्न प्रमुख था। दान-संघटन-आन्दोलन के प्रारम्भ के बहुत पहले गरीबों के आवास की दशा सुधारने के प्रस्ताव उपस्थित किये जा चुके थे, ताकि निर्धनता की वृद्धि रोकी जा सके। हैम्बर्ग-एल्बरफेल्ड-पद्धति के अन्तर्गत भी गरीबों की आवास-स्थिति को सुधारने के प्रयत्न किये जा चुके थे। लन्दन, आक्टेविया हिल और एडवर्ड डेनिसन में भी सुधार-आन्दोलन के नेताओं ने वर्षों तक इसके लिए आन्दोलन किया था। कई वर्षों बाद सन् १८९२ में दान-संघटन-समिति के आन्दोलन में अग्रगामी नगर बफेलो में कुछ निरीक्षण सम्बन्धी अध्यादेश लागू किये गये। अमेरिका के जिन नगरों में इस दिशा में सबसे पहले कदम उठाये गये थे, उनमें एक ब्रुकलिन भी था, जहाँ सन् १८७९ में छोटे मकानों के सम्बन्ध में "टेनेमेण्ट हाउस ऐक्ट" बना था और बाद में अल्फ्रेड टी० ह्वाइट के प्रबुद्ध और कुशल नेतृत्व में आदर्श लघु कुटीरों का निर्माण भी हुआ था। एडवर्ड टी० डिवाइन ने अपने संस्मरणात्मक ग्रन्थ 'सामाज-सेवा के प्रारम्भिक दिन' (ह्वेन सोशल वर्क वाज़ यंग) में न्यूयार्क-सोसायटी के कार्यों का विवरण लिखते हुए दिखाया है कि इस संस्था ने दान-संघटन-समिति के संघटनात्मक अंगों के माध्यम से न्यूयार्क में भवन-निर्माण-अधिकारियों की सेवाएँ प्राप्त करने में किस तरह सफलता प्राप्त की। अन्य नगरों ने भी मकानों के सुधार की ओर ध्यान दिया था। उनमें से शिकागो, वाशिंगटन, यंग्सटाउन और कोलम्बस (ओहियो) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

दान-संघटन-समिति के कार्यकर्ताओं ने क्षयरोग-निरोध-आन्दोलन में भी प्रमुख रूप से भाग लिया था। गृह-सुधार आन्दोलन की तरह यह आन्दोलन भी न्यूयार्क-समिति

(सन् १९०२) के, जिसके नेता अब भी एडवर्ड टी० डिवाइन थे, अधीन कार्य करने वाली एक समिति द्वारा प्रारम्भ हुआ था। क्षयरोग की रोक-थाम के लिए इस समिति ने योग्य चिकित्सकों तथा गैर-चिकित्सकों की सेवाओं का बहुत ही विवेकपूर्ण उपयोग क्षय के सामाजिक और चिकित्सा-सम्बन्धी पहलुओं के बारे में शोध का कार्यक्रम चलाने, जनता को तत्सम्बन्धी ज्ञान कराने, रोगियों की सेवा-सुश्रूषा और सफाई के कामों को प्रोत्साहित करने तथा गरीब क्षय-रोगियों की सहायता करने में किया। कई वर्षों बाद, सन् १९०४ में अमेरीकी चिकित्सक-संघ की एक बैठक में 'राष्ट्रीय क्षय-निवारण-शोध-संघ' नामक एक संस्था की स्थापना की गयी। अन्य नगरों——जैसे वाशिंगटन, मिनीपोलिस, बोस्टन, बफेलो, पिट्सबर्ग, और शिकागो——में दान-संघटन-समिति अथवा उसी से मिलती-जुलती संस्थाएँ क्षय रोग-निवारण सम्बन्धी कार्य करती थीं। इस तरह इन संस्थाओं ने क्षयरोग-सम्बन्धी कार्यों के राष्ट्रीयकरण के लिए आधार-शिला रखी।

शिकागो और डेनवर में क्रमशः प्रथम और द्वितीय बाल-न्यायालयों की स्थापना के कुछ दिनों बाद ही दान-संघटन-आन्दोलन के कार्यकर्ताओं ने बाल-परिवीक्षण के क्षेत्र में भी सक्रिय कार्य प्रारम्भ किया। सन् १९०० में बफेलो की समिति ने परीवीक्षण कार्य के लिए एक समिति संघटित की, जिसने बफेलो-नगर-चार्टर को संशोधित करने के लिए एक अधिनियम बनवाने में सफलता प्राप्त की। इस अधिनियम द्वारा दो परिवीक्षण-अधिकारियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी थी। बाद में न्यूयार्क की समिति ने एक मजिस्ट्रेट-न्यायालय में अपनी ओर से एक महिला परीवीक्षण-अधिकारिणी रखने की व्यवस्था की, जिसका काम न्यायालय के कानूनी पहलुओं और अपराधी के सामाजिक पुनःस्थापन के बीच समन्वय स्थापित करना था। अन्य नगरों में भी न्यायालय, विशेष कर बाल-न्यायालय की सीमा के भीतर कार्य करने के लिए समितियों की स्थापना हुई।

न्यायालयों में किये जाने वाले कार्यों का एक पहलू यह था कि दान-संघटन-समितियाँ यह प्रयत्न करती थीं कि सीमित साधनों वाले अपराधियों को उचित कानूनी सहायता दी जा सके। सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के पास प्रायः ऐसे सेवार्थी आते थे, जिन्हे कानूनी सहायता की आवश्यकता तो होती थी, पर उनके पास उसे प्राप्त करने के लिए अथवा अपने कानूनी अधिकारों की रक्षा के लिए पर्याप्त साधन नहीं थे। अतः वाल्टीमोर और बफेलो की दान-संघटन-समितियों के तत्त्वावधान में निःशुल्क अथवा कम-से-कम खर्च में सेवार्थियों को कानूनी सलाह देने के लिए कानून-सहायता-समितियों की स्थापना की गयी।

दान-संघटन-समितियों ने कुछ अन्य क्षेत्रों——जैसे उत्तरदायित्व से पलायन और भरण-पोषण करने से इन्कार करने के मामले——में भी कार्य आरम्भ किया। बोस्टन,

फिलाडेल्फिया और शिकागो के नाम इस कार्य की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। पारिवारिक समस्याओं—जैसे आश्रित और उपेक्षित बच्चों की देख-भाल के लिए सुविधाओं की अपर्याप्तता और अभाव—की ओर भी ध्यान दिया गया। पेन्सिल-वेनिया में मुख्यत: फिलाडेल्फिया-दान-संघटन-समिति के कार्य-क्रम से सम्बन्धित व्यक्तियों के प्रयत्न से सन् १८८२ में बाल-सहायता-समिति की स्थापना हुई। दान-संघटन-समिति के ही प्रयत्न से गृहस्थ या परिवार-विहीन भिक्षुओं और निर्धनों की सहायता का कार्य भी प्रारम्भ हुआ। एक समय न्यूयार्क में अनाश्रित, निर्धन और भिक्षुक, पुलिस-विभाग द्वारा उक्त समिति के पास भेज दिये जाते थे, जो उनको यात्री-निवासों में रखकर उनकी सहायता करती थी। शिकागो, फिलाडेल्फिया और बोस्टन में भी इस प्रकार के यात्री-निवास बने हुए थे।

सामाजिक सुधार और वैयक्तिक सेवा

समिति का आन्दोलन इस मंजिल पर पहुँच कर दो स्पष्ट विरोधी धाराओं में विभक्त हो गया। पहली धारा के लोगों की धारणा यह थी कि दान-संघटन-समिति के प्रयत्न मुख्यतः सामाजिक संघटन में स्थित उन बाह्य कारणों को दूर करने के लिए होने चाहिए जिनसे निर्धनता उत्पन्न होती है, जैसे उपयुक्त अवसरों और सुविधाओं का अभाव तथा वैयक्तिक एवं पारिवारिक नैतिकता का ह्रास। इस धारणा के अनुसार इस विचार-धारा के लोगों ने जिन कामों में अपनी शक्ति लगायी, वे ये हैं—आवास का समुचित प्रबन्ध, स्वास्थ्य और सफाई की उपयुक्त सुविधा, अनिवार्य शिक्षा, औद्योगिक क्षेत्र में श्रम के शोषण पर नियंत्रण, सघन बस्ती वाले क्षेत्रों में खेल-कूद की सुविधा, समुचित सहायता और विभिन्न प्रकार के सामाजिक प्रश्नों से सम्बन्धित विधान। दूसरे प्रकार के लोगों का, जो व्यक्ति की समस्याओं के समाधान तक ही अपने प्रयत्नों को सीमित रखना चाहते थे, उद्देश्य व्यक्ति के भीतर ही परिवर्तन घटित करना था, ताकि व्यक्ति अपने भीतर निहित क्षमताओं को समझ सके और उनका पूर्ण उपयोग कर सके। स्वभावत: इस दूसरी विचारधारा के लोगों का व्यक्ति के प्रति दृष्टिकोण बहुत गहरा था और उसी से सामाजिक कार्य की व्यापक सीमा के अन्तर्गत वैयक्तिक सेवा-कार्य के विशेषज्ञतापूर्ण स्वरूप का निर्माण हुआ।

वृत्ति-पत्रिका और वृत्ति-विद्यालय

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में दो अन्य कार्य ऐसे हुए, जिनका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है, क्योंकि सामाजिक सेवा के

क्षेत्र में उनका योगदान अब भी जारी है। उनमें से प्रथम एक समाज-सेवा-सम्बन्धी पत्रिका का प्रकाशन और द्वितीय सामाजिक सेवियों के लिए एक प्रशिक्षण काल में वृत्ति-विद्यालय की स्थापना है।

'सर्वे' और 'सर्वेग्राफिक' की स्थापना न्यूयार्क की दान-संघटन-समिति की स्थापना के बाद हुई थी। उक्त समिति ने बहुत पहले, सन् १८९१ में 'चैरिटीज रिव्यू' नामक पत्रिका निकाली, जो दस वर्षों तक तत्कालीन सामाजिक कार्यों की प्रगति का विवेचन और प्रकाशन करती रही। बोस्टन से 'लेण्ड ए हैण्ड' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ था, जो सन् १८९७ में 'चैरिटीज़ रिव्यू' में मिला ली गयी। इसी समय 'दान-संघटन-समिति' ने संस्था के मुख-पत्र के रूप में 'चैरिटीज'का प्रकाशन प्रारम्भ किया, जिसका उद्देश्य स्पष्टतः संस्था के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायता देना था। सन् १९०१ में 'चैरिटीज रिव्यू' और 'चैरिटीज़' एक में मिल गयीं, पर नाम चैरिटीज़ ही रहा। इसके पूर्व ये दोनों पत्रिकाएँ अलग-अलग असाधारण महत्त्व की सामग्री प्रकाशित कर चुकी थीं। पत्रिकाओं का परस्पर अन्तर्भुक्त होने का काम अभी समाप्त नहीं हुआ था, क्योंकि 'चैरिटीज़'नामक पत्रिका में सन् १९०५ में ग्रैहम टेलर की 'शिकागो कामन्स' और १९०६ में 'ज्यूइश चैरिटी' नामक पत्रिकाएँ भी मिल गयीं और अब उसका नाम 'चैरिटीज़ एण्ड कामन्स' हो गया। चार वर्ष बाद 'चैरिटीज एण्ड कामन्स' नाम बदल कर पिट्सबर्ग नगर के अध्ययन के सम्बन्ध में छः खण्डों में लिखे गये ऐतिहासिक ग्रन्थ के नाम पर 'सर्वे' रख दिया गया। अब तक ये पत्रिकाएँ न्यूयार्क की दान-संघटन-समिति के एक विभाग के तत्त्वावधान में प्रकाशित होती आ रही थीं, पर सन्१९१२ में 'सर्वे' पत्रिका स्वतंत्र रूप से अलग से प्रकशित होने लगी। तब से सन् १९५२ तक, जब कि उसका प्रकाशन बन्द हो गया, यह पत्रिका अपनी तेजस्विता, सामयिकता और शैली की सजीवता के कारण सामाजिक कार्य क्षेत्र के समस्त प्रकाशनों में अद्वितीय स्थान की अधिकारिणी थी।

जिस तरह 'सर्वे' का जन्म दान-संघटन-आन्दोलन के कारण हुआ था, सामाजिक कार्य-विद्यालयों का प्रारम्भ भी उसी तरह हुआ। शीघ्र ही यह अनुभव किया जाने लगा कि परिवर्तित परिस्थिति में सामाजिक कार्य की बदली हुई माँगों की पूर्ति के लिए केवल कार्यकर्तार्ओं के सम्मेलन और कर्मचारियों तथा अवैतनिक कार्यकर्ताओं के निरीक्षण के कार्य ही पर्याप्त नहीं हैं। अतः विभिन्न समितियों में कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिए अनौपचारिक ढंग पर पाठ्यक्रमों और भाषणों की व्यवस्था की गयी। यह कार्य सर्वप्रथम ब्रुकलिन की समिति ने सन १८९१ में प्रारम्भ किया था। इस सम्बन्ध में प्रथम निर्णयात्मक कदम न्यूयार्क की समिति द्वारा उठाया गया, जिसने सन् १८९८ में ग्रीष्मकालीन लोकोपकार-विद्यालय का प्रारम्भ किया। समिति के सहायक मंत्री फिलिप डबल्यू०

आयर्स उस विद्यालय के निदेशक नियुक्त किये गये और उसमें ३० विद्यार्थियों को प्रविष्ट किया गया। तीन वर्ष तक यह विद्यालय इसी रूप में चलता रहा, फिर सरकार ने उसे इस शर्त पर मान्यता दी कि उसमें शिक्षण की अवधि प्रतिवर्ष आठ मास की होगी। दूसरे वर्ष न्यूयार्क-समिति के निदेशक एडवर्ट टी० डिवाइन ने, अपने वर्तमान पद पर रहते हुए इस देश के सामाजिक कार्य से सम्बन्धित इस प्रथम विद्यालय के निदेशक-पद का भार भी ग्रहण किया।[२]

दान-संघटन-आन्दोलन के सम्बन्ध में यहाँ जो कुछ लिखा गया है वह केवल परिवार-कल्याण से सम्बन्धित है, कारण यह है कि आज की परिवार-समितियों का विकास उसी आन्दोलन से हुआ है। इस तत्काल सम्बन्ध का ही फल था कि सन् १९०५ में न्यूयार्क की दान-संघटन-समिति के अन्तर्गत एक व्यावहारिक कार्य-विभाग (फील्ड डिपार्टमेण्ट) का निर्माण हुआ। इसके चार वर्ष बाद 'रसेल सेज फाउण्डेशन' नामक संस्था ने भी अपना एक दान-संघटन-विभाग खोला जिसकी निदेशिका मेरी रिच माण्ड थीं। सन् १९११ में राष्ट्रीय दान-संघटन-समिति-संघ की स्थापना हुई। दान-संघटन समिति व्यावहारिक कार्य-विभाग के भूतपूर्व मंत्री फ्रान्सिस एच० मिक्लीन इस संस्था के प्रथम अधिशासी सचिव नियुक्त हुए। तब से कई बार इस संस्था का नाम बदला जा चुका है, जिससे समय-समय पर संस्था के दृष्टिकोण में होने वाले परिवर्तनों की सूचना मिलती है। उक्त संस्था के समय-समय पर परिवर्तित नाम ये है——अमेरिकन एसोशियेशन फार आर्गेनाइजिंग चैरिटी (कनाडा की समितियों के उसमें मिल जाने के बाद), अमेरिकन एसोशियेशन फ़ार आर्गेनाइज़िंग फेमिली सोशल वर्क, दी फेमिली वेलफ़ेयर एसोशियेशन ऑफ अमेरिका, और सन् १९४६ में परिवर्तित नाम 'द फेमिली सर्विस एशोशियेशन आफ अमेरिका।' सन् १९१९ में 'द फेमिली' नामक पत्रिका प्रारम्भ की गयी। तब से अब तक यह पत्रिका परिवार-कल्याण के क्षेत्र में किये जाने वाले सर्वोत्तम वैयक्तिक सेवा-कार्यों से सम्बन्धित विचारों का प्रकाशन और प्रचार करती आ रही है। इस पत्रिका का नाम भी बदल कर अक्तूबर, सन् १९४६ में 'दी जर्नल आफ सोशल केस वर्क'' और सन् १९५० में 'सोशल केस वर्क' कर दिया गया।

सामाजिक स्थापन-कार्य का प्रारम्भ

सामाजिक कार्य के प्रारम्भ से अन्त तक की प्रगति के इस पर्यवेक्षण के प्रसंग में एक और आन्दोलन का उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक है। इसका प्रारम्भ, जैसा आसानी से

२. एलिजाबेथ जी० मिथेर——"ए हिस्ट्री आफ द न्यूयार्क स्कूल आफ सोशल वर्क"—— न्यूयार्क, कोलम्बिया विश्वविद्यालय प्रेस, १९५४।

समझा जा सकता है, इंग्लैण्ड के लन्दन-जैसे नगर में हुआ था। जिसे उद्योगीकरण के अभिशापों को सबसे पहले और सबसे अधिक उग्र रूप में झेलना पड़ा था। सन् १८८० तक इङ्गलैण्ड में सामाजिक कार्य के अन्तर्गत जो काम होते थे, उनमें मुख्य रूप से निर्धन-सहायता-अधिकारी द्वारा दिये जाने वाले लघु अनुदान, उदार व्यक्तियों द्वारा किये जाने वाले असंघटित लोकोपकारी कार्य (चर्च और गैर सरकारी संघटनों द्वारा परिचालित) और दान-संघटन-समिति के सुसंघटित प्रयत्न, उल्लेखनीय हैं। यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि व्यवहार-रूप में इन सब में सहायता का कार्य व्यक्ति को दृष्टि में रख कर किया जाता था। बाद में सामाजिक-स्थापन सम्बन्धी नियमों के कारण दृष्टिकोण में यह परिवर्तन हुआ कि अब व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि समूह की इकाई के रूप में ग्रहण किया जाने लगा। अतः समूह ही सेवा-कार्य की एकाई बन गया था। यह स्वाभाविक ही था कि इस प्रकार के कार्य का प्रारम्भ, समर्थन और वहन उस वर्ग—उच्च मध्यवर्ग—द्वारा किया जाता, जिसने इग्लैंड के उद्योगीकरण से सबसे अधिक लाभ उठाया था। सामाजिक स्थापन का कार्य आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से प्रारम्भ हुआ और मुख्यतः इग्लैंड की गन्दी बस्तियों में केन्द्रित रहा। संसार का सर्वप्रथम सामाजिक स्थापन कार्य—टायान्बी हाल है, जिसकी स्थापना सन् १८८४ ई० में हुई थी। इसकी स्थापना के मूल में यह विश्वास निहित था कि जो भाग्यवान् लोग भौतिक सुख सामग्रियों की दृष्टि से सम्पन्न हैं, उनका भी नगर के अपेक्षाकृत निर्धन क्षेत्रों में बसकर वहाँ के रहने वाले उन लोगों की संस्कृति और जीवन-विधि को अंगीकार करना चाहिए जिन्हें जीवन की समुचित सुविधाएँ नहीं मिल पाती हैं। प्रारम्भ में इस प्रकार बसनेवाले लोगों के प्रयत्नों का सार तत्त्व यही था कि वे किसी क्षेत्र के पूर्ववर्त्ती निवासियों के जीवन की गति विधियों में हिस्सा बंटाते थे। इस तरह उनका लक्ष्य यह था कि भाग्यवान् लोग अपने अनुभवों से निर्धन बस्तियों में रहने वाले लोगों को लाभान्वित करें और स्वयं भी उनके अनुभवों से शिक्षा ग्रहण करके लाभान्वित हों।

टायान्बी हाल का आदर्श अमेरिका में भी अपनाया गया और न्यूयार्क शहर में सन् १८८६ में अमेरिका का इस तरह का सर्वप्रथम स्थापन कार्य—नेबरहुड गिल्ड का निर्माण—सम्पन्न हुआ। उद्योगीकरण के कारण एक ओर तो अमेरिका में अपार धन-राशि संचित होती गयी, किन्तु साथ ही ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो गयी कि वह धनराशि बहुजन-समाज के पास न पहुँचकर कुछ थोड़े-से लोगों के स्वामित्व में ही रह गयी। सामाजिक कार्यों द्वारा जिनके अन्तर्गत उक्त सामाजिक स्थापन का कार्य भी सम्मिलित कर लिया गया असुविधा-ग्रस्त लोगों की समस्यायों को समझने का प्रयत्न किया जाता था तथा ऐसी सामाजिक व्यवस्था में, जिसकी कठोरता के कारण अधिकांश लोगों को असफलता ही प्राप्त होती

थी, इन सामाजिक कार्यों के माध्यम से उन्हें सुखी जीवन व्यतीत करने की सुविधाएँ प्राप्त करने में सहायता दी जाती थी।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि सामाजिक कार्यों के प्रारम्भ और विकास का उन आधारभूत आर्थिक परिस्थितियों, सामाजिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों तथा उनमें अभिव्यक्त उनके अंगभूत जीवन-दर्शन से अविछिन्न सम्बन्ध है विभिन्न व्यापारिक, व्यावसायिक तथा औद्योगिक परिवर्तनों के फलस्वरूप पुरानी सामन्ती समाज-व्यवस्था टूटती गयी, किन्तु इस बीच मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति की मौलिक और अनिवार्य माँगें भी बनी रहीं। उन माँगों की पूर्ति के लिए समाज में प्रारम्भ में वैयक्तिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के आधार पर कुछ विशेष सेवा-कार्यों का प्रारम्भ हुआ। व्यक्ति की आवश्यकताएँ उसकी अपनी ही अपरिवर्तनशीलता, अज्ञान अथवा अक्षमता के कारण उद्भूत परिस्थितियों की देन थीं। इस समस्या का समाधान यही था कि उन आवश्यकताओं की पूर्ति यथासम्भव कम व्यय द्वारा की जाय। अतः सहायता की रकम इतनी अधिक नहीं होती थी कि इग्लैंड में कम-से-कम मजदूरी पाने वाला व्यक्ति भी उसकी ओर आकृष्ट होकर अपनी नौकरी छोड़ बैठे, साथ ही यह प्रयत्न भी किया जाता था कि कोई व्यक्ति यह न अनुभव करे कि समाज उसकी निर्धनता या विपत्तियों से उत्पन्न आवश्यकताओं का समर्थन करता है। यद्यपि यह बात एलिजाबेथ कालीन प्रतीत होती है। किन्तु यह सत्य है कि एलिजाबेथ के बाद २०० वर्षों तक इस धारणा की ही प्रबलता थी।

कई शताब्दियों तक दुःख-मुक्ति के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों से उन कार्यक्रमों की सीमाएँ या त्रुटियाँ स्पष्ट हो गयीं थीं,जिनमें केवल परिणामों पर ही ध्यान दिया जाता था, कारणों पर नहीं। किन्तु यह प्रयत्न समुद्र को झाड़ू से पीछे हटाने के समान था। सामाजिक समस्याओं के मूल तक पहुँचने वाली दृष्टि अभी नहीं मिल सकी थी। यह दृष्टि तब मिली जब हमने यह समझ लिया कि ये समस्याएँ केवल व्यक्ति की गल्तियों का परिणाम नहीं हैं, उनका कारण कुछ और भी है। जब यह बात अच्छी तरह समझी जाने लगी कि वे कारण व्यक्ति के स्तर से अधिक व्यापक और ऊपर उठे हुए थे, तभी अगला कदम उठाया गया, वह कदम था दुखों और विपत्तियों के निरोध का प्रयत्न। इसके बाद इस सन्दर्भ में समूचे राष्ट्रीय जीवन---उद्योग, व्यवसाय, दर्शन, सामाजिक संगठन आदि की सक्रियता का महत्त्व स्पष्ट हो गया। इन सक्रिय शक्तियों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो गयी कि उनसे व्यक्ति के दुर्भाग्य का घनिष्ठ सम्बन्ध था। केवल इस प्रकार की प्रबुद्ध समझ के द्वारा ही ऐसे सुधारात्मक और निरोधात्मक कार्यक्रम, जिनमें कारण और प्रभाव के पारस्परिक

सम्बन्धों पर विशेष ध्यान दिया गया हो, चलाये जा सकते थे। सामाजिक कार्य देश की अर्थव्यवस्था का एक अंग बन गया। ज्यों-ज्यों इन नये पेशों का विकास होता गया, यह बात भी स्पष्ट होती गयी कि सामाजिक कार्यकर्ताओं को, जिन्हें पहले व्यक्ति पर विपत्ति आ जाने पर सहायतार्थ बुलाया जाता था, अब उसके पूर्व ही विपत्तियों के निरोधार्थ सलाह, निर्देश अथवा सक्रिय सहायता के लिए बुलाना चाहिए। सामाजिक समस्याओं को हल करने का यह कार्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया (कुछ लोग इसे सीमित होना भी कह सकते हैं) और अब व्यक्ति के भीतर निहित उन क्षमताओं या शक्तियों की प्रक्रिया पर भी दृष्टि डाली जाने लगी जिनके कारण वह व्यक्ति अपने परिवेशगत वस्तुओं और मनुष्यों के साथ सफलता पूर्वक सामञ्जस्य स्थापित कर सकता है।

यद्यपि यह ऐतिहासिक विवेचन बहुत ही संक्षिप्त है, फिर भी उसे पढ़ने पर यह बात स्पष्ट हो जायगी कि आज जन-कल्याण के कार्यों का प्रभाव और महत्त्व कितना अधिक बढ़ गया है और सामाजिक कार्य के वर्तमान चतुर्मुख विकास में गैर सरकारी संस्थाओं और स्वेच्छापूर्वक निशुःल्क सेवा करने वाले व्यक्तियों की सेवाओं का कितना अधिक योगदान रहा है। यद्यपि आज आर्थिक सहायता से सम्बन्धित सेवाएँ सरकारी कल्याण-अभिकरणों द्वारा की जाती हैं, पर हमारे सामाजिक सुरक्षा-कार्यक्रम के प्रारम्भ से पूर्व के सौ वर्षों में गैर सरकारी संस्थाओं ने जो सेवाकार्य किये, वे ही आज के कल्याण-कार्यक्रमों के अन्तर्गत चलने वाले सभी निजी सेवा-कार्यों की आधार-शिला थे। प्रारम्भ में व्यक्ति और गैर सरकारी संस्थाएँ ही असुविधाग्रस्त व्यक्तियों के, जिनमें बच्चे, बृद्ध, पुराने रोगी, पागल, दुर्बल मस्तिष्क वाले, अन्धे, बहरे अपराधी बालक आदि सभी होते थे, लिए संस्थागत-सेवा का कार्य करती थीं और बाद में उन्होंने ही इनमें से कई श्रेणियों के लोगों के बीच वैयक्तिक आधार पर सेवा-कार्य करने के प्रयोग किये। इस समय सरकारी या गैर सरकारी माध्यमों से सामाजिक सेवा का जो भी कार्य किया जा रहा है, गैर सरकारी अभिकरणों ने ही उसकी आधार-भूमि को विकसित किया था। वर्तमान समूहगत सेवा कार्यों की, चाहे वे आज के सामाजिक व्यवस्थापन के कार्य हों अथवा सरकारी या गैर सरकारी तत्त्वावधान में चलने वाले सामुदायिक केन्द्र हों, भूमिका भी गैरसरकारी अभिकरणों द्वारा ही तैयार की गयी थी। सामुदायिक दान-पेटी में संगृहीत धन द्वारा आर्थिक सहायता-कार्य के क्षेत्र में अथवा सरकारी और गैरसरकारी प्रतिनिधियों द्वारा सामुदायिक-योजना-समितियों के माध्यम से संयुक्त रूप में संचालित योजनाओं के क्षेत्र में किये जाने वाले आज के सामुदायिक संघटन-सम्बन्धी अधिकांश कार्यों की आधार-भूमि भी गैर सरकारी अभिकरणों के प्रयत्नों से ही तैयार हुई थी।

जैसा नवीन प्रयोगात्मक कार्यों के प्रारम्भिक काल में होना स्वाभाविक है, गैर सरकारी अभिकरणों से भी गलतियाँ अवश्य हुईं, पर उन दोषों और गलतियों के बावजूद उन्होंने निरन्तर और ईमानदारी से काम करते हुए,जो प्रतिमान स्थिर किया, वह आज के सामाजिक कार्यों के सामान्य और स्थिर प्रतिमान के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इसके अतिरिक्त गैर सरकारी अभिकरणों द्वारा संचालित अनेक सेवाकार्यों को सरकारी सहायता मिलनी शुरू हो जाने के बाद उन्हें नये-नये कार्य-क्षेत्रों की खोज करने का भी अवसर मिलने लगा है। ये बातें गैर सरकारी अभिकरणों की वकालत में या उनकी स्थिति को दृढ़ बनाने की दृष्टि से नहीं कही जा रही हैं। वे संस्थाएँ अपने कार्यों के महत्व के आधार पर ही जीवित रह सकेंगी, किसी की वकालत से नहीं। इन बातों का उद्देश्य यही दिखाना था कि समाज-सेवा के क्षेत्र में सरकारी और गर सरकारी अभिकरण एक दूसरे के पूरक का कार्य करते हैं। यहाँ उपर्युक्त कुछ शब्दों द्वारा उन कार्यों की ओर ध्यान आकृष्ट करना ही उद्देश्य है, जिनकी स्पष्ट रूप-रेखा अभी भी अनिश्चित है, फिर भी जिन्हें प्रयोग के रूप में करना आवश्यक है, ताकि उन्हीं प्रयोगों के आधार पर उन कार्यों को लोक-समर्थन और सरकारी आर्थिक सहायता प्राप्त हो सके।

सहायक ग्रन्थ-सूची

पुस्तक और पुस्तिकाएँ

१. एफ इमर्सन ऐण्ड्रूज़—ऐटीच्यूड्स टुवर्ड्स गिविंग—न्यूयार्क, रसेल सेज फाउण्डेशन, १९५३।

२. लेखक वही—फिलान्थ्रापिक गिविंग—प्रकाशक वही १९५०।

३. मार्ग्यूराइट बॉयलन—सोशल वेलफेयर इन दी कैथलिक चर्च न्यूयार्क, कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, १९४१।

४. लिलियन ब्राण्ट—ग्रोथ एण्ड डेवलपमेण्ट आफ द ए० आई० सी० पी० एण्ड सी० ओ० एस०—न्यूयार्क, कम्युनिटी सर्विस सोसाइटी—१९४२।

५. फ्रेन्क जे० ब्रूनो—ट्रेण्ड्स इन सोशल वर्क एज़ रिफ्लेक्टेड इन दी प्रोसीडिंग्ज आफ द नैशनल कानफ्रेंस आफ सोशल वर्क, १८७४–१९४६—न्यूयार्क, कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, १९४८।

६. एडवर्ड टी. डिवाइन—ह्वेन सोशल वर्क वाज यंग—न्यूयार्क, दी मैकमिलन कम्पनी, १९३९।

७. एफ्रायम फ़िश—ऐन हिस्टारिकल सर्वे ज्यूइश फिलान्थ्रापी—न्यूयार्क, दी

मैकमिलन कम्पनी, १९२४।

८. जान एम. ग्लेन और लिलियन ब्राण्ट––"रसेल सेज फाउण्डेशन; १९०७–१९४६–– दो भाग––न्यूयार्क, रसेल सेज फाउण्डेशन, १९४७।

९. चार्ल्स आर० हेण्डरसन––माडर्न मेथड्स आफ चैरिटी––न्यूयार्क, दी मैकमिलन कम्पनी, १९०४।

१०. जोसेफाइन एस० लोवेल––पब्लिक रिलीफ एण्ड प्राइवेट चैरिटी––न्यूयार्क, जी० पी० पुटनम सन्स, १८८४।

११. विलियम एच० मैथ्यूज़––ऐडवेंजर्स इन गिविन––न्यूयार्क, डाड, मीड एण्ड कम्पनी––१९३९।

१२. स्टूअर्ट अल्फ्रेड क्वीन––सोशल वर्क इन दी लाइट आफ हिस्टरी–फिलाडेल्फिया, जे० बी० लिपिनकाट कम्पनी, १९२२।

१३. मेरी रिचमांड––दी लांग व्यू––न्यूयार्क, रसेल सेज फाउण्डेशन, १९३०।

१४. एमास जी० वार्नर––अमेरिकन चैरिटीज़––न्यूयार्क, टामस वाई० क्रावेल कम्पनी, १८९४।

१५. फ्रैंक डी० वाट्सन––दी चैरिटी आर्गेनाइज़ेसन मूवमेण्ट इन दी यूनाइटेड् स्टेट्स––न्यूयार्क, दी मैकमिलन कम्पनी, १९२२।

पाँचवाँ अध्याय

वैयक्तिक समाज-सेवा कार्य

वैयक्तिक समाज-सेवा-कार्य का स्वरूप

जैसा पहले संकेत किया जा चुका है, सारे देश की जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नियोजित कार्यक्रमों के प्रसार के साथ-साथ उनमें लगे हुए कार्यकर्ताओं को बराबर यह अनुभव होता रहा कि उनकी सेवाओं का उपभोक्ता अन्ततः व्यक्ति मानव ही है। निस्संदेह यह सत्य है कि अधिकांश लोगों की समस्याएँ एक-जैसी होती हैं। उदाहरण के लिए, हमारे देश की इतनी बड़ी जनसंख्या में एक बड़ी संख्या ऐसे बच्चों की हमेशा रहेगी जो माता-पिता द्वारा पर्याप्त देख-भाल की सुविधा से वंचित होते हैं। यह भी सत्य है कि इन समस्याओं को सुलझाने के लिए सामान्य उपाय भी निकाले जा सकते हैं। ऐसे बच्चों को किसी संस्था या पालन-गृह में एक साथ रखकर उनकी देख-भाल की जा सकती है। किन्तु अन्तिम रूप से सत्य यह है कि समस्याओं और समाधानों के प्रति उनका सामना करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति का रुख भिन्न-भिन्न होता है। कुछ बच्चों के लिए संस्थागत देख-भाल सुख-सुविधाओं का सार-संग्रह प्रतीत होती है, किन्तु अन्य बहुत-से बच्चों को वह बिलकुल कष्टदायक हो जाती है, ऐसे समाज में, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व से शक्ति प्राप्त करता तथा उसकी देन के प्रति आदर-भाव रखता है, यदि वैयक्तिक अनुभवों की विचित्रता और विभिन्नता को आदरपूर्वक स्वीकार करके वैयक्तिक समाज-सेवा कार्य-जैसी बिलकुल नवीन सेवा-पद्धति का विकास किया गया है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

हम में से प्रत्येक व्यक्ति समाज के अन्य व्यक्तियों तथा संस्थाओं जैसे––परिवार, विद्यालय, चर्च, पेशा आदि से किसी-न-किसी सम्बन्ध-सूत्र द्वारा अनुबद्ध है। उसी तरह हम में से प्रत्येक व्यक्ति को कभी-न-कभी वकीलों, डाक्टरों और मानसिक चिकित्सकों की सेवाओं की आवश्यकता होती है। इन अनुबन्धों, सम्बन्धों और सेवाओं से हमको अनेक प्रकार का सुख-सन्तोष प्राप्त होता है, किन्तु उनके कारण अनेक बाधाएँ भी उत्पन्न होती हैं। वैयक्तिक समाज-सेवा एक ऐसी पद्धति है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की ऐसी कुछ समस्याओं को हल करने में सहायता प्रदान करता है, जो कि इस संसार के संघटन

के कारण उत्पन्न होती है। वैयक्तिक समाज-सेवा का उद्देश्य परिवर्तनों का विरोध करना नहीं, बल्कि इसके विपरीत मानव-समाज की उन्नति और विकास को गति प्रदान करना है, उसका प्राथमिक उद्देश्य समाज को जनता की सेवा में संलग्न करना भी नहीं है। उसका मुख्य लक्ष्य ऐसे व्यक्तियों की अलग-अलग सहायता करना है, जिनकी आवश्यकताओं और साधनों तथा जीवन की उलट-फेर और अनिवार्यताओं के बीच संघर्ष उत्पन्न हो गया है। अगले पृष्ठों में इस विषय का एक सामान्य विवरण देने तथा उसके कुछ आधार भूत तत्त्वों तथा तत्सम्बन्धी सामयिक प्रश्नों पर विचार करने का प्रयत्न किया जायेगा।

सामाजिक अभिकरण——इस देश में वैयक्तिक समाज-सेवा का कार्य करने वाले अनेक प्रकार के सामाजिक अभिकरण वर्तमान हैं। उनमें से कुछ तो ऐसी बड़ी संस्थाओं के रूप में हैं,जिनमें सैकड़ों कार्यकर्ता नौकरी करते हैं और कुछ इतने छोटे हैं,जिनमें केवल एक ही व्यक्ति वैयत्तिक सेवा-कार्य करता है। वे समुदाय,राज्य या राष्ट्र के समस्त नागरिकों को या तो विशिष्ट सेवार्थियों की आवश्यकता के अनुरूप कदाचित् एक अत्यन्त विशिष्ट सेवा से सम्बन्धित अथवा अनेक प्रकार की समस्याओं से सम्बन्धित सेवा दे सकते हैं। उसका कार्यक्षेत्र नगर और देहात दोनों हो सकते हैं। बड़े-बड़े नगरों में उसकी अनेक क्षेत्रीय शाखाएँ होती हैं, जो अपने पास-पड़ोस के क्षेत्र में वैयक्तिक समाज-सेवा का कार्य करती हैं। किन्तु देहातों में प्रायः उसका एक ही छोटा कार्यालय होता है, जो किसी एक जनपद या सैकड़ों वर्गमील में फैले अनेक जनपदों के लोगों की सेवा करने का प्रयत्न करता है। कहीं-कहीं विभागीय कार्यकर्ताओं में सामाजिक कार्य के पेशे में पूर्णतः प्रशिक्षित कार्य-कर्ता होते हैं और कहीं-कहीं अप्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की ही संख्या अधिक होती है जो थोड़े-से प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर काम करते हैं। वैयक्तिक सेवा-कार्य विभिन्न अभिकरणों—जैसे परिवार-सेवा-अभिकरण अथवा अस्पताल, शिक्षा-संस्था और विशाल "वेटरन् ऐडमिनिस्ट्रेशन"-जैसी संस्थाओं के उपविभाग के रूप में काम करने वाले समाज-सेवा अभिकरणों में भी किया जा सकता है। इन तमाम विभिन्नताओं के कारण वैयक्तिक-सेवा कार्य के किसी एक विशिष्ट निजी स्वरूप अथवा उसका प्रतिनिधित्व करने वाले किसी विशेष अभिकरण का वास्तविक स्वरूप निर्धारित करना सम्भव नहीं है। फिर भी उसका जो वर्णन आगे किया जायगा उसमें वे तमाम प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ मिल जायँगी जो इस प्रकार के अभिकरणों में प्रायः पायी जाती हैं।

वैयक्तिक-सेवा कार्य की भौतिक स्थिति ऐसी हो सकती है,जिसमें बहुरूपता दिखलाई पड़े, किन्तु यह सम्भावना नहीं है कि उसमें दाम्भिकता या आडम्बर दिखाई दे। अभिकरण किसी सामान्य कार्यालय भवन में हो सकता है या किसी ऐसे पूर्ववर्ती गृहस्थी योग्य मकान

में हो सकता है, जिसे कार्यालय के रूप में बदल दिया गया है। वह किसी गन्दे मुहल्ले या ऐसे स्थान में भी हो सकता है, जहाँ साफ हवा सुन्दर सजावट की सामग्री तथा पूर्ण स्वास्थ्य-कर वातावरण की सुविधाएँ हैं। यह भी सम्भव हो सकता है कि अभिकरण के कार्यालय में पत्रिकाओं, खिलौनों, चित्ताकर्षक तस्वीरों और शायद पर्दों और जलागारों आदि की सभी सुविधाएँ भी एकत्र की गयी हों, जिन्हें देखकर यह स्पष्ट हो जाय कि कार्यालय को सजाने में उन लोगों के चित्त को आर्कषित करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है, जिनकी देख-भाल और चिन्ता करना अभिकरण का मुख्य लक्ष्य है।

कार्यालय का वातावरण अत्यन्त नीरस, व्यावहारिकतायुक्त तथा शान्त और त्वरा-हीन हो सकता है, किन्तु साथ ही उसमें सेवार्थी के साथ सहृदयतापूर्ण मृदु व्यवहार भी किया जाता है। इन अभिकरणों में मानव-व्यवहार की विचित्रताओं और असाधारणताओं को बिना आश्चर्य या घृणा का भाव प्रगट किये सुना और स्वीकार किया जाता है, किन्तु साथ ही इस कार्य की पद्धति सद्भावना और अनुज्ञाशीलता से परिपूर्ण भी होती है। इस पद्धति द्वारा सेवार्थी में गहरी रुचि दिखलायी जाती है, किन्तु यह रुचि निरर्थक अथवा अस्वस्थ जिज्ञासा-वृत्ति से सर्वथा भिन्न होती है। उसमें इस बात की निश्चितता (गारंटी) दी जाती है कि सेवार्थी यदि तत्काल कोई बात बतलाना नहीं चाहता है तो उस समय उस बात के सम्बन्ध में पूछ-ताछ नहीं की जायगी। इसके भीतर यह सिद्धान्त भी निहित है कि कोई सेवार्थी अपनी जो समस्याएँ अभिकरण के सामने लाता है, वे और किसी को भले ही लज्जाजनक और तुच्छ प्रतीत हों, किन्तु वे उस व्यक्ति के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं और इसी कारण अभिकरण की दृष्टि में भी उनका बहुत अधिक महत्त्व है। किसी-न-किसी प्रकार सेवार्थियों पर यह प्रभाव डाल देना आवश्यक होता है कि अभिकरण का काम मुख्यतः सेवार्थी की सहायता करना है, उसके मामले में निर्णय देना नहीं। अभिकरण के कार्यालय का वातावरण सेवार्थी के प्रति आदर और सहायता की भावना से पूर्ण होता है, किन्तु साथ ही सेवार्थी से भी कुछ आशाएँ की जाती हैं। अभिकरण के समस्त कार्यकर्ताओं के, जिनके साथ सेवार्थी का सम्पर्क होता है या हो सकता है, व्यवहार से ही उपर्युक्त वातावरण की सृष्टि होती है। किसी महत्त्वपूर्ण अभिकरण के लिपिक कार्यकर्त्ताओं से भी यह उमीद की जाती है कि वे इस सद्भावनापूर्ण वातावरण को बनाये रखने में सहायक हों।

आवेदन-पत्र—वैयक्तिक सेवा कार्य की प्रक्रिया का प्रथम चरण अधिकतर यह होता है कि कोई सेवार्थी अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में सहायतार्थ अभिकरण को आवेदन-पत्र देता है। वैयक्तिक सेवा-कार्य के प्रारम्भ में इस बात को बहुत महत्त्व दिया जाता है क्योंकि वैयक्तिक सेवा-कार्य करने वाले कार्यकर्ता यह अच्छी तरह जानते हैं कि उनके

प्रयत्न तभी सफल हो सकते हैं जब कि वे सेवार्थी के हितों और उद्देश्यों के अनुकूल हों, यदि उनके प्रयत्न सेवार्थी की इच्छा की विरुद्ध दिशा में जाने वाले होते हैं तो प्रायः उनकी असफलता निश्चित है। यदि इससे कोई यह निष्कर्ष निकाले कि वैयक्तिक सेवा-कार्य की पद्धति "उचित या सही कार्य" करने के लिए लोगों के साथ बल-प्रयोग करने अथवा उन्हें बहकाने की नहीं है तो उसका ऐसा सोचना ठीक ही है। किन्तु यह सोचना भी गलत होगा कि वैयक्तिक सेवा-कार्य करने वाला कार्यकर्ता सेवार्थी के असामाजिक और अवैधानिक कार्यों का भी समर्थन केवल इसलिए करेगा कि सेवार्थी की इच्छाएँ उसी दिशा में प्रवृत्त हैं।

वैयक्तिक सेवा-कार्य तभी सफल हो सकता है जब कि सेवार्थी स्वयं भी किसी-न-किसी रूप में अपनी समस्याओं से जूझ रहा हो। इस कारण अभिकरणों में सामान्यतया यह पद्धति अपनायी जाती है कि सेवार्थी स्वयं अपनी समस्याएँ लेकर आये और तब उसकी सहायता के लिए प्रयत्न किया जाय। यह एक प्रकार से सेवार्थी की परीक्षा के लिए किया जाता है, ताकि यह पता चल जाय कि वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न होने वाले प्रभाव में उसकी कितनी रुचि है? किन्तु कुछ अभिकरणों में इस नियम का अपवाद भी होता है, जैसे—परिवीक्षण या प्रतिज्ञाबद्ध-कारावास, मानसिक रोग-संस्था अथवा सुधार-गृह, बालकों की देख-भाल करने वाली संस्थाओं का निरीक्षण करने वाला विभाग आदि। इन संस्थाओं के व्यक्तिगत सेवा करने वाले कार्यकर्ता सेवार्थी की सहायता के सम्बन्ध में पहले स्वयं ही कदम उठाते हैं। इन अभिकरणों में कुछ ऐसी विशेष समस्याएँ उठती है, जिनके द्वारा सेवा-कार्य की प्रक्रिया का प्रारम्भ हो जाता है, किन्तु इन समस्याओं के समाधान के लिए प्रारम्भ से ऐसी पद्धति अपनायी जाती है, जिससे सेवार्थी सेवाकार्य की प्रक्रिया में सक्रिय सहयोग करता है। इस तरह वैयक्तिक सेवा सेवार्थी के ऊपर बलपूर्वक लादी जानेवाली वस्तु नहीं है। यह एक ऐसा कार्य है, जिसमें कार्यकर्ता और सेवार्थी दोनों का सक्रिय और संयुक्त योग अपेक्षित होता है।

जब कोई व्यक्ति किसी अभिकरण में पहले-पहल आवेदन पत्र लेकर जाता है तो उसे इस बात का कुछ अनुमान करा दिया जाता है कि किसी कार्यकर्ता द्वारा उसका मामला हाथ में लिये जाने में देर हो सकती है और सेवार्थी को उस काल तक प्रतीक्षा करनी होगी। यदि उस कार्यकर्ता से उस सेवार्थी की भेंट कई दिनों तक नहीं हो पाती है तो सेवार्थी को कोई निश्चित दिन और समय बताया जाता है, जब उसकी उस कार्यकर्ता से भेंट हो सकेगी। अन्त में शीघ्र ही सेवार्थी को कार्यकर्ता से साक्षात्कार होता है। वह कार्यकर्ता सेवार्थी से आवेदन-पत्र भरवाकर उसकी सहायता का कार्य प्रारम्भ करता है। सबसे अच्छी यह स्थिति मानी जाती है कि साक्षात्कार किसी व्यक्तिगत कार्यालय में हो। यह साक्षात्कार किसी ऐसे साक्षात्कार-कक्ष में हो जहाँ पूर्ण एकान्त नहीं होता, किन्तु यह स्थिति अधिक

अपेक्षित नहीं मानी जाती। कभी-कभी यह साक्षात्कार कार्यालय के ऐसे काल में भी होता है, जिसमें कई कार्यकर्ता बैठते हैं। विशेष परिस्थितियों में सेवार्थी के घर पर भी साक्षात्कार हो सकता है।

आवेदन-सम्बन्धी साक्षात्कार एक घंटे या उससे कुछ अधिक समय तक होता है। इसमें कार्यकर्ता सेवार्थी की इस बात में सहायता करता है कि वह अपनी समस्या का तथा उसकी पृष्ठभूमि से सम्बन्धित परिस्थिति का खुलकर वर्णन कर सके। ऐसा करते समय कार्यकर्ता या तो प्रारम्भ में ही सेवार्थी से आवेदन-पत्र भरवा लेता है अथवा साक्षात्कार-काल के बीच या अन्त में भरवाता है। हर हालत में आवेदन पत्र पर समस्या और उसकी चतुर्दिक परिस्थिति की सूचना आवेदन-पत्र में अवश्य लिखी जाती है। कई अभिकरणों में आवेदनपत्र पर इसलिए हस्ताक्षर कराया जाता है, ताकि वह इस बात का प्रमाण रहे कि वह सेवार्थी अपनी समस्याओं का समाधान खोजने में अभिकरण के साथ मिलकर प्रयत्न करने की इच्छा रखता है।

आवेदन-सम्बन्धी साक्षात्कार करनेवाला कार्यकर्ता शीघ्र ही इस नतीजे पर पहुँचता है कि सेवार्थी अपनी समस्या के सम्बन्ध में जो उनकी चिन्ता का मुख्य विषय होता है,सहायता की तत्काल माँग नहीं करते। लज्जा और अपराध की भावना के कारण सेवार्थी कार्यकर्ता के सम्मुख अपनी उस असली बात को नहीं कहता, जो उसके कष्ट का वास्तविक कारण होती है। आवेदक वस्तुतः अपनी भावनाओं की पृष्ठ भूमि के सम्बन्ध में ही सहायता की प्रार्थना करते हैं और विभिन्न सेवार्थियों की ये भावनाएँ एक दूसरे से बिलकुल भिन्न होती हैं। कुछ सेवार्थी तो सहायता की माँग इस तरह सीधे ढंग से करते हैं, मानो वे नुक्कड़ वाली पन्सारी की दुकान से अण्डा खरीद रहे हों। किन्तु यह प्रवृत्ति उन सेवार्थियों में नहीं पायी जाती, जो अपनी भावनाओं को पूर्ण नियन्त्रण में रखते हुए किसी गम्भीर समस्या के सम्बन्ध में सहायता की माँग करते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी दीन और चाटुकारितापूर्ण ढंग से, कभी भयभीत रूप में, कभी अभ्यर्थना करते हुए कभी आदेश देते हुए, कभी क्रोध, कटुता और शिकायतों से भरे हुए और कभी अन्य किसी भी भावना से प्रेरित होकर अभिकरणों में आते हैं। यद्यपि ये भावनाएँ कार्यकर्ता को लक्ष्य करके ही अभिव्यक्त की जाती हैं, किन्तु कार्यकर्ता अपने प्रशिक्षण और अनुभव के कारण यह अच्छी तरह जानता है कि ये भावनाएँ मुख्यतः सेवार्थी की उस चिन्ता की बाह्याभिव्यक्ति हैं, जो उसको भीतर ही भीतर आलोडित कर रही है। अपनी समझ और अनुभव के आधार पर कार्यकर्ता सेवार्थी को स्वयं अपनी मूल समस्याओं को पहचानने और स्वीकार करने में सहायता करता है और उसे इस बात के लिए तैयार करता है कि वह अभिकरण द्वारा की जानेवाली सेवाओं का उपयोग करे। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि आवेदन पत्रों पर विचार करनेवाले

कार्यकर्ता इतने शान्त और चेतना शून्य होते हैं कि उन पर गालियों और भर्त्सनाओं का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता, बल्कि इसका अर्थ यह है कि ये कार्यकर्ता इतने प्रशिक्षित, अनुभवी और कुशल होते हैं कि भर्त्सनाओं और गालियों से घबड़ाते नहीं हैं। यही कारण है कि अधिकांश अभिकरणों में आवेदन-पत्रों पर विचार करने के लिए इस प्रकार का प्रशिक्षित कार्यकर्ता अवश्य रखा जाता है।

जिस समय वैयक्तिक सेवा करनेवाला कार्यकर्ता आवेदन कर्ता से उसकी समस्याओं और तत्सम्बन्धी परिस्थितियों की जानकारी हासिल करता है। उसी समय वह उस आवेदन-कर्ता को यह सूचना भी दे देता है कि अभिकरण उसकी सहायता किस रूप में कर सकेगा। कार्यकर्ता उसे यह बताता है कि अभिकरण उसकी क्या सहायाता करेगा, किन परिस्थि-तियों में उसे यह सहायता मिल सकेगी और अभिकरण की सेवाओं का रचनात्मक उपयोग करने के लिए उस व्यक्ति को किस प्रकार के प्रयत्न करने होंगे। यदि आवेदन पत्र में आर्थिक सहायता की माँग की गयी है तो आवेदक को इसका कुछ आभास दे दिया जाता है कि उसे लगभग कितनी आर्थिक सहायता मिल सकेगी, उसकी शर्तें क्या होंगी और तत्सम्बन्धी आवश्यक सूचना देने के लिए वह व्यक्ति अभिकरण के प्रति किस सीमा तक उत्तरदायी होगा। यदि आवेदन-पत्र में पारिवारिक या अन्य किसी सामाजिक सम्बन्ध के विषय में सहायता माँगी गयी है तो आवेदन-कर्ता को यह अच्छी तरह समझा दिया जाता है कि यह एक ऐसा मामला है, जिसमें उसे स्वयं भी प्रयत्न करने होंगे, अभिकरण अकेले उसकी समस्याओं को नहीं सुलझा सकता, क्योंकि यह काम घड़ीसाज के काम-जैसा नहीं हैं, जिसके पास लोग अपनी टूटी घड़ी दे आते हैं और वह उसकी मरम्मत करके उन्हें लौटा देता है। उसे यह भी बता दिया जाता है कि यद्यपि अभिकरण उसकी समस्याओं को सुलझाने में सहायता निश्चित रूप से करेगा, पर यह सहायता इसी शर्त पर दी जा सकती है कि सेवार्थी उसे सुलझाने में अभिकरण के साथ पूरी तरह सहयोग करे। सामान्यतः यह निश्चित-सा होता है कि कार्यार्थी को अपनी समस्या के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के लिए अभिकरण के पास थोड़े-थोड़े समय के बाद कई बार जाना पड़ता है। यदि समस्या पति-पत्नी के झगड़ों से सम्बन्धित होती है तो अभिकरण यह आशा करता है कि इस प्रकार के वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रगति के बीच आवेदनकर्ता के विरोधी पक्ष को भी अभिकरण में उपस्थित होना चाहिए। हर हालत में, जबतक कि समस्या ऐसी नहीं है कि वह साक्षात्कार काल में ही सुलझ जाय, साक्षात्कार के अन्त में कार्यकर्ता और आवेदक दोनों ही, अगला कदम क्या हो, इस सम्बन्ध में, किसी ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचते हैं जो दोनों को मान्य होता है। समस्या की जाँच-पड़ताल का काम जारी रखने और उसका उपचार ढूंढ़ने के लिए आवेदन-साक्षात्कार के उपरान्त निम्नलिखित तरीके अपनाये जाते हैं; या तो

आवेदन कर्ता अपना आवेदन-पत्र वापस ले लेता है; अथवा इस बात की सम्भावना पर विचार किया जाता है कि समस्या को किसी अधिक उपयुक्त अभिकरण के पास भेज दिया जाय, अथवा अभिकरण का कोई प्रतिनिधि आवेदक के घर या उस समस्या से सम्बन्धित अन्य किसी व्यक्ति के पास भेजा जाता है, अथवा यह कार्यक्रम बनाया जाता है कि आवेदक को विभिन्न कार्यकर्ताओं के पास अनेक साक्षात्कार के लिए कई बार आना पड़ेगा ।

सेवा का अनवरत क्रम—इसके बाद जो कदम उठाये जाते हैं वे समस्या और अभिकरण के स्वरूप के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं । अनेक अभिकरणों में आवेदन-साक्षात्कार के बाद कार्यकर्ता स्वयं आवेदक के घर जाकर उससे सम्पर्क स्थापित करता रहता है । यह बात देहाती क्षेत्रों के लिए और आवश्यक होती है, क्योंकि वहाँ आवेदक के सामने यातायात की समस्या एक बहुत बड़ी बाधा होती है । दूसरी ओर अधिकांश अभिकरणों में भिन्न-भिन्न समयों पर सेवार्थी को बुलाकर उससे सम्पर्क स्थापित करने की पद्धति अपनायी जाती है । यह पद्धति उस सिद्धान्त के अनुरूप है, जिसका उल्लेख आवेदन-पत्र देने की पद्धति का वर्णन करते समय किया जा चुका है । यदि आवेदक अभिकरण में सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से बार-बार आने को तैयार है तो इससे यह पता चलता है कि वह वस्तुतःअपनी समस्या को सुलझाने के लिए चिन्तित है और तत्सम्बन्धी कार्य को आगे बढ़ाने में उसकी रुचि है । इसके विपरीत आवेदक के घर जाकर उससे सम्पर्क स्थापित करने से यह भावना उत्पन्न हो सकती है कि अभिकरण को ही आवेदक की समस्या सुलझाने की अधिक चिन्ता और अनिवार्यता है ।

कई अभिकरणों में, जहाँ वैयक्तिक सेवा-कार्य में पूर्व निश्चित साक्षात्कार की पद्धति प्रचलित है, हर व्यक्ति के साथ इस प्रकार के साक्षात्कारों की संख्या भी परिसीमित कर दी गयी है । उदाहरणार्थ, सेवार्थी और कार्यकर्ता के बीच में यह बात तय हो जाती है कि उनकी मुलाकातें हफ्ते में चार बार होंगी, हर मुलाकात का समय १ घंटा होगा, इन मुलाकातों का सिलसिला कई हफ्तों तक चलेगा और जब यह सिसिला समाप्त होने लगेगा तो अन्त में वे दोनों मिलकर इस बात पर विचार करेंगे कि सेवार्थी की समस्या को सुलझाने के कार्य में कितनी प्रगति हुई है और यदि मुलाकातों का सिलसिला जारी रखा जाय तो उससे और प्रगति हो सकती है या नहीं । इस पद्धति के मूल में यह सिद्धान्त निहित है कि मानव का जीवन कुछ परिसीमाओं या अभावों से अनिवार्य रूप से सम्बद्ध है और जीवित रहने के लिए उसे उन सीमाओं और अभावों पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है । कहा जा सकता है कि व्यक्ति की शक्ति का व्यय जिस परिवेश या स्थिति में होता है वह शक्ति व्यक्ति के सम्बन्धों में ही निहित रहती है । अतः अभिकरण के ऊपर व्यक्ति की निरन्तर निर्भरता को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए, पर कई ऐसे अभिकरण भी हैं जो समय के

उपयोग की इस सुनियोजित पद्धति के आधार पर काम नहीं करते। ऐसे अभिकरणों में व्यक्तिगत सेवा-कार्य-सम्बन्धी साक्षात्कारों के बीच की अवधि अनियमित होती है, और कार्यकर्ता तथा सेवार्थी की सुविधाजनक स्थिति पर निर्भर करती है, उनमें साक्षात्कार का समय भी निर्धारित नहीं होता, उनकी सुविधा के अनुसार वह कभी अधिक समय तक चलता है, कभी कम समय तक। उसी तरह कुछ अभिकरण किसी एक सेवार्थी के साथ होनेवाली मुलाकातों की अधिकतम अवधि निश्चित करने के पक्ष में नहीं होते; फलतः उनके यहाँ होनेवाले साक्षात्कारों का सिलसिला अनिश्चित अवधि तक चलता रहता है।

कुछ असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर अन्य अवस्थाओं में किसी अभिकरण में जो कार्यकर्ता किसी एक व्यक्ति की वैयक्तिक सेवा का कार्य अपने हाथ में लेता है, वही उस व्यक्ति से सम्बन्धित अभिकरण के सभी कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। वैयक्तिक सेवा का जितना काम किसी कार्यकर्ता को दिया जाता है, उसीको उसका "कार्यभार" (केनलोड) कहा जाता और तत्सम्बन्धी सभी साक्षात्कार, टेलीफोन वार्ताएँ, पत्र-व्यवहार आदि उसी कार्यभार के अन्तर्गत सम्मिलित होते हैं। किसी कार्यकर्ता की बीमारी या अप्रत्याशित अनुपस्थिति आदि के कारण आकस्मिक स्थिति उत्पन्न होने पर ही कोई दूसरा कार्यकर्ता उसकी जगह काम करता है।

वैयक्तिक सेवा-कार्य करने वाले प्रायः सभी अभिकरणों की यह विशेषता होती है कि कि उनमें प्रत्येक व्यक्ति के मामले से सम्बन्धित सभी बातों का पूर्ण और विस्तृत अभिलेख सुरक्षित रखा जाता है। विभिन्न अभिकरणों में अभिलेख के स्वरूप और विकास के सम्बन्ध में विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित हैं, किन्तु सबमें प्रत्येक वैयक्तिक सेवा करने वाले कार्यकर्ता के काम का यह आवश्यक अंग माना जाता है कि वह हर व्यक्ति के मामले का अभिलेख किसी-न-किसी प्रकार तैयार करता है। अनेक अभिकरणों में अभिलेख का प्रारम्भ आवेदन-पत्र से होता है या एक ऐसे "मुख-पृष्ठ" (फेसशीट) से होता है, जिसमें सेवार्थी और उसकी स्थिति से सम्बन्धित प्रासंगिक तथ्यात्मक सूचनाओं का सारांश लिखा होता है। अभिलेख में तिथिक्रम के अनुसार होनेवाले साक्षात्कारों का विस्तृत विवरण लिखा होता है। उसमें सम्बन्धित व्यक्ति के साथ हुए पत्र-व्यवहार, उस व्यक्ति के परीक्षण से सम्बन्धित प्रतिवेदन तथा अन्य प्रकार की कोई ऐसी सामग्री जो अभिकरण को प्राप्त हुई है, आदि का विवरण भी होता है। चूंकि सेवार्थी और कार्यकर्ता के बीच होनेवाली बातें अधिकतर वैयक्तिक और गोपनीय होती हैं, अभिकरण अभिलेखों की गोपनीयता को अकारण जिज्ञासु लोगों की ताक-झाँक करनेवाली दृष्टि से सुरक्षित रखने का प्रयत्न करता है। इस कारण अभिलेखों को विशेष तालाबन्द फाइलों में रखा जाता है अथवा विशेष मिशिल कक्ष (फाइल रूम) में रखा जाता है, जिसमें छुट्टी के समय अच्छी तरह ताला बन्द रहता है।

ये अभिलेख केवल उत्तरदायी कर्मचारियों को ही देखने को मिल सकते हैं और आवश्यकता पड़ने पर अभिकरण के अभिलेखों की गोपनीयता को सुरक्षित रखने के लिए लिपिकों और कार्यालयों की देख-भाल करने वाले कर्मचारियों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है।

वैयक्तिक सेवा-कार्य-सम्बन्धी इन अभिलेखों की बहुत अधिक उपयोगिता होती है। आकस्मिक स्थिति उत्पन्न होने पर जब एक कार्यकर्ता की जगह दूसरा कार्यकर्ता मामले को हाथ में लेता है अथवा एक कार्यकर्ता के काम छोड़ देने पर दूसरा कार्यकर्ता उसकी जगह पर नियुक्त होता है तो उसे उस मामले से सम्बन्धित समस्याओं, उनके उपचारों तथा उपचार-सम्बन्धी भावी योजनाओं के बारे में इन अभिलेखों से ही जानकारी प्राप्त होती है। अभिलेखों को पढ़ने में व्यक्तिगत सेवा-कार्य के अभ्यास में तत्सम्बन्धी ज्ञान और कौशल की भी अभिवृद्धि होती है। उनमें उल्लिखित साक्षात्कार की बातों को पढ़कर तथा सेवार्थी द्वारा अभिव्यक्त भावनाओं तथा उनकी अभिव्यंजना-पद्धति का अध्ययन कर कार्यकर्ता को सेवार्थी के व्यक्तित्व की विकास-प्रक्रिया के सम्बन्ध में नयी दृष्टि मिलती है और उसकी समस्याओं के सम्बन्ध में नये उपाय सूझते हैं। वस्तुतः अभिलेखों को लिखने की प्रक्रिया में उपर्युक्त बातें कार्यकर्ता को उतनी अधिक नहीं सूझतीं जितनी बाद में उन्हें पढ़कर अपने विचारों और स्मरण शक्ति को पुनर्व्यवस्थित करते समय सूझती हैं। कार्यकर्त्ता जब अभिलेखों की सहायता से किसी उलझी समस्या वाले मामले को अपने निरीक्षक और सेवा-कार्य-सलाहकार के सम्मुख अथवा कर्मचारी वर्ग की बैठक में उपस्थित करता है तो उससे इस पेशे से सम्बन्धित शैक्षणिक ज्ञान की अभिवृद्धि में भी सहायता मिलती है। समाज-सेवा-सम्बन्धी विद्यालयों में प्रशिक्षित होने वाले छात्रों के लिए प्रायोगिक अनुभव के आधार के रूप में भी उन अभिलेखों का बहुत अधिक महत्त्व है। किसी अभिकरण के कार्यों का आँकड़ा उपस्थित करते समय भी ये अभिलेख बड़े काम के सिद्ध होते हैं तथा वैयक्तिक सेवा-कार्य-सम्बन्धी ज्ञान और योग्यता की वृद्धि के उद्देश्य से परिचालित शोध-सम्बन्धी योजनाओं के लिए भी इन अभिलेखों से बहुत-सी आधारभूत सामग्री प्राप्त होती है। इस पेशे से सम्बन्धित भाषणों में सैद्धान्तिक और प्राविधिक प्रश्नों के उदाहरण के रूप में भी इन अभिलेखों का उल्लेख बार-बार किया जाता है।

यद्यपि अभिलेख तैयार करना एक प्रकार का प्रदर्शनात्मक कार्य है, पर साथ ही उसमें पर्याप्त धन और समय भी लगाना पड़ता है। फलस्वरूप अब यह पद्धति अपनाने का प्रयोग किया जा रहा है कि किसी वैयक्तिक सेवा-सम्बन्धी कार्य की अभिलेखन-प्रक्रिया में विस्तृत विवरण न देकर संक्षिप्त विवरण ही दिया जाय। ये प्रयोग जिन्हें प्रक्रिया अभिलेखन (प्रासेस रिकर्डिंग) कहा जाता है, शैक्षणिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ चुने हुए सेवार्थियों के मामले तक ही सीमित होते हैं। इस तरह के प्रयोग में वर्णनात्मक अभिलेखन

की जगह प्रश्न-सूची और फार्मों का प्रयोग किया जाता है तथा आधुनिक वैज्ञानिक साधनों जैसे—ग्रामोफोन का तथा टेपरिकर्डर का फीता, वायररिकर्डर आदि का भी प्रयोग किया जाता है।[१]

सेवा-कार्य-प्रक्रिया का उपसंहार—जैसा पहले कहा जा चुका है वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रक्रिया का उपसंहार विभिन्न अभिकरणों में तथा विभिन्न कार्यकर्ताओं द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है। कुछ उदाहरणों में तो उपसंहार बिलकुल स्पष्ट और मनमाने ढंग का होता है, ऐसी बात विशेष रूप से तब होती है जबकि या तो परिवार का सरकारी सहायता लेने का अधिकार समाप्त हो गया रहता है, अथवा किसी बच्चे को गोद लेने का अन्तिम निश्चय किया जा चुका होता है, अथवा जब परिवार की गृहस्वामिनी के अस्पताल से कुछ दिन रहकर वापस आने और गृहस्थी का भार अपने ऊपर ले लेने के कारण नौकरानी को घर से निकालने का प्रश्न उपस्थित हुआ रहता है। कुछ उदाहरणों में आकस्मिक उपसंहार का कारण यह होता है कि अभिकरण किसी एक व्यक्ति के मामले में एक निश्चित अवधि से अधिक समय लगाने को तैयार नहीं होता, किन्तु इस प्रकार की तमाम स्थितियों में सेवार्थी को इतना विश्वास रहता है कि यदि उसके मामले से सम्बन्धित परिस्थितियों में कुछ ऐसा परिवर्तन होता है कि वह सहायता प्राप्त करने का पुनः अधिकारी हो सके, तो यह अभिकरण के पास पुनः सहायता प्राप्त करने के लिए आ सकता है। अनेक बार तो साक्षात्कार-प्रक्रिया का उपसंहार अधिक स्पष्ट और प्रत्यक्ष नहीं होता। इन स्थितियों में या तो सेवार्थी अभिकरण में साक्षात्कारार्थ आना धीरे-धीरे कम कर देता है अथवा उसके द्वारा उपस्थित की गयी समस्या उत्तरोत्तर अपना महत्त्व खोती जाती है, जिससे धीरे-धीरे उसका आना भी कम होता जाता है। इस प्रकार के मामले भी कभी-कभी काफी दिनों तक जारी रहते हैं, यद्यपि उनमें अभिकरण का सेवार्थी के साथ सम्पर्क बना रहता है, किन्तु मुलाकातों की संख्या और महत्त्व में उत्तरोत्तर कमी होती जाती है। किन्तु वैयक्तिक सेवा-कार्य का सर्वोत्तम उदाहरण वह होता है, जिसमें किसी साक्षात्कार-प्रक्रिया का उपसंहार बहुत ही स्पष्ट और निर्णायात्मक होता है। ऐसे मामलों में सेवार्थी इस बात के लिए तैयार हो जाता है कि अब वह ऐसा जीवन व्यतीत करेगा, जिसमें उसे अभिकरण की सहायता नहीं लेनी पड़ेगी, साथ ही कार्यकर्ता भी इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने के लिए सेवार्थी की क्षमताओं के आकलन में उसकी सहायता करता है और

१. इस तरह की तकनीकी अभिलेखन विधियों के सम्बन्ध में यह कह देना आवश्यक है कि प्रसिद्धिप्राप्त अभिकरण और समाजसेवी, सेवार्थी की अनुमति और पूर्व ज्ञान के बिना, अभिलेखन की इन पद्धतियों का प्रयोग करना शायद उचित न समझे।

अन्त में वे दोनों मिलकर इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि अब सेवार्थी को नया जीवन प्रारम्भ करने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर देना चाहिए।

वैयक्तिक सेवा-कार्य इतना जटिल और वैविध्यपूर्ण है कि उसकी प्रक्रियाओं का पूर्ण वर्णन करना सम्भव नहीं है। ऊपर जो वर्णन किया गया है, उससे केवल कुछ अधिक विस्तृत सैद्धान्तिक विवेचन का आधार प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार का विवेचन आगे दिया जा रहा है।

वैयक्तिक सेवा की कार्य-प्रक्रिया के मूलतत्त्व

परिभाषा की समस्याएँ—यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी के "सोशल केस वर्क" शब्द द्वारा उसके अर्थ का सम्प्रेषण उतना पूर्ण नहीं होता, जितना होना चाहिए, किन्तु अर्थ की प्रेषणीयता की इस अपर्याप्तता की बात तो अंग्रेजी भाषा के किसी भी शब्द या मुहावरे के विषय में लागू होती है। उपर्युक्त शब्द समूह में (सोशल केस वर्क में) जितने शब्द हैं उनके अलग-अलग अर्थ भी बहुत स्पष्ट नहीं हैं और उनके संयोग के फलस्वरूप जो अर्थ व्यक्त होता है, वह निश्चित रूप से वह अर्थ नहीं है, जो इस प्रकार के कार्यों के प्रत्यक्ष अनुभव से अधिकांश लोगों को ज्ञात है। चिकित्सा (मेडिसिन), अध्यापन (टीचिंग), वकालत (ला) आदि कुछ पेशों के नाम ऐसे हैं, जिनमें व्यवसाय-सम्बन्धी सूक्ष्म बातों का अर्थ स्पष्ट करने की शक्ति तो नहीं है, फिर भी उन शब्दों को सुनकर यह अच्छी तरह समझ में आ जाता है कि उन पेशों से सम्बन्धित लोग किस प्रकार के कार्य करते हैं। सभी यह जानते हैं हैं कि डाक्टर के पास जाने का क्या अर्थ होता है, इस तरह डाक्टर की सहायता के सम्बन्ध में हमारे मन में एक स्पष्ट चित्र वर्तमान रहता है। किन्तु वैयक्तिक समाज-सेवा का कार्य करने वाले कार्यकर्ता के पास जाने वाले सेवार्थी के मन में इस प्रकार की कोई तस्वीर नहीं होती, अर्थात् उसे कुछ भी ज्ञान नहीं होता कि उसके पास जाकर उसे क्या करना होगा?

परिभाषा निश्चित करने में कठिनाई का एक असंदिग्ध कारण तो यह है कि वैयक्तिक सेवा-कार्य अभी विकास और प्रसार की अवस्था में है। जैसा कि इस पुस्तक में पहले कई बार कहा जा चुका है, इस शताब्दी में कई ऐसे समय आये, जब कि वैयक्तिक सेवा के रूप में विभिन्न नये जन-समूहों के बीच समाज-सेवा के कार्यों का प्रसार करने की सम्भावना दिखाई पड़ी और ऐसा किया भी गया। इस शताब्दी के प्रारम्भ में किये जाने वाले सामाजिक कार्यों के आधार पर यदि कोई परिभाषा निश्चित की जाती है तो वह आज की वैयक्तिक समाज-सेवा को समझने के लिए पर्याप्त न होगी। उसी तरह यदि आज की वैयक्तिक सेवा के कार्यों के आधार पर कोई परिभाषा निश्चित की जाती है तो वह भी भविष्य में किये जाने वाले वैयक्तिक सेवा-कार्यों को समझने के लिए अपर्याप्त होगी। इसकी सम्यक्

परिभाषा निश्चित करने में एक बड़ी कठिनाई यह भी है कि बहुत-से लोग वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता के रूप में विभिन्न प्रकार के कार्य करने में लगे हुए हैं और न जाने कितने अभिकरण, जिनमें उपर्युक्त कार्यकर्ता काम करते हैं यह कार्य कर रहे हैं और उनके द्वारा न जाने कितने प्रकार के व्यक्तियों के मामलों की देख-भाल की जा रही है। वैयक्तिक सेवा-कार्य के अन्तर्गत आज भौतिक सहायता से लेकर मनोवैज्ञानिक सहायता तक के न जाने कितने कार्य सम्मिलित हो गये हैं, जैसे उत्सवों और पर्वों के अवसर पर मिठाई, उपहारों और खिलौनों का वितरण, विभिन्न प्रकार की ठोस सेवाओं की व्यवस्था, जैसे आर्थिक सहायता, बच्चों की देखभाल की व्यवस्था, परिवार द्वारा देखभाल न हो पाने की स्थिति में वृद्धों की सहायता का प्रबन्ध और वैयक्तिक भावात्मक मामलों में सलाह देने की सुविधा उपस्थित करना। इस अन्तिम कार्य को तो कभी-कभी मनश्चिकित्सक अथवा मनो-विश्लेष्क के कार्यों से भिन्न करना कठिन हो जाता है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि कितने प्रकार के अभिकरण यह कार्य करते हैं और उनमें वैयक्तिक सेवा-कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं की पृष्ठभूमि कितने प्रकार की होती है।

कार्य की इतनी विविधता और क्षेत्र के इतने विस्तार के कारण, यह स्पष्ट है कि वैयक्तिक सेवा-कार्य की परिभाषा भी इतनी व्यापक होगी कि उसके अन्तर्गत कार्य और क्षेत्र-सम्बन्धी सभी विविधताएँ और व्याप्तियाँ समाविष्ट हो जायँ। इसका अर्थ यह हुआ कि वैयक्तिक समाज-सेवा-कार्य की कोई सीमा-रेखा खींचना असम्भव-जैसा है। फिर भी इस कार्य की प्रक्रिया को अन्य प्रकार के कार्यों से भिन्न करके पहचाना जा सकता है। क्योंकि इसमें कुछ ऐसे निश्चित तत्त्व अवश्य वर्तमान हैं, जिनके सम्बन्ध में यह सर्व-सम्मत धारणा हो सकती है कि वे सामाजिक कार्य के समग्र रूप के ही अंगभूत तत्त्व हैं।

पहली बात तो यह है, और इस सम्बन्ध में किसी का मतभेद भी नहीं हो सकता, कि वैयक्तिक सेवा ऐसे व्यक्तियों की की जाती है, जिनकी कुछ निजी समस्याएँ होती हैं और जो उन्हें सुलझाने में सहायता प्राप्त करना चाहते हैं। इसका लक्ष्य उन सेवार्थियों की सहायता करना है, उनकी हानि करना नहीं। दूसरी विचारणीय बात यह है कि किसी सामाजिक अभिकरण से ही इस प्रकार की सहायता की माँग की जाती है और सहायता देने का प्रबन्ध भी उस अभिकरण द्वारा ही किया जाता है, उसमें सहायता की प्रक्रिया, सहायता का कार्य करने वाले किसी विशेष व्यक्ति—जैसे वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता—और सेवार्थी के बीच पारस्परिक मुलाकातों के रूप में घटित होती है। साथ ही यह बात भी ध्यान देने की है कि सहायता देने का कार्य तभी सम्पन्न हो सकता है, जबकि अभिकरण के पास उसके लिए पर्याप्त साधन तो हों ही, उसके कार्यकर्ताओं में भी ज्ञान, भावना और क्षमता-सम्बन्धी साधन सम्पन्नता हो, ताकि वे सेवार्थियों की सहायता करते समय इन साधनों

का उपयोग कर सकें। इस सम्बन्ध में शायद अधिक मतभेद की आशंका नहीं है कि वैयक्तिक सेवा-सम्बन्धी सहायता आर्थिक दृष्टि से असुविधा-ग्रस्त लोगों के साथ-साथ ऐसे व्यक्तियों को भी दी जा सकती है, जिनकी कठिनाइयाँ उनके सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूप के कारण उत्पन्न हुई हैं, चाहे वे कारण माता-पिता की मृत्यु के फलस्वरूप बच्चों की पराश्रयता से सम्बन्धित हों, अथवा दाम्पत्य जीवन की परिस्थितियों में उत्पन्न या अन्य किसी प्रकार के मानसिक द्वन्द्व से सम्बन्धित हों। इस सम्बन्ध में भी एकमत हुआ जा सकता है कि कार्य-सम्बन्धी विषयों की उपर्युक्त श्रेणियाँ एक-दूसरे से बिलकुल असम्बद्ध नहीं हैं और सामान्यतः वे एक-दूसरे से मिली-जुली प्रतीत होती हैं, किन्तु सामाजिक कार्य में एक समय इनमें से किसी एक पर ही मुख्य रूप से ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है।

यह एक दुर्भाग्यपूर्ण, किन्तु सच बात है कि वैयक्तिक समाज-सेवा-सम्बन्धी जिन विविध तत्त्वों का उल्लेख ऊपर किया गया है,उनको एक साथ समन्वित कर देने पर भी इस विषय की कोई पूर्ण परिभाषा नहीं बन सकती। क्योंकि परिभाषा में सम्मिलित करते समय प्रत्येक तत्त्व के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ संदेह उत्पन्न हो सकता है, जिससे परिभाषा सम्बन्धी कोई निश्चित वक्तव्य देने में रुकावट उत्पन्न हो जाती है।

सहायता-प्रवृत्ति का एक लक्ष्य—सबसे बड़ी कठिनाई तो इस स्थापना के सम्बन्ध में ही होती है कि "वैयक्तिक सेवा-कार्य का उद्देश्य सहायता करना है, हानि पहुँचाना नहीं।" यह निस्संदेह एक सीधा-सादा और सर्वस्वीकृत विचार है। किन्तु इसकी सरलता और सर्वमान्यता ही एक समस्या का रूप धारण कर लेती है,क्योंकि इस परिभाषा से जिस अर्थ की अभिव्यक्ति होती है, वह व्यावहारिक रूप में देखने पर वस्तुतः आसान नहीं प्रतीत होता। अतः अनेक कठिन प्रश्न उत्पन्न होते हैं, जैसे—सहायता की प्रवृत्ति का स्वरूप क्या है, इसका निर्णय कैसे होगा कि कोई विशेष कार्य सहायतामूलक है या हानिमूलक, सहायता कार्य का अन्त कब और किस सीमा पर होता है या होना चाहिए ? इन प्रश्नों पर अच्छी तरह विचार करने से यह पता चलता है कि उपर्युक्त स्थापना उतनी गलत नहीं जितनी अपर्याप्त है।

सहायता की प्रवृत्ति के अन्तर्गत क्या-क्या बातें आती हैं, यह प्रश्न भी प्रथम दृष्टि में और अधिकांश परिस्थितियों में अत्यन्त सरल लग सकता है। इस प्रश्न से किसी डूबते हुए व्यक्ति से सम्बन्धित एक पुरानी कथा याद आती है। क्या वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता ऐसे डूबने वाले व्यक्ति की सहायता इसीलिए नहीं करेगा कि वह व्यक्ति चिल्लाकर सहायता की माँग नहीं करता ? मूल बात यह है कि सहायता की प्रवृत्ति के अन्तर्गत वे सभी कार्य और सेवाएँ आ जाती हैं जो या तो सेवार्थी की प्रार्थना पर अथवा बिना उसके कहे उसकी आवश्यकताओं को समझ कर स्वतः की जाती हैं। उलझन तब पैदा होती है और

अक्सर ऐसा होता है, जबकि सेवार्थी स्वयं यह निश्चयपूर्वक नहीं जानता कि उसकी आवश्यकताएँ क्या हैं अथवा उन आवश्यकताओं को उपस्थित करने का उसका ढंग अस्पष्ट होता है। यह प्रश्न कितना कठिन है इसका ज्ञान उन कार्यकर्ताओं को होता है, जिन्हें ऐसे मामले हाथ में लेने पड़ते हैं, जिनमें कभी कोई स्त्री यह निश्चय नहीं कर पाती है कि वह अपने पति को छोड़ दे या न छोड़े, कभी कोई माँ इस धर्मसंकट में पड़ी रहती है कि वह अपने नवजात शिशु को चोरी से अनाथालय के दरवाजे पर रख आये या न रख आये, और कभी कोई भयभीत रोगी इस अनिश्चय में पड़ा रहता है कि वह अपना खतरनाक आपरेशन कराये या न कराये। और भी अधिक उलझन तब उत्पन्न होती है, जब कि किसी सेवार्थी की आवश्यकताएँ और प्रार्थनाएँ अभिकरण के उद्देश्यों से भिन्न होती हैं और कार्यकर्ता को उन उद्देश्यों का पालन करने की अनिवार्यता होती है। उदाहरण के लिए, प्रतिज्ञाबद्ध कारावकाश-विभाग में काम करने वाले कार्यकर्ता का काम जेल से छूटे हुए व्यक्तियों का बाहर की दुनिया से इस प्रकार सामञ्जस्य स्थापित कराना होता है कि समाज उन्हें अपने भीतर स्वीकार कर सके। यदि कारावास से छूटे हुए किसी ऐसे प्रतिज्ञाबद्ध बन्दी को डाका डालने के लिए बन्दूक की आवश्यकता है और वह इसके लिए अभिकरण से प्रार्थना करता है तो कार्यकर्ता से यह उम्मीद हरगिज नहीं की जा सकती कि वह उस व्यक्ति की सहायता किसी भी हालत में करेगा। ठीक उसी तरह किसी सरकारी सहायता-अभिकरण का कार्यकर्ता इस बात को हमेशा ध्यान में रखेगा कि सहायता की माँग करने वाला व्यक्ति नियमानुकूल उस सहायता का अधिकारी है या नहीं और उसे नियमतः कितनी सहायता दी जा सकती है, कार्यकर्ता इस बात की चिन्ता नहीं करेगा कि सेवार्थी की आवश्यकताएँ कितनी अधिक हैं और उसकी माँग कितनी बड़ी है।

इन तमाम बातों में यही सिद्धान्त निहित है कि सहायता भले ही व्यक्ति के बाह्य स्रोतों, जैसे अभिकरण के साधनों और उसके द्वारा प्रदत्त मूर्त्त सेवाओं तथा वयक्तिक सेवा-कार्यकर्ताओं के साधनों एवं उसके व्यक्तित्व के अमूर्त्त गुणों से उपलब्ध हो, किन्तु सेवार्थी को अपनी सहायता आत्मप्रेरणा के वशीभूत हो स्वयं भी करनी चाहिए और इस आत्म-सहायता का रूप यह होना चाहिए कि सेवार्थी स्वयं अपने साधनों का पुनस्संगठन करने का प्रयत्न करे। इस सम्बन्ध में काफी मतैक्य है कि वैयक्तिक सेवा करने वाले कार्यकर्ता के लिए सेवार्थी के प्रश्नोंका सही उत्तर जानना अथवा उसकी सहायता का स्वरूप पहले ही निर्धारित कर लेना सम्भव नहीं है। यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका निर्णय वह कभी भी सर्वथा उचित ढंग से नहीं कर सकता। इसका निर्णय तो केवल सेवार्थी ही अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं के आधार पर अधिक सही ढंग से कर सकता है। कार्यकर्ता सेवार्थी की इस

बात में केवल सहायता भर कर सकता है कि वह अपनी समस्या का सही समाधान अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ढूँढ़ ले। इस बात में भी अधिक मतभेद नहीं है कि कार्यकर्ताओं को यदि समाधान के सही स्वरूप का ज्ञान हो भी जाय तो इसका कोई उपाय नहीं है कि तत्सम्बन्धी योजनाओं को वे सेवार्थी के जीवन में लागू कर सकें या उसे ऐसा करने के लिए बाध्य या प्रलुब्ध कर सकें।

सहायता के स्वरूप और उसकी सीमा से सम्बन्धित प्रश्न के साथ यह प्रश्न भी जुड़ा हुआ है कि इस बात का ज्ञान कैसे हो कि किसी विशेष सेवार्थी को पर्याप्त सहायता दी जा चुकी है अथवा जरूरत से अधिक दी जा चुकी है या बहुत कम दी गयी है? इसका अर्थ यह हुआ कि कार्यकर्ता का उद्देश्य सिर्फ सहायता करना ही नहीं है, बल्कि किसी अन्य लक्ष्य तक पहुँचने में उसकी सहायता करना है। एक बहुत पुराना मुहावरा है "लोगों की स्वयं अपनी सहायता करने के लिए सहायता करना"; इस मुहावरे को सामाजिक कार्यकर्ताओं, समाज-सेवा के पेशे में लगे अन्य लोगों तथा सामान्य व्यक्तियों को भी हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्यकर्ता के सहायता-कार्य का प्रारम्भ तब होना चाहिए जब कि सेवार्थी स्वयं अपनी सहायता करने में असमर्थ हो और उसकी समाप्ति तब होनी चाहिए जब कि उसे जीने के लिए किसी बाहरी सहायता की आवश्यकता न रह जाय, किन्तु दुर्भाग्यवश समाज का स्वरूप ही ऐसा है कि उसमें कोई भी व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की सहायताके बगैर, पूर्ण स्वतन्त्र रूप में नहीं रह सकता। हम सभी निरन्तर ठोस भौतिक वस्तुओं, सूक्ष्म भावनाओं और विचारों का आदान-प्रदान करते रहते हैं। आश्चर्य की बात है कि जीवनकाल में तो सभी व्यक्तियों को किसी-न-किसी प्रकार की समस्याओं का सामना करना ही पड़ता है और उस समस्या का कोई-न-कोई समाधान भी होता है, जो दूसरों की सहायता के विना कभी भी सम्भव नहीं हो पाता, किन्तु इसके उल्टी वात यह है कि मृत्यु के बाद सभी प्रकार की समस्याओं, समाधानों और तत्सम्बन्धी दूसरों की सहायता का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अत: वैयक्तिक सेवा-कार्य का क्षेत्र बहुत बड़ा है अर्थात् वह जन्म से लेकर मृत्यु तक के बीच के लम्बे काल तक फैला हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन में निर्दिष्ट कुछ अपवादों को छोड़ कर अन्य सभी स्थितियों में यह बात अधिक विश्वास और व्यावहारिक बुद्धि के आधार पर स्वीकार की जा सकती है कि वैयक्तिक सेवा-कार्य का सीधा-सादा उद्देश्य व्यक्ति की सहायता करना है, उसको हानि पहुँचाना नहीं। यदि इसमें कुछ संदेह भी हो तो इसकी उल्टी बात निस्संदेह ऐसी है, जिसे शायद ही कोई स्वीकार करेगा कि वैयक्तिक सेवा-कार्य का उद्देश्य हानि पहुँचाना है, सहायता करना नहीं।

सेवार्थी की कर्त्तव्य-भूमिका—वैयक्तिक सेवा की कार्य-प्रक्रिया से सम्बन्धित अन्य बातों के सम्बन्ध में जो प्राय: सर्वसम्मत हैं, उतनी कठिनाई नहीं उत्पन्न होती, जितनी सहायता के सम्बन्ध में उठे प्रश्नों को लेकर होती है। इस प्रक्रिया के केन्द्र में सेवार्थी होता है, यह तो स्पष्ट ही है, फिर भी यह प्रश्न हो सकता है कि यह समस्त प्रक्रिया उस सेवार्थी के लिए है या उसके कारण है, उसमें समाज का उद्देश्य सेवार्थी की सेवा करना है या उसको नियन्त्रित करने का प्रयत्न करना है। किन्तु इन प्रश्नों के होते हुए भी यह बात निस्संदेह सत्य है कि इस समस्त प्रक्रिया में केन्द्रीय कर्त्तव्य-भूमिका सेवार्थी की ही होती है। यह बात जितनी स्पष्ट है, उतनी सरल नहीं। इसकी परिभाषा निश्चित करने अथवा व्याख्या करने के पूर्व एक बड़े और एक छोटे मसले के सम्बन्ध में कुछ और विचार करना आवश्यक है। बड़ा मसला वैयक्तिक सेवा की प्रक्रिया में सेवार्थी की कर्त्तव्य-भूमिका के स्वरूप से सम्बन्धित है। इस मसले के सम्बन्ध में लोगों में सैद्धान्तिक मतैक्य तो है, किन्तु उसके व्यावहारिक पक्ष में पर्याप्त बहुरूपता भी दिखलाई पड़ती है।

कोई सेवार्थी जब परिवर्तन की आवश्यकता महसूस करेगा और उस परिवर्तन की प्रक्रिया को स्वीकार करने के लिए तैयार होगा तभी कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन सम्भव हो सकेगा। इस बात का अनुभव तो हममें से अधिकांश लोगों को होगा कि प्राय: हम किसी अन्य व्यक्ति के दबाव से नया ज्ञान प्राप्त करने और नवीन कौशल सीखने की ओर उद्यत होते हैं। इन परिस्थितियों में हमारे प्रयत्नों में प्राय: उतनी अधिक उत्कृष्ट सफलता नहीं प्राप्त होती, किन्तु जब हम आन्तरिक प्रेरणा से कुछ जानने या सीखने के लिए तत्पर होते हैं तो स्थिति बिलकुल उल्टी होती है। यह सत्य है कि बहुत-से व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जिनके व्यक्तित्व और चरित्र में बहुत लचीलापन होता है और उन्हें आसानी से मोड़ा भी जा सकता है। ऐसे लोग कभी-कभी तो अपने सम्बन्ध में निर्णय करने की पूरी जिम्मेदारी दूसरों को दे देते हैं। किन्तु साथ ही यह बात भी उतनी ही सत्य है कि अत्यन्त दृढ़ चरित्र वाले लोग भी कभी-कभी बाहरी दबावों के सम्मुख झुक जाते हैं। इतना होते हुए भी वैयक्तिक सेवा के क्षेत्र में काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं की यह सामान्य धारणा होती है कि ऊपर से आरोपित जीवन-सम्बन्धी परिवर्तनों में सार या स्थायित्व नहीं होता, अत: उनका कोई मूल्य नहीं है, चाहे वे अधिकारपूर्वक आरोपित हों या समझा-बुझाकर। उनका यह विश्वास होता है कि दुर्बल से दुर्बल चरित्र वाला व्यक्ति भी अपने निर्णयों के परिणाम का उत्तरदायित्व ग्रहण करने की क्षमता रखता है तथा उनसे भागने में असमर्थ होता है। यद्यपि वे यह स्वीकार करते हैं कि समाज की माँगें भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न अर्थ रखती हैं और व्यक्ति से की गयी समाज की माँग अमर्यादित नहीं होनी चाहिए किन्तु साथ ही उनका यह भी विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति इन माँगों का सामना

अपने ढंग से करता है और उसे ऐसा करना भी चाहिए, किन्तु यह कार्य वह अधिक सफलता-पूर्वक अथवा बिना अधिक हानि उठाये तभी कर सकता है, जब कि उसे अन्य व्यक्तियों से सहायता प्राप्त हो। उनकी यह भी धारणा है कि सहायता का कार्य एक पेशे के रूप में विकसित हो चुका है और इस पेशे में लगे कार्यकर्ताओं का उद्देश्य व्यक्ति और समाज दोनों के हितों की रक्षा करना है। वैयक्तिक सेवा के कार्य मुख्यत: इन्हीं प्राथमिक विचारों के आधार पर पर संचालित होते हैं, चाहे उन कार्यों का सम्बन्ध आर्थिक तथा अन्य किसी ठोस सहायता से हो, अथवा केवल सलाह मशविरा देने या आधिकारिक व्यवस्थापन से हो और चाहे उनमें कितना ही प्राविधिक वैविध्य क्यों न हो।

वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रक्रिया में सेवार्थी की केन्द्रीय भूमिका से सम्बन्धित जो छोटा मसला है, उसका सम्बन्ध इस तथ्य से है कि वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता को एक साथ ही कई व्यक्तियों का कार्य देखना पड़ता है। हो सकता है कि उसे विवाह से सम्बन्धित दोनों पक्षों अथवा पिता और पुत्र या बहन और भाई तथा इसी प्रकार के अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों से एक साथ मुलाकात करनी पड़े। इसलिए यह कहना हर हालत में सही नहीं है कि वैयक्तिक सेवा-कार्य का सम्बन्ध केवल एक व्यक्ति से ही होता है। फिर भी यह तो सच है कि उसमें ध्यान का केन्द्रीकरण व्यक्ति पर ही होता है। किसी सामुदायिक वर्ग अथवा क्लब में किये जाने वाले कार्यों से तुलना करने पर इस कार्य का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

अभिकरण की कर्त्तव्य-भूमिका—जिस तरह यह बात स्पष्ट है कि वैयक्तिक सेवा-कार्य के केन्द्र में व्यक्ति की कर्त्तव्य-भूमिका स्थित है, उसी तरह यह भी स्पष्ट है कि वैयक्तिक सेवा-कार्य किसी सामाजिक अभिकरण के ढाँचे के अन्तर्गत ही हो सकता है। इस सम्बन्ध में विचार करते समय ऐसे अभिकरणों की भी चर्चा की जायगी जिनकी स्थापना मुख्यत: सामाजिक कार्य करने के लिए नहीं हुई है, जैसे—न्यायालय, जेल, विद्यालय, बालकों, वृद्धों और अक्षम लोगों के लिए संगठित संस्थाएँ, अस्पताल आदि, क्योंकि इन संस्थाओं का उद्देश्य वैयक्तिक सेवा-कार्यों तथा तत्सम्बन्धी कार्यकर्ताओं की सहायता से अधिक सफलतापूर्ण ढंग से पूरा किया जा सकता है। यहाँ भी इस विषय से सम्बन्धित एक बड़ा मसला यह उपस्थित होता है कि इन अभिकरणों की कर्त्तव्य-भूमिका क्या हो? और साथ ही एक छोटा मसला यह भी उपस्थित होता है कि क्या इन संस्थाओं के ढाँचे के बाहर भी वैयक्तिक सेवा का कार्य सम्भव हो सकता है?

यदि हम पहले उक्त छोटे मसले पर ही विचार करें तो यह दिखलाई पड़ता है कि वैयक्तिक समाज-सेवा के नाम पर किये जाने वाले प्राय: सभी कार्य वस्तुत: अभिकरणों की सीमा के अन्तर्गत ही किये जाते हैं। इस कथन में कि वैयक्तिक सेवा-कार्य बिना अभिकरणों के हो ही नहीं सकता,एक अपवाद यही है कि कुछ थोड़े-से व्यक्ति जो वैयक्तिक सेवा-कार्य

में प्रशिक्षित हैं, व्यक्तिगत पेशे के रूप में यह कार्य कर रहे हैं और किसी भी अभिकरण से उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। उनके कामों की अच्छाई और प्रभावात्मकता पर यदि विचार न भी किया जाय तो भी यह प्रश्न जिसका कोई उत्तर नहीं है, उठता है कि वे जो काम करते हैं क्या उनको वैयक्तिक समाज-सेवा की सीमा में स्वीकार किया जा सकता है? अथवा उनके द्वारा किये जानेवाले सहायता-कार्यों की अन्य इसी प्रकार के कार्यों से पर्याप्त भिन्नता को ध्यान में रखते हुए उनको कोई नाम देना उचित होगा।

यद्यपि वैयक्तिक समाज-सेवा के कार्य में लगे अधिकांश कार्यकर्ता किसी सामाजिक अभिकरण की सीमा के अन्तर्गत ही काम करते हैं, फिर भी इस सम्बन्ध में काफी मतभेद है कि उन कार्यकर्ताओं की दृष्टि से ऐसा होना उचित है या नहीं? उनमें से अधिकांश इस बात पर सहमत होंगे कि अभिकरण उनके कार्यक्षेत्र की एक निर्धारित सीमा बाँध देता है। अभिकरण उनके लिए यह नियम निर्धारित कर देता है कि वे किस प्रकार के मामलों में सेवा-कार्य करें, उनकी सेवा का स्वरूप क्या हो और वे अपने काम में किन पद्धतियों का प्रयोग करें? साथ ही अभिकरण समुदाय तथा सेवार्थियों को पहले से ही इस सम्बन्ध में कुछ जानकारी दे देता है कि वह उनकी क्या सेवाएँ करेगा और वे उसके कार्यकर्ताओं से किस प्रकार की सहायता की अपेक्षा करें?

किन्तु विभिन्न अभिकरणों में भी इस सम्बन्ध में परस्पर मतैक्य नहीं है कि अपने कार्यों के सीमा-निर्धारण को वे कितना महत्त्व दें अथवा अपने अन्तर्गत चलनेवाले सेवा-कार्यों से सम्बन्धित नीतियों और नियमों का निर्धारण किस आधार पर करें। कुछ अभिकरण अपनी सेवाओं को एक विशेष वर्ग तक या ऐसे लोगों तक ही सीमित रखते हैं, जिनकी समस्याएँ किसी विशेष प्रकार की परिस्थिति के कारण उत्पन्न होती हैं। पहले का उदाहरण ऐसे संकीर्ण अभिकरण हैं, जो केवल किसी विशेष धार्मिक समुदाय के लोगों की ही सेवा करते हैं, और दूसरे का उदाहरण वे अभिकरण हैं, जो या तो एक विशेष श्रेणी के जरूरतमंद लोगों की आर्थिक सहायता करते हैं अथवा समाज-विरोधी और कानून-विरोधी अपराधियों की सेवा करते हैं या बच्चों के पालन-पोषण और अविवाहित माताओं की सहायता करते हैं। किन्तु ऐसे अभिकरणों में भी, जो किसी विशेष सीमित क्षेत्र में ही कार्य करने के लिए स्थापित हुए हैं, कभी-कभी कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। क्योंकि उनके अन्तर्गत वैयक्तिक सेवा-कार्य करने वाले कुछ ऐसे कार्यकर्ता होते हैं, जो इस बात पर अड़ जाते हैं कि कोई सेवार्थी जब एक बार किसी विशेष आवश्यकता को लेकर अभिकरण के पास सहायतार्थ आता है और अभिकरण अपने उद्देश्य और कार्यसीमा के अनुरूप उसकी सहायता करता है तो उसके बाद अभिकरण का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि उस सेवार्थी की बाद में उत्पन्न अन्य आवश्यकताओं के सम्बन्ध में भी, भले ही वे उसकी कार्य-सीमा के अन्तर्गत न आती हों,

सहायता कार्य करना चाहिए। इस कथन की पुष्टि में वे कह सकते हैं कि कुछ निर्दिष्ट सेवाओं में वे वैयक्तिक सेवाकार्य-सम्बन्धी जिस कौशल का प्रयोग करते हैं, वह ठोस और सामान्य सिद्धान्तों पर आधारित है, अतः वैयक्तिक सेवा की प्रक्रिया द्वारा जो भी सेवा-कार्य किया जाय, उसमें उन सिद्धान्तों का आधार अवश्य ग्रहण करना चाहिए। अपने मत को और भी अधिक पुष्ट करने के लिए यह तर्क उपस्थित कर सकते हैं कि यदि कोई सेवार्थी कई समस्याएँ लेकर आता है तो उसे अन्य विभिन्न अभिकरणों के पास भेज देना मूर्खता नहीं तो कम-से-कम अविवेकपूर्ण अपव्यय अवश्य है।

दूसरी ओर इसी प्रकार के अत्यधिक विशेषीकृत सेवा-कार्य करने वाले अभिकरणों के बहुत-से ऐसे कार्यकर्ता भी हैं, जो यह सोचते हैं कि उनका उत्तरदायित्व ऐसे ही सेवा-कार्यों तक सीमित है अथवा ऐसी ही आवश्यकताओं की पूर्ति करना है, जिनके लिए उस अभि-करण की स्थापना हुई है। वे इतना तो तुरन्त स्वीकार कर लेते हैं कि उनका उत्तरदायित्व ऐसी समस्याओं की उपस्थिति की ओर सावधानीपूर्वक ध्यान देना है, जो सेवार्थी द्वारा उपस्थित की गयी मूल समस्या से सम्बन्धित अथवा कभी-कभी उससे बिलकुल असम्बद्ध होती हैं। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि उनका उत्तरदायित्व इस प्रकार की समस्याओं को सुलझाने के आवश्यक प्राप्य साधनों की सेवार्थी को सूचना देना ही नहीं, बल्कि उन साधनों का प्रभावपूर्ण ढंग से उपयोग करने में भी उसकी हर प्रकार की सहायता देना है। उनका यह भी कहना है कि वे सेवा-सम्बन्धी जिन कौशलों का प्रयोग करते हैं, वे ऐसे ठोस और सामान्य सिद्धान्तों पर आधारित हैं, जिनको वैयक्तिक सेवा-कार्य के किसी भी काम में लागू किया जा सकता है। किन्तु साथ ही वे यह भी कहते हैं कि उनके लिए एक ही साथ किसी विशेषीकृत सेवा, जैसे शिशु-पोषण में काम का उच्च मानक विकसित करना और अन्य अविशेषीकृत सामान्य क्षेत्रों, जैसे शिशु-निर्देशन, परिवीक्षण, विवाह-सम्बन्धी सुझाव देना, आर्थिक सहायता का प्रबन्ध करना आदि——में भी कार्य का उच्च स्तर कायम करना, दोनों सम्भव नहीं है। उनकी यह धारणा है कि सेवार्थियों को अपनी विभिन्न समस्याओं को लेकर विभिन्न अभिकरणों या कई विभागों में विभाजित होने पर एक ही अभिकरण के विभिन्न विभागों में जाने में कोई हानि नहीं है। क्योंकि सिर में चोट लगने पर दन्त-चिकित्सक के पास जाने से कोई लाभ नहीं है, उसे तो दाँत में दर्द होने पर दन्तचिकित्सक के पास और सिर फूटने पर शल्य-चिकित्सक के पास ही जाना पड़ेगा। उसी तरह कचहरी में कोई दीवानी का मुकदमा होने पर, उसे दीवानी के वकील और फौजदारी का मुकदमा होने पर फौजदारी के वकील के पास ही जाने से लाभ हो सकता है। एक ही वकील दोनों तरह के मामलों में ठीक सलाह नहीं दे सकता। इस तरह सामान्य तौर पर इस विचार-धारा के कार्यकर्ता यह सोचते हैं कि यदि किसी वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता की सेवाएँ सेवार्थी

के लिए वास्तविक मूल्य और सार्थकता रखनेवाली होंगी तभी उसे उस सेवार्थी की उलझनों को सुलझाने के लिए जाने में पूर्ण सन्तोष का अनुभव हो सकेगा। इसके विपरीत पहली विचारधारा वाले कार्यकर्ताओं की यह धारणा है कि वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता का यह भी उत्तरदायित्व है कि वह अभिकरण की सेवाओं को सेवार्थी के लिए अत्यन्त सुगम और आकर्षक ढंग से उपलब्ध कराने का हर सम्भव और उचित उपाय करे।

उन अभिकरणों के अतिरिक्त, जो एक सीमित क्षेत्र के सेवार्थियों की सेवा करते हैं या जिनके कार्यों का क्षेत्र अत्यन्त विशेषीकृत समस्याओं तक सीमित होता है, कई अभिकरण, जिन्हें कभी-कभी बहुसेवा-अभिकरण कहा जाता है, ऐसे भी हैं, जो बहुत व्यापक क्षेत्र में सेवार्थियों की सेवा करते हैं अथवा विविध प्रकार की समस्याओं को अपने हाथ में लेते हैं। कुछ अभिकरणों को बहुसेवा-अभिकरण कहलाने का गौरव इसलिए प्राप्त होता है कि उनकी घोषित नीति के अनुसार उनके कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत हर प्रकार की समस्याएँ सम्मिलित होती हैं। किन्तु कुछ अभिकरण उसी लक्ष्य तक एक अन्य मार्ग से पहुँचते हैं, उनके सेवाक्षेत्र के अन्तर्गत जो निश्चित समस्याएँ आती हैं, उन्हीं का प्रगुणन करके वे उनका संख्या-विस्तार करते जाते हैं, जिससे उनका कार्यक्षेत्र भी बहुत व्यापक हो जाता है। ऐसे अभिकरणों में भी कार्य के विशेषीकरण से सम्बन्धित ये पूर्वोल्लिखित प्रश्न उठते हैं कि—क्या किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र की सभी तरह की वैयक्तिक समस्याओं को सुलझाने का भार एक ही कार्यकर्ता पर सौंपना ठीक है या एक कार्यकर्ता को उस क्षेत्र की किसी एक प्रकार की समस्याओं को अपने हाथ में लेना चाहिए, क्या एक ही अभिकरण में विभिन्न समस्याओं से सम्बन्धित अलग-अलग कार्यकारी विभाग हों या वह अभिकरण अलग-अलग समस्याओं को लेकर सेवा-कार्य करने वाले विभिन्न स्वतन्त्र अभिकरणों का एकीकृत संघ हो? ये प्रश्न देहाती क्षेत्र में विशेष रूप से उग्र रूप में उपस्थित होते हैं। क्योंकि वहाँ जन-कल्याण-अभिकरण में प्रायः एक या कुछ इने-गिने कार्यकर्ता होते हैं, जिनके ऊपर विविध प्रकार की अनेकानेक समस्याओं को सुलझाने में मदद करने का उत्तरदायित्व होता है।

वस्तुतः विशेषीकरण का प्रश्न आज केवल सामाजिक कार्य के लिए ही नहीं, बल्कि आधुनिक जीवन के अन्य क्षेत्रों के लिए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गया है। आजकल वैयक्तिक सेवा करने वाले कार्यकर्ताओं की संख्या जिस तरह बढ़ती जा रही है, उससे प्रत्यक्षतः इस मत की पुष्टि होती है कि केवल विशेषीकरण द्वारा ही उनकी क्षमता और कौशल के उच्चतम विकास की आशा की जा सकती है। पर बहुत-से ऐसे लोग भी हैं, जो चिकित्सा-क्षेत्र के अनुभवों के आधार पर यह विचार व्यक्त करते हैं कि श्रेष्ठ वैयक्तिक समाज-सेवा-कार्य की यह विशेषता रही है कि कार्यकर्ता प्रत्येक सेवार्थी के प्रति

अत्यन्त संवेदनशील होता है, पर विशेषीकरण की वृद्धि के साथ उस संवेदनशीलता में कमी होती जायगी। इसके उत्तर में शायद यह कहा जाय कि विशेषीकरण और संवेदनहीनता का सह अस्तित्व अनिवार्य नहीं होता क्योंकि जो कार्यकर्ता समाज-सेवा के किसी विशेष क्षेत्र में विशेषज्ञ होने का दावा नहीं करते उनमें भी प्रायः सेवार्थी के प्रति संवेदनशीलता का अभाव दिखाई पड़ता है।

अपने कार्यक्षेत्र का इस प्रकार व्यापक परिसीमन करने के अतिरिक्त अभिकरण बुनियादी सिद्धान्त के आधार पर कार्यारम्भ करता है और अपने कार्य के सुचारु संचालन के उद्देश्य से अपने वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ताओं के लिए कुछ निश्चित नियम और कायदे निर्धारित कर देता है। अधिकतर वे सिद्धान्त, तत्सम्बन्धी नीतियाँ और पद्धतियाँ कार्यकारी कर्मचारि-वर्ग, कार्यकारिणी परिषद् और कार्यकर्ताओं के सहचिन्तन और सम्मिलित विचार-विनिमय का परिणाम होती है। कुछ अभिकरण इस बात पर बहुत जोर देते हैं कि इन बातों को बहुत ही स्पष्ट और संक्षिप्त शब्दावली में नियम-सूची या प्रशासन-सूचना के रूप में लिख लेना चाहिए, उनमें कर्मचारि-वर्ग की तथा अन्य समितियों की बैठकें करने पर अधिक जोर दिया जाता है, जिनमें इस बात की जाँच-पड़ताल की जाती है कि वे नियम, कायदे कार्यकर्ताओं के सम्मुख उपस्थित समस्याओं को सुलझाने की दृष्टि से समयानुकूल हैं या नहीं। अन्य अभिकरणों में ये नियम कायदे तथा उनमें किये गये संशोधन आदि मोटे तौर पर मौखिक रूप में ही तय कर लिये जाते हैं।

यद्यपि समुदाय द्वारा प्राप्त समर्थन के मात्रा-भेद के अनुसार इन अभिकरणों के रूप भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं, फिर भी प्रत्येक अभिकरण जिन नियमों, कानूनों, नीतियों और कार्य-पद्धतियों के आधार पर संचालित होता है, उन्हींके अनुरूप अभिकरण के कार्यों के प्रति समुदाय के लोगों का विश्वास भी होता है। यद्यपि नीतियों और कार्यपद्धतियों के कारण कभी-कभी वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्त्ता को स्वतन्त्र रूपसे कार्य करनेमें बाधा भी उपस्थित होती है, क्योंकि उनसे कार्यकर्ता और सेवार्थी दोनों ही एक सीमा में बँध जाते हैं, किन्तु उनके कारण कार्यकर्ताओं को प्रायः शक्ति भी प्राप्त होती है, क्योंकि कभी-कभी विशेष परिस्थिति और काल में कार्यकर्ता उन नियमों की बाधा के कारण अपने विवेक और निर्णय द्वारा कोई ऐसा काम नहीं कर सकता, जो शायद बाद में अनुचित या अनावश्यक प्रतीत होता। उदाहरण के लिए, जन-सहायता-अभिकरणों में सभी आवेदकों और सेवार्थियों के साथ समान व्यवहार करने का नियम होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह नीति निर्धारित की जाती है कि सहायता प्राप्त करने का प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार होगा और सब पर किया जानेवाला खर्च भी बराबर-बराबर होगा। यदि ऐसा नियम न हो तो प्रत्येक कार्यकर्ता को स्वतन्त्रता मिल जायेगी कि वह अपने व्यक्तिगत

विवेक के अनुसार किसी मामले में अधिक या कम शक्ति लगाने का निर्णय करे, इससे किसी सेवार्थी को कार्यकर्ता के पूर्वाग्रह और पक्षपात का शिकार होना पड़ सकता है,पर चाहे कितनी भी सतर्कता से ये नियम क्यों न निर्धारित किये जायँ,फिर भी कार्यकर्ता के सम्मुख ऐसे अवसर उपस्थित होते हैं, जब कि उसे अपने विवेक द्वारा निर्णय करना पड़ता है, क्योंकि मनुष्य का व्यक्तित्व अपने लिए पूर्व निर्धारित किसी भी नियम के घेरे में पूरी तरह बँध नहीं सकता। फिर भी यह आशा की जाती है कि जब कभी ऐसे निर्णय की आवश्यकता हो तो कार्यकर्ता अपनी निजी खब्त के अनुसार नहीं,बल्कि अपने पेशे के अनुशासन के आधार पर निर्णय करे।

यद्यपि विभिन्न अभिकरणों के संघटनात्मक रूप और वैयक्तिक सेवा-सम्बन्धी उनकी कार्यपद्धतियों में पर्याप्त अन्तर दिखाई पड़ता है, किन्तु उपर्युक्त विवेचन के आधार पर अब हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अधिकांश उदाहरणों में वैयक्तिक सेवा-कार्य के लिए किसी अभिकरण का माध्यम अनिवार्य है।

वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता की कर्त्तव्य-भूमिका—अभिकरण और सेवार्थी की स्थिति स्पष्ट है, क्योंकि वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रक्रिया के उलझनपूर्ण तत्त्वों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है, यद्यपि वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता की स्थिति भी उतनी ही स्पष्ट है,किन्तु उसकी कर्त्तव्य-भूमिका बहुत ही जटिल होती है। जिस तरह सेवार्थी और अभिकरण के महत्त्व को समझने के लिए हमें उनकी विशेषताओं, विचित्रताओं और पारस्परिक भेदों को समझना आवश्यक है, उसी तरह, हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वैयक्तिक सेवा-कार्य-कर्ता भी अपने व्यक्तित्व के वैचित्र्य की कुछ बातें वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रक्रिया में समाविष्ट कर देता है। जब हम इस ओर ध्यान देते हैं कि वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ताओं में प्रशिक्षित और अप्रशिक्षित दोनों प्रकार के लोग हैं और उन सबको वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता ही कहा जाता है,तो यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ही प्रकार की परिस्थितियों में विभिन्न कार्यकर्ता भिन्न-भिन्न कार्य क्यों करते हैं और फिर उनके कार्यों के भेद को देखकर आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, हाँ यह जानकर कुछ आश्चर्य अवश्य होता है कि पूर्ण प्रशिक्षित वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ताओं के दल में भी आपस में ही बहुत अधिक मतभेद दिखाई पड़ता है। किन्तु जब हमारा ध्यान चिकित्सा-शास्त्र के क्षेत्र की ओर जाता है, जो एक वहुत प्राचीन शास्त्र है तथा जिसमें गम्भीर शोध-कार्य हमेशा होता रहता है और हम देखते हैं कि वहाँ भी विभिन्न-चिकित्सकों की कार्यपद्धति और कार्यविधि में पर-स्पर पर्याप्त अन्तर दिखलाई पड़ता है तो हमारी चिन्ता बहुत कम हो जाती है। चिकित्सा के क्षेत्र में एक ही प्रकार के रोगों के सम्बन्ध में किये जानेवाले विभिन्न चिकित्सकों के निदान हर हालत में बिलकुल एक-जैसे नहीं होते और उनकी चिकित्सा-पद्धति में भी

प्राय: अन्तर देखा जाता है। इसके अतिरिक्त यह बात भी तर्कपूर्ण और विश्वसनीय है कि किसी रोगी की चिकित्सा में चिकित्सक की सफलता केवल उसकी स्थूल चिकित्सा पद्धति पर ही नहीं निर्भर करती, बल्कि रोगी के प्रति चिकित्सक के व्यवहार-सम्बन्धी गुणों पर भी निर्भर करती है। निस्संदेह रूप से ठीक यही बात वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रक्रिया के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

यद्यपि यह सोचना ठीक नहीं है कि सभी वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता एक सीधी-सादी और स्पष्ट परिभाषा की सीमा में बँध जायेंगे, फिर भी यह सम्भव हो सकता है कि ऐसी विशेषताओं का निर्देश किया जा सके जो वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ताओं के पूरे वर्ग में सामान्य रूप से पायी जाती हैं और जिन्हें प्रत्येक कार्यकर्ता की वर्गीय विशेषता भी कहा जा सकता है। जैसा पहले कहा जा चुका है, उनकी एक विशेषता तो यह है कि वे अन्य व्यक्तियों के प्रति अधिक चिन्ताशील, आदर-भाव रखनेवाले तथा उनमें हार्दिक रुचि दिखाने वाले होते हैं। उनमें नियन्त्रण से युक्त एक ऐसी मैत्री-भावना होती है, जिसे उनकी वर्गीय विशेषता कह सकते हैं। अपने पेशागत सम्बन्धों में वे विनम्र, किन्तु अपने पेशे के अनुशासन से पूर्णत: अनुशासित होते हैं। वे चाहे अधिक बातूनी हों या कम, पर यह अवश्य होता है कि उन्हें अपनी संग्राहक और प्रक्षेपक प्रवृत्तियों का पूर्ण ज्ञान होता है और वे सेवार्थी और अपने सहयोगियों की रुचि और आवश्यकता के अनुसार उन प्रवृत्तियों पर अनुशासन रखने में भी सक्षम होते हैं। ऐसा भी होता है कि वे पूर्णत: या निश्चित रूप से न सही, फिर भी अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक पूर्वाग्रह-रहित होते हैं। उनमें अपने पूर्वाग्रहों को समझने की तथा आवश्यकता पड़ने पर उनका प्रभाव कम करने के लिए उन पर नियन्त्रण रखने की भी कुछ प्रवृत्ति होती है। फिर भी सामान्यतया वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता पारस्परिक मतभेदों से घबड़ा कर भागते नहीं हैं,बल्कि उनके विवेचन में अधिक रुचि और प्रवृत्ति दिखाते हैं। वे इस बात को समझते हैं कि विभिन्न संस्कृतियों में मानव-व्यवहार-सम्बन्धी मूल्य भिन्न-भिन्न होते हैं, अत: यदि कोई सेवार्थी अपना कोई वहम उनके सामने उपस्थित करता है तो वे उसे सेवार्थी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की बाह्याभिव्यक्ति मानते हैं। वे जानते हैं कि एक ही शब्द विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले लोगों के लिए भिन्न-भिन्न अर्थ रखता है और एक ही विचार को अनेक तरह से विभिन्न रूपों में व्यक्त किया जा सकता है। फल-स्वरूप जब कोई सेवार्थी उनसे कोई बात कहता है तो वे उसका सतही अर्थ न लेकर इस बात का विशेष प्रयत्न करते हैं कि वे गहराई में जाकर उसके वास्तविक अभिप्राय को समझ सकें। उसी तरह से वे इस बात का भी विशेष प्रयत्न करते हैं कि वे स्वयं इस ढंग से अपनी बात कहें कि सेवार्थी उसे सही रूप में समझ जाय। यद्यपि उनका एक लक्ष्य समाज की माँगों के अनुरूप अपने को मोड़कर जीवन बिताने में सेवार्थी की सहायता करना है। फिर

भी उनका यह अभिप्राय नहीं होता कि सेवार्थी के जीवन को समाज के यान्त्रिक ढाँचे के बिलकुल अनुरूप बनाकर उसके व्यक्तित्व को कुंठित कर दिया जाय। अन्त में, वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ताओं के एक-दो और विशेषताओं की ओर भी ध्यान दिला देना आवश्यक है। उनमें विनम्रता और मानव-व्यक्तित्व की सीमाओं को समझकर उसके प्रति सद्-भावना की प्रवृत्तियों का सुन्दर संयोग होता है, साथ ही वे इस बात में भी विश्वास करते हैं कि सभी मानव जीव होने के साथ ही विधाता बनने की भी क्षमता रखते हैं।

यदि उपर्युक्त बातों से यह अभिप्राय निकाला जाय कि वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता सभी गुणों के पुञ्जीकृत रूप या श्रेष्ठतम आदर्श होते हैं तो इससे अधिक सत्य से दूर हटी हुई बात और कोई नहीं होगी। यद्यपि वे मानव-व्यवहार को समझने का प्रयत्न करते हैं और वैयक्तिक मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र के निष्कर्षों के आधार पर तत्सम्बन्धी ज्ञान उपलब्ध करने का प्रयास करते हैं और साथ ही वे यह भी प्रयत्न करते हैं कि उनकी संवेदना शक्ति बढ़ती रहे, वे पूर्वाग्रह से मुक्त तथा समाज के लिए अधिक उपयोगी हो सकें, फिर भी इन प्रयत्नों में उन्हें पूर्ण सफलता कभी नहीं प्राप्त होती। यद्यपि सामाजिक कार्यकर्ता अपने व्यावहारिक आदर्शों तक नहीं पहुँच पाते हैं,फिर भी सामाजिक कार्यों द्वारा पेशे के रूप में सामाजिक अधीक्षण की ऐसी अद्‌भुत प्रक्रिया का विकास हुआ है,जिसका उद्देश्य सेवार्थी के प्रति अभिकरण की अभिरुचि को जागृत रखना और साथ ही सेवार्थी की सेवा से सम्बन्धित वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता की योग्यता और कौशल को विकसित करने में सहायता करना है।

निरीक्षण की इस पद्धति में निरीक्षक और कार्यकर्ता मिलकर नियमित रूप से विचार-विमर्श करते हैं और निरीक्षक नियमित रूप से कार्यकर्ता द्वारा प्रस्तुत अभिलेखों का कुछ अंश पढ़ता है। इन बैठकों में जो प्रायः साप्ताहिक रूप में होती हैं, कार्यकर्ता और निरीक्षक दोनों ही अधिकतर कार्यकर्ता, विचारार्थ उन समस्याओं को उपस्थित करते हैं,जो सेवा-कार्य करते समय उनके सम्मुख उपस्थित होती हैं। प्रायः विचार-विमर्श के प्रसंग में कार्यवाही को आगे बढ़ाने के लिए सम्भावित उपायों के विषय में कार्यकर्ता स्वयं नयी दृष्टि और नये विचार प्रस्तुत करता है,किन्तु निरीक्षक भी कभी-कभी ऐसे विचार उपस्थित करता है। निश्चय ही ऐसे अवसर नहीं उपस्थित होते, जब कि कार्यकर्ता और निरीक्षक के बीच मतैक्य न हो सके। कुछ विशेष निर्धारित कालों के उपरान्त, प्रायः वर्ष में एक बार, निरीक्षक कार्यकर्त्ता के सहयोग से कार्यकर्त्ताओं के कामों तथा उनकी शक्तियों और कम-जोरियों का विश्लेषण करते हुए एक आकलनात्मक वक्तव्य तैयार करता है। निरीक्षण की प्रक्रिया के बीच एक विशेष सिद्धान्त से काम लिया जाता है,जो वैयक्तिक सेवा-कार्य में निहित सिद्धान्त से मिलता-जुलता है। वह सिद्धान्त यह है—कार्यकर्ता और सेवार्थी

दोनों का ही विकास इस बात पर निर्भर करता है कि उनमें अपने को बदल सकने की क्षमता और दूसरे के जीवन-परिवर्तन के प्रति अभिरुचि है या नहीं, सहायता दी जानी चाहिए, किन्तु उसकी सार्थकता इसी बात पर निर्भर करती है कि वह कैसे ली जाती है और उसका उपयोग कैसे किया जाता है।

इन तमाम बातों से यह स्पष्ट है कि वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रक्रिया में वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता एक अनिवार्य, किन्तु अत्यन्त उलझनपूर्ण तत्त्व है।

इस पुस्तक के अगले अध्यायों में से कई में वैयक्तिक सेवा-कार्य के उदाहरण दिये गये हैं, जिन्हें पढ़कर वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रक्रिया के विभिन्न अंगों तथा उनके कामों का व्यावहारिक ज्ञान हो जायगा। साथ ही यह भी मालूम हो जायगा कि उस प्रक्रिया में सहायता-कार्य के लक्ष्य सेवार्थी के व्यक्तित्व, अभिकरण के संघटन और वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता के पेशे से सम्बन्धित अनुशासन आदि का क्या स्थान और महत्त्व है।

वैयक्तिक सेवा-कार्य की सम-सामयिक समस्याएँ

वैयक्तिक सेवा-कार्य तथा सहायता-सम्बन्धी अन्य वृत्तियाँ—जैसा पहले कहा जा चुका है, वैयक्तिक सेवा-कार्य एक विकासशील और प्रसरणशील कार्य है, जो अब तक अपने विकास की चरम सीमा तक नहीं पहुँच सका है। सम्भवतः इसी कारण उससे सम्बन्धित अनेक ऐसे प्रश्न उठ खड़े हुए हैं, जिनका संतोषप्रद उत्तर अभी तक नहीं प्राप्त हो सका है। उनमें से एक प्रश्न यह है कि ठोस भौतिक सेवाओं की व्यवस्था करनेवाले और अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध-सूत्रों को व्यवस्थित करनेवाले वैयक्तिक सेवा-कार्यों के स्वरूपों में परस्पर क्या सम्बन्ध है। इसीसे सम्बन्धित दूसरा प्रश्न यह है कि उपर्युक्त दोनों प्रकार के वैयक्तिक सेवा-कार्यों तथा मनोवैज्ञानिक चिकित्सकों, चाहे वे मानसिक रोग चिकित्सक हों या मनोविश्लेषण-शास्त्री हों, उनके द्वारा किये जानेवाले वैयक्तिकसेवा-कार्यों के बीच क्या सम्बन्ध है? कुछ वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ताओं में यह प्रवृत्ति पायी जाती है कि वे अपने कार्य को ठोस भौतिक सेवा तक ही सीमित रखना चाहते हैं और अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध-व्यवस्था की समस्याओं के बारे में केवल अपनी सलाह देते हैं, फिर भी इन दोनों क्षेत्रों में काम करनेवालों को वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता ही कहा जाता है। इसका कारण यह है कि मनोविज्ञान, शिक्षा, कानून, चर्च आदि कुछ अन्य क्षेत्रों में सलाह देने वाले पेशेवर कार्यकर्ताओं को पहले से ही सलाहकार कहकर पुकारा जाता रहा है। यदि हम वैयक्तिक सेवा-कार्यों और सलाह देने से सम्बन्धित कार्यों तथा मनोवैज्ञानिक चिकित्सा से सम्बन्धित कार्यों के बीच के अन्तर को समझने का प्रयत्न करते हैं तो अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं। इन सभी कार्यों में आधुनिक

विश्लेषणात्मक और गत्यात्मक मनोविज्ञान की उपलब्धियों से बहुत अधिक सहायता ली जाती है और उन सबमें कार्यपद्धति का आधार मुख्यतः कार्यकर्ता और सेवार्थी (अथवा मानसिक रोग-चिकित्सक और रोगी) के बीच का वैयक्तिकीकृत वृत्तिगत सम्बन्ध होता है। यह अन्तर तब दिखाई पड़ता है जब कि वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता ठोस भौतिक सेवाओं में प्रवृत्त होता है अथवा किसी अभिकरण के अन्तर्गत उसके संघटनात्मक ढाँचे के अनुसार सेवा-कार्य करता है, और इसके विपरीत मनोवैज्ञानिक चिकित्सक का सामान्यतः इन दोनों बातों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। कुछ वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता, विशेषकर वे जिनके कार्य की पृष्ठभूमि मनोवैज्ञानिक होती है, जैसे पागलखानों और मानसिक स्वास्थ्य-चिकित्सालयों में काम करनेवाले कार्यकर्ता, अपने कार्य को मानसिक रोग चिकित्सक के कार्य-जैसा ही मानते हैं और कुछ मानसिक रोग चिकित्सक तो यहाँ तक दावा करते हैं कि सभी प्रकार के वैयक्तिक सेवा-कार्य मानसिक चिकित्सा-शास्त्र के ही अन्तर्गत आ जाते हैं। उपर्युक्त विवेचन में उल्लिखित अव्यवस्थापूर्ण परिस्थित और उपर्युक्त प्रश्नों के समाधान की असंदिग्ध आवश्यकता के बावजूद अनुभव द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि विभिन्न सेवा-संस्थाओं के प्रतिनिधि सहयोगपूर्ण ढंग से मिलकर यह कार्य चला सकते हैं और कुछ स्थानों में सहकारिता पर आधारित किये जाने वाले कार्यों की प्रगति को देखकर यह आशा होती है कि इस पद्धति द्वारा और भी अधिक और महत्त्वपूर्ण सेवा सम्भव हो सकेगी।

आधिकारिक व्यवस्थाओं के अन्तर्गत किये जाने वाले वैयक्तिक सेवा-कार्य—एक अन्य प्रश्न जिसका संतोषजनक उत्तर अभी नहीं मिलसका है, यह है कि सुधारसंस्थाओं, कचहरियों और प्रतिज्ञाबद्ध कारावकाश-विभागों में जहाँ व्यक्ति को अनिच्छापूर्वक विवश होकर जाना पड़ता है, वैयक्तिक सेवा-सम्बन्धी कार्यपद्धतियों का प्रयोग किया जाय या नहीं? किसी वैयक्तिक सेवा-सम्बन्धी कार्य की सफलता सेवार्थी द्वारा वैयक्तिक सेवा-अभिकरण और कार्यकर्ता के साथ स्वेच्छापूर्वक सम्बन्ध स्थापित करने पर निर्भर करती है। इसी कारण कभी-कभी यह कहा जाता है कि उपर्युक्त संस्थाओं या विभागों में वैधानिक सीमाओं के कारण वैयक्तिक सेवा-कार्य करने के लिए समुचित सुविधाएँ नहीं मिल सकतीं। वास्तविकता यह है कि उपर्युक्त संस्थाओं में रहनेवाले व्यक्ति कार्यकर्ता के सम्मुख स्वेच्छा से नहीं उपस्थित होते, बल्कि उन्हें वहाँ उपस्थित होने के लिए विवश किया जाता है। ऐसी स्थिति में कार्यकर्ता के सम्मुख सेवार्थी का भौतिक शरीर भले ही उपस्थित हो, पर उसका मन तो कहीं और होता है (प्रतिज्ञाबद्ध कारावकाश में तो मुक्त व्यक्ति को हर हालत में पकड़ मँगवाना भी सम्भव नहीं होता), अतः संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो सेवार्थी को वैयक्तिक सेवा-सम्बन्धी कार्यों में पूर्ण मानसिक योग देने के लिए विवश कर

सके। इस कारण ऐसी संस्थाओं में भी वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता सेवार्थी को एक जीवन्त मानव मानकर, सम्मान और समझने के प्रयत्न के आधार पर उसकी सेवा में प्रवृत्त होता है और सेवार्थी को भी यह स्वतन्त्रता होती है कि वह इच्छा के अनुसार उसकी सेवाओं को स्वीकार या अस्वीकार करे। यदि वह कार्यकर्ता की सेवा स्वीकार करता है तो फिर यह उसका उत्तरदायित्व हो जाता है कि वह अपने साधनों के अनुसार अपनी कष्ट-मुक्ति का प्रयत्न स्वयं करे। ऐसी हालत में उसे इस बात का भी ख्याल रखना होगा कि अभिकरण को इस बात का अधिकार और शक्ति भी हो सकती है कि वह उस सेवार्थी पर कठिन प्रतिबन्ध लगा सके। यह अधिकार अभिकरण को समाज द्वारा दिया गया होता है और अभिकरण उसका समुचित प्रयोग करता है, यह वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता के कार्य का आवश्यक अंग नहीं है और न तो उसके लिए यह अनिवार्य ही है कि वह अपने किसी सेवार्थी पर वैधानिक अधिकार से भिन्न अन्य किसी अधिकार का बलपूर्वक प्रयोग करने का प्रयत्न करे।

कुछ लोगों का यह विचार है कि इस प्रकार के अधिकार का प्रयोग भले ही न किया जाय, किन्तु सिद्धान्त रूप में उसे मान्यता मिलते ही सफल वैयक्तिक सेवा-कार्य की सम्भावना समाप्त हो जाती है। ऐसे वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ताओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है, जो इस क्षेत्र में पर्याप्त प्रयोग करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वैयक्तिक सेवा-कार्य के अन्तर्गत कार्यकर्ता और सेवार्थी के बीच कार्यविधि-सम्बन्धी ऐसा समझौता होना चाहिए, जिसकी शर्तें सेवार्थी को स्वेच्छापूर्वक मान्य हों, वे उस पर लादी न जायँ और सेवार्थी उनके अनुसार सक्रिय रूप से कार्य करे। प्रायः कानून का सत्य अपराधी की सहन शक्ति के लिए उतना ही कठोर होता है, जितना किसी भयंकर रोग के रोगी के लिए उलझनपूर्ण चिकित्सा का सत्य। अतः किसी भी हालत में वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व यह नहीं है कि वह सेवार्थी से उसके रास्ते की कठिनाइयों को कम करके बताये। इसके विपरीत उसका उत्तरदायित्व यह है कि वह सेवार्थी को समझाये कि यदि सेवा-कार्य की प्रक्रिया में उसे कष्ट उठाना पड़े तो भी वह उसे अच्छा मानकर सहन करे। ऐसे उदाहरणों की संख्या बहुत अधिक है, जिनमें सेवार्थी और कार्यकर्ता के बीच की कार्यविधि-सम्बन्धी शर्तें समाज की दृष्टि से भी उचित होती हैं।

वैयक्तिक समाज सेवा-कार्य-सम्बन्धी शोध—आज के वैयक्तिक समाज सेवा-कार्य की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि उस वैज्ञानिक आधार को जिस पर वह टिका है सुदृढ बनाया जाय। वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ताओं ने इस प्रकार के शोध-कार्य का सक्रिय उत्साह नहीं दिखाया है, जिससे इस दिशा में नवीन प्रगति सम्भव होती। इसका यह अभि-प्राय नहीं कि आधुनिक वैयक्तिक सेवा-कार्य की पद्धति केवल सद्भावना और सुन्दर सहज

ज्ञान पर आधारित है, उसके पीछे कोई कठोर बौद्धिक प्रयास नहीं है। पिछले कुछ वर्षों में किये गये वैयक्तिक सेवा-कार्यों की एक प्रमुख विशेषता विश्लेषणात्मक आत्मपरीक्षण की रही है और इस दिशा में कार्य करनेवालों ने आत्मपरीक्षण की पद्धति द्वारा अपनी अच्छाइयों और बुराइयों पर पूरा प्रकाश डाला है। इस बात के प्रमाण उनके द्वारा प्रस्तुत अभिलेख, निरीक्षण-प्रक्रिया तथा समय-समय पर अपने कार्यों का मूल्यांकन आदि हैं। फिर भी कुछ कारणों से ऐसा प्रतीत होता है कि वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता शोध-कार्य से इस कारण घबराते हैं कि ज्ञान की खोज अपने आप में एक लक्ष्य न बन जाय। यदि शोधकार्य ही वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता का लक्ष्य बन जायेगा तो वह उस मुख्य लक्ष्य से दूर हो जायगा, जिसके कारण वह अपने मानव बन्धुओं की सेवा और सहायता में तत्पर होता है। पिछले कुछ वर्षों में धीरे-धीरे कार्यकर्ताओं का यह विश्वास बढ़ता गया है कि समृद्ध शोध-कार्य द्वारा इस क्षेत्र में नवीन साधनों और कौशलों का आविष्कार हो सकता है, जिससे उनकी सेवाएँ अधिक लाभकर सिद्ध हो सकेंगी। सम्भवतः इसी कारण आजकल इस बात का विशेष प्रयत्न किया जा रहा है कि कार्यकर्ता अपने कार्यों और पद्धतियों का सूक्ष्म, नियन्त्रित और सतर्कतापूर्ण परीक्षण करें।

शोध-कार्य की पूर्णता के मार्ग में कई और बाधाएँ भी रही हैं। उनमें से एक बाधा यह कल्पना है कि वैज्ञानिक विश्लेषण का रास्ता अपनाने पर सेवार्थी अपना मानवीय रूप खो देगा, किन्तु मजेदार बात यह है कि वास्तविक प्रयोग में यह भय सही नहीं साबित हुआ है। दूसरी बाधा यह रही है कि पिछले दस वर्षों से अधिक समय से इस क्षेत्र में वैयक्तिक सेवा-कार्य के सम्बन्ध में दो विरोधी उग्र विचारधाराओं का प्रारम्भ हो गया है, यद्यपि अन्य वृत्तियों, जैसे—चिकित्सा, मनोविज्ञान, भवननिर्माण-शास्त्र आदि के क्षेत्र में भी इस प्रकार के विरोधी विचार उत्पन्न होते रहे हैं, किन्तु इससे उन क्षेत्रों में कार्य की प्रगति में अधिकतर प्रेरणा ही मिलती रही है, किन्तु वैयक्तिक समाज-सेवा के क्षेत्र में ऐसी बात नहीं दिखाई पड़ती, यहाँ तो दोनों विचार धाराओं के समर्थक अपने प्रतिद्वन्द्वियों पर अपने विचारों को लादना ही अधिक पसन्द करते हैं, अपने विचारों को प्रमाणों से पुष्ट नहीं करते। यहाँ यह प्रवृत्ति वर्तमान रही है कि किसी विचारधारा के मतों के सम्बन्ध में निर्णय देते समय इस क्षेत्र में किये जाने वाले कार्यों का परीक्षण रूढ़िवादिता के आधार पर किया जाता रहा है, उन कार्यों के परिणाम तथा उनके लिए कार्यकर्ताओं द्वारा किये गये प्रयत्नों के मूल्यांकन के आधार पर नहीं। इस समय इस बात का कुछ आभास मिल रहा है कि इस क्षेत्र में सिद्धान्तों के नवीन संश्लेषण, तथा वैयक्तिक सेवा-कार्य के परिणामों की पुष्टीकरण के लिए नये उपायों के प्रयोग का नवीन प्रयत्न प्रारम्भ हो गया है। यह सरल कार्य नहीं है। चूंकि सहायता कार्य करने वाले अन्य वर्तमान पेशों से सम्बन्धित इस विषय की

पर्याप्त विश्वस्त सूचनाएँ नहीं उपलब्ध हैं, इसलिए जब तक बहुत अधिक प्रयत्न न किया जाय, यह आशा करना व्यर्थ है कि वैयक्तिक समाज-सेवा-कार्य के क्षेत्र में इस दिशा में कोई उल्लेखनीय प्रगति हो सकेगी। फिर भी यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि वैयक्तिक सेवा-कार्य के इतिहास के इस काल में इस दिशा में कुछ प्रयत्न प्रारम्भ हो गया है।

निष्कर्ष

वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रक्रिया के तत्त्व, चाहे उनको कितने ही सरल ढंग से क्यों न व्यक्त किया जाय, वस्तुतः बहुत ही जटिल होते हैं। इन तत्त्वों के सम्मिश्रण द्वारा ही उस प्रक्रिया का जन्म होता है, जिसका उद्देश्य सेवार्थी की सहायता करना है, उसे हानि पहुँचाना नहीं और जो किसी अभिकरण के ढाँचे के अन्तर्गत ही लागू होती है। इस प्रक्रिया के दो पक्ष होते हैं, कार्यकर्ता और सेवार्थी। कार्यकर्ता का उद्देश्य अपने सेवार्थियों के कल्याण की चिन्ता करना तो है ही साथ ही वह समुदाय की उस इच्छा का भी प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी अभिव्यक्ति अभिकरण के सिद्धान्तों और नीतियों में हुई रहती है। दूसरा पक्ष वह व्यक्ति (सेवार्थी) होता है, जो अभिकरण के पास अपनी कोई समस्या लेकर सहायता की माँग करने जाता है, उसकी समस्या ऐसी होती है, जिसे निश्चित शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है और जो उसके आर्थिक मामलों, अपने सम्बन्ध में उसके विचारों तथा दूसरों के साथ उसके सम्बन्धों के विषय में अपने कल्याण की दृष्टि से किये गये उसके प्रयत्नों के सन्दर्भ में उत्पन्न होती है। वैयक्तिक सेवा-कार्य-प्रक्रिया का उद्देश्य व्यापक सामाजिक परिवर्तन उपस्थित करना नहीं है, किन्तु यदि इस प्रक्रिया का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जाय तो परिणाम-स्वरूप सेवार्थी में ऐसी नवीन शक्ति का संचार हो सकता है, जिससे वह अपने अन्य मानव बन्धुओं के साथ मिलकर रचनात्मक और सार्थक जीवन में अत्यन्त उत्साह और प्रभाव के साथ भाग ले सकता है।

सहायक ग्रन्थ-सूची

पुस्तकें और पुस्तिकाएँ

हर्बर्ट एच० आप्टेकर——बेसिक कन्सेप्ट्स इन सोशल केस वर्क; चैपेल हिल, यूनिवर्सिटी ऑफ नार्थ कैरोलिना प्रेस, १९४१।

डि स्वायिनित्ज कॉर्ले——दि आर्ट ऑफ हेल्पिग पीपुल आउट ऑफ ट्रबुल; बोस्टन, हाफ्टन मिफ्लीन कम्पनी, १९२४।

अनिता जे० फात्ज——दि नेचर ऑफ च्वायस इन केस वर्क प्रासेस; चैपेल हिल, यूनिवर्सिटी ऑफ नार्थ कैरोलिना प्रेस, १९५३।

एनी एफ० फेन्लेसन, एसेन्शियल्स इन इन्टरव्यूईंग; न्यूयार्क, हार्पर एण्ड ब्रदर्स, १९५२।

एनिटी गैरेट, इन्टरव्यूईंग—इट्स प्रिंस्पुल्स एण्ड मेथड—न्यूयार्क, फेमिली सर्विस एसोशियेसन ऑफ अमेरिका, १९४२।

गार्डन हैमिल्टन—प्रिंस्पुल्स ऑफ सोशल केस रिकार्डिंग, न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४६।

थियरी एण्ड प्रैक्टिस ऑफ सोशल केस वर्क, न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५१।

फ्लोरेंस हालिस—सोशल केस वर्क इन प्रैक्टिस—सिक्स केस स्टडीज, न्यूयार्क, फेमिली वेल्फेयर एसोशियेसन ऑफ अमेरिका, १९३९।

कोरा कासियस (सम्पादन)—ए कम्पेरीजन ऑफ डायगोनेस्टिक एण्ड फंक्शनल केश वर्क कान्सेप्ट्स—न्यूयार्क, फेमिली सर्विस असोशियन ऑफ अमेरिका, १९५०।

—प्रिंस्पुल्स एण्ड टेकनीक्स इन सोशल केस वर्क, सेलेक्टेड आर्टिकिल्स १९४०–१९५०—न्यूयार्क, फेमिली सर्विस असोशियेसन ऑफ अमेरिका, १९५०।

फर्न लावरी (सम्पादन)—रीडिंग्स इन सोशल केस वर्क १९२०–१९३८—न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९३९।

राबर्ट एम० मैकबर—कान्ट्रीव्यूशन ऑफ सोशियालॉजी टु सोशल वर्क—न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९३१।

बर्था सी० रेनाल्ड्स—लर्निंग एण्ड टीचिंग इन दि प्रैक्टिस ऑफ सोशल वर्क—न्यूयार्क, फरार एण्ड रिनेहार्ट, १९४२।

मेरी ई रिचमाण्ड—सोशल डायग्नोसिस—न्यूयार्क, रसेल सेज फाउण्डेशन, १९१७।

—ह्वाट ईज सोशल केस वर्क ?—न्यूयार्क, रसेल सेज फाउण्डेशन, १९२२।

बर्जिनिया पी० राबिन्सन—ए चेन्जिंग साइकालॉजी इन सोशल केस वर्क—चैपेल हिल, यूनिवर्सिटी ऑफ नार्थ कोलम्बिया प्रेस, १९३०।

जे० सी० टैफ्ट (सम्पादन)—दि रिलेशन ऑफ फंक्शन टु प्रासेस इन सोशल केस वर्क—जर्नल ऑफ सोशल केस प्रासेस, जिल्द १—फिलाडेल्फिया, पेन्सिलबेनिया स्कूल ऑफ सोशल वर्क, १९३७।

कार्लाटे टौले—कामन० ह्यूमन नीड्स—वाशिंगटन, डि० सी०, सोशल सिक्योरिटी बोर्ड, फेडेरल सिक्योरिटी एजेन्सी, यू० एस० गवर्नमेण्ट प्रिंटिंग आफिस, १९४५।

महत्त्वपूर्ण लेख

हर्बर्ट एच० आप्टेकर—"केस वर्क, कौन्सेलिंग एण्ड साइकोथिरैपी—देयर लाइकनेस एण्ड डिफरेन्स"—ज्यूइस सोशल सर्विस क्वाटर्ली, जिल्द–२७, दिसम्बर १९५०, पृष्ठ १६३–१७१।

—"इवाल्विंग कान्सेप्ट्स इन केस वर्क एण्ड कौन्सेलिंग"—दि सोशल सर्विस रिव्यू, जिल्द २८, मार्च १९५४, पृष्ठ ७४–८२ ।

फेलिक्स पी० बीस्टेक, एस० जे०—"ऐन एनलिसिस आफ दि केस वर्क रिलेशन-सिप्स"—सोशल केस वर्क, जिल्द ३५, फरवरी १९५४, पृष्ठ ५७–६१ ।

—"दि नॉनजजमेण्टल एटिच्यूड"—सोशल केस वर्क, जिल्द ३४, जून १९५३, पृष्ठ २३५–२३९ ।

—"दि प्रिंस्पुल ऑफ क्लायन्ट सेल्फ-डिटरमिनेशन"—सोशल केस वर्क, जिल्द ३२, नम्बर १९५१, पृष्ठ ३६९–३७५ ।

स्वीथन बावर्स, ओ० एम० आई०—"दि नेचर एण्ड डिफिनेशन ऑफ सोशल केस वर्क"—भाग–१—जर्नल ऑफ सोशल केस वर्क, जिल्द ३०, अक्टूबर १९४९, पृष्ठ ३११–३१७; भाग–२, जिल्द ३०, नवम्बर १९४९, पृष्ठ ३६९–३७५; भाग–३, दिसम्बर १९४९, पृष्ठ ४१२–४१७ ।

मार्गेराइट मुनरो—"माडर्न केस रिकर्डिंग; इन्टीग्रेटिंग केस वर्क एण्ड सुपरविजन"—सोशल वर्क जर्नल, जिल्द ३२, अक्टूबर १९५१, पृष्ठ १८४–१८७ और १९७; अथवा दि सोशल वेल्फेयर फोरम, १९५१, प्रोसीडिंग्स ऑफ दि नेशनल कान्फ्रेन्स ऑफ सोशल वर्क—न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५१, पृष्ठ २०६–२१४ ।

मेरी ओबरहोल्ट पीटर्स—"टाक्स विथ बिगनिंग सोशल वर्कर्स, भाग–१; गेनिंस पर्सपेक्टिव"—जर्नल ऑफ सोशल केस वर्क, जिल्द २८, जून १९४७, पृ० २२३–२२७; भाग–२—"अण्डर्स्टैन्डिंग दि क्लायन्ट"—वही, जिल्द वही, पृष्ठ २५४–२६०, जुलाई १९४७ ।

केनेथ एल०एम० प्रे—"ए रीस्टेटमेन्ट ऑफ दि जेनेरिक प्रिंस्पिुल्स ऑफ सोशल केस वर्क प्रैक्टिस"—जर्नल आफ सोशल केस वर्क जिल्द २८, अक्टूबर १९४७, पृ० २८३–२९०; अथवा "सोशल वर्क इन ए रिबोल्यूशनरी एज एण्ड पेपरस बाई केनेथ एल० एम० प्रे"—फिलाडेल्फिया, यूनिवर्सिटी ऑफ पेन्सिलबेनिया प्रेस, १९४९, पृ० २४४–२६१; अथवा "जेनेरिक प्रिंस्पुल्स ऑफ केस वर्क प्रैक्टिस इन १९४७"—प्रोसीडिंग्स ऑफ दि नेशनल कान्फ्रेन्स ऑफ सोशल केस वर्क, १९४७, न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४७, पृष्ठ २२७–२३९ ।

कॉल मैन राले—"ए सैम्प्लिंग ऑफ एक्सपर्ट ओपिनियन ऑन सम प्रिंस्पुल्स ऑफ केस वर्क"—सोशल केस वर्क, जिल्द ३५, अप्रैल १९५४, पृष्ठ १५४–१६१ ।

छठवाँ अध्याय

परिवार-सहायता-अभिकरण में सामाजिक सेवाएँ

प्रारम्भिक विशेष बल

प्रारम्भ जो अभिकरण परिवारों के सदस्यों की विविध प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सहायता-कार्य करते थे, उनमें तत्कालीन विचार-धाराओं का प्रतिबिम्ब होना स्वाभाविक ही था। समूची उन्नीसवीं शताब्दी, विशेषकर उसके उत्तरार्द्ध में उन अभिकरणों का कार्य व्यक्ति के बाहर उसकी सामाजिक परिस्थितियों तक ही सीमित था। सहायता के लिए प्रार्थना करने वाले व्यक्तियों की, अभिकरणों द्वारा की जाने वाली, सहायता की पद्धति भी अधिकतर उन परिस्थितियों द्वारा ही निर्धारित होती थी। तत्कालीन सर्वस्वीकृति पद्धति परिस्थितियों और जनता को दक्षता से सही रास्ते पर लाने की थी। यदि मुख्य अर्जक की नौकरी छूट जाने से उसका परिवार विपत्ति में पड़ गया तो इससे अधिक स्वाभाविक बात और क्या हो सकती थी कि उसे फिर से कहीं काम दिलाने का प्रयत्न किया जाता? यदि बच्चे स्कूल में पढ़ने नहीं जाते थे तो यह स्पष्ट था कि उन्हें स्कूल में प्रविष्ट कराया जाता और यह प्रयत्न किया जाता कि वे वहाँ नित्य जाकर शिक्षा प्राप्त करें। यदि कोई पत्नी-बच्चों वाला व्यक्ति अपने परिवार को छोड़ देता था तो कानूनी शक्ति का सहारा लेने का मार्ग खुला हुआ था। यदि बच्चों की अच्छी तरह देख-भाल नहीं होती थी या उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता था तो उन्हें उनके घर से हटा कर किसी संस्था में भेज देने की बात भी उतनी ही सहज प्रतीत होती थी। यदि वे अपराधी बालक थे तो उन्हें बाल-न्यायालय में भेज देने या अधिक उदार दृष्टि होने पर किसी मनोरंजन-केन्द्र, व्यवस्थापन-गृह या चर्च में भेज देने की व्यवस्था भी आसानी से की जा सकती थी। इस तरह स्वीकृत धारणा यही थी कि प्रत्येक तथ्य का कोई "कारण" होता है और वह कारण सामाजिक परिवेश में ही सन्निहित होता है। अतः व्यक्ति की समस्याओं का बना-बनाया समाधान यही माना जाता था कि व्यक्ति के परिवेश को ही बदल दो अथवा उस व्यक्ति को ही उस परिवेश से अलग हटा दो। इस सेवा का एक अंग यह था कि सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी के पास एक योजना लेकर

जाता था और सेवार्थी से यह आशा की जाती थी कि वह उस योजना को स्वीकार करेगा। वह योजना सेवार्थी हेतु हो या न हो, महत्त्व की बात इतनी ही थी कि वह एक योजना थी।

कई दशकों तक परिवेश पर ही बल देने की इस प्रवृत्ति की प्रधानता थी, फिर उसके बाद वह युग आया, जिसमें मनोवैज्ञानिक और जीव-विज्ञान का प्रभुत्व स्थापित हो गया। इस शताब्दी के प्रथम दशक के अन्तिम वर्षों में वाइनलैण्ड ट्रेनिंग स्कूल के दुर्बल मस्तिष्क सम्बन्धी शोध-संस्थान के संचालक डा० एच० एच० गोडार्ड ने पहले-पहल फ्रान्स के दो अध्यापकों——बिक्दन्ने और साइमन के कार्य को अमेरिका में प्रारम्भ किया। सारे देश में मनोवैज्ञानिक अध्ययन की जो धारा बह रही थी, उसकी प्रेरणा से यह एक प्रकार से उस समय के विज्ञान-चालित लोक-जीवन का एक अंग हो गया कि समुदाय के लिए अहितकर किसी भी व्यक्ति का मानसिक परीक्षण अवश्य होना चाहिए। पारिवारिक सेवा-कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं को भी मानसिक परीक्षण के इस उन्माद के सामने झुकना पड़ा, किन्तु इस उन्माद से जब उनका पिण्ड छूटा तो उसके अनुभवों के फलस्वरूप उनकी चेतना कुछ और विकसित हो गयी थी। जीव-वैज्ञानिकों ने भी यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि मानसिक और शारीरिक बीमारियाँ वंशपरम्परागत होती हैं। फलतः कुछ दिनों तक सामाजिक कार्यकर्ता भी सभी प्रकार की हीनताओं की व्याख्या इसी पद्धति से करते थे, चाहे वह हीनताग्रस्त व्यक्ति ज्यूक, कालीकाक, इश्मेल, पिने या अन्य किसी ऐसी जाति या कबीले का ही क्यों न हो, जिन पर इन बीमारियों का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है।

उपर्युक्त कुछ वर्षों में किये जाने वाले कार्य अँधेरे में टटोलने के समान थे। उन दिनों के कार्यों को ध्यान में रखकर मेरी रिचमाण्ड की 'सामाजिक निदान' (सोशल डायग्नोसिस) नामक पुस्तक पढ़ने पर यह बात आसानी से समझ में आ जाती है कि सन् १९१७ में इस पुस्तक में रिचमाण्ड ने जो बातें प्रस्तुत कीं,उनमें अधिक स्थायित्व था। इस पुस्तक द्वारा पहली बात वैयक्तिक सेवा-कार्य के कुछ निश्चित सिद्धान्तों और पद्धतियों की स्थापना की गयी थी। वैयक्तिक सेवा करने वाले कार्यकर्ताओं ने इस पुस्तक को एक पारिभाषिक नाम (सन्दर्भ का ढाँचा) देकर उसे अपनाया। इसके अनुसार व्यक्ति और परिस्थितियों के सम्बन्ध में पहले पूरा पता लगाया जाता था और उसी खोज के आधार पर निदान प्रस्तुत किया जाता था। इस निदान के अन्त में उपचार किया जाता था। उपचार का एक अंग वह योजना भी थी, जिसकी सीमा में पूरा परिवार आ जाता था। कुमारी रिचमाण्ड की दृष्टि में सामाजिक पृष्ठभूमि के बीच परिवार हमारे समाज की एक मूलभूत इकाई है।

मानसिक चिकित्सा-शास्त्र का प्रभाव

मानसिक चिकित्सा-शास्त्र और प्रारम्भिक मनोविश्लेषण-शास्त्र का भी कम प्रभाव नहीं पड़ा। मानसिक क्षमता और पैतृक रक्त-प्रभाव के परीक्षण से आगे बढ़कर सामाजिक कार्यकर्त्ता अब व्यक्ति के संवेगात्मक जीवन की गतिविधि की छान-बीन करने लगे। आर्थिक और समाजशास्त्रीय नियतिवाद की जगह मनोवैज्ञानिक नियतिवाद किस सीमा तक प्रतिष्ठित हो गया था, यह इसी बात से स्पष्ट है कि सामाजिक कार्यकर्त्ता उन संवेगात्मक कारणों को अधिक महत्त्व देने लगे, जो जन्म से ही व्यक्ति के जीवन-विकास को प्रभावित करने लगते हैं। पारिवारिक समाज-सेवा के क्षेत्र में संवेगात्मक तत्वों को नये रूप में और अधिक महत्त्व दिया जाने लगा और यह धारणा मान्य हो गयी कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को, विशेष कर बाल्यावस्था में, मोड़ने और निर्मित करने में परिवार और पारिवारिक सम्बन्धों का आधारभूत महत्त्व होता है।

प्रथम महायुद्ध और उसके बाद के कुछ वर्षों ने सामाजिक कार्य के क्षेत्र को नये रूप में प्रभावित किया। युद्धोन्माद की प्रवृत्ति का सूक्ष्म अन्वीक्षण, क्लिफोर्ड बियर्स मानसिक स्वास्थ्य-आन्दोलन के फलस्वरूप उपलब्ध गम्भीर ज्ञान, मनोविश्लेषण-शास्त्र के अनेक प्रारम्भिक सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार और अस्पतालों के अन्तर्गत काम करने वाले समाज-सेवा विभागों का अनुभवात्मक योगदान, इन सभी बातों ने वैयक्तिक समाज-सेवा के क्षेत्र में नवीन मार्गों का निर्देश किया और इन्हीं मार्गों पर अब अधिक बल दिया जाने लगा।

वैयक्तिक समाज सेवा की कार्य-पद्धतियों का यह नवीनीकरण इसी अर्थ में हुआ कि परिवेशगत कारणों पर बल देने की जगह अब व्यक्ति के व्यक्तित्व को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। फ्रायड, एडलर, युंग, और रैंक द्वारा मानसिक चिकित्सा-शास्त्र और मनोविश्लेषण-शास्त्र के क्षेत्र में किये गये प्रयोगों और उनकी उपलब्धियों से शक्ति ग्रहण करके गत्यात्मक मनोविज्ञान ने व्यक्ति के आन्तरिक या मानसिक जीवन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। अतः अब संवेदनाओं, भावनाओं और दृष्टिकोणों की सार्थकता और महत्ता बहुत बढ़ गयी, क्योंकि मनोविश्लेषण-शास्त्र के अनुसार इन वृत्तियों द्वारा व्यक्ति के अचेतन मन की कुण्ठाओं, द्वन्द्वों और संघर्षों की ही बाह्याभिव्यक्ति होती है। सेवार्थी के व्यक्तिगत जीवन के तथ्यों का खोजपूर्ण और विस्तृत विवरण देने की पद्धति बनी रही, पर उसका सामाजिक इतिहास, जिसमें उसके दादा-दादी, माता-पिता, परिवार में होनेवाली जन्म और मृत्यु की घटनाओं, उसकी शरीर में किये जाने वाले आपरेशन, शिक्षा, काम के अनुभव, दुष्कर्म आदि का विवरण होता था, संग्रह करने की जगह अब यह पद्धति विकसित हुई कि सेवार्थी को उपर्युक्त तथ्यों के सम्बन्ध में अपनी भावनाओं

और विचारों को खुलकर और विस्तार से अभिव्यक्त करने की छूट दे दी जाय और उसके जीवन-इतिहास में उसके द्वारा कही बातों को पूरा का पूरा लिख लिया जाय। कार्यकर्ता सेवार्थी को, अपनी भावनाओं को खुलकर व्यक्त करने में सहायता देता था और जिस रूप में उसकी अभिव्यक्ति होती थी, उसी के आधार पर उसकी समस्या को सुलझाने में सहायक होता था। कार्यकर्ता की सफलता अधिकतर इस बात पर निर्भर करती थी कि वह सेवार्थी और उसके द्वारा अभिव्यक्त बातों के पारस्परिक सम्बन्ध को ऐसे तत्त्वों के साथ संयुक्त कर दे कि अन्त में विवश होकर सेवार्थी अपनी भावनाओं और जीवन-पद्धतियों के लिए अपने को उत्तरदायी स्वीकार कर ले। सेवार्थी द्वारा अभिव्यक्त भावनाओं में से अधिकांश उसके व्यक्तित्व के अन्तरवर्ती तल में चलने वाले द्वन्द्व की अभिव्यक्ति होती थीं। अतः कार्यकर्ता का काम उनको ऊपरी तल पर लाने, उन्हें समझने और फिर आधार को परिवर्तित करने या उसके पूर्ववत् वर्तमान रहने पर भी पहले की तुलना में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने में सेवार्थी की सहायता करना था। किन्तु शीघ्र ही यह अनुभव किया जाने लगा कि कोई भी कार्यकर्ता सेवार्थी की भावनाओं और जीवन-पद्धति का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं ले सकता, उसका काम केवल इतना ही है कि जब किसी व्यक्ति को उसकी सहायता की आवश्यकता हो और वह उससे सहायता माँगे तो वह उसकी इस तरह सहायता करे कि वह व्यक्ति अपनी जीवन-विधि को आत्म-संरक्षण के आधार पर पुनः व्यवस्थित करने के लिए स्वयं अपनी साधन-शक्तियों का उपयोग करने में सक्षम हो जाय।

तीसरे दशक की आर्थिक मन्दी

सामान्यतया यह माना जाता है कि आर्थिक मन्दी का प्रारम्भ सन् १९२९ में हुआ था, किन्तु एक सामाजिक कार्यकर्ताओं—विशेष रूप से पारिवारिक कल्याण और सामाजिक व्यवस्थापन के क्षेत्र में काम करने वाले कार्यकर्ताओं—की दृष्टि में आर्थिक व्यवस्था के टूटने के लक्षण सन् १९२९ के दो-एक वर्ष पूर्व ही दिखाई पड़ने लगे थे और उसके ठोस प्रमाण भी मिलने लगे थे। किन्तु पूरे देश को इसका स्पष्ट ज्ञान सन् १९३१-३२ के पूर्व नहीं हो सका था। जब तक समुदाय को इस व्यापक मन्दी का ज्ञान नहीं हुआ था, लोगों की सहायता का पूरा भार परिवार-सहायता-समितियों पर ही था। मन्दी के पूर्व वैयक्तिक सेवा-कार्य के निमित्त यदि औसतन ४० या ५० व्यक्ति प्रतिमास आते थे तो अब प्रतिमास ६० व्यक्ति आने लगे, फिर यह संख्या बढ़कर ८० हो गयी और अन्त में बढ़ते-बढ़ते १०० तक पहुँच गयी। इस समय तक व्यक्तिगत दान के साधन प्रायः समाप्त हो चले थे और इस तरह सरकारी सहायता अनिवार्य हो गयी। सरकारी अभि-

करणों में औसतन १०० व्यक्तियों की प्रतिमास सहायता की जाती थी, पर यह संख्या बढ़कर २००, फिर २५० और अन्त में ३०० या उससे भी अधिक हो गयी। ऐसी हालत में, जब कि परिवारों में कमाने वाले पिता बेरोजगार हो गये थे, माताएँ कार्यभार से लद गयी थीं, युवक हताश हो गये थे और परिवार भुखमरी की हालत में पहुँच गये थ, उस विशेषज्ञतायुक्त मनःचिकित्साशास्त्रीय ज्ञान और कौशल का क्या उपयोग हो सकता था ?

उस समय तात्कालिक कार्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। खाद्य-सामग्री, वस्त्र और आवास का प्रबन्ध करना नितान्त आवश्यक था। इस बात के लिए प्रयत्न करना भी आवश्यक था कि काम करने योग्य व्यक्तियों को काम दिलाया जाय, बालकों की स्कूल की पढ़ाई जारी रहे, और उन व्यक्तियों को, जो ह्रास की भयानकता-पूर्ण सीमा पर पहुँच गये हैं मनोरंजन और अवकाश के समय के सदुपयोग की सुविधाएँ प्रदान की जायँ। सरकारी सहायता-कार्यालयों में, जहाँ वैयक्तिक सेवा का कार्य बेहद बढ़ गया था, कार्यकर्ता शीघ्र ही यह महसूस करने लगे कि पूर्ववर्ती दशकों में सहायता-सम्बन्धी जितने कौशलों का आविष्कार और विकास हो चुका है, उन सबका फिर से प्रयोग होना चाहिए। जरूरतमन्द व्यक्ति सभी वर्गों में थे, उनमें से बहुत-से लोग सरकारी सहायता माँगने के लिए अभिकरणों के कार्यालय में जाना पसन्द नहीं कर सकते थे, कुछ ऐसे थे, जो किसी रूप में भी सहायता स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, किन्तु ऐसे लोगों की संख्या भी कम न थी, जो बिना किसी हिचकिचाहट के अपने 'अधिकार' के रूप में सहायता की माँग करते थे। ऊपर निर्दिष्ट लोगों में से सभी अलग-अलग व्यक्ति के रूप में थे, जिनकी अलग-अलग आवश्यकताएँ थीं और कुछ की आवश्यकताएँ तो मात्र भौतिक पदार्थों की सहायता से भिन्न प्रकार की सहायता की अपेक्षा रखती थीं। अतः वैयक्तिक सेवा करने वाले कार्यकर्ताओं में सेवार्थियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को समझने की क्षमता का होना आवश्यक था। साथ ही उनसे यह भी अपेक्षा की जाती थी कि वे इस अन्तर को समझें कि किस व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति मुख्यतः भौतिक सहायता से हो सकती है और किस व्यक्ति के कष्टों का कारण उसके व्यक्तित्व के मूल में निहित कठिनाइयाँ है, जिन्हें दूर करने के लिए भौतिक सहायता की नहीं, विशिष्ट मानसिक सहायता की आवश्यकता है।

पारिवारिक सहायता-समितियाँ स्वभावतः उन विक्षोभकारी दिनों की घटनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती थीं। कार्यकर्ताओं के ऊपर सेवार्थियों के सेवा-कार्यों का अम्बार लद गया। जब सरकारी अभिकरणों ने आर्थिक सहायता का अधिकांश भार अपने ऊपर ले लिया तो पारिवारिक सहायता-समितियाँ अपने कामों के सम्बन्ध में नये सिरे से निर्णय करने के लिए विवश हो गयीं। मन्दी के प्रारम्भिक दिनों में वे वाध्य

होकर, अपनी इच्छा के विरुद्ध विशुद्ध भौतिक सहायता करने वाले अभिकरणों के रूप में बदल गयी थीं। अतः जब सरकार ने सहायता-कार्य का अधिकांश भार अपने ऊपर ले लिया तो पारिवारिक अभिकरणों ने भौतिक सहायता-सम्बन्धी अपने सद्यः उपलब्ध व्यापक अनुभवों के साथ अपने वैयक्तिक सेवाकार्य-सम्बन्धी पूर्ववर्ती ज्ञान को संयोजित करके उसको ठोस रूप देना प्रारम्भ किया। अब वे परिवारगत वैयक्तिक सेवा-कार्य के क्षेत्र में पहले की अपेक्षा अधिक विश्वासपूर्ण ढंग से नवीन सिद्धान्तों और पद्धतियों के आधार पर कार्य करने के लिए पूरी तरह तैयार थे।

सांस्कृतिक कार्य-भूमिका

समस्त सामाजिक कार्यों के क्षेत्र को प्रभावित करने वाले एक और विषय की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है। नृतत्वशास्त्री विशेष रूप से सामाजिक नृतत्वशास्त्री, जिन्होंने विभिन्न आदिम जातियों के समसामयिक जीवन का अच्छी तरह अध्ययन किया था, मानव के व्यवहार अथवा उसके व्यक्तित्व के विकास पर पड़ने वाले सामाजिक रीति-रिवाज, आदत और समाज के स्वरूप के प्रभावों के सम्बन्ध में प्रभूत साहित्य की रचना करते आ रहे थे। समाजशास्त्री भी, जो आधुनिक समाज का अध्ययन करते थे, सामाजिक संघटनों के उपर्युक्त तत्त्वों से उसी प्रकार प्रभावित थे। संस्कृति को, जिसमें कार्य-विधियाँ, विचार दृष्टिकोण, आदतें, व्यवहार और इन सबसे सम्बन्धित भौतिक वस्तुएँ आदि सब सम्मिलित हैं, अब मानव-अस्तित्व का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष तथा मानव की व्यवहार-विधि को निर्मित और निश्चित करने वाला तत्त्व माना जाने लगा। परिणाम-स्वरूप सामाजिक कार्यकर्ता भी संस्कृति से सम्बन्धित विचारों और मतों से प्रभावित होने लगे और उन्होंने वैयक्तिक सेवा-कार्य से सम्बन्धित अपने प्रयोगों और सिद्धान्तों में अनेक नृतत्वशास्त्रीय विचारों को अपना लिया। पारिवारिक सेवा-कार्य के क्षेत्र में यह बात विशेष रूप से घटित हुई क्योंकि सामाजिक वर्गों और इकाइयों में परिवार ही सर्वाधिक आधारभूत इकाई था और मानव-व्यक्तित्व के विकास पर अन्य सभी इकाइयों और वर्गों से अधिक उसी का प्रभाव पड़ता था। व्यक्तित्व के संघटन और क्रिया-विधि को समझने वाली जिस सूक्ष्म दृष्टि की उपलब्धि मनोविज्ञान के आधार पर हुई थी, सांस्कृतिक नृतत्वशास्त्र के नवोपलब्ध ज्ञान के साथ उसको समन्वित किया जाने लगा। फलस्वरूप व्यक्तित्व और संस्कृति की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया के अध्ययन का नया रास्ता खुला, जिसका स्वीकारात्मक मूल्यांकन किया जाने लगा।

इस सम्बन्ध में इस महत्त्वपूर्ण बात को भुलाया नहीं जा सकता कि इसी काल में एक मानस-रोग-चिकित्सक ने "परसनैलिटी ऐण्ड दी कल्चर पैटर्न" नामक पुस्तक लिखी

जो बड़े व्यापक क्षेत्र में पढ़ी गयी। उस पुस्तक के नाम से ही पता चलता है कि वह रूथ बेनेडिक्ट की 'पैटर्न्स आफ कल्चर' नामक पुस्तक के नाम के आधार पर रखा गया है। वैयक्तिक सेवा-कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं के सामने बार-बार यह प्रश्न उपस्थित होता था कि इस अन्तर को स्पष्ट रूप से कैसे समझा जाय कि व्यक्ति की कौन सी कठिनाई बाह्य प्रतीत होने वाले सांस्कृतिक कारणों से उत्पन्न हुई है और किन कठिनाइयों के कारण उसके व्यक्तित्व के भावात्मक संघटन के भीतर निहित हैं। वैयक्तिक सेवा-कार्य करने वालों को यह जानने और समझने की आवश्यकता थी कि यद्यपि मनुष्य किसी सांस्कृतिक परिवेश के बीच ही पैदा होता है, उसे वह उसी रूप में स्वीकार करता है, उसी परिवेश की सीमा में अपना स्थान बनाता और अपने कार्यों की भूमिका निभाता है, पर कभी-कभी अपने सांस्कृतिक परिवेश के लिए वह एक गत्यात्मक शक्ति भी बन जाता है तथा अपनी आवश्यकताओं की, अधिक सन्तोषपूर्ण ढंग से पूर्ति के निमित्त वह उस परिवेश को परिवर्तित भी करता है। अधिकांश कार्यकर्ताओं की योग्यता और कुशलता इसी सीमा तक थी कि वे सेवार्थी की अनेक प्रकार की कठिनाइयों में से कुछ ऐसी कठिनाइयों को चुन लेते थे, जिनका विवरण उपस्थित करने या जिनके बारे में सहायता ग्रहण करने में सेवार्थी को कोई आपत्ति नहीं होती थी और जिनका कुछ उत्तरदायित्व भी वह अपने ऊपर लेने को तैयार रहता था। यह स्थिति उस काल की स्थिति से भिन्न थी, जब कि सभी समस्याओं का समाधान सामाजिक व्यक्ति के भीतर ही खोजा जाता था और व्यक्ति तथा परिवेश के पारस्परिक सम्बन्धों से उन समस्याओं को विच्छिन्न करके देखा जाता था। एक अन्य उलझन इस बात की भी थी कि अधिकतर राष्ट्र, उम्र और व्यवहार-शैली के आधार पर संघटित विभिन्न समूहों की परस्पर विरोधी और संघर्षरत संस्कृतियों के बीच व्यक्ति को अकारण पिसना पड़ता था। अतः इस बात की आवश्यकता थी कि किसी अन्य देश का कोई व्यक्ति, जो इन संघर्षपूर्ण परिस्थितियों को समझता होता, सेवार्थी की उलझन तथा अपनी सहायता स्वयं ही करने के लिए उसके साधनों के संघटन के सम्बन्ध में, उसके साथ मिलकर सहयोगपूर्ण ढंग से उपाय निकालने का प्रयत्न करता और इस तरह इस देश में वैयक्तिक सेवा-कार्य की नयी पद्धति का प्रारम्भण करता।

वर्तमान पारिवारिक समाज-सेवा-कार्य

यद्यपि जन-कल्याण-कार्यों का प्रारम्भ ग्रेट ब्रिटेन में एलिजाबेथ-काल और अमेरिका में उपनिवेश-युग में ही हो गया था, किन्तु एक वृत्ति के रूप में सहायता-कार्य-सम्बन्धी कौशलों का विकास दान-संघटन-समितियों की स्थापना के बाद ही हुआ। उन दान-संघटन-समितियों से ही उन आधुनिक परिवार-सेवा-अभिकरणों का विकास हुआ,

जिनका काम ऐसे व्यक्तियों की अधिक से अधिक और प्रभावपूर्ण ढंग से सहायता करना है, जो परिवार के सदस्य के रूप में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते रहते हैं। इन सेवाओं का उद्देश्य पारिवारिक जीवन को सुरक्षित रखना और शक्ति-सम्पन्न बनाना है। उनमें परिवार की समग्रता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। सहायता परिवारी व्यक्ति को ही दी जाती है, ताकि वह पूरे परिवार की उन कठिनाइयों को, जो उसके और उसके परिवार के अन्य सदस्यों को प्रभावित करती हैं, दूर करने में सफल हो सके।

आखिर में परेशानियाँ क्या हैं, जो परिवारों को दुःखमय बनाती हैं? वस्तुतः वे सभी परेशानियाँ, जो मानव को कष्ट देती हैं, परिवार को भी कष्ट देने वाली होती हैं,क्योंकि हम में से अधिकांश व्यक्ति परिवार में ही रहते हैं, परिवारविहीन और बिलकुल 'अकेले' व्यक्ति बहुत कम होते हैं। परिवार में वयस्क लोगों, जैसे पति-पत्नी आदि के ही बीच प्रायः झगड़े होते हैं, ये झगड़े विविध प्रकार के होते हैं, जिनमें परिवार के वयस्क लोग उलझे रहते हैं। उसी तरह परिवार में वयस्क और बालकों के बीच भी झगड़े या उलझन की स्थिति रहती है। इन झगड़ों और कठिनाइयों का कारण कभी तो आर्थिक संकट और धनाभाव होता है, जिसके चारों ओर अन्य प्रकार की परेशानियाँ एकत्र हो जाती हैं और कभी भावात्मक सामंजस्य की कमी होती है, जिसके कारण मामूली चिढ़ और बौखलाहट से लेकर स्पष्ट मानसिक असन्तुलन तक की स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। पारिवारिक परेशानियों का कारण कभी-कभी परिवार के किसी सदस्य की घर में उपस्थिति नहीं, बल्कि घरसे पलायन होता है, जैसे किसी पिता या पति का घर छोड़ देना, किसी अविवाहिता, किन्तु गर्भवती पुत्री का घर से भाग जान , अपराधी पुत्र का जेल भेज दिया जाना, किसी लड़के का नजरबन्द किया जाना, आदि। पुरानी और उग्र शारीरिक बीमारियाँ और आश्रित वृद्धों की समस्या भी पारिवारिक जीवन को अशान्त और दुःखमय बना दिया करती हैं।[१]

१. व्यक्तियों के कष्टों को उत्पन्न करने वाले वैयक्तिक और समुदायगत कारणों के अधिक स्पष्ट विवरण के लिए पाठकों को निम्नलिखित पुस्तक-पुस्तिकाएँ पढ़नी चाहिए —'दी हाई कास्ट आफ अनहैपी लिविंग' नामक पुस्तिका—प्रकाशक—फेमिली सर्विस एसोशियेशन आफ अमेरिका (तिथिहीन), और ब्रेडले बूयेल कृत "कम्युनिटी प्लैनिंग फार ह्यूमन सर्विसेज" नामक पुस्तक–प्रकाशक–कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क—सन् १९५२, उदाहरण के लिए, उपर्युक्त दूसरी पुस्तक में लिखा है कि मेनेसोटा के सेण्टपाल नामक नगर में नवम्बर, सन् १९४८ में ४१ हजार परिवा किसी-न-किसी प्रकार की अभिकरण-सहायता पा रहे थे। इन परिवारों में से ६६०० परिवार, जिनकी संख्या नगर के कुल परिवारों की संख्या का

इन सामान्य श्रेणियों के विषयों को यदि अलग-अलग करके देखें तो उनके हजारों 'प्रकार' दिखाई पड़ेंगे, जिनमें प्रत्येक में कुछ वैचित्र्य मिलेगा, पर सबको एक साथ मिलाकर देखने पर उन सब को एक सामान्य संज्ञा भी दी जा सकती है। इस सामान्य संज्ञा से अब केवल सहायता पाने वाले कुछ परिवारों के समूह का ही बोध नहीं होता, उसका क्षेत्र-विस्तार बहुत अधिक हो गया है। कोई ऐसा परिवार नहीं होगा, जिसको कुछ न कुछ परेशानी न हो, पर सम्भवतः अधिकांश परिवार अपनी उलझनों को सुलझाने की व्यवस्था स्वयं कर लेते हैं। कुछ परिवार उन्हें सुलझाने में अपने सम्बन्धियों और मित्रों की भी सहायता लेते हैं। जब इन स्रोतों से सहायता नहीं मिल पाती अथवा यदि मिलती भी है तो प्रभावकर नहीं होती (और प्रायः किसी व्यक्ति का निकट सम्बन्ध उसकी दी हुई सहायता के प्रभाव का विरोधी ही होता है), तभी किसी समाज-सेवा-अभिकरण से सहायता माँगी जाती है। समाज-सेवा-अभिकरणों से सहायता माँगने का कारण यह भी होता है कि उनसे किसी व्यक्ति या परिवार का व्यक्तिगत अथवा घरेलू सम्बन्ध नहीं होता। सम्भवतः सामाजिक कार्यकर्त्ता की इस निर्वैयक्तिकता तथा उसके अनुभव और कार्य-कौशल के कारण ही लोग परिवार-सहायता-अभिकरणों से सहायता माँगना अधिक अच्छा समझते हैं।

परिवार-सहायता-अभिकरण जनता के स्वेच्छा-दान, विशेषकर स्थानीय सामुदायिक दान-पेटी में संगृहीत धन से चलते हैं। चूंकि उनका कोश सीमित होता है और उनके रख-रखाव-सम्बन्धी आधारभूत व्यय का भार राजकीय जनकल्याण-विभाग वहन करता है, इसलिए परिवार-सहायता-अभिकरण किसी आवेदक या सेवार्थी का कोई ऐसा मामला हाथ में नहीं लेता, (और न ऐसा करना उचित ही है) जिसमें अधिक समय तक अनिश्चित धन-राशि व्यय होने की आशंका हो। जनकल्याण-विभाग वैधानिक नियमों के अनुसार आर्थिक सहायता प्रदान करना है। यह सहायता कभी-कभी उस प्रशासकीय व्यवस्था के अनुसार भी दी जाती है, जो कानून के उद्देश्य और अभिप्राय के अनुरूप होती है, जैसे वृद्धावस्था-सहायता, अन्धों की सहायता, आश्रित बच्चों की सहायता, स्थायी रूप से और पूर्णतः विकलांग व्यक्तियों की सहायता और सामान्य सहायता। अधिकांश परिवार-सेवा-समितियों को मिलने वाली आर्थिक सहायता बहुत कम होती है, जो उनके आकस्मिक खर्च और 'अल्पकालिक संचित कोश' के काम में आती है। इस धन का उपयोग सेवार्थियों की ऐसी सहायता के लिए भी किया जा सकता है, जिससे उनमें अभिकरण द्वारा

छः प्रतिशत थी, "ऐसी बढ़ती हुई जटिल समस्याओं से ग्रस्त थे कि समुदाय के सहायता, स्वास्थ्य और पुनःस्थापन-सम्बन्धी अभिकरणों की नियुक्त सेवा-शक्ति के आधे से अधिक भाग उन्हीं के ऊपर लग जाती थी।" वही, पृष्ठ ९।

प्रदत्त सेवाओं से लाभ उठाने की भावना और इच्छा जाग्रत हो, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सेवार्थियों को लालच देकर या दाँव पर चढ़ा कर, उन्हें फँसाने के काम में इस धन का दुरुपयोग किया जाय। पारिवारिक अभिकरणों के पास लोग जो समस्याएँ लेकर आते हैं और जिनको सुलझाने में वे अभिकरण सक्षम होते हैं, वे अधिकतर जीवन की भावात्मक और व्यवहारात्मक उलझनों से सम्बन्धित होती हैं और उन्हें सुलझाने में आर्थिक सहायता का कोई उपयोग नहीं हो सकता। सामाजिक कार्यकर्त्ता का काम सेवार्थी की समस्या पर केंद्रित प्रकाश डालना है और उसे उसी रूप में सुलझाना है, जिस रूप में वह उपस्थित की गयी है, न कि आर्थिक सहायता का लोभ देकर उसे चिढ़ाना या वशीभूत करना है। किन्तु यदि कभी आकस्मिकता और सुसाध्यता के आधार पर आर्थिक सहायता दी भी जाती है तो उसके रचनात्मक उपयोग के संबंध में जानकारी के लिए उसका पूरा हिसाब उसी तरह माँगा जाता है, जैसे सरकारी अनुदानों का हिसाब-किताब कानून और उसकी प्रशासकीय व्याख्या के आधार पर अनुदान लेने वाले से लिया जाता है। किसी जिम्मेदार पारिवारिक अभिकरण द्वारा किसी सेवार्थी को दी जाने वाली सहायता अपने आप में लक्ष्य नहीं है, बल्कि एक ऐसे लक्ष्य का साधन मात्र है, जो परिवार की समग्रता और एकता को सुरक्षित रखने के लिए निर्धारित किया गया है।

उपर्युक्त विवरण के प्रसंग में ही यहाँ जनकल्याण-विभाग के कोश के उपयोग के संबंध में भी कुछ शब्द कह देना आवश्यक है। इस प्रकार के अभिकरण में कार्यकर्त्ता वस्तुतः परिवारगत वैयक्तिक सेवा का ही कार्य करता है, अतः ऐसे कार्यकर्ता से यही उम्मीद की जाती है कि वैयक्तिक सेवा-कार्य करने वाले अन्य अभिकरणों के कार्यकर्ताओं के ही ढंग का कार्य वह भी करेगा। इन अभिकरणों द्वारा आर्थिक सहायता दी जाती है, केवल इसी बात के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि ये अभिकरण अन्य अभिकरणों के समान समाज-सेवा का कार्य एक पेशे के रूप में नहीं करते। यह भी नहीं कह सकते कि ज्यों ही आर्थिक सहायता दी जाती है, उसके तुरन्त बाद ही वैयक्तिक सेवा का कार्य प्रारम्भ हो जाता है, जैसे कि तौलने वाली बिजली की मशीन के छेद में पैसा डालते ही वजन की मात्रा बताने वाला टिकट बाहर निकल आता है। वस्तुतः जनकल्याण-विभाग की पूरी सेवा मूलतः वैयक्तिक सेवा के रूप में ही होनी चाहिए। इस प्रश्न पर अगले अध्याय में वैयक्तिक सेवा-कार्य के रूप में सरकारी सहायता के विषय में लिखते समय अधिक विस्तार के साथ विचार किया जायगा।

पारिवारिक सेवा की अमोघ पद्धति के संबंध में इस प्रश्न पर सब एकमत हैं कि उसमें केवल ऐसी ही समस्याओं को हाथ में लेना चाहिए, जिनका संबंध पूरे परिवार से है। इस प्रश्न पर विचार करते हुए राबर्ट गोमबर्ग ने लिखा है —

"यह बात सामान्यतया सबको मान्य है कि जहाँ कहीं भी किसी अभिकरण के लिए सुविधाजनक हो, तथा परिवार की समस्याओं के समाधान की दृष्टि से आवश्यक हो, पारिवारिक अभिकरणों का यह उद्देश्य होना चाहिए कि वे पारिवारिक जीवन और उसके सामंजस्य की रक्षा और अभिवृद्धि के लिए प्रयत्न करें। इसका अर्थ यह हुआ कि अभिकरण के उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से कार्य करते समय कार्यकर्त्ता की दृष्टि इस बात पर अवश्य होनी चाहिए कि किसी सेवार्थी का आवेदन-पत्र उसके पूरे परिवार से संबंध रखता है या नहीं और यदि अभिकरण उसकी सहायता करे तो उसका पूरे परिवार पर क्या प्रभाव पड़ेगा। सेवार्थी को एक व्यक्ति मानकर उसके मामले पर अवश्य विचार हो, किन्तु उसे परिवार के एक सदस्य के रूप में भी देखा जाय, उसे परिवार से विच्छिन्न करके उसके मामले पर विचार न किया जाय।"

पिछले पृष्ठों में वैयक्तिक सेवा-कार्य के संघटन से संबंधित जिन कौशलों और पद्धतियों पर विचार किया जा चुका है, उनके अतिरिक्त पारिवारिक सेवा-कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता को यह जानना भी आवश्यक है कि किसी परिवार के विभिन्न सदस्यों का उस परिवार में क्या स्थान है और वे क्या कार्य करते हैं? हमारी संस्कृति में परिवार के अन्तर्गत पिता-माता और बच्चों के क्या अधिकार और कर्त्तव्य हैं? इसकी एक सुनिश्चित परिभाषा है। अतः समग्र परिवार की सेवा के प्रसंग में इन पारिवारिक संबंधों को ध्यान में रखना आवश्यक है। इस संबंध में गोम्बर्ग ने अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते हुए लिखा है—

"किसी विशेष परिवार की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रसंग में सहायता-कार्य करने वाले किसी कार्यकर्ता को यह चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि सहायता की माँग जिस रूप में की गयी है, यदि उसे उसी रूप में स्वीकार कर लिया गया तो परिवार के सदस्यों के बीच जो खाई पहले से ही वर्तमान है, वह और भी चौड़ी हो जायगी। कार्यकर्ता या अभिकरण इस बात का निर्णय नहीं कर सकते कि अपने परिवार की समस्याओं को सुलझाने के लिए किसी सेवार्थी को क्या करना चाहिए, वह स्वयं इसके लिए तैयार है या नहीं और यदि तैयार है तो उसमें इसके लिए क्षमता है या नहीं? पर अभिकरण की यह जिम्मेदारी अवश्य है कि सेवार्थी के जीवन के प्रति अपनी कार्य-भूमिका का निर्वाह करते हुए वह यह निर्णय करे कि उसे सहायता दी जाय या न दी जाय। उसकी जिम्मेदारी का सम्बन्ध सहायता की पद्धति से है अथवा उन परिस्थितियों से है, जिनमें सहायता दी जा रही है।"[२]

२. वही, पृष्ठ ११७–११८।

अगले अध्यायों में हम देखेंगे कि विभिन्न सेवाओं पर कार्यकर्ता जिस रूप में ध्यान देते हैं, उसकी भिन्नता के कारण वैयक्तिक सेवा-कार्य के विविध क्षेत्रों में भी भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। पर हर हालत में उनकी सीमा-रेखाएँ नहीं निर्धारित की जा सकतीं, बल्कि कभी-कभी उनमें से कुछ में परस्पर एकरूपता भी दिखाई देती है, पर विभिन्न सेवाओं पर केन्द्रित ध्यान की मात्रा-भिन्नता को पहचानने से ही हमारी दृष्टि में सफाई आ सकेगी, जो और भी उपयोगी सेवा की ओर निरन्तर प्रेरित करती जायेगी।[४]

परिवार-सेवा-अभिकरण की कार्य-विधि

संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रायः सभी परिवार-सेवा-समितियाँ नगरों में ही स्थित हैं, यद्यपि उनकी सेवाएँ आसपास के देहाती क्षेत्रों के निवासियों को भी प्राप्त होती हैं। इस समय इन समितियों की केन्द्रीय संस्था "फेमिली सर्विस एसोशियेशन आफ अमेरिका" के अन्तर्गत कुल ढाई सौ से अधिक समितियाँ काम कर रही हैं, जो "पारिवा-

४. मानवीय प्रयत्नों के अन्य क्षेत्रों की भाँति परिवारगत वैयक्तिक सेवाकार्य के क्षेत्र में भी कार्य-पद्धति, दृष्टिकोण, विभिन्न कार्यों पर दिये जाने वाले जोर, कार्य की प्रविधि, कार्य-सरणि आदि के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद हैं। पहले प्रारम्भिक दान-संघटन-आन्दोलन से लेकर मेरी रिचमाण्ड से बेतरह प्रभावित निदान मूलक कार्य-पद्धतियों और उसके बाद मानसिक चिकित्साशास्त्र और मनोविश्लेषण-शास्त्र से प्रभावित कार्य-विधियों तक की जो समीक्षा की गयी है, उससे सन् १९२० से १९३० के बीच के मन्दी-काल में उत्पन्न हुए मतभेदों पर सम्भवतः अधिक प्रकाश नहीं पड़ा होगा। मतभेद तो थे, पर उनकी व्याख्या करने में अधिक समय लगाना उचित नहीं है। हमारे काम के लिए इतना जानना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि परिवारगत वैयक्तिक सेवा अथवा व्यापक वैयक्तिक सेवा के क्षेत्र में दो पूर्णतः भिन्न दृष्टिकोण वर्तमान थे, जिन्हें आधुनिक शब्दावली में निदान-मूलक और 'कार्य-मूलक' दृष्टिकोण कहा जाता है। दोनों ने क्रमशः सिगमंड फ्रायड के मनोविश्लेषणशास्त्र और आटो रैंक के मनश्चिकित्साविज्ञान से प्रभाव ग्रहण किया है। इनमें से प्रत्येक का यह दावा है कि कार्यार्थी की सहायता की दृष्टि से उसी के कार्य की पद्धतियाँ और प्रविधियाँ अधिक सही और प्रभावपूर्ण हैं। इन दोनों विचार-धाराओं की जानकारी के लिए ये पुस्तकें पठनीय हैं (१) 'ए कम्पेरिजन आफ डायग्नोस्टिक ऐण्ड फंक्शनल केस वर्क कान्सेप्ट"—कोरा कैसियस—१९५० (२) 'दी नेचर आफ च्वायस इन-केस वर्क प्रासेस"—अनीता फाट्ज़—चैपेल हिल, नार्थ कैरोलिना युनिवर्सिटी प्रेस, १९५३।

रिक जीवन को सुदृढ़ बनाने के लिए तथा सामाजिक समंजन और अन्तःपारिवारिक सम्बन्धों से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने में परिवार के सदस्यों की सहायता करने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी अभिकरणों द्वारा संचालित विविध प्रकारके सेवा-कार्य करती हैं।"[४] इनमें से अधिकांश गैर-सरकारी परिवार-सहायता-समितियाँ हैं, किन्तु बहुत-सी ऐसी भी हैं, जो स्थानीय जनपदों के सरकारी कल्याण-विभागों का अंग या उनसे सम्बद्ध हैं।

प्रत्येक पारिवारिक समिति में वहाँ के समुदाय की आबादी और समिति के कोश के अनुसार कर्मचारियों की नियुक्ति होती है, जिनमें एक कार्यकारी सचिव, एक या अनेक निरीक्षक और कई वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता होते हैं। समाज-सेवा की प्रविधियों से अपरिचित व्यक्तियों का भी इस कार्य में सहयोग प्राप्त किया जाता है। ऐसे लोगों की एक परामर्श-परिषद् बना दी जाती है, जिसका काम समिति के कार्यकारी अधिकारी को सलाह देना तथा उस अभिकरण और समुदाय के बीच सम्पर्क स्थापित करना होता है। बड़े शहरों में कार्यकारी अधिकारी का अधिकांश समय और कौशल परामर्श-परिषद्-निरीक्षण कर्मचारिवर्ग तथा समुदाय के विभिन्न अभिकरणों के साथ मिलकर विचार-विमर्श करने में ही लगता है। जहाँ का अभिकरण अधिक बड़ा नहीं होता, वहाँ इतने अधिक विशेषीकृत कार्य नहीं किये जाते। ऐसे अभिकरण का कार्यकारी अधिकारी निरीक्षण का कार्य करने के अतिरिक्त वैयक्तिक सेवा-कार्य का भार भी वहन करता है। समिति के कोश की राशि वर्ष भर के लिए निर्धारित की जाती है। इस कोष के लिए धन व्यक्तिगत आर्थिक सहायता, स्थानीय सामुदायिक दान-पेटिका, वित्तीय संघ अथवा समिति को अर्पित की गयी दान-सम्पत्ति के मुनाफे से प्राप्त होता है।

अभिकरण का उद्देश्य समूचे समुदाय की सेवा करना होता है और यदि कोई जातीय या धार्मिक रुकावट और निषेध न हो तो सभी वर्गों के व्यक्ति उसकी सहायता प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं। परिवारों के सदस्य अभिकरण के बारे में स्वयं जानकारी प्राप्त करके अथवा किसी मित्र या किसी नये या पुराने सेवार्थी से उसके बारे में सुनकर, उसके पास व्यक्तिगत रूप में अपनी सहायता के लिए भी आवेदन-पत्र दे सकते हैं। कुछ अन्य संस्थाओं, जैसे बाल-सहायता-समिति, परिवीक्षण-विभाग, चिकित्सालय, समाज-सेवा-विभाग, राजकीय कल्याण-विभाग आदि द्वारा भेजे जाने पर भी कुछ सेवार्थी उक्त अभिकरणों के पास आवेदनपत्र लेकर आते हैं। कुछ सामुदायिक संस्थाएँ, जैसे विद्यालय, चर्च, सेवा-

४. क्लार्क डबल्यू० ब्लैकबर्न—'फेमिली सोशल वर्क'—सोशल वर्क इयर बुक, न्यूयार्क, अमेरिकन एसोशियेशन आफ सोशल वर्कर्स—१९५४। पृष्ठ २०३।

क्लब आदि भी कभी-कभी सेवार्थियों को यह सलाह देती हैं कि उन्हें परिवारिक-समिति से किस प्रकार की सहायता मिल सकती है।

आवेदन पत्र देने के समय सेवार्थी का कार्यकर्त्ता के साथ जो साक्षात्कार होता है, उसमें उसे अपनी पूरी बात कहने का अवसर दिया जाता है और वह अपनी कहानी बताने के अतिरिक्त यह भी बताता है कि अभिकरण में उसके आने का उद्देश्य क्या है, अपनी कठिनाइयों को, जिन्हें लेकर वह उपस्थित हुआ है, वह किस रूप में देखता है, और अभिकरण से वह कहाँ और किस प्रकार की सहायता चाहता है। उस समय कार्यकर्त्ता का काम प्रायः यही होता है कि वह सेवार्थी की बातों को ठीक से सुने और अपनी पूरी बात खुलकर कहने में उसकी सहायता करे। वह बीच-बीच में कभी कोई प्रश्न पूछ कर अथवा कोई टिप्पणी करके सेवार्थी के मुँह से ऐसी बातें कहलवा लेता है, जिनसे सेवार्थी को पीड़ित करने वाली वास्तविक स्थिति का पता चल जाता है। जब कार्यकर्त्ता को आवेदक की कठिनाई के बारे में पूरी ज़ानकारी हो जाती है, तभी उसे इस बात का विश्वास हो पाता है कि उसका सेवा-कार्य ऐसा है, जिसमें परिवार-सहायता-अभिकरण सहायता कर सकता है। आवेदन-संग्राहक या आवेदन-मंत्री यह अनुभव करता है कि आवेदनपत्र में जिन कठिनाइयों का उल्लेख किया गया होता है और जिन्हें आवेदनकर्त्ता वास्तविक कठिनाइयों के रूप में मानते हैं, वे सचमुच वास्तविक कठिनाइयाँ नहीं होती हैं, फिर भी कार्यकर्त्ता आवेदनपत्र में उल्लिखित स्थिति को स्वीकार कर लेता है कि उसका सम्बन्ध प्रत्यक्षतः किसी बाह्य कारण, जैसे बेकारी, पराश्रयता, उत्तरदायित्व-त्याग कानूनी कार्यवाही आदि से होता है। जब आवेदक कार्यकर्त्ता की सहायता से अपनी स्थिति का, जैसा वह उसे दिखाई पड़ती है, पूरी तरह वर्णन कर लेता है और जब कार्यकर्त्ता को इस बात का पूरा विश्वास हो जाता है कि आवेदक वस्तुतः अभिकरण की सहायता का अधिकारी पात्र है, अथवा अभिकरण उसकी सहायता कर सकता है तो उसके बाद आवेदक अभिकरण का सेवार्थी बन जाता है। फिर उसका सेव्यकार्य एक अन्य कार्यकर्ता को, जिसे वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता कहा जाता है, सौंप दिया जाता है। कभी-कभी कार्यकर्त्ता और वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्त्ता एक ही व्यक्ति होता है। आजकल सामाजिक कार्य-सम्बन्धी प्रयोग की भाषा में सेवार्थी की स्थिति को वैयक्तिक समस्या (केस), अभिकरण के साथ सेवार्थी के सम्बन्ध को वैयक्तिक समस्या का इतिहास (केस हिस्टरी) और सेवार्थी के मामले को देखने वाले कार्यकर्त्ता को वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता (केस वर्कर) कहा जाता है।

वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्त्ता का काम सेवार्थी की कठिनाइयों को, जिस रूप में वह उन्हें उपस्थित करता है, पहले उसी रूप में समझने से प्रारम्भ होता है। प्रायः ऐसा होता है कि सेवार्थी अपनी जो कठिनाइयाँ उपस्थित करता है, वे बेकारी, उत्तरदायित्व-

त्याग, कानूनी कार्रवाई तथा इसी तरह की अन्य सैकड़ों स्थितियों से सम्बन्धित होती हैं, जिनको सुलझाने में वह अभिकरण की सहायता चाहता है। यदि कठिनाई सही साबित होती है तो वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्त्ता पहले उसी दिशा में सहायता-कार्य प्रारम्भ करता है। वह सेवार्थी की, उस कठिनाई को दूर करने के लिए स्वयं अपने साधनों को संघटित करने में, मदद करता है और साथ ही अभिकरण और समुदाय के साधनों से भी सहायता प्राप्त करने में सहायक होता है।

साक्षात्कार का क्रम तब तक चलता है, जब तक उस सेव्य कार्य में उसकी आवश्यकता बनी रहती है। कभी-कभी तो समय नियमित होता है, जैसे सप्ताह या महीने में एक बार और कभी सेवार्थी की आवश्यकता और स्थिति के सम्बन्ध में कार्यकर्त्ता के विवेक के अनुसार अनियनित समय पर भी साक्षात्कार होता रहता है। साक्षात्कार के लिए या तो सेवार्थी को कार्यकर्त्ता के कार्यालय में जाना पड़ता है अथवा कार्यकर्त्ता स्वयं सेवार्थी के घर जाता है। सेवार्थी और कार्यकर्त्ता के सम्पर्क से सम्बन्धित विस्तार की बातें उन दोनों की आपसी सहमति से तय की जाती हैं।

यह सेवा-कार्य तब तक चलता है जब तक कि सेवार्थी यह नहीं अनुभव करता कि उसे पर्याप्त सहायता मिल चुकी है और अब उसे कार्यकर्ता की कोई आवश्यकता नहीं है अथवा कार्यकर्त्ता यह प्रश्न नहीं उठाता कि सेवार्थी को उससे मिलने की अब कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है। कभी-कभी उनकी मुकालातें इसलिए बन्द हो जाती हैं कि या तो सेवार्थी सहायता ले ही नहीं सकता अथवा कार्यकर्त्ता ही सहायता देने में असमर्थ होता है। कुछ उदाहरणों में समस्या की जड़ें इतनी गहराई तक गयी रहती हैं कि उसमें बहुत ही सूक्ष्म पद्धति से सेवा-कार्य करने की आवश्यकता होती है, जो परिवार-सहायता-अभिकरण की शक्ति और सीमा के बाहर की बात है। ऐसी स्थिति में कार्यकर्त्ता प्रायः सेवार्थी को यह सुझाव देता है कि यदि वह चाहे तो उसका मामला किसी अन्य समर्थ अभिकरण या किसी मानसिक चिकित्सक के पास भेज दिया जाय, जहाँ उसे अधिक उचित सहायता मिल सकेगी।[५]

पारिवारिक वैयक्तिक सेवा-कार्य और अभिकरण-व्यवस्था

पारिवारिक वैयक्तिक सेवाकार्य, पारिवारिक सेवा-अभिकरणों के अन्तर्गत किया जाता है। यह एक बहुत ही स्पष्ट और अपने आप में पूर्ण कथ न प्रतीत होता है। किन्तु

५. परिवारगत वैयक्तिक सेवाकार्य के अधिक प्राविधिक किन्तु बहुत ही स्पष्ट विवरण के लिए पढ़िए—"स्कोप एण्ड मेथड आफ दी फेमिली सर्विस एजेन्सी"; प्रकाशक—फेमिली सर्विस एसोशियेशन आफ अमेरिका—सन् १९५३; पृष्ठ ४–८।

इसकी व्याख्या करने पर पता चलेगा कि यह कथन न तो स्पष्ट ही है और न पूर्ण ही। अमेरिका के पारिवारिक सेवा-संघ के सदस्य-अभिकरणों की सबसे हाल की निर्देशिका को देखने से पता चलता है कि यद्यपि सभी सदस्य-अभिकरण पारिवारिक वैयक्तिक सेवा का कार्य भी करते हैं और कुछ तो केवल यही कार्य करते हैं, किन्तु बहुत-से अभिकरण ऐसे हैं, जो वैयक्तिक सेवा-कार्य के साथ अन्य सेवाएँ—जैसे बालकों का व्यवस्थापन, यात्रियों की सहायता आदि—भी करते हैं। पारिवारिक सेवा-अभिकरण के कार्यालय में ही यात्री-सहायता-सम्बन्धी सेवा-कार्य करने वाली संस्था का दफ्तर भी होता है अथवा यह कार्य उक्त अभिकरण के कार्य-कर्ताओं द्वारा ही किया जाता है। इससे यह पता चलता है कि इन तमाम प्रकार के सेवा-कार्यों को एक ही अभिकरण के अन्तर्गत चलाने से आर्थिक बचत होती है, अथवा यह कहना अधिक उचित होगा कि यात्री-सहायता-कार्य भी वस्तुतः एक पारिवारिक वैयक्तिक सेवा-कार्य ही है। किसी यात्रा के दौरान में कोई यात्री कुछ समय के लिए एकाकी और कष्टपीड़ित हो सकता है, पर यात्री-सहायता सम्बन्धी सेवा का सम्बन्ध इतने से ही नहीं है, यह सेवा प्रायः यात्री की पारिवारिक स्थिति से सम्बन्धित होती है। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि परिवार-सेवा-अभिकरण यात्री-सहायता-संस्थाओं का कार्य अपने हाथ में ले रहे हैं। यात्री-सहायता-अभिकरण अब भी अपने पूर्ववर्ती कार्यस्थलों—बड़े-बड़े शहरों के रेलवे स्टेशनों, बस स्टेशनों, हवाई अड्डों आदि पर, जहाँ आने-जाने वाले यात्रियों की भीड़ बहुत अधिक होती है—में यात्रियों की सेवा का अधिकांश कार्य करते हैं। किन्तु छोटे शहरों या समुदायों में, जहाँ स्टेशन आदि पर यात्रियों की भीड़-भाड़ अधिक नहीं होती, यात्री-सहायता-कार्य पहले से वर्तमान अभिकरणों—जैसे परिवार-सेवा-अभिकरण—के माध्यम से किया जा सकता है। महत्त्व की बात इतनी ही है कि जहाँ कहीं भी यह सेवा की जाती है, उसमें पारिवारिक-वैयक्तिक-सेवा-कार्य के कौशलों की अनिवार्य आवश्यकता होती हैं।

पारिवारिक वैयक्तिक सेवा-कार्य के अन्तर्गत ही अमेरिकन रेड-क्रास के गृहसेवा-कार्यालयों द्वारा की जाने वाली सेवा भी आती है। यद्यपि यह सेवा-कार्य एक भिन्न संस्था के तत्त्वावधान में होता है, पर मूलतः वह परिवारगत वैयक्तिक सेवा-कार्य का ही एक रूप है। इस सेवा का प्रारम्भ प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान में हुआ और दूसरे विश्वयुद्ध के काल तक इससे सम्बन्धित कार्यों में पूरी शक्ति आ गयी थी। द्वितीय महायुद्ध-काल में तथा उसके बाद पहले तो सेना की बेतहाशा वृद्धि और युद्धोपरान्त तीव्र गति से उनको भंग किये जाने के कारण इन सेवाओं के कार्यों में अत्यधिक गति आ गयी है। चूंकि सेना की जबर्दस्ती भरती और फिर उसकी छटनी हमारे राष्ट्रीय जीवन का एक स्थायी अंग बन गयी है, अतः रेडक्रास के गृहसेवा विभाग द्वारा की जाने वाली सेवाएँ सामुदायिक

सेवा के विशिष्ट अंग के रूप में हमेशा बनी रहेंगी, क्योंकि इस विभाग का मुख्य काम सैनिक और उसके सुदूर स्थित घर के बीच अथवा घर गये सैनिक और उसके कार्यस्थल के बीच सम्पर्क बनाये रखने में सहायता करना है।

गृहसेवा-कार्यक्रम के अन्तर्गत सैनिकों और उनके आश्रितों की व्यक्तिगत और पारिवारिक समस्याओं से सम्बन्धित वैयक्तिक सेवा-कार्य किया जाता है। इसमें सरकारी सहायता प्राप्त करने के लिए आवेदनपत्र देने में मदद करना मुख्य काम होता है। जब किसी सैनिक की पत्नी या आश्रित बच्चों के लिए स्वीकृत सरकारी पारिवारिक भत्ते की पहली किश्त मिलने में देर होती है अथवा बाद में उसके मिलने में देर होती या कोई रुकावट आ जाती है तो इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उसे अस्थायी आर्थिक सहायता दी जाती है। इसके द्वारा पुराने कर्मचारियों और उनके आश्रितों को भी सरकारी सहायता प्राप्त करने के निमित्त आवेदन पत्र तैयार कराने और उसे आगे बढ़ाने में मदद की जाती है। यदि कोई आवेदक किसी अन्य अभिकरण से सहायता पाने के लिए उपयुक्त पात्र है तो इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उसे उस अभिकरण के पास संस्तुति के साथ भेज दिया जाता है। उपर्युक्त सभी कार्यों में सबसे अधिक बल इसी बात पर दिया जाता है कि गृहसेवा-विभाग किसी परिवार की सहायता वैयक्तिक सेवा-कार्य की पद्धति के अनुसार करें।[६]

पारिवारिक वैयक्तिक सेवा का कार्य प्रोटेस्टैण्ट, कैथोलिक, यहूदी आदि धर्मों से सम्बन्धित धार्मिक संस्थाओं के तत्त्वावधान में भी किये जाते हैं। कुछ उदाहरणों में ये सेवाएँ परिवार-सहायता-अभिकरण के अन्तर्गत किसी धार्मिक सम्प्रदाय के धन से अथवा समूचे राज्य या देश भर में कार्य करने वाली, उस सम्प्रदाय की केन्द्रीय संस्था की सहायता से संचालित होती हैं। पर कभी-कभी किसी क्षेत्र के कई चर्चों या सम्प्रदायों की सम्मिलित सहायता से भी पारिवारिक सेवाकार्य संचालित होते हैं, जैसे 'मेन लाइन फेडरेशन आफ चर्चेज़' द्वारा किये जाने वाले पारिवारिक सेवा-कार्य। कुछ समुदायों में यद्यपि धार्मिक या साम्प्रदायिक आधार पर संघटित पारिवारिक अभिकरण तो नहीं होते, पर वहाँ के अभिकरण और चर्चों के बीच, विशेष कर संदर्भ-संस्तुति आदि के विषय में, नीति-

६. अमरीकी रेडक्रास द्वारा किये जाने वाले अनेक प्रकार के सेवा-कार्यों में से एक गृह-सेवा-कार्य भी है। इस अध्याय में उसकी विशेष चर्चा इसलिए की गयी है कि वह पारिवारिक समाज-सेवा का क्षेत्र ही उसका मुख्य क्षेत्र है। रेडक्रास की अन्य सेवाएँ मानसिक चिकित्सा, शारीरिक चिकित्सा, अस्पतालों में मनोरंजन आदि से सम्बन्धित हैं। अतः उनकी चर्चा बाद में यथास्थान की जायगी।

सम्बन्धी आपसी समझौता हो जाता है। चर्च और सामाजिक अभिकरण दोनों के सेवा-कार्यों में कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस बात का पर्याप्त ज्ञान अब दोनों पक्षों को हो गया है। पहले इन दोनों के कार्यक्षेत्रों की सीमा-रेखाएँ स्पष्ट और निर्धारित थीं, पर अब स्थिति बदल गयी है। अब तो दोनों में एक दूसरे की रुचियों से सम्बन्धित कार्य करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है और दोनों के पारस्परिक सहयोग को महत्त्व दिया जा रहा है। पहले की तरह सामाजिक कार्यकर्ता अब पादरियों से विचार-विनिमय करके अपने पक्ष का समर्थन करने में समय नहीं गँवाते, इसके विपरीत उन्हें पादरियों के साथ व्यवहार में सन्तोष और प्रसन्नता का अनुभव होता है। उसी तरह पादरी भी प्रशिक्षण-संगोष्ठियों में सामाजिक कार्य की शिक्षा प्राप्त करने की ओर अधिक प्रवृत्त हो रहे हैं। ऐसे प्रशिक्षित पादरी स्थानीय अभिकरणों की परामर्श-परिषद् के सदस्य के रूप में भी सेवा-कार्य कर रहे हैं। इस तरह इन दोनों सहायता-कार्य से सम्बन्धित पेशों के व्यावहारिक सम्बन्ध घनिष्ठ और पहले से अधिक सहयोगपूर्ण होते जा रहे हैं।

पारिवारिक सेवा-क्षेत्र की प्रगति

इस अध्ययन में यह बात कई बार कही जा चुकी है कि पारिवारिक सेवा-अभिकरण विभिन्न प्रकार की मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता करने के कार्य में लगे हुए हैं। प्रायः वे समुदाय की किसी बहुत दिनों से चली आती माँग की पूर्ति के लिए प्रायोगिक रूप में किसी काम में हाथ लगाते हैं अथवा अपने कर्मचारिवर्ग के उन कार्यों की सफलता और उपयोगिता से सम्बन्धित विश्वास के आधार पर कोई काम शुरू करते हैं। कभी-कभी इन सेवाओं को "चौकी सेवा" (आउटपोस्ट सर्विसेज़) भी कहा जाता है, क्योंकि वे अभिकरणों द्वारा ऐसे समुदायों के बीच संचालित होती हैं, जहाँ इस तरह का सेवा-कार्य पहले नहीं किया गया होता है। इस काम को पारिवारिक सेवा-अभिकरण अन्य अभि-करणों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं, क्योंकि उनमें नियमों में नमनीयता अधिक होती है। इसीलिए ऐसे स्थानों में इस प्रकार की सेवा की व्यवस्था के लिए नयी संस्था खड़ी करने की आवश्यकता नहीं होती। इसका एक उदाहरण औद्योगिक क्षेत्र में काम करने वाले मजदूरों के बीच किया जाने वाला परामर्श-सहायता-कार्य है। ऐसी जगहों पर पारिवारिक सेवा-अभिकरण अपने किसी कर्मचारी को किसी औद्योगिक कारखाने में वहाँ काम करने वाले मजदूरों की समस्याओं के संबंध में परामर्श देने के लिए नियुक्त कर देता है। ये समस्याएँ मुख्यतः वैयक्तिक होती हैं, फिर भी उनके कारण उस उद्योग की उत्पादन-गति और सुव्यवस्था में बाधा पड़ती है। कभी-कभी यह सहायता कारखानों में, अथवा अधिकतर अभिकरण के दफ्तर में साक्षात्कार के रूप में होती हैं।

ऐसा भी होता है कि कभी-कभी औद्योगिक मजदूरों की आवश्यकता तथा तत्संबंधी अपेक्षित सहायता को दृष्टि में रखकर पारिवारिक सहायता-अभिकरण ऐसे सेवार्थियों को, जिनकी सेवा वह स्वयं नहीं कर सकता, उस समुदाय में स्थित ऐसे अभिकरणों के पास भेज देता है, जो उस प्रकार की सहायता करने के लिए सक्षम होते हैं। अभी हाल में एक नयी पद्धति यह निकली है कि इस प्रकार की व्यवस्थाओं और सेवाओं के लिए मजदूर-संघों का सहयोग प्राप्त किया जाता है, जिसके फलस्वरूप उन संघों के यहुसंख्यक सदस्य-समुदाय द्वारा संचालित सेवा-कार्य से पूरी तरह लाभ उठाते तथा उनमें योग देते हैं।

एक और सेवा-क्षेत्र, जिस पर पारिवारिक सेवा-अभिकरण सबसे अधिक बल दे रहे हैं, विवाह और दाम्पत्य जीवन की समस्याओं से संबंन्धित हैं। पारिवारिक सेवा-अभिकरणों के पीछे यह सिद्धान्त निहित है कि उनकी सेवा का लक्ष्य परिवार की अखण्डता बनाये रखना तथा उसके प्रत्येक सदस्य को लाभ पहुँचाना होना चाहिए। इस कारण इन अभिकरणों द्वारा ऐसे दक्ष कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति की जाती है, जो पतियों और पत्नियों को आवश्यकता पड़ने पर उचित परामर्श देते हैं। जब किसी पति-पत्नी में झगड़ा पैदा होता है तो बहुधा उन झगड़ों से सम्बन्धित दृष्टिकोण, विचारों और भावनाओं आदि का विवेचन कार्यकर्ता उनके साथ मिलकर करते हैं, अतः कभी-कभी तो इस विचार-विमर्श द्वारा ही पति-पत्नी का झगड़ा समाप्त हो जाता है। इस तरह का कोई मामला एक पक्ष द्वारा उपस्थित किये जाने पर कार्यकर्ता दूसरे पक्ष को भी विचार-विमर्श के लिए आमन्त्रित करता है और जब इस प्रसंग में पति-पत्नी दोनों इकट्ठे होते हैं तो प्रायः परिणाम यह होता है कि तलाक की जगह उनमें पुनः एकता हो जाती है। यद्यपि पारिवारिक अभिकरण किसी परिवार में झगड़ा उत्पन्न होने पर उसमें एकता स्थापित करने का ही प्रयत्न करता है, फिर भी कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं कि कार्यकर्ता की कार्यकुशलता और सेवार्थी (वादी, प्रतिवादी पति-पत्नी) की अनुकूल मनोवृत्ति के बावजूद एकता नहीं स्थापित हो पाती, किन्तु इसी क्षेत्र में क्या, किसी भी क्षेत्र में भी सफलता पहले से ही निश्चित नहीं रहती। वैवाहिक समस्याओं के सम्बन्ध में केवल पारिवारिक अभिकरण ही सहायता कार्य नहीं करता, हमें यह ईमानदारी से स्वीकार करना चाहिए कि पेशे के रूप में सेवा-कार्य करने वाले अन्य कार्यकर्ता, जैसे मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री, सामाजिक स्वास्थ्य-चिकित्सक आदि––भी अपने-अपने शास्त्र और सिद्धान्त के अनुसार इन समस्याओं के सम्बन्ध में अपने ढंग से सेवा-कार्य कर रहे हैं।

पिछले कुछ वर्षों में पारिवारिक सेवा-अभिकरणों ने एक नवीन सेवा-कार्य का विकास किया है, जिसे गृह-व्यवस्था-सेवाकार्य कहते हैं। इस सेवा के अन्तर्गत, जब किसी परिवार में गृहिणी बीमार पड़ जाती या कहीं वाहर चली जाती है तो उसकी गृहस्थी की व्यवस्था

करने के लिए अस्थायी रूप से प्रबन्ध किया जाता है। गृहस्थी का प्रबन्ध करने वाले व्यक्ति की नियुक्ति अभिकरण द्वारा होती है, जिसका काम अभिकरण के निरीक्षण में उस घर की गृहस्थी की व्यवस्था करना होता है, ताकि उस परिवार के लोग घर में ही रह सकें। गृहणी के वापस आ जाने पर इस सेवा की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। इस सेवा की आवश्यकता उन परिवारों को होती है, जिनमें बच्चे, विशेष रूप से छोटे बच्चे होते हैं। जिन परिवारों में वृद्ध व्यक्ति घर पर रहते हैं और अन्य लोग दूसरी जगहों पर रहते हैं, जो कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर अथवा कोई संकट उत्पन्न हो जाने पर घर वापस आकर कुछ दिनों के लिए रहते हैं, उनमें भी अब इस सेवा की व्यवस्था की जाने लगी है। इन सेवाओं के लिए शुल्क की व्यवस्था की गयी है और इस बात को प्रायः सभी स्वीकार कर लेते हैं। एक समय था, जबकि पारिवारिक सेवा-अभिकरण मुख्य-रूप से ऐसे ही परिवारों की सहायता करते थे, जो असुविधाग्रस्त और अल्प आय वाले होते थे और अभिकरणों का अधिकांश धन उन परिवारों की ठोस भौतिक सहायता में ही खर्च होता था। राजकीय जन-कल्याण विभाग द्वारा परिवारों की आय-व्यवस्था का काम अपने हाथ में ले लिये जाने के बाद गैर सरकारी अभिकरणों को पारिवारिक एकता से सम्बन्धित अन्य कठिनाइयों की दिशा में सहायता-कार्य करने का अधिक अवसर मिलने लगा है। फलतः सेवार्थी इन सेवाओं के लिए न केवल अन्य पेशेवर सेवाओं—चिकित्सा आदि की तरह शुल्क देने को तैयार रहते हैं, बल्कि उन्हें प्राप्त करने के लिए वे जी तोड़ कोशिश भी करते हैं। अभिकरण के कार्यकर्ताओं को यह समझने में देर न लगी कि सेवार्थियों के इस प्रकार के सक्रिय सहयोग और शुल्क देने के लिए उनकी तत्परता की कितनी अधिक सार्थकता है।

गत वर्षों में विकसित होने वाला एक अन्य उल्लेखनीय सेवा-कार्य वयस्कों और वृद्धों की सामाजिक सेवाओं से सम्बन्धित है। इस ग्रन्थ के वर्तमान संशोधित संस्करण में वृद्धों की सहायता के विषय में एक अध्याय और जोड़ दिया गया है। उस अध्याय में देश की जनसंख्या के परिवर्तन के सम्बन्ध में विचार करने के साथ-साथ अन्य प्रकार की नवीन सेवाओं के सम्बन्ध में भी विवेचन किया गया है। उस अध्याय के अन्त में वैयक्तिक सेवा-सम्बन्धी जो उदाहरण दिया गया है, उससे पारिवारिक सेवा-अभिकरण द्वारा वृद्ध पुरुषों की सहायता के लिए किये जाने वाले कामों का कुछ आभास मिल जायगा। सम्भावना इसी बात की है कि इस प्रकार की सेवाओं में कमी न होकर, उनकी वृद्धि ही होती जायगी।

पिछले वर्षों में पारिवारिक सेवा-अभिकरणों के अन्तर्गत बच्चों की सेवा का कार्य भी सम्मिलित कर लिया गया है और इस तरह बाल-सहायता और परिवार-सहायता-

सम्बन्धी कार्यों को एक साथ मिलाकर एक नवीन प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया गया है। इस सेवा का रूप कभी-कभी यह होता है कि कुछ कार्यकर्ताओं को अभिकरण केवल बच्चों के कार्य के लिए नियुक्त कर देता है अथवा उनके कार्यों से सम्बन्धित अपना एक अलग विभाग ही स्थापित कर देता है। प्रायः यह व्यवस्था तब की जाती है, जब कि पूर्वस्थित बाल-सेवा-अभिकरण पारिवारिक सेवा-अभिकरणों में मिल जाते हैं और दोनों का एकीकरण हो जाता है। उदाहरणस्वरूप बाल्टीमोर की परिवार एवं बाल-सहायता समिति का निर्माण पारिवारिक कल्याण-संघ, हेनरी वाट्सन शिशु-सहायता-समिति, अनैतिकता और निष्ठुरता से बच्चों की रक्षा के लिए निर्मित मेरीलैण्ड समिति तथा परिवारों के सदस्यों की सहायता की समिति के एकीकरण द्वारा हुआ है। किन्तु कहीं-कहीं परिवार-सहायता-समितियाँ और बाल-सेवा-अभिकरण अलग-अलग हैं, पर साथ ही ऐसे नये अभिकरणों की भी स्थापना हुई है, जिनका उद्देश्य परिवार के सभी सदस्यों की सेवा करना है।

निष्कर्ष

इस अध्याय का सबसे अच्छा निष्कर्ष लिंटन स्वीफ्ट द्वारा व्यक्त कथन के उद्धरण द्वारा हो सकता है। लिंटन स्वीफ्ट अपने जीवन के अन्तिम इक्कीस वर्षों तक अमेरिका के परिवार-कल्याण-संघ के महानिदेशक थे। सन् १९४६ में अपनी मृत्यु से कुछ दिनों पूर्व उन्होंने "सामाजिक कार्यकर्ताओं का धर्म" शीर्षक देकर अपने विचार व्यक्त करते हुए कुछ नये सिद्धान्तों का प्रवर्तन किया था। ये सिद्धान्त केवल वैयक्तिक समाज-सेवा ही नहीं, बल्कि किसी भी क्षेत्र में और किसी भी रूप में किये जाने वाले सामाजिक कार्यों के विषय में समान रूप से लागू होते हैं। उन्होंने यह आशा व्यक्त की थी कि सभी सामाजिक कार्यकर्त्ता उन्हीं सिद्धान्तों को आदर्श मानकर उनके अनुसार कार्य करने का प्रयत्न करेंगे। उनका कथन नीचे दिया जा रहा है——

"मैं व्यक्ति मानव के व्यक्तित्व की गरिमा का आदर करता हूँ और उसे सभी सामाजिक सम्बन्धों का मूल आधार समझता हूँ।

मेरा यह विश्वास है कि सामान्य मानव में अपने उच्च लक्ष्यों की ओर बढ़ने की असीम क्षमता है।

मैं अन्य मनुष्यों के साथ उनके वैयक्तिक गुणों के आधार पर सम्बन्ध स्थापित करना चाहता हूँ, जाति, धर्म, वर्ण, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति आदि के आधार पर नहीं।

मैं सबके हित का प्रश्न उपस्थित होनेपर अपने निजी स्वार्थों का त्याग करने को तैयार रहता हूँ।

मैं यह मानता हूँ कि किसी भी व्यक्ति के प्रति मेरी सबसे बड़ी देन यही हो सकती है कि उसे अपनी क्षमताओं को विकसित तथा कार्यरूप में व्यवहृत करने की सुविधाएँ प्राप्त होने लगें।

मैं किसी भी व्यक्ति के वैयक्तिक मामले में उसकी अनुमति के बिना दखल देना नहीं पसन्द करूँगा, किन्तु यदि वह व्यक्ति कोई ऐसा काम करता है, जिससे स्वयं उसकी अथवा अन्य लोगों की हानि हो सकती है तो ऐसी आकस्मिक स्थिति में मैं उसके मामले में दखल दूँगा और उसे रोकना मैं अपना कर्तव्य समझूँगा।

मेरा यह विश्वास है कि किसी व्यक्ति के सबसे बड़े गर्व का विषय तथा समाज के प्रति उसकी सबसे बड़ी देन यही हो सकती है कि वह व्यक्ति मेरे अथवा अन्य किसी के व्यक्तित्व से अपने व्यक्तित्व को भिन्न रखे और समाज की भीड़ में अपने व्यक्तित्व को न खोने दे। इसलिए मैं व्यक्तित्व की भिन्नताओं को स्वीकार करूँगा और उनके रहते हुए भी उपयोगितापूर्ण सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करूँगा।

मैं किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में अपना मत तबतक नहीं निर्धारित करूँगा, जबतक ईमानदारी के साथ प्रयत्न करके उसे—केवल उसके मुँह से निकले शब्दों के आधार पर नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व की समग्रता, उसकी बाह्य परिस्थितियों तथा उन परिस्थितियों के प्रति उसकी दृष्टि के आधार पर, पूरी तरह समझ नहीं लूँगा।

दूसरों को अच्छी तरह समझने के लिए प्रथम आवश्यक शर्त के रूप में मैं निरन्तर अपने को समझने तथा नियन्त्रित रखने का प्रयत्न करूँगा और साथ ही अपने दृष्टिकोण और पूर्वाग्रहों को भी अनुशासित रखूँगा, जिनके कारण दूसरों के साथ मेरे सम्बन्धों के बिगड़ने की आशंका हो सकती है।"[७]

सहायक ग्रन्थ-सूची

पुस्तक, पुस्तिकाएँ

हर्बर्ट एच० आप्टेकर—बेसिक कान्सेप्ट्स इन सोशल केस वर्क—चैपेल हिल, यूनिवर्सिटी आफ नार्थ कैरोलिना प्रेस, १९४१।

ब्रैडले ब्यूयल तथा उनके अन्य सहयोगी—कम्यूनिटी प्लैनिंग फार् ह्यूमन सर्विसेज—न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५२।

अनीता जे० फाट्स—दि नेचर आफ च्वायस इन केस वर्क प्रासेस—चैपेलहिहल, यूनिवर्सिटी ऑफ नार्थ कैरोलिना प्रेस, १९५३।

७. लिंटन वी० स्वीफ्ट—दि फेमिली, जिल्द २७, मई १९४६, पृष्ठ ११७–११८।

एनी एफ० फेन्लेशन—एसेंशिएल इन इण्टरव्यूइंग—न्यूयार्क, हार्पर एण्ड ब्रदर्स, १९५२ ।

एम० राबर्ट गोम्बर्ग और फ्रैन्सेज टी० लेविन्सन—डायग्नासिस एण्ड प्रासेस इन फेमिली फाउन्सेलिंग; इवाल्विंग कान्सेप्ट्स थ्रू प्रैक्टिस—न्यूयार्क, फेमिली सर्विस असोशियेशन आफ अमेरिका, १९५१ ।

गार्डेन हैमिल्टन—थियरी एण्ड प्रैक्टिस आफ सोशल केस वर्क—न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, संशोधित संस्करण, १९५१ ।

फ्लारेन्स हालिस—वीमेन इन मैरिटल कान्फिलक्ट; ए केस वर्क स्टडी—न्यूयार्क, फेमिली सर्विस असोशियेशन आफ अमेरिका, १९४९ ।

हावर्ड हस—ईस्टविक, यू० एस० ए—न्यूयार्क, इ० पी० डटन एण्ड कम्पनी, १९४८

इरेने एम० जोशेलिन—दि एडोलेसेन्ट एण्ड हिज वर्ल्ड—न्यूयार्क, फेमिली सर्विस असोशियेशन आफ अमेरिका, १९५२ ।

कोरा कैसियस (सम्पादन)—प्रिंस्पुल्स एण्ड टेकनीक्स इन सोशल केस वर्क; सेलेक्टेड आर्टिकिल्स, १९४०–१९५०—न्यूयार्क, फेमिली सर्विस असोशियेशन ऑफ अमेरिका, १९५० ।

अर्ल लोमन कूस—फेमिलीज इन ट्रबुल—न्यूयार्क, किंग्स क्राउन प्रेस, १९४६ ।

एमिली हार्टशोर्न मड—दि प्रैक्टिस ऑफ मैरेज कौन्सेलिंग—न्यूयार्क, असोशियेशन प्रेस, १९५१ ।

वर्जिनिया पी० राविन्सन—ए चेन्जिग सायकालोजी इन सोशल केस वर्क—चैपेल हिल, यूनिवर्सिटी ऑफ नार्थ कैरोलिना प्रेस, १९३० ।

—स्कोप एण्ड मेथड्स ऑफ दि फेमिली सर्विस एजेन्सी—न्यूयार्क, फेमिली सर्विस असोशियेशन ऑफ अमेरिका, १९५३ ।

जे० सी० टैफ्ट (सम्पादन)—काउन्सेलिंग एण्ड प्रोटेक्टिव सर्विस ऐज फेमिली केस वर्क—फिलाडेल्फिया, पेन्सिलवेनिया स्कूल आफ सोशल वर्क, १९४६ ।

—फेमिली केस वर्क एण्ड काउन्सेलिंग; ए फन्क्शनल अप्रोच—फिलाडेल्फिया, यूनिवर्सिटी आफ पेन्सिलवेनिया प्रेस, १९४८ ।

—ए फन्क्शनल एप्रोच टु फेमिली केस वर्क—फिलाडेल्फिया, यूनिवर्सिटी आफ पेन्सिलवेनिया प्रेस, १९४४ ।

महत्त्वपूर्ण लेख

एम० राबर्ट गोम्बर्ग—"दि रिस्पान्सिबिलिटीज एण्ड कान्ट्रीब्यूशन्स ऑफ सोशल वर्क इन स्ट्रेन्थेनिंग फेमिली लाइफ"—सोशल केस वर्क, जिल्द ३४, अक्टूबर १९५३, पृष्ठ ३३०–३३५ ।

—"ट्रेन्ड्स टुवर्ड्स फेमिली ओरियेन्टेड ट्रीटमेण्ट इन सोशल केस वर्क"—ज्यूइश सोशल सर्विस क्वार्टर्ली, जिल्द ३०, वसन्त १९५४, पृष्ठ–२५५–२६३ ।

जीलेटी हैन्फोर्ड—"दि प्लेस आफ दि फेमिली एजेन्सी इन मैरिटल कौन्सेलिंग"—सोशल केस वर्क, जिल्द ३४, जून १९५३, पृ० २४७–२५८ ।

इरेने एम० जोशेलिन—"दि फेमिली ऐज ए साइकोलाजिकल यूनिट"—सोशल केस वर्क, जिल्द ३४, अक्टूबर १९५३, पृ० ३३६–३४३ ।

सैम्युअल एच० लर्नर—"एफेक्ट्स ऑफ डिजर्सन ऑन फेमिली लाईफ"—सोशल केस वर्क, जिल्द ३५, जनवरी १९५४, पृ० ३–८ ।

मार्गरेट हेड—"ह्वाट इज हैपेनिंग टु दि अमेरिकन फेमिली ?"—प्रोसीडिंग्स ऑफ दि नेशनल कान्फ्रेन्स आफ सोशल वर्क, न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४७, पृ० ६१–७४; तथा जर्नल आफ सोशल केस वर्क जिल्द २८, नवम्बर १९४७, पृ० ३२३–३३० ।

फ्रेडेरिका न्यूमान—"ऐडमिनिस्ट्रेटिव एण्ड कम्युनिटी इमलीकेशन्स आफ फ्री चेन्जिंग"—सोशल केस वर्क, जिल्द ३३, जुलाई १९५०, पृ० २७१–२७७ ।

फ्रान्सेज एच० सेर्स—"ह्वाट्स फेमिली जेनेरेटेड केस वर्क ?"—सोशल केस वर्क, जिल्द ३४, अक्टूबर १९५३, पृ० ३४३–४५९ ।

रूथ स्माले—"दि सिग्नीफिकेन्स आफ दि फेमिली फार दि डेबलपमेण्ट आफ परसनालिटी"—दि सोशल सर्विस रिव्यू, जिल्द २४, मार्च १९५०, पृ० ५९–६६ ।

जे० सी० टैफ्ट—"ए कान्सेप्शन आफ दि ग्रोथ प्रासेस अण्डर लाइन सोशल केस वर्क प्रैक्टिस"—सोसल केस वर्क, जिल्द ३१, अक्टूबर १९५०, पृ० ३११–३१८ ।

ग्लैडिस इ० टाउनसेण्ड—"शार्ट टर्म कान्टैक्ट विथ क्लायन्ट्स अण्डर स्ट्रेस"—सोसल केस वर्क, जिल्द ३४, नवम्बर १९५३, पृ० ३९२–३९८ ।

बोल्टन-परिवार

प्रस्तुत कर्ता—

एडिथ मिट्राकसैक,
वैयक्तिक सेवाकार्य-निरीक्षक,
पारिवारिक समाज, डिलावेयर, विलमिंग्टन ।

अमेरिका में आज भी परिवार एक इकाई माना जाता है, जिसमें हम पलते, विकसित होते और रहते हैं। जब इस पारिवारिक इकाई के सन्तुलन में कुछ व्यतिक्रम उत्पन्न होता है, जिससे उसके सदस्यों को भावनात्मक संतोष और सुरक्षा नहीं मिल पाती तो उस स्थिति में परिवार अथवा व्यक्ति प्रायः बाहरी सहायता की खोज में प्रवृत्त होते हैं। इसके लिए समुदाय द्वारा ऐसे अभिकरणों की स्थापना की गयी है, जिनका काम पारिवारिक एकता को पुनः सुदृढ़ करने में परिवार की सहायता करना है। विलमिंग्टन (डिलावेयर) का पारिवारिक समाज जिसकी स्थापना १९वीं शताब्दी के ९वें दशक में हुई थी, ऐसे ही अभिकरणों में से है, जिसका उद्देश्य यहाँ के समुदाय की पारिवारिक समस्याओं का सामना करना है। अभिकरण की नियमावली में उसके कर्त्तव्य-कार्य का निर्देश इस प्रकार किया गया है, "इस संस्था का कार्य ऐसे व्यक्तियों की सहायता करना होगा जो अपने पारिवारिक जीवन में व्यतिक्रम उत्पन्न करने वाली किसी समस्या से परेशान हों। यह अभिकरण जातीय, सामाजिक, धार्मिक या अन्य किसी वैयक्तिक भेद-भाव से दूर हटकर सभी व्यक्तियों या परिवारों की समान रूप से सहायता करेगा। यहाँ परामर्श, आर्थिक सहायता तथा अन्य उपयुक्त अभिकरणों में सेवार्थी को भेजने से सम्बन्धित सेवा-कार्य किया जाता है। कोई भी सेवार्थी जो यह सोचता है कि इस अभिकरण की सेवाओं से उसे तात्कालिक अथवा महत्त्व का लाभ हो सकता है, इस संस्था की सेवाएँ प्राप्त करने का हकदार है। इस संस्था द्वारा वैयक्तिक समाज-सेवा की पद्धति से सेवा-कार्य किया जाता है, जो कार्यकर्ता और सेवार्थी के बीच स्वेच्छा-सम्बन्ध, प्रक्रिया और समय तथा विषय के सम्बन्ध में दोनों द्वारा स्वीकृत समझौते पर आधारित होती है।"

आगे बोल्टन-परिवार की समस्या का विवरण दिया जा रहा है। यह एक ऐसी समस्या है, जो किसी भी पारिवारिक अभिकरण के पास प्रायः लायी जाती है और जिसमें वैयक्तिक सेवा-कार्य द्वारा सहायता पहुँचाकर आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की जाती है। श्रीमती बोल्टन को यहाँ की कानूनी सहायता-समिति ने हमारे पास भेजा था। यह समिति

इस समुदाय की ऐसी संस्था है, जो ऐसे लोगों को निःशुल्क कानूनी सलाह देती है, जो उसके लिए धन खर्च करने में असमर्थ हैं। श्रीमती बोल्टन ने यह प्रार्थना की कि वह अपनी पारिवारिक स्थिति के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के लिए किसी वैयक्तिक सेवा-कार्य-कर्ता से मिलना चाहती हैं। उसे सात मई को मिलने के लिए बुलाया गया। आवेदन-साक्षात्कार के समय श्रीमती बोल्टन को अपनी समस्या का स्वरूप कार्यकर्ता के सम्मुख उपस्थित करने का अवसर मिला। उन दोनों ने मिलकर इस सम्बन्ध में विचार किया कि इस अभिकरण के कार्यकर्ता द्वारा जो सहायता दी जायगी, वह उनके और उसके बच्चों के लिए संतोषजनक व्यवस्था उत्पन्न करने में सहायक होगी या नहीं।

सहायता-कार्य की प्रक्रिया में प्रार्थना-पत्र पहला महत्त्वपूर्ण कदम है। अभिकरण की नियमावली में इसका उद्देश्य यह बताया गया है, "सेवार्थी को इसके द्वारा यह अवसर दिया जाता है कि वह अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में कार्यकर्ता के साथ विचार-विमर्श करे और यह बताये कि उसे किस प्रकार की सहायता की आवश्यकता है। वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता का यह उत्तरदायित्व है कि वह सेवार्थी को अपनी समस्या का स्पष्टीकरण करने में मदद दे और यह समझाये कि अभिकरण उसे किस प्रकार की सहायता दे सकता है। सेवार्थी और वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता दोनों मिलकर इस बात पर अच्छी तरह विचार करते हैं और अन्त में इस सम्बन्ध में कोई निर्णय करते हैं कि अभिकरण की सेवाएँ सेवार्थी के लिए रचनात्मक लाभ की सिद्ध होंगी या नहीं। यदि दोनों इस विषय पर एकमत हो जाते हैं कि अभिकरण उस सेवार्थी की आवश्यकता के अनुरूप सहायता कर सकता है और सेवार्थी की आवश्यकताएँ उससे पूरी हो जायँगी तो सेवा-कार्य का नियमित क्रम प्रारम्भ हो जाता है।"

इस आवेदन-साक्षात्कार के समय श्रीमती बोल्टन ने कार्यकर्ता को बताया कि बोल्टन के साथ उसका विवाह करीब २० वर्ष पूर्व हुआ था। उनके दो लड़के हुए, आर्थर जिसकी अवस्था इस समय १६ वर्ष की है और माइकेल जो आठ वर्ष का है। बोल्टन १२ वर्षों तक डाक विभाग में नौकरी करता रहा और उसमें एक कुशल मिस्त्री के गुणों के अतिरिक्त अन्य कोई कौशल ज्ञान नहीं था। वह अपनी पत्नी तथा पुत्र, आर्थर, को मारने और शारीरिक क्षति की धमकी देने के अपराध में गिरफ्तार किया गया था। वह बहुत शराब पीता था और अपने परिवार के पालन-पोषण में दिनों दिन लापरवाह होता जा रहा था। फलस्वरूप परिवार में प्रायः झगड़े होने लगे। एक दिन झगड़े के समय आर्थर पुलिस को बुला लाया और पुलिस बोल्टन को गिरफ्तार कर ले गयी। न्यायालय ने उसे जनपदीय श्रमगृह में दस दिन रखे जाने का दण्ड दिया। क्योंकि मुकदमे की सुनवाई के समय वह जज के साथ भी झगड़ बैठा था। श्रीमती बोल्टन ने तलाक देने का निश्चय किया और

वह इसी सिलसिले में अभिकरण के पास आयी थीं कि उनके और उनके बच्चों के लिए अलग रहने की व्यवस्था करने में अभिकरण उसकी सहायता करे।

साक्षात्कार के समय श्रीमती बोल्टन ने वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता को यह भी बताया कि दो वर्ष पहले एक बार और वह अपने पति से अलग हो गयी थीं, किन्तु पति के माफी माँगने पर वह फिर उसके पास लौट गयी थीं। कार्यकर्ता द्वारा सम्बन्ध-विच्छेद-सम्बन्धी इन दोनों अवसरों के बारे में पूछ-ताछ किये जाने पर श्रीमती बोल्टन ने बताया कि इस बार वह अपना विचार नहीं बदलेंगी और उसने अपना वह पुराना घर भी छोड़ दिया है, क्योंकि उसका किराया बहुत अधिक था। अपने दोनों बच्चों को उसने अपने माँ-बाप के पास भेज दिया था, वह स्वयं भी तब तक उन्हीं के साथ रहना चाहती थीं, जब तक कि वह कोई नयी व्यवस्था न कर ले।

वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता के अध्ययन के अनुसार श्रीमती बोल्टन एक ३९ वर्षीया विनम्र महिला थीं। वह पिछले कुछ सप्ताहों की घटनाओं के कारण अव्यवस्थित और किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गयी थीं। उनके परिवार पर ऋण का भारी बोझ था और अपने तथा बच्चों के भरण-पोषण के लिए उनके पास कोई साधन नहीं था। इसलिए यह अभिकरण से आर्थिक सहायता चाहती थीं। विवाह के इतने दिनों बाद और दो लड़कों की माँ होते हुए भी मुलाकात के समय वह एक खोयी हुई भयभीत बच्ची-जैसी मालूम पड़ रही थीं। उन्होंने बताया कि वह अपने घर के सभी सजावट के सामानों को कहीं रखवाने की व्यवस्था करना चाहती हैं और यह योजना बनाने में कि अपने पति के बगैर वह किस प्रकार अपने जीवन की व्यवस्था करें, वह अभिकरण की सहायता चाहती हैं। उनका आवेदन-पत्र स्वीकृत कर लिया गया है।

श्रीमती डीन को जो एक अनुभवी कार्यकर्त्री हैं और अभिकरण में तीन वर्ष से काम कर रही हैं, श्रीमती बोल्टन का मामला देखने का काम सौंपा गया। अभिकरण ने श्रीमती बोल्टन और उसके बच्चों को भोजन-सम्बन्धी भत्ते के रूप में सहायता स्वीकार किया, क्योंकि श्रीमती बोल्टन के वृद्ध माँ-बाप उनका भरण-पोषण करने में असमर्थ थे। जैसा अभिकरण के कार्यों के विवरण में देखा जा चुका है, सेवार्थी के सेवा-कार्य की प्रक्रिया के सम्बन्ध में कुल जितना धन व्यय होता है, उसका एक अंश सेवार्थी की सीमित आर्थिक सहायता के रूप में दिया जाता है—ताकि जब तक कोई परिवार या व्यक्ति वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता के साथ मिलकर भविष्य में जीवन-निर्वाह-सम्बन्धी कोई योजना बनाता है, तब तक उपर्युक्त सहायता से उसका जीवन-यापन हो सके। श्रीमती डीन ने श्रीमती बोल्टन के साथ पहली मुलाकात की योजना बनायी। मुलाकात के लिए निश्चित समय के पूर्व ही श्रीमती बोल्टन ने अपने सामानों के रखवाने का प्रयत्न कर लिया था और अपने भविष्य

के सम्बन्ध में योजना बनाना भी शुरू कर दिया था। जैसा पहले कहा जा चुका है श्री और श्रीमती बोल्टन पर कर्ज का बोझ था। उन्होंने कुछ नया फर्नीचर खरीदा था, जिसका पूरा मूल्य नहीं चुकाया गया था। जब श्रीमती बोल्टन, श्रीमती डीन से मिलने के लिए पहली बार गयीं उस समय वह इसी परेशानी में थीं कि फर्नीचर का शेष मूल्य कैसे चुकाया जाय। बातचीत के सिलसिले में वह अपने पति से अलग होने पर उतना ध्यान नहीं दे रही थीं जितना इस बात पर जोर दे रही थीं कि फर्नीचर को कैसे हटाया जाय और उसका शेष मूल्य कैसे चुकाया जाय। वह अपनी बहुत सारी समस्याएँ लेकर साक्षात्कार के लिए उपस्थित हुई थीं और साक्षात्कार के समय हुई बातों से यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि पति से सम्बन्ध विच्छेद-सम्बन्धी घटना ने उन्हें विचलित कर दिया है। श्रीमती डीन ने साक्षात्कार का विवरण इस प्रकार दिया है—

"५।१८—श्रीमती बोल्टन निर्धारित समय से कुछ मिनट पश्चात् पहुँची, जिसके लिए उन्होंने क्षमा माँगी। वह चिन्तित और घबड़ायी हुई दिखलाई पड़ रही थीं। जब मैंने इसके बारे में पूछा तो वह तुरन्त बड़े विस्तार से बताने लगीं कि पिछले सप्ताह उनकी माँ, श्रीमती रैलस्टन की नाक से बहुत खून गिरा और इस समय वह अस्पताल में है। उन्होंने बड़े व्यौरे के साथ यह बताया कि उन्होंने अपनी माँ के लिए क्या-क्या किया है। इसपर मैंने यह कहा कि आपके ऊपर और विपत्तियाँ तो थीं ही, यह एक नयी विपत्ति भी आ पड़ी, जिससे आपकी चिन्ता और घबड़ाहट का बढ़ जाना स्वाभाविक है। श्रीमती बोल्टन ने तत्काल उत्तर देते हुए कहा कि निश्चय ही यह एक विचलित कर देनेवाली घटना है और सम्बन्ध-विच्छेद तथा घर बदलने की परेशानी के ऊपर यह एक नयी और सबसे बड़ी परेशानी उपस्थित हो गयी है। उनका अनुमान था कि उनकी माँ कम-से-कम चार दिन और अस्पताल में रहेंगी और उस समय तक सम्भवतः चिकित्सा के कारण उनका रक्तचाप कम हो जायगा। फिर बहुत जल्दी-जल्दी उन्होंने यह बताया कि उनके पिता का कहना है कि उनकी माँ को सम्भवतः अत्यधिक स्नायविक उत्तेजना के कारण यह बीमारी हुई है। उन्होंने इसका यह अर्थ निकाला कि उनके पिता के मत से उनकी माँ की स्नायविक उत्तेजना का कारण स्वयं उनकी समस्या है और पति के साथ उनके सम्बन्ध-विच्छेद तथा माँ के पास उनके चले आने के कारण ही माँ को यह बीमारी हुई है। इस पर मैंने यह टिप्पणी की कि शायद इस बात के कारण भी तुम अधिक चिन्तित हो। यह सुनकर कुछ घबड़ायी हुई आवाज में उन्होंने अपने को ही दोष देना प्रारम्भ किया और कहने लगीं कि मुझे माँ के घर जाने के सिवा अन्य कोई रास्ता ही नहीं दिखलाई पड़ा। मैंने यह अनुभव किया कि सचमुच वह बहुत अधिक परेशानी में हैं और वर्तमान परिस्थिति में कभी भी सुखी नहीं रह सकती हैं।

इसके बाद श्रीमती बोल्टन ने मुझसे यह यह बताया कि उनके पति पिछले बृहस्पतिवार को श्रम-गृह से मुक्त हो गये और जब वह अपने घर पहुँचे तो वहाँ और बच्चों को न पाकर घबड़ा गये, वह कह नहीं सकतीं कि उनके पति फिर डाकवाहक के काम में लग गये हैं या नहीं। किन्तु उनका ख्याल है कि अपने बच्चों के भरण-पोषण के लिए उन्हें कोई कदम उठाना पड़ेगा, इसके लिए वह न्यायालय में जाने के सम्बन्ध में कानूनी सलाह लेने की बात सोच रही हैं। इस बात को श्रीमती बोल्टन ने अनिच्छापूर्वक और कम विश्वास के साथ बताया था। जब मैंने आश्चर्य प्रगट करते हुए उनसे पूछा कि क्या आपको पति को छोड़ने का दुःख नहीं हो रहा है तो उन्होंने उत्तर दिया कि वह ऐसा हर्गिज नहीं करतीं, यदि उन्हें इस बात की कुछ भी आशा होती कि उनका पति ठीक ढंग से रहने लगेगा। उन्होंने आगे बताया कि वह और उनके लड़के इस तरह की परेशानियों में फिर नहीं पड़ना चाहते। मैंने यह कहा कि उनका इस प्रकार का निर्णय बहुत ही कठोर है और यद्यपि वह सोचती हैं कि ऐसा होना ही चाहिए फिर भी अन्तिम रूप में ऐसा करना अत्यन्त कठिन होगा। श्रीमती बोल्टन ने दिल से यह बात स्वीकार की, फिर भी उन्होंने कहा कि उनकी माँ के एक पड़ोसी की भी राय है कि उन्हें इस प्रकार का निर्णय कर लेने के लिए गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। दूसरी ओर वह अपने इस निश्चय की प्रतिक्रिया के बारे में भी सोच रही थीं कि शायद उनके माँ-बाप को सम्बन्ध-विच्छेद की इस घटना के कारण दुःख होगा। मैंने उन्हें बताया कि इस प्रकार की स्थिति में हमेशा यही होता है कि सम्बन्धी और मित्र दबाव डालते हैं, इसलिए उन्हें दोनों मतों, अच्छाइयों और बुराइयों, पर विचार करना चाहिए। इस पर श्रीमती बोल्टन ने लम्बी साँस लेकर कहा कि निश्यय ही वह ऐसा करेंगी। फिर इस निश्चय से पीछे हटकर विचार करते हुए उन्होंने कहा कि यदि उनके पति बदल जायँ तो फिर समस्या का समाधान किस रूप में होगा? किन्तु तुरन्त उन्हें याद आ गया कि एक बार पहले भी वह सम्बन्ध-विच्छेद कर चुकी थीं और पति के माफी माँगने पर फिर वापस चली गयी थीं, किन्तु साल भर बाद ही पुराने झगड़े फिर शुरू हो गये थे। मैंने उनसे कहा कि क्या यह अत्यन्त कठिन कार्य नहीं है कि कोई पति क्षमा माँगे और यह वादा करे कि आगे सब बातें ठीक हो जायँगी तब भी पत्नी उनकी उपेक्षा करे। मैंने यह अनुमान किया कि इस बिन्दु पर पहुँच कर मेरी बातों का कुछ प्रभाव उनपर पड़ा है और उनके भीतर यह आशा जागृत हो गयी है कि अभी तो वैवाहिक सम्बन्ध पूरी तरह टूटा नहीं है, हो सकता है श्रमगृह में रहकर उन्हें कुछ शिक्षा मिली हो और उनमें कुछ परिवर्तन हो गया हो। मैंने श्रीमती बोल्टन से पूछा कि क्या सचमुच उनका विश्वास है कि जेल में दस दिनों तक रहने के कारण ही उनमें कोई आश्चर्यजनक परिवर्तन आ जायगा? वह इस सम्बन्ध में कुछ अनुमान न कर सकीं। मैंने अपने मन में सोचा कि इस सम्बन्ध में

कोई भिन्न बात उनकी समझ में कैसे आ सकती है। इसके अलावा यह भी तो हो सकता है कि इन सब मामलों का श्री बोल्टन के ऊपर भी बुरा प्रभाव पड़ा हो और उनके मन में भी कटुता उत्पन्न हो गयी हो। श्रीमती बोल्टन इस बात के लिए तैयार नहीं थीं और उन्होंने बताया कि आगे के लिए योजना बनाना उनके लिए बहुत कठिन साबित हो रहा है। मैंने भी उनसे कहा कि इस तरह की योजना अकेले नहीं बन पाती। उन्होंने यह आशा व्यक्त की कि इस अभिकरण की सहायता से शायद वह अपने जीवन को नये ढंग से चला सकेंगी। उनके चेहरे पर उस समय चमक आ गयी, जबकि उन्होंने यह कहा कि वह पहले नहीं जानती थीं कि यह इतना अच्छा स्थान है, जहाँ कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के साथ मिलकर अपनी सभी समस्याओं पर विचार कर सकता है।"

साक्षात्कार के समय उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त श्रीमती बोल्टन के हृदय में छिपी हुई यह भावना शब्दों में अभिव्यक्त हो गयी कि वस्तुतः वह पति से सम्बन्ध-विच्छेद कर अलग नहीं रहना चाहतीं। जब कार्यकर्त्री की सहायता से श्रीमती बोल्टन ने अपनी इस इच्छा का, अभिकरण को दी गयी अपनी प्रार्थना के सन्दर्भ में, विश्लेषण किया तो उन्हें स्वीकार करना पड़ा कि उनके मन में एक बार अपने पति से मिलकर उनके हृदय की बातें भी जान लेने की इच्छा है। जब कार्यकर्त्री ने उनके सामने यह प्रस्ताव रखा कि यदि श्री बोल्टन अभिकरण की सहायता प्राप्त करने के लिए प्रार्थना-पत्र दें तो अभिकरण उनकी भी सहायता कर सकता है, श्रीमती बोल्टन ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। जब वह अभिकरण में आयी थीं, उस समय इस बात के लिए कृतसंकल्प थीं कि अब वह पति से सम्बन्ध-विच्छेद अवश्य कर लेंगी, क्योंकि वह अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं करते थे और इससे भी अधिक दुःख की बात यह थी कि उसके पति उन्हें और उनके बच्चों को मारने के लिए धमकाते थे। आवेदन-साक्षात्कार के समय यही भावना आद्यन्त प्रमुख थी। यद्यपि किसी वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता को सेवार्थी की इस तरह की बात मान लेनी चाहिए, किन्तु यहाँ यह भी एक विचारणीय प्रश्न था कि श्री बोल्टन और उनकी पत्नी का विवाह हुए बीस वर्ष हो चुके थे। इन परिस्थितियों में श्रीमती बोल्टन बिना गहरे दुःख और संघर्ष के सम्बन्ध-विच्छेद की बात के लिए तैयार नही हो सकतीं। इस साक्षात्कार में श्रीमती बोल्टन की बातों में छिपे इस रहस्य का उद्घाटन हो गया और कार्यकर्त्री ने श्रीमती बोल्टन को यह रहस्य समझा भी दिया कि वस्तुतः दो परस्पर विरोधी भावनाएँ उनके हृदय में वर्तमान हैं और उनके हृदय के एक भाग में अब भी यह आकांक्षा वर्तमान है कि उनका पति के साथ सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होना चाहिए। यद्यपि साक्षात्कार के पहले श्रीमती बोल्टन ने सम्बन्ध-विच्छेद-सम्बन्धी अपने निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए बाहरी तैयारी सब शुरू कर दी थी। किन्तु साक्षात्कार द्वारा यह बात उनके सामने स्पष्ट हो गयी

कि सम्बन्ध-विच्छेद तथा उसके बाद आनेवाली तकलीफों—जो अभी से प्रारम्भ हो गयी हैं– क्या अर्थ होगा ? जब श्रीमती डीन ने उसके हृदय के इस पक्ष का रहस्योद्घाटन किया तो इसके उत्तर में श्रीमती बोल्टन ने बताया कि आवेदनपत्र देते समय पति से सम्बन्ध-विच्छेद कर अलग रहने की प्रार्थना उन्होंने जिन दृढ़ शब्दों में की थी, वस्तुतः उनके हृदय में के भीतर इस विषय की धारणा इतनी नहीं थी। पर इसके विपरीत जाकर यदि इसी बिन्दु पर कोई कार्यकर्ता बह समझने लगे श्री बोल्टन और उनकी पत्नी एक साथ रहने को तैयार हो जायँगी, तो यह उसकी भूल होगी, क्योंकि एक वर्ष पूर्व वे ऐसा करके देख चुके थे, जिसमें उन्हें असफलता ही प्राप्त हुई थी। अतः ऐसी स्थिति में कार्यकर्ता का काम यही हो सकता है कि वह श्रीमती बोल्टन और उनके पति को अपनी वर्तमान परिस्थिति और तज्जन्य कठिनाइयों को स्वयं समझने में अपने ज्ञान और कौशल द्वारा सहायता पहुँचाये ताकि वे स्वयं निर्णय कर सकें कि वे एक साथ रहेंगे या अलग-अलग।

२१ मई को श्रीमती बोल्टन श्रीमती डीन से मिलने आयीं और यह पूछा कि वह अभी उनके पति से मिलीं या नहीं, उन्होंने यह भी बताया कि उनके पति श्री बोल्टन श्रीमती डीन से मिलना चाहते है और एतदर्थ समय निश्चित करने के लिए उत्सुक हैं। उसी दिन श्री बोल्टन श्रीमती डीन से मिलने आये और २५ मई को साक्षात्कार का समय निश्चित किया गया। जब निश्चित समय पर श्री बोल्टन श्रीमती डीन से मिलने आये तो उनकी परेशानी स्पष्ट दिखलाई पड़ रही थी, उन्होंने प्रारम्भ में कम महत्त्वपूर्ण छोटी-छोटी ऊपरी समस्याओं, जैसे अपनी नौकरी इत्यादि के बारे में जिक्र किया। श्रीमती डीन ने पहले तो इन बातों में थोड़ी दिलचस्पी दिखायी, किन्तु अन्त में स्वयं साक्षात्कार के मूल विषय को छेड़ दिया। श्री बोल्टन के साथ साक्षात्कार का विवरण नीचे दिया जा रहा है—

"२५ मई—बोल्टन साक्षात्कार से कुछ मिनट पहले ही आ गये। वह एक क्षीणकाय, अक्खड़ और स्पष्ट रूप-रेखाओं वाले व्यक्ति हैं, जो अपने कन्धों को सीधा और तना हुआ रखते हैं, जिससे यह प्रभाव पड़ता है कि वह समझ-बूझ कर कदम उठा रहे हैं। पहले उन्होंने सीधे मेरी ओर देखकर बातें कीं, पर शीघ्र ही दूसरी ओर देखने लगे, फिर साक्षात्कार के अधिकांश समय में वह अपना पाइप पीते और यह दिखाने का प्रयत्न करते रहे कि वह इस विषय में विशेष दिलचस्पी नहीं रखते। प्रायः वह खिड़की की ओर देखते रहे मानो मेरी ओर देखने से कतरा रहे हों। अपना परिचय देने के बाद उनसे मैंने कहा कि शायद यहाँ आकर आज तुम्हें विशेष प्रसन्नता नहीं हुई है। बोल्टन ने अपने कन्धे ऊँचे किये, मानो इस प्रश्न को हवा में उड़ा दिया। उन्होंने इसका हाँ या ना कोई उत्तर नहीं दिया। पर शीघ्र ही उन्होंने अपनी नौकरी के बारे में बातचीत प्रारम्भ कर दी और इस बात पर चिन्ता प्रगट की कि वह पिछले सप्ताह कई दिनों तक काम पर नहीं गये, इसलिए

पता नहीं पोस्टमास्टर उस पर अभियोग लगायेगा या क्या करेगा। मैंने उनकी बात का समर्थन किया कि सचमुच आज तुम्हारे सामने कई तरह की परेशानियाँ हैं। इस बारे में कुछ और बातचीत करने के बाद बोल्टन ने अपनी बात का निराशा भरे शब्दों में उपसंहार करते हुए कहा कि, "मैं प्रतीक्षा करूँगा और देखूंगा कि वे (पत्नी और बच्चे)) क्या कदम उठाते हैं ?" क्षण भर तक हम दोनों चुप थे। पर अन्त में मैंने कहा, "मैं सोचती हूँ शायद आप आज यहाँ अपने दाम्पत्यजीवन के सम्बन्ध में बातचीत करने आये हैं।" इस पर श्री बोल्टन ने यह बताना शुरू किया कि उनके वैवाहिक जीवन के पिछले बीस वर्ष कितनी अच्छी तरह बीते हैं और उनकी कितनी इच्छा है कि वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रहें। उन्होंने अपनी पत्नी और बड़े पुत्र (आर्थर) से भी इस सम्बन्ध में बातें की थीं और सबने मिलकर यह तय किया था कि मेल-मिलाप हो जाना चाहिए। मैंने उनसे कहा, यह तो ठीक है कि आपकी इच्छा अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रहने और परिवार की एकता बनाये रखने की है, किन्तु मुझे इस बात का पता है कि एक बार पहले भी आप लोगों के बीच झगड़ा हो चुका है और आपके बच्चे, पत्नी और आप अलग रह चुके हैं, श्री बोल्टन ने शीघ्र ही कड़ाई के साथ उत्तर दिया कि अब हमारा परिवार एक साथ रहेगा और कोई भी व्यक्ति इसमें बाधा उत्पन्न नहीं कर सकता। मैंने यह अनुमान लगाया कि श्री बोल्टन के मन में यह सन्देह है कि अभिकरण ही उनके और उनके परिवार के मिलन में बाधा उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रहा है। इसलिए उन्होंने दुबारा यह बात दुहरायी कि कोई भी व्यक्ति इस प्रकार की बाधा डालने में सफल नहीं हो सकता। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि श्री बोल्टन की यह धारणा हो गयी थी कि बहुत-से लोग उनके मामले में दखल दे रहे हैं और इसके कारण वह परेशान और क्रुद्ध भी हो सकते हैं। मैंने यह बात जब उनसे कही तो वह बहुत कटुतापूर्ण ढंग से हँसे और यह मानने से उन्होंने इन्कार किया कि उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि उनके और उनके परिवार के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा इसका उन्हें स्वयं अच्छी तरह ज्ञान है। मैंने भी इस बात को स्वीकार किया कि वस्तुतः वह और उनकी पत्नी ही मिलकर यह तै कर सकते हैं कि उनका अगला कदम क्या होगा और इस सम्बन्ध में उनके लिए, यह सलाह देना कि क्या उचित है और क्या अनुचित, मेरी धृष्टता होगी।

श्री बोल्टन ने जल्दी-जल्दी अपनी गिरफ्तारी के पहले की घटनाओं का इस तरह वर्णन किया मानों वे बहुत साधारण बातें हों। उन्होंने कुछ विस्तार के साथ बताया—"गिरफ्तार करनेवाले सिपाही और स्वयं मजिस्ट्रेट को यह पता नहीं था कि मुझे क्यों गिरफ्तार किया गया था। मैंने शराब नहीं पी थी। मैं तो केवल अपने घर में कुछ ऊँची आवाज में बातें कर रहा था। उस समय कुछ ऐसी परिस्थिति भी आ गयी थी, जिसमें

ऐसा करना आवश्यक था।" मैंने उनसे कहा कि निश्चय ही उनके लिए यह दुखकर अनुभव रहा होगा। मैंने उनके इस कथन का समर्थन किया कि उनको गिरफ्तार करना न्यायोचित नहीं था, क्योंकि उससे समस्या सुलझने की जगह और ही उलझ जाती। फिर भी मैंने उनको समझाया कि गिरफ्तारी के पहले जो घटना हुई शायद उसके कारण उनका लड़का डर गया था और इसीलिए उसने पुलिस को बुलाया। श्री बोल्टन कुछ क्षण तक रुक कर सोचते रहे, पर फिर उन विचारों को न व्यक्त करके यह विवरण बताने लगे कि श्रमगृह कितनी भयानक जगह है। मैंने उनसे कहा कि जरूर ऐसा ही होगा। इस पर उनका आत्मरक्षात्मक स्वर थोड़ी देर के लिए रुक गया और उन्होंने करुणा भरे स्वर में कहा कि अपने परिवार में वे पहले व्यक्ति थे, जिनको श्रमगृह में सजा भुगतनी पड़ी है। मैंने उनकी बातों का समर्थन करते हुए कहा कि निश्चय ही यह उनके लिए असहनीय रहा होगा और यह आशा प्रगट की कि वह सम्भवतः इस तरह की परेशानी में दुबारा पड़ना हर्गिज़ नहीं पसन्द करेंगे। इस पर उनका स्वर पहले-जैसा फिर आत्मरक्षात्मक हो गया और उन्होंने दृढ़ स्वर में कहा 'हर्गिज नहीं।'

साक्षात्कार के बीच श्री बोल्टान से और जो बातें हुईं, उनसे बोल्टन की इस इच्छा का पता चला कि वह अपने परिवार के साथ मिलकर रहने के लिए विचार करने को तैयार हैं। अन्त में उन्होंने स्वीकार किया कि वे चाहते हैं कि अभिकरण उनके परिवार की सहायता करे। इस पर मुझे यह बताने का अवसर मिला कि अभिकरण उनकी तथा उनकी पत्नी की, यदि वे आपस में मेल करने को तैयार हों, हर तरह सहायता करेगा। मैंने यह प्रस्ताव रखा कि वे दोनों एक साथ मुझसे मिलें। इस बात को श्री बोल्टन ने दुःख भरे स्वर में स्वीकार किया। हम दोनों ने यह निश्चय किया कि इस सम्बन्ध में पहले मैं उनकी पत्नी से मिलकर बातचीत कर लूँ। दोनों से एक साथ १६ जून के आसपास साक्षात्कार का समय रखने का निश्चय किया गया। क्योंकि उस तारीख के पहले मुझे फुर्सत नहीं थी, मुझे एक सप्ताह के लिए शहर से बाहर जाना था। साक्षात्कार के बाद जब बोल्टन वापस जा रहे थे उस समय वह काफी शान्त हो चुके थे।"

वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता को अनिवार्यतया दो पक्षों के झगड़े में तटस्थ तृतीय व्यक्ति होना चाहिए। श्रीबोल्टन और उनकी पत्नी दोनों यद्यपि अभिकरण में आये, पर कार्यकर्त्री के सम्बन्ध में उनके विचार उसी तरह एक-जैसे नहीं हैं, जैसे अन्य किसी भी मामले में। श्रीमती डीन अच्छी तरह जानती थीं कि श्री बोल्टन की उसके सम्बन्ध में यह धारणा है कि वह उसकी इच्छाओं की पूर्ति में बाधक हो रही है। पर वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता के सामने कोई विधेयात्मक लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने के साधन होते हैं, जिनके सहारे वह आगे बढ़ता है। इसलिए श्री बोल्टन के मामले को देखने वाले किसी भी कार्यकर्ता के लिए यह आवश्यक

है कि वह उनकी भावनाओं के दोनों विरोधी पक्षों को पहचाने और उनकी घबड़ाहट और भय की अवस्था में उनका साथ दे। साथ ही उसका यह भी कर्तव्य है कि यदि उस मामले में सम्बन्ध-विच्छेद करने या साथ रहने से सम्बन्धित कोई भी निर्णय लेने में श्रीमती बोल्टन की भी आवश्यकता हो तो वह उससे अवश्य सहायता प्राप्त करे, किन्तु उनके साथ भी ऐसा ही व्यवहार करे, जैसा श्री बोल्टन के साथ किया था। यद्यपि बोल्टन का मामला सहायतार्थ स्वीकार कर लिया गया था और २५ जून के करीब एक मास पूर्व ही उसके सम्बन्ध में कार्यवाही प्रारम्भ हो गयी थी, पर इस सेवा-कार्य का वास्तविक प्रारम्भ उसी दिन हुआ जबकि श्री बोल्टन अभिकरण में साक्षात्कार के लिए पहले पहल आये। क्योंकि उस समस्या का सम्बन्ध केवल श्रीमती बोल्टन से ही नहीं, स्वयं श्री बोल्टन से भी था, अतः उनसे मिले बिना मूल समस्या पकड़ में नहीं आ सकती थी। इस साक्षात्कार में श्री बोल्टन ने सम्बन्ध-विच्छेद के बाद की कटुताओं का वर्णन किया और साथ ही अपने हृदय का यह भाव भी व्यक्त किया कि उनके मन में कार्यकर्ता से खतरे की आशंका है। उनके साक्षात्कार का पूरा निष्कर्ष यह था कि "सारा संसार उनके विरुद्ध है" और इस तरह कार्यकर्त्री भी उनके लिए उनके विरोधी के समान ही थी। फिर भी श्रीमती डीन ने श्री बोल्टन के इस निषेधात्मक भाव को उसी रूप में स्वीकार करते हुए भी सहायता का कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने श्री बोल्टन के मन में यह भाव उत्पन्न करने में सहयोग किया कि अपने व्यवहारों के परिणाम का उत्तरदायित्व उन्हें स्वयं भी किसी-न-किसी सीमा तक वहन करना चाहिए, तब कोई सवाल ही नहीं पैदा होगा। इस तरह सोचने का परिणाम यह हुआ कि साक्षात्कार के अन्त में श्री बोल्टन इस बात के लिए काफी हद तक तैयार हो गये कि अभिकरण उनके जीवन के मामलों के सम्बन्ध में सहायता कार्य के रूप में दखल दे सकता है। इस साक्षात्कार द्वारा श्रीमती डीन के सामने श्री बोल्टन का विवृत चित्र तथा उनके व्यवहार के स्वरूप का एक प्रारम्भिक ढाँचा उपस्थित हो गया। श्री बोल्टन की जीवन के प्रति दृष्टि का आभास इसी बात से मिलता था कि कोई बात कहने के साथ वह मुट्ठी बाँधकर उसे हवा में उछालते थे और एक नाटे लड़ाकू मुर्गे-जैसी चेष्टा करते थे। फिर भी श्रीमती डीन ने यह अच्छी तरह समझ लिया कि वह भीतर से एक ऐसा भयभीत और घबड़ाया हुआ व्यक्ति था, जो अपने जीवन और अपने परिवार से सम्बन्धित सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु को धीरे-धीरे खो रहा हो। किसी कार्यकर्ता के सामने जब कोई इस प्रकार का सेवार्थी आ जाता है तो उसे यह समझाने में कि अभिकरण उसका विरोधी नहीं है और पूरे परिवार का विधेयात्मक लक्ष्य क्या है, बहुत कुछ समझने और स्वीकार करने की आवश्यकता होती है।

अतः श्रीमती डीन को यह एक उपयुक्त अवसर प्रतीत हुआ जबकि श्री बोल्टन और उनकी पत्नी के संयुक्त साक्षात्कार के लिए समय निर्धारित किया जा सकता था। ऐसा

साक्षात्कार, जिसमें वे पति-पत्नी दोनों सम्मिलित हों, प्रतीक रूप में उनकी इच्छा का प्रतिनिधित्व करेगा और उन्हें ऐसी स्थिति में पहुँचा देगा कि उस परिवार के सभी सदस्य अपने को तथा एक दूसरे को अच्छी तरह समझ सकेंगे या समझने का प्रयत्न करेंगे, संतोष-पूर्ण वैवाहिक जीवन का मूल आधार यही है। श्रीमती बोल्टन का साक्षात्कार ४ जून को हुआ। उसके प्रतिवेदन का एक अंश यहाँ दिया जा रहा है—

"४ जून—श्रीमती बोल्टन निर्धारित समय से कुछ मिनट बाद पहुँची। मेरे दफ्तर में जब वह आकर बैठीं तो मैंने देखा कि उनका चेहरा लाल हो गया था और वह लम्बी साँस ले रही थीं। मैंने उनसे कहा कि शायद यहाँ समय से पहुँचने के लिए उन्हें बहुत जल्दी-जल्दी आना पड़ा है, अतः उन्हें थोड़ा आराम करना चाहिए। उन्होंने देर से आने के लिए दुःख प्रगट किया और कहा कि बसों के समय का कोई ठिकाना नहीं रहता। वह बात शुरु करने में कुछ हिचकिचा रही थीं। मैंने बात शुरू करते हुए कहा कि उन्हें शायद पता होगा कि मैं उनके पति से मिल चुकी हूँ। उन्होंने स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिलाया और कहा कि उनके पति ने उनसे फोन पर बातचीत की थी, पर उनसे उनकी मुलाकात नहीं हुई। मैंने आश्चर्य प्रगट किया कि उन्हें इस बात का पता नहीं है कि उनके पति ने उनमें समझौता करा देने के लिए अभिकरण की सहायता लेना स्वीकार कर लिया है। इस पर उन्होंने कुछ विस्तार से यह बताना शुरू किया कि वह भी चाहती हैं कि परिवार एक साथ रहे, किन्तु साथ ही उन्होंने पति के साथ अपने सम्बन्ध को लेकर चलने वाले अपने मानसिक द्वन्द्व को भी अभिव्यक्त किया। उनके मनमें जो प्रश्न उठ रहा था, मैंने उसकी वास्तविकता को स्वीकार किया। उन्होंने बताया कि अपने पुत्र आर्थर से भी इस सम्बन्ध में उन्होंने बातें की हैं और और वर्तमान स्थिति से वह सन्तुष्ट नहीं हैं, यद्यपि वह चाहता है कि उसका पिता उनके साथ रहे, पर उसे भय है कि पुराने झगड़े फिर न प्रारम्भ हो जायँ। मैंने उनको उनके मन की बात बतायी कि वह अपने पति और पुत्र की इच्छाओं के द्वन्द्व-युद्ध में फँस गयी हैं और इसी कारण यह निश्चय नहीं कर पा रही हैं कि उन्हें वस्तुतः क्या करना चाहिए। श्रीमती बोल्टन की परेशानी बनी रही और उन्होंने यह बताया कि यह बात सही है। उनका कहना था कि उन्हें उन कठिनाइयों पर विचार करना ही चाहिए जो इन झगड़ों के कारण उनके बच्चों को उठानी पड़ी हैं और यदि एक साथ रहने पर वे झगड़े फिर पैदा हुए तो यह बच्चों के हित में उचित नहीं होगा। मैंने उनसे कहा कि उनका यह सोचना ठीक ही है कि यदि उन्हें फिर से एक साथ रहना है तो उनके नवीन जीवन के आधार में परिवर्तन होना चाहिए। उत्तर में उन्होंने कहा 'हाँ अवश्य'। फिर उन्होंने अपनी पुरानी परेशानियों की चर्चा प्रारम्भ की जिनमें से अधिकांश उनकी माँ द्वारा इस मामले में लगातार दखल दिये जाने से सम्बन्धित थीं। उन्होंने इसके कई उदाहरण प्रस्तुत किये। मैंने उनसे कहा कि

इन बातों से कोई लाभ नहीं होगा। और यदि माँ का यही रवैया है तो जब वे (पति-पत्नी) एक साथ रहने लगेंगे, तब भी वह क्या ऐसा ही नहीं करेंगी ? श्रीमती बोल्टन कुछ दुखी दिखलाई पड़ीं और स्वीकार किया कि सम्भवतः वह तब भी ऐसा ही करेंगी। हम दोनों इस सम्बन्ध में एक मत थे कि उनकी चिन्ताएँ साधार थीं, जैसे यह कि इस समय में वे (पति-पत्नी) दोनों दुबारा अलग हो गये हैं और वह अपने माँ-बाप के पास रह रही हैं, उनके ऊपर कर्ज का बोझ है और इस बात की कोई सम्भावना नहीं दिखालाई पड़ती की कर्ज चुकाने के लिए वे कुछ अधिक कमा सकेंगे। इसके बाद श्रीमती बोल्टन फिर अपने पतिकी निन्दा करने लगीं। उन्होंने कहा कि यदि उनके पति ने चाहा होता तो उनके परिवार की कुछ और ही हालत होती। मैंने उनकी समस्याओं को समेटते हुए कहा कि बहुत-सी ऐसी बातें है, जिन पर उन दोनों को मिलकर विचार करना होगा और इस तरह इन समस्याओं के समाधान की कोई भिन्न और नयी पद्धति निकालनी होगी; यदि समझौता करना है तो इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं है। श्रीमती बोल्टन ने हृदय से इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। उन्होंने अन्त में यह कहा--"यह बहुत ही अच्छा है कि हम दोनों (पति-पत्नी) अगली बार आपसे एक साथ मिलेंगे। शायद अगले हफ्ते आप वाहर रहेंगी। इसलिए अगली १६ तारीख को मिलने का समय रखना ठीक ही है। मेरे पति मुझसे फिर मिलने आयेंगे और तब मैं उन्हें साक्षात्कार के निश्चित समय की याद दिला दूंगी।"

१६ जून को श्रीबोल्टन अपनी पत्नी के साथ साक्षात्कार के लिए निश्चित समय पर आये। साक्षात्कार का अभिलेख नीचे दिया जा रहा है--

"१६ जून--श्रीमती बोल्टन और उनका पति ठीक समय पर साक्षात्कार के लिए पहुँच गये। श्री बोल्टन का अपनी पत्नी के प्रति व्यवहार ध्यान देने योग्य और मजेदार था। वह उनसे सटकर बैठे थे और रह-रहकर उनके हाथ पर थपकी देते थे, मानो वह मुझे दिखलाना चाहते थे कि वे अब एक हो गये हैं और आवश्यकता पड़ने पर वे मेरे विरुद्ध जाकर भी वे एक ही बने रहेंगे। किन्तु श्रीमती बोल्टन उनके इस प्रकार के व्यवहारों के प्रति सचेत नहीं थीं। वह चुपचाप इसी बात पर प्रसन्न हुई-सी बैठी थीं कि वे यहाँ एक साथ आये हैं।

श्री बोल्टन ने अपनी बात "सारी दुनिया मेरे विरुद्ध है" वाले लहजे में शुरू की। उन्होंने कहा, "इस झगड़े का नतीजा यह हुआ है कि मेरी नौकरी चली गयी" मैंने उनसे कहा कि कि मुझे इस बात का बड़ा दुःख है, फिर मजाक करते हुए कहा कि कहीं वह इसके लिए भी तो मुझको उत्तरदायी नहीं समझ रहे हैं। यह सुनकर वह जरा अचम्भित हुए और तुरन्त बोले कि नहीं, उनका यह अभिप्राय बिलकुल नहीं था। इसके बाद उन्होंने क्रोध भरे स्वर में न्यायालय तथा डाकखाने में अपने प्रति किये गये अन्याय का वर्णन करना

शुरू किया। मैंने दुःख प्रगट करते हुए कहा कि एक गलती के लिए इतना बड़ा दण्ड देना तो सचमुच अन्याय है, श्री बोल्टन यह सुनकर कुछ बेचैन हो गये, पर उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया कि कानून की नजर में यही दण्ड उचित था। मैंने भी उनकी बात में इतना और जोड़ा कि हाँ इसमें कोई आश्चर्य की बात तो थी नहीं। इसका उन्होंने सीधा उत्तर नहीं दिया, किन्तु फिर यह बताने लगे कि वस्तुतः नौकरी छूट जाने की उन्हें कोई चिन्ता नहीं है, क्योंकि उन्हें बहुत-सी नौकरियाँ मिल सकती हैं। मैंने यह सुनकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की और उनसे पूछा कि क्या डाकखाने की नौकरी से निकाले जाने के कारण किसी दूसरी नौकरी मिलने में बाधा होगी ? उन्होंने बताया कि जब उन्होंने सुना कि वे निकाले जानेवाले हैं तो निकाले जाने की आज्ञा के एक दिन पहले ही वे अपना त्यागपत्र भेज दिये थे। अब उसके अभिलेख में उनका त्यागपत्र ही लिखा जायगा, निष्कासन नहीं। जब मैंने उनसे पूछा कि क्या इस घटना से उनके मनमें सन्तोष है तो उन्होंने केवल अपना कंधा हिलाया, कोई उत्तर नहीं दिया। अब श्रीमती बोल्टन भी बातचीत में शामिल हो गयीं और वातावरण को हल्का बनाते हुए उन्होंने कहा कि अभिलेख का बहुत महत्त्व होता है, इस लिए त्यागपत्र देना ठीक ही हुआ है।

अब श्री बोल्टन ने कुछ अधिक ठोस विषय पर बातचीत शुरू की। उन्होंने बताया कि इन तमाम बातों का एक अच्छा नतीजा यह निकलेगा कि उनकी कार्यावकाश-निधि अभी मिल जायगी जो करीब २००० डालर की है और उन्होंने कार्यावकाश लाभ के लिए आवेदन पत्र दे दिया है। मैंने उनसे कहा कि यदि ऐसा है, तब तो बड़े अच्छे मौके पर आपको रुपया मिल रहा है। इस पर दोनों ने सहमत होते हुए कहा कि इससे उन्हें अपनी आर्थिक स्थिति दृढ़ करने का अवसर हाथ लगेगा और अब वे एक कम किरायेवाला छोटा मकान लेकर रहेंगे।

मैंने उनकी भावी योजना के सम्बन्ध में बातचीत शुरु की। पति-पत्नी दोनों इस विषय में एकमत थे कि पहले अपना कर्ज चुकायेंगे और मकान बदलकर किसी छोटे मकान में चले जायेंगे। फिर श्री बोल्टन ने नयी नौकरी ढूँढ़ने तथा नये मकान का प्रश्न उठाया। उन्हें आशा थी कि इन दोनों मामलों में उनके सामने कोई कठिनाई नहीं आयेगी। जब मैंने उनसे पूछा कि क्या इन बातों के ब्यौरे में जाने की आवश्यकता नहीं है, जैसे नये मकान का किराया, घर बदलने में सामान ढोने का खर्च आदि, तो बोल्टन ने यह विचार व्यक्त किया कि जब उन्हें कार्यावकाश-निधि मिल जायगी तब वह इन सब विषयों पर बातचीत करेंगे। फिर मेरी ओर देखते हुए मानो वह मेरी प्रतिक्रिया जानना चाहते हों, उन्होंने कहा कि डाकखाने से छुट्टी पा लेने के बाद वह अपने परिवार वालों को घुमाने ले जाना चाहते हैं। मैं बहुत जोर से हँसी और बोली "क्या आप सोचते हैं कि मैं आपको ऐसा करने से रोक

दूँगी ?" इस प्रकार कुछ घबड़ाकर उन्होंने मेरा प्रतिवाद किया और कहा कि वस्तुत: आज तक कभी भी वह अपने परिवार के साथ कहीं छुट्टी मनाने नहीं गये थे और अब यह एक अच्छा अवसर आया है, अत: वह उन्हें समुद्र तट पर या अन्य कहीं, जहाँ वे अकेले रह सकें ले जाना चाहते हैं। मैंने कहा कि यह तो बहुत ही अच्छी बात है, बशर्ते कि वे इस यात्रा का अच्छा और आनन्दपूर्ण उपयोग कर सकें। मैंने जब प्रश्न किया कि अभी तो वे अलग-अलग हैं और उनकी योजना का भी कोई ठोस रूप नहीं बन सका है, तो श्रीमती बोल्टन ने मेरी ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखा। फिर भी उन्होंने अपने पति से मतभेद प्रगट करने वाली कोई बात नहीं की। ऐसे ही स्थल आने पर श्री बोल्टन खुशी के मारे उछलते हुए अपनी पत्नी के हाथ पर थपकी देते थे। यद्यपि मुझे श्रीमती बोल्टन की बातों से यह आभास मिला था कि उनके माँ-बाप श्री बोल्टन के साथ उनके समझौते की बात नहीं पसन्द करते। फिर भी उन्होंने बार-बार दबी जबान से यह शिकायत की कि उनके माँ-बाप बराबर यह पूछते रहते हैं कि वह अपने पति के साथ रहने की क्या योजना बना रही हैं। श्री बोल्टन उनके विरुद्ध अधिक थे। पति-पत्नी दोनों इस सम्बन्ध में एकमत थे कि श्रीमती बोल्टन के माँ-बाप में कई ऐसी बातें थीं जो उन्हें पसन्द नहीं थीं। मैंने उनसे पूछा कि यह तो सही है कि वे दोनों श्रीमती बोल्टन के माँ-बाप का इस मामले में अधिक दखल देना पसन्द नहीं करते, पर क्या यह सही नहीं है कि वे वस्तुत: उनकी सहायता करने के लिए ही ऐसा करते हैं श्री बोल्टन ने कहा "जरूर, वे जरूर चाहते हैं कि हम उनके पड़ोस में मकान लेकर रहें।" मैंने उनसे सहमति प्रगट की कि वर्तमान स्थिति में ऐसा करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होगा। मैंने आश्चर्य प्रगट किया कि वे इस मामले को कैसे सुलझायेंगे? वे इस प्रश्न को लेकर अन्तर्द्वन्द्व में फँसे रहे कि श्रीमती बोल्टन के माँ बाप से उनके बात चीत का सम्बन्ध बना रहे अथवा वे उनसे अलग होकर अपने मामले को सुलझावें, वे इस विषय में सहमत थे कि यदि उन्हें अपना मामला सुलझाना है तो इस प्रश्न का निबटारा अवश्य हो जाना चाहिए। हम तीनों ने यह तय किया कि फिलहाल सबसे अच्छा यह होगी कि इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए वे दोनों मुझसे मिलने के लिए अलग-अलग आयें। इसके लिए समय निश्चित कर लिया गया। यह भी निश्चय हुआ कि श्री बोल्टन अपने वेतन के रुपये से अपना खर्च चलायेंगे और उनकी पत्नी और बच्चों का भोजन-भत्ता अभिकरण देगा। अन्त में हम लोगों ने श्री बोल्टन की आर्थिक योजना के सम्बन्ध में भी बातें कीं। जब मैंने श्रीमती बोल्टन के सामने हस्ताक्षर के लिए भत्ते की रसीद रखी तो बोल्टन बेचैन से दिखलाई पड़े। इसके सम्बन्ध में मैंने जब पूछा कि क्या अपनी पत्नी की ओर से वह स्वयं उस रसीद पर हस्ताक्षर करना पसन्द करेंगे, तो उन्होंने हँसकर कहा, "नहीं, बिलकुल ठीक है, मेरा रुपया पैसा भी तो हमेशा इन्हीं के पास रहता है।" अन्त में हम लोगों ने अगले

साक्षात्कार के लिए निश्चित समय के बारे में बातचीत की और अन्त में नमस्कार-प्रणाम के बाद पति-पत्नी चले गये।"

इस वैयक्तिक सेवा के सम्बन्ध में मुख्य बात पूर्णतः प्रकट और सिद्ध हो गयी है। वह यह है कि श्री बोल्टन और उनकी पत्नी दोनों अपने-अपने ढंग से अपने घर को पुनर्व्यवस्थित करने की समस्या को सुलझाने के लिए तैयार हैं और साथ ही वे यह महसूस करते हैं कि यदि उन्हें दुबारा झगड़ों और सम्बन्ध-विच्छेद की स्थिति से बचना है तो उन्हें अपने सम्बन्धों के स्वरूप में भी परिवर्तन करना होगा। यद्यपि उन्हें कुछ आर्थिक सहायता दी जा रही थी, फिर भी वे स्वीकार करते हैं कि इस सहायता से उनके दाम्पत्य-जीवन का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता। अतः इस सम्बन्ध में उठाये जाने वाला हर कदम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है। इस सम्बन्ध में विचारणीय विषयों में से श्री बोल्टन की नौकरी और उनके नये मकान के विषय अधिक महत्त्व के हैं। बोल्टन ने अपनी आदत के अनुसार इस विषय में दम्भपूर्वक कहा था कि वह नौकरी और मकान का प्रबन्ध आसानी के साथ कर लेंगे, किन्तु बाद की मुलाकातों में बोल्टन ने अपने मन की चिन्ता व्यक्त की कि वह नौकरी और मकान के बारे में विशेष कुछ नहीं कर पा रहे हैं। श्रीमती बोल्टन के माँ-बाप के घर की स्थिति तनावपूर्ण थी। छोटे-से घर में बहुत-से लोग भर गये थे और श्री राल्सटन इस बात के लिए बहुत अधीर थे कि श्री बोल्टन शीघ्र कुछ व्यवस्था क्यों नहीं करते। श्री बोल्टन अपने परिवार में भोजन करते थे और मुझे उनकी बातों से पता लगा कि अन्ततः वह भी अपने माँ-बाँप के साथ रहने की बात सोच रहे हैं।

श्री बोल्टन और उनकी पत्नी ने यह चिन्ता व्यक्त की कि वे अपनी कल्पना को यथार्थ रूप नहीं दे पा रहे हैं। ज्यों-ज्यों महीने बीतते गये, उनकी यह चिन्ता बढ़ती गयी और उन्होंने कार्यकर्त्री से पुनः सहायता लेने का निश्चय किया। श्री बोल्टन भी अन्त में अपने श्वसुर के घर अपने बच्चों और पत्नी के साथ रहने लगे। यद्यपि वहाँ कुछ सन्तोष था, पर वे जिस तरह से वहाँ रह रहे थे, उससे असन्तोष भी कम न था। २४ जुलाई को श्री बोल्टन को १५०० डालर कार्यावकाश की निधि मिली। इससे वह बहुत प्रसन्न थे और उन्होंने सोचा कि अब निश्चय ही वे अपनी योजना कार्यान्वित कर सकेंगे। वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्त्री श्रीमती डीन १ अगस्त को एक महीने की छुट्टी पर जा रही थीं, अतः उन्होंने श्री बोल्टन और उनकी पत्नी से इस अवधि के बीच की उनकी योजनाओं के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए मुलाकात की। उस बातचीत में हुई मुलाकात का कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है।

"२१ जुलाई—साक्षात्कार का प्रारम्भ श्री बोल्टन की बातचीत से हुआ। उन्होंने इस बात के लिए चिन्ता और निराशा व्यक्त की कि उन्हें अबतक कोई नौकरी नहीं मिल

सकी। फिर भी उनका उत्साह बना हुआ था और उनका कहना था कि अभी नौकरी के लिए कई सम्भावनाएँ वर्तमान हैं । उन्होंने यह आशा व्यक्त की कि मेरे लौटने के समय तक उनकी स्थिति सुधर गयी रहेगी। श्री बोल्टन और उनकी पत्नी इस विषय में सहमत थे कि कार्यावकाश-निधि का एक भाग वे कर्ज चुकाने में लगा देंगे, ताकि वे नये सिरे से पारिवारिक जीवन प्रारम्भ कर सकें। उनका अनुमान था कि इसमें १००० डालर खर्च हो जायगा। मकान की बात तो अभी दूर की थी, इस लिए शेष निधि में से ही वे अपने जीवन-निर्वाह का खर्च भी चलाना चाहते थे। कोई और साधन उपलब्ध हो जाने पर अभिकरण द्वारा दी जानेवाली आर्थिक सहायता बन्द कर दी जाती है, इसलिए उनको भी अब यह सहायता नहीं मिल सकती। मैंने उन दोनों से यह बताया कि यदि मेरी अनुपस्थिति में उन्हें अभिकरण में किसी से मिलना हो तो वे श्रीमती राबर्टसन से मिल सकते हैं, जो मेरी अनुपस्थिति में उनसे मुलाकात करने के लिए तैयार रहेंगी। उन्होंने यह मंगलकामना की कि मेरी छुट्टी आनन्दपूर्वक बीतेगी। अन्त में हम लोगों ने यह निश्चय किया कि मेरे वापस आने पर १ सितम्बर को वे मुझसे मिलने आयेंगे।"

१ सितम्बर को मिलने के लिए निश्चित समय पर अकेले केवल श्रीमती बोल्टन आयीं वह दुखी और उत्साहहीन थीं। उन्होंने बताया कि उनका कर्जा चुकाया जा चुका है और बचे हुए धन से ही उनका खर्च चल रहा है, किन्तु कर्जा चुकाने के अतिरिक्त उनकी योजना की दिशा में कोई अन्य प्रगति नहीं हुई है। श्रीमती डीन ने शीघ्र ही समझ लिया कि श्री बोल्टन और उनकी पत्नी ने पिछली ३१ जुलाई को अपनी योजना के सम्बन्ध में जो जो आशाएँ व्यक्त की थीं, वे फलीभूत नहीं हो सकीं। श्रीमती बोल्टन ने बताया कि उनके माँ-बाप ने बोल्टन को अपने घर से निकाल दिया, क्योंकि वह फिर शराब पीने लगे थे और अपने परिवार को पुनर्व्यवस्थित करने के लिए अपने उत्तरदायित्व का पालन नहीं कर रहे थे। श्रीमती बोल्टन ने यह शंका प्रगट की कि अब शायद ही वे एक साथ रह सकेंगे। श्रीमती डीन ने श्रीमती बोल्टन से खुलकर अपने हृदय की भावना को व्यक्त करने के लिए कहा और पूछा कि क्या पिछले महीने उनके बाहर चले जाने के कारण उनके (श्रीमती बोल्टन) मन को कुछ दुःख हुआ ? और उन्होंने यह भी कहा कि यदि वह बाहर न गयीं होतीं तो उन लोगों की स्थिति इस तरह बिगड़ी न होती। श्रीमती बोल्टन इस सम्बन्ध में कुछ विशेष बात न कर सकीं। अभी श्रीमती डीन श्रीमती बोल्टन से बात कर ही रही थीं कि अभिकरण के स्वागतकर्ता ने आकर सूचना दी कि श्री बोल्टन भी कार्यालय में आ गये हैं। चूंकि साक्षात्कार के लिए निश्चित समय का घंटा समाप्त हो चला था, इसलिए श्रीमती डीन श्री बोल्टन को अपने पास बुलाकर अधिक समय नहीं दे सकती थीं।

इस कारण वह स्वयं उठकर श्री बोल्टन से मिलने स्वागत-कक्ष में गयीं। वहाँ उन्होंने श्री बोल्टन को प्रसन्न और बिलकुल बदला हुआ पाया। श्रीमती डीन ने श्री बोल्टन को अगले दिन मिलने के लिए बुलाया। दूसरे दिन उनके साथ श्रीबोल्टन का जो साक्षात्कार हुआ उसका एक अंश नीचे दिया जा रहा है—

"२ सितम्बर—बातचीत के सिलसिले में उन्होंने अपने मन की भावनाएँ व्यक्त कीं और बताया कि पत्नी द्वारा घर से निकाल दिये जाने के कारण उन्हें बहुत दुख है। उन्होंने पत्नी के विरुद्ध कई आरोप किये। पहले तो उन्होंने कहा कि वह उन्हें दोष नहीं देते, किन्तु अन्त में अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि वह नहीं जानते कि उनकी पत्नी सचमुच उनके साथ रहना चाहती है या नहीं। मैंने कहा, "सचमुच आपके मन में इस बात का दुख है कि आपकी पत्नी ने आपका पक्ष नहीं लिया।" इसके बाद श्री बोल्टन ने अपने हृदय की सभी निराशा और निरुत्साह से भरी भावनाओं को खुलकर व्यक्त किया और अन्त में यह कहते हुए कि उन्हें भय है कि अब वह अपने परिवार के साथ नहीं रहने पायेंगे, जोर-जोर से रोने लगे। मैंने उनसे कहा कि "शायद आपका ख्याल है कि सभी आपको छोड़ रहे हैं; मैं पिछले महीने बाहर चली गयी थी और अब मैं देखती हूँ कि आपकी पत्नी सचमुच आपको छोड़ने पर आमादा हैं।" मैंने फिर कहा, "इसमें रोने की कोई बात नहीं है, फिर भी शायद विवश होकर आपको ऐसा करना पड़ रहा है।" इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि उनका ख्याल है कि सभी उनपर चोट कर रहे हैं और कोई उन्हें नौकरी देने को तैयार नहीं है। जहाँ-जहाँ से उन्हें नौकरी मिलने की उम्मीद थी, कहीं से उन्हें स्वीकारात्मक उत्तर नहीं मिला है। उनका अनुमान था कि इसका कारण उनके अभिलेख का खराब हो जाना है। और इसी कारण नौकरी के लिए आवेदन पत्र देने के पहले ही उन्हें रूखा जवाब मिल जाता है।

जब मैंने यह महसूस किया कि उनकी मानसिक स्थिति कुछ ऐसी हो गयी है कि मैं जो कुछ कहूँगी वह उसे मान लेंगे तो मैंने उनसे कहा कि यदि वह ऐसा सोचते हैं कि वह बाजी हार चुके हैं, तब तो उन्हें शायद कहीं भी नौकरी नहीं मिल सकेगी। उन्होंने बार-बार मुझसे कहा कि इस बारे में जितना वह जानते हैं, उतना मैं नहीं जानती। मैंने कहा कि हो सकता है कि ऐसा हो, पर यदि वह सचमुच ऐसा सोचते हैं तब तो मैं शायद उनकी कुछ भी सहायता नहीं कर पाऊँगी। मैंने उनसे कहा कि मुझे अब ऐसा प्रतीत हो रहा है कि शायद किसी से नौकरी की बात करने में भी उन्हें लज्जा प्रतीत होती है। यह सुनकर श्री बोल्टन थोड़ी देर तक चुप रहे और मेरी ओर ताकते रहे। और अन्त में फिर बोले कि उनकी वस्तुतः हार्दिक इच्छा है कि वह अपने परिवार के साथ रहें। मैंने कहा कि

यह तो बहुत ही अच्छी बात है। किन्तु मेरे ख्याल से उन्हें इसके लिए अब दूसरे ढंग से सोचना और रहना पड़ेगा। यह सुनकर वह कुछ आगा-पीछा करने लगे और अन्त में इस बिन्दु पर पहुँच कर हमने बातचीत बन्द कर दी कि वस्तुतः वह अपने परिवार के साथ रहना चाहते हैं और इसी के अभाव में वह अपने को पराजित महसूस कर रहे हैं। मैंने उन्हें अगले दिन मिलने के लिए बुलाया और कहा कि मैं उनकी पत्नी से भी मिलूंगी और उनकी राय से समय निश्चित करके उन दोनों से एक साथ मिलूंगी। हम दोनों का यह ख्याल था कि ऐसा होना बहुत आवश्यक था, क्योंकि समस्या लौट कर फिर वहीं चली गयी थी, जहाँ से वह प्रारम्भ हुई थी। श्री बोल्टन ने यह वादा किया कि अगले दिन वह निश्चित समय पर आ जायेंगे और इसके बाद वह तैश के साथ बाहर निकल गये।"

अब श्री बोल्टन बिलकुल पराजित, आहत और उत्साहहीन हो गये थे। उन्हें आशा की एक भी किरण नहीं दिखाई पड़ रही थी। यद्यपि श्रीमती डीन ने यह स्वीकार किया कि श्री बोल्टन में उत्तरदायित्व से पलायन की भावना थी, फिर भी उन्हें चुनौती के रूप में धक्का देकर उत्साह पैदा करने की आवश्यकता थी। इस समय उन्हें झूठा विश्वास दिलाकर उनकी कोई सहायता नहीं की जा सकती थी, क्योंकि श्रीमती डीन के लिए यह जानना मुश्किल था कि श्री बोल्टन अपनी निराशा की मनःस्थिति से बाहर निकलने में किस सीमा तक सफल हो सकेंगे। यह तो तभी सम्भव था, जबकि वह स्वयं अपनी ओर से कुछ भी करने की इच्छा प्रकट करते, चाहे वह स्वयं श्रीमती डीन के विरुद्ध ही क्यों न होते। जब अगली बार श्रीमती बोल्टन और उनके पति एक साथ मुलाकात के लिए आये, बोल्टन शराब पिये हुए थे और विरोध तथा बहस करने की मनःस्थिति में थे। श्रीमती डीन ने उनकी मनःस्थिति को समझ लिया और उनसे बताया कि इस समय जबकि वह कुछ सोचने लायक नहीं हैं, ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय पर बातचीत करना अत्यन्त कठिन होगा। श्री बोल्टन ने निराशा भरे स्वरों में उत्तर दिया कि अब बात करने के लिए रह ही क्या गया है? अब वह बुरी तरह आहत हो चुके हैं। यद्यपि इस साक्षात्कार में अधिकतर इसी इच्छा की अभिव्यक्ति श्रीमती बोल्टन बार-बार करती रहीं कि परिवार की एकता के लिए उन्हें कुछ सोचना चाहिए, पर श्री बोल्टन को मानों ये बातें सुनायी ही नहीं पड़ीं। श्रीमती डीन ने श्री बोल्टन के इस कथन का समर्थन किया कि वह आहत हो चुके हैं। उन्होंने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा कि ऐसी स्थिति में जबकि वह अपने लिए खुद कुछ भी करने को तैयार नहीं हैं, उनके अभिकरण में आने से क्या लाभ हो सकता है? अभिकरण तो उनकी सहायता तभी कर सकता है, जबकि वह अभिकरण की सेवाओं को स्वीकार करने को तैयार हों। ऐसा करने से ही उनके परिवार की परिस्थिति सुधर सकती है। फिर

भी श्रीमती डीन ने महसूस किया कि उन्हें श्री बोल्टन से उस समय मुलाकात करनी चाहिए जबकि वह शराब न पिये हों, ताकि उनसे वह अन्तिम रूप से बात कर सकें। जब उन्होंने यह बात श्री बोल्टन से कही तो श्री बोल्टन ने इसे तुरंत मान लिया और अगली मुलाकात के लिए निश्चित समय को स्वीकार कर लिया। श्रीमती डीन यह जानती थीं कि उन्हें श्री बोल्टन को यह महसूस कराना है कि अभिकरण की सेवाओं का त्याग करने का उत्तर-दायित्व उन्हीं का है, प्रश्न यह था कि वह कुछ भी करने को तैयार होंगे या नहीं। फिर भी इस बात की आवश्यकता थी कि वह अपनी उलझन के कुछ पक्षों को सामने रखकर अपनी वर्तमान अनुभूति से छुटकारा पाने का प्रयत्न करें। किन्तु अगला साक्षात्कार श्री बोल्टन के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि सचमुच यहीं से उनके जीवन में परिवर्तन का प्रारम्भ हुआ। वह १४ सितम्बर को अभिकरण के कार्यालय में आये। आते ही उन्होंने श्रीमती डीन से अपने पिछले व्यवहार के लिए माफी माँगी और पहली बार उन्होंने स्वीकार किया कि उन पर जो कुछ गुजरी है, उसका कुछ उत्तरदायित्व स्वयं उन पर भी है।

फिर भी वह बहुत दुखी थे। उन्होंने कहा कि वह 'जेल के पक्षी' हैं और उन्हें अपने परिवार को बिलकुल छोड़ देना चाहिए। इसके बाद वह फिर यह कहकर रोने लगे कि शायद उनका परिवार उनसे अलग होकर ही अच्छी तरह रह सकता है। जब श्रीमती डीन ने उनसे कहा कि यदि वह ऐसा सोचते हैं तो इसी तरह समस्या का निबटारा क्यों नहीं कर देते। इस पर श्री बोल्टन कहने लगे कि वह अनुमान भी नहीं कर सकते कि अपने परिवार वालों से अलग रहकर वह कैसे जीवन बिता सकेंगे। श्रीमती डीन ने उन्हें इस तरह उसकाया कि उन्होंने पिछली बातों के लिए बहुत अधिक पश्चात्ताप प्रकट किया और उन्हें इसी बात की आवश्यकता भी थी। श्रीमती डीन ने उन्हें इस बात की याद दिलायी कि जब वह अपनी पत्नी के साथ पहले-पहल अभिकरण के कार्यालय में सहायता के लिए आये थे तो उस समय उनकी आशाएँ और उमंगें कैसी थीं? उनके इस विचार पर कि वह एक जेल के पक्षी हैं, श्रीमती डीन ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा कि क्या वह अपने को सामाजिक दृष्टि से बाधित व्यक्ति समझते हैं? इसपर श्री बोल्टन नाराज़ हो गये और फिर झगड़े की मनःस्थिति में आ गये। किन्तु साक्षात्कार के अन्त में उनकी उदासी बहुत कुछ कम हो गयी थी और वह दुबारा यह अनुभव कर रहे थे कि कार्यकर्त्री आज भी उनकी सहायता करने के लिए पहले की तरह तैयार हैं।

अगले चार सप्ताह तक प्रतिसप्ताह नियमित रूप से श्री बोल्टन और उनकी पत्नी से अलग-अलग मुलाकात की जाती रही। श्री बोल्टन ने अपना यह निश्चय व्यक्त किया कि वह अपने परिवार के साथ ही रहना चाहते हैं। उन्होंने नौकरी खोजने के लिए भी काफी प्रयत्न किये। श्रीमती डीन ने हर कदम पर उन्हें प्रोत्साहित किया। यद्यपि इस काल

में भी निराशा और चिन्ता के क्षण आते रहे, किन्तु श्रीमती बोल्टन का कहना था कि अब उनके पति ऐसे क्षणों में भी शराब पीकर अपना "गम गलत" करने का प्रयत्न नहीं करते हैं और निरुत्साहित करने पर भी बढ़-बढ़कर बातें करते हैं। फिर भी श्री बोल्टन और उनकी पत्नी को इस बात का दुःख था कि उन्हें श्रीमती बोल्टन के पिता के घर में रहना पड़ रहा है। किन्तु जब तक श्री बोल्टन को नौकरी नहीं मिल जाती, वे उस घर को छोड़ने से डरते थे। श्रीमती डीन ने परीक्षा लेने की दृष्टि से पूछा कि श्री राल्सटन के घर में रहकर हर क्षण अप्रसन्नतापूर्ण वातारवरण में रहने से क्या यह अच्छा नहीं है कि वे आय-सम्बन्धी इस अनिश्चय की स्थिति में भी कोई दूसरा मकान लेकर अलग रहें। उन दोनों की राय थी कि यह सम्भव नहीं है, क्योंकि उनका रुपया अब समाप्तप्राय हैं, इसलिए इस दिशा में वे बहुत ही सावधानी से और धीरे-धीरे बढ़ना चाहते थे। श्रीमती डीन इस बात को समझ रही थीं, इसलिए श्रीमती बोल्टन और उनके पति अपने लिए जो कुछ भी कर रहे थे, उन्होंने उसको सही मानकर स्वीकार कर लिया।

अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में बोल्टन को नौकरी मिल गयी। यद्यपि इस नौकरी में पहली नौकरी जितना वेतन नहीं था, फिर भी उन्हें आशा थी कि अपनी योग्यता दिखलाने के बाद, उन्हें अपना वेतन बढ़वाने का अवसर मिलेगा। श्री बोल्टन और उनकी पत्नी दोनों बहुत खुश थे। उस समय श्री बोल्टन जब मुलाकात के लिए आये तो उनके भीतर अपनी सफलता पर एक गर्व की अनुभूति थी। यद्यपि उन्होंने उसे व्यक्त नहीं किया। उनके साक्षात्कार का एक अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

"५ अक्टूबर——श्री बोल्टन साक्षात्कार के लिए निश्चित समय पर आये। यद्यपि उसकी चाल मुर्गे-जैसी थी, फिर भी मेरा अभिवादन करते समय एक निश्चिन्तता का भाव उनके चेहरे पर वर्तमान था। उन्होंने मजाक करते हुए कहा कि क्या मैं बाल कटवाने की आवश्यकता समझती हूँ (उनका इशारा अभी हाल में हुई उनकी पत्नी से मेरी एक बातचीत की ओर था, जिसमें उनकी पत्नी ने मुझे बताया था कि उनके पति ने उनका बाल काटा है) मैंने कहा कि नहीं, आज नहीं। फिर मैंने उनसे कहा कि वह तो आज बहुत खुश दिखाई पड़ रहे हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि हाँ, सचमुच आज वह बहुत खुश हैं, क्योंकि उन्हें जान एलिसन कम्पनी में नौकरी मिल गयी है। इस पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए मैंने कहा कि यह सुनकर मुझे बहुत खुशी हुई, क्योंकि अब वह और उनके परिवार के लोग सुखपूर्वक रह सकेंगे। लेकिन वह तुरन्त ही गम्भीर हो गये और बोले कि उनकी चिन्ता नौकरी के विषय में उतनी अधिक नहीं थी। मुझे इस बात का पता था कि एक नये खुलने वाले कारखाने में उन्होंने नौकरी पाने की आशा की थी, जहाँ उन्हें अधिक वेतन मिलता। मैंने उनसे अपना यह सन्देह व्यक्त किया कि सम्भवतः वह कारखाना अगले वर्ष के प्रारम्भ से पहले नहीं चालू होगा। श्री

बोल्टन ने भी इसका समर्थन किया और कहा कि वह तब तक प्रतीक्षा करेंगे और जब कारखाना खुलेगा तब वह फिर निश्चय करेंगे कि उन्हें क्या करना है। उन्होंने यह बताया कि उस कारखाने में नौकरी के लिए उनका साक्षात्कार बहुत सफल रहा और नये वर्ष के प्रारम्भ में कारखाना चालू होने पर उन लोगों ने उन्हें बुलाने का वादा किया है। मैंने इसपर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की, फिर बड़े गम्भीर स्वर में उन्होंने कहा कि उनकी पिछली नौकरी का अभिलेख उक्त साक्षात्कार के समय उनकी सफलता में बाधक नहीं हुआ। मैंने उनसे पूछा कि क्या वह अपनी पुरानी बातों के विषय में अब भिन्न ढंग से सोचते हैं? उन्होंने स्वीकारात्मक उत्तर देते हुए कहा कि अब उन्होंने पुराने तर्कों को छोड़ दिया है। किन्तु शीघ्र ही इस विषय पर लौट आये कि उनके लिए दूसरा मकान बहुत आवश्यक है। फिर हम लोगों ने इस विषय पर कुछ देर तक बातें कीं और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस विषय में उन्हें और उनकी पत्नी को कुछ-न-कुछ अवश्य करना चाहिए। श्री बोल्टन ने अपने बचे हुए रुपयों के बारे में जो समाप्तप्राय थे, चिन्ता प्रगट की। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि यदि वह धन समाप्त हो गया तो अभिकरण उनकी सहायता के सम्बन्ध में विचार कर सकता है। अन्त में हम लोगों ने मिलकर उनके और उनके परिवार की सफलताओं की विवेचना की और इस निर्णय पर पहुँचे कि अब वह समय आ गया है कि हम यह सोचें कि और कितने दिनों तक उन्हे अभिकरण की सहायता चाहिए।"

इस साक्षात्कार में हुई बातों से पता चलता है कि श्री बोल्टन अब अपने उत्तरदायित्व और भावी योजनाओं के प्रति अधिक सचेत हो गये थे। उनमें और उनकी पत्नी में रहने की व्यवस्था-सम्बन्धी कठिनाइयों के बावजूद एक साथ पारिवारिक जीवन व्यतीत करने की बलवती इच्छा बनी रही। जब वे मकान खोजने के प्रयत्न में असफल और निराश हो जाते थे तो इस दुःख की अनुभूति दोनों को समान रूप से होती थी। फिर भी उन्होंने एकदम आशा नहीं छोड़ी। दोनों से एक साथ साक्षात्कार के बाद श्रीमती डीन ने उनसे प्रति-दो सप्ताह बाद मिलने का समय निर्धारित किया, क्योंकि उनका यह ख्याल था कि नवम्बर के मध्यतक सम्भवतः उन्हें अभिकरण की सहायता की जरूरत नहीं पड़ेगी। उन्होंने ने यह बात स्वीकार कर ली।

अगले सप्ताहों में भी वे मकान की तलाश में लगे रहे और अन्त में उन्हें एक मकान में एक कक्ष मिला। उन्हें इसी पर सन्तोष करना पड़ा और नवम्बर के अन्त तक उनके वास्तविक सुख के दिन फिर लौटे। भगवान को धन्यवाद देकर वे उस नये कक्ष में पहुँचे, जो अब उनका अपना घर था। वे अपनी नवीन व्यवस्था और गतिविधि के सम्बन्ध में बतलाने के लिए श्रीमती डीन से मिलने गये। मुलाकात में उन्होंने पुरानी बातें याद कीं कि प्रारम्भ में किस तरह सहायतार्थ वे अभिकरण में आये थे और अभिकरण की सहायता

का उनके जीवन की पुनर्व्यवस्था पर कितना प्रभाव पड़ा श्री बोल्टन ने बताया कि अब उनकी पत्नी उन्हें एक "नयी लड़की" मालूम पड़ती हैं और उनके बच्चे भी अपने नये मकान में पहुँचकर इतने खुश थे कि उन्हें इस बात की चिन्ता भूल-सी गयी थी कि त्यौहार मनाने के लिए उनके पास विशेष कुछ नहीं था। श्रीमती बोल्टन ने श्रीमती डीन से बताया कि जब उन्होंने अपने लड़के आर्थर से पूछा कि वह बड़े दिन के त्यौहार के लिए क्या उपहार चाहता है तो उसने यह प्रार्थना की कि उस परिवार के सब लोग घर में ही रहकर त्यौहार मनावें, यही उसके लिए सर्वोत्तम उपहार होगा।

जैसा पहले कहा जा चुका है, श्री बोल्टन की समस्या एक ऐसी समस्या है, जिसे लेकर प्रायः लोग पारिवारिक अभिकरण के पास आया करते हैं। श्री बोल्टन के परिवार ने जिस तरह कार्यकर्त्री के सहायता-कार्य में अन्त तक योग दिया, सभी सेवार्थी वैसा नहीं कर पाते। कोई सेवार्थी किस सीमा तक अपनी समस्या से सम्बन्धित वैयक्तिक सेवा-कार्य में कार्यकर्ता के साथ सहयोग करता और लाभ उठाता है, इस बात पर निर्भर करता है कि जीवन की जो समस्या उसे परेशान कर रही है, उसका दबाव उस सेवार्थी पर कितना है। यह बात कार्यकर्ता को केवल सेवार्थी ही बता सकता है। किन्तु यदि वह इस सम्बन्ध में अपनी इच्छा को पूरी तरह न भी अभिव्यक्त करे तो भी समझदार कार्यकर्ता समझ लेता है कि वस्तुतः वह व्यक्ति अपनी दुखमय स्थिति से बाहर निकलने की सच्ची आकांक्षा रखता है या नहीं। वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रक्रिया के प्रारम्भ में जब कार्यकर्ता सेवार्थी के सामने यह प्रस्ताव रखता है कि परिस्थिति को नियन्त्रित करने की उसकी इच्छा को पूरा करने में अभिकरण हर प्रकार की सहायता करेगा तो इससे सेवार्थी आश्वस्त होता है और सेवा-कार्य की प्रगति को बल मिलता है। श्री बोल्टन की समस्या का जो उदाहरण यहाँ दिया गया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि श्री बोल्टन और उनकी पत्नी ने इस प्रकार के सहायता-प्रस्ताव की शर्तों के प्रति प्रारम्भ में अपनी कुछ असहमति प्रगट की थी और अपना संघर्ष-भाव भी व्यक्त किया था, किन्तु श्रीमती डीन अपने उद्देश्य के प्रति इतनी ईमानदार थीं कि अन्त में श्री 'बोल्टन परिवार' को उनकी सहायता से अपना अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने में सफलता मिली।

श्रीमती डीन या अन्य कोई भी कार्यकर्ता चाहे कितना भी सद्भावनापूर्ण और समझदार क्यों न हो, पर इतना ही पर्याप्त नहीं है कि उसे सेवार्थी के साथ अपने पेशे के अनुरूप ऐसा सम्बन्ध स्थापित करने का उत्तरदायित्व भी ग्रहण करना चाहिए जिससे सेवार्थी का समर्थन प्राप्त हो ताकि वह अभिकरण की सहायता का लाभ उठा सके। इस उदाहरण में श्रीमती डीन प्रारम्भ में श्रीमती बोल्टन के इस निश्चय का आदर करती हैं कि अब उनके दाम्पत्य-सम्बन्ध का बना रहना सम्भव नहीं है और उन्हें अपने पति से अलग होकर

स्वतन्त्र रूप से अपनी व्यवस्था करनी होगी। किन्तु यह बात जल्दी ही प्रकट हो जाती है कि श्रीमती बोल्टन अपने इस निर्णय से सन्तुष्ट नहीं थीं, क्योंकि वह उनकी आन्तरिक इच्छा पर आधारित नहीं था। जब श्रीमती बोल्टन ने यह इच्छा व्यक्त की तो श्रीमती डीन ने इसका भी आदर किया और यह स्वीकार किया कि उनके जीवन के अधिक उचित पुनस्संगठन के लिए यही स्वाभाविक रास्ता है। यदि किसी का दाम्पत्य-सम्बन्ध असह्य हो उठता है तो इस समस्या का एक उत्तर सम्बन्ध-विच्छेद अवश्य है। किन्तु किसी सेवार्थी के लिए उस परिचित परिस्थिति को जिसमें वह बीस वर्ष तक रह चुका है, छोड़कर एक बिलकुल नयी और अपरिचित परिस्थिति की ओर एकाएक जाना आसान काम नहीं है। इन्हीं प्रश्नों के सम्बन्ध में श्रीमती डीन ने प्रारम्भिक साक्षात्कारों में श्रीमती बोल्टन के साथ विचार-विमर्श और रास्ता ढूँढ़ने का प्रयत्न किया। इसका यह अर्थ नहीं कि कार्यकर्त्री ने ही श्रीमती बोल्टन के लिए एक बना बनाया मार्ग निश्चित कर दिया। इसके विपरीत कार्यकर्त्री श्रीमती डीन ने श्रीमती बोल्टन को अपने मन की बात खुलकर व्यक्त करने में सहायता दी तथा उनके विचारों पर कोई टिप्पणी नहीं की। फलस्वरूप श्रीमती बोल्टन ने अपने मन के संदेहों को पहचाना और उन्हें व्यक्त किया और इस तरह अपने मार्ग का निश्चय स्वयं करने में वह सफल हो सकीं। किन्तु प्रत्येक सेवार्थी इस पद्धति को अपनाकर चलते समय बीच-बीच में उसकी वैधता के सम्बन्ध में प्रश्न भी करता चलता है और कभी-कभी तो वह अपने ही निर्णीत मार्ग का विरोध भी करता है। इस उदाहरण में श्री बोल्टन के व्यवहार से यह कथन प्रमाणित हो जाता है। वह अपने परिवार के साथ रहना चाहते हैं, किन्तु इस इच्छा की पूर्ति के लिए शक्ति-संचय करने की जो शर्तें हैं, उनका सामना करने में वह हिचकिचाने लगते हैं और अपने अतिरिक्त सारी दुनिया को दोषी बताने लगते हैं।

इस तरह वैयक्तिक सेवा-कार्य-प्रक्रिया का दूसरा चरण स्पष्ट हो जाता है। जब सेवार्थी को अपने चारो ओर अपनी ही बनायी हुई दीवारों के बीच घिरा रहने में सुख का अनुभव नहीं होता तो अन्त में वह स्वयं इस नतीजे पर पहुँचता है, और यह एक विश्वास-पूर्ण निष्कर्ष होता है कि वह स्वयं अपने कष्टों के लिए उत्तरदायी है। कार्यकर्ता यह समझने में उसकी सहायता करता है कि यह दोष-स्वीकृति उसकी शक्ति के ह्रास का सूचक नहीं है, यदि वह अपनी वर्तमान स्थिति उत्पन्न करने में भागीदार था तो उसे सुधारने में भी उसी तरह वह भागीदार बन सकता है। सेवार्थी में इस भावना का उत्पन्न होना आवश्यक है, क्योंकि इसके कारण उसके भीतर अपनी उन क्षमताओं के प्रति विश्वास उत्पन्न होता है, जो अबतक सुषुप्तावस्था में थीं और जिन्हें जागृत करके अब वह सक्रिय बना सकता है। किसी भी वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रक्रिया में इस पद्धति द्वारा अनुभूति की इस सर्वाधिक उत्पादक-क्रिया-शक्ति का उदय होता है। इस उदाहरण में भी इसी पद्धति

द्वारा श्री बोल्टन में भी यह विश्वास उत्पन्न हो जाता है कि वह नौकरी पा सकते हैं और अपने परिवार के सफल जीवन-निर्वाह की व्यवस्था कर सकते हैं, और सचमुच आज उनका यह विश्वास फलीभूत हो चुका है। यद्यपि यह एक स्थूल तथा ठोस लाभ है, किन्तु इसकी उपलब्धि सम्भव न होती, यदि श्री बोल्टन और उनकी पत्नी दोनों ही अपनी आन्तरिक चेतना का पुनस्संगठन न करते। अतः श्रीमती डीन का अन्तिम कार्य यह रह जाता है कि वह श्री बोल्टन और उनकी पत्नी की इस बात में सहायता करें कि वे उनकी तथा अभिकरण की सहायता से अपने पारिवारिक जीवन की चिन्ताओं से मुक्ति पाने और और इस तरह अपने जीवन की गतिविधि को परिवर्तित करने में सफलता प्राप्त करने के महत्त्व को समझें और स्वीकार करें। एक प्रकार से यह श्री बोल्टन और उनकी पत्नी के आत्मविश्वास को वापस लौटाने और आत्म-निर्भर होकर जीवन बिताने में अपनी क्षमता का उन्हें अनुभव कराने का कार्य है।

पारिवारिक अभिकरण समुदाय के विभिन्न परिवारों की सेवा इसी प्रकार करता और अपने उत्तरदायित्व को पूरा करते हुए अपने अस्तित्व की सार्थकता को प्रमाणित करता है।

अध्याय ७

स्थानीय कल्याण-विभाग की सेवाएँ

वर्तमान जन-कल्याण-कार्य

१९वीं शताब्दी के तीसरे दशक के अन्तिम तथा चौथे दशक के आरम्भिक वर्षों में इस देश में बड़े वेग से आने वाली व्यापारिक मन्दी, कल्याण-कार्यों के क्षेत्र में संघ-सरकार का प्रवेश, संघ सरकार तथा राज्य सरकारों के बीच सेवा-कार्य विषयक सहयोगपूर्ण सम्बन्ध का विकास, इन सबके सम्मिलित प्रभाव के कारण जन-कल्याणकारी सेवाओं के संघटन और प्रशासन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। जन-कल्याण-विभागों के सामने उस समय संघटन और कार्य-सम्बन्धी अनेक आधारभूत प्रश्न उपस्थित थे, जैसे कि क्या इन नयी प्रारम्भ हुई सेवाओं को पुराने सेवा-कार्यों के ढाँचेके भीतर ही सम्मिलित कर लिया जाय, अथवा उन्हें किसी अन्य संस्था को सुपुर्द कर दिया जाय। यह केवल सिद्धान्त-सम्बन्धी शैक्षणिक प्रश्न नहीं था, क्योंकि जन-कल्याण-कार्यों के प्रति अपनाये गये दृष्टिकोण पर ही वस्तुतः व्यावहारिक संघटन के स्वरूप और सेवा-कार्यों के विषयों का निर्धारण भी निर्भर करता था।

एक अन्य प्रश्न, जो कम महत्त्वपूर्ण नहीं था, यह था कि ये सेवा-कार्य बड़े पैमाने पर किये जायँ या छोटे पैमाने पर। जन-अभिकरणों (सरकारी) का मुख्य और उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ कार्य अब (सरकारी) जनकोश से बहुसंख्यक व्यक्तियों और परिवारों की आर्थिक सहायता करना हो गया। श्रम-सहायता तथा लोक-सहायता-सम्बन्धी संघीय कार्यक्रमों के लागू होने के बाद, सन् १९३९ तक दी जाने वाली आर्थिक सहायता अरबों डालर तक पहुँच गयी। उदाहरणार्थ, सामाजिक सुरक्षा-परिषद् के चतुर्थ वार्षिक (१ जुलाई, १९३८ से ३० जून, १९३९ तक का आर्थिक वर्ष—पृ० २७३) प्रतिवेदन के अनुसार ३ अरब ७५ करोड़ डालर की अतिरिक्त धनराशि सहायता के रूप में वितरित की गयी। जिन लोगों को वह सहायता प्राप्त हुई, उनकी संख्या का अभिलेख देखने से यह बात और भी स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाती है कि यह सेवा-कार्य कितने बड़े पैमाने पर किया जा रहा था। सामाजिक सुरक्षा-परिषद् के उपर्युक्त चतुर्थ वार्षिक प्रतिवेदन (पृष्ठ २८०) के

अनुसार सन् १९३९ के केवल जून मास में राजकीय सहायता, सामान्य आर्थिक सहायता और श्रम-सहायता प्राप्त करने वालों की संख्या ८० लाख से अधिक थी।

३०जून, सन् १९४३ को श्रम-परियोजना-प्रशासन (वर्क प्रोजेक्ट्स एडमिनिस्ट्रेशन) समाप्त कर दिया गया। युद्ध-सामग्री के उत्पादन में वृद्धि हो जाने के कारण बेकारी कम हो गयी थी। उस समय सरकारी सेवा-कार्य निम्न लिखित रूप में किये जा रहे थे—

१. परम्परागत संस्थागत सेवाएँ और सामान्य सहायता-कार्य।

२. सरकारी सहायता (वृद्धों, अन्धों और आश्रित बच्चों की आर्थिक सहायता तथा बच्चों के लिए किये जाने वाले अन्य विशेषीकृत सेवा-कार्य) और, ३. सामाजिक बीमा (वृद्धावस्था-बीमा, उत्तराधिकारी-बीमा और बेकारी-बीमा । उन पर होने वाले व्यय और उनसे लाभ उठाने वाले व्यक्तियों की संख्या, दोनों ही दृष्टियों से ये सेवाएँ बहुत बड़े पैमाने पर की जा रही थीं।

संघीय जन-कल्याण-विभाग

संघीय आकस्मिक सहायता-कानून (फेरा, फेडरल इमरजेन्सी रिलीफ-ऐक्ट) और सामाजिक सुरक्षा-कानून बनने के एक दशक पूर्व ही इस बात के लिए प्रयत्न प्रारम्भ हो गये थे कि संघ-सरकार जन-कल्याण-विभाग का निर्माण करे। सन १९२१ में जन-कल्याण-विभाग स्थापित करने के सम्बन्ध में धारासभा (सीनेट) में एक विधेयक उपस्थित किया गया था, किन्तु वह स्वीकृत नहीं हो सका। सन् १९३७ में राष्ट्रपति की प्रशासन-प्रबन्ध-समिति ने सामाजिक कल्याण-विभाग स्थापित करने की संस्तुति की। कांग्रेस के सदस्यों ने इस सम्बन्ध में विधेयक तैयार किये, किन्तु उनका कोई परिणाम नहीं निकला। दो वर्ष बाद, १ जुलाई, सन् १९३९ को राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने एक अधिशासी आज्ञा जारी कर संघीय सुरक्षा-अभिकरण की स्थापना की, जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा और कल्याण-कार्य से सम्बन्धित सभी संघीय अभिकरणों को सम्मिलित कर दिया गया। समन्वयन और एकी-करण की दिशा में कुछ और आगे बढ़ा हुआ कदम राष्ट्रपति ट्रूमन का था, जब कि १६जुलाई, सन् १९४६ को उन्होंने अन्य बहुत सेवाओं को भी संघीय सुरक्षा-अभिकरण में सम्मिलित कर देने का आदेश जारी किया। उस अवसर पर राष्ट्रपति ट्रूमन ने कहा था—"मोटे तौर पर, संघीय सुरक्षा-अभिकरण का मूल उद्देश्य राष्ट्र की मानव-शक्ति और मानवीय साधनों का विकास और संरक्षण करना है।" संघीय सुरक्षा-अभिकरण के कार्यों का स्वरूप और क्षेत्र इतना व्यापक और महत्त्वपूर्ण था कि एक स्वतंत्र विभाग के रूप में उसकी मान्यता और राष्ट्रपति के मंत्रिमण्डल में उसके लिए स्थायी मंत्री की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। अपने कर्मचारियों की संख्या और व्यय किये जाने वाले धन-राशि की

दृष्टि से यह अभिकरण अन्य कई विभागों से आगे बढ़ा हुआ था। इसके कार्यों में सबसे महत्त्वपूर्ण और आधारभूत शिक्षा, स्वास्थ्य, जनकल्याण और सामाजिक बीमा से सम्बन्धित कार्य हैं, अतः देश के भविष्य-निर्माण की दृष्टि से इस बात की सबसे अधिक आवश्यकता थी कि इन क्षेत्रों को उच्चस्तरीय प्रशासकीय नेतृत्व कायम हो और केन्द्रीय कार्यकारी समिति में उनका भी प्रतिनिधित्व हो। सन् १९५३ के अप्रैल मास में राष्ट्रपति आइसन-हावर ने संघीय सुरक्षा-अभिकरण को मंत्रिमण्डल के अन्तर्गत एक स्वतंत्र विभाग के रूप में स्थान दिया और अब उसका नाम स्वास्थ्य, शिक्षा और जन-कल्याण विभाग हो गया।

स्थानीय और राज्य सरकारों के जन-कल्याण-विभागों की तरह संघ-सरकार का जन-कल्याण-विभाग भी अपने कार्य-क्षेत्र की सीमा में आने वाले लोगों के लिए ही सहायता-कार्य करता है। उदाहरण के लिए, कोलम्बिया जिला-जनकल्याण-विभाग संघीय कांग्रेस द्वारा स्वीकृत अनुदान से जनता की उसी प्रकार सहायता करता है, जैसे अन्य कोई भी स्थानीय जनपद कल्याण-विभाग करता है। स्वास्थ्य, शिक्षा और जनकल्याण-विभाग के सामाजिक सुरक्षा-प्रशासन के साथ प्रशासकीय सम्बन्ध बहुत कुछ उसी तरह के हैं, जैसे किसी राज के जन-कल्याण-विभाग के सम्बन्ध संघीय संघटन के साथ होते हैं।

कुछ अन्य कल्याणकारी सेवाएँ ऐसी हैं, जो सीधे संघ-सरकार द्वारा परिचालित होती है, जैसे—संघीय कानून तोड़ने वाले अपराधियों से सम्बन्धित सेवा-कार्य, जो संघीय जेलों में अथवा संघीय परिवीक्षण और प्रतिज्ञाबद्ध कारावकाश-अधिकारियों द्वारा किये जाते हैं। सेवामुक्त सैनिक-प्रशासन अपने सैनिक अस्पतालों में स्थित सामाजिक सेवा-विभागों तथा क्षेत्रीय कार्यालयों के माध्यम से सेवा-कार्य करता है। संघीय सरकार के गृह-विभाग के अन्तर्गत कार्य करनेवाली आदिवासी इण्डियन-सहायता परिषद् संघ-सरकार के कार्य-क्षेत्र की सीमा में आने वाले आदिवासी इण्डियनों की सहायता का कार्य करती है, यद्यपि वे इण्डियन जहाँ के निवासी होते हैं, उन जनपदों और राज्यों से भी वे राजकीय आर्थिक सहायता प्राप्त करने के हकदार होते हैं।[१]

१. यद्यपि वृद्धावस्था बीमा और उत्तराधिकारी-बीमा के कार्यक्रम अनिवार्यतः सेवा-निवृत्ति से सम्बन्धित हैं, फिर भी उनका उल्लेख यहाँ आवश्यक है, क्योंकि उनमें उत्तराधिकारियों की सहायता की जो व्यवस्था की गयी है उसका कल्याण-कार्यों से पर्याप्त सम्बन्ध है। बहुत-से ऐसे हिताधिकारी, जैसे विधवाएँ और बच्चे तथा कभी-कभी सेवानिवृत्त कर्मचारी भी विवश होकर सरकारी आर्थिक सहायता के लिए प्रार्थना करते हैं, क्योंकि उन्हें मिलनेवाली वृत्ति पर्याप्त नहीं होती। उदाहरण के लिए, फरवरी सन् १९५३ में ४ लाख २५ हजार व्यक्तियों को वृद्धावस्था अथवा

संघ सरकार के प्रशासन और नियंत्रण में सीधे जो कल्याण-कार्य होते हैं, उनके अतिरिक्त अप्रत्यक्ष रूप में उसका एक आवश्यक उत्तरदायित्व परामर्श और अधीक्षण-सम्बन्धी कार्य करने का भी है। 'कांग्रेस' के कई कानूनों द्वारा यह व्यवस्था की गयी है कि संघ-सरकार कुछ शर्तों के साथ राज्यों को विशेष अनुदान देगी और सम्बन्धित संघीय अभिकरण राज्य सरकारों के साथ सम्पर्क स्थापित करके इस बात की देख-रेख करते रहेंगे कि राज्य-सरकारें उन शर्तों को पूरा कर रही हैं या नहीं। सामाजिक सुरक्षा-कानून, १९४३ का 'बार्डेन-लॉ फॉलेटी कानून' (व्यावसायिक पुनर्वास) और १९४४ का 'जन-स्वास्थ्य-सेवा-कानून' इन सब में इस प्रकार की व्यवस्था-सम्बन्धी धाराएँ हैं। यह स्मरणीय है कि प्रतिवर्ष संघ सरकार राज्य सरकारों को लोक-सहायता, बाल-कल्याण, माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य और व्यावसायिक पुनर्वास के लिए इस शर्त पर उपयुक्त अनुदान देती है कि जिन राज्य-कानूनों के अन्तर्गत उपर्युक्त सेवाओं की व्यवस्था की जाती है वे संघीय विधान के मेल में हों। स्वास्थ्य, शिक्षा और जनकल्याण-विभाग तथा राज्य-सरकारों के जन-कल्याण-विभागों के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाता और बराबर उन सम्बन्ध-सूत्रों को बनाये रखा जाता है, ताकि इस बात की देख-रेख होती रहे कि वैधानिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है या नहीं। दूसरी महत्त्व की बात यह है कि इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करके ही राज्य-अभिकरणों को आर्थिक सहायता दी जाती है और सामाजिक कल्याण-सम्बन्धी अनुभव और ज्ञान का उपयोगितापूर्ण आदान-प्रदान किया जाता है।

राज्य और जन-कल्याण-कार्य

सन् १९२९ के पूर्व की जनकल्याण-सम्बन्धी प्रशासकीय व्यवस्था अब जन-कल्याण की बेहद बढ़ती हुई समस्याओं को हल करने की दृष्टि से अपर्याप्त प्रतीत होने लगी। अनेक राज्यों में, जहाँ समय-समय पर संघ-सरकार के अधिकारियों के प्रोत्साहन पर अथवा नागरिकों के अनौपचारिक निर्णयों के अनुसार आयोगों और केन्द्रों के माध्यम से कल्याणकारी सेवा-कार्यों की कुछ व्यवस्था होती थी। अब जन-कल्याण-विभागों की

उत्तराधिकारी सहायतावृत्ति के साथ-साथ वृद्धावस्था-सहायता-अनुदान भी प्राप्त हुआ था। संयुक्तराष्ट्र-जनस्वास्थ्य-विभाग द्वारा की जानेवाली सेवाएँ भी यहाँ उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः वे सेवाएँ चिकित्सा-क्षेत्र तक ही सीमित हैं, फिर भी उनके कुछ पक्षों का सम्बन्ध जन-कल्याण से अवश्य है, जैसे—मानसिक चिकित्सा और तत्सम्बन्धी शोध-कार्य के लिए अनुदान। अतः उनके सम्बन्ध में यहाँ विचार करना आवश्यक है।

स्थापना की गयी। सामाजिक सुरक्षा कानून लागू हो जाने के बाद जब कल्याण-कार्य बड़े पैमाने पर किये जाने लगे तो "अस्थायी" और "आकस्मिक" सहायता के कार्यक्रमों की सामयिक उपयोगिता समाप्त हो गयी। कुछ वर्ष पहले से लेकर अबतक अमरीका के सभी ४८ राज्यों और संघीय प्रदेशों में जन-कल्याण-विभागों की स्थापना हो चुकी है। अधिकतर राज्यों में तो इसे जनकल्याण-विभाग ही कहा जाता है, पर कई अन्य राज्यों में इसके अलग-अलग नाम हैं, यद्यपि सब नाम एक ही अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। जैसे—समाज-कल्याण, सामाजिक सुरक्षा, जनसहायता-आयोग आदि। किसी-किसी राज्य में पूर्ववर्ती कल्याण-विभाग के साथ नया विभाग भी खोल दिया गया है। इस तरह पूर्ववर्ती विभाग पहले से चले आते सेवा-कार्यों, मुख्यतः संस्थागत सेवाओं की देख-रेख करता है और नये विभाग द्वारा सरकारी सहायता-कार्यों के कार्यक्रम चलाये जाते हैं। किन्हीं भी दो राज्यों का जन-कल्याण-विभाग सभी कल्याण-कार्यों को समन्वित करने की दृष्टि से एक-जैसा नहीं है। इसका कारण यह है कि विभिन्न राज्य इस विषय में एकमत नहीं हैं कि जन-कल्याण-विभाग में किन-किन सेवाओं को सम्मिलित करना चाहिए। और साथ ही यह भी है कि जन-कल्याण-विभाग की स्थापना के पूर्व ही जो सेवाएँ कुछ अन्य विभागों के सुपुर्द कर दी गयी थीं, उन्हें उन विभागों से छीन लेना उचित नहीं समझा जाता। फिर इसका एक कारण यह विश्वास भी है कि कई सेवाओं को, जो भले ही कल्याणकारी सेवाओं के ढंग की हैं, वस्तुतः कल्याण-विभाग से अलग कर देना चाहिए और उनका प्रशासन स्वतंत्र प्रशासकीय विभाग द्वारा होना चाहिए।

कल्याण-कार्यों को विकेन्द्रित कर चलाने की इस प्रवृत्ति के कई उदाहरण दिये जा सकते हैं, जैसे—कुछ राज्यों में परिवीक्षण और प्रतिज्ञाबद्ध कारावकाश-सम्बन्धी कार्य जन-कल्याण-विभागके अन्तर्गत रखे गये हैं, पर अन्य राज्योंमें उनका एक अलग विभाग ही है। कुछ राज्यों में पंगु बच्चों की सहायता का कार्य स्वास्थ्य-विभाग के अन्तर्गत होता है, पर कई राज्यों में उसे जन-कल्याण-विभाग के अन्तर्गत और कुछ में शिक्षा-विभाग के अन्तर्गत रखा गया है। कुछ राज्यों में एक सुधार-विभाग होता है, जिसके अन्तर्गत जेल आदि सुधार-संस्थाएँ कार्य करती हैं, पर कुछ अन्य राज्यों में वे राज्यसंस्था-विभाग के अधीन तथा शेष राज्यों में जन-कल्याण-विभाग के निर्देशन में कार्य करती हैं। इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि यद्यपि अधिकांश राज्यों में जनकल्याण-सम्बन्धी कार्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है, पर सब में उनका विभागीय बँटवारा समान रूप से नहीं किया गया है।

जनपदों में प्रार्थनापत्र देने वालों को सीधे सहायता पहुँचायी जाती है। अर्थात् प्रार्थी और सरकारी सामाजिक कार्यकर्ता के बीच अन्य कोई संस्था या व्यक्ति नहीं होता। पर

राज्य-सरकारों द्वारा संचालित सेवा-कार्यों के सम्बन्ध में यह बात हर हालत में सही नहीं है। केवल राज्य-सरकारों द्वारा चलाये जाने वाले आर्थिक सहायता-सम्बन्धी कार्यक्रमों में ही उपर्युक्त पद्धति अपनायी जाती है। प्रायः राज्य-सरकार द्वारा जनता की आर्थिक सहायता आदि सेवा-कार्यों का अधीक्षण किया जाता है और इस तरह सरकार स्थानीय प्रशासन-इकाइयों या शाखाओं को सुविधा और सहायता प्रदान करने का कार्य करती है।

मेरियेटा स्टीवेन्सन ने राज्यों के जन-कल्याण विभागों द्वाराकि ये जाने वाले कार्यों का संक्षेप में अच्छा विवरण प्रस्तुत किया है।[२]

उन्होंने उन कार्यों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया है—

१. राजकीय संस्थाओं का प्रशासन और निरीक्षण ।

२. सरकारी आर्थिक सहायता, बाल-कल्याण-कार्य तथा प्रत्यक्ष रूप से की जानेवाली अन्य सेवाएँ ।

३. स्थानीय सरकारी अभिकरणों के विकास और निरीक्षण का कार्य ।

४. स्थानीय गैर-सरकारी संस्थाओं और अभिकरणों का निरीक्षण ।

५. शोध और शिक्षा-सम्बन्धी कार्यक्रम ।

कुमारी स्टीवेन्सन ने इन विषयों का विवेचन इतनी अच्छी तरह कर दिया है कि यहाँ उसे दुहराने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी यह कह देना आवश्यक है कि राज्य-सरकारों द्वारा संचालित जन-कल्याण-कार्य की गाड़ी जिस धुरी पर चलती है, उसका एक सिरा स्थानीय इकाइयाँ और दूसरा सिरा संघीय इकाइयाँ हैं। यही सामाजिक सुरक्षा-कानून के अन्तर्गत गत दो दशकों में किये जाने वाले कल्याण-कार्यों के अनिवार्य और सफलतापूर्ण विकास की संक्षिप्त कहानी है, जिससे तीनों क्षेत्रों के परस्पर सहयोग से भविष्य में कल्याण-कार्यों के अधिकाधिक व्यापक होने की आशा बँधती है।

जनपद और राजकीय जन-कल्याण-कार्य

अमेरिका के कुल ३१८७ जनपदों में से अधिकांश में इस समय सरकारी कल्याण-विभाग की स्थापना हो चुकी है। कुछ राज्यों में यद्यपि जनपद प्रशासन की दृष्टि से राज-नीतिक इकाई माने जाते हैं, पर जनकल्याण-विभाग की दृष्टि से उन्हें कार्य और प्रशासन की इकाई नहीं माना जाता। जन-कल्याण-सम्बन्धी सेवाकार्य जिला, किसी विशेष क्षेत्र,

२. मेरियेटा स्टीवेन्सन—"पब्लिक वेलफेयर एडमिनिस्ट्रेशन"—न्यूयार्क, दी मैकमिलन कम्पनी, १९३८, पृ०—७९–८४; और "ऐन इण्ट्रोडक्शन टू पब्लिक वेलफेयर"—बोस्टन, डी० सी० हीथ ऐण्ड कम्पनी, १९४९, पृ०—२६७-२९५, ३६३–३८२।

नगर या उपनगर के आधार पर जन-कल्याण-विभाग की स्थानीय इकाइयों द्वारा किये जाते हैं या सीधे जन-कल्याण-विभाग के कार्यालय द्वारा संचालित होते हैं। इन विभिन्नताओं के होते हुए भी विश्वास के साथ इतना कहा जा सकता है कि जन-कल्याण के अधिकांश कार्य जनपदीय जन-कल्याण-संघटनों के माध्यम से ही किये जाते हैं।

इन सेवा-कार्यों में से अनेक का प्रारम्भ संघीय आकस्मिक सहायता-कानून के लागू होने के समय ही हो गया था। सामाजिक सुरक्षा-कानून बन जाने के बाद और भी ठोस कार्यक्रमों का विकास हुआ। इनमें से जनता की आर्थिक सहायता आदि कुछ सेवाएँ ऐसी हैं, जो स्थानीय इकाइयों, राज्य और संघ के बीच सम्बन्धसूत्र के रूप में हैं। कुछ अन्य सेवाएँ, जैसे पालन-गृह-सेवा, गोद लेने की व्यवस्था आदि, ऐसी हैं जो स्थानीय इकाइयों और राज्यसरकार के पारस्परिक सम्बन्ध के आधार पर चलती हैं। पर सामान्य सहायता, एकाकी व्यक्तियों की सहायता आदि से सम्बन्धित कुछ सेवाओं की व्यवस्था पूर्णतः स्थानीय इकाइयों द्वारा ही की जाती हैं।

स्थानीय जन-कल्याण-विभागों (जनपदों या जनपद के अन्तर्गत नगरों में स्थित) द्वारा परिचालित सेवाएँ विभिन्न राज्यों या क्षेत्रों में एक दूसरे से बिलकुल भिन्न प्रकार की होती हैं। उदाहरणार्थ, सन् १९३७ में एक लाख से अधिक आबादी वाले नगरों में भेजी गयी प्रश्नसूची के जो उत्तर प्राप्त हुए, उनसे उन सेवाओं के वर्गीकरण के सम्बन्ध में एक आश्चर्यजनक तथ्य का पता चलता है। मेरियेटा स्टीवेन्सन ने सन १९३८ में उसके सम्बन्ध में प्रतिवेदन उपस्थित करते हुए उन सेवाओं के ९ वर्ग बताये थे जो ये हैं—सरकारी आर्थिक सहायता, वयस्कों की सामाजिक तथा अन्य विशेषीकृत सेवा, बाल-कल्याण-सेवाएँ, आज्ञापत्र और नियमन-सम्बन्धी कार्य, संस्थागत कार्यों का उत्तरदायित्व, श्रम-सहायता-कार्य, राजकीय-निर्माण-कार्य से सम्बन्धित सेवाएँ, स्वास्थ्य-सेवा तथा लोक-मनोरंजन, नौकरीपेशा लोगों के प्रशासन आदि से सम्बन्धित अन्य सेवाएँ। इन शीर्षकों के अन्तर्गत रखी गयी सेवाओं की वास्तविक संख्या ५५ थी। निश्चय ही कोई भी स्थानीय कल्याण-विभाग इन सभी सेवाओं की व्यवस्था नहीं करता था। किन्तु इस वर्गीकरण से इस बात का कुछ आभास मिल जाता है कि स्थानीय जनकल्याण-विभागों द्वारा की जाने वाली सेवाओं का प्रसार और वैविध्य कितना है।[3] आज, १५ वर्ष बाद भी इन सेवाओं का सारभूत रूप अब भी वैसा ही है, यदि कुछ परिवर्तन हुआ है तो यही कि उनकी सूची पहले से बड़ी हो गयी है क्योंकि गृह-सहायता-सेवा, वृद्ध-पालन-सहायता आदि कुछ नयी सेवाएँ भी सरकारी कल्याण-कार्य के अन्तर्गत सम्मिलित कर ली गयी हैं।

३. लेखक वही—ग्रन्थ वही—पृष्ठ ९२–९५।

सरकारी जनकल्याण-कार्यों का इतिहास वस्तुतः उन उत्तरोत्तर वर्द्धमान सेवा-कार्यों का इतिहास है, जो समुदाय की आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति तथा सरकार में उनकी पूर्ति के लिए माँग की देन हैं। सरकार द्वारा जनता की समस्याओं के समाधान में योग देने की प्रक्रिया को ही सेवाकार्य का नाम दिया गया है।

सामाजिक सुरक्षा-क़ानून—सरकारी सहायता

तीसरे अध्याय में सन् १९३५ के सामाजिक सुरक्षा-कानून तथा बाद में उसमें किये गये संशोधनों की चर्चा की जा चुकी है। इस कानून के अन्तर्गत आनेवाले सेवा-कार्यों की विषय-सूची भी दी जा चुकी है और उनमें से दो सेवा-कार्यक्रमों—बेकारी-बीमा और वृद्धावस्था तथा उत्तराधिकारी-बीमा के कार्यक्रम—की विवेचना कुछ विस्तार से की जा चुकी है। इस अध्याय में सरकारी आर्थिक सहायता तथा बाल-कल्याण-सम्बन्धी कार्यक्रमों के विस्तृत विवरण के साथ स्थानीय जनपद-कल्याण-विभागों के माध्यम से किये जानेवाले सेवा-कार्यों का भी ब्योरा उपस्थित किया जायगा।

सन् १९३५ के सामाजिक सुरक्षा कानून के अन्तर्गत न केवल वृद्धावस्था तथा उत्तराधिकारी-बीमा और बेकारी-बीमा के कार्यक्रमों द्वारा बिलकुल नया आदर्श उपस्थित किया गया, बल्कि देश के इतिहास में पहली बार राज्यों को इस बात के लिए आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था भी की गयी कि संघ और राज्य-सरकारों की सहकारिता के आधार पर सरकारी सहायता के कार्यक्रम चलाये जा सकें। इन सेवाओं को प्राप्त करने वालों को अन्य सेवार्थियों से भिन्न तीन वर्गों में रखा गया—वृद्ध, अन्धे और आश्रित बच्चे। सन् १९५० में इसमें एक चौथा, स्थायी रूप से और पूर्णतः विकलांग व्यक्तियों का वर्ग और भी सम्मिलित कर लिया गया। अब तक इन वर्गों के अन्तर्गत आनेवाले व्यक्तियों को राज्य द्वारा अथवा स्थानीय समुदायों द्वारा सीधे या संस्थागत रूप में सहायता मिला करती थी, किन्तु देश में बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के अन्तिम और चौथे दशक के प्रारम्भिक वर्षों की मन्दी के समय सहायता-सम्बन्धी एक नयी विचार-धारा का जन्म हुआ। संघीय आकस्मिक सहायता-कानून, नागरिक श्रम-प्रशासन, राष्ट्रीय युवक-प्रशासन, नागरिक संरक्षण-दल और श्रम-परियोजना-प्रशासन, (श्रम-प्रगति-प्रशासन), आदि कानूनों से इस धारणा की पुष्टि हुई कि जो समस्याएँ किसी एक समुदाय के कार्य-क्षेत्र या शक्ति-सीमा के बाहर की हैं, उनको हल करने में संघ-सरकार को प्रवृत्त होना चाहिए। किन्तु साथ ही, स्थानीय समुदायों के सेवा-कार्यों के उत्तरदायित्व की पूर्वपरम्परा, संकट काल में संघ सरकारके नियंत्रण पर अनपेक्षित (यद्यपि आवश्यक) बल, और यह ईमानदारीपूर्ण विश्वास कि स्थानीय समुदायों या संस्थाओं द्वारा किये जानेवाले सेवा-कार्यों के

कुछ अपने विशिष्ट मूल्य होते हैं, जो संघ-संचालित कार्यों में नहीं होते, इन सब बातों का सम्मिलित प्रभाव यह हुआ कि संघ-सरकार पर सेवा-कार्य का भार पूरी तरह दे देने के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया गया। फिर भी इस बातपर किसी को विरोध नहीं था कि सेवाकार्यों के संचालन में संघीय कोश और नेतृत्व का उपयोग करते हुए भी स्थानीय समुदायों और संस्थाओं का आर्थिक अंशदान और प्रशासन-सम्बन्धी अधिकार अवश्य होना चाहिए।

सामाजिक सुरक्षा-कानून के अनुसार पहले राज्य-सरकारें वृद्धों, अन्धों, आश्रित बच्चों और स्थायी रूप से पूर्णतः विकलांग व्यक्तियों की सहायता के सम्बन्ध में कार्य की योजना बनाकर संघीय सामाजिक सुरक्षा-प्रशासन के पास भेजती हैं, यदि वे उक्त प्रशासन को स्वीकार्य होती हैं तो राज्य-सरकारों को उपर्युक्त सहायता-कार्यों के लिए अनुदान दिया जाता है। इस योजना के अन्तर्गत कोई राज्य या जनपद उसी व्यक्ति को सहायता देता है, जो नियमों के अनुसार उसका उपयुक्त अधिकारी होता है और तत्सम्बन्धी शर्तें पूरी करता है। उपर्युक्त चारों कार्यक्रमों में सहायता पाने की सामान्य शर्त यह रखी गयी है कि वह व्यक्ति वस्तुतः जरूरतमन्द हो। सहायता प्राप्त करने की कुछ अन्य शर्तें भी होती हैं, जो प्रार्थना करने वाले की स्थिति, जैसे अवस्था, अन्धापन, माता-पिता की मृत्यु अनुपस्थिति, अक्षमता, या अन्य किसी कारण से बच्चे की अनाथावस्था, विकलांगता (१८ वर्ष से अधिक उम्र वालों की) आदि के अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं।

राज्य-सरकारों द्वारा बनायी योजना में निम्नलिखित बातों की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए—(क) यह योजना राज्य के सभी राजनीतिक प्रखण्डों (जिला, जनपद आदि) में तथा उसके द्वारा प्रशासित भूभागों में अवश्य लागू होनी चाहिए और वहाँ के लोगों के लिए इसे मानना अनिवार्य होना चाहिए। (ख) राज्य भी इन सहायता-कार्यों के व्यय का कुछ भार वहन करेंगे। (ग) प्रत्येक राज्य में योजना के प्रबन्ध के लिए अथवा तत्सम्बन्धी प्रशासन के अधीक्षण के लिए एक राजकीय अभिकरण का होना अनिवार्य है। (घ) यदि किसी व्यक्ति की औचित्यपूर्ण प्रार्थना स्वीकृत नहीं होती है अथवा उसकी पूर्ति में बहुत देर होती है तो राज्य-अभिकरण के सम्मुख शिकायत करने के लिए उसे अवसर दिया जायगा। (ङ) इस योजना का प्रशासन उचित और योग्यतापूर्ण ढंग से होगा अर्थात् कर्मचारिवर्ग की योग्यता के स्तर के आधार पर नियुक्ति और निर्वाह की व्यवस्था की जायगी। (च) योजना का नियमित रूप से और सही-सही प्रतिवेदन उपस्थित किया जायगा। (छ) राज्य-अभिकरण किसी व्यक्ति की आवश्यकता की यथार्थता की जाँच करते समय यह देखेगा कि उसके आय के अन्य साधन क्या हैं? (ज) राजकीय सहायता-कार्यक्रमों के प्रशासन-संबंधी उद्देश्यों की दृष्टि से

सहायता प्राप्त करनेवालों अथवा आवेदकों से सम्बन्धित गोपनीय बातों की गोपनीयता बनाये रखने की पूरी कोशिश की जायगी।[४] (झ) किसी भी व्यक्ति को जो राजकीय सहायता के लिए आवेदनपत्र देना चाहता है, उसके लिए अवसर प्रदान किया जायगा और प्रत्येक सहायता चाहने वाले को, यदि वह सहायता पाने का उचित अधिकारी है तो यथाशीघ्र सहायता देने का प्रयत्न किया जायगा।

राजकीय सहायता-सम्बन्धी चारो कार्यक्रमों के लिए आवश्यक उपर्युक्त सामान्य शर्तों के अतिरिक्त उनमें से प्रत्येक कार्यक्रम के लिए अलग-अलग नियम निर्धारित किये गये हैं। उदाहरण के लिए, आश्रित बच्चों से सम्बन्धित राजकीय सहायता-योजना के लिए निम्नलिखित नियम निश्चित किये गये हैं––(क) यदि कोई ऐसा बच्चा है, जिसके माँ-बाप ने उसका त्याग कर दिया है या उसे छोड़कर वे कहीं चले गये हैं तो उसकी सहायता के लिए कानून की रक्षा करने वाले किसी उपयुक्त अधिकारी को तुरन्त सूचना दी जाय। (ख) यदि आश्रित बच्चा अपने किसी वयस्क रिश्तेदार के यहाँ रहता है तो उसे बच्चे के अतिरिक्त उस वयस्क व्यक्ति को भी आर्थिक सहायता दी जाय।

अन्धों की राजकीय सहायता के संबंध में निम्नलिखित नियम निर्धारित किये गये हैं––(क) राज्य को यह अधिकार होगा कि वह किसी अन्धे की मासिक आय में पचास डालर तक के आय की गिनती न करे। (ख) राज्य-सरकार को यह अधिकार होगा कि वह किसी अन्ध सहायतार्थी की आँखों का किसी आँख के विशेषज्ञ डाक्टर से परीक्षण कराकर यह पता लगाये कि वह व्यक्ति बिलकुल अन्धा है या उसे कुछ-कुछ दिखलाई पड़ता है।

संघ-सरकार के स्वास्थ्य, शिक्षा और कल्याण-विभाग के सचिव किसी राज्य के, निराश्रित बच्चों की सहायता से सम्बन्धित किसी ऐसी योजना को स्वीकार नहीं करेंगे, जिसमें बच्चों के निवास से सम्बन्धित निम्नलिखित नियम मान्य न होंगे––(क) प्रार्थना-

४. सन् १९५१ में सामाजिक सुरक्षा-कानून में किये गये संशोधन के कारण इसमें कुछ परिवर्तन हुआ। ८२ वें कांग्रेस के पब्लिक ला की धारा १८३ के अनुसार राज्यों को यह अनुमति मिल गयी कि वे राजकीय सहायता-कोश की भुगतानों के अभिलेखों को माँग कर उनकी जाँच कर सकते हैं। निरीक्षण का नियम लागू करने के लिए राज्यों को सहायता-कोश के अभिलेखों की जाँच से सम्बन्धित कानून बनाना आवश्यक है। ऐसे कानून में जाँच-सम्बन्धी शर्तों का विधान होना चाहिए, पर साथ ही गोपनीय बातों की गोपनीयता की रक्षा का नियम भी होना चाहिए, ताकि उन सूचनाओं का कोई राजनीतिक या व्यापारिक उद्देश्यों के लिए उपयोग न कर सके।

पत्र देने के समय बच्चे को उस राज्य में रहते एक वर्ष हो गया है और उसका जन्म भी उसी राज्य में हुआ है। (ख) यदि बच्चे की उम्र प्रार्थनापत्र देने के समय एक वर्ष से कम की है तो जिस रिश्तेदार के साथ वह रह रहा है वह उस राज्य में बच्चे के जन्म से कम-से-कम एक वर्ष पहले से रहता है। उसी तरह किसी राज्य के वृद्धों की सहायता से सम्बन्धित योजना उस हालत में अस्वीकृत कर दी जायगी यदि उसमें (क) सहायतार्थी की निम्नतम अवस्था ६५ वर्ष से ऊपर रखी गयी है, अथवा (ख) सहायतार्थी के निवास-स्थान के सम्बन्ध में ऐसी शर्त नहीं रखी गयी है, जिसके अनुसार वह व्यक्ति सहायता पाने का अधिकारी नहीं हो सकता, जो प्रार्थना-पत्र देने के समय से पहले के ९ वर्षों में कम-से-कम ५ वर्षों तक उस राज्य में रह चुका है और उस समय से कम-से-कम एक वर्ष पहले से उस राज्य में लगातार रह रहा है, अथवा (ग) उसमें नागरिकता-सम्बन्धी कोई ऐसी शर्त है, जिसके कारण संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का कोई नागरिक उस योजना से लाभान्वित होने से वंचित रह सकता है।

संघ-सरकार उन व्यक्तियों को आर्थिक सहायता नहीं देती, जो किसी संस्था में रह रहे हैं। किन्तु इस प्रतिबन्ध के अपवाद भी हैं। उदाहरणार्थ, किसी मानसिक चिकित्सालय या क्षय-रोग-अस्पताल से भिन्न अन्य किसी अस्पताल में रहकर चिकित्सा करानेवाला कोई जरूरतमन्द व्यक्ति यदि सहायता के लिए प्रार्थना करता है तो उसे सहायता दी जा सकती है। अभी हाल में सामाजिक सुरक्षा-कानून में एक संशोधन करके यह व्यवस्था की गयी है कि १ जुलाई,सन १९५३ के बाद से यदि कोई राज्य किसी ऐसे रोगी की आर्थिक सहायता करता है, जो क्षयरोग-अस्पताल या मानसिक रोग-चिकित्सालय से भिन्न किसी सामान्य राजकीय या गैरसरकारी अस्पताल में रहकर अपनी चिकित्सा करा रहा है तो राज्य-सरकार का यह भी कर्तव्य है कि वह ऐसे अस्पताल में चिकित्सा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए राजकीय अधिकारियों की भी नियुक्ति करे। १ अक्तूबर, सन् १९५० को सामाजिक सुरक्षा-कानून में जो परिवर्तन हुआ और जो राजकीय सहायता के चारो वर्गों—आश्रित बच्चों की सहायता, अंधों की सहायता, बृद्धों की सहायता और विकलांगों की सहायता—पर भी समान रूप से लागू होता है, उसके अनुसार संघ-सरकार राज्यों के सरकारी सहायता-अभिकरणों द्वारा चिकित्सा और स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी सेवाओं के लिए दी जाने वाली आर्थिक सहायता में योगदान देगी।

संशोधित सामाजिक सुरक्षा-कानून में जरूरतमंदों की आर्थिक सहायता के लिए राज्य-सरकारों को संघ-सरकार द्वारा दिये जाने वाले अनुदान के सम्बन्धमें उपर्युक्त शर्तें निर्धारित की गयी हैं। उनमें यह प्रतिबन्ध लगाया गया है कि कोई भी व्यक्ति चारों वर्गों में से किसी एक वर्ग की सहायता प्राप्त कर सकता है, एक ही साथ कई प्रकार की

सहायता नहीं प्राप्त कर सकता। इन चारों सहायता-कार्यक्रमों का प्रशासन-सम्बन्धी व्यय-भार आधा संघ-सरकार और आधा राज्य-सरकार द्वारा वहन किया जाता है। सामाजिक सुरक्षा-कानून के अबतक के संशोधित रूप के अनुसार यह व्यवस्था की गयी है कि प्रत्येक सहायता-कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता प्राप्ति के लिए उपयुक्त अधिकारी व्यक्तियों को दी जाने वाली सहायता की राशि का एक निश्चित भाग संघ-सरकार देगी। पिछले कुछ वर्षों से सहायता-कार्यक्रमों के व्यय का पचास प्रतिशत से अधिक भाग संघ-सरकार और शेष भाग राज्य-सरकारें और जनपद देते रहे हैं। यद्यपि संघ-सरकार का भाग निश्चित होता है, पर प्रत्येक राज्य संघ-सरकार की बराबरी वाले भाग से जितना अधिक चाहे, आर्थिक सहायता के मद में व्यय कर सकती है।

कोई राज्य (जिसमें उसके जनपद भी सम्मिलित होते हैं) सहायता-कार्य में जितना खर्च करता है, संघ-सरकार भी उसे उतने के बराबर ही सहायता देती है। अतः विभिन्न राज्यों में इस मद में उन राज्यों की सम्पन्नता और क्षमता के अनुसार भिन्न-भिन्न मात्राओं में धन-राशि व्यय होती है। राज्यों और संघ-सरकार द्वारा सन् १९५४ के मई मास में इस मद में खर्च की गयी धन-राशि के एक ब्योरे से यह बात स्पष्ट हो जायगी।[५]

सरकारी सहायता का भुगतान

मई १९५४

	वृद्धावस्था-सहायता		अन्धों की सहायता	
	राज्य	प्रति सहायतार्थी पर होनेवाला व्यय	राज्य	प्रति सहायतार्थी पर होनेवाला व्यय
उच्चतम	कानेक्टिकट	८२.३० डा०	कानेक्टिकट	९२.६६ डालर
निम्नतम	मिसूरी	२८.२० ,,	मिसूरी	२६.२१ ,,
मध्यवर्ती	संयुक्त राज्य अमेरिका	५१.३९ ,,	संयुक्त राज्य अमेरिका	५५.८५ ,,

	आश्रित बच्चों की सहायता			स्थायी और पूर्ण विकलांगों की सहायता	
	राज्य	प्रति परिवार पर व्यय	प्रति सहायतार्थी पर व्यय	राज्य	प्रति सहायतार्थी पर व्यय
उच्चतम	कानेक्टिकट	१३२.६३ डा.	४०.३३ डा.	कानेक्टिकट	१०१.०४ डा.
निम्नतम	मिसूरी	२७.९७ डा.	७.३९ डा.	मिसूरी	२४.६० डा.
मध्यवर्ती	संयुक्त राज्य अमेरिका	८५.०० डा.	२३.८१ डा.	संयुक्त राज्य अमेरिका	५३.५६ ,,

५. आगे दिया जाने वाला चार्ट निम्नलिखित पत्रिका से उद्धृत किया गया है—सोशल सिक्योरेटी बुलेटिन—जिल्द १७, अगस्त १९५४, पृष्ठ २६–२८।

सामाजिक सुरक्षा-प्रशासन के मासिक प्रतिवेदनों से इस बात का कुछ आभास मिल सकता है कि इन चारों सहायता कार्यक्रमों से कितने व्यक्ति लाभ उठाते हैं और उन पर कितना धन व्यय होता है। सन् १९५५ के मई महीने में ५० लाख से अधिक व्यक्तियों को यह सहायता मिलती थी। इसमें से करीब आधी संख्या वृद्धावस्था-सहायता प्राप्त करने वालों की थी, बीस लाख से अधिक संख्या आश्रित बच्चों की थी, तथा अन्धों की एक लाख और स्थायी एवं पूर्णतः विकलांगों की संख्या दो लाख थी। सन् १९५४ के इसी मास में इस मद में कुल २० करोड़ डालर धन खर्च हुआ।[६] सन् १९५२ के ३० जून को समाप्त होने वाले आर्थिक वर्ष में चारों सहायता कार्यक्रमों में सहायतार्थियों को कुल $२\frac{१}{३}$ अरब डालर धनराशि वितरित की गयी।[७]

माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य और कल्याण-सम्बन्धी सेवाएँ

सामाजिक सुरक्षा और राजकीय सहायता-सम्बन्धी अंगों के अतिरिक्त सामाजिक सुरक्षा-कानून का एक तीसरा अंग माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य, विकलांग बच्चों की सहायता और बाल-कल्याण-सम्बन्धी सेवाओं से सम्बन्धित है। माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य-सम्बन्धी सेवाओं के लिए निर्धारित संघीय सहायता की धनराशि राज्यों को इसलिए दी जाती है कि वे उसे माताओं और बच्चों के—विशेष कर देहाती क्षेत्रों के और उन क्षेत्रों के जो आर्थिक संकट में होते हैं—स्वास्थ्य से सम्बन्धित सेवा-कार्यों के विस्तार और सुधार के काम में खर्च कर सकें। प्रत्येक राज्य की तत्सम्बन्धी योजना में निम्नलिखित बातों की व्यवस्था होनी चाहिए — (क) संघ-सरकार के साथ राज्य-सरकार का आर्थिक सहयोग, (ख) राज्य के स्वास्थ्य-विभाग या स्वास्थ्य-अभिकरण द्वारा उस योजना का प्रशासन या उसके प्रशासन का निरीक्षण, (ग) योग्यता के आधार पर कर्मचारियों की नियुक्ति, उनकी योग्यता के स्तर को बनाये रखने का प्रयत्न और योग्यतापूर्ण तथा उचित प्रशासन, (घ) प्रतिवेदन, (ङ) स्थानीय जच्चा-बच्चा स्वास्थ्य-सेवाओं में विस्तार और सुधार करना, (च) चिकित्सा, देख-भाल (नर्सिंग) और कल्याण-कार्य-सम्बन्धी विभागों या सेवा-वर्गों के बीच सहयोग और समन्वय। जरूरत वाले क्षेत्रों में और विशेष प्रकार की आवश्यकता वाले समूहों के बीच उक्त प्रचार और प्रदर्शन के निमित्त सेवा-कार्यक्रमों को लागू करना। राज्यों की योजनाएँ संयुक्त राज्य बाल-सहायता-परिषद् (चिल्ड्रेन्स ब्यूरो) द्वारा स्वीकृत की जाती हैं। मोटे तौर पर ६० हजार डालर प्रत्येक

६. सोशल सेक्योरिटी बुलेटिन—जिल्द १७—अगस्त, १९५४—पृष्ठ २३।
७. वही—जिल्द १६—सितम्बर १९५३, टेबुल ३, पृष्ठ २३।

राज्य के हिसाब से देश भर के लिए इस मद का कोश अलग कर लिया जाता है और फिर विभिन्न राज्यों को उनके द्वारा स्वीकृत धनराशि की बराबरी के आधार पर भिन्न-भिन्न धनराशि अनुदान के रूप में दी जाती है। अनुदान देते समय इस बात का भी ख्याल रखा जाता है कि राज्य में जीवित रहने वाले नवजात बच्चों की संख्या का पूरे देश के ऐसे बच्चों की संख्या का आनुपातिक सम्बन्ध क्या है और राज्य में इन सेवाओं की आवश्यकता किस सीमा तक है।

संशोधित सामाजिक सुरक्षा-कानून के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य को एक निश्चित धन-राशि सहायता के रूप में देने की व्यवस्था इस उद्देश्य से की गयी है कि उसे निम्नलिखित सेवाओं के विस्तार और सुधार के काम में खर्च किया जाय— "विकलांग बच्चों का पता लगाना, उनकी औषध-चिकित्सा, शल्य-चिकित्सा और सुधार तथा अन्य प्रकार की सेवाओं और देख-भाल की व्यवस्था करना, उनके रोगों का निदान, और अस्पतालों में उनकी भरती के लिए सुविधा प्रदान करना, विकलांग हो जाने के बाद बच्चों की देख-भाल करना तथा उन परिस्थितियों में सुधार करना, जिनमें बच्चों के विकलांग हो जाने का भय रहता है।" संघ-सरकार इस विषय से सम्बन्धित राज्य-योजनाओं के लिए भी तभी सहायता देती है, जबकि वे संघ-सरकार द्वारा निर्धारित शर्तों के अनुरूप होती है। वे शर्तें प्रायः उपर्युक्त जच्चा-बच्चा-स्वास्थ्य-योजना की शर्तों-जैसी ही हैं। अन्तर इतना ही है कि इस सेवा का प्रशासन या निरीक्षण अनिवार्य रूप से राज्यों के स्वास्थ्य-विभाग के अन्तर्गत नहीं रखा गया है और न तो उस कानून में इससे सम्बन्धित स्थानीय सेवाओं और सेवाओं के प्रचार-प्रदर्शन की ही व्यवस्था की गयी है। जच्चा-बच्चा-स्वास्थ्य-योजना की तरह इस योजना में भी राज्यों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता के लिए यह शर्त रखी गयी है कि संघ द्वारा दी जाने वाली धनराशि के निर्धारित अनुपात के अनुसार राज्य-सरकारों को भी धनराशि देनी पड़ेगी। इस योजना के लिए भी मोटे तौर पर प्रतिराज्य ६०हजार डालर के हिसाब से सभी राज्यों को देने के लिए एक अनुदान-राशि की व्यवस्था की गयी है। सहायता देते समय संघ-सरकार इस बात का भी ख्याल करती है कि किसी राज्य में विकलांग बच्चों की, जिन्हें सहायता की आवश्यकता है, क्या संख्या है और उनकी सहायता में कुल कितना धन खर्च होगा।

संघ-सरकार की एक और अनुदान-व्यवस्था बाल-कल्याण-सम्बन्धी सेवाओं—मुख्य रूप से देहाती क्षेत्रों में की जाने वाली सेवाओं—के विकास और विस्तार के लिए है। इसका उद्देश्य निम्नलिखित है—"गृहहीन, पराश्रित और उपेक्षित बच्चों की रक्षा और देख-भाल करना, जिन बच्चों के अपराधी हो जाने की आशंका है उनका सुधार और देखभाल करना।" इसके लिए किसी राज्य को संघ-सरकार का अनुदान तभी प्राप्त

हो सकता है, जबकि उसकी योजना उस राज्य के जन-कल्याण-विभाग (अभिकरण) और संघ-सरकार के "बाल-सहायता-परिषद्" के सहयोग से निर्मित होगी। इसके निमित्त संघ-सरकार मोटे तौर पर प्रत्येक राज्य को ४० हजार डालर सहायता देने की व्यवस्था करती है और इस मद में खर्च होने वाला शेष धन संघ-सरकार उस राज्य के देहाती क्षेत्रों में रहनेवाले १८ वर्ष से कम उम्र वाले लड़कों की संख्या और पूरे देश के देहाती क्षेत्रों में रहने वाले उसी उम्र के लड़कों की संख्या के आनुपातिक सम्बन्ध के आधार पर देती है। जच्चा-बच्चा-स्वास्थ्य-योजना और विकलांग बालक-सहायता-योजना की तरह इस योजना के लिए संघ और राज्यों के बीच एक निश्चित अनुपात के आधार पर व्यय के बँटवारे का नियम नहीं रखा गया है। फिर भी यह आशा की जाती है कि राज्य में रहने वाले इस उम्र के बालकों की सेवा के कार्यों के लिए राज्य-सरकारों और स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं की ओर से भी धन खर्च करने की व्यवस्था की जायगी। इस मद का धन निम्नलिखित कामों में खर्च होगा—जिला, जनपद या स्थानीय इकाइयों में, विशेष रूप से देहाती क्षेत्रों में की जाने वाली बाल-कल्याण-सम्बन्धी सेवाओं के व्यय का कुछ भाग सहायता के रूप में देना, देहाती क्षेत्रों या विशेष जरूरत वाले क्षेत्रों में काम करने वाले सामुदायिक बाल-कल्याण-संघटनों की उपयुक्त कार्य-पद्धति को प्रोत्साहित करने और उनकी आर्थिक सहायता से सम्बन्धित राज्य-संचालित सेवाओं का विकास करना, और एक राज्य से भाग कर दूसरे राज्य में चले गये १६ वर्ष से कम उम्र वाले बालकों को उनके अपने समुदाय या परिवार में पहुँचाने का खर्च देना, बशर्ते कि उस बालक को वापस लौटाना उसके हित में अच्छा है और उसके लौटाये जाने का खर्च देने वाला कोई भी नहीं है। कांग्रेस ने सामाजिक सुरक्षा कानून में १९५० में जो संशोधन किया था, उसकी इस धारा में ये शब्द जोड़े गये थे—"शर्त यह है कि बाल-कल्याण सम्बन्धी इन सेवाओं के विकास और सुधार के कार्य में स्वेच्छापूर्वक कार्य करने वाले गैर सरकारी अभिकरणों के साधनों सुविधाओं और अनुभवों का बालकों की देखभाल-सम्बन्धी कार्यक्रमों और व्यवस्था के अनुरूप भरपूर लाभ उठाया जाता है। ये कार्य राज्य अथवा स्थानीय समुदायों के अन्तर्गत, कहीं भी हो सकते हैं, बशर्ते कि उन्हें राज्य-सरकार की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी हो।"[८]

---

८. मूल सामाजिक सुरक्षा कानून के संशोधित रूप का वर्णन यहाँ इसलिए किया गया है कि इस विषय के प्रारम्भिक विद्यार्थी को उसकी, जैसा वह आज है, रूप-रेखा की एक झलक मिल जाय। पर इसकी कई ब्योरे की बातें इस वर्णन में जानबूझ कर छोड़ दी गयी हैं। अधिक जानकारी के लिए पाठकों को वह संक्षिप्त विश्लेषण देखना चाहिए, जिसे सामाजिक सुरक्षा-प्रशासन ने तैयार कराया है। वह इस पते से

सामान्य सहायता

पिछले वर्णन में सामाजिक सुरक्षा-कानून का विवरण प्रायः पूरी तरह दिया जा चुका है, फिर भी एक अन्य प्रकार की राजकीय सहायता का यहाँ उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है, जो उक्त कानून के अन्तर्गत नहीं आता। इसे सामान्य सहायता कहा जाता है और वस्तुतः वह पुराने सहायता-कानून (रिलीफ ऐक्ट) का ही आधुनिक और सुधरा रूप है। उसके अन्तर्गत नकद या अन्य किसी रूप (पंसारी की दूकान के सामान, अन्य प्रकार का माल आदि) में सहायता देने की व्यवस्था है। यह सहायता उन लोगों को दी जाती है, जो वस्तुतः जरूरतमन्द हैं, पर ऊपर वर्णित सहायता-योजना के चारों वर्गों में से किसी में नहीं आते। अन्य चारों सहायता-योजनाओं की भाँति इसका प्रशासन भी राजकीय जन-कल्याण-विभाग की स्थानीय इकाइयों द्वारा होता है। इसके लिए कोश की व्यवस्था स्थानीय जनपदों (नगर, कस्बा, उपनगर) द्वारा अथवा जनपदों और राज्य के सहयोग से अथवा पूर्णतः राज्य द्वारा की जाती है। सामान्य सहायता के लिए संघ-सरकार से अनुदान नहीं मिलता।

सामान्य सहायता-सम्बन्धी कार्यों की आर्थिक स्थिति और सांख्यिकी का परीक्षण करने पर यह पता चलता है कि इसके कार्य के लिए मिलने वाला अनुदान बहुत कम होता है जो विभिन्न राज्यों को अलग-अलग मात्रा में मिलता है। सन् १९५४ के मई मास में सहायता पाने वालों की संख्या ३ लाख ४ हजार थी, (इसमें व्यक्ति और परिवार दोनों सम्मिलित थे, जिसका अर्थ यह हुआ परिवारों के व्यक्तियों की भी गणना करने पर यह संख्या ५ लाख के करीब तक पहुँच जायगी।) इन लोगों को मिलने वाली सहायता की रकम करीब एक करोड़ साठ लाख डालर थी। पूरे देश की आबादी की दृष्टि से सहायता की रकम औसतन प्रति व्यक्ति पर ५०.१३ डालर थी। प्रतिव्यक्ति को मिलनेवाली सहायता

मँगाया जा सकता है, सोशल सिक्योरिटी ऐडमिनिस्ट्रेशन, डिपार्टमेण्ट आफ हेल्थ, एडूकेशन ऐण्ड वेलफेयर, वाशिंगटन, डी० सी०। अथवा उसका कोई भी निकट का क्षेत्रीय कार्यालय। सोशल सिक्योरिटी बुलेटिन के मासिक अंकों में राज्यों और संघ के कार्यक्रमों के आर्थिक और सांख्यिक ब्योरे से सम्बन्धित विशाल भंडार मिल सकता है। गम्भीर पाठक को ईवलाइन एम० बर्न्स की पुस्तक 'दी अमेरिकन स्पेशल सिक्योरिटी सिस्टम' में इस विषय का बहुत ही विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण मिलेगा। प्रकाशक—हूटन मिफ्लिन, १९४९। सन् १९५४ में उसमें एक परिशिष्ट भी जोड़ दिया गया था।

औसत की दृष्टि से न्यूयार्क में सबसे अधिक—७४.२४ डालर—थी। टेनेसी राज्य में प्रतिव्यक्ति को मिलने वाली औसत सहायता सबसे कम—१२.३७ डालर—थी।[१]

व्यावसायिक पुनर्वास

मूल सामाजिक सुरक्षा-कानून के 'बी' शीर्षक भाग में इस उद्देश्य से धनराशि की व्यवस्था की गयी थी कि उससे अक्षम व्यक्तियों को व्यावसायिक पुनर्वास के लिए सहायता दी जायगी। इस व्यवस्था से सन् १९२० के संघीय व्यावसायिक पुनर्वास-कानून के अन्तर्गत प्रारम्भ किये गये कार्यक्रमों को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन मिला। १९३५ के सामाजिक सुरक्षा कानून के अन्तर्गत इन सेवाओं को भी सम्मिलित कर लिया गया, जिससे संघ-सरकार और राज्य-सरकारों द्वारा सहकारिता के आधार पर ये कार्यक्रम चलाये जाने लगे। फलस्वरूप सन् १९४३ के मध्य तक सभी ४८ राज्यों, तथा कोलम्बिया, हवाई और पूर्टोरिसो जिलों में इस सम्बन्ध में कानून बन गये। सन् १९४३ के जुलाई मास में मूल सामाजिक सुरक्षा-कानून तथा उसमें हुए संशोधनों की व्यवस्थाओं के सारांश को एकत्र करके एक नये कानून का रूप दिया गया, जिसे बार्डेन-ला फालेटे ऐक्ट कहते हैं (पब्लिक ला, संख्या १३, ७८वीं कांग्रेस)।

जैसे अन्य योजनाओं के लिए निश्चित धनराशि विनियोजित की जाती है, जिसका विवरण पहले दिया जा चुका है, उसी तरह इसके लिए भी धनराशि का विनियोजन होता है, जो राज्यों की इस विषय में सम्बन्धित योजना के स्वीकृत हो जाने के बाद संघ-सरकार द्वारा विभिन्न राज्यों को दी जाती है। राज्यों की व्यावसायिक पुनर्वास योजना के लिए निम्न लिखित शर्तें रखी गयी हैं—

(१) योजना के एकमात्र अभिकरण के रूप में एक राज्य-व्यावसायिक-शिक्षा-परिषद् का संघटन, जिसका काम राज्य भर में इस योजनाके अन्तर्गत चलने वाले कार्यक्रमों का प्रशासन, निरीक्षण और नियंत्रण करना होगा (पर इस कानून में अन्ध-सहायता-आयोगों तथा पूर्व-संघटित व्यावसायिक पुनर्वास आयोगों को उपर्युक्त नियम का अपवाद माना गया है, अर्थात् ये आयोग उपर्युक्त परिषद् के नियंत्रण में नहीं रहेंगे)।

(२) योजना-सम्बन्धी कोश के अभिरक्षक के रूप में कार्य करनेवाले एक कोशाध्यक्ष की नियुक्ति।

(३) उन नीतियों और पद्धतियों का निर्धारण, जिनके आधार पर योजना का संचालन होगा।

१. सोशल सिक्योरिटी बुलेटिन—जिल्द १७—अगस्त १९५४, सारिणी १५, पृष्ठ २८।

(४) इस नियम की व्यवस्था कि केवल काम करने योग्य व्यक्तियों को ही यह सहायता दी जायगी।

(५) योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति और उनकी योग्यता के स्तर की रक्षा की व्यवस्था।

(६) प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की व्यवस्था।

(७) इस नियम की व्यवस्था कि संघ-सरकार से प्राप्त अनुदान के घन को मकान की मरम्मत या किराये में नहीं खर्च किया जायगा।

(८) रोजगार-प्रशिक्षण, औषध-चिकित्सा और अस्पताल के शुल्क आदि के सम्बन्ध में नियमों का निर्माण।

(९) किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए व्यावसायिक पुनर्वास की व्यवस्था करना जो या तो संयुक्त राज्य अमेरिका में गैर-सैनिक नौकरी करता हो और काम करते समय दुर्घटना के कारण विकलांग हो गया हो, अथवा यदि सैनिक हो तो युद्ध में विकलांग हो गया हो।

इस कानून में यह छूट दी गयी है कि संघ द्वारा दी गयी धनराशि को राज्य प्रशासन-सम्बन्धी सभी नियमित कार्यों के लिए खर्च कर सकते हैं। साथ ही कानून में इस बात की व्यवस्था भी की गयी है कि इस योजना में जितना धन राज्य-सरकार लगायेगी, संघ सरकार भी बराबरी के आधार पर उतना ही धन अनुदान के रूप में देगी।

सन् १९२० से १९४३ तक बने कानूनों में व्यावसायिक पुनर्वास-सम्बन्धी जिन सेवाओं की व्यवस्था की गयी है, वे सभी बाधित नागरिकों तथा युद्ध में आहत हुए अक्षम नागरिकों के लिए हैं, जिनमें व्यापारी जहाजों पर काम करनेवाले नाविक और भूतपूर्व सैनिक——जिनकी शारीरिक अक्षमता के लिए सैनिक सेवा की सुविधा नहीं मिलती, भी शामिल हैं। इन सेवाओं के अन्तर्गत निम्नलिखित विषय सम्मिलित हैं——शल्य-चिकित्सा, अस्पताली चिकित्सा, व्यावसायिक यंत्र, नौकरी पाने या उसे बनाये रखने के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण, प्रशिक्षण या पुन:प्रशिक्षण-काल म निर्वाह-भत्ता, और अक्षम व्यक्तियों का निर्देशन तथा व्यवस्थापन। व्यावसायिक पुनर्वास-सेवा, सामाजिक सुरक्षा-प्रशासन और संयुक्त राज्य बाल-सहायता-केन्द्र की तरह स्वास्थ्य, शिक्षा और कल्याण-विभाग के अन्तर्गत होती है। सैनिक-सेवा की सुविधाओं के अधिकारी अक्षम सैनिकों के पुनर्वास का उत्तरदायित्व 'अवकाश प्राप्त सैनिक-प्रशासन' का होता है।[10]

१०. शारीरिक दृष्टि से बाधित व्यक्तियों (तथा विकलांग बच्चों) की सहकारिता पर आधारित कार्यों की कुछ सम्भावनाओं का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित पुस्तक में

राजकीय जन-कल्याण सेवाओं के अन्तर्गत किये जाने वाले अब तक के समस्त कार्यों का विवरण प्रस्तुत करने की दृष्टि से सामाजिक सुरक्षा-कानून में निर्दिष्ट व्यवस्थाओं और शर्तों का विस्तृत वर्णन आवश्यक था। संघीय आकस्मिक सहायता-कानून के लागू होने के समय से लेकर सामाजिक सुरक्षा-कानून के लागू होनेके बाद तक, किये जाने वाले सेवा-कार्यों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजकीय सहायता-सम्बन्धी सेवाओं के क्षेत्र में एक नये युग का प्रारम्भ हो गया है और उनके मूल स्वर में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है और नवीनता आ गयी है। अत: अब यह आवश्यक है कि हम इस प्रश्न पर विचार करें और देखें कि बीसवीं शताब्दी के इस उत्तरार्द्धकाल में राजकीय जन-कल्याण के संघटन और प्रशासन की क्या स्थिति है।

जनपद-कल्याण विभाग के सेवाकार्य

यद्यपि अमेरिका के तीन हजार जनपदों, ४८ राज्यों और कोलम्बिया (अलास्का, हवाई, पुर्टोरिसो और वर्जीनिया द्वीप भी इनमें सम्मिलित किये जा सकते हैं) में किये जाने वाले कल्याण-कार्यों की सामान्य विशेषताएँ बताना अत्यन्त कठिन है, फिर भी उनमें परस्पर मिलती-जुलती कुछ ऐसी बातें हैं, जिनके आधार पर उन राजकीय कल्याण-कार्यों का वर्णन करने का प्रयास किया जा सकता है, जिनसे उन राज्य-समुदायों के नागरिक लाभ उठा रहे हैं। इन सेवाओं को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—राजकीय सहायता (आर्थिक), देख-भाल और व्यवस्था करना, परामर्श देना, नियमन, अन्य अभिकरणों के लिए की जाने वाली सेवाएँ, अन्य अभिकरणों के पास मामलों को भेजना।

स्थानीय जनपद-कल्याण-कार्यों में, सेवार्थियों की संख्या और इन पर व्यय किये गये धन की दृष्टि से सर्वप्रमुख राजकीय आर्थिक सहायता का कार्य है, जिसके अन्तर्गत निम्न-लिखित सहायता-सेवाएँ आती हैं—वृद्धावस्था-सहायता, अन्धों की सहायता, आश्रित बच्चों की सहायता, स्थायी रूप से और पूर्णतः अक्षम व्यक्तियों की सहायता और सामान्य सहायता। इन सबको एक सामान्य संज्ञा दी जा सकती है, "आवश्यकता" और प्रत्येक को एक "आर्थिक आवश्यकता" कहा जा सकता है। उन सब की परस्पर भिन्नता बाह्य कारणों की भिन्नता पर आधारित हैं। विभिन्न वर्गों के बीच वे बाह्य भिन्नताएँ ये हैं—

बहुत अच्छी तरह किया गया है—कारो लाइन एच० एलेज—दि रीहैबिलिटेशन आफ् दि पेशेण्ट—फिलाडेलफिया—जी० बी० लिपिनकाट कम्पनी, १९४५, इस विषय में आगे देखिए—अध्याय १०, चिकित्सा सम्बन्धी सामाजिक कार्य।

अवस्था, अन्धता, बाल्यावस्था, अक्षमता और बेकारी। जो व्यक्ति इस प्रकार की सहायता प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें जनपद, नगर अथवा नगरके किसी जिलेके स्थानीय जनकल्याण विभाग के कार्यालय में पहले आवेदनपत्र देना पड़ता है। इस सम्बन्ध में आवेदक को अपनी आवश्यकता की सचाई का प्रमाण पत्र देना होता है तथा यह भी प्रमाणित करना होता है कि आवेदक इस सहायता-योजना से सम्बन्धित सभी उपर्युक्त शर्तें पूरी करता है। उदाहरण के लिए, कल्पना कीजिए कि एक पति और पत्नी, जो दोनों ६५ वर्ष की आयु के हैं, यह अनुभव करते हैं कि उन्हें आर्थिक सहायता की आवश्यकता है और इस कारण वे अपनी बृद्धावस्था-सहायता, जिसे वे (वृत्ति) कहते हैं, पाने के अधिकारी हैं। अब वे सहायता पाने के अधिकारी हैं या नहीं? यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे सचमुच ६५ वर्ष या उससे अधिक आयु के हैं और उनकी आवश्यकता सही है, अर्थात् उनकी आय के साधन पर्याप्त नहीं हैं। अपनी आयु को प्रमाणित करने का मुख्य उत्तरदायित्व आवेदक का ही होता है, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर राजकीय सहायता-कार्यकर्ता सहायता करने के लिए तैयार रहता है, क्योंकि ६० वर्ष पहले जन्म का अभिलेख रखना हर जगह सरकारी तौर पर आवश्यक नहीं होता था, जिससे बहुत-से वृद्धों की जन्मतिथि का अभिलेख प्रायः नहीं मिल पाता। दूसरी शर्त आवश्यकता को प्रमाणित करने से सम्बन्धित है। प्रायः इसका निर्णय (आवेदक और कार्यकर्ता के संयुक्त प्रयत्न से) आवेदक के साधनों का पता लगाकर तथा सामान्य आवश्यकताओं के लिए निर्धारित बजट के हिसाब से किया जाता है। साधनों का पता लगाते समय यह देखा जाता है कि आवेदक की नकद या अन्य किसी रूप में कितनी आय है, उसके पास क्या वैयक्तिक या पारिवारिक सम्पत्ति है तथा उसकी बीमा की पालिसी और अन्य कोई मूल्यवान् सम्पत्ति है या नहीं। इन कामों के लिए एक पर्याप्त प्रतिमानित आय-व्ययक बनाया जाता है, जो प्रायः राज्य के जनकल्याण-विभाग द्वारा तैयार किया जाता है। यदि आवेदक के साधन आय-व्ययक की तत्तद्विषयक मद की दृष्टि से बहुत अधिक हैं तो वह आवेदक सहायता पाने का अधिकारी नहीं माना जायगा और यदि वे कम हैं तो वह मासिक अनुदान पाने का हकदार हो सकता है, बशर्ते कि आय-व्ययक के अनुसार इस मद में पर्याप्त धन हो और उसको उचित सम्बद्ध अधिकारी या अधिकारियों (जैसे—राजकीय जन-कल्याण और जनपद-कल्याण-परिषद् का आधीक्षक) की स्वीकृति मिल चुकी हो। धनाभाव के कारण प्रायः आय-व्ययक की बचत की धनराशि का बहुत थोड़ा भाग ही सहायता के रूप में वितरित किया जाता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि किसी सहायता-संस्था का आय-व्ययक घाटे का है, अर्थात् प्रतिमास उसकी आय से उसका व्यय ६० डालर अधिक है तो इस घाटे की रकम का ७५ प्रतिशत ही अर्थात् ४५ डालर की सहायता प्रतिमास दी जा सकती है। जो आवेदक सहायता पाने के हकदार

नहीं माने जाते अथवा जिन्हें मिलनेवाली सहायता की रकम कम होती है, वे पुनर्विचार के लिए प्रार्थना कर सकते हैं। सामाजिक सुरक्षा-कानून में यह व्यवस्था की गयी है कि राज्यों के जन-कल्याण-विभाग पुनर्विचार-सम्बन्धी पद्धति का नियम निर्धारित करेंगे। इसलिए राज्यों के जन-कल्याण-विभागों द्वारा ये नियम निश्चित किये जाते हैं। सरकारी सहायता-कार्यकर्ता का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह समय-समय पर सेवार्थी से सम्पर्क स्थापित करता रहे और उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन होने पर कार्यालय के पास तत्सम्बन्धी संस्तुति करे और साथ ही उसका यह भी कर्तव्य है कि जन-कल्याण-विभाग के नियमानुसार यदि कोई सेवार्थी उससे अन्य कोई सहायता चाहता है तो वह सहायता दे। यह नियम राजकीय सहायता-सम्बन्धी सभी योजनाओं पर समान रूप से लागू होता है, भले ही उनमें से सामान्य सहायता-सम्बन्धी योजना गैर सरकारी आधार पर स्थानीय संस्थाओं द्वारा संचालित होती हैं और उन्हीं के द्वारा उसके लिए धनराशि की भी व्यवस्था की जाती है।

स्थानीय जन-कल्याण-विभाग द्वारा संचालित सेवाओं का दूसरा वर्ग देख-भाल और व्यवस्थापन के कार्यों से सम्बन्धित है। देख-भाल के कार्य के अन्तर्गत निम्नलिखित सेवाएँ आती हैं—अनाथ बच्चों को पालनगृह में रखने की व्यवस्था करना, ऐसे पविारों का पता लगाना जिनमें इस प्रकार के बच्चों को पालन के लिए रखा जा सके, पालक पिता के साथ रहने वाले बच्चों और पालक माता-पिता की ऐसी कठिनाइयों का समाधान करना है। निराश्रित वयस्कों (अथवा वृद्धों) को पालक परिवारों में रखने की व्यवस्था के सम्बन्ध में भी यही बातें लागू होती हैं। इस प्रकार की देख-भाल की सेवाओं के अन्तर्गत गृह-कार्य-सहायता-सेवा, चाहे वह बच्चों द्वारा हो या वृद्धों द्वारा, भी सम्मिलित है। दूसरी ओर बच्चों के व्यवस्थापन से सम्बन्धित विभाग जो सेवा करता है, उसके अन्तर्गत निम्न-लिखित कार्य आते हैं—बच्चों को गोद लेने की व्यवस्था करना, छोड़े गये अथवा पहुँचाये गये बच्चों को रखना, ऐसे दम्पति की खोज करना जो गोद लेना चाहते हों, गोद लेने से सम्बन्धित अन्य सेवा-कार्य। इस तरह जन-कल्याण-विभाग उत्तरोत्तर बच्चों की देख-भाल और व्यवस्थापन से वे सभी कार्य करने लगा है, जो पहले स्वेच्छा-दान की सहायता से चलने वाली संस्थाओं द्वारा किये जाते थे।[११]

इस योजना के अन्तर्गत की जाने वाली सेवाओं का तीसरा वर्ग वह है, जिसमें कुछ अधिक गम्भीर ढंग की कठिनाइयों वाले व्यक्तियों की सहायता की जाती है, जैसे अवि-

११. इस सम्बन्ध में इस ग्रन्थ का आठवाँ अध्याय भी देखिए जिसका शीर्षक है 'बच्चे के लिए की जाने वाली कल्याणकारी सेवाएँ।'

वाहिता माँ अथवा अपने बच्चे की उपेक्षा करने वाले या अपशब्द बकने वाले माँ-बाप अथवा बाल-न्यायालय द्वारा परिवीक्षण के लिए भेजे गये बच्चे, इस तरह के व्यक्तियों को आर्थिक सहायता की आवश्यकता हो या न हो, पर उनकी सबसे बड़ी आवश्यकता उनके व्यावहारिक जीवन की कठिनाइयों से सम्बन्धित होती है, अतः उनकी सहायता इस ढंग की होनी चाहिए कि वे अपने व्यवहार के प्रति स्वयं अपने को उत्तरदायी समझने लगें। इस देश के विभिन्न भागों में इस प्रकार के व्यक्तियों की जो कुछ थोड़ी-बहुत सहायता हो रही है, वह स्थानीय कल्याण-विभागों द्वारा ही की जा रही है, यद्यपि इस विभाग की शाखाओं में कर्मचारियों की कमी उनके प्रशिक्षण की आवश्यकता सहायता-सम्बन्धी कामों की अधिकता तथा प्रत्येक कार्यकर्ता पर कई गुना कार्यभार आदि से सम्बन्धित कठिनाइयाँ और अभाव वर्तमान हैं।

इस योजना की सेवाओं का चौथा वर्ग नियमन-सम्बन्धी कार्यों का है, जैसे—पालन-गृहों को लाइसेन्स देना (वस्तुतः इसके अन्तर्गत उनका परीक्षण करने तथा राज्य के जन-कल्याण-विभाग के पास उनके सम्बन्ध में संस्तुति करने का कार्य किया जाता है), इस विषय से सम्बन्धित मुकदमों में पैरवी करनेवाले व्यक्तियों अथवा संगठनों को अनुमतिपत्र देने के सम्बन्ध में निर्णय करना अथवा गोद लेने के लिए न्यायालय में दिये जाने वाले प्रार्थना-पत्र पर संस्तुति करना।

उपर्युक्त सेवाओं के अतिरिक्त स्थानीय जन-कल्याण-विभाग द्वारा अन्य अभिकरणों के लिए भी सेवाएँ की जाती हैं। उसे प्रमाणपत्र देने, प्रारम्भिक जाँच करने और क्षय-रोग के अस्पतालों, मानसिक रोग-चिकित्सालयों, राज्य के पागलखानों, वृद्ध-आश्रमों आदि में भेजे जाने वालों के रोगों के अन्वीक्षण से सम्बन्धित अनेक प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं। उसे अस्पताल में भेजे जाने के पहले प्रार्थियों की आर्थिक स्थिति तथा अन्य संस्थाओं द्वारा सहायताप्राप्त करने के लिए उनकी योग्यता के सम्बन्ध में प्रमाण पत्र देने का कार्य भी करना पड़ता है। यदि कोई नगर में स्थित गैर सरकारी अभिकरण, जैसे यात्री-सहायता-समिति आदि अथवा राजकीय जन-कल्याण-विभाग की शाखाओं द्वारा उससे कुछ सूचनाएँ माँगी जाती हैं तो उसे इस तरह नगर-बाहर की सूचना देने का काम भी करना पड़ता है। इन बातों के अतिरिक्त स्थानीय जन-कल्याण-विभाग अन्य राजकीय अभिकरणों के साथ मिलकर सहयोगिता के आधार पर सुधार-सम्बन्धी संस्थाओं—जेल आदि—से 'पैरोल' पर छूटे व्यक्तियों की सहायता की व्यवस्था भी करता है। जन-कल्याण-विभाग के निरीक्षक को स्कूलों की व्यवस्था के अन्तर्गत कभी-कभी विद्यालय-उपस्थिति-अधिकारी का काम भी करना पड़ सकता है।

स्थानीय जन-कल्याण-विभाग द्वारा की जानेवाली सेवाओं के अन्तिम वर्ग में दूसरी संस्थाओं में मामलों को भेजने के कार्य से सम्बन्धित सेवाएँ आती हैं। जिनके पास ये मामले भेजे जाते हैं, वे ऐसे सेवा-कार्य करने वाली संस्थाएँ होती हैं, जो स्थानीय जन-कल्याण-विभागों की कार्य-सीमा के भीतर नहीं आतीं और वे संस्थाएँ ही ऐसे सेवा-कार्यों में विशेषज्ञ मानी जाती हैं। उदाहरण के लिए, स्थानीय जन-कल्याण-विभाग निम्नलिखित ढंग की संस्थाओं के पास सेवार्थियों को भेजता है——बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह, पारिवारिक-सेवा-अभिकरण, अस्पताल-समाज-सेवा-विभाग, सेवामुक्त सैनिक-प्रशासन-अस्पताल अथवा उसका कोई क्षेत्रीय कार्यालय, व्यावसायिक पुनर्वास-कार्यालय, अन्य विशेषीकृत संस्थाएँ (जैसे अंधों की संस्थाएँ आदि), कानूनी सहायता-संस्थान आदि।

वैयक्तिक समाज-सेवा-कार्य——

जन-कल्याण-सेवा की नवीन पद्धति

एलिजाबेथ-काल और उपनिवेश-काल से लेकर बहुत बाद तक राजकीय सहायता की याचना करने वाले व्यक्तियों की आवश्यकताओं की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता था। यह माना जाता था कि गरीब अपनी ही गलतियों के कारण गरीब हैं, इस कारण जो सहायता दी भी जाती थी, वह इतनी अपमानपूर्ण और अनाकर्षक होती थी कि लोग दुबारा ऐसी सहायता माँगने को उत्साहित नहीं होते थे। उनकी दुर्दशा देखकर और लोगों को भी सहायता माँगने की हिम्मत नहीं होती थी। इसके बाद गैर सरकारी सामाजिक कार्यों, विशेष रूप से पारिवारिक सहायता-सम्बन्धी सेवा-कार्यों, का प्रारम्भ हुआ और सहायतार्थियों की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ फिर भी जब तक राज्य-सरकारें यह समझती रहीं कि जन-कल्याण का अर्थ केवल समाज-सेवा-सम्बन्धी संस्थाओं की आर्थिक और व्यवस्था-सम्बन्धी सहायता करना है और जब तक स्थानीय समुदायों में किये जाने वाले सेवा-कार्य का अर्थ केवल निर्धनों को दान देना था, तब तक वैयक्तिक समाज-सेवा की पद्धति के लिए न तो कोई सुविधा ही मिल सकती थी, न कोई अवसर ही प्राप्त हो सकता था। जबतक गैर सरकारी संस्थाएँ सेवार्थियों में से सेवा के लिए चुनाव किया करती थीं और राजकीय संस्थाएँ तथा निर्धन सहायता-परिषदें बाकी लोगों की सहायता का काम करती थीं, तब तक उन विषयों और पद्धतियों के सम्बन्ध में एकमत होना सम्भव नहीं था, जिनपर वैयक्तिक सेवा-कार्य आधारित है, पर आज स्थिति में परिवर्तन हो गया है। आज सरकारी अभिकरणों को यह अधिकार प्राप्त है कि जो कोई भी सहायता प्राप्त करने का उचित अधिकारी हो, वे उसकी सहायता अवश्य करें और यह सहायता तब तक दी जाती रहे,

जब तक उनके कोश में धन बचा रहे। ऐसी स्थिति में क्या यह सम्भव है कि बहुत बड़े पैमाने पर जन-कल्याण के कार्य किये जायँ और साथ ही उन कार्यों में सहायता पाने वाले व्यक्तियों की दृष्टि से उच्चस्तरीय गुण भी वर्तमान रहें ?

इस विषय की जानकारी न रखने वालों के लिए वैयक्तिक सेवा-कार्य-सम्बन्धी इन सब बातों की शब्दावली किसी दीक्षित धार्मिक सम्प्रदाय की गुह्य भाषा या सांकेतिक भाषा-जैसी प्रतीत हो सकती है। तो क्या इस भाषा को सीखकर कोई भी व्यक्ति वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता बन सकता है ? आखिर वैयक्तिक सेवा-कार्य में ऐसा क्या है ? जो किसी परिषद् के सदस्य, किसी पादरी के सहायक अथवा किसी महिला-क्लब की कल्याण-समिति की अध्यक्षा द्वारा नहीं किया जा सकता ? इस पुस्तक को पढ़ने वालों को अब तक यह अवश्य अनुभव हो गया होगा कि वैयक्तिक समाज-सेवा का आर्य कठिनाइयों में फँसे व्यक्ति की सहायता के लिए विकसित एक विशेष प्रकार के कौशल पर आधारित है। और वह कौशल कार्यकर्ता के जन्मजात जातीय संस्कारों, व्यक्तित्व के विवकास, प्रशिक्षण और अनुभवों से सम्वन्धित होता है। इस प्रकार वयक्तिक समाज-सेवा-कार्य के लिए काफी कुशलता की आवश्यकता होती है।

वैयक्तिक समाज सेवा-कार्य की प्रक्रिया और उसकी उपयोगिता इस बात पर निर्भर करती है कि व्यक्ति को, जैसा वह है, उसी रूप में स्वीकार किया जाय, उसके अपने ढंग से तथा अपने सर्वोत्तम विवेक के अनुसार, जीवन बिताने के अधिकार को अक्षुण्ण रखाजाय और साथ ही उस व्यक्ति की योजना के अनुसार काम किया जाय, न कि अपनी योजना उस पर लादी जाय। कार्यकर्ता के काम की प्रभावात्मकता इस बात पर निर्भर करती है कि वह लोगों की सहायता के लिए क्या करता है और उसके कार्य का ढंग क्या है। वह दूसरों की कठिनाइयाँ स्वयं नहीं ओढ़ लेता और न तो उनका उत्तरदायित्व ही अपने ऊपर ले लेता है, इसके विपरीत वह उनकी इस बात में सहायता करता है कि वे अपनी कठिनाइयों का सामना स्वयं करें और वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रक्रिया में उनके हिस्से का जो काम है उसे वहन करें। इस प्रकार कठिनाइयों में पड़े हुए व्यक्तियों की कौशलयुक्त सहायता का ही नाम वैयक्तिक सेवा-कार्य है। किन्तु वैयक्तिक सेवा-कार्य का यह एक मात्र मार्ग नहीं है। यह अनेक मार्गों में से एक है, जो व्यक्तियों की अपनी क्षमताओं के उपयोग और सन्तोषपूर्ण जीवन-निर्वाह में सहायता पहुँचाकर अपना मूल्य और उपयोगिता सिद्ध कर चुका है।

सामाजिक सुरक्षा कानून के प्रशासन की दृष्टि से जनता की सहायता के लिए उपर्युक्त गुणों का क्या औचित्य है ? क्या राजकीय सहायता कार्यकर्त्ता उसी आधार पर काम करता है, जिसे श्रीमती रोसावेसेल ने राजकीय सहायता को वैयक्तिक सेवा-कार्य मानकर विवेचित

किया है ? इन प्रश्नों के उत्तर में हम तुरन्त एक अन्य प्रश्न पूछ सकते हैं कि क्या राजकीय सहायता-कार्यकर्ताओं की कार्य-पद्धति कुछ और होती है। क्या ये कार्यकर्ता किसी आवेदक को राजकीय सहायता प्रदान करने और फिर उसकी सेवा का कार्य हाथ में लेने में अपने को ही महत्त्व देते हैं अथवा यह अनुभव करते हैं कि किसी आवेदक की सहायता-सम्बन्धी पात्रता का निश्चय करने अथवा उसके अनुदान की रकम निर्धारित करने की प्रक्रिया में वे जो कुछ और जिस ढंग से काम करते हैं, वही सहायता की पद्धति का मूल तत्त्व है ?[१२]

सामाजिक सुरक्षा-कानून की बीमा और राजकीय सहायता-सम्बन्धी धाराएँ पिछले तीन सौ वर्षों की समाज-सम्बन्धी कार्यपद्धति को बिलकुल भिन्न दिशा में ले जाने वाली थीं। अब श्रमिकों और उनके परिवार के सदस्यों को इस बात का भय नहीं रह गया कि वृद्ध हो जाने अथवा नौकरी छूट जाने पर सरकारी सहायता लेने के कारण उनके सम्मान को धक्का पहुँचेगा, ऐसे बहुत-से लोग अब राजकीय आर्थिक सहायता प्राप्त करनेके अधिकारी होने लगे। यह काम पहले उनके वेतन से कटौती करके किया जाता था। जो लोग इस प्रकार की सामाजिक बीमा-सम्बन्धी सहायता योजना के अन्तर्गत नहीं आते थे, वे अब अपने अधिकार के रूप में कुछ शर्तें पूरी कर लेने पर अन्य प्रकार की सहाथता प्राप्त करने के हकदार हो गये। मानव-व्यक्तित्व के गौरव से सम्बन्धित यह नवीन विचार-धारा ही अब राजकीय सहायता और अन्य सरकारी कल्याणकारी सेवाओं से सम्बन्धित वैयक्तिक सेवा-कार्यों का वैधानिक आधार बन गयी।[१३]

राज्य की संविधि तथा संघीय कानूनों में वृद्धावस्था-सहायता, आश्रित बालक-सहायता, स्थायी रूप से एवं पूर्णतः अक्षम लोगों की सहायता तथा अंध-सहायता (जिन्हें अंग्रेजी में संक्षेप में क्रमशः ओ० ए० ए०, ए० डी०सी०, ए०पी० टी०डी० और ए०बी० कहा जाता है) पाने के लिए पात्रता-सम्बन्धी नियम निर्धारित किये गये हैं। जो आवेदक उन नियमों की शर्तों की पूर्ति करते हैं, उन्हें आर्थिक सहायता पाने का अधिकार होता है। राजकीय कोश में कमी के कारण कभी-कभी यह सहायता कम या बन्द कर दी जाती है, किन्तु कोश

१२. वेसेल रोसा (सम्पादन)—'मेथड एण्ड स्किल इन पब्लिक असिस्टेन्स' शीर्षक निबन्ध, जर्नल आफ सोशल वर्क प्रासेस, जिल्द २, दिसम्बर १९३८, पृष्ठ ६ (पेन्सिलवानिया स्कूल आफ सोशल वर्क)।

१३. राजकीय सहायता से सम्बन्धित वैयक्तिक सेवा-कार्य की सम्भावनाओं के बारे में अधिक जानकारी के लिए देखिए;—कर्मिट विल्ल्से—"सोशल केस वर्क सर्विसेज इन दि एड टु डिपेन्डेन्ट चिल्ड्रेन प्रोग्राम"—दि सोशल सर्विस रिव्यू—जिल्द २८, जून १९५४, पृष्ठ १७३–१८५।

की कमी का यह अर्थ नहीं है कि किसी व्यक्ति को आवेदनपत्र देने का अधिकार नहीं रह जाता या उसकी पात्रता के अधिकार समाप्त हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त कानून के अनुसार आवेदक इन बातों के लिए ऊपर के अधिकारियों के पास अपील भी कर सकता है। विभिन्न राज्यों के कानूनों की धाराओं के अनुसार यह अपील स्थानीय कल्याण-विभाग अथवा राजकीय कल्याण-विभाग या न्यायालय के माध्यम से की जानी चाहिए।[१४]

कानून में निर्धारित नियमों और शर्तों के कारण अभिकरणों के प्रशासन से सम्बन्धित सुदृढ़ सिद्धान्तों को और भी बल मिला है, जिससे सहायता-कार्य-सम्बन्धी नीति में उत्तरोत्तर विकास होता गया है। इस नीति के व्यावहारिक रूप में परिणत होने के कारण सहायता देने का कार्य बहुत ही उचित और न्यायपूर्ण ढंग से होता है। जिस तरह विभिन्न व्यक्तियों में आपस में अन्तर होता है, उसी तरह उनकी आवश्यकताएँ भी व्यक्तिशः भिन्न-भिन्न होती हैं। व्यक्ति की, अपनी आवश्यकता के अनुसार धन खर्च किये जाने की क्षमता का आदर किया जाता है। उसी तरह यह भी स्वीकार किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति में अपने विवेक के अनुसार अपने कार्यों की व्यवस्था करने की जो योग्यता होती है उसे मान्यता मिलनी चाहिए। साथ ही यह भी स्वीकार किया जाता है कि व्यक्ति में अपनी स्थिति के सुधार और नये कार्यों के प्रारम्भ के लिए जो इच्छा होती है, उसे उचित समझ कर, जहाँ तक सम्भव हो, उसको शक्तिशाली बनाया जाय। वैयक्तिक सेवा-कार्य की कसौटी कार्यकर्ता की वह कार्य-पद्धति है, जो सेवार्थी की समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रयुक्त होती है।

किसी राजकीय अभिकरण में किया जानेवाला वैयक्तिक सेवा-कार्य उन्हीं सेवाओं तक सीमित होता है, जिनके लिए उस अभिकरण की स्थापना हुई है। सेवा का कार्य आवेदक के सहायता-सम्बन्धी प्रार्थना पत्र देने के बाद प्रारम्भ होता है। उसी समय कार्य-कर्ता आवेदक से मिलता है और यह देखता है कि कानून में निर्धारित पात्रता की शर्तों तथा अभिकरण की नीति के अनुसार वह व्यक्ति सहायता पाने का अधिकारी है या नहीं। शर्तें और नीति की बातें आवेदक को बहुत ही स्पष्ट रूप में और ऐसी भाषा में बता दी जातीं हैं, जिससे आवेदक उन्हें आसानी से समझ लेता है, कार्यकर्ता का आवेदक के साथ

१४. सामाजिक सुरक्षा कानून के अक्टूबर, सन् १९५१ के तथाकथित जेनर-संशोधन में यह व्यवस्था की गयी थी कि सहायता-सम्बन्धी अनुदानों के अभिलेखों का किसी भी व्यक्ति द्वारा निरीक्षण किया जा सकता है। इस व्यवस्था के लागू हो जाने पर भी कार्यकर्ता और कार्यार्थी के बीच हुई बातचीत की गोपनीयता की रक्षा अभी होती जा रही है।

बातचीत का ढंग भी ऐसा होता है कि हर हालत में कार्यार्थी उसे अपना सहायक समझता रहता है, उसके बाद सेवार्थी और कार्यकर्ता दोनों का यह संयुक्त प्रयास होता है कि वे आवेदनपत्र की बातों को प्रमाणित करें अर्थात् कार्यार्थी अपने आवेदनपत्र से सम्बन्धित प्रमाणिक आँकड़े तथा विवरण प्रस्तुत करता है और कार्यकर्ता यह देखता है कि उन आँकड़ों और विवरणों से अभिकरण की शर्तें पूरी होती हैं या नहीं। कभी-कभी कार्यकर्ता को किसी आवेदनपत्र के सम्बन्ध में ऐसे प्रमाण स्वयं संग्रह करने पड़ते हैं, जो आवेदक को आसानी से नहीं मिल सकते, लेकिन अभिकरण को मिल जाते हैं। यह सब काम दोनों के सहयोग से होता है, रस्साकसी-जैसे आपसी बहस-मुवाहसे और संघर्ष से नहीं।

इस समस्त प्रक्रिया के बीच कार्यकर्ता इस तथ्य की ओर हमेशा ध्यान रखता है कि हमारे जीवन में अर्थ का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है। "हमारा" शब्द से यहाँ आवेदक, सामाजिक कार्यकर्ता, वकील, नल-मिस्त्री, किसान आदि सब का बोध होता है। अर्थ से ही सामाजिक पद और स्वतन्त्रता की माप होती है। इसीके कारण व्यक्ति समाज में अपना सर ऊँचा कर चलता है और विश्वास के साथ कदम बढ़ाता है। इसी के कारण नयी कठिनाइयों का सामना करने के लिए व्यक्ति के मन में साहस और संकल्प का उदय होता है और सुरक्षा की भावना आती है। अर्थ के अभाव में, चाहे उसका कारण कुछ भी क्यों न हो, उपर्युक्त सभी गुणों का अभाव हो जाता है। अतः सहायता की पात्रता को प्रमाणित करने तथा आर्थिक सहायता जारी रखने का अभिप्राय दान या उपहार देना नहीं है, बल्कि उससे राज्य को इस विश्वास का पता चलता है कि व्यक्ति में अपने कार्यों को स्वयं अपने बल पर और उत्तरदायित्व पूर्ण ढंग से करने की क्षमता होती है। इससे वह इस व्यावहारिक एवं दार्शनिक विश्वास की भी अभिव्यक्ति होती है कि व्यक्तियों के कल्याण का कार्य ही वस्तुतः समुदाय के कल्याण का कार्य है।

राजकीय सहायता-सम्बन्धी वैयक्तिक सेवा-कार्य के एक दूसरे पक्ष के—पात्रता-सम्बन्धी अधिकार को बनाये रखना—बारे में भी उपर्युक्त बातें उसी तरह लागू होती हैं। अभिकरण तथा कार्यकर्ता को बीच-बीच में इस बात का पता लगाते रहना पड़ता है कि किसी व्यक्ति को जो राजकीय सहायदा दी जा रही है, उसे पाने का वह अब भी अधिकारी है या नहीं और सहायता प्रारम्भ होने के समय की उसकी स्थिति में कुछ सुधार तो नहीं हो गया है। यदि सेवार्थी की स्थिति में कुछ सुधार हो गया है तो इसका उसके मिलने वाली सहायता पर प्रभाव पड़ता है और यह प्रमाणित हो जाने पर कि अब वह सहायता के लिए वैध पात्र नहीं है, उसकी सहायता बन्द कर दी जाती है। सहायता लेने का यह अर्थ नहीं है कि कोई व्यक्ति सरकारी अभिकरण का गुलाम हो जाय और उसके आदेशों के अनुसार अपने जीवन को चलाने के लिए बाध्य हो। उसका यह भी अर्थ नहीं है कि कोई

अभिकरण आर्थिक सहायता का दुरुपयोग करते हुए किसी व्यक्ति को डराये, धमकाये या उसे अपने हाथ का अस्त्र बनाने का प्रयत्न करे। पात्रता की जाँच की समूची अवधि में राजकीय सहायता कार्यकर्ता को मानव-व्यक्तित्व की गरिमा की ओर बराबर ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। साथ ही उसका ध्यान इस ओर भी रहना चाहिए कि विभिन्न व्यक्तियों में अपने जीवन की व्यवस्था स्वयं कर लेने की इच्छा किस सीमा तक वर्तमान है और उनमें आत्मनिर्भर और आत्मनिर्णायिक बनने के लिए अपनी स्थिति को सुधारने की क्षमता है या नहीं।

कार्यकर्ता को अपनी कार्यकुशलता द्वारा अपनी उपयोगिता सिद्ध करने का एक अन्य क्षेत्र यह है कि सेवार्थी को समुदाय के उन अभिकरणों के बारे में बताये, जो अपने ढंग से उसकी सहायता कर सकते हैं। वे अभिकरण चिकित्सा-सम्बन्धी, शैक्षणिक, व्यावसायिक, मनोरंजनात्मक आदि किसी प्रकार के भी हो सकते हैं जिनके बारे में कार्यकर्ता को अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक जानकारी होती है। अभिकरण सेवार्थी को उसकी आवश्यकता के अनुसार अन्य अभिकरणों के पास भेज सकता है, किन्तु अन्यत्र भेजने की इस प्रक्रिया में भी कार्यकर्ता के कौशल की आवश्यकता होती है। उन्हें अन्यत्र भेजने वाला कार्यकर्ता इस बात को ध्यान में रखता है कि किसी सेवार्थी को अन्यत्र भेजे जाने में संकोच या हिच-किचाहट का अनुभव तो नहीं हो रहा है, क्योंकि दूसरे अभिकरणों में जाने पर उसे फिर अपनी बातें खोलकर कहनी पड़ेंगी और उस समय पता नहीं कौन-सी अप्रत्याशित और अनियन्त्रित परिस्थिति उत्पन्न हो जाय। प्रायः इस सम्बन्ध में केवल सूचना से ही काम नहीं चलता। सेवार्थी को कुछ और भी आवश्यकता होती है, वह आवश्यकता यह है कि उसकी समझ को विकसित किया जाय, ताकि वह अन्य अभिकरणों से उचित लाभ उठा सके।

राजकीय कल्याण-कार्य की वर्तमान प्रवृत्तियाँ

इस समय हमारे देश में कल्याण-कार्य-सम्बन्धी दृष्टिकोण और पद्धति के जितने रूप दिखलाई पड़ते हैं, वे पिछली तीन शताब्दियों से प्रचलित रहे हैं, किन्तु साथ ही कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ भी पहचानी जा सकती हैं जो पूर्ववर्ती प्रवृत्तियों से भिन्न हैं, यद्यपि ऐसे लोगों के लिए इन प्रवृत्तियों का अन्तर समझना कठिन होता है, जो इनसे सम्बन्धित कार्यों के अविच्छिन्न अंग हैं। इनमें से निस्सन्देह रूप से सबसे महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति सेवाओं के विस्तार की है। इस विस्तार का अनुमान इन कार्यों में खर्च होने वाले धन की मात्रा, कर्मचारियों की संख्या अथवा सेवाओं के वैविध्यपूर्ण क्षेत्र और सहायता प्राप्त करने वालों की संख्या के आधार पर किया जा सकता है। यद्यपि आज भी आर्थिक अभाव से ग्रस्त अथवा सीमित

आर्थिक साधनों वाले व्यक्तियों और परिवारों की ही सहायता की जाती है, किन्तु यह कार्य अब इतना बढ़ गया है कि उसका महत्त्व अकल्पनीय हो गया है। किन्तु राजकीय कल्याण-कार्य के अन्तर्गत और भी कई प्रकार की सेवाएँ आती हैं, जैसे—सामाजिक सुरक्षा-सम्बन्धी सुधार कार्य, अवकाश प्राप्त सैनिकों की सहायता, व्यावसायिक पुनर्वास, बाल-कल्याण-कार्य आदि। कल्याण कार्य-सम्बन्धी सेवाओं के क्षेत्र के विस्तार का कारण यह माना जाता है कि राजकीय कल्याण-कार्य-सम्बन्धी दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया है। राजकीय सहायता-कार्य को, चाहे वह किसी भी प्रकार का क्यों न हो, अब केवल एक आरामदेह और अस्थायी प्रबन्ध नहीं माना जाता, बल्कि उसे एक ऐसा कार्य माना जाता है, जिससे देश के आगामी कार्यों की सफलता के लिए मानव-शक्ति के संचय और विकास का प्रयास कहा जा सकता है, साथ ही वह एक ऐसा साधन बन गया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने भीतर निहित क्षमता और शक्ति का अन्वेषण और विकास करके सफलतापूर्वक और सन्तोष के साथ जीवन-यापन कर सकता है। यही बात उन लोगों से सम्बन्धित सेवाओं पर भी लागू होती है, जो अपनी सहायता स्वयं करने के लिए सक्षम नहीं होते और न उनका परिवार ही उनकी सहायता कर पाता है, जैसे—वृद्ध, बच्चे, अपराधी, पागल तथा अन्य किसी प्रकार से बाधित व्यक्ति।

पिछले कुछ वर्षों से वृद्धों की सहायता की ओर उत्तरोत्तर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है।[१५] इस सेवा के विस्तार का कारण यह है कि देश में निस्संदेह वृद्धों की संख्या देश की पूरी आबादी के अनुपात में बहुत बढ़ गयी है, इसीलिए सहायता के अधिकारी वृद्धों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता की कुल धनराशि की मात्रा भी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है और साथ ही सहायता प्राप्त करने की शर्तों को भी उत्तरोत्तर उदार बनाया जा रहा है। वृद्धों के लिए मनोरंजन एवं सामूहिक कार्यों-सम्बन्धी सेवाओं का भी उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा है। उसी तरह वृद्ध व्यक्तियों को परामर्श देने से सम्बन्धित सेवा-कार्यों का भी प्रारम्भ हो गया है। राजकीय तथा वैयक्तिक स्तर पर वृद्धों के लिए संस्थागत सेवाओं में पर्याप्त विकास हुआ है और उनमें अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुरूप विशेष-विशेष कार्यक्रम रखे जाते हैं। वृद्ध व्यक्तियों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर आवास-कार्यक्रम के अन्तर्गत विशेष योजनाएँ, अधिकतर कम लागत वाले मकानों की योजनाएँ बनायीं जा रही हैं। जीर्ण रोगों से सम्बन्धित सेवाओं की ओर

१५. इस सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार करने के लिए ही इस पुस्तक के वर्तमान संस्करण में एक अध्याय और जोड़ दिया गया है, जिसका शीर्षक है "वृद्धों की सामाजिक सेवा"।

भी अब विशेष ध्यान दिया जाने लगा है, यद्यपि उसका सम्बन्ध केवल वृद्धों से ही नहीं है। इस क्षेत्र में की जाने वाली सेवा के अन्तर्गत वृद्धों की स्थिति पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जो पूर्ववर्ती सेवा-कार्य के विस्तार का सूचक है।

तीसरी स्पष्ट दिखलाई देनेवाली प्रवृत्ति यह है कि सामान्य जनता की चिकित्सा-सम्बन्धी सेवाओं की व्यवस्था में भी बहुत अधिक विस्तार हो गया है। चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में होने वाली असाधारण प्रगति के कारण यह आवश्यक हो गया कि जहाँ कहीं भी चिकित्सा की आवश्यकता हो, उसके लिए व्यवस्था करने का प्रयत्न किया जाय और यदि बीमारी की हालत में किसी व्यक्ति की आय के साधन में रुकावट आ जाती है तो उसे आर्थिक सहायता देने की भी व्यवस्था की जाय। अन्य कई देशों में भी चिकित्सा के क्षेत्र में इस प्रकार की सेवाओं के विस्तार की आवश्यकता और सम्भावना पर अधिक बल दिया जा रहा है। यद्यपि कांग्रेस के पिछले कई अधिवेशनों में इस सम्बन्ध में प्रस्ताव उपस्थित किये गये कि सामाजिक सुरक्षा-कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वास्थ्य-सम्बन्धी बीमा को भी, उसके एक अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए, किन्तु ये प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हो सके। फिर भी उनका प्रभाव उन लोगों पर पड़ा है जो वर्तमान सेवाओं की "यथास्थिति" को बनाये रखना चाहते हैं। स्वास्थ्य बीमा के लिए किये जाने वालों प्रयत्नों में यद्यपि सफलता नहीं प्राप्त हुई, किन्तु उन्हीं के कारण बाध्य होकर ऐसे कानून बनाने पड़े, जिनमें चिकित्सा-सम्बन्धी सेवाओं के अधिक विस्तार की व्यवस्था की गयी है। सभी स्थानों में समान रूप से चिकित्सा-सम्बन्धी सुविधाओं की उपलब्धि के लिए शीघ्र व्यवस्था न हो सकने के कारण स्थानीय और राज्य के जन-कल्याण-विभागों ने सहायता प्राप्त करने वालों के लिए उपयुक्त चिकित्सा की व्यवस्था के सम्बन्ध में भी कार्यक्रम बनाये हैं। इसीलिए कभी-कभी सेवार्थी को दिये जाने वाले अनुदान के अन्तर्गत कुछ धन चिकित्सा के लिए भी निर्धारित होता है, कभी सेवार्थी के लिए जनपद के चिकित्सक की सेवाएँ प्राप्त करने की व्यवस्था कर दी जाती है और कभी सहायतार्थी की चिकित्सा करने वाले डाक्टर का खर्च भी स्थानीय अथवा राज्य के जन-कल्याण विभाग द्वारा अतिरिक्त सहायता के रूप में दिया जाता है।

कल्याण-कार्यों के विस्तार की दिशा में एक चौथी प्रवृत्ति यह दिखाई पड़ती है कि अवकाशप्राप्त-सैनिक-प्रशासन के माध्यम से भी अधिक-से-अधिक लोगों की सेवा की जा रही है। यह अनुमान किया गया है कि उक्त प्रशासन द्वारा की जाने वाली सेवाओं से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लाभ उठाने वाले व्यक्तियों की संख्या करीब साढ़े पाँच करोड़ है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत केवल सेना में बहुत दिनों तक काम करने वाले, सेवामुक्त अथवा अवकाशप्राप्त सैनिकों को ही सहायता दी जाती है और उन्हें यदि कोई ऐसा शारी-

रिक या मानसिक रोग है जो उनकी सैनिक सेवा के कार्यों से सम्बन्धित है तो उनको मानसिक और शारीरिक चिकित्सा के लिए भी सहायता दी जाती है।

पाँचवी प्रवृत्ति सामाजिक सुरक्षा-कार्यक्रमों के विस्तार के रूप में दिखाई पड़ती है। सन् १९३५ के वृद्धावस्था-सहायता-कानून में सन् १९३९ में जो संशोधन हुआ, उसमें सैनिकों के उत्तराधिकारियों को भी वृद्धावस्था-सहायता प्राप्त करने का अधिकारी मान लिया गया। उसमें सन् १९४६ में जो संशोधन हुआ उसके अनुसार ऐसे सैनिकों के, जिनकी सेवा-मुक्ति के तीन वर्ष के भीतर ही मृत्यु हो गयी हो, परिवारों को भी इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता प्राप्त करने का अधिकार मिल गया। १९४६ के एक दूसरे संशोधन के अनुसार, जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है, बेरोजगार-सहायता-कार्यक्रम के अन्तर्गत जहाजों पर काम करने वाले श्रमिक भी सहायता प्राप्त करने के अधिकारी हो गये। इसके पहले ही, सन् १९३९ में, जहाजी श्रमिकों को वृद्धावस्था-बीमा और उत्तराधिकारी-बीमा के कार्यक्रम के अन्तर्गत सेवा प्राप्त करने का अधिकारी मान लिया गया था। १९५० और १९५४ के संशोधनों द्वारा वृद्धावस्था और उत्तराधिकारी-बीमा-योजना के अन्तर्गत सहायता प्राप्त करने के अधिकारी व्यक्तियों में अन्य प्रकार के श्रमिक—मुख्यत: निजी रोजगार करने वाले, कृषि-मजदूर और घरेलू नौकर आदि—भी सम्मिलित कर लिये गये।

छठवीं प्रवृत्ति, जिसका सम्बन्ध पूर्ववर्ती प्रवृत्ति से है, यह है कि सामाजिक बीमा के कार्यक्रमों में अधिक-से-अधिक लोगों को सम्मिलित किया जा रहा है और राजकीय आर्थिक सहायता-सम्बन्धी कार्यों को कम करने का प्रयास किया जा रहा है। काँग्रेस ने निजी रोजगार करने वालों, कृषि-मजदूरों और घरेलू नौकरों के साथ ही अक्षम व्यक्तियों को भी सरकारी सहायता प्राप्त करने का अधिकारी मान लिया, किन्तु बहुत-से लोगों की यह राय है कि अक्षम व्यक्तियों की सहायता वृद्धावस्था और उत्तराधिकारी-बीमा-योजना अथवा बेकारी-बीमा-योजना के अन्तर्गत होनी चाहिए, (अथवा उनकी अक्षमता के स्थायी या अस्थायी रूप के अनुसार उन्हें दोनों योजनाओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है)। उसी तरह कुछ लोगों की यह भी धारणा है कि अक्षम व्यक्तियों के लिए वृद्धावस्था और उत्तराधिकारी बीमा तथा बेकारी बीमा के समान एक अलग बीमा योजना की व्यवस्था होनी चाहिए। बहुत-से लोगों का यह भी विचार है कि वृद्धावस्था, मृत्यु, बेकारी, अक्षमता और बीमारियों के कारण आय की क्षति की पूर्ति के लिए नियोजित बीमा-योजनाओं के अन्तर्गत जितने ही अधिक लोग लाभान्वित होंगे, अवशिष्ट सहायता सम्बन्धी सेवाओं का भार उतना ही कम होता जायगा।[१६] निश्चय ही कल्याण-कार्यों की यह प्रगति अन्य देशों में होने वाले

१६. **वृद्धावस्था और उत्तराधिकारी-बीमा तथा वृद्धावस्था-सहायता-योजना के पारस्परिक**

कल्याण कार्यों की प्रगति से अधिक भिन्न नहीं है, यद्यपि अन्य देशों में ये कार्य कई वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ हो गये थे।

एक और प्रवृत्ति जो इस अध्याय की दृष्टि से अन्तिम प्रवृत्ति है, यह है कि विविध कल्याण कार्यों के, चाहे वे राष्ट्रीय, राज्य या स्थानीय किसी भी स्तर पर किये जाते हों, बीच परस्पर समन्वय और एकता के लिए बहुत अधिक प्रयत्न किये जा रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि जनता के कल्याण के लिए की जाने वाली विविध प्रकार की सेवाओं में जैसे––सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था, पुनर्वास-कार्य, चरित्र-सुधार-सम्बन्धी कार्य, संस्थागत-सेवा कार्य, अवकाशप्राप्त सैनिक सेवा-कार्य आदि––परस्पर प्रभावपूर्ण समन्वय स्थापित हो रहा है। अब हम इस आपत्तिजनक स्थिति में नहीं रह गये हैं कि प्रत्येक कल्याण कार्य करने वाला विभाग अन्य विभागों से असम्बद्ध रहकर आराम के साथ धीरे-धीरे काम करने का प्रयत्न करे। न केवल आज के सुदृढ़ प्रशासन का यह तकाजा है कि उन सेवाओं में परस्पर सहयोग हो, बल्कि उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उस जनता की, जिसके लिए इन समस्त सेवाओं का विधान किया गया है, आवश्यकताएँ ही इस बात के लिए विवश कर रही हैं कि विविध प्रकार के कल्याण-कार्य करने वाले विभागों और अभिकरणों के बीच अत्यन्त समन्वयपूर्ण और सहयोग पर आधारित सम्बन्ध स्थापित हो।

अन्त में यह कहना अनुचित न होगा कि एलिजाबेथ कालीन निर्धनता-कानून की परिस्थितियाँ यदि इस समय पूर्णतः नहीं समाप्त हो गयी हैं तो समाप्त होने के निकट हैं और उनकी जगह विधेयात्मक दृष्टि से नियोजित ऐसी कल्याणकारी योजनाओं का प्रारम्भ हो रहा है जिनका आधार यह विश्वास है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व के मूल्य तथा रचनात्मक राजकीय सेवाओं के मूल्य को पहचाने बिना वास्तविक सेवा-कार्य नहीं किया जा सकता।

सहायक ग्रन्थ-सूची

पुस्तकें और पुस्तिकाएँ

गार्डन डब्ल्यू ब्लैकवेल तथा रेमाण्ड एफ गाउल्ड––फ्यूचर सिटिजन्स आल––शिकागो, अमेरिकन पब्लिक वेल्फेयर असोशियेशन, १९५२।

सम्बन्ध की जानकारी के लिए देखिए––एनी ई० गेडेस––"दि चेन्जिग रोल आफ ओल्ड एज असिस्टेंस"––प्रोसीडिंग्स आफ दि नेशनल कान्फ्रेंस आफ सोशल वर्क, १९५३, पृष्ठ २३८–२४९।

हेक्टर शेविग्नी--दि ऐडजस्टमेण्ट आफ दि ब्लाईट--न्यू हेवेन, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५०।

एलिजाबेथ डि स्वानित्स तथा कॉर्ल डि स्वानित्स--दि कन्टेन्ट आफ दि पब्लिक असिस्टेन्स जॉब--न्यूयार्क, अमेरिकन एसोशियेशन आफ सोशल वर्कर, (तिथिरहित)।

कॉर्ल डि स्वानित्स--पीपुल एण्ड प्रासेस इन सोशल सिक्योरिटी--वाशिंगटन, डी० सी०, अमेरिकन कौंसिल आन एजुकेशन, १९४८।

अनीता फाट्स--दि नेचर आफ पालिसी इन एडमिनिस्ट्रेशन आफ पब्लिक असिस्टेंस--फिलाडेल्फिया, पेन्सिलवानिया स्कूल आफ सोशल वर्क, १९४३।

सॉल कास मैन--सेलेक्टेड रीडिंग्स फार दि पब्लिक असिस्टेंस वर्कर--शिकागो और स्प्रिंग फील्ड, इलीनोइस पब्लिक एड कमीशन, १९५३।

हेनरी एच० केसलर--रीहैविलीटेशन आफ दि फिजिकली हैण्डीकैप्ड (संशोधित संस्करण), न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५३।

बेन्सन वाई० लेन्डिस--रूरल वेल्फेयर सर्विस--न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४९।

हिलारी एम० लेयेनडेकर--प्राब्लम्स एण्ड पालिसी इन पब्लिक असिस्टेंस--न्यूयार्क, हार्पर एण्ड ब्रदर्स, १९५५।

ग्रेस मार्कस--दि नेचर आफ सर्विस इन पब्लिक असिस्टेंस ऐडमिनिस्ट्रेशन--वाशिंगटन, डी० सी०, सोशल सिक्योरिटी ऐडमिनिस्ट्रेशन, फेडरल सिक्योरिटी ऐजेन्सी, यू० एस० गवर्नमेण्ट प्रिंटिंग आफिस, १९४६।

लेविस मेरियम--रिलीफ एण्ड सोशल सिक्योरिटी--वाशिंगटन, डी० सी०, ब्रूकिंग्स इन्स्टीच्यूशन, १९४६।

आर्थर पी० माइल्स--ऐन इन्ट्रोडक्शन टु पब्लिक वेल्फेयर--बोस्टन, डी० सी०, हीथ एण्ड कम्पनी, १९४९।

हावर्ट ए० रस्क तथा यूजीन जे० टेलर--न्यू होप फार दि हैण्डीकैप्ड--न्यूयार्क, हार्पर एण्ड ब्रदर्स, १९४९।

मैरियेटा इस्टीवेन्सन--पब्लिक वेल्फेयर एडमिनिस्ट्रेशन--न्यूयार्क, दि मैकमिलन कम्पनी, १९३८।

चारलाटे टावले--कामन ह्यूमन नीड्स--वाशिंगटन, डी० सी०, सोशल सिक्योरिटी बोर्ड्स, फेडरल सिक्योरिटी एजेन्सी, यू० एस० गवर्नमेण्ट प्रिंटिंग आफिस, १९४५।

आर्कलाइड व्हाइट--ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ पब्लिक वेल्फेयर (संशोधित संस्करण)--न्यूयार्क, अमेरिकन बुक कम्पनी, १९५०।

एलिजावेथ वीकेन्डेन—दि नीड्स आफ ओल्डर पीपुल एण्ड दि पब्लिक वेल्फेयर सर्विसेज टु मीट देम—शिकागो, अमेरिकन पब्लिक वेल्फेयर एसोशिशेन, १९५४।

महत्त्वपूर्ण लेख

राबर्ट एम० बाल—"सोशल एश्योरेन्स एण्ड दि राइट टु असिस्टेंस"—दि सोशल सर्विस रिव्यू, जिल्द २१, सितम्बर १९४७, पृ० ३३१–३४४।

कार्ल डि स्वानित्स एण्ड एलिजाबेथ डि स्वायनित्स—"दि कान्ट्रीब्यूशन आफ सोशल वर्क टु दि ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ पब्लिक असिस्टेंस"—सोशल वर्क जर्नल, जिल्द २९, जुलाई १९४८, पृ० १०८–११३, १२०; जिल्द २९, अक्टूबर १९४८, पृ० १५३–१६२, १७७।

जेन एम० ह्वाइ—"दि कान्टेन्ट आफ लीविंग एज ए बेसिस फार ए स्टैण्डर्ड आफ असिस्टेंस"—जर्नल आफ सोशल केस वर्क, जिल्द २८, जनवरी १९४७, पृ० ३–९।

ग्रेस मर्कस—"चेन्जेज इन दि थियरी आफ रिलीफ गीविन्ग"—प्रोसीडिंग्स आफ दि नेशनल कान्फ्रेन्स आफ सोशल वर्क, १९४१, पृ० २६७–२७९।

ईडा सी० मेरियम—"सोशल वेल्फेयर प्रोग्रैम्स इन दि युनाइटेड स्टेट्स"—सोशल सिक्योरिटी बुलेटिन, जिल्द १६, फरवरी १९५३, पृ० ३–१२।

हेलेन हैरिस पर्लमैन—"केसवर्क सर्विसेज इन पब्लिक वेल्फेयर"—दि सोशल सर्विस रिव्यू, जिल्द २१, जून १९४७, पृ० १९०–१९६।

ए० डिलाफेल्ड स्मिथ—"कम्युनिटी प्रिरोगेटिव एण्ड दि लीगल राइट्स आफ दि इन्डिविजुअल"—सोशल सिक्योरिटी बुलेटिन, जिल्द ९, अगस्त १९४६, पृ० ६–१०।

—"स्टेट्स रिस्पान्सबिलिटी फार डिफिनिटनेस इन असिस्टेन्स स्टैन्डर्ड्स"—सोशल सिक्योरिटी बुलेटिन, जिल्द १०, मार्च १९४७, पृ० २९–३४।

राबर्ट इ० टान्सेन्ड—"फैक्ट एण्ड फीलिंग इन इलिजिबिल्टी"—जर्नल आफ सोशल वर्क प्रोसेस, जिल्द २, दिसम्बर १९३८, पृ० १५–३१।

केरमिट टी० विल्से—"सोशल केस वर्क सर्विसेज इन दि एड टु डिपेन्डेन्ट चिल्ड्रेन प्रोग्रैम"—दि सोशल सर्विस रिव्य, जिल्द २८, जून १९५४, पृ० १७३–१८५।

टिग्नर-परिवार

कैलिफोर्निया में राजकीय सहायता-कार्य के प्रशासन के लिए जो संविधि बनी है उसकी नियमावली में लिखा है—"इस विधान का उद्देश्य यह है कि ऐसी व्यवस्था की जाय कि पारिवारिक जीवन के संरक्षण के लिए जाति, धर्म और राजनीतिक मत का विचार

किये वगैर जरूरतमन्द व्यक्तियों की शीघ्र और उदारतापूर्ण सहायता की जा सके और वह सहायता इस ढंग से पहुँचायी जाय कि सेवार्थी में आत्म-सम्मान का भाव, आत्म-विश्वास और समाज के लिए उपयोगी नागरिक बनने की अभिलाषा उत्पन्न हो सके।"[१]

कानून में इन शब्दों द्वारा राजकीय सहायता-प्रशासन के अधिकारियों को यह उत्तर-दायित्व सौंपा गया है कि वे योजना के उद्देश्यों को इस ढंग कार्यान्वित करें कि सहायता प्राप्त करने वाले व्यक्तियों पर इस सहायता का विधेयात्मक और रचनात्मक प्रभाव पड़े। ध्यान देने की बात यह है कि उपर्युक्त उद्धरण में "की जाय" क्रिया का प्रयोग किया गया है, जो आज्ञावाचक क्रिया है, अनुमतिवाचक नहीं। राजकीय सहायता-कार्यकर्त्ता को चाहिए कि वह व्यक्तियों और परिवारों के साथ अपने घनिष्ठ सम्पर्क में, कार्यालय म होने वाले प्रत्येक साक्षात्कार में, घरों पर जाकर की गयी प्रत्येक मुकालात में, टेलीफोन पर होने वाली वार्ता म, लिख गये पत्रों में, आय-व्ययक की समीक्षा में, हर समय अपने नाना पक्षों वाले कार्यक्रमों को पूरा करने का इस ढंग से प्रयत्न करे कि सहायता प्राप्त करने वाले हर व्यक्ति की रोजमर्रा की जिन्दगी में कुछ-न-कुछ प्रगति के लक्षण अवश्य दिखाई पड़ें और इस तरह योजना के व्यापक सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति हो सके। इस योजना की प्रशासन-प्रक्रिया में उस रचनात्मक जीवन-दर्शन का योग और प्रतिफलन भी अवश्य होना चाहिए, जिसके बिना ऐसे कार्यक्रमों के उद्देश्य की सिद्धि में सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। विशेष रूप से कार्यकर्त्ता से ऊपर के उत्तरोत्तर उच्चतर अधिकारियों को, जैसे—निरीक्षक, प्रशासक आदि—चाहिए कि वे अभिकरण का वातावरण ऐसा बनायें, ऐसा नतृत्व उत्पन्न करें और कार्यकर्त्ता की ऐसी ठोस सहायता करें कि वह उत्तरोत्तर अधिक प्रभाव-पूर्ण ढंग से इस योजना के आधारभूत उद्देश्यों की पूर्ति के मार्ग पर आगे बढ़ता जाय।

राजकीय सहायता-कार्य का जो उद्देश्य ऊपर बताया गया है, वह कैलिफोर्निया के अतिरिक्त अन्य कई राज्यों की तद्विषयक संविधि में उसी तरह और प्रायः उसी शब्दावली में वर्तमान है, इससे पता चलता है कि इस उद्देश्य के विषय में कोई मतभेद नहीं है। उदाहरण के लिए, यदि हम केलिफोर्निया की विधान-सभा के विगत कुछ अधिवेशनों में राजकीय सहायता-कार्यक्रम के सम्बन्ध में उपस्थित किये गये विभिन्न प्रकार के "नियन्त्रक" प्रस्तावों से उत्पन्न दबाव का विश्लेषण करें तो देखेंगे कि प्रत्येक प्रस्ताव में जनता की इस चिन्ता की अभिव्यक्ति तो हुई है कि उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति किस ढंग से की जाय, पर यह बताने का प्रयत्न किसी प्रस्ताव में नहीं किया गया है कि स्वयं वे उद्देश्य क्या हैं। बहुत-से लोग यह चाहेंगे (या हठ करेंगे) कि राजकीय सहायता भेद-भाव का विचार किये बिना

१. सन् १९३७ की संविधि, अध्याय ३६९, अनुच्छेद १९—कैलिफोर्निया।

और इस तरह दी जाय कि सेवार्थी पराश्रित न होकर अधिक से अधिक आत्मनिर्भर और स्वतंत्र बन सके और उसमें उत्तरदायित्व की प्रवृत्ति और आत्मसम्मान की भावना अधिक जाग्रत हो सके। अतः इस समस्या से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस लक्ष्य तक कैसे पहुँचा जाय।

निश्चय ही अमेरिका में ऐसे लोगों की संख्या अनुपात में अधिक है, जो यह सोचते हैं कि इस प्रकार की राजकीय सहायता प्राप्त करने वाले नौजवान और सक्षम शरीर वाले व्यक्ति में आत्म-सम्मान की भावना केवल सीमित मात्रा में ही हो सकती है अथवा अपेक्षित है और यदि देश के लोगों की आत्म-सम्मान की भावना की रक्षा करनी है तो राजकीय सहायता प्राप्त के अधिकार-सम्बन्धी नियमों को इतना कड़ा और नियंत्रणपूर्ण बनाना चाहिए और सहायता प्राप्त करने के लिए आवेदन-पत्र देनेवाले व्यक्तियों की पात्रता की जाँच इतनी कड़ाई से होनी चाहिए कि बहुत कम व्यक्ति यह सहायता प्राप्त कर सकें। हम लोगों को स्वतंत्रता और अनुत्तरदायित्व-सम्बन्धी अपने ही आवेगों का इतना धुँधला ज्ञान है कि मानव होने के नाते स्वभावतः हम अपने भीतर के ही भय को बाह्य सामाजिक प्रश्नों के संदर्भ में आरोपित करने के आदी हो गये हैं। इसी कारण हम सोचते हैं कि यदि दुनिया में जीवन-यापन बहुत सुविधापूर्ण और आसान हो जायगा तो उससे हमारे भीतर की स्वतंत्रता और आत्म-उत्तरदायित्व की भावना भी मर जायगी।

यहाँ जनपद-कल्याण-विभाग से राजकीय सहायता प्राप्त करने वाले एक व्यक्ति की समस्या का विवरण दिया जा रहा है। इस विवरण से यह स्पष्ट हो जायगा कि उक्त कानून के अभिप्राय को कैसे कार्यान्वित किया जा सकता है। यह इस बात का उदाहरण है कि आधारभूत लक्ष्य तक पहुँचने के लिए जनता के साथ मिलकर उसका सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। चूंकि यह उदाहरण राजकीय सहायता-योजना के केवल एक पक्ष से सम्बन्धित है, जिसे सामाजिक सुरक्षा कानून के चौथे शीर्षक (अध्याय) के अन्तर्गत "आश्रित बच्चों की सहायता का कार्यक्रम" भी कहा जाता है। अतः इस कार्यक्रम के मूल उद्देश्यों को पुनः स्पष्ट कर देना आवश्यक है, क्योंकि उन्हीं के चौखटे के भीतर रहकर अभिकरण को काम करना पड़ता है, जैसा इस उदाहरण में स्पष्ट देखा जा सकता है। संक्षेप में, आश्रित बच्चों की सहायता का उद्देश्य यह है कि ऐसे बच्चों के माँ-बाप या दूसरे रिश्तेदारों को—जिनकी देख-भाल में वे बच्चे रहते हों, ऐसी आर्थिक या अन्य प्रकार की सहायता करना है कि बच्चों को सचमुच 'अपने घर' में रहने का अवसर मिल सके। 'अपने घर' का तात्पर्य ऐसे पारिवारिक वातावरण से है, जिसमें बच्चों का समुचित शारीरिक और मानसिक विकास हो सके, जिससे बड़े होने पर वे हमारे समाज की जटिलताओं के बीच अपना सुनिश्चित और महत्त्वपूर्ण स्थान बना सकें। अतः राजकीय सहायता-कार्यकर्त्ता का

काम यह देखना है कि बच्चों के पालन-पोषण और माँ-बाप-जैसी देख-रेख के लिए जिन बातों की आवश्यकता होती है, वे किसी विशेष परिवार के वातावरण और परिस्थिति में वर्तमान हैं या नहीं। इस तरह कार्यकर्त्ता के विविध पक्षात्मक कर्त्तव्य का केवल यह पक्ष देखना है कि किसी परिवार को कितनी सहायता मिलती है और उस धन का उपयोग उस परिवार के व्यक्ति किस रूप में कर रहे हैं। यदि आश्रित बालक-सहायता-योजना के उद्देश्यों के प्रकाश में राजकीय सहायता-अभिकरण के कार्यों को उपर्युक्त समग्रतामूलक दृष्टि से देखा जाय तो उदाहरण रूप में उपस्थित की जाने वाली निम्न-लिखित समस्या-विवरण की वास्तविक सार्थकता समझ में आ जायगी——

"स्थान——एक बड़े नगर के निकट के अर्द्ध-नगर समुदाय में स्थित जनपद-कल्याण-विभाग का कार्यालय।

टिग्नर-परिवार को पिछले पाँच वर्षों से आश्रित बालक-सहायता-योजना के अन्तर्गत आर्थिक सहायता मिलती रही है। इस परिवार में निम्नलिखित व्यक्ति हैं——श्रीमती लिली टिग्नर,(४६ वर्ष), इनकी पुत्री ऐनाबेली(१५ वर्ष), श्रीमती लिली टिग्नर के दो नाती-नतिनी——इला मे (७ वर्ष) और वाल्टर एबाट (५ वर्ष)। श्रीमती टिग्नर अपने पति और एनाबेली के पिता से सम्बन्ध-विच्छेद कर चुकी हैं, पर उनके पति भी उनके निर्वाह के लिए कोई सहायता करने में अक्षम और असमर्थ हैं। इला मे और वाल्टर एबाट उनकी पुत्री मार्था एबाट की सन्तान है। श्रीमती मार्था एबाट वाल्टर एबाट के जन्म के बाद बीमार होकर जान्सटाउन के राजकीय अस्पताल में भरती हो गयी थीं और इस कारण उन्होंने अपने बच्चों को अपनी माँ के पास भेज दिया था। उनमें पोस्टमार्टम साइ-कोसिस के लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। जान्सटाउन के अस्पताल में अभी वह कुछ दिन रही थीं कि एक दिन उनके पति उनसे मिलने गये और अधिकारियों की अनुमति के बिना ही अपनी पत्नी को लेकर अस्पताल से भाग गये और तब से फिर घर नहीं लौटे। श्रीमती टिग्नर का कहना है कि यद्यपि उनकी लड़की और दामाद कभी-कभी उन्हें पत्र लिखते हैं, पर वे उन पत्रों में अपना पता कभी नहीं लिखते। सम्भवतः वे राज्य के पूरवर्ती स्थानों में इधर-उधर रहते हैं और अपना पता इसलिए नहीं लिखते कि अस्पताल से भागने के जुर्म में पकड़ लिये जायँगे। यह मामला जिस समय मेरे हाथ में दिया गया, श्रीमती टिग्नर दो मास से अभिकरण में नहीं आयी थीं। उनसे सम्बन्धित अभिलेख में यह लिखा था कि उनकी गृहस्थी की हालत बहुत ही असन्तोषजनक थी, गृहस्थी चलाने का स्तर बहुत निम्न था तथा कार्यकर्त्ता को इस बात से भी बहुत असन्तोष था कि श्रीमती टिग्नर इला मे और वाल्टर एबाट के माँ-बाप अर्थात् अपनी लड़की-दामाद के बारे में कुछ अधिक सूचना देने में असमर्थ थीं। उन्हें स्वयं कुछ ज्ञान नहीं था तो वह सूचना कहाँ से देतीं?

१५ अगस्त, ५३—मैंने श्रीमती टिग्नर को पत्र लिखकर यह बता दिया है कि अब उनका मामला पूर्व कार्यकर्त्ता के हाथ से मेरे हाथ में आ गया है। मैंने उसमें यह भी सूचित किया था कि मैं उनसे मिलने के लिए उनके घर पर २९ अगस्त, १९५३ को आऊँगा।"

यहाँ कुछ रुककर इस बात पर गौर करना आवश्यक है कि कार्यकर्त्ता किसी सेवार्थी से मिलने जाने के पहले उसे मिलने का समय अवश्य सूचित कर देता है। पहले से समय निश्चित करके मिलने जाना अभिकरण द्वारा सेवार्थी की सहायता की पद्धति का एक अंग है। इसके कारण सेवार्थी में "आत्म-सम्मान और आत्मनिर्भरता की भावना तथा अच्छा नागरिक बनने की अभिलाषा" उत्पन्न होती है। आत्म-सम्मान की भावना हमेशा हमारी दूसरों के प्रति सम्मान की भावना का ही प्रतिबिम्ब होती है। अतः क्या यह सिद्ध करने की आवश्यकता रह जाती है कि सेवार्थी को 'झेंपू और दब्बू बनाना', बिना समय निश्चित किये उसके घर जाना अथवा और भी सूक्ष्म स्तर पर, उसके प्रति इस बात के लिए अविश्वास करना कि वह निश्चित समय पर कभी मिलेगा ही नहीं, आदि की नीति अपना कर उसमें आत्म-सम्मान की भावना नहीं जगायी जा सकती। यदि सेवार्थी को उसके घर मिलने के लिए पहले से निश्चित समय की सूचना नहीं दी जाती तो इससे कार्यार्थी के मन में यह सन्देह उत्पन्न हो सकता है कि अभिकरण उसकी सेवा के कार्य में उसको उत्तरदायित्वपूर्ण भागीदार बनाने के योग्य नहीं समझता, इसीलिए उसका अविश्वास करता है। किसी व्यक्ति की समस्या हाथ में लेने पर प्रारम्भ में ही यह पद्धति अपनाने का कितना महत्त्व है, यह उक्त मामले का आगे का विवरण पढ़ने से स्पष्ट हो जायगा।

"२९ अगस्त—मैं श्रीमती टिग्नर के घर गया और वहाँ घर में अकेली एनाबेली को पाया। उसने बताया कि उसकी माँ एक पड़ोसी के घर गयी है। वह उसे बुलाने गयी और थोड़ी ही देर में उसकी माँ आ गयीं।

श्रीमती टिग्नर का घर एकदम अव्यस्थित हालत में था। वह गन्दा था, इसमें कहीं कोई तरतीब नहीं थी, बासी भोजन की गन्ध उठ रही थी, एक ओर पुराना कबाड़ पड़ा था, तो दूसरी ओर बहुत दिनों का कूड़ा जमा था, जिससे यह स्पष्ट आभास मिलता था कि घर की कोई चिन्ता नहीं की जाती है। उदाहरणार्थ, कमरे में फर्श पर रोटी का एक सूखा टुकड़ा पड़ा था, जो कई दिन का मालूम पड़ता था, कोने में चीथड़ों और फटे कपड़ों का ढेर पड़ा था, ऐसा प्रतीत होता था कि वह बहुत दिनों से वहीं रखा था। कमरे में बैठने की जगह पाना मुश्किल था और श्रीमती टिग्नर ने जब कुछ अव्यवस्थित वस्तुओं को हटाया तब मेरे लिए बैठने की जगह हुई। स्वयं श्रीमती टिग्नर गन्दे कपड़े पहने थीं और सभी बच्चे भी गन्दे और मैले-कुचैले थे। मैंने गौर किया कि एनाबेली बहुत ही मोटी और थुलथुल थी और अपना अधिकांश समय उन बच्चों के साथ खेलने में ही

लगा रही थी, जो उसकी आधी उम्र से भी कम अवस्था वाले थे। इला मेंऔर वाल्टर एबाट स्वस्थ दिखाई पड़ रहे थे, यद्यपि उन्हें देखने से यह साफ मालूम पड़ रहा था कि उन्होंने कई दिनों से स्नान नहीं किया है। श्रीमती टिग्नर भी एक लम्बी तगड़ी और थुलथुल औरत थीं, किन्तु उनके सोचने और चलने की क्रिया में शिथिलता स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी।

मैंने सबसे पहले उनसे बच्चों के स्वास्थ्य के बारे में पूछा। श्रीमती टिग्नर ने बताया कि और बच्चों की तन्दुरुस्ती तो बिलकुल ठीक है, केवल एनाबेली का मुटापा चिन्ता का कारण बन गया है, उसे अपने भोजन के सम्बन्ध में सावधान रहने की आवश्यकता है, पर जनपदीय चिकित्सालय के डाक्टर ने उसे जो सुझाव दिये हैं, उनका पालन करने में उसे बहुत परेशानी हो रही है। श्रीमती टिग्नर का ख्याल था कि इस तरह के सुझावों को शायद एनाबेली की उम्र वाले किसी भी बालक को मानने में कठिनाई हो सकती है। जब मैंने उनसे कहा कि एनाबेली के मुटापे का अब उसके सामान्य स्वास्थ्य पर बहुत हानिकर प्रभाव पड़ सकता है, और जब वह वयस्क हो जायगी, तब तो और भी बुरा प्रभाव पड़ेगा, तो श्रीमती टिग्नर ने इस बात की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उन्होंने इतना ही कहा कि स्कूल खुलने के पूर्व कभी वह एनाबेली को स्वास्थ्य-गृह में ले जाकर उसके स्वास्थ्य की परीक्षा फिर करायेंगी।

मैंने उनसे पूछा कि क्या उन्हें एबाट और उसकी पत्नी का कोई पत्र मिला है? उन्होंने कहा कि उनका पत्र तो आया है, पर पत्र में वे अपना पता कब लिखते हैं? उसने बताया कि शायद उसकी पुत्री यह सोचती है कि यदि वह अपना पता लिखेगी तो उसे पकड़ फिर जान्सटाउन के पागलखाने में पहुँचा दिया जायगा। उन्होंने इस बात के लिए कुछ पश्चात्ताप भी किया कि पहले उन्होंने ही अपनी पुत्री को पागलखाने भेजवाने का सुझाव दिया था। उन्होंने इस सम्बन्ध में मेरी राय पूछी कि यदि उनकी पुत्री इस क्षेत्र में फिर वापस आ जाय तो उसके साथ क्या बर्ताव किया जायगा। मैंने उनसे कहा कि यह मेरा निश्चित विश्वास है कि यदि उनकी पुत्री यहाँ अस्पताल से बाहर ही सही ठीक ढंग से रहे तो उसे अस्पताल से बाहर रह कर ही वहाँ की चिकित्सा कराने में कोई भय की बात नहीं है, पर इस काम की पद्धति क्या होगी, इसके बारे में तो चिकित्सालय के अधिकारी ही ठीक-ठीक बता सकते हैं। श्रीमती टिग्नर का कहना था कि उन्हें अपनी लड़की और दामाद का आखिरी पत्र गत दिसम्बर में मिला था, और तब से उनका कोई समाचार नहीं मिला है। उन्होंने यह भी कहा कि उस बीच अपने बच्चों के लिए कभी उसने निर्वाह-खर्च नहीं भेजा था।

जिस समय मैं उनसे उनकी लड़की-दामाद के बारे में बातें कर रहा था, मैंने यह महसूस किया कि वह उनके बारेमें जो कुछ जानती हैं, शायद सब नहीं बता रही हैं, कुछ छिपा

रही हैं। इस कारण मैं उनके साथ मिलकर यह अनुमान लगाने लगा कि यदि उनकी लड़की फिर पागलखाने में चली जाय तो क्या होगा और श्रीमती टिग्नर अपने लड़की-दामाद के बारे में जो खबरें जानती हैं, उसे छिपाने का क्या परिणाम हो सकता है। मैंने उन्हें सुझाया कि यदि किसी तरह यह सम्भव हो तो वह अपने लड़की-दामाद को यह लिख दें कि जान्सटउन के अस्पताल के अधिकारियों का श्रीमती एबाट के बारे में क्या ख्याल है। यदि यह हो जाय तो यह इसलिए बहुत महत्त्वपूर्ण बात होगी कि उसे यहाँ लौट कर अस्पताल वालों से अपने मामले का निपटारा कर लेने के लिए प्रेरित किया जा सकेगा। श्रीमती टिग्नर इस बातचीत को चुपचाप सुनती रहीं।

उनके घर की स्थिति के सम्बन्ध में मैंने पूछा कि क्या उनके प्रपौत्र-प्रपौत्री उनसे हमेशा कुछ-न-कुछ माँगते रहते हैं और वह उनकी देख-भाल से सम्बन्धित अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किस रूप में करती हैं? मैंने उनका पक्ष लेते हुए कहा कि छोटे बच्चों की माँगें कुछ-न-कुछ हमेशा लगी ही रहती हैं और विशेष रूप से मुटापे और थुलथुलेपन के कारण शरीर में फुर्ती न रहने से, वह उन सभी माँगों की पूर्ति नहीं कर पाती होंगी। श्रीमती टिग्नर ने तुरन्त यह उत्तर दिया कि बच्चों की देख-भाल उनके लिए कोई भारी काम नहीं है और फिर वे भी तो उन्हीं की तरह की हैं, क्योंकि उन्हीं ने तो उन्हें इतने दिनों तक पाला-पोसा है। जिस समय उन्होंने यह बात कही, उनका स्वर अधिकारात्मक और आत्म-रक्षात्मक हो गया था, यद्यपि उन शब्दों में वास्तविक भावात्मक आवेग उतना नहीं था, जितनी मैंने आशा की थी। घर की अव्यवस्था के सम्बन्ध में तो उन्हें जैसे कुछ चेतना ही नहीं थी। मानों यह तो रोज़-रोज़ का नियमित झमेला है, इसकी कितनी चिन्ता की जाय। तब मैंने खुल कर उनसे कहा कि उनका घर तो बहुत अव्यवस्थित हालत में है, क्या उसे ठीक करने में एनाबेली उनकी कुछ भी सहायता नहीं करती है? मैंने कहा कि यह तो ऐसा काम है, जिसे घरके छोटे लोगोंको ही करना चाहिए। मेरी इन बातोंका सिलसिला फिर घूम-फिर कर इसी बिन्दु पर पहुँचा कि श्रीमती टिग्नर की इस मामले में भी सहायता की आवश्यकता है। इन बातों की उन पर कुछ प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने कहा कि उस दिन उन्होंने घर की सफाई करने की बात सोची जरूर थी और काम शुरू भी कर दिया था, पर बाद में उनमें सुस्ती आ गयी थी, लेकिन उनकी यह योजना अवश्य है किसी दिन सफाई जरूर करेंगी। इस तरह उन्होंने अपने घर की अव्यवस्था के सम्बन्ध में मेरी आलोचना को करीब-करीब स्वीकार कर लिया। मैंने इस बात की प्रशंसा की कि वह अपने बजट के अनुसार खर्च कर रही हैं। फिर उन्होंने कुछ-कुछ विस्तार से अपनी खाद्य-योजना सम्बन्धी बातें बतायीं और कहा कि कई मदों में उन्होंने कटौती कर दी है, ताकि बचा हुआ रुपया कुछ दिन और चल सके।

फिर कुछ देर तक हम लोगों ने एनाबेली और उसकी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में बातें कीं। श्रीमती टिग्नर अपनी स्थिति के सम्बन्ध में फिर जरूरत से अधिक आत्मरक्षात्मक स्वर में बातें करती रहीं। वह यह बात स्वीकार करने को तैयार नहीं थीं कि एनाबेली और अन्य बच्चों में कुछ अन्तर है। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें इसी बात की खुशी है कि एनाबेली छोटे बच्चों के साथ खेलती रहती है। बड़े लड़कों के प्रति अभी उसके मन में कोई रागात्मक भाव नहीं विकसित हुआ है। मैंने उसे सुझाव दिया कि शायद बिना सहायता के एनाबेली का सुधार हो नहीं सकता है। साथ ही मैंने यह भी कहा कि बच्चों के लिए अपने पिता के सम्बन्ध में जानकारी रखना बहुत जरूरी है और सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने पर पिता से सम्बन्धित यह जानकारी बच्चों को माता के सिवा कौन दे सकता है? मैंने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि बच्चे के लिए उनके पिता से सम्बन्धित माता की भावनाओं को जानना भी बहुत आवश्यक होता है, क्योंकि तब माता अपने पति के सम्बन्ध में बच्चे से जो कुछ कहेगी या टिप्पणी करेगी वह कुछ दूसरा ही प्रभाव उत्पन्न करेगा। मैंने उनको बताया कि एबाट के बच्चों के लिए भी इस तरह की सूचना उतनी ही आवश्यक है और यह उत्तरदायित्व भी उन्हीं का है कि उन बच्चों को उनके माँ-बाप के सम्बन्ध में कुछ समाचार बताती रहें। श्रीमती टिग्नर एबाट के बच्चों को "मेरे बच्चो" कह कर पुकारती रही हैं, उन्होंने बताया कि वे भी उनको 'माँ' कह कर पुकारते हैं। यह बता कर उन्हें बहुत सन्तोष हुआ और मैंने अनुभव किया कि वह मुझसे यह आशा कर रही थीं कि मैं इसे उनके प्रति उन बच्चों के स्नेह का प्रमाण समझकर उनकी बातों का समर्थन करूँगा। मैंने उन्हें याद दिलाया कि यह बात कठोर, किन्तु सत्य है कि वह दर असल उन बच्चों की माँ नहीं हैं, और इसकी कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं है जब कि 'माता' के उत्तरदायित्व वाले उनके अन्य अनेक काम पड़े हुए हैं। अतः यदि वह स्वयं इस भ्रम में रहेंगी तो वे बच्चे भी इसी भ्रम में फँस जायँगे। इसलिए यह तो ठीक है कि वह उन्हें प्यार करें, पर साथ ही यह भी आवश्यक है कि वे अपने माँ-बाप के बारे में भी जानें। मैंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि उन्होंने एबाट और उनकी पत्नी की पलायन-सम्बन्धी परिस्थितियों को छिपाने की दृष्टि से उनके बच्चों को उनके सम्बन्ध में कहीं बिलकुल अंधकार में तो नहीं रखा है?

श्रीमती टिग्नर ने इस सम्बन्ध में अनिच्छापूर्वक और लड़खड़ाते हुए शब्दों में अपने विचार व्यक्त किये। बातचीत करते समय उन्होंने कई बार प्रयत्न करने पर अन्त में एक बार एबाट के बच्चों के लिए "मेरे नाती-नतिनी" शब्द का व्यवहार किया। उन्होंने अपनी पुत्री की बीमारी, उसके व्यवहार के सम्बन्ध में अपने हृदय में निहित भय तथा उसके पागलखाने में भेजे जाने की परिस्थितियों के बारे में चर्चा की। उन्होंने तुरन्त यह

स्वीकार कर लिया कि अपनी लड़की को पागलखाने भिजवाने के लिए वह अपने को ही अपराधी समझती हैं और उनकी लड़की इसके लिए उन्हें शायद ही कभी क्षमा कर सकेगी।

उन्होंने बताया कि वे अपने नाती और नतिनी से उनके माँ-बाप के बारे में बातें करती तो हैं, पर वह जो कुछ बातें कर सकती हैं, उन सबको उनके सामने कहने की उनकी आन्तरिक प्रवृत्ति नहीं होती। मैंने उनसे वे बातें पूछीं, जो वह उनसे अबतक बता चुकी हैं, और फिर हम दोनों ने मिलकर निश्चित किया कि वह उनसे कौन-सी बातें बतायेंगी, जिन्हें वे आसानी से समझ सकेंगे। मैंने उनसे यह आशंका व्यक्त की कि सम्भव है, अपने माँ-बाप के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करने पर वे बच्चे उनकी ओर से विमुख हो माँ-बाप के प्रति ही वास्तविक निकटता का अनुभव करने लगें, और शायद इसी भय से वह उनसे उनके माँ-बाप के बारे में अधिक बातें करना न पसन्द करें। उन बच्चों के प्रति उन्होंने जो प्यार दिखाया है और उनके लिए जो कुछ किया है, मैंने उसकी विवेचना करते हुए बताया कि वे बच्चे उसे कभी भुला नहीं सकते, न उनके दिल से उसके प्रभाव को हटाया ही जा सकता है।

मैंने श्रीमती टिग्नर को यह बताने के लिए उत्साहित किया कि उनकी पुत्री एनाबेली अपने पिता के बारे में क्या सोचती हैं। उन्होंने बताया कि उनके और श्री टिग्नर के बीच समय-समय पर पत्र-व्यवहार होता रहता है और एनाबेली भी अपने पिता को पत्र लिखती है। उन्होंने यह भी कहा कि उनके पति उनका और उनकी लड़की का भरण-पोषण करने में अक्षम और असमर्थ थे और जिले के एटार्नी-कार्यालय की एक रिपोर्ट से यह बात प्रमाणित भी हो गयी थी। यही बात उन्होंने एनाबेली को भी समझायी है। वह श्री टिग्नर के साथ अपने विवाह और विवाह के बाद के प्रारम्भिक दिनों की बातों पर चिन्तनपूर्ण ढंग से बातें कीं और बार-बार अपने परिवार के आर्थिक संघर्ष की चर्चा करती रहीं। यद्यपि वह मुझ से बात कर रही थीं, पर उनका ढंग ऐसा था मानों अपने अतीत और वर्तमान जीवन के सम्बन्ध में वह अपने आप से ही बातें कर रही हों। एक बार तो उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें आश्चर्य है कि वह मुझसे ये सब बातें क्यों बता रही हैं, क्योंकि उन्होंने स्वयं इनके बारे में वर्षों से नहीं सोचा है। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि दिल की बातें बाहर निकाल देना अच्छा होता है, क्योंकि इससे कभी-कभी हमें अपने को ही समझने में सहायता मिलती है। उन्होंने यह बात स्वीकार की।

श्रीमती टिग्नर के सम्बन्ध में मेरी सामान्य धारणा यह है कि उन बच्चों के लिए उनके हृदय में सच्चा प्यार है, किन्तु प्यार के स्वरूप के सम्बन्ध में मेरे कुछ प्रश्न या शंकाएँ हैं। शंका का कारण बच्चों की देख-भाल और सेवा-टहल करने में उनकी असमर्थता और अयोग्यता है। बच्चों की देख-भाल से सम्बन्धित मुख्य कार्य उन्हें स्वच्छ रखना, उन्हें प्रशिक्षण देना और उनकी देख-रेख करना है,और ये कार्य ही 'मातृत्व'के सामान्य स्तर के

अनुरूप माने जाते हैं। इतना सब कहने के बाद भी मैं श्रीमती टिग्नर के मुख से इससे अधिक कुछ नहीं कहवा सका कि बच्चों के सम्बन्ध में उनकी जो स्थिति है, उसे वह पूरी तरह स्वीकार करती हैं और जो कुछ है, सब ठीक ही है। उन्होंने जान्सटाउन के पागलखाने की बात को लेकर अपनी पुत्री की स्थिति के बारे में चिन्ता अवश्य व्यक्त की और विशेष रूप से इस बात के लिए पश्चात्ताप प्रकट किया कि उनकी पुत्री उन्हीं के कारण पागलखाने भेजी गयी थी। मेरा यह ख्याल है कि इस साक्षात्कार में उन्होंने इस विषय पर बात करते हुए जितनी भावुकता दिखायी उतनी और किसी विषय पर नहीं। मेरा विचार इस सम्पर्क को आगे भी बनाये रखने का है, ताकि मैं श्रीमती टिग्नर को और भी निकट से जान सकूँ और उनके परिवार के प्रति उनके उत्तरदायित्व से सम्बन्धित समस्याओं के बारे में तथा स्वयं उनके बारे में अपनी अभिरुचि की अभिव्यक्ति कर सकूँ।"

सेवार्थी के साथ हुए इस प्रथम साक्षात्कार में ही कार्यकर्ता की सूक्ष्म दृष्टि ने यह भाँप लिया कि श्रीमती टिग्नर के परिवार के बच्चों की देखभाल कैसे हो रही है और उनके साथ श्रीमती टिग्नर के सम्बन्ध किस प्रकार के हैं। इस सूक्ष्म दृष्टि का महत्त्व तब अधिक स्पष्ट हो जायगा यदि हम इस बात की ओर ध्यान दें कि आश्रित बच्चों की सहायता के कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य बच्चों और उनके माँ-बाप को एक साथ रहने और परिवार-सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को सन्तोषजनक रीति से विकसित करने या रक्षित रखने में सहायता देना है। समाज और व्यक्तियों के हितों से सम्बन्धित सेवा का इससे भिन्न अन्य कोई अच्छा मार्ग नहीं है। उपर्युक्त उदाहरण में कार्यकर्ता को अपने मानव-व्यवहार-सम्बन्धी ज्ञान का सहारा लेना आवश्यक है। यदि वह यह जानना चाहता है कि श्रीमती टिग्नर और उनकी पुत्री एनाबेली उस घर की वस्तुओं और स्थिति को किस रूप में देखती-समझती हैं अर्थात् उनकी दृष्टि में उस स्थिति का क्या अर्थ है, जिसमें उस घर की गन्दगी और अव्यवस्था, एनाबेली का मुटापा, उसकी माँ की इस सम्बन्ध में निश्चिन्तता पर साथ ही एनाबेली से, अत्यधिक दुलार के कारण, घर के काम-धाम में सहायता न लेनेकी प्रवृत्ति जो इस सम्बन्ध में पूछे जाने पर उनकी बातों से ही स्पष्ट है, आदि सभी बातें आ जाती हैं। व्यवहार का अर्थ समझे बिना कार्यकर्ता यह नहीं जान सकता कि वह किन बातों को गौर से देखे और जो कुछ वह देखता है, उसके मूल में कौन-सा तथ्य निहित है। आश्रित बच्चों के कार्यक्रम के उद्देश्यों के सम्बन्ध में यदि उसका दिमाग साफ नहीं है तो श्रीमती टिग्नर के घर जाकर इस समय वह जो कुछ कर रहा है उस क्रिया तथा अपने ज्ञान के बीच वह समन्वय नहीं स्थापित कर सकता है। उसी तरह यदि उसे इस पद्धति के कौशल का पर्याप्त ज्ञान नहीं है तो वह इस प्रसंग के दोनों पक्षों को एक साथ करके, उन्हें एक ऐसी प्रक्रिया का रूप नहीं दे सकता, जो सेवार्थी की स्थिति में, जो समाज

और उस व्यक्ति दोनों के लिए असन्तोषजनक होती है, परिवर्तन लाने के लिए उसके द्वारा किये गये प्रयत्नों में सहायक होती है।

यहाँ इस सम्बन्ध में शायद कुछ और विवेचना करने की आवश्यकता है कि उपर्युक्त उदाहरण में श्रीमती टिग्नर की स्थिति उसके लिए असन्तोषजनक है या नहीं। मैं इस बिन्दु पर इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता कि श्रीमती टिग्नर के मन में किस सीमा तक असन्तोष है, पर एक विषय में उनका असन्तोष बहुत स्पष्ट है। उनके मन में अपनी पुत्री के लिए चिन्ता और उसकी अस्पताल-सम्बन्धी स्थिति को लेकर पर्याप्त असन्तोष है। जब कार्यकर्ता ने उनसे पूछा था कि उन्हें अपने लड़की-दामाद का पता मालूम है या नहीं तो यह प्रश्न सुनकर भी वह कुछ चिन्तित हुई थीं। किन्तु उनकी बातचीत से इस बात का आभास अधिक नहीं मिलता कि उन्हें बच्चों की देखभाल, उनके सभी उचित-अनुचित कामों का अत्यधिक समर्थन करने की अपनी प्रवृत्ति, और विशेष रूप से उनके शारीरिक स्वास्थ्य, आदि के सम्बन्ध में चिन्ता न करने के कारण उनके मन में कोई असन्तोष है। इन बातों की ओर ध्यान देने का यह अर्थ है कि कार्यकर्ता इस आधारभूत सत्य को मान कर तब अपने कार्य का प्रारम्भ करता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने समाज के साथ किसी-न-किसी सीमा तक अपना सामंजस्य स्थापित करने की इच्छा रखता है। समस्त सामाजिक जीवन इसी सत्य पर आधारित है और कोई व्यक्ति सामाजिकता की दृष्टि से स्वस्थ है या अस्वस्थ, इसकी पहचान यही है कि वह अपने सामाजिक समूह की माँगों की पूर्ति करने में किस सीमा तक योग्य या अयोग्य सिद्ध होता है। सामाजिक कार्य—और सामाजिक कार्यकर्ता भी—मानव-व्यक्तित्व के स्वस्थ पक्ष से ही सम्बद्ध होता है, वह उसे समाज के कामों में हाथ बँटाने के लिए, व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों पद्धतियों से, शक्तिमान् बनाता है। श्रीमती टिग्नर की समस्या के सम्बन्ध में अगले कुछ सप्ताहों में कार्यकर्ता ने जो सेवाकार्य किया और उससे श्रीमती टिग्नर की पारिवारिक स्थिति में कुछ ही हफ्तों में जो सुधार हुए उसके अभिलेख को, जिसका एक अंश जो आगे उद्धृत किया जा रहा है, पढ़ने से यह प्रमाणित हो जाता है कि इस तरह के सुधार का कारण व्यक्ति के भीतर निहित शक्ति और उसका आन्तरिक स्वास्थ्य तो है ही, कार्यकर्ता का कार्य-कौशल भी है। जैसा इस अभिलेख को पढ़ने पर पता चलता है, यदि गम्भीर सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में रख कर देखा जाय तो कार्यकर्ता के कार्यों की नवीन सार्थकता स्पष्ट दिखाई पड़ेगी।

जब हम देखते हैं कि कैसे इस कार्यकर्ता ने श्रीमती टिग्नर को अपनी स्थिति के उन तथ्यों की समीक्षा करने के लिए सूक्ष्म तरीके से बाध्य किया, जो उनके तथा अभिकरण के लिए असन्तोष के कारण थे, तो पता चलता है कि श्रीमती टिग्नर के भीतर अपने

घर के बच्चों के लिए एक अच्छी माता बनने की अभिलाषा वर्तमान थी और कार्यकर्ता ने भी उनकी इस इच्छा का आदर किया। उस अभिलेख में कार्यकर्ता ने जो विवेचना प्रस्तुत की है, उसमें बार-बार यह विश्वास दिलाया गया है कि इस समस्या से सम्बन्धित स्थिति में परिवर्तन और सुधार किया जा सकता है, श्रीमती टिग्नर में यह परिवर्तन लाने की क्षमता है, उसे यह कार्य अपने ढंग से और अपनी गति से करने देना चाहिए। कार्यकर्ता श्रीमती टिग्नर के घर की गन्दगी और अव्यवस्था की उपेक्षा नहीं करता और न वह उनसे घर को ठीक करने के लिए दबाव ही देता है। वह उनके साथ उनके बारे में खुलकर और व्यावहारिक शब्दावली में विचार करता है, इस तरह वह श्रीमती टिग्नर की इस बात में सहायता करने का प्रयत्न करता है कि वह अपनी समस्या के मूलतक पहुँच कर उसे सुलझाने के उपायों का स्वयं अन्वेषण करें। इसी कारण कार्यकर्ता न तो घर की सफाई के सम्बन्ध में श्रीमती टिग्नर पर अपनी राय लादता है और न उन्हें इस सम्बन्ध में अपना उत्तरदायित्व अस्वीकार करने का ही अवसर देता है। वह केवल उनके साथ उनकी समस्या पर विचार-विनिमय करता, उसके स्वरूप का स्पष्टीकरण करता और अन्त में उसे सुलझाने का भार उन्हीं पर छोड़ देता है, किन्तु फिर भी वह अनेक प्रकार की उलझनों में फँसी श्रीमती टिग्नर के साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति दिखाकर उन्हें सहारा देता है।

यद्यपि कार्यकर्ता कीश्रीमतीटिग्नर से उनकी लड़की और दामाद के बारे में थोड़ी ही बातचीत हुई, पर उसने श्रीमती टिग्नर के सामने इस सम्बन्ध में एक नया रास्ता सुझाया कि वह अपनी पुत्री को जान्सटाउन अस्पताल के मामले से बचाने में किस प्रकार सहायता कर सकती हैं और किस तरह उसके बच्चों का नये सिरे से और नये रूप में फिर से उत्तरदायित्व ग्रहण कर सकती हैं। कार्यकर्ता ने अपने सामान्य ज्ञान के आधार पर उन्हें मानसिक बीमारी और अस्पताल के कायदे-कानून के बारे में बहुत सी सूचनाएँ दीं। वह भाँप लेता है कि श्रीमती टिग्नर के मन में यह भय था कि कहीं वह फिर अपनी पुत्री का भेद खोल कर उसे संकट में न डाल दें, वह उनकी इस भावना का कि वह अपनी पुत्री की रक्षा करेंगी, आदर भी करता है। फिर भी वह श्रीमती टिग्नर के मन में छिपे भय को शब्दों द्वारा अभिव्यक्त करता है। इससे श्रीमती टिग्नर को उस भय का सामना करने तथा उसे दूर करने का उपाय करने का रास्ता मिल जाता है। कार्यकर्ता उसे बताता है कि यदि श्रीमती एबाट जान्सटाउन के अस्पताल से अपना मामला निपटा लेंगी तो यह कितना महत्त्वपूर्ण कार्य होगा, पर इस बात के लिए वह श्रीमती टिग्नर पर दबाव नहीं डालता, वह इस काम को उन्हीं पर अपनी गति से करने के लिए छोड़ देता है। वह उन्हें यह कहने के लिए बाध्य नहीं करता कि वह अपनी लड़की-दामाद का पता जानते हुए भी छिपा रही हैं, न तो वह उनसे यही वादा कराता है कि वह उन्हें पत्र लिखकर इस सम्बन्ध

में बातें करेंगी। इस प्रथम साक्षात्कार की बातों को ध्यान में रखने पर श्रीमती टिग्नर के साथ हुए दूसरे साक्षात्कार की बातों को जानना और भी दिलचस्प मालूम होगा।

"१२, सितम्बर, ५३——मैंने श्रीमती टिग्नर को लिखकर पहले ही से आज के दिन मिलने का समय निश्चित कर लिया था और इस लिए आज उनके घर उनसे मिलने गया। जब मैं वहाँ पहुँचा तो मेरा ध्यान सर्वप्रथम इस बात की ओर गया कि कमरे की सफाई करने का प्रयत्न किया गया था। मैंने तुरन्त कहा कि आज कमरा कितना अच्छा मालूम पड़ रहा है, सचमुच इसे साफ करने में काफी मेहनत करनी पड़ी होगी। श्रीमती टिग्नर इस बात पर प्रसन्न हुई कि मैंने उनके इस प्रयत्न के परिणाम की ओर ध्यान दिया। बच्चों को भी सफाई से रखने का प्रयत्न किया गया था, यद्यपि उनके कपड़े और बाल आज भी अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित थे।

मेरे वहाँ पहुँचने के कुछ देर बाद ही उन्होंने कहा कि उनका दामाद एबाट शहर में वापस आ गया था और उनसे मिलने भी आया था। उनकी बातों से मालूम होता था कि यह बहुत हाल की घटना है। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या उनकी लड़की के जान्सटाउन के अस्पताल के मामले के निबटारे के संबंध में मैंने कुछ सोचा है, क्योंकि वह उसके पास इस संबंध में कुछ सन्देश भेजना चाहती है। मैंने उनसे सीधे कहा कि इससे उनकी स्थिति दुविधाजनक हो जायगी। लेकिन साथ ही मैंने यह भी कहा कि यह बहुत आवश्यक है कि एबाट और उसकी पत्नी को उनके बच्चों के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में कुछ सन्देश भेजा जाय। मैंने यह भी कहा कि यदि वे इस बात के लिए राजी हों तो मैं भी उनसे मिलकर बात करने का अवसर प्राप्त करना चाहूँगा। मैंने यह सुझाव दिया कि क्यों न पहले एबाट ही मुझसे इसी स्थान पर मिलें। उन्होंने भी कहा कि ऐसा हो सकता है और वह इस सम्बन्ध में उससे बात करेंगी तथा अगले सप्ताह में साक्षात्कार के लिए समय निश्चित कराने का प्रयत्न करेंगी। उनका यह अनुमान था कि उनकी लड़की-दामाद इसी शहर में कहीं काम करते हैं और कुछ दिनों के लिए वे पास के ही एक अन्य शहर में मकान लेकर रहने की बात सोच रहे हैं। श्रीमती टिग्नर ने कहा कि वह स्वयं इस बात के लिए बहुत चिन्तित हैं कि कैसे वह एबाट के साथ मेरी भेंट करायें। अन्त में यह निश्चित हुआ कि अगले सप्ताह में मेरा उनके साथ साक्षात्कार होगा, जिसमें एबाट के अतिरिक्त श्रीमती टिग्नर और उनकी लड़की श्रीमती एबाट भी होंगी। किन्तु यदि उनकी लड़की को यहाँ आने में गिरफ्तार हो जाने का डर हो तो उसे न बुलाना ही अच्छा होगा। मैंने इसके उत्तर में कहा कि मैं उसकी स्थिति के संबन्ध में पता लगाऊँगा, और अगली बार जब यहाँ आऊँगा तो अपने साथ इस विषय की तमाम सूचनाएँ लेता आऊँगा और बताऊँगा कि उसके मामले को सुलझाने के लिए अगला कदम क्या होना चाहिए। श्रीमती टिग्नर

ने इस बातपर संन्तोष प्रकट किया कि एबाट शहर में फिर वापस आ गया है, किन्तु इस सम्बन्ध में उन्होंने विशेष विवरण नहीं बताया, क्योंकि इस विषय पर अधिक बात करने में वह हिचकिचा रही थीं। यह निश्चित हुआ कि जब मैं अगली बार श्रीमती टिग्नर और एबाट से मिलने आऊँगा तो वे एबाट और उसकी पत्नी का ठीक पता तथा उनका आगे का कार्यक्रम मुझसे बतायें। किन्तु इस बार वह उनके रहने के स्थान आदि के बारे में कुछ भी बताने में हिचकिचा रही थीं, मानो वह ऐसा करने के लिए स्वतंत्र नहीं थीं।"

इस तरह हम देखते हैं कि कार्यकर्ता श्रीमती टिग्नर के घर पहुँचकर देखता है कि सचमुच उन्होंने अपने घर की सफाई करने का प्रयत्न किया है। यह सोचना ठीक नहीं होगा कि केवल कार्यकर्ता को खुश करने के लिए ही उन्होंने अपने घर की सफाई की है, क्योंकि इसके पहले वाली मुलाकात में ही कार्यकर्ता ने अपने कौशल से इसका पता लगा लिया था कि श्रीमती टिग्नर अपने घर की अव्यवस्था से असन्तुष्ट थीं। लेकिन अब हम कार्यकर्ता से यह उम्मीद कर सकते हैं कि वह श्रीमती टिग्नर द्वारा किये जाने वाले प्रयत्नों में सक्रिय सहायता प्रदान करेगा, वह सीधे और सरल ढंग से उनके प्रयत्नों का समर्थन करेगा, उन प्रयत्नों की सफलता पर सन्तोष प्रकट करेगा और उसे बधाई देगा, न कि उनके परिणाम की विवेचना करते हुए उनकी कमियाँ और दोष गिनायेगा।

साथ ही यह बात उल्लेखनीय है कि इस बार श्रीमती टिग्नर को कार्यकर्ता से यह बताने में संकोच या भय नहीं होता कि उसका दामाद एबाट शहर में वापस आ गया है। फिर भी उसे इस बात का भय अवश्य है कि कहीं उसके कारण उनकी लड़की संकट में न न पड़ जाय और उसे फिर पकड़ कर पागलखाने में न पहुँचा दिया जाय। इसीलिए वह यह नहीं बताती है कि वह अपनी लड़की से भी मिल चुकी हैं। यह बताने के पहले वह इस बारे में अच्छी तरह जान लेना चाहती है कि पागलखाने के अधिकारी उसके साथ क्या कार्रवाई करेंगे। उसके बाद कार्यकर्ता से उनकी जो बातचीत होती है, उसमें कार्यकर्ता उनकी इस भावना का बराबर आदर करता है कि उनकी लड़की-दामाद की रक्षा होनी चाहिए। वह उनकी इस बात का भी समर्थन करता है कि उनके कारण स्वयं उनकी स्थिति जटिल हो गयी है। फिर भी वह स्पष्ट और ज़ोरदार शब्दों में बताता है कि एबाट और उसकी पत्नी का अपने बच्चों के प्रति जो उत्तरदायित्व है, उसे पूरा करने का तथा मानसिक अस्पताल के साथ श्रीमती एबाट के मामले का निपटारा कर लेने का क्या मूल्य और महत्त्व है। वह श्रीमती टिग्नर और अप्रत्यक्ष रूप में एबाट और उसकी पत्नी की इस इच्छा का बराबर समर्थन करता है कि अभिकरण के साथ उनका सीधा सम्बन्ध स्थापित हो और पागलखाने के अधिकारियों का जो भय उनके मन में है, वह दूर हो। एक बार भी वह श्रीमती टिग्नर से अपनी ओर से यह बात नहीं कहता कि अब उन्हें अभिकरण का (तथा

कार्यकर्ता का भी) सहारा छोड़कर अपनी समस्याओं को स्वयं सुलझाना चाहिए। इसी बिन्दु पर पहुँच कर यह अन्तर स्पष्ट हो जाता है कि अभिकरण का सेवार्थी में उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्य करने की भावना जागृत करके उसे अपने ढंग से काम करने के लिए स्वतंत्र छोड़ देना उचित है अथवा उसे इस तरह उलझाये रखना ठीक है कि वह अभिकरण के प्रति विरोधी भाव रखने लगे, जिससे नयी समस्याएँ पैदा हो जायँ, वह अपने उत्तरदायित्व से कतराने लगे, फिर अभिकरण को उसकी अन्य समस्याओं को भी हाथ में लेना पड़े और इस प्रकार अभिकरण और सेवार्थी दोनों को अन्त में निराशा ही हाथ लगे। यह बात आसानी से समझी जा सकती है कि यदि अभिकरण सेवार्थी के साथ सहयोग करने की पद्धति न अपनाकर उसके साथ इस तरह बर्ताव करता है कि कार्यार्थी अपनी सारी शक्ति अभिकरण के साथ संघर्ष करने में ही लगाने लगता है तो वह अपनी समस्या से सम्वन्धित परिस्थितियों का रचनात्मक सुधार करने में सफलता नहीं प्राप्त कर सकेगा। इस बात का महत्त्व श्रीमती टिग्नर के मामले के अभिलेखों का अध्ययन करने पर अच्छी तरह ज्ञात हो जाता है। उसमें हम देखते हैं कि जब कार्यकर्ता अभिकरण के साथ श्रीमती टिग्नर के प्रारम्भिक सम्बन्ध को उचित रूप में बनाये रखने की पूरी जिम्मेदारी उसी पर छोड़ देता है तो वह अपना उत्तरदायित्व समझ कर अपने घर और बच्चों की देखभाल और व्यवस्था के लिए स्वयं प्रयत्न करने लगती हैं और इस काम में उनकी जागृति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

"१४ सितम्बर, ५३—एवाट एक दिन एकाएक, हमारी आशा के बिलकुल विपरीत, कार्यालय में आया और मुझसे मिलने की इच्छा व्यक्त की। उसने मुझसे मिल कर यह बताया कि वह ऐसा अनुभव करता है कि उसे अच्छी तरह बातें करके दिल का सारा गुबार निकाल देना चाहिए और इसके लिए अब उपयुक्त समय आ गया है। उसने यह सूचित किया कि उसकी सास इसी हफ्ते में एक दिन बहुत ही चिन्ताग्रस्त होकर उसके पास गयी थी और कहा था कि उसके ख्याल से "उन लोगों के बीच की दीवारें अब टूट रही हैं" और अभिकरण का सहारा लेना बन्द करने के लिए यह आवश्यक है कि अब वे एक साथ रहें।

उसने यह स्वीकार किया कि वह और उसकी पत्नी दोनों, उसकी पत्नी के जान्सटाउन अस्पताल छोड़कर भागने के बाद से, बराबर इधर-उधर घूमते रहे और इसका प्रधान कारण यह था कि वह दुबारा उस पागलखाने में भेजे जाने से डरती थी। फिर उसने बताया कि पिछले दिसम्बर में वे इस शहर में वापस आये थे और श्रीमती टिग्नर के घर में ही कुछ दिन रहे थे, पर इस समय तो इसी शहर के एक अन्य भाग में रहते हैं, उनका पता है—१२५, लिण्डन एवेन्यू। वह एलाइड स्टील कम्पनी में नौकरी करता है। उसने अपना बैंक का पास बुक दिखाया जिससे पता चला कि नौकरी से उसे प्रतिसप्ताह ६९.५३ डालर की

आय होती है। उसकी पत्नी को भी अभी हाल में ही 'कान्टिनेण्टल कैन कम्पनी' में नौकरी मिल गयी है और उसे प्रतिसप्ताह ५० डालर मिलते हैं।

एबाट ने बताया कि सन् १९४८ से, जबकि वे यहाँ से भगे थे, लेकर अबतक उसने अपने बच्चों के लिए समय-समय पर कुल मिलाकर करीब डेढ़-दो सौ डालर तथा कुछ कपड़े अपनी सास के पास भेजे थे, पर उसने यह स्वीकार किया कि इतने लम्बे काल के लिए यह धनराशि बहुत कम थी और यदि अभिकरण भी इस बीच उनकी सहायता करता रहा तो इसे दुहरी सहायता नहीं कहा जा सकता। उसने यह भी कहा कि इस अवधि में उनकी हालत भगोड़ों की-सी थी, इसलिए वे किसी भी स्थान पर जम कर रह नहीं पाते थे, जिससे उन्हें बहुत अधिक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। अब यहाँ लौटने पर, जब उन्हें नौकरी मिल गयी हैं तो वे अपने बच्चों का कुछ उत्तरदायित्व लेने की स्थिति में हो गये हैं। लेकिन अब दूसरी कठिनाई यह आ गयी है कि उसकी सास श्रीमती टिग्नर बच्चों को उनके पास भेजने के लिए तैयार नहीं हो रही हैं। उसने बताया कि उसकी सास कहती हैं कि बच्चों के कारण उन्हे दो लाभ हैं, एक तो अभिकरण से उन्हे उनके लिए आर्थिक सहायता मिलती है, दूसरे आवास-परियोजना के अन्तर्गत उन्हे उन्हीं के कारण मकान भी मिला हुआ है। उनका कहना था यद्यपि उसकी सास उसके बच्चों को निस्सन्देह बहुत प्यार करती है, पर साथ ही उसकी प्रवृत्ति बच्चों पर कब्जा करने की भी हो गयी है। उसने यह भी बताया कि उसे और उसकी पत्नी को अपने बच्चों से मिलने के लिए हर बार श्रीमती टिग्नर से अनुमति लेनी पड़ती है और इस बात का उसे बहुत अधिक दुख है कि कभी-कभी तो वह उन्हें उनसे मिलने-जुलने से मना भी कर देती हैं। इसके लिए वह यहाँ तर्क यह देती हैं कि बच्चों के पालन-पोषण का उन्होंने उत्तरदायित्व ग्रहण किया है, जिसके लिए उन्हें इस अभिकरण से आर्थिक सहायता मिलती है और इसी कारण बच्चों का हमेशा उनके साथ रहना आवश्यक है, क्योंकि अभिकरण का सामाजिक कार्यकर्ता किसी भी समय उनके घर पहुँच कर बच्चों के बारे में पूँछ सकता है। उसने कुछ भावुक होकर इन तमाम बातों के लिए अपने को ही दोषी ठहराया, पर यह भी कहा कि वह कुछ निश्चय नहीं कर पाता कि इस सम्बन्ध में उसे क्या करना चाहिए या क्या कर सकना सम्भव है। उसने बताया कि जब उसकी सास ने उससे कहा कि मेरी उससे क्या बातें हुई थी और उस मामले में मेरी दिलचस्पी के प्रति उसकी क्या प्रतिक्रिया थी, तो उसने सोच लिया कि अब समय आ गया है कि वह अभिकरण के कार्यकर्ता के सम्मुख पूरी कहानी बता कर इस आशा से अपनी गलती स्वीकार कर ले कि अब वह स्वयं अपने बच्चों को किसी तरह सँभाल लेगा और उनके लिए आर्थिक सहायता लेकर किसी के आभार का बोझ नहीं उठायेगा। उसने एक बात बार-बार दुहरायी कि यदि उसकी सास को मालूम हो जायगा कि मैं इस तरह

यहाँ मिलने के लिए आया था, तो इस बात का भय है कि उसके ऊपर इसकी बड़ी बुरी प्रतिक्रिया होगी, क्योंकि उसकी सास ने यही तै किया था कि जब मैं अगले हफ्ते श्रीमती टिग्नर के घर जाऊँगा तो उसी समय वह भी अपनी सास के साथ मुझसे मिलेगा। इसी कारण वह आज काम के बाद सीधे अभिकरण कार्यालय में आया है ताकि वह पहले से ही इन सब बातों की सूचना दे दे। उसने बताया कि मेरे श्रीमती टिग्नर के घर जाने पर वह अपनी सास के सामने कुछ नहीं कह पायेगा, इसी कारण वह पहले ही वे बातें बता देने के लिए यहाँ आया था। साथ ही उसने वादा किया कि यदि श्रीमती टिग्नर के सामने मैं इन बातों के बारे में अपनी ओर से उससे कुछ पूछूँगा तो आज की बातों में से कुछ को वह फिर अपनी सास के सामने ही फिर कह देगा ताकि इससे स्थिति साफ हो जाय और कोई अधिक व्यावहारिक योजना बनाना सम्भव हो सके।

एबाट ने बताया कि उसकी सास जिस ढंग से उसके बच्चों की देख-भाल कर रही हैं, उसे देख कर वह बहुत विचलित हो गया है, क्योंकि बच्चे बिलकुल अनुशासनहीन हो गये हैं और उनकी देख-रेख भी अच्छी तरह नहीं की जाती है। उसे इस बात की विशेष चिन्ता थी कि स्वयं श्रीमती टिग्नर को यह समझ नहीं है कि बच्चों को कैसे सिखाया जाय कि क्या अच्छा है और क्या बुरा। मैंने यह अनुभव किया कि उसमें पर्याप्त संवेदन और समझ थी, क्योंकि उसने अपनी सास की उन बातों का वर्णन विशेष जोर देकर किया, जिसमें बच्चों के ऊपर लादे गये अनुशासन और दण्ड की झलक अधिक दिखाई पड़ती है और इस बात का प्रयत्न नहीं दिखाई पड़ता कि उनको स्वयं यह समझने के लिए प्रोत्साहित किया जाय कि उनका कोई विशेष व्यवहार स्वयं उनके तथा दूसरों के लिए किस कारण खतरनाक माना जायगा।

वह इस बारे में ठीक-ठीक और विश्वास के साथ कुछ नहीं बता सका कि बच्चों को अपने घर ले जाने और उनके पालन-पोषण का उत्तरदायित्व ग्रहण करने की उसकी इच्छा का उसकी पत्नी किस सीमा तक समर्थन करेगी। फिर उसका ख्याल था कि उसकी पत्नी अपनी माँ के साथ बहुत अधिक निकटता का अनुभव करती है और साथ ही उससे कुछ डरती और घबराती भी है। इस कारण वह इस बात के लिए विशेष चिन्तित था कि उसके पारिवारिक सम्बन्धों के सुलझे सूत्रों को इस तरह सुलझाने का प्रयत्न करना चाहिए कि सुलझने की जगह वे और भी उलझ कर टूट न जायँ और इस तरह परिवार के सदस्य एक दूसरे से बिछुड़ न जायँ। किन्तु साथ ही वह अपने सास के प्रति इस बात के लिए आभार का अनुभव भी कर रहा था कि उसने अपनी शक्ति भर उसके बच्चों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पालन करने का प्रयत्न किया था, यद्यपि वह उसके तथा उसकी पत्नी के भाग जाने पर बड़ी कठिनाई की स्थिति में पड़ गयी थी।

यहाँ मैंने अपना विचार व्यक्त करते हुए उससे कहा कि यह अत्यधिक महत्त्व की बात है कि श्रीमती टिग्नर को साफ बता दिया जाय कि इस बारे में मैं उनके यहाँ किस उद्देश्य से जा रहा हूँ, अतः वह उसे इस सम्बन्ध में अच्छी तरह समझा दें, मैं अगले हफ्ते उनके पास क्यों जा रहा हूँ। उसने उत्तर दिया कि अगले सोमवार से पहले वह इस सम्बन्ध में अपनी सास से बातें करेगा।"

हमें इस बात पर आश्चर्य हो सकता है कि एबाट किस तरह एकाएक बिना सूचना दिये स्वयं अभिकरण कार्यालय में आ गया था और वहाँ कार्यकर्ता के सामने अपनी गलती स्वीकार की थी तथा अपने बच्चों का उत्तरदायित्व लेने का आग्रह किया था। पर यदि हमें पिछली दो बातें याद होंगी तो उसके यहाँ आने की बात पर आश्चर्य नहीं होगा। वे दोनों बातें ये हैं—(१) प्रत्येक व्यक्ति में विभिन्न मात्रा में बाह्य संसार के साथ अपना सामंजस्य स्थापित करने तथा अपने जीवन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों और शक्तियों के बारे में दुखदायी अनिश्चयता की स्थिति से मुक्ति पाने की इच्छा होती है; (२)—जैसा पहले कहा जा चुका है, इस मामले को उक्त कार्यकर्ता ने श्रीमती टिग्नर और उन्हीं के माध्यम से एबाट और उसकी पत्नी को यह सूचना दे दी थी कि उसे उनकी परीशानी से भरी स्थिति के सम्बन्ध में सचमुच चिन्ता थी, पर साथ ही उसका यह यथार्थ पर आधारित विश्वास भी था कि उनकी समस्या को सबके लिए सन्तोषजनक रूप में सुलझाया जा सकता है। इन दोनों बातों की ओर ध्यान पर एबाट के इस कार्य का अर्थ आसानी से समझ में आ जायगा और उस पर आश्चर्य नहीं होगा।

इस मुलाकात में एब्राट ने कार्यकर्ता से अपनी जो कहानी बतायी उसका अधिकांश उसकी अपनी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए कहा गया था। इस बात के लिए एबाट की आलोचना की जा सकती है कि उसमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वह अपनी सास को अपने बच्चों पर कब्जा करने तथा उन्हें उसके कठोर अनुशासन से, जिसके कारण वह चिन्तित हो गया था, मुक्त करने का प्रयत्न करता, पर वास्तविकता यह है कि यदि पारिवारिक सेवा-कार्य का उद्देश्य कार्यार्थी की इस ढंग से सहायता करना है कि वह अपने उत्तरदायित्व का भार अधिक सफलता से वहन करने लगे, तो फिर एबाट की असफलताओं के लिए उसकी आलोचना करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। इसके विपरीत वह जैसा है, उसे उसी रूप में स्वीकार करना होगा और साथ ही कार्यकर्ता को उसकी शक्ति और सीमा, दोनों को पूरी तरह पहचानना और स्वीकार करना होगा तथा उसकी इस तरह सहायता करनी होगी कि वह अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह अधिक-से-अधिक कर सके। एबाट अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करता था, यह इसी से स्पष्ट है कि वह स्वेच्छा से अभिकरण में आया और अपना उत्तरदायित्व लेने के लिए उसने आग्रह भी किया। कार्यकर्ता के आगे के

अभिलेखों से पता चला है कि अपने बच्चों की जिम्मेदारी उठाने की उसमें क्षमता वर्तमान थी और कार्यकर्ता भी इस काम में उसकी बराबर सहायता करता रहा।

इस मुलाकात की सबसे अधिक दिलचस्प और ध्यान योग्य बात, एबाट की सूचना के अनुसार, उक्त कार्यकर्ता की पिछली दो मुलाकातों के सम्बन्ध में श्रीमती टिग्नर की प्रतिक्रिया थी। उन दोनों मुलाकातों के समय कार्यकर्ता के दृष्टिकोण अथवा उसके द्वारा कही बातों में कहीं भी इस बात का संकेत नहीं था कि वह उन पर यह सन्देह करता है कि वह एबाट और उसकी पत्नी का पता जानते हुए भी छिपा रही हैं, और न उसने उन पर उनका पता बताने के लिए कोई दबाव डालना ही उचित समझा। जैसा पहले दिखाया जा चुका है, कार्यकर्ता का प्रयत्न इतने ही तक सीमित था कि वह श्रीमती टिग्नर को उनकी परिस्थितिगत चिन्ताओं से मुक्त कर दे, ताकि वह अपने उत्तरदायित्व को समझ कर उसे पूरा करने का प्रयास कर सकें और उसे अस्वीकार करने या उससे कतराने की उनकी प्रवृत्ति समाप्त हो जाय। अतः यह सामान्य मानव-अनुभूति का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। कार्यकर्ता की सहायता के कारण श्रीमती टिग्नर को अपना ऊपर से लगाया नकली चेहरा, जिसे वह यत्न से लगाये थीं, बोझ लगने लगा और ज्यों ही उन्हें ऐसी अनुभूति हुई, वह यह भी अनुभव करने लगीं कि उनके तथा अन्य लोगों के बीच की दीवारें ढह रही हैं, खाइयाँ पट रही हैं।

इस समस्या का अगला विवरण पढ़ने से ज्ञात होता है कि उपर्युक्त संकट को पार कर लेने पर परिवार के सदस्य अपने आपसी सम्बन्धों और अभिकरण के साथ अपने सम्बन्ध की गम्भीरता पूर्वक छानबीन करने लगे।

"१९ सितम्बर, ५३—मैं श्रीमती टिग्नर के घर उनसे तथा एबाट से मिलने गया। मैंने गौर किया कि इस बार उनका घर जितना साफ दिखाई पड़ा उतना मैंने इसके पहले कभी नहीं देखा था। स्वयं श्रीमती टिग्नर और बच्चे भी आज बहुत साफ-सुथरे थे और स्वच्छ कपड़े पहने हुए थे। जब मैंने उनके कमरे की सफाई के सम्बन्ध में प्रसंशात्मक टीका की तो उन्होंने तत्काल उसका उत्तर दिया। यद्यपि साक्षात्कार के पूरे समय तक वह शिथिल और बीमार-सी दिखाई पड़ती थीं। एबाट भी वहाँ उपस्थित था, पर वह कुछ लज्जालु और बेचैन दिखाई पड़ता था। वह आश्चर्य से इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि बातचीत कैसे प्रारम्भ होती है। मैंने उसकी पत्नी के बारे में चर्चा करते हुए बातचीत प्रारम्भ की और श्रीमती टिग्नर से प्रायः वे ही प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर कुछ दिन पहले कार्यालय में एबाट से पा चुका था। मैंने ऐसा इसलिए किया कि एबाट श्रीमती टिग्नर के सामने भी वे बातें दुहरा सके। उसने अपनी पहले बतायी प्रायः सभी बातें फिर बतायीं, पर साथ ही वह श्रीमती टिग्नर से बीच-बीच में यह भी कहता जाता था, "अम्मा, तुम जानती हो, मैं

तुम्हें कितना प्यार करता हूँ, पर ये बातें ऐसी हैं, जिन्हें छिपाया नहीं जा सकता, क्योंकि न बताने पर भी ये लोग किसी-न-किसी तरह उनके बारे में पता लगा ही लेंगे।" इस तरह उसने बताया कि श्रीमती टिग्नर के घर में वे कितने दिन रहे तथा उसे और उसकी पत्नी को कहाँ, नौकरी मिली है। उसने यह इच्छा प्रकट की कि अभिकरण उसके सम्बन्ध में जैसी व्यवस्था उचित समझेगा, वह अपनी जीवन-विधि को उसी प्रकार व्यवस्थित करने के लिए तैयार है। उसने बताया कि इस तमाम बातों के बारे में वह अपनी पत्नी के साथ विचार-विमर्श कर चुका है और जो कुछ यहाँ निश्चित किया जायगा, वह उसे स्वीकार करेगी। उसने यह भी कहा कि उसकी पत्नी उसकी इस राय से सहमत है कि उन्हें अपने बच्चों के साथ अधिक घनिष्ठ सम्पर्क में रहना चाहिए। अब श्री टिग्नर भी बातचीत में शामिल हो गयीं। उन्होंने यह आशा व्यक्त की कि वे लोग बच्चों को अपने साथ न ले जाँय तो अच्छा हो, क्योंकि उन्हें उन बच्चों के प्रति बहुत अधिक ममता हो गयी है। उन्होंने कहा कि वही उन्हें पाल-पोस कर बड़ा करना चाहती हैं। उन्होंने यह आशंका प्रकट की कि उसकी लड़की-दामाद इतना अधिक स्थान-परिवर्तन करते रहते हैं कि उनके साथ रहने पर बच्चों की स्कूली शिक्षा की व्यवस्था ठीक से नहीं हो पायेगी। उन्होंने जोर देकर कहा कि यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इस मत के पक्ष में वह जितने तर्क दे सकती थीं, सबको उपस्थित करते हुए उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि उनकी बात स्वीकार कर ली जानी चाहिए। बातचीत के प्रसंग में मैंने उन्हें बताया कि उन दोनों की बातें उनकी अलग-अलग आवश्यकताओं को देखते हुए अपनी-अपनी जगह उचित हैं, पर यथार्थतः इस प्रश्न पर विचार करते समय बच्चों की आवश्यकता पहले देखनी चाहिए, उनकी आवश्यकता यह है कि वे अपने माता-पिता को अच्छी तरह जानें-समझें ताकि वे माता, पिता और नानी इन सबके साथ अपने सम्बन्धों का अलग-अलग रूप पहचान सकें। किन्तु कभी-कभी यह व्यवस्था भी अधिक व्यावहारिक होती है कि बच्चे रिश्तेदारों के साथ रहें। यह समस्या तभी सुलझ सकती है और कोई योजना तभी लागू की जा सकती है जब कि इस समस्या से सम्बन्धित सभी पक्ष—माँ-बाप, नानी और बच्चे, एकमत हों और उस योजना को ठीक से समझें और प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत अधिकारों और कर्तव्यों को समझ कर उस योजना को कार्यान्वित करने को तैयार हो। मैंने उन्हें सूचित किया कि जहाँ तक मेरे विभाग का सम्बन्ध है, विभाग की ओर से दी जाने वाली आश्रित बच्चों की सहायता से सम्बन्धित उनका अनुदान अब तुरन्त बन्द कर दिया जायेगा, क्योंकि बच्चों के माता-पिता अब नौकरी कर रहे हैं और अपने बच्चों का पालन-पोषण करने का उत्तरदायित्व अब स्वयं ग्रहण कर सकते हैं। अब बच्चों की देखभाल से सम्बन्धित जो भी अगला कार्यक्रम होगा उस पर एबाट, उसकी पत्नी और श्रीमती टिग्नर तीनों की स्वीकृति होनी चाहिए, एबाट और

उसकी पत्नी की स्वीकृति का महत्त्व इस कारण और भी अधिक है कि बच्चों के वैधानिक संरक्षक और अभिभावक वे ही हैं। हमारे विभाग की रुचि अब केवल इस बात को जानने में है कि अन्तिम योजना क्या निश्चित हुई, क्योंकि विभाग का सम्बन्ध परिवार के शेष सदस्यों एनाबेली और श्रीमती टिग्नर से तो बना ही रहेगा; सहायता पाने का उनका अधिकार नहीं समाप्त होगा, क्योंकि बच्चों की आर्थिक सहायता बन्द हो जाने पर टिग्नर और एनाबेली को सहायतार्थी-सूची में इसलिए सम्मिलित कर लिया जायगा कि अब तक बच्चों के लिए मिलनेवाली सहायता की धनराशि से ही उनका खर्च भी चलता रहा है और उसके बन्द हो जाने पर इनका काम बिना राजकीय सहायता के नहीं चल सकता है।

इस साक्षात्कार में हम सब लोगों ने मिलकर अनेक योजनाओं के विविध पहलुओं पर विचार किया और अन्त में सर्वसम्मति से यह निश्चित हुआ कि अन्तिम कार्यक्रम निर्धारित करते समय श्रीमती एबाट का उपस्थित रहना आवश्यक है। मने यह सुझाव दिया कि हम लोग अगले सप्ताह में किसी दिन फिर मिलें और उस मुलाकात के समय एबाट की पत्नी भी उपस्थित रहे और इस बीच परिवार के सभी व्यक्ति आपस में इस सम्बन्ध में अच्छी तरह विचार-विमर्श कर लिये रहें कि वस्तुत: वे इला और वाल्टलर की समस्या को किस रूप में सुलझाना चाहते हैं। मैंने यह भी वादा किया कि अगली बार मैं यह पता लगा कर आऊँगा कि विभाग का जो धन एबाट के बच्चों पर खर्च हुआ है, उसको एबाट द्वारा वापस किये जाने के सम्बन्ध में विभाग का क्या निश्चय होगा। मैंने यह भी कहा कि अभी तक मैं इस बात के लिए अवसर नहीं निकाल सका था, पर इस बार यह पता लगा कर आऊँगा कि श्रीमती एबाट के जान्सटाउन अस्पताल से सम्बन्धित मामले में क्या किया जा सकता है और तत्सम्बन्धी अगला कदम क्या होगा, पर इतना तो सामान्य रूप से मुझे मालूम है कि यदि वह अब मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से ठीक चल रही है तो उसे परीक्षण के लिए पागलखाने में दुबारा भेजे जाने का प्रश्न नहीं उठना चाहिए। एबाट ने बताया कि उसने अपने घर पर आज तीसरे पहर मुझे अपनी पत्नी से मुलाकात कराने की व्यवस्था की है। साढ़े चार बजे के करीब वह काम पर से लौटती है, अत: उसने मिलने का वही समय निश्चित किया था। मैंने इसे स्वीकार कर लिया और आशा प्रकट की इन सब बातों के बारे में मैं उसी समय सीधे उसी से बात करूँगा।

इस परिवार की परिस्थिति का मैंने जो अध्ययन किया है उसके आधार पर मेरा यह ख्याल है कि एबाट से उसके बच्चों पर खर्च किया गया धन वापस माँगने के सम्बन्ध में कानून की उस धारा को लागू किया जा सकता है, जिसके अनुसार सेवार्थी की आर्थिक कठिनाई के कारण धन वापस नहीं लिया जाता है। अपने बच्चों की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने की उनकी कोशिशों तथा उनके वर्तमान सीमित आर्थिक साधनों को देखते हुए

मेरी राय है कि जहाँ तक हो सके, उनको इस बात के लिए अधिक-से-अधिक अन्तर्वर्ती समय मिलना चाहिए कि इस बीच अपनी अतिरिक्त चिन्ताओं से मुक्त होकर अपने वर्तमान उत्तरदायित्व को पूरा करने में ही अपनी समस्त शक्ति और क्षमता का उपयोग कर सकें। श्रीमती टिग्नर के साथ मैंने उनकी आय और सम्पत्ति के सम्बन्ध में जो बातचीत की थी, उससे यह पता चलता है कि वह और एनाबेली आश्रित-बालक सहायता-कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता पाने की अधिकारिणी हैं और यह बात इस सम्बन्ध में अभी प्राप्त सूचनाओं से भी प्रमाणित हो जाती है। उनके आयव्ययक से सम्बन्धित व्यवस्था का अन्तिम निर्णय मेरे आज श्रीमती एबाट और अगले सप्ताह सब लोगों से एक साथ मिल लेने के वाद किया जायगा।

बाद में—मैं श्रीमती एबाट से उनके लिण्डन स्ट्रीट वाले घर पर मिलने के लिए गया। उनका छोटा और कम साँजो-सामान वाला कमरा साफ़-सुथरा था और श्रीमती एबाट ने सीधे ढंग से और स्पष्ट शब्दों में स्वयं अपनी समस्या उपस्थित की। उसने अस्पताल से सम्बन्धित अपने विचारों और उसके प्रति अपने आन्तरिक भय की भावना के बारे में बातें की और विशेष रूप से अपनी इस चिन्ता की चर्चा की, जो उसके मन में हमेशा बनी रही है कि कहीं उसे फिर पकड़ कर उस पागलखाने में न भेज दिया जाय। इस साक्षात्कार में भी मुझे प्रायः वे ही सूचनाएँ मिलीं, जो पहले एबाट और श्रीमती टिग्नर से मिल चुकी थीं। मैंने देखा कि हम लोगों में अबतक जितनी भी बातें हुई थीं, उसे उनकी ठीक-ठीक सूचना मिली है और वह अपने पति के साथ यथासम्भव सहयोग कर रही है। वह अपनी नौकरी की बात को ध्यान में रखकर अपने बच्चों की जिम्मेदारी लेने के लिए विशेष उत्सुक नहीं थी। मैंने उसे इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करने का मौका देने के लिए पूछा कि वह जब दिन में काम करने के लिए चली जायगी तो उस समय बच्चों की देख-रेख कौन करेगा। मैंने केवल आशंका व्यक्त की थी, उस सम्बन्ध में अपना कोई निर्णयात्मक मत नहीं उपस्थित किया था। इसी प्रश्न के उत्तर में उसने उपर्युक्त विचार व्यक्त किये। पर साथ ही उसने यह भी कहा कि जो कुछ भी उचित निर्णय किया जायगा, वह उसे मानने को तैयार है। उसका ख्याल था कि चूंकि वह बहुत दिनों तक बच्चों से अलग रहने के कारण अपने बच्चों से अच्छी तरह परिचित नहीं हो सकी है, अतः वह उनके अधिक निकट रह कर उनसे हिल-मिल कर जीवन बिताना चाहती है, पर साथ ही वह अपनी माँ की भावनाओं को भी ठेस नहीं पहुँचाना चाहती है, क्योंकि उसकी माँ ने ही बच्चों को उनके माता-पिता की अनुपस्थिति में पाला-पोसा है। उसकी इस दुबिधा से यह व्यक्त होता था कि आगामी कार्यक्रम के सम्बन्ध में उसके मन में मिश्रित भाव थे। अर्थात् एक ओर तो वह इस बात के लिए चिन्तित थी कि जो भी योजना बने, वह उसकी इच्छा के अनुकूल हो, दूसरी ओर वह

यह भी सोचती थी कि वह अपने पति की इच्छाओं के साथ पूरी तरह सहयोग करे। हम दोनों ने मिलकर कुछ देर तक इस सम्बन्ध में विचार किया कि बच्चों के उनके पास आ जाने पर क्या समस्याएँ उपस्थित हो सकती हैं, इस उम्र के बच्चों की क्या आवश्यकताएँ होती हैं और उन्हें माता-पिता का वह प्यार और दुलार किस प्रकार दिया जा सकता है, जिसकी इस उम्र के बच्चों के लिए सबसे अधिक आवश्यकता होती है। श्रीमती एबाट ने इस सम्बन्ध में अपने बचपन के अनुभवों की कई स्मृतियाँ सुनायीं और बताया कि उसका ख्याल है कि भिन्न-भिन्न बच्चों के व्यक्तित्व में अन्तर होता है और उनके व्यक्तित्व के अनुसार ही उनके माता और पिता को अलग-अलग उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए। मैंने कहा कि बच्चों की भावनाओं की दृष्टि से उसका यह विचार बिलकुल सही है, पर मैंने अपना यह सन्देह भी व्यक्त किया कि इन कामों के लिए वस्तुत: उसमें कितनी क्षमता है और क्या उसके मन में बच्चों की पूरी जिम्मेदारी लेने की सच्ची इच्छा है? इस प्रसंग में बात करते हुए उसने बताया कि इस समय तो उसकी मुख्य चिन्ता का विषय उसकी अपनी निजी समस्या ही है। हम लोगों ने मुख्यत: इस विषय में बातें कीं कि उन्होंने सहसा इतना बड़ा भार कैसे उठा लिया। सचमुच अभिकरण के पास सीधे अपनी समस्या लेकर जाना और अपनी-अपनी कठिनाइयों के बारे में विचार-विमर्श करना एक महत्त्वपूर्ण क़दम था। अन्त में यह तै हुआ कि हमारी श्रीमती टिग्नर और एबाट के साथ होने वाली अगली मुलाकात के समय वह भी उपस्थित रहने का प्रयत्न करेगी, जबकि हम सब मिलकर आगामी कार्यक्रम के सम्बन्ध में उन्हीं बातों के आधार पर बातचीत करेंगे, जिन्हें मैंने श्रीमती टिग्नर और एबाट को पहले ही बता दिया था। उसने यह भी कहा कि मैं अगली बार यह पता लगा कर आऊँ कि जान्सटाउन अस्पताल से सम्बन्धित उसका मामला कैसे निपट सकता है।"

कार्यकर्ता ने जिस स्पष्टता और पूर्णता के साथ उपर्युक्त दोनों साक्षात्कारों का अभिलेख प्रस्तुत किया है, उससे पता चलता है कि उसने इस परिवार के सदस्यों को अपने व्यक्तिगत और सामूहिक उत्तरदायित्व को समझने में सहायता करने की बहुत ही अमोघ और अविचल पद्धति अपनायी थी। एबाट कार्यकर्ता की उपस्थिति का लाभ उठा कर ही यह कहने का साहस कर पाता है, "मैंने इसलिए ये बातें बता दीं कि मेरे न बताने पर भी इन लोगों को उनका पता किसी-न-किसी तरह लग ही जाता।" उसके इस कथन का महत्त्व इस बात में है कि इससे उसे अपने ही मूल्य की नये सिरे से पहचान होती है और अपने बच्चों के जीवन-निर्माण में उत्तरदायित्वपूर्ण योग देने के अपने अधिकार का नये रूप में ज्ञान होता है। श्रीमती टिग्नर अभिकरण को धोखा देने और अपने लड़की-दामाद से उनके बच्चों के प्रति उनके वैधानिक अधिकारों को हड़पने के अपराध को छिपाने के लिए जोरदार शब्दों में

यह तर्क उपस्थित करती हैं कि उसके लड़की और दामाद हमेशा इधर उधर भागते फिरते हैं, कहीं एक जगह स्थिर होकर नहीं रहते, जिससे उनके साथ रहने पर बच्चों की स्कूली शिक्षा की स्थायी और समुचित व्यवस्था नहीं हो सकती। कार्यकर्ता इस तर्क को यह कहकर समाप्त कर देता है कि शायद वह बच्चों के प्रति अपनी अत्यधिक ममता तथा उन्हें हमेशा अपने साथ रखने की आवश्यकता के कारण ऐसा कह रही हैं। साथ ही कार्यकर्ता इस विषय पर भी प्रकाश डालता है कि बच्चों के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें नानी और माता-पिता के साथ अपने अलग-अलग सम्बन्धों का समुचित ज्ञान हो। कार्यकर्ता कहता है कि परिवार के प्रत्येक सदस्य को यह बात अच्छी तरह समझने की कोशिश करनी चाहिए कि वह क्या करना चाहता है और उसे करने की उसमें कितनी क्षमता है। वह बताता है कि प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी प्रश्न से सम्बन्धित विभिन्न मार्गों को तथा उनके सम्भावित परिणामों की जानकारी होनी चाहिए, उसके बाद ही उसे किसी एक मार्ग पर चलने का निर्णय करना चाहिए।

"२५ सितम्बर, ५३—मैंने जान्सटाउन अस्पताल की सामाजिक कार्यकर्त्री से टेलीफोन पर बातें कीं। यह पता चला कि श्रीमती एबाट का नाम अस्पताल से मुक्ति मिलने के पहले ही बिना अनुमति के वहाँ से भाग जाने वालों की सूची में अब भी दर्ज है। यह भी ज्ञात हुआ कि श्रीमती एबाट मानसिक-स्वास्थ्य-कार्यकर्ता के दफ्तर से सम्पर्क स्थापित करके उसके निर्णय के आधार पर अस्पताल के मामले में मुक्ति पा सकती हैं। मानसिक-स्वास्थ्य-कार्यकर्ता पहले उसे साक्षात्कार के लिए बुलायेगा और साक्षात्कार के बाद उसके अस्पताल से जाने के समय से लेकर अबतक उसके कार्यों और अनुभवों के आधार पर एक प्रतिवेदन तैयार करेगा और यदि उसे श्रीमती एबाट की मानसिक स्थिति सन्तोषजनक मालूम पड़ेगी तो वह अस्पताल से उसकी मुक्ति के लिए संस्तुति करेगा। मैंने जान्सटाउन अस्पताल की सामाजिक कार्यकत्री से श्रीमती एबाट के बारे में सब कुछ बताया और वह सब सुनने के बाद उसने यह बताया कि उसके ख्याल में अब श्रीमती एबाट को अस्पताल में रखने का प्रश्न नहीं उठना चाहिए और अस्पताल से उसकी मुक्ति के लिए संस्तुति की जा सकती है।

बाद में मैंने मानसिक स्वास्थ्य-केन्द्र की कुमारी लीडिया पार्सन्स से बातें की और अगले शुक्रवार को उससे श्रीमती एबाट को मिलाने के लिए समय निश्चित किया। कुमारी पार्सन्स ने भी श्रीमती एबाट के मामले के बारे में मुझे वही सूचना दी जो अस्पताल की कार्यकत्री ने दी थी।

निरीक्षिका के साथ विचार-विमर्श—निरीक्षिका श्रीमती ओल्सन के साथ मेरी बात-चीत हुई और यह तै पाया कि इला मे और वाल्टर एबाट को उनके माता-पिता को नौकरी

मिल जाने के कारण गत १ जनवरी से अबतक सहायता पाने का अधिकार न रहने पर भी कुल ३२८ डालर की जो अतिरिक्त धनराशि सहायता के रूप में दी जा चुकी है, उसे वापस लेने के सम्बन्ध में कानून की आर्थिक संकट वाली धारा लागू की जाय। आर्थिक संकट वाली धारा की हमारी दृष्टि में यह व्याख्या हो सकती है कि सहायतार्थी परिवार को ऐसी हर प्रकार की सहायता मिलनी चाहिए, जिससे उसके सदस्य तत्काल अपने उत्तर-दायित्व का भार वहन करने में समर्थ हो सकें और साथ ही जिस आर्थिक और भावात्मक संकट से गुजर रहे हैं, उसे देखते हुए अब भी उन्हें आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए ताकि भविष्य में भी अपने उत्तरदायित्व को ग्रहण करने की उनकी क्षमता बनी रह सके। यह व्याख्या एबाट, उसकी पत्नी और श्रीमती टिग्नर को भी बता दी जायगी। जहाँ तक बच्चों के माता-पिता का सही पता न बताने और बच्चों के पालन-पोषण की उनके वर्तमान सामर्थ्य की बात छिपाने का अपराध एबाट और श्रीमती टिग्नर, दोनों का समान रूप से माना जायगा। यद्यपि उनके ऐसा करने का कारण कुछ ऐसी बातें थीं, जिनसे अपनी परिस्थितियों के सम्बन्ध में निर्णय करते समय उनका विवेक अच्छी तरह काम नहीं कर पाता था।"

"२७ सितम्बर, ५३—आज एबाट, उसकी पत्नी और श्रीमती टिग्नर के साथ मिलकर मैंने विचार-विवर्श किया। आज भी मकान सुव्यवस्थित दशा में था और बच्चे तथा उनके माँ-बाप सभी खूब साफ़-सुथरे और सजे-बजे दीख रहे थे। उन लोगों ने पहले से ही एक योजना पर अच्छी तरह विचार करके उसे स्वीकार कर लिया था और मेरे सामने उस योजना की रूपरेखा के सम्बन्ध में सबने अपने विचार व्यक्त किये। योजना यह थी—एबाट और उसकी पत्नी का विचार था कि उनकी वर्तमान नौकरी को ध्यान में रखते हुए बच्चों को अभी उनकी नानी के पास ही छोड़ देना ठीक होगा। किन्तु साथ ही वे अपना यह अधि-कार भी बनाये रखना चाहते थे कि वे पिता-माता होने के नाते बच्चों के साथ एक निश्चित सीमा के अन्तर्गत जितना चाहें मिल-जुल सकें। इस सम्बन्ध में उनका जो आपसी मतभेद था, उस पर श्रीमती टिग्नर के साथ उन्होंने दुबारा विचार-विमर्श किया और श्रीमती टिग्नर ने बताया कि वह इस योजना को पसन्द करती हैं तथा इस सम्बन्ध में वह उनके साथ हर तरह सहयोग करेंगी। ज़हाँ तक बच्चों के रहने और भोजन आदि के खर्च का प्रश्न था, उसके बारे में श्रीमती टिग्नर ने कहा कि उसे केवल बच्चों के भोजन का पूरा खर्च चाहिए, इसके अलावे और धन की उसे इस समय कोई आवश्यकता नहीं है। मैंने उनके सामने इस विषय का एक सुनिश्चित आयव्ययक बनाकर उपस्थित किया और उनके प्रत्येक मद पर उपस्थित सभी व्यक्तियों ने अपने विचार व्यक्त किये। उनके भोजन तथा मकान के भाड़े के उनके हिस्से का कुल खर्च ५६ डालर अनुमानित किया गया। यह निश्चित हुआ

कि एवाट और श्रीमती एबाट श्रीमती टिग्नर को ५६ डालर देंगे। श्रीमती टिग्नर ने यह बात स्वीकार कर ली। यह भी तै हुआ कि बच्चों के कपड़े तथा अन्य आकस्मिक मदों का खर्च एबाट को देना होगा।

अधिक भुगतान की वापसी—मैंने एबाट, उसकी पत्नी और श्रीमती टिग्नर के सामने उस धनराशि की वापसी के सम्बन्ध में अभिकरण का दृष्टिकोण उपस्थित किया, जिसका बच्चों की सहायता के रूप में श्रीमती टिग्नर को अधिक भुगतान किया गया था। मैंने आर्थिक संकट वाली धारा की उपर्युक्त व्याख्या उपस्थित करते हुए, उन्हें समझाया कि मुझे उसकी यह व्याख्या क्यों करनी पड़ी है। यह व्याख्या सुनकर उन लोगों पर बहुत अच्छी प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने इसके लिए मेरे प्रति आभार प्रकट किया और बताया कि इस बातचीत के फलस्वरूप उन्हें अपनी चिन्ताओं से मुक्ति मिल गयी है। इस विषय पर श्रीमती टिग्नर ने जो बातें कीं उससे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों उनके सिर से कोई बहुत बड़ा बोझ उतर गया है और वह यह महसूस कर रही हैं कि जानबूझ कर उन्होंने जो गलती की थी उसका उन्हें कितना बड़ा दण्ड भोगना पड़ा है। मैंने यह अनुमान किया कि पिछले दिनों उनमें जो अव्यवस्था और अस्वच्छता की प्रवृत्ति आ गयी थी, उसका कारण यद्यपि मैं उस कारण की मात्रा और सीमा ठीक-ठीक नहीं बता सकता, उनका यही अपराध-ज्ञान था। जो भी हो, पर इस सम्बन्ध में सबकी यही राय थी कि कल्याण-विभाग का यह निर्णय अत्यन्त न्यायोचित है और वर्तमान योजना ऐसी है। जिसको कार्यान्वित किये जाने की पूरी सम्भावना है। एबाट और उसकी पत्नी ने बताया कि वे आशा करते हैं कि अन्त में वे अपने बच्चों को अपने पास ही रखेंगे, पर यह तभी सम्भव होगा जब कि अपना कर्ज चुका लेने के बाद वह अपनी नौकरी छोड़ देगी।

मैंने श्रीमती एबाट को बताया कि जान्सटाउन राजकीय अस्पताल की सामाजिक कार्यकत्री से मेरी क्या बातें हुई हैं। श्रीमती एबाट ने इस सम्बन्ध में होने वाले विचार-विमर्श की प्रत्येक बात पर कुछ-न-कुछ मत व्यक्त किया। उन्होंने बताया कि वह अपने पति के साथ अगले शुक्रवार को मानसिक स्वास्थ्य-केन्द्र में साक्षात्कार के लिए जायेंगी और वहाँ से लौटने पर उसके परिणाम की मुझे सूचना देंगी। लगता था कि पहले वह जिस भय से परेशान रहा करती थीं, अब अब दूर हो चुका था और अब अस्पताल के किसी व्यक्ति से मिलने से कतराने की उसकी पहले वाली प्रवृत्ति समाप्त हो गयी थी। उसने बताया कि वह अब मेरे साथ पूर्ण स्वतंत्रता अनुभव कर रही हैं और उसका ख्याल है कि जिस तरह अत्यन्त समझदारी और न्यायोचित ढंग से उसकी अन्य समस्याएँ सुलझायी गयी हैं, उसी तरह उसे पूर्ण आशा और विश्वास है कि उसकी जान्सटाउन अस्पताल वाली समस्या भी सुलझ जायगी। मैंने यह समझने में उनकी मदद की कि इस समस्त अनुभव के

कारण उसमें अधिक आत्मविश्वास आ गया है, साथ ही मैंने यह आशा भी व्यक्त की जब वह मानसिक स्वास्थ्य-केन्द्र में साक्षात्कार के लिए जायेगी तो यह उसके ऊपर निर्भर करता है कि वह इस तरह बातचीत करे कि उसका परिणाम उसके हित के अनुकूल हो।"

सारांश—मैं सोचता हूँ कि आज का साक्षात्कार इस परिवार की उलझनपूर्ण परिस्थितियों के अनेक प्रश्नों को हल करने की दृष्टि से बहुत सफल रहा। मेरा ख्याल है कि इस परिवार के सभी व्यक्ति अब एक ऐसी योजना को मानने तैयार हो गये हैं, जिसको कार्यान्वित करने के लिए सबको अपने-अपने उत्तरदायित्व का भार वहन करना पड़ेगा। मैं समझता हूँ कि इस मामले में हमने जो सेवा-कार्य किया है, उसके मुख्य अंग ये हैं—सहायता की पात्रता से सम्बन्धित स्थिति को स्पष्ट करना, पालन-पोषण की विधि के सम्बन्ध में कुछ बातें बताकर सहायता करना और परिवार के बालक और वयस्क सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करके उनका ज्ञान कराना। इतना काम तो पूरा हो चुका है, और आगे अभिकरण के सामने इस परिवार की जो समस्याएँ आयेंगी, उन्हें भी आवश्यकता पड़ने पर आमने-सामने बातचीत करके सुलझाया जायगा। मेरा ख्याल है कि श्रीमती टिग्नर को अभी इस बात की आवश्यकता है कि बच्चों की आवश्यकताताओं को और भी अच्छी तरह समझने तथा उन्हें अनुशासन और नियंत्रण में रखने के तरीकों के सम्बन्ध में उनकी अधिक-से-अधिक सहायता की जाय।

२८ सितम्बर, ५३—आज श्रीमती टिग्नर को एक सूचना भेजी गयी, जिसमें लिखा गया है कि आश्रित बालक-सहायता-कार्यक्रम के अन्तर्गत श्रीमती टिग्नर को जो १६६ डालर की सहायता मिलती थी, उसकी राशि घटाकर अब १०१ डालर कर दी गयी है और इला मे तथा वाल्टर एबाट को दी जाने वाली सहायता अब आगामी ३१ सितम्बर, ५३ से एकदम बन्द कर दी जायेगी।"

अभिलेख के अन्त में हम देखते हैं कि परिवार का प्रत्येक व्यक्ति घर के बच्चों के प्रति अपने-अपने उत्तरदायित्व को अपने-अपने ढंग से ग्रहण करने को तैयार है। ऊपर उक्त अभिलेख का जो अंश उद्धृत किया गया है, वह वैयक्तिक समाज-सेवा-कार्य की प्रक्रिया के केवल एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है। अभिकरण के साथ उस परिवार का जो सम्बन्ध है, उसका प्रतिनिधित्व उसमें नहीं हुआ है। जैसा कार्यकर्ता ने अभिलेख में लिखा है, बहुत कुछ सफलता तो प्राप्त की जा चुकी है, किन्तु अभी भी बहुत काम करने को बाकी है।

अब आगे की योजना की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि श्रीमती एबाट की जान्सटाउन अस्पताल वाली समस्या आसानी से हल हो जाय, यद्यपि इस विषय का परिणाम

जानने के पहले ही यह अभिलेख समाप्त हो जाता है। हम इस बारे में भी अब निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते कि एबाट के बच्चे हमेशा अपनी नानी के पास ही रहेंगे अथवा अपने माँ-बाप के पास चले जायँगे। इस बात की सम्भावना अधिक है कि जब तक उनके माता-पिता कोई नया मकान लेकर सन्तोषजनक रूप में नहीं रहने लगते तब तक बच्चे श्रीमती टिग्नर के साथ ही रहेंगे। वे कहाँ रहते हैं इससे अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि किसके साथ रहते हैं, जो उनके पालन-पोषण के विविध पहलुओं के प्रति अपने उत्तरदायित्व का अनुभव कर सके। उसके बाद कार्यकर्ता का यह कार्य होगा कि वह परिवार के प्रत्येक सदस्य की, अपने उत्तरदायित्व का यथासम्भव निर्वाह करने के प्रयत्नों में, सहायता करे।

निश्चय ही अभी बहुत कुछ करना बाकी है, जो इस राजकीय जन-सहायता-अभिकरण के कार्यकर्ता की कौशलयुक्त अनवरत सेवा द्वारा ही सम्भव हो सकता है। किन्तु जो सफलता प्राप्त हुई है, उसका अन्दाजा इसी से लग सकता है कि छः सप्ताह पूर्व कार्यकर्ता जब श्रीमती टिग्नर के घर गया था तो उस समय उस घर में कितनी गंदगी और अव्यवस्था थी तथा श्रीमती टिग्नर कितनी निराशा की स्थिति में थीं, किन्तु अब हालत इतनी बदल गयी है कि हम यह आशा कर सकते हैं कि एबाट के बच्चों का पालन-पोषण अब पहले से अधिक अच्छे ढंग से होता रहेगा। यदि हम इस बात की ओर ध्यान दें कि इस विभाग द्वारा संचालित आश्रित बच्चों की सहायता के कार्यक्रम का उद्देश्य माता-पिता के लिए एक ऐसे घर की व्यवस्था करने में सहायता करना है, जिसमें बच्चे अच्छी तरह रहकर विकसित हो सकें, तो पता चलेगा कि इस परिवार की सहायता करते समय कार्यकर्ता ने अपने प्रत्येक कार्य और प्रत्येक शब्द से इस उद्देश्य को पूरा करने का प्रयास किया है। इस मूल उद्देश्य को उसने एक क्षण के लिए भी नहीं भुलाया। परिवार की समस्या का पता लगाते समय कार्यकर्ता को जब श्रीमती टिग्नर द्वारा अभिकरण को धोखा दिये जाने की बात मालूम हुई, उस समय इस बात की आशंका थी कि उपर्युक्त उद्देश्य की ओर से उस का ध्यान हट जाता। यह भी हो सकता था कि इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि श्रीमती टिग्नर ने जान-बूझ कर धोखा दिया या नहीं, वह आवेश में आकर उनसे उनको की गयी अधिक भगतान की रकम की पाई-पाई वसूल करने की बात सोचता, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। समस्या से सम्बन्धित व्यक्तियों की वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, उसने राजकीय सहायता-सम्बन्धी कार्यक्रम के निम्नलिखित उद्देश्य और अभिप्राय को अधिक-से-अधिक पूरा करने का प्रयास किया —"...सहायता इस प्रकार दी जायगी कि उससे व्यक्ति में आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता और समाज के लिए उपयोगी और एक अच्छा नागरिक बनने की भावना का उदय और विकास हो सकेगा।"

अध्याय ८

बाल-कल्याण-सेवाएँ

परिवार और समूह में बच्चों का स्थान

किसी विशेष बच्चे या सामान्य बच्चों के कल्याण से सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार करने वाले व्यक्ति को अन्ततः यह अनुभव अवश्य होगा कि जो स्थिति बच्चों के हितों को प्रभावित करती है, वह उस समूचे समूह के जिसका वह बच्चा एक सदस्य है, हितों को भी भी प्रभावित करती है। इस बात को प्रामाणित करने के लिए हम कुछ ऐसी परिस्थितियों का परीक्षण करें, जो बच्चों के कल्याण से सम्बन्धित हैं, ताकि हम यह देख सकें कि किसी विशेष समुदाय के बच्चों की दुनिया और वयस्कों की दुनिया में परस्पर क्या सम्बन्ध है। बच्चा जन्म ग्रहण करता है, अब यदि हम केवल शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से देखें तो पता चलेगा कि जन्म के बाद से ही उसके स्वास्थ्य की सुन्दर व्यवस्था के लिए कुछ ऐसी बातों की आवश्यकता है, जिनका पहले से ही वर्तमान रहना आवश्यक है। बच्चे के माँ-बाप का स्वास्थ्य कैसा है, उस समूह के अन्य लोग स्वस्थ हैं या नहीं, समुदाय का सामान्य स्वास्थ्य कैसा है, ये बातें तथा कुछ और भी बातें बच्चे के स्वास्थ्य की प्रारम्भिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाली होती हैं। बच्चा बढ़ता है और विकास की इस प्रक्रिया में वह अपने परिवेश का ज्ञान भी प्राप्त करता चलता है, फिर उसे स्कूल की शिक्षा-व्यवस्था के भीतर प्रवेश करना पड़ता है। उसे जो शिक्षा दी जाती है उसका स्वरूप-निर्धारण उसके माता-पिता या परिवार वालों से नहीं होता, बल्कि उन लोगों द्वारा होता है, जो उस बच्चे के लिए अपरिचित और उससे असम्बद्ध होते हैं तथा जो अपनी शिक्षा-दीक्षा और विवेक के अनुसार शिक्षा-नीति का निर्धारण करते हैं। फिर वह श्रम के बाजार में प्रवेश करता है। यद्यपि उसकी आन्तरिक क्षमता के अनुसार ही उसे कोई काम करने को मिलता है, किन्तु इससे भी अधिक उसके काम का निर्धारण इस बात पर निर्भर करता है कि उसके समुदाय तथा अन्य समुदायों का आर्थिक संघटन कैसा है। यही नहीं, उसके काम के निर्धारण पर अन्य कई बातों, जैसे—श्रम के मूल्य की स्थिति, आर्थिक मन्दी, आर्थिक समृद्धि आदि का भी कम प्रभाव नहीं पड़ता। उसको कम आय वाला काम मिलता है, अधिक आय वाला काम इस बात पर निर्भर करता है कि उसका स्वास्थ्य अच्छा है या नहीं अथवा उसने व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त किया है या नहीं। उसी तरह ऐसे काम का मिलना जिससे केवल पेट-पालन किया जा सके अथवा ऐसे काम का मिलना जिससे व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को

विकसित करने और आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त कर सके, भी उपर्युक्त बातों पर निर्भर करता है यहां जिस बात पर बल दिया जा रहा है, वह यह है कि बच्चा जिस दुनियाँ में कदम रखता है, उसका रूप अन्य लोगों द्वारा पहले से ही निर्धारित कर दिया गया रहता है, जिसके कारण इस संसार में जीवित रहने तथा उसके कामों में प्रभावपूर्ण ढंग से हिस्सा बँटाने की सुविधा और अवसर का प्राप्त करना प्राय: उसके अपने हाथ में नहीं होता, उसका निर्णय औरों के हाथ में रहता है। यहाँ यह सब कहने का तात्पर्य यह स्पष्ट करना था कि बाल-कल्याण-सम्बन्धी कार्य केवल बालकों के लिए ही नहीं होते, बल्कि समूचे समाज के कल्याण के लिए नियोजित सामुदायिक साधनों के व्यापक संगठन का अनिवार्य अंग के रूप में होते हैं। उनको देखकर ही यह पता चल सकता है कि कोई समुदाय बालकों को कितना महत्त्व प्रदान करता है।

कार्य-शिक्षण और वचनबद्धता

सन् १५५८ में जिस समय इंग्लैंड में रानी एलिजाबेथ गद्दी पर बैठीं, वहाँ सामन्तवाद की शक्ति क्षीण हो रही थी और पूंजीवाद का प्रारम्भ हो गया था। अपने राज्य-काल के ४३ वें वर्ष में उन्होने जो संविधि लागू की, उसमें पहले-पहल यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया था कि राज्य के उत्तरदायित्व की परिभाषा के अन्तर्गत समुदाय के पिछड़े हुए समूहों के उत्थान का कार्य भी सम्मिलित है। ऐसे समूहों में बच्चों के कुछ वर्ग भी आते हैं। सन् १६०१ के बाद वहाँ वचनबद्धता और कार्य-शिक्षण की पद्धति का प्रारम्भ हुआ, जिसके अनुसार कोई बालक किसी दूसरे व्यक्ति या परिवार के साथ कानूनी तौर पर वचनवद्ध होकर काम सीखता था (कानूनी शब्दावली में इसे वचनबद्धता कहा जाता था) जैसा अधिकांश एलिजाबेथ कालीन पद्धतियों के बारे में हुआ, पर यह पद्धति भी अमेरिका में प्रचलित हो गयी। निर्धन और आश्रयहीन बच्चों को कार्य-शिक्षण और वचनबद्धता की इस पद्धति द्वारा काम में लगाने की प्रथा का इंग्लैंड से उसके इस अमेरिकी उपनिवेश में आ जाना स्वाभाविक ही था। यह प्रथा कितनी जल्दी प्रचलित हो गयी, इसका प्रमाण बहुत पुराना अभिलेख है, जिसके अनुसार सन् १६३६ में प्लाई माउथ उपनिवेश के गर्नर द्वारा वेन्जानिम ईटन नामक एक छोटा बालक ब्रिजेट फुलर नामक एक विधवा के साथ वचनबद्ध किया गया था। उस अनुबन्ध के अनुसार ब्रिजेट फुलर को यह अधिकार दिया गया था कि वह उस बालक को कम-से-कम दो वर्ष तक स्कूल में शिक्षा दिलायेगी और उससे कोई भी ऐसा काम करायेगी, जिसे करने की उसमें क्षमता होगी।

ऐसा प्रतीत होता है कि कार्य-शिक्षण की इस पद्धति के अन्तर्गत बालकों की कच्ची उम्र का कुछ भी ख्याल नहीं किया जाता था, क्योंकि इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि पालने

में झूलने के बाद ही बच्चों को वचनबद्ध कर दिया जाता था। उदाहरण के लिए, डाल्वेयर रीवर के न्यूकैसिल न्यायालय के (१६७८ से सन् १६७९) अभिलेखों से पता चलता है कि विलियम हाजेज की विधवा पत्नी ने अपने पाँच वर्ष के लड़के चार्ल्स को टामस जेक्स नामक एक व्यक्ति के साथ बारह वर्ष के लिए वचनबद्ध कर दिया था। टामस जैक्स ने वादा किया था कि वह बालक को पर्याप्त भोजन, वस्त्र और सफाई तथा निवास की सुविधा देगा और उसे पहियामिस्त्री का काम सिखायेगा तथा बारह वर्ष की अवधि समाप्त हो जाने पर वह उसे एक गाय और बछड़ा भी देगा। हाँ, उनके बीच यह भी तय हुआ था कि टामस जैकब्स का लड़का चार्ल्स को "उतना पढ़ना सिखायेगा जितना वह पढ़ा सकेगा"।

बच्चों का निर्वाह करने में असमर्थ माँ-बाप द्वारा बच्चों को वचनबद्ध कार्य-शिक्षण में लगाने की प्रथा उपनिवेश-युग समाप्त हो जाने के बाद भी, १९वीं शताब्दी तक जब कि बच्चों के परिवरिश के अन्य तरीके भी प्रचलित हो गये थे, जारी रही। सन् १९०२ में होमर फोक्स ने लिखा, था "कार्य-शिक्षण अथवा वचनबद्धता की पुरानी प्रथा सन् १८७५ तक प्रायः समाप्त हो चली थी, यद्यपि उस समय तक उसे घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाता था।"[१] दूसरी ओर लुण्डवर्ग ने मिसीसिपी में १९४६ में एक कानून रद्द किये जाने के सम्बन्ध में लिखा है—"भिक्षुक-गृह में बच्चों की देखभाल तथा वचनबद्ध कार्य शिक्षण की प्रथाएँ अब सुदूर अतीत की वस्तु हो गयीं हैं, यद्यपि कुछ समुदायों में कुछ वर्ष तक पूर्व ये कुप्रथाएँ अवशिष्ट थीं और कहीं-कहीं आज भी उनका अस्तित्व पाया जा सकता है।"[२]

यह विश्वास—अथवा इसे शायद एक तर्क मात्र भी कह सकते हैं—बहुत दिनों तक वर्तमान रहा कि गरीबों के बच्चों को कम उम्र में ही काम करना सीख लेना चाहिए और मितव्ययिता की आदतें डालनी चाहिए, किन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है, जिसे बच्चे और भी आश्चर्य से देखते हैं कि जिन बच्चों के पास अधिक धन होता है वे बहुत काम करते हैं और जिन्हें बहुत अधिक काम करना पड़ता है, उन्हें उसके बदले में बहुत कम धन मिलता है। आधुनिक युग में दृष्टिकोण के बदल जाने से उन पद्धतियों को छोड़ा जा रहा है, जिनमें बच्चों से अधिक काम कराया जाता है और उनके हितों का बलिदान कर दिया जाता है। वर्तमान औद्योगिक और सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत किसी भी नाबालिग बच्चे से आर्थिक लाभ के लिए काम नहीं कराया जा सकता और धन कमाने की दृष्टि से ऐसे

१. **होमर फोक्स—दि केयर आफ डेस्टीच्यूट, निग्लेक्टेड एण्ड डेलिन्क्वेंट चिल्ड्रेन—न्यूयार्क, दि मैकमिलन कम्पनी, १९०२, पृ० ४१।**

२. **ईमा ओ लुण्डवर्ग—अन टु दि लिस्ट आफ दीज़—न्यूयार्क, दि अप्लेटन सेन्च्युरी कम्पनी, १९४७, पृ० २९९ तथा ५०।**

बच्चोंसे काम कराना इस लिए बुरा माना जाता है कि इससे उसके स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन, शारीरिक और साामाजिक विकास तथा जीवन के उचित प्रारम्भ के सभी अवसर समाप्त हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक युग की यह भी धारणा है कि प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह धनी हो या गरीब कम-से-कम एक विशेष मानक तक स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक विकास की सुविधाएँ प्राप्त करने का अधिकार है। हमारी वर्तमान संस्कृति में यह माना जाता है कि बच्चे को उपर्युक्त सभी सुविधाएँ देना लागत लगाने के समान है, जिसका फल तब मिलता है, जब बच्चे बड़े होकर देश के रचनात्मक नागरिक बनते हैं और उत्पादन में अधिकाधिक योग देते हैं।

राजकीय संस्थागत देख-भाल और भिक्षुक-गृह

उपनिवेश-कालके प्रारम्भ में बच्चों की देख-भाल के लिए भिक्षुक-गृहों का अधिक प्रचार नहीं था। सन् १७०० के बाद बच्चों की देख-भाल की इस पद्धतिका प्रारम्भ हुआ, किन्तु कई वर्षोंतक वचनबद्ध कार्य-शिक्षण की पद्धति के सामने यह पद्धति दबी ही रह गयी। सबसे पहले स्वभावतः बड़े नगरों में ही भिक्षुक-गृहों की स्थापना हुई। अन्य स्थानों पर यह आन्दोलन बाद में पहुँचा। न्यूयार्क, फिलाडेल्फिया और बोस्टन में सबसे पहले भिक्षुक-गृह स्थापित हुए, जिनमें निर्वाह के साधनोंसे रहित असहाय बच्चों को झुण्ड के रूप में रखा जाता था। इन बच्चों की नाममात्र की ही देखभाल की जाती थी। अपर्याप्त भोजन तथा सफाई की उचित व्यवस्था के अभाव के कारण से बड़ी संख्या में बीमार पड़ते और मरते रहते थे। उनकी शिक्षा तथा कार्य-शिक्षण की नाम मात्र की व्यवस्था थी और इसका परिणाम यह होता था कि भिक्षुक-गृह से निकलने के बाद जब ये लोग श्रम के बाजार में जाते थे तो उन्हें कोई नहीं पूछता था। घर में रहकर बच्चों को सामान्य विकास का जो अनुभव होता है, उससे वंचित होने के कारण इन बच्चों की आन्तरिक क्षमता नष्ट हो जाती थी, जिससे वे बाद में अन्य व्यक्तियों तथा सामुदायिक जीवन के साथ अपना सामञ्जस्य नहीं कर पाते थे।

इन बुराइयों को दूर करने के लिए जो प्रारम्भिक कार्य किये गये, उनमें से एक यह था कि भिक्षुक-गृहों में रहने वाले विभिन्न वर्गों के बाधित बच्चों को वहाँ से हटाकर उन-उन वर्गों के लिए स्थापित विशेषीकृत संस्थाओं में भेज दिया जाने लगा। इससे उस भयंकर परिस्थिति में परिवर्तन के कुछ लक्षण दिखाई पड़े। सन् १८७१ में बधिरों के लिए हार्टफोर्ड में "हार्टफोर्ड-बधिर-संस्थान" की स्थापना हुई, जिसमें बच्चों तथा वयस्कों की विशेषीकृत सेवा की व्यवस्था की गयी थी। सन् १८३१-१८३२ में माशाशूचेट्स में अंधों की इस प्रकार की सेवा के लिए माशाशूचेट्स-मानसिकरोग-संस्थान की स्थापना हुई। उसी

तरह अपराधी बालकों के लिए सन् १८२५ में "न्यूयार्क हाउस आफ रिफ्यूज" नामक संस्था खुली, जिसमें अपराधी लड़के और लड़कियाँ दोनों ही रखे जाते थे। एक वर्ष के भीतर ही इसी प्रकार के एक और बाल-अपराध संस्थान की स्थापना हुई। इस संस्था की विशेषता यह थी कि किसी नगरपालिका के तत्त्वावधान में स्थापित होनेवाला यह प्रथम संस्थान था, जिसका नाम बोस्टन-सुधार-गृह था और जो सन् १८२६ में खुला था। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया सरकारी और गैरसरकारी सहायता से उत्तरोत्तर इस प्रकार की विशेषीकृत संस्थाएँ एक के बाद एक स्थापित होती गयीं।

सभी वर्गों के बच्चों को एक ही भिक्षुक-गृह में रखने की प्रथा को छोड़कर माशाशूचेट्स में एक नया कदम यह उठाया गया कि सन् १८६४ में केवल कौन्सन के बच्चों के लिए एक भिक्षुक-गृह की स्थापना हुई। दो वर्ष बाद इस संस्था का नाम राज्य-प्राइमरी स्कूल कर दिया गया और यह नियम स्वीकार किया गया कि उसमें रहने वाले बच्चों को आगे से निर्धन या दरिद्र नहीं कहा जायगा। एक ऐसी ही अन्य संस्था जो मिश्रित वर्गों के बच्चों वाले भिक्षुक-गृह से भिन्न ढंग की थी, गृह-युद्ध के उपरान्त सैनिकों के अनाथ बच्चों के लिए स्थापित हुई जिसका नाम सैनिक-अनाथ-बालक-गृह था। सैनिकों के अनाथ बच्चों के लिए इस प्रकार की संस्थाएँ सरकारी सहायता से चलती थीं। इनमें से अधिकांश में केवल युद्ध में मरे सैनिकों के अनाथ बच्चों को ही नहीं, बल्कि किसी भी सैनिक या जहाजी के बच्चों को भर्ती किया जाता था। बाद में कुछ राज्यों में इस प्रकार की संस्थाओं को यह अधिकार दे दिया गया कि अन्य वर्गों के बच्चों को भी भर्ती कर सकते हैं। जिस समय माशाशूचेट्स में राज्य-प्राइमरी स्कूल द्वारा इस प्रकार का सेवा-कार्य किया जा रहा था, एक अन्य राज्य, ओहियो में उससे कुछ भिन्न ढंग की, किन्तु उसी श्रेणी की एक संस्था, जिसका नाम जनपद-बाल-गृह रखा गया था, जनपद की प्रेरणा और सहायता से स्थापित हुई। कुछ अन्य राज्यों में भी जनपदों को यह अधिकार दिया गया कि अपनी अलग बाल-संस्थाओं की स्थापना कर सकते हैं। किन्तु इस दिशा में मुख्य प्रवृत्ति माशाशूचेट्स के ढंग के राज्य-बाल-गृह ही खोलने की थी। मिशिगन में जो राज्य-पब्लिक-स्कूल (जिसकी स्थापना १८७४ में हुई और जिसके बारे में १८७६ में कानून भी बनाया गया) स्थापित हुआ था, उसका उद्देश्य बच्चों के लिए अस्थायी रूप से तब तक आवास और शिक्षा की व्यवस्था करना था, जब तक कि वे अपने पारिवारिक घरों में पुनः स्थापित नहीं हो जाते। दस वर्ष के भीतर ही कुछ अन्य राज्यों में भी जैसे—विसकॉन्सिन, मिनेसोटा और रोड आईलैण्ड—मिशिगन के आदर्श का अनुकरण किया गया। कुछ जनपदों के बाल-गृहों में स्थानीय अधीक्षण के अतिरिक्त और कोई व्यवस्था नहीं थी, जिससे कर्त्तव्यच्युत होकर वे भिक्षुक-गृहों के रूप में ही बदल गये। किन्तु अन्य कई राज्यों के बाल-गृहों में बच्चों की देख-भाल का प्रतिमान बहुत ऊँचा

था। उनके विकास का केवल यही कारण नहीं था कि राजकीय स्तर पर संगठित थे, बल्कि यह भी था कि उन्हें व्यापक राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले बच्चों की देख-भाल से सम्बन्धित कार्यों के अनुभव से लाभ उठाने की सुविधा थी। विशेष रूप से १९ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में बच्चों को गैर सरकारी बाल-गृहों में रखने की बात पर अधिक बल दिया जाने लगा और कुछ राज्य-बाल-स्कूल यह समझने लगे कि उनका काम केवल थोड़े दिनों तक संस्थागत देख-भाल की व्यवस्था करना है। अनेक राज्यों में यह नियम बना दिया गया कि राज्य-बाल-गृह में कोई भी बालक ६० दिन से अधिक नहीं रखा जा सकता और इससे अधिक रखने के लिए यह प्रमाणित करना होगा कि उस बच्चे को किसी गैर सरकारी बाल-गृह में रखने की सभी कोशिशें व्यर्थ हो चुकीं हैं। इस प्रकार के कानूनों में यह भी व्यवस्था की गयी थी कि यदि किसी राज्य-बाल-गृह में कोई बालक ६० दिन से अधिकरखा जाता है तो सम्बन्धित अधिकारियों को प्रतिमास यह प्रतिवेदन देना होगा कि उसे अधिक दिनों तक रखने का क्या कारण है। माशाशूचेट्स और मिशिगन में, जहाँ सन् १८७० में राज्य-स्कूल-योजना स्वीकृत हुई थी, इस विषय से सम्बन्धित सिद्धान्तों को अपने पड़ोसी राज्यों के सिद्धान्तों से अधिक व्यापक रूप दिया गया।

एक अन्य आन्दोलन, जिसने भिक्षुक-गृहों में बच्चों की देख-भाल की प्रथा को कम करने में बड़ा योगदान दिया, १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रारम्भ हुआ था। उसके द्वारा बच्चों को पालन-गृहों में पुनःस्थापित करने के सिद्धान्त और व्यवहार का प्रतिपादन किया गया। इस आन्दोलन के सम्बन्ध में इस अध्याय के एक अन्य भाग में विचार किया जायेगा। किन्तु हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि यद्यपि इन तमाम बातों के कारण भिक्षुक-गृहों की प्रथा बहुत कुछ समाप्त हो गयी, फिर भी २० वीं शताब्दी के मध्य में भी अभी भिक्षुक-गृह वर्तमान हैं, जिसमें बच्चे रखे जाते हैं। इस प्रकार अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि अमेरिका में जितनी भी समाज-कल्याण-संस्थाएँ हैं उनमें से केवल भिक्षुक-गृह की ही संस्था ऐसी है जिसकी जड़ें सबसे अधिक गहराई तक गयी हुई हैं।

गैरसरकारी संस्थागत देख-भाल—अनाथ-गृह

अमेरिका में सबसे पहला अनाथालय न्यू आर्लियन्स में उर्सुलाइन कन्वेन्ट द्वारा स्थापित हुआ था, जिसमें सन् १७२९ में नैट्सेज इण्डियनों द्वारा मारे गये लोगों के बच्चों को रखा जाता था। सन् १७४० में सवान्ना में दूसरा अनाथालय खुला, जिसकी स्थापना मशहूर अंग्रेज प्रचारक जार्ज ह्वाइट फील्ड ने की थी और जो आज भी बेथेस्डा नाम से वर्तमान है।[3]

३. ये दोनों संस्थाएँ व्यक्तिगत थीं, किन्तु सन् १७९० में साउथ कैरोलिना में सर्वप्रथम सरकारी अनाथालय की स्थापना हुई, जो इस नयी दुनिया का पहला अनाथालय था।

सन् १८०० के पहले बच्चों के लिए अन्य कई संस्थाएँ प्रारम्भ हुईं, किन्तु अनाथालयों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि १९वीं शताब्दी में हुई। यद्यपि राजकीय सहायता से चलने वाले अनाथालयों की संख्या आश्चर्यजनक रूप से कम थी, जिसका कुछ कारण तो यह था कि भिक्षुक-गृहों में अब भी बच्चे रखे जाते थे और कुछ यह था कि बच्चों की देख-भाल के लिए अन्य पद्धतियाँ, जैसे—कार्यशिक्षण और वचनबद्धता तथा गैर संस्थागत सहायता आदि प्रचलित हो गयीं थीं और १९ वीं शताब्दी के अन्त में पालन-गृहों में देख-भाल की पद्धति भी प्रारम्भ हो गयी थी। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत दान से चलने वाली संस्थाओं ने इस क्षेत्र पर इतना कब्जा कर रखा था कि राजकीय अनाथालयों के लिए अधिक गुंजाइश नहीं थी।

अधिकांश अनाथ-आश्रमों की (उस समय उन्हें प्राय: अनाथ-आश्रम ही कहा जाता था) स्थापना और व्यवस्था साम्प्रदायिक या जातिगत आधार पर ही होती थी। सन् १९२९ में अनुमानतः इस देश में बच्चों के लिए कुल १५०० संस्थाएँ थीं, जिनमें से ६० प्रतिशत साम्प्रदायिक थीं। जिन संस्थाओं की स्थापना और व्यवस्था साम्प्रदायिक आधार पर नहीं होती थी, उनके प्रारम्भ होने के कारण कुछ भिन्न थे। एक कारण तो यह था कि उन दिनों मिश्रित वर्गों के निराश्रित बच्चों को एक ही साथ भिक्षुक-गृहों में रखने की जो पद्धति प्रचलित थी उसका अन्त हो। एक दूसरा मनोवैज्ञानिक कारण यह था कि इस प्रकार की असाम्प्रदायिक संस्था की स्थापना के लिए दान देने वालों के मन में अपने दान से निर्मित ईंट और पत्थर के भवनों को देखकर अत्यन्त सन्तोष का अनुभव होता था। एक तीसरा कारण उस समय का यह निश्चित और सच्चा विश्वास था कि बच्चों की सेवा के लिए संस्थागत देख-भाल से अधिक अच्छी पद्धति और कोई नहीं है। यही नहीं, दान देने वालों को अनाथाश्रमों के भवनों, कर्मचारियों और बालकों को देखकर प्रत्यक्ष रूप में यह ज्ञात हो जाता था कि उन्होंने दान में जो धन दिया है, उसका सदुपयोग हुआ है। ये तथा अन्य कारण अनाथालयों के संस्थापकों को निस्संदेह रूप से प्रभावित करते थे, किन्तु यह कौन कह सकता है कि किसी संस्था की स्थापना में कौन कारण प्रमुख था और कौन नहीं। उदाहरण के लिए, यह कौन बता सकता है कि आज से सौ वर्ष पहले किस उद्देश्य से प्रेरित होकर स्टीफेन गिरार्ड ने "गोरी जातियों के निर्धन और निराश्रित बच्चों" के लिए स्कूल स्थापित करने के निमित्त अपनी बहुत बड़ी सम्पत्ति दान कर दी थी? निश्चय ही १९वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में यह एक उसी प्रकार की सामान्य लोक-प्रथा हो गयी थी, जैसे आज-कल बच्चों की देख-भाल के लिए पालन-गृहों की प्रथा सामान्य रूप से प्रचलित हो गयी है।

यहाँ एक अन्य बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है। आज से १०० वर्ष पहले आज-जैसी निःशुल्क लोक-शिक्षा-व्यवस्था की बात कोई सोच भी नहीं सकता था। आज

से ५० वर्ष पहले तक इस निःशुल्क-शिक्षा-पद्धति का पूरी तरह विकास नहीं हो सका था। प्रारम्भिक दिनों में कुछ अनाथालयों के अन्तर्गत जो स्कूल होते थे, उनकी शिक्षा-व्यवस्था कुछ अंशों में सामान्य स्कूलों की शिक्षा-व्यवस्था से कहीं अधिक अच्छी थी।

साम्प्रदायिक तथा असाम्प्रदायिक संस्थाओं के अतिरिक्त ऐसे अनाथालय भी थे, जो बच्चों के विभिन्न, विशिष्ट वर्गों अथवा विभिन्न सामाजिक वर्गों, जैसे——नीग्रो, सैनिक और जहाजी आदि, के अनाथ बच्चों के लिए बने थे। इनमें से इस समय बहुत कम संस्थाएँ अवशिष्ट रह गयी हैं। सामान्य अनाथाश्रमों की अपेक्षा इन संस्थाओं का लोप और भी जल्दी हो गया था।

गैर सरकारी संस्थाओं की सरकारी सहायता

१९ वीं शताब्दी में बच्चों, चर्च तथा अन्य परोपकार-कार्यों के निमित्त स्थापित और वैयक्तिक दान की सहायता से चलने वाली संस्थाओं की अधिकता तथा सरकारी रुपये से बच्चों की संस्थाएँ न बनाने की प्रवृत्ति की प्रमुखता के कारण इस पद्धति का प्रारम्भ हुआ कि सरकार उन संस्थाओं को आर्थिक सहायता दे। यद्यपि यह प्रथा वरदान नहीं सिद्ध हुई। सबसे पहले न्यूयार्क में गर सरकारी संस्थाओं को एक मुश्त अनुदान के रूप में सरकारी सहायता देने की प्रथा प्रारम्भ हुई। यह प्रथा बहुत दिनों तक जारी रही, किन्तु १८७४ में उसे कानूनी तौर पर बन्द कर दिया गया। बादमें सरकारी सहायता की नवीन पद्धति प्रारम्भ हुई। अब गैर सरकारी संस्थाओं को एक मुश्त दान देने की जगह, उनमें रहनेवाले प्रत्येक बालक के हिसाब से एक निश्चित धन देने की पद्धति प्रारम्भ की गयी। इससे राज्य के व्यय की बचत होने लगी, क्योंकि इससे राजकीय संस्था स्थापित करने की आवश्यकता नहीं रह गयी, किन्तु कालान्तर में यह अनुभव हुआ कि इस पर प्रतिवर्ष राजकीय कोष का बहुत अधिक धन व्यय होता है। स्थिति इस कारण और भी बिगड़ गयी कि अनुदान देने के बाद उन संस्थाओं के नियन्त्रण और अधीक्षण का राज्य द्वारा कोई प्रबन्ध नहीं किया जाता था। इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि गैर-सरकारी संस्थाएँ मुख्यतः राजकीय सहायता पर निर्भर रहते हुए भी अपने-अपने ढंग से ही काम करती थीं। इस पद्धति का परिणाम यह हुआ कि जब राजकीय पालन-गृहों में अनाथ बच्चों को रखने की पद्धति प्रारम्भ हुई तो गर सरकारी अनाथाश्रमों से बच्चों को निकालना मुश्किल हो गया क्योंकि बच्चों के चले जाने पर राजकीय सहायता समाप्त हो जाने से उन संस्थाओं का चलना ही बन्द हो जाता। यदि हम इस बात की ओर ध्यान दें कि वे साम्प्रदायिक अनाथालय अपने सम्प्रदाय में बच्चों को बनाये रखने के लिए आपस में कितनी स्पर्धा रखते थे, तो यह बात आसानी से समझ में आ जायेगी कि ऐसे लोगों द्वारा राजकीय सहायता की पद्धति का इतने आग्रह के

साथ क्यों समर्थन किया जाता था और कानूनी रुकावटों के होते हुए भी वह पद्धति क्यों एक अन्य रूप में प्रारम्भ हो गयी थी। समाज-सेवा के क्षेत्र में आज की यह एक प्रचलित धारणा है कि गैर सरकारी संस्थाओं की सरकारी सहायता निश्चित रूप से हानिकर है।

पालन-गृहों में बच्चों की देख-भाल की व्यवस्था

इस देश में सन् १८५३ तक वचनबद्धता, संस्थागत देख-भाल और संस्थाओं के बाहर की सहायता की पद्धतियों द्वारा बच्चों की सेवा से सम्बन्धित कार्य किये जाते थे। सबसे पहले चार्ल्स लोरिंग ब्रेस ने पालन-गृहों में बच्चों की देख-भाल की पद्धति का अन्वेषण किया। इस पद्धति में जिन बच्चों के घर की स्थिति उनके हित के इतनी विरुद्ध होती है कि उन्हें अपने घर से हटाकर अन्यत्र भेज देना आवश्यक प्रतीत होता है, उनके पालन के लिए दूसरे ऐसे घरों में व्यवस्था की जाती है, जहाँ उनकी अच्छी देखभाल हो सके।

जिस समय चार्ल्स लोरिंग ब्रेस पौरोहित्य का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे, उसी समय उन्हें न्यूयार्क सिटी में बच्चों के एक मिशन का नेतृत्व करने का अवसर मिला। बाद में सन् १८५३ में इस संस्था का नाम बदल कर बाल-सहायता-समिति कर दिया गया और उसी समय ब्रेस के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि नगर की सड़कों पर पड़े निर्धन और अनाथ बच्चों को वहाँ से हटाकर, उपयुक्त घरों के भिन्न वातावरण में रखा जाय। जैसा उन्होंने प्रारम्भ में ही सोचा था, यह योजना इस धारणा पर आधारित थी कि बच्चा जिस परिवार में रखा जायगा, उसके काम-धाम में कुछ सहायता करेगा और इस तरह पालक माता-पिता अपनी कुछ चिन्ताओं से मुक्ति पा सकेंगे और समिति आवश्यकता पड़ने पर उन बच्चों को पालक-परिवार में पहुँचाने तथा उसे वहाँ से वापस बुलाने का सब खर्च स्वयं उठायेगी। यह अन्तिम शर्त बहुत महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि समिति बच्चों को बहुत दूर-दूर—न्यूयार्क से मिशिगान, विसकानसिन, मिनेसोटा आदि स्थानों तक भेजने की व्यवस्था करती थी। सम्भवतः सैकड़ों बच्चों को इस तरह बाहर भेजने की इस पद्धति के मूल में यह धारणा निहित थी कि बच्चों को किसी भी तरह नगर की सड़कों पर से हटाया जाय। बच्चों की देख भाल की जटिल समस्या को ध्यान में रख कर इस आन्दोलन का प्रारम्भ नहीं हुआ था। इस आन्दोलन के नेताओं के सामने बच्चों को इकट्ठा करने, बाहर भेजने, और उनके आवास और भोजन की व्यवस्था करने की समस्या ही प्रमुख थी, उनके ध्यान में यह बात नहीं आयी थी कि बच्चे इस तरह अपने मित्रों और परिचितों से बिछुड़ जायँगे और दूसरे परिवारों तथा अपरिचित व्यक्तियों के बीच जाकर उनके साथ उनको नये सिरे से अपना सामंजस्य स्थापित करना पड़ेगा।

इस योजना की कमियाँ या दोष चाहे जो भी रहे हों, और निश्चय ही उन दोषों और कमियों का कारण उनकी गैर जानकारी थी, न कि बुरी नीयत। यह निर्विवाद सत्य है कि न्यूयार्क की सड़कों पर से, (विशेष रूप से पूर्वी समुद्री तट से) हजारों की संख्या में बच्चों को हटाकर नये सिरे से जीवन प्रारम्भ करने के लिए अन्यत्र भेजा गया। दूसरी उतनी ही महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इस तरह एक ऐसे आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ जिसका उद्देश्य इस ढंग से बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना था कि उनके भावी जीवन का समुचित निर्माण हो सके, वचनबद्धता की पद्धति तथा भिक्षुक-गृहों की प्रथा में जो उद्देश्य निहित था उससे यह बिलकुल भिन्न था।

बाल-सहायता समितियों का विकास——न्यूयार्क बाल-सहायता-समिति की स्थापना के बाद उसकी देखा-देखी और भी गैर सरकारी बाल-सहायता-समितियों की स्थापना हुई। सन् १८६० में बाल्टीमोर में दरिद्र असहाय बच्चों को पालन-गृहों में रखने की व्यवस्था करने के लिए एक अभिकरण की स्थापना हुई। तीन वर्षों के भीतर ही दो अन्य संस्थाओं की स्थापना हुई, पहली संस्था फिलाडेल्फिया में बनी, जिसका उद्देश्य अनाथ यहूदी बच्चों को रिश्तेदारों के घरों या अन्य उपयुक्त परिवारों में रखवाने की व्यवस्था करना था, दूसरी संस्था की स्थापना बोस्टन में हुई, जो बच्चों को पालन-गृहों, अस्थायी गृहों या कृषि-स्कूलों में भेजने की व्यवस्था करती थी। इसी तरह ब्रुकलिन में १८६६ में और बफेलो में १८७२ में अनाथ बच्चों के लिए संस्थाएँ स्थापित की गयीं। १० वर्ष बाद पेन्सिलवेनिया में बाल-सहायता समिति की और सन् १८९५ में राचेस्टर (न्यूयार्क) में भी इसी तरह की एक संस्था की स्थापना की गयी। ये सभी समितियाँ अधिकांशतः गैर-सरकारी सहायता से ही चलतीं थीं, किन्तु कुछ उदाहरणों में, जैसे——पेन्सिलवेनिया में, ऐसी समितियाँ, जो स्थानीय जनपदों के अनाथ बच्चों को रखने की व्यवस्था करतीं थीं, बच्चों के भोजन, आवास आदि के लिए राजकीय कोष से भी सहायता लेती थीं।

पालन-गृहों में बच्चों की देख-भाल की व्यवस्था के लिए होने वाला यह आन्दोलन जोर पकड़ता गया, जिसके फलस्वरूप कुछ ऐसी संस्थाएँ भी बनीं, जिनका उल्लेख यहाँ आवश्यक है। प्रमाणों से ऐसा मालूम पड़ता है कि इलिनोइस में, जो पहला राज्य से संचालित बाल-गृह स्थापित हुआ था, सम्भवतः वह न्यूयार्क में ब्रेस द्वारा स्थापित बाल-सहायता-समिति से प्रभावित नहीं था, बल्कि वह मार्टिन वान ब्यूरेनवान आर्सडेल की स्वतन्त्र कल्पना की देन था। वान आर्सडेल ने भी ब्रेस की तरह पौरोहित्य का कार्य छोड़कर बच्चों की सेवा का कार्य प्रारम्भ किया था, उसने अपने पौरोहित्य-कार्य के प्रथम वर्ष ही यह व्रत लिया था कि वह भिक्षुक-गृहों से तमाम बच्चों को निकाल कर उनकी व्यवस्था करेगा। इस प्रतिज्ञा को कार्यान्वित करने के लिए उसने सन् १८८३ में अमेरिकन शिक्षा-सहायता-समिति

[illegible] की एक संस्था स्थापित की, जिसके दो उद्देश्य थे, अनाथ बच्चों को परिवारों में रखवाना और लड़कियों की शिक्षा के लिए प्रयत्न करना। बाद में इस संस्था का नाम राज्य-बाल-गृह-समिति रखा गया। इस नाम का यह कारण नहीं था कि इसकी स्थापना राज्य द्वारा हुई थी या इसे राजकीय आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी, इसका कारण यह था कि इसमें राज्य भर के बच्चों की सहायता का कार्य किया जाता था। बाद में फिर इसका नाम बदलकर राष्ट्रीय बाल-सहायता-समति कर दिया गया और यह संस्था अन्य राज्यों के बाल-अभिकरणों को भी अपने साथ सम्बद्ध करके प्रमाणपत्र देने लगी। इस तरह सबसे पहले आयोवा राज्य में और उसके बाद अन्य राज्यों में—जैसे, मिनेसोटा, मिशिगान, मिसूरी, इण्डियाना, केलिफोर्निया, विस्कान्सिन, टेनेसी, नार्थ डेकोटा और साउथ डेकोटा—में भी उक्त संस्था द्वारा प्रमाणित संस्थाएँ स्थापित हुईं।

राज्य द्वारा प्रवर्तित संस्थाएँ—यद्यपि बच्चों के लिए पालनगृह-सम्बन्धी सेवा-कार्यों का प्रारम्भ गैर सरकारी रूप में कुछ व्यक्तियों द्वारा किया गया था और उनका संचालन भी उन्हीं के द्वारा होता था, किन्तु एक या दो दशकों के बाद ही कई राज्यों को अपने इस उत्तरदायित्व का ज्ञान हुआ कि बाल-कल्याण के लिए उन्हें वचनबद्धता तथा अन्य पद्धतियों से भिन्न कुछ अन्य रास्ते अपनाने चाहिए। अतः इस दिशा में कदम उठाने वाला प्रथम राज्य माशाशूचेट्स था, जहाँ सन् १८६९ में राजकीय संस्थाओं (जेल आदि) से मुक्त हुए बच्चों के घर जाकर उनके अधीक्षण की व्यवस्था राज्य की ओर से की गयी। इस अधीक्षण के फलस्वरूप राज्य ने गैर सरकारी बाल-गृहों में रहने वाले राज्य भर के बच्चों के भोजन, आवास आदि के लिए खर्च देने की व्यवस्था की। दस वर्ष बाद नगरों और कस्बों के भिक्षुक-गृहों में बच्चों को रखना कानूनी तौर पर बन्द कर दिया गया। सन् १८८२ में राज्य द्वारा दस वर्ष से कम उम्र के बच्चों के भोजन, आवास आदि का खर्च देने का नियम स्वीकृत हुआ और यह व्यवस्था की गयी कि वे बच्चे राजकीय प्राइमरी स्कूलों से हटाकर सीधे राजकीय दान-परिषद् की देख-रेख में रहने के लिए भेज दिये जायँ। बच्चों को उपयुक्त घरों में रखवाने की दिशा में सबसे महत्त्वपूर्ण कदम यह था कि सन् १८९५ में राजकीय प्राइमरी स्कूलों को समाप्त कर दिया गया और अनाथ बच्चों को संस्थाओं में रखने की जगह पालन-गृहों में रखने की पद्धति का और भी अधिक विस्तार किया गया।

सन् १८९९ में न्यूजर्सी राज्य ने दरिद्र, निराश्रित बच्चों की देख-भाल के लिए पालन-गृहों की स्थापना का सिद्धान्त स्वीकार करके माशाशूचेट्स के आदर्श का अनुकरण किया। राज्य भर के लिए एक बाल-अभिभावक-परिषद् की स्थापना की गयी, जिसका कार्य अनाथ बच्चों का नियन्त्रण और व्यवस्थापन करना तथा ऐसा प्रबन्ध करना था कि वे बच्चे परिवारों के साथ रहें, जहाँ उनके भोजन, आवास की व्यवस्था हो और वे

वहाँ तब तक रह सकें जब तक कि उनके लिए स्वतन्त्र और निजी घर की व्यवस्था न हो सके।

पेन्सिलवेनिया में दूसरा ही ढंग अपनाया गया, वहाँ गैर सरकारी अभिकरणों द्वारा प्रारम्भ किये गये पालन-गृहों के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया। जब सन् १८८३ में एक कानून बनाकर अनाथ बच्चों की देख-भाल का उत्तरदायित्व स्थानीय समुदायों और जनपदों को सौंप दिया गया था, उस समय ऐसे बच्चों की उपयुक्त सहायता के लिए उस कानून में कोई व्यवस्था नहीं की गयी थी। सौभाग्य से एक वर्ष पहले ही पेन्सिलिवानिया-बाल-सहायता-समिति की स्थापना हो चुकी थी जिसका उद्देश्य बच्चों को उपयुक्त जगहों पर रखवाना था। अतः इस संस्था ने उक्त कानून पास होने के बाद ही स्थानीय अधिकारियों को अनाथ बच्चों के लिए स्वतन्त्र घरों में अथवा अन्य कहीं रखवाने के कार्यक्रम में पूरी तरह सहायता करने का प्रस्ताव किया। बड़े-बड़े जनपदों में से कई ने समिति की सेवाओं का लाभ उठाना प्रारम्भ किया। समिति की सहायता से बच्चों के रहने की व्यवस्था हो जाने पर उनके भोजन, आवास आदि का व्यय जनपद के कोष से दिया जाता था।

जिन राज्यों ने मिशिगन की राजकीय स्कूल-योजना का आदर्श अपनाया अथवा जिन्होंने ओहियो की जनपद बाल-गृह-योजना के आदर्श पर अपने कार्यक्रम बनाये (कानेक्टिकट और इण्डियाना) वे भी उल्लेखनीय हैं। इन राज्यों में चाहे वहाँ राजकीय बाल-गृहों की योजना अपनायी गयी हो या जनपदीय बाल-गृहों की, बच्चों के व्यवस्थापन की जिस पद्धति का विकास हुआ, उसने पहले तो संस्थागत सेवाओं के पूरक का कार्य किया, पर बाद में उनका मूलोच्छेद ही कर दिया। इस तरह सन् १९३५ में मिशिगन में पूरे राज्य भर के लिए बच्चों के व्यवस्थापन की उक्त पद्धति अपनायी गयी और गोल्ड वाटर की संस्था एक अन्य राजकीय अभिकरण के सुपुर्द कर दी गयी। ४० वर्ष पूर्व माशाशूचेट्स में भी राजकीय प्राइमरी स्कूलों की यही गति हुई थी। मिशिगन की उक्त संस्था को विकृत-मानस बालकों के लिए एक प्रशिक्षण-स्कूल बना दिया गया जब कि माशाशूचेट्स में उक्त प्राइमरी स्कूल को मिरगी रोग से पीड़ित बालकों के लिए अस्पताल के रूप में बदल दिया गया था। ओहियो और इण्डियाना में बच्चों की देख-भाल और व्यवस्थापन का कार्य अब भी जनपदों द्वारा ही किये जाने पर बल दिया जाता था। किन्तु इन दोनों राज्यों में पूरे राज्य भर के लिए बाल-व्यवस्थापन-अभिकरणों की व्यवस्था कर दी गयी है, जिनका काम ऐसे बालकों का व्यवस्थापन करना है, जिनकी व्यवस्था स्थानीय अधिकारियों द्वारा नहीं हो पाती है। वहाँ राज्य-अभिकरणों द्वारा इस बात के लिए भी पूरा प्रयत्न किया गया कि जहाँ तक सम्भव हो स्थानीय समुदाय इस विषय से सम्बन्धित अपने साधनों और सुविधाओं का पूरा विकास करें।

अपने ही घर में रहने वालों बच्चों की सहायता का कार्य

ऐसे आवेदकों की जो,अपने घर में ही रहकर सहायता प्राप्त करना चाहते हैं, सहायता सम्बन्धी सेवा-पद्धति को, जिसका प्रारम्भ इंग्लैंड में एलिजाबेथ के समय में ही हो गया था, गैर-संस्थागत सहायता कहा जाता है। इस प्रकार की सहायता सामान्यतया परिवारों के सदस्यों के निमित्त होती है। अतः परिवारों में रहने वाले बच्चों की इस प्रकार की सहायता को गैर-संस्थागत कहना उचित ही है। कई वर्ष पूर्व होमर फोक्स ने लिखा था कि निर्धन बच्चों तथा वयस्कों की गैर-संस्थागत सहायता की पद्धति राजकीय सहायता-कार्य के क्षेत्र में प्रारम्भिक उपनिवेश-काल में ही सम्मिलित कर ली गयी थी। इस पद्धति से प्रतिस्पर्धा करने वाली भिक्षुक-गृहों की पद्धति थी और ज्यों-ज्यों भिक्षुक-गृहों की सेवा-पद्धति का विकास होता गया गैर-संस्थागत सहायता में भी वृद्धि होती गयी। सन् १८२३–२४ में न्यूयार्क राज्य के सचिव श्री एट्स ने निर्धनों की देख-भाल के कार्यों की जाँच-पड़ताल के आधार पर यह विश्वास प्रकट किया था कि भिक्षुक-गृहों में बच्चों की देख-भाल की व्यवस्था द्वारा की जाने वाली सेवा गैर-संस्थागत सहायता-सम्बन्धी सेवा से कहीं बढ़कर है। भिक्षुक-गृहों के बाहर रहने वाले बच्चों की सहायता से सम्बन्धित कार्यों का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा था कि ऐसे बच्चों की शिक्षा,नैतिकता की उपेक्षा होती है, उनका स्वास्थ्य खराब रहता है, वे गन्दी जगहों में बेकार पड़े रहते हैं और इस बात की आशंका रहती है कि "बहुत जल्दी ही वे जेलखाने या कब्र के उम्मीदवार हो जायेंगे।" उनकी संस्तुति पर गैर संस्थागत बाल-सहायता का कार्य बहुत कुछ कम कर दिया गया और प्रत्येक जनपद में रोजगारगृहों की स्थापना की गयी, जिनमें निर्धनों को रखा जाता था और उनके बच्चों की उचित शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता था ताकि बाद में उनको उपयुक्त रोजगारों में लगाया जा सके।

न्यूयार्क के इस अनुभव के बावजूद अधिकांश राज्यों में बच्चों की गैर-संस्थागत-सहायता का कार्य जारी रहा। न्यूयार्क में भी जब कि कई वर्षों बाद मिश्रित वर्गों के बालकों वाले भिक्षुक-गृहों के बुरे प्रभाव का पूर्ण अनुभव किया जा चुका था, गैर-संस्थागत सहायता के सम्बन्ध में पुनः विचार किया गया और संस्थागत सहायता तथा पालन-गृहों की देख-भाल की व्यवस्था के साथ-साथ अपने घर में रहने वाले बच्चों की सहायता का कार्यक्रम फिर से चालू किया गया। सहायता-सम्बन्धी ये पद्धतियाँ करीब-करीब अपने अपरिवर्तित रूप में ही अभी कुछ वर्षों पूर्व तक प्रचलित रही हैं।

सन् १९११ में विधवा-सहायता-वृत्ति-कानून के स्वीकृत हो जाने के साथ ही परिवार में रहने वाले आश्रित बच्चों की सहायता से सम्बन्धित कार्यक्रम को भी सर्वप्रथम स्वीकृति

मिली और ऐसे कामों के लिए राजकीय कोष से सहायता भी दी जाने लगी। यद्यपि विधवा-सहायता-वृत्ति के विभिन्न राज्यों में अलग-अलग नाम थे, जैसे—विधवा-सहायता-वृत्ति, मातृ-सहायता-वृत्ति, मातृ-सहायता आदि, किन्तु सबमें यह विश्वास सामान्य रूप से निहित था कि अपने बच्चों को अपने घर में रखकर ही पालन-पोषण करने के लिए माताओं की आर्थिक सहायता करने में राजकीय कोश के धन का बहुत ही उचित उपयोग होता है। सन् १९३५ से संघ-सरकार भी इस प्रकार के कार्यक्रमों के सिद्धान्त निर्धारण तथा आर्थिक भार वहन के कामों में राज्यों का हाथ बँटाने लगी। सामाजिक सुरक्षा-कानून में इस बात की व्यवस्था की गयी थी कि संघ-सरकार राज्यों की आश्रित बालक-सहायता-योजनाओं के लिए अनुदान देगी। जैसा सातवें अध्याय में कहा जा चुका है। इस प्रकार का संघीय अनुदान उन्हीं राज्यों को मिल सकता था, जिनके राजकीय सहायता और जन-कल्याण-सम्बन्धी कानूनों में कुछ विशेष, संघ-सरकार द्वारा निर्धारित, बातों की व्यवस्था होगी।

ह्वाइट-हाउस के सम्मेलन

ह्वाइट हाउस में होनेवाले पाँच महत्त्वपूर्ण सम्मेलनों द्वारा बाल-कल्याण-सम्बन्धी समस्याओं की ओर केवल सामाजिक कार्यकर्ताओं का ही नहीं, बल्कि सारे देश का ध्यान बहुत अधिक आकृष्ट हुआ है। इनमें से पहला सम्मेलन सन् १९०९ में राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट द्वारा बुलाया गया था। इस सम्मेलन के उद्देश्यों का सारांश इन शब्दों में व्यक्त किया गया था—"सभ्यता की सर्वश्रेष्ठ और उच्चतम देन पारिवारिक जीवन है। अतः बच्चों को पारिवारिक जीवन से तब तक विच्छिन्न नहीं करना चाहिए जब तक कि उसके लिए अत्यन्त आवश्यक और विवशतापूर्ण कारण न हो।" यह सिद्धान्त कि बच्चों को केवल निर्धनता के कारण परिवार से अलग नहीं किया जाना चाहिए, आधुनिक युग के एक महत्त्वपूर्ण विश्वास की अभिव्यक्ति है, जो पिछले कुछ वर्षों से विशेष शक्ति प्राप्त करता जा रहा है। एक दूसरा सिद्धान्त, जिसकी अभिव्यक्ति चार्ल्स लोरिंग ब्रेस के समय से ही उस प्रकार के विचारों और कार्यों में होती आ रही है, यह है कि यदि सामान्य स्वास्थ्य वाले बच्चों को उनके घर से अलग रखना अत्यन्त आवश्यक हो जाय, अथवा जिन्हें उनके माँ-बाप परित्यक्त कर दें, उनके लिए अपने निजी परिवारों की क्षति-पूर्ति के निमित्त पालन-गृहों की व्यवस्था सर्वोत्तम है। इसके अतिरिक्त सम्मेलन ने यह संस्तुति भी की कि बच्चों के लिए संस्थाओं का निर्माण यथासम्भव कुटीर-योजना के आधार पर होना चाहिए, बच्चों की देख-भाल करने वाले और राज्य को उन अभिकरणों के कार्यों का निरीक्षण कराना चाहिए; साथ ही बच्चों की पराश्रयता के कारणों का अध्ययन करके

जहाँतक सम्भव हो, उन्हें दूर करने का प्रयत्न और बच्चों की सुख-सुविधा का प्रबन्ध करना चाहिए।

इस सम्मेलन के दो परिणाम ऐसे हुए, जिनके कारण इस देश में किये जाने वाले बाल-कल्याण-कार्यों के इतिहास में इस सम्मेलन को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जायगा। सम्मेलन की समाप्ति के दो वर्ष भीतर ही बाल-कल्याण-सम्बन्धी पहला कानून बना, जिसमें बच्चों को अपने ही घर में रहने के लिए आर्थिक सहायता देने के सिद्धान्त को कार्यान्वित किया गया था और उसके दूसरे वर्ष ही संघ-सरकार ने बाल-कल्याण-केन्द्र की भी स्थापना की। विधवा-सहायता-वृत्ति-सम्बन्धी पहला कानून इलिनोइस में सन् १९११ में बना था, इसमें ह्वाइट हाउस के सम्मेलन को स्वीकार किया गया था। किन्तु सम्मेलन ने व्यक्तिगत दान द्वारा इस कार्य को चलाने की जो पद्धति अपनाने की राय दी थी, इलिनोइस के इस कानून में उसे स्वीकार नहीं किया गया।

उक्त सम्मेलन ने तथा अन्य संगठनों और व्यक्तियों ने, जिनमें एक राष्ट्रपति टैफ्ट भी थे, इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि संघीय बाल-कल्याण-केन्द्र की स्थापना होनी चाहिए और फलस्वरूप सन् १९१२ में केन्द्र की स्थापना हो भी गयी। कांग्रेस ने बाल-कल्याण-केन्द्र का उद्देश्य और कार्य "हमारे देश के प्रत्येक वर्ग की जनता के बच्चों के जीवन तथा उनके कल्याण-कार्य से सम्बन्धित सभी बातों की जाँच-पड़ताल करना और उस सम्बन्ध में अपना प्रतिवेदन उपस्थित करना" स्वीकार किया था। इस आदेश के अनुसार संघीय बाल-कल्याण-केन्द्र की स्थापना हुई, जो संसार में अपने ढंगका सर्वप्रथम राजकीय अभिकरण था। केन्द्र का कार्य बच्चों की परिस्थितियों, समस्याओं और कल्याण-कार्यों से सम्बन्धित सभी बातों पर समग्र रूप में विचार करना था। इसके कर्मचारी पूरे देश में फैले हुए हैं, और इस तरह केन्द्र की सेवाएँ समस्त देश में उपलब्ध हैं। केन्द्र बालकों के विकास, श्रम, अपराध आदि से सम्बन्धित समस्याओं की जाँच-पड़ताल करता है, साथ ही उसका काम यह पता लगाना भी है कि किसी समुदाय में जिन बच्चों की विशेष देख-भाल की आवश्यकता है उनके लिए संस्थाओं, पालन-गृहों और अपने ही घर में उनकी सहायता की क्या व्यवस्था की गयी है। जाँच-पड़ताल के प्रतिवेदनों के परिणामस्वरूप केन्द्र जो निष्कर्ष निकालता है, उसे देशभर में प्रचारित किया जाता है। कांग्रेस के आदेशानुसार इस संस्था का तीसरा कार्य बाल-कल्याण से सम्बन्धित संघीय-जैसे कानूनों का प्रशासन करना है। पहला संघीय बाल-श्रम-कानून (सन् १९१७–१८), संघीय जच्चा-बच्चा-कानून (सन् १९२२–२९) और सन् १९३५ में जच्चा-बच्चा-स्वास्थ्य, बाल-कल्याण और विकलांग बच्चों के लिए सामाजिक सुरक्षा कानून में की गयी व्यवस्था, द्वितीय महायुद्ध के समय स्वीकृत आकस्मिक मातृ-शिशु-रक्षा-कार्यक्रम

आदि। इसके अतिरिक्त यह केन्द्र बच्चों के स्वास्थ्य और कल्याण के सम्बन्ध में राज्यों, स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं और संगठनों को परामर्श देने का भी कार्य करता है।[४]

संघीय बाल-कल्याण-केन्द्र यदि १९१२ में प्रथम ह्वाइट-हाउस सम्मेलन का पुत्र था तो वह १९१९ में दूसरे ह्वाइट-हाउस के सम्मेलन का पिता बन गया। सन् १९१९ में राष्ट्रपति विल्सन की आज्ञा से इस केन्द्र ने ह्वाइट-हाउस के द्वितीय सम्मेलनका आयोजन किया। इस सम्मेलन में बाल-कल्याण-सम्बन्धी कार्यों के लिए आवश्यक एक सामान्य प्रतिमान स्थिर करने तथा उसके विकास के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार किया गया। इस प्रकार के सेवा-कार्यों के अन्तर्गत रोजगार में लगने वाले बच्चों की समस्याओं, बच्चों और माताओं के स्वास्थ्य तथा विशेष देख-भाल की आवश्यकता पड़ने पर बच्चों की रक्षा आदि से सम्बन्धित सभी प्रकार की सेवाएँ भी सम्मिलित थीं। सन् १९०९ के सम्मेलन में जो निर्णय किये गये थे, केन्द्र की उपर्युक्त सेवाओं से उनका पुष्टीकरण हो जाता है।

इस दूसरे सम्मेलन के बाद कई महत्त्वपूर्ण प्रगतियाँ हुईं। एक वर्ष पहले तक केवल आठ राज्यों में बाल-स्वास्थ्य और बाल-कल्याण-प्रभागों की स्थापना हुई थी। किन्तु इस वर्ष १३ राज्यों में इन सेवाओं के लिए कानून बन गये। सहयोगपूर्ण प्रयत्न की दिशा में एक अन्य प्रगति यह हुई कि अनावश्यक जच्चा-बच्चा-मृत्यु की संख्या घटाने के लिए सन् १९२१ में शेपार्ड टाउनर कानून निर्मित हुआ जिसका उद्देश्य "जच्चा-बच्चा-स्वास्थ्य और कल्याण-कार्य की सुविधा प्रदान करना था।" सन् १९२९ तक ४५ राज्य और संघ-शासित हवाई द्वीप इस कानून को कार्यान्वित करने में सहयोग कर रहे थे।

तीसरे सम्मेलन का, जिसे 'ह्वाइट-हाउस का बाल-स्वास्थ्य और बाल-रक्षा-सम्मेलन' कहा जाता है, आयोजन भी सन् १९३० में बाल-कल्याण-केन्द्र ने ही किया। इस सम्मेलन में बालकों की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में विचार करने के लिए जितना बड़ा समूह एकत्र हुआ उतना वाशिंगटन में इसके पहले कभी नहीं हुआ था। इसके लिए आदेश जारी करते हुए राष्ट्रपति हूबर ने लिखा था कि इस सम्मेलन का उद्देश्य "संयुक्त राज्य अमेरिका तथा उसके अधीनस्थ प्रदेशों के बच्चों के स्वास्थ्य और हित की वर्तमान

४. पहले यह कार्यक्रम संघ सरकार के वाणिज्य और श्रम-विभाग के अन्तर्गत था, सन् १९१३ में श्रम-विभाग को अलग कर दिये जाने के बाद यह श्रम-विभाग के अन्तर्गत चला आया। सन् १९४६ में इस कार्यक्रम को संघीय सुरक्षा-अभिकरण के अन्तर्गत कर दिया गया। सन् १९५३ के अप्रैल मास में संघीय सुरक्षा-अभिकरण को संघ सरकार का एक स्वतन्त्र विभाग बना दिया गया और उसका नाम स्वास्थ्य, शिक्षा और कल्याण-विभाग रखा गया।

स्थिति का अध्ययन करना, इस सम्बन्ध में किये जाने वाले कार्यों के विषय में प्रतिवेदन उपस्थित करना तथा आगे किये जाने वाले कार्यों तथा उनकी पद्धति के सम्बन्ध में संस्तुति करना है।" इस सम्मेलन में १२०० सदस्य उपस्थित थे, जिन्होंने विज्ञान की आधुनिक प्रगति तथा बच्चों के कल्याण-कार्य में उसके उपयोग के सम्बन्ध में विचार किया। उस सम्मेलन में उपस्थित किये गये, बच्चों की देख-भाल के हर सम्भावित पहलू से सम्बन्धित कुल ३२ प्रतिवेदन अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। ये प्रतिवेदन सम्मेलन के ऐतिहासिक अभिलेख का काम करते हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि बच्चों की समस्याओं के विषय में आयोजित किसी सम्मेलन को इतनी सफलता नहीं प्राप्त हुई थी, जितनी इस सम्मेलन को हुई। सम्मेलन ने एक और महत्त्वपूर्ण प्रलेख प्रस्तुत किया, जिसे "बालचार्टर" कहा जाता है और जिसमें बच्चों की आवश्यकताओं तथा उनके प्रति माता-पिता, स्कूल, चर्च, समुदाय तथा सरकारी अभिकरणों के उत्तरदायित्व के बारे में बहुत ही स्पष्टतापूर्वक और तर्कपूर्ण ढंग से विचार किया गया है।

ह्वाइट-हाउस के चौथे सम्मेलन का, जिसके सम्मानित अध्यक्ष राष्ट्रपति फ्रैन्कलिन रूजवेल्ट थे, अप्रैल सन् १९३९ में प्रारम्भिक अधिवेशन, और अन्तिम अधिवेशन जनवरी सन् १९४० में हुआ। इन दोनों अधिवेशनों के मध्यवर्ती काल में सम्मेलन के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत आनेवाले विषयों के सम्बन्ध में बहुत अधिक अध्ययन और खोज का कार्य किया गया। इस सम्मेलन के अन्त में उसके द्वारा किये गये कार्यों के सम्बन्ध में एक प्रतिवेदन उपस्थित किया गया था और बहुमत से स्वीकृत हुआ था। उस प्रतिवेदन में सम्मेलन ने कई विषयों की ओर ध्यान दिलाया था, जैसे—परिवार में बच्चे का स्थान, बच्चों के जीवन में धर्म का स्थान, समुदाय में शिक्षा-सम्बन्धी सेवाएँ, बाल-श्रम से बच्चों को बचाने का उपाय, युवक और उनकी आवश्यकताएँ, बच्चों के स्वास्थ्य का संरक्षण, विशेष असुविधाग्रस्त बच्चे, बाल-कल्याण-सम्बन्धी राजकीय प्रशासन एवं वित्त-व्यवस्था आदि।

सम्मेलन में तथा उसके बाद जो अध्ययन और विचार-विमर्श हुआ, उसके अतिरिक्त सम्मेलन ने अपने निष्कर्षों को कार्यान्वित करने के लिए कदम उठाने का भी निश्चय किया। फलस्वरूप गैर-सरकारी स्तर पर एक राष्ट्रीय नागरिक-समिति की स्थापना की गयी, जिसका कार्य इस विषय से सम्बन्धित कार्यों का उत्तरदायित्व वहन करना था, और साथ ही एक अन्तर-अभिकरण-समिति की भी स्थापना की गयी, जिसका कार्य संघ-सरकार के उन विभागों में, जिनका बालकों की समस्याओं से कुछ भी सम्बन्ध है, परस्पर सम्पर्क और समन्वय स्थापित करना था। राष्ट्रीय नागरिक-समिति ने वर्तमान परिस्थितियों का सामना करने की दृष्टि से तथा सुदूर भविष्य को भी ध्यान में रखकर तत्काल नयी योजना प्रारम्भ कर दिया। इस बात पर जोर दिया जाने लगा कि संघ-सरकार के

विभिन्न अभिकरणों में परस्पर सहयोग होना चाहिए, सूचनाओं का अधिक-से-अधिक प्रसार होना चाहिए, सरकारी तथा गैर-सरकारी अभिकरणों के कार्यक्रमों को प्रोत्साहन मिलना चाहिए और "संकटपूर्ण परिस्थितियों में रहनेवाले बच्चों की विशेष आवश्यकताओं पर विचार करना चाहिए तथा ऐसी परिस्थिति में रहने वाले बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षा, पारिवारिक देख-भाल और सामाजिक रक्षण आदि के क्षेत्र में काम करने वाली अन्य संस्थाओं के साथ हर तरह से सहयोग करने का प्रयत्न भी करना चाहिए।"

राष्ट्रीय नागरिक-समिति अभी बनी ही थी कि अमेरिका को विशाल प्रतिरक्षात्मक कार्यक्रम और राष्ट्रीय संकट की स्थिति का सामना करना पड़ा। अतः नवनिर्मित सेना के सैनिकों के स्वास्थ्य और कल्याण की देखभाल की एक नवीन समस्या चिन्ता के रूप में उत्पन्न हो गयी। बाद में सेना की छँटनी के कारण जो लाखों आदमी बेकार हो गये, उसके कारण राष्ट्र की मानव-शक्ति को जितनी अपूरणीय क्षति पहुँची, उतनी किसी और बात से नहीं। यह क्षति विशेष रूप से इस अर्थ में हुई कि बच्चों के स्वास्थ्य और कल्याण का कार्य पूर्णतया उपेक्षित हो गया। सेना की छँटनी के समय जो सैनिक डाक्टर सैनिकों को छाँटता था, वह भूल ही जाता था कि वह भी कभी बच्चा रहा होगा। जिस देश के लोगों में इतना अधिक बनियापन है कि उनकी अधिक दिलचस्पी राजकीय कर को घटवाने में ही रहती है, वहाँ जच्चा-बच्चा-स्वास्थ्य से सम्बन्धित कार्यक्रमों के लिए धन देने में कंजूसी करना स्वाभाविक ही था। उस समय जबकि प्रथम महायुद्ध काल में पैदा हुए बच्चे जवान हो चुके थे और देश की रक्षा के लिए उनकी आवश्यकता थी, न्यूयार्क के गम्भीर पत्र "न्यूयार्क टाइम्स" ने अपने एक अग्रलेख में लिखा था, "यदि उस काल में पैदा हुए बच्चों के लिए, सन् १९१८ के बाद, जो कुछ आवश्यक था, वह सब किया गया होता तो आज उनका शारीरिक गठन इस प्रकार का होता कि वे एक वर्ष के सैनिक युद्ध के लिए ही नहीं बल्कि जीवन के युद्ध के लिए पूर्णतया सक्षम होते।" उसी अग्रलेख के अन्तिम वाक्यों में जो विचार व्यक्त किये गये थे, वे न केवल व्हाइट-हाउस-सम्मेलन के सैकड़ों सदस्यों, बल्कि बालक के जीवन से सम्बन्धित कल्याण-कार्यों में रुचि रखने वाले अन्य व्यक्तियों की भावनाओं का भी पूर्णतः प्रतिनिधित्व करते हैं। वे वाक्य ये हैं, "हमारी यह उत्कट कामना है कि आज के बच्चे १९६० की सामूहिक सेना में नहीं होंगे, और उतनी ही यह तीव्र अभिलाषा भी है कि उन में से ६० प्रतिशत से अधिक लोगों का शारीरिक स्वास्थ्य बहुत अच्छी हालत में होगा। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि इस समय देश के सभी बच्चों के स्वास्थ्य की ओर अधिक ध्यान दिया जायेगा। यदि इस कार्य में होने वाला व्यय कुछ बम-वार-विमानों या युद्धपोतों के एक बेड़े के बराबर भी हो तो भी उसे वहन करने में कोई हानि नहीं है।

ह्वाइट हाउस का पाँचवाँ सम्मेलन, जिसके राष्ट्रपति हैरी एस. ट्रूमन सम्मानित अध्यक्ष थे, दिसम्बर सन् १९५० में हुआ। इस सम्मेलन को "मध्यशती ह्वाइट-हाउस सम्मेलन" नाम दिया गया जो उचित ही था। यद्यपि इसके अध्यक्ष और मंत्री सरकारी अधिकारी थे और इसमें बच्चों और युवकों के कल्याण-कार्यों से सम्बन्ध रखने वाले ३७ संघीय विभागों के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुए थे, फिर भी यह सम्मेलन सही अर्थ में जनता का सम्मेलन था। इस सम्मेलन की तैयारी, संचालन और उसके कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में एक लाख से अधिक व्यक्तियों और स्वेच्छापूर्वक काम करनेवाली ४६४ संस्थाओं का योग था। और उसके व्यय का अधिकांश धन भी गैर-सरकारी स्रोतों से उपलब्ध हुआ था। सम्मेलन के इतिहास में यह पहला अवसर था जबकि उसकी विभिन्न कार्यकारी समितियों में नवयुवकों को भी प्रतिनिधित्व मिला और उसकी विभिन्न बैठकों में सम्मिलित होने वाले प्रतिनिधियों में से भी करीब ५०० व्यक्ति २१ वर्ष से कम उम्र के थे।

सम्मेलन के उद्देश्य की घोषणा इन शब्दों में की गयी थी "इस सम्मेलन का उद्देश्य यह है कि हम इस सम्बन्ध में विचार कर सकें कि बच्चों के मानसिक भावात्मक और आध्यात्मिक गुणों का किस तरह विकास किया जाय, ताकि वे वैयक्तिक रूप से सुखमय जीवन बिताने के साथ-साथ जिम्मेदार नागरिक भी बन सकें और इस विकास के लिए किन शारीरिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों का होना आवश्यक है।" सम्मेलन में पेशेवर और गैर पेशेवर सामाजिक कार्यकर्ताओं ने विचार-विमर्श के प्रसंग में अपने-अपने कार्यों का जो विवरण उपस्थित किया, उससे सम्मेलन के अन्त में न केवल बच्चों और युवकों द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों पर, बल्कि संस्थाओं और अभिकरणों के माध्यम से किये जाने वाले वास्तविक चालू कार्यों पर बहुत अधिक प्रकाश पड़ा। उससे यह भी पता चला कि इस प्रकार के कार्य चुपचाप अनवरत रूप से किये जा रहे हैं और अमेरिका में आने वाले अशान्ति के दिनों में बच्चों और युवकों के जीवन को उत्तरोत्तर अधिक प्रभावित करना ही उनका उद्देश्य है।

जिस तरह १९३० के सम्मेलन ने बच्चों के लिए किये जाने वाले कार्यों के सम्बन्ध में एक शासन-पत्र (चिल्ड्रेन्स चार्टर) प्रस्तुत किया था, उसी तरह १९५० के इस सम्मेलन ने भी उतना ही युगप्रवर्तक बाल-कार्य-प्रतिज्ञापत्र प्रस्तुत किया। इस प्रतिज्ञापत्र द्वारा न केवल १९३० के बाल-कार्य-शासनपत्र के सिद्धान्तों का पुष्टीकरण हुआ है, बल्कि उसमें सभी जगहों के बच्चों के विकास-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति में अपने को पूर्णतया समर्पित कर देने की भावना भी निहित है।

जैसा ह्वाइट-हाउस के चौथे सम्मेलन ने किया था, उसी तरह मध्यशती ह्वाइट-हाउस सम्मेलन ने भी बच्चों और युवकों के कार्यों के सम्बन्ध में की गयी अपनी संस्तुतियों

को कार्यान्वित करने के लिए कदम उठाया। सम्मेलन की तैयारी और योजना में सैकड़ों संस्थाओं और हजारों व्यक्तियों ने जो सक्रिय योग प्रदान किया था, उससे न केवल सम्मेलन सफलता निश्चित हो गयी, बल्कि उसी कारण यह सम्भव हुआ कि एक राष्ट्रीय की मध्यशती बाल-युवक-कल्याण-समिति की भी स्थापना हो सकी। इस समय इस समिति की राष्ट्रीय, राज्यगत एवं स्थानीय शाखा-समितियाँ बच्चों और युवकों के लिए कार्य करने वाले व्यक्तियों और अभिकरणों के सहयोग से सम्मेलन द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों को सक्रियरूप में कार्यान्वित करने में लगी हुई हैं, जिससे वर्तमान समय में तथा भविष्य में भी नयी पीढ़ी के बच्चों और युवकों को सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त करने का अवसर मिल सके।

बच्चों के लिए किये जाने वाले सम-सामयिक सेवा-कार्य

बीसवीं शताब्दी के इस मध्य काल में बच्चों के लिए जो सेवाकार्य किये जा रहे हैं, उनके कम-से-कम तीन पक्ष ऐसे हैं, जो विशेष ध्यान देने योग्य हैं; उन सेवाओं का व्यापक क्षेत्र और वैविध्य, उनमें से अनेक कार्यों के लिए दी जाने वाली राजकीय कोष से सहायता और इस बात पर विशेष बल देने की प्रवृत्ति कि बच्चे अपने घर में अपने परिवार के साथ ही रहें। अगले पृष्ठों में इन विविध प्रकार की सेवाओं में से कुछ का विश्लेषण, विवेचन करने का प्रयत्न किया जायेगा, ताकि उन पर राजकीय कोष का जो धन खर्च होता है, उसका कुछ अन्दाज मिल सके और साथ ही यह भी प्रयत्न किया जायेगा कि अपने घर में रहने वाले बच्चों तथा विभिन्न कारणों से पारिवारिक सुविधाओं से रहित घर से अलग अन्यत्र रहने वाले बच्चों से सम्बन्धित सेवाओं पर भी विचार किया जा सके। यह समस्त विवेचन, आर्थिक सहायता, बच्चों की देख-भाल-सम्बन्धी सेवा, अन्य वैयक्तिक सेवा कार्यों और गृह-कार्य सहायता सम्बन्धी सेवाओं तक ही सीमित रहेगा।

वित्तीय सेवाएँ

प्रारम्भ में ही यह कह देना अच्छा होगा कि यद्यपि हम मानते हैं कि बच्चे के रहने के लिए सर्वोत्तम स्थान परिवार ही है, फिर भी कभी-कभी बहुत-से ऐसे स्पष्ट और अनिवार्य कारण उत्पन्न हो जाते हैं, जबकि बच्चे और उनके परिवार वालों की कठिनाइयों को दूर करने के लिए अन्य प्रकार की सहायता का मार्ग अपनाना पड़ता है। ये अन्य प्रकार के मार्ग इसलिए नहीं अपनाये जाते हैं कि वे ही कठिनाइयों को दूर करने के अन्तिम उपाय होते हैं, बल्कि उन्हें अपनाने में यह भावना निहित होती है कि बच्चे की आवश्यकताओं की पूर्ति और उसके कल्याण की दिशा में उनसे महत्त्वपूर्ण सहायता मिल सकती है। उन सेवाओं का लक्ष्य भी यही होता है कि अन्त में बच्चे को फिर उसके घर में रहने के योग्य

बनाया जा सके। बच्चे को अन्यत्र भेजने का निर्णय केवल इसलिए किया जाता है कि उसकी वर्तमान परिस्थिति के सुधार और उसके भावी जीवन के विकास में इससे सहायता मिल सके।

अवतक जो कुछ विवेचन किया गया है, उससे यह स्पष्ट है कि यद्यपि प्रारम्भ से ही बच्चों की संस्थागत सेवाओं पर विशेष बल दिया जाता रहा है, पर साथ ही बहुत पहले से ही इस बात पर भी लोग बराबर उतना ही बल देते आ रहे हैं कि बच्चों के घर-परिवार को भी पर्याप्त सहायता मिलनी चाहिए, ताकि बच्चों को वहीं रहकर अपना विकास करने की सुविधा प्राप्त हो सके। इसी विचार-धारा के फलस्वरूप निर्धन (गैर-संस्थागत)-सहायता के कार्यक्रम चलाये गये और बाद में माताओं की वृत्ति, आर्थिक सहायता आदि की व्यवस्था की गयी और सन् १९३५ के सामाजिक सुरक्षा-कानून के अनुसार आश्रित बच्चों की सहायता के कार्यक्रम भी अपनाये गये। उस कानून में (धारा ४०६ ए में) आश्रित बालक उसे माना गया था "जो १६ वर्ष से कम उम्र का है, जो माता-पिता की मृत्यु, घर पर दीर्घकालीन अनुपस्थिति, और उनमें से किसी एक की मानसिक या शारीरिक अक्षमता के कारण माता-पिता के आश्रय और देख-भाल की सुविधाओं से वंचित हो गया है और जो अपने पिता, माता, दादा, दादी, भाई, बहन, सौतेला बाप, सौतेली माँ, सौतेला भाई, सौतेली बहन, चाचा और चाची में से किसी एक के साथ ऐसे घर में रहता है, जिसका खर्च उपर्युक्त रिश्तेदारों में कोई चलाता है या कई मिलकर चलाते हैं।"

ए० डी० सी० कार्यक्रम (संघ राज्य और कभी-कभी स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के दान से चलने वाले) के अन्तर्गत नकद आर्थिक सहायता के अतिरिक्त बच्चों को वृद्धावस्था और उत्तराधिकारी-बीमा-कार्यक्रम के अन्तर्गत भी सहायता पाने का अधिकार है, अथवा वे एक ही साथ दोनों प्रकार की सहायता प्राप्त कर सकते हैं।[५] प्रायः बच्चे ऐसे परिवारों के सदस्य नहीं होते, जिनमें वयस्क व्यक्तियों को स्थायी रूप से और अक्षम लोगों को मिलने वाली सहायता, वृद्धावस्था-सहायता अथवा सामान्य सहायता की योजनाओं के अन्तर्गत आर्थिक सहायता दी जाती है और जिनमें परिवार के साधनों और आवश्यकताओं के आय-व्ययक का हिसाब करते समय उस परिवार के बच्चों को भी ध्यान में रखा जाता है।

अभी हाल में हुई एक गणना में यह पाया गया कि पूरे देश के तीन प्रतिशत बच्चे ए० डी० सी० कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता पाने वाले परिवारों में और १.९ प्रतिशत

५. एक बात याद रखने की यह है कि बच्चों को ओ० ए० यस० आई० कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता तभी मिल सकती है, जबकि उनके माता-पिता ने नौकरी करते समय अपने बीमे का अंशदान दिया हो, अथवा ए० डी० सी० कार्यक्रम के ढंग के अनुसार "आवश्यकताओं" पर वह सहायता आधारित नहीं है।

बच्चे ओ० ए० एस० आई० कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता पाने वाले परिवारों में रहते हैं। ए० डी० सी० कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता पाने वाले परिवारों का (जिनमें कुल बच्चों की संख्या ८५,००० है) पाँचवाँ भाग ऐसा है, जो ओ० ए० एस० आई० कार्यक्रम के अन्तर्गत भी सहायता प्राप्त करता है। क्योंकि उन परिवारों में पिता की मृत्यु हो गयी रहती है, शेष ⅘ भाग के परिवारों को बीमा-सम्बन्धी कोई भी लाभ प्राप्त नहीं होता।[६] अप्रैल, सन् १९५३ में ओ०ए० एस० आई०की सहायता पाने वाले कुल बच्चों की संख्या ८,८३,३३१ थी, जिन्हें कुल मिलाकर २,३६,६७,७०० डालरकी सहायता मिलतीथीअर्थात् औसतन प्रत्येक बच्चे को २६.८५ डालर मिलता था, जबकि ए० डी० सी० कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता पानेवाले बच्चों की उपर्युक्त संख्या से करीब दूनी, अर्थात् १५,१३,०१४ संख्या थी, जिन्हें कुल ४,७१,५९,३१९ डालर और औसत के अनुसार प्रतिबच्चे को २३.४५ डालर की सहायता मिलती थी।[७] इस प्रकार प्रस्तुत की गयी गणना के आधार पर प्रतिवर्ष दी गयी सहायता का कुछ अन्दाज मिल सकता है।

बच्चों की देख-भाल से सम्बन्धित सेवाएँ

जिस आर्थिक सहायता का विवरण ऊपर दिया गया है, उसके कारण ही यह सम्भव हो सका कि बच्चे अधिकतर अब अपने ही घर में रहने लगे (अथवा सामाजिक सुरक्षा-कानून की परिभाषा के अनुसार निर्दिष्ट आधिकारिक घरों में रहने लगे) और परिवार के लोग भी एक साथ मिलकर रहने लगे। किन्तु ऐसे भी बहुत-से बच्चे होते हैं, जिन्हें आर्थिक सहायता से भिन्न अन्य प्रकार की देख-भाल-सम्बन्धी सेवाओं की आवश्यकता होती है। इन सेवाओं को अगले पृष्ठों में हम बच्चों की देख-भाल-सम्बन्धी सेवा कहेंगे, क्योंकि उनमें देख-भाल पर ही अधिक बल दिया जाता है, ये सेवाएँ बच्चों की व्यवस्थापन-सम्बन्धी सेवाओं से, जिनमें व्यवस्थापन पर ही अधिक बल दिया जाता है, भिन्न होती हैं। इस बात के लिए प्रयत्न के बावजूद कि परिवार के लोग एक साथ रहें, कभी-कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जबकि बच्चों की देख-भाल का सबसे अच्छा उपाय यही दिखलाई पड़ता है कि बच्चे को किसी पालन-गृह में भेज दिया जाय। कभी-कभी माता-पिता की मृत्यु,

६. रूथ ह्वाईट—"कान्करेंट बेनीफिट्स आफ ओल्ड एज एण्ड सरवाइवर्स इन्श्योरेन्स एण्ड पब्लिक असिस्टेन्स"—सोशल सिक्योरिटी बुलेटिन, जिल्द १६, जुलाई १९५३, पृ० १२–१५।

७. "करेन्ट आपरेटिंग स्टेटिस्टिक्स"—सोशल सिक्योरिटी बुलेटिन, जिल्द वही, वर्ष वही, पृ० १९–२८।

गृह-परित्याग या आपसी सम्बन्ध-विच्छेद के कारण बच्चों को उनके सुख से वंचित हो जाना पड़ता है। अन्य स्थितियों में माता-पिता की स्थायी बीमारी या मानसिक अक्षमता अथवा बच्चों की देख-भाल का गुरुतर भार अकेले वहन करने में माता-पिता की असमर्थता के कारण भी बच्चों की अपने घरों में अच्छी देख-भाल नहीं हो पाती है। कभी-कभी बच्चों के बुरे स्वास्थ्य और उनके व्यवहार से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने में माता-पिता के साधन अपर्याप्त होते हैं, ऐसी स्थिति में बच्चों की विशेषीकृत सेवा और देख-भाल की आवश्यकता होती है। किन्तु बच्चों को उनके घर से हटाकर अन्यत्र रखने अथवा किसी दूसरे के बच्चों को अपने घर में रखने का निर्णय अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक करना चाहिए। चाहे बच्चे की पारिवारिक स्थिति कितनी भी दुर्भाग्यपूर्ण क्यों न हो, पर यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि बच्चे की जड़ें अपने परिवार में प्रारम्भमें ही कुछ-न-कुछ जम गयीं हैं। पारिवारिक स्थिति के खराब होने के बावजूद अपने परिवार की कुछ सार्थकता होती है। वह जन्म रक्त और रिश्तों द्वारा अपने परिवार से बँधा रहता है। इन सभी प्रकार के मामलों में तथा अन्य प्रकार के मामलों में भी बच्चों के लिए निश्चित रूप से पालक-परिवार-गृहों की व्यवस्था करनी चाहिए जिनमें ऐसे पालक माता-पिता हों जो बच्चे को प्यार दे सकें, उसकी देख-भाल कर सकें, उसे अच्छी तरह समझ सकें और उसका उचित निर्देशन कर सकें, ताकि बच्चा सफल जीवन बिताने के लिए आवश्यक अपने भीतर निहित क्षमताओं का समुचित विकास कर सके।[८]

बच्चे को पालक-परिवार में भेजने के पूर्व कुछ ब्यौरे की बातों की जानकारी अवश्य प्राप्त कर लेनी चाहिए, ताकि उनके आधार पर दोनों परिवारों के बीच सम्बन्ध स्थापित हो सके। इनमें से बच्चे के शारीरिक स्वास्थ्य की स्थिति और उसके स्वास्थ्य के इतिहास की जानकारी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। पालक-परिवार को यह पहले ही जान लेना चाहिए कि बच्चे को किस प्रकार के भोजन, वस्त्र, व्यायाम, दवा आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। उसी तरह उसे बच्चे की मानसिक क्षमता के बारे में भी कुछ जानकारी होनी चाहिए ताकि वह बच्चे से उसी प्रकार के व्यवहार की उम्मीद करे और उसी के अनुसार उसकी शिक्षा तथा व्यावसायिक सुविधाओं की व्यवस्था कर सके। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बच्चे के भावनात्मक स्वभाव, उसकी पृष्ठभूमि, पारिवारिक जीवन-सम्बन्धी उसके पूर्ववर्ती अनुभव, माता-पिता, भाई, बहन आदि के साथ उसके व्यावहारिक सम्बन्ध,

८. बच्चों की देख-भाल और उनके व्यवस्थापन से सम्बन्धित सेवाओं का अन्तर स्पष्ट करने में लेखक को "एलेन कीथ लूकास" की हस्तलिखित पुस्तक से पर्याप्त सहायता मिली है और वह उनके प्रति आभारी है।

उसके दृष्टिकोण, आदतों और व्यवहार के सम्बन्ध में भी पूरी जानकारी होनी चाहिए। इन बातों की पहले से ही जानकारी हो जाने से बच्चे के साथ तथा उसके परिवार के साथ एवं जिस परिवार में उसे रखना है, उसके साथ काम करने में अभिकरण को सुविधा हो और सबके हितों का ध्यान रखा जा सके। किन्तु इतने से ही यह निश्चित नहीं हो जाता कि किसी विशेष प्रकार के बच्चे के लिए पूर्णतया उपयुक्त पालक-परिवार मिल ही जायेगा, (यद्यपि यह हमेशा सम्भव नहीं है, फिर भी यदि ऐसे उपयुक्त पालक-परिवार कहीं हों तो भी) किन्तु इस प्रबन्ध से इतना लाभ होता है कि बच्चे को एक नयी परिस्थिति में रहने का मौका मिलता है, जिसमें पालक-परिवार और पालित बच्चे दोनों स्वाभाविक और एक दूसरे के लिए सन्तोषजनक रूप में रह सकते हैं।

अनेक बाल-अभिकरणों द्वारा बच्चों को स्थायी रूप से किसी पालक-परिवार में रखने के पहले अस्थायी रूप से किसी पालन-गृह में रखने की व्यवस्था की जाती है। जब बच्चों को अनेक कारणों से अपना घर छोड़ कर रहने के लिए अन्यत्र जाना पड़ता है तो उन्हें पहले भावनात्मक झटका लगता है। जन्म से ही बच्चे की जड़ें परिवार में स्थिर हो गयी रहती हैं, इसके कारण उसके मन में यह भावना दृढ़ हो जाती है कि वह किसी विशेष परिवार, घर, या व्यक्तियों से सम्बन्धित है, जो उसके अपने हैं। इसके कारण उसमें स्थायित्व और सुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है। जो बच्चा घर छोड़कर भाग जाता है अथवा अविनयी और अपराधी मनोवृत्ति का हो जाता है, उसके इन लक्षणों से भी यही प्रकट होता है कि उसे ऐसे घर और परिवार की आवश्यकता है, जो उसके अपने हैं और उसे उसी रूप में स्वीकार कर उसकी सहायता करने की आवश्यकता होती है। कुछ ऐसे कारणों से विवश होकर जो उसके नियन्त्रण से बाहर की होती हैं, वह ऐसा कदम उठाता है कि उसे अपना घर छोड़ना पड़ता है। अतः ऐसे बालक को कम नहीं, अधिक देख-भाल, प्यार और समझने की आवश्यकता होती है। बच्चे के नये परिवार में जाने का अनुभव प्रारम्भ में उसे इस तरह विचलित कर देने वाला होता है कि वह तुरन्त उस परिवार को अपना परिवार या उस घर को अपना स्थायी घर नहीं समझ पाता है। इसलिए पहले उसे कुछ ऐसे अन्तरिम काल की आवश्यकता होती है, जिसमें उसे ऐसे अनुभव प्राप्त हों कि वह अपने भय, विद्रोही भावना और सहायता के प्रति विरोध की प्रवृत्ति से कुछ मुक्ति पा सके। सबसे अधिक तो उसे ऐसी सहायता की आवश्यकता होती हैं, जिससे उसकी यह भावना समाप्त हो सके कि उसके माँ-बाप ने उसका परित्याग कर दिया है। जिस समय उसके मन में यह संघर्ष चलता रहता है, तभी उसे ऐसे परिवेश में रखने की आवश्यकता होती है, जहाँ वह अपनी भावनाओं को अच्छी तरह समझ सके और उसकी कठिनाइयों को ठीक तरह से समझ कर उसे उसी रूप में अपनाया जा सके। अस्थायी पालन-गृह में बच्चे से उन सब बातों की

अपेक्षित नहीं की जाती, जिनकी किसी स्थायी पालन-गृह में की जाती है। वहाँ नये लोगों से अपने सम्बन्ध का स्वरूप निर्धारित करने के लिए तथा उस सम्बन्ध में ठोक-बजाकर निर्णय करने के लिए उसे अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता होती है। वहाँ यह भी पता चला जाता है कि वह कोई सन्तोषजनक सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम है या नहीं। साथ ही किसी भी पालन-गृह में बच्चे को कुछ सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती है और प्रायः जब बालक में स्थायित्व की भावना आ जाती है तो उसे नवीन जीवन की दिशा में अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया जाता है। अस्थायी पालन-गृह में बच्चे को यह अनुभव करने की आवश्यकता होती है कि उसे अपने आप को समझने का तथा अपनी वास्तविक आवश्यकताओं और इच्छाओं को अभिव्यक्त करने या कहने के लिए प्रयत्न करने का समय आ गया है। अस्थायी पालन-गृह के पालक माता-पिता, जो बच्चे को ठीक-ठीक समझते हैं, उन्हें तथा अभिकरण को इस बात में सहायता पहुँचाते हैं कि बच्चे के लिए एक ऐसे उपयुक्त पालन-गृह की खोज की जा सके, जहाँ वह उस परिवार का एक अंग बन कर रह सके। जब बच्चा अस्थायी पालन-गृह को छोड़ने के लायक हो जाता है तो उसे उसके लिए उपयुक्त स्थायी पालन-गृह में पहुँचा दिया जाता है, जिसकी व्यवस्था पहले ही से कर दी जाती है।

बच्चे के नये घर के बारे में जानकारी—इस कार्य का प्रारम्भिक रूप बच्चे को ठीक तरह समझना है। दूसरा कदम, जिसमें उतने ही कौशल की आवश्यकता होती है, पालन-गृह की खोज करना है। इस सम्बन्ध में अधिकरण को इस बात का पता लगाना होता है कि जिस पालक-परिवार में बच्चे को रहना है, उसकी आर्थिक स्थिति क्या है, उसका घर कैसा है, घर-गृहस्थी का स्तर क्या है, उस परिवार में कौन-कौन लोग हैं, और पालक माता-पिता की पृष्ठभूमि, बौद्धिक स्तर, शिक्षा-दीक्षा और रुचियों का स्वरूप क्या है। उसी तरह यह भी आवश्यक है कि पालक माता-पिता इस बात के लिए राजी हों कि वे बच्चे की देख-भाल और उसकी जिम्मेदारी के कार्य में अभिकरण के साथ अधिक-से-अधिक सहयोग करेंगे। अन्य सभी व्यक्तियों की तरह पालक माता-पिता भी रहन-सहन के ढंग में ही सन्तोष की खोज करते हैं। अतः पराये घर के बच्चों को अपने घर में रख कर उनकी देख-भाल करने में उनको भी उतना ही सन्तोष मिलता है, जितना उन बच्चों के माँ-बाप को वे जानते हैं अथवा उन्हें जानना चाहिए कि यह एक ऐसा काम है, जिसमें कभी-कभी बड़ी निराशा होती है, संघर्ष करना पड़ता है, दोषारोपण का शिकार होना पड़ता और कभी-कभी तो एकदम हताश हो जाना पड़ता है, किन्तु ऐसे क्षण तो प्रत्येक परिवार में आते हैं। पालक माता-पिता को इन सब स्थितियों का सामना करने और बच्चे की देख-भाल से सम्बन्धित अपने उत्तरदायित्व और बच्चों की माँगों को समझने की आवश्यकता होती है। किन्तु इसके बदले में उन्हें किसी बच्चे या कई बच्चों को अपने घर में रखकर पालन

करने के अनुभव का आनन्द और दूसरों के जीवन के विकास में सहायक होने का सन्तोष भी प्राप्त होता है। अब सबसे महत्त्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न यह है कि किसी बच्चे के स्वाभाविक और स्वस्थ विकास में पालक माता-पिता किस प्रकार योग-दान कर सकते हैं और उनके आपसी सम्बन्धों तथा घर के बाहर के लोगों और पालित बच्चे के साथ उनके सम्बन्धों में किस प्रकार का सामञ्जस्य होना चाहिए जिससे इस पालन-व्यवस्था द्वारा सबको समान रूप से सन्तोष प्राप्त हो सके।

पालन-गृहों की सहायता—किसी बालक की स्थिति के अध्ययन तथा उसके अनुकूल उपयुक्त पालन-गृह की खोज करने के अतिरिक्त अभिकरण का एक तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य पालन-गृह अर्थात् पालित बालक और माता-पिता की सेवा में निरन्तर तत्पर रहना है। यद्यपि अभिकरण बच्चे के लिए, उसके माता-पिता तथा न्यायालय के प्रति अन्त तक उत्तरदायी होता है, किन्तु बच्चे की देख-भाल से सम्बन्धित दैनिक कार्यों तथा उनसे सम्बन्धित निर्णयों का उत्तरदायित्व वह पालक माता-पिता को सौंप देता है, क्योंकि बच्चे को रहना तो किसी परिवार में ही पड़ता है, अभिकरण में तो वह रह नहीं सकता, फिर भी पालक-परिवार के कामों में अभिकरण का महत्त्वपूर्ण योग रहता है। क्योंकि यह देखना उसी की जिम्मेदारी है कि बच्चे के विकास के लिए जिस "स्थायित्व" की अनिवार्य आवश्यकता होती है, वह उसे पालन-गृह में उपलब्ध होता है या नहीं। यदि पालन-गृह के सदस्यों में आपस में कोई ऐसा मतभेद या झगड़ा उत्पन्न हो जाता है, जिससे पालित बच्चे की स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है तो उस स्थिति में भी अभिकरण बच्चे के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पालन करने के लिए तत्पर रहता है। इसके अतिरिक्त अभिकरण बच्चों की प्रत्यक्ष रूप से भी कुछ सहायता करता है, जैसे—बच्चे के लिए अधिक समय तक चलनेवाली चिकित्सा-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करना (बच्चे की सामान्य बीमारी का उपचार तो पालक-परिवार बिना अभिकरण की सहायता के भी करा ही लेता है), अथवा बच्चे के माता-पिता से सम्पर्क बनाये रखना, किन्तु अधिकांश उदाहरणों में अभिकरण के कार्यकर्ता का मुख्य कार्य बच्चे और उसके पालक माता-पिता के सम्बन्धों की व्यवस्था में सहायता करना होता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि कार्यकर्ता पालक माता-पिता को यह शिक्षा देता है कि बच्चे का सुधार कैसे किया जाय, इसके विपरीत इसका अर्थ यह है कि बच्चे के पालन की प्रक्रिया में पालक माता-पिता को जब भी कोई कठिनाई मालूम पड़ती है तो अभिकरण उनकी तत्काल सहायता के लिए तत्पर रहता है। अभिकरण का उद्देश्य ऐसी व्यवस्था करना है जिससे पालन-गृह में बच्चे को अपने ही घर के स्वाभाविक वातावरण की प्रतीति हो सके, किन्तु अभिकरण पालन-गृह की व्यवस्था में कम-से-कम दखल देता है और ऐसा तभी करता है जबकि

दखल देना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। प्राय: ऐसा होता है कि बच्चा पालन-गृह में आने पर अपने साथ अपने भय, विक्षोभ, विरोध, उपद्रवकारिता आदि की प्रवृत्तियाँ भी लेता आता है और इन सब प्रवृत्तियों को दूर करने में पालक माता-पिता को अभिकरण की सहायता की आवश्यकता होती है। उसी तरह से प्राय: ऐसा भी होता है कि पालन-गृह में पहुँचकर बच्चे को प्यार और सुरक्षा का वातावरण तथा उसकी इच्छाओं को पूरी करने वाली सुविधाएँ प्राप्त होने लगती हैं, जिससे उसकी अनेक भावात्मक कठिनाइयाँ और बाधाएँ अपने आप दूर हो जाती हैं और वह स्वाभाविक जीवन का मार्ग पकड़ लेता है।

इस सेवा की प्रक्रिया में इस बात के लिए पूरा प्रयत्न किया जाता है कि बच्चे और उसके अपने परिवार के बीच बराबर सम्पर्क बना रहे, क्योंकि अधिकांश उदाहरणों में बच्चों के मन में इस भावना का रहना आवश्यक होता है कि पालन-गृह में आने के बाद भी वे अपने निजी परिवार के ही अंग हैं और अन्त में उन्हें लौटकर अपने पहले वाले घर में ही जाना है। यह बात इस सिद्धान्त के अनुरूप ही है कि अभिकरण बच्चे के लिए माँ-बाप की सहायता का कार्य करता है। अच्छे अभिकरण हमेशा बच्चे से उनके माँ-बाप को अथवा माँ-बाप से बच्चे को मिलाते रहने की व्यवस्था करते रहते हैं और साथ ही इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि इस सम्पर्क के कारण पालक माता-पिता के साथ बच्चे के सम्बन्धों में कोई व्यवधान न उत्पन्न होने पाये। अभिकरण के कार्यकर्ता के लिए बच्चे से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों की भावनाओं और दृष्टिकोणों को समझना आवश्यक होता है और साथ ही उसे इस सिद्धान्त के साथ चलने की भी आवश्यकता होती है कि पालक-परिवार में रहने वाले पालित बच्चे का सर्वोत्तम हित ही सही अर्थ में बाल-कल्याण-कार्य है।

सेवा की समाप्ति—इस दिशा में अभिकरण का अन्तिम कार्य पालन-गृह-सम्बन्धी किसी विशेष सेवा-कार्य की उचित विधि से समाप्ति करना है। इस समाप्ति का अवसर या तो उस समय आता है, जबकि बच्चा कानून द्वारा निर्धारित उम्र का हो जाता है और जिसे पार कर लेने पर न्यायालय का उस पर से अधिकार समाप्त हो जाता है अथवा समाप्ति का समय कभी भी, जब कि बालक के माता-पिता उसे वापस लेने को तैयार हों, आ सकता है। सेवा की समाप्ति उस समय भी हो सकती है, जबकि बालक काफी बड़ा हो जाता है और स्वेच्छापूर्वक पालन-गृह को छोड़ना चाहता है। इन सभी स्थितियों में अभिकरण का अन्तिम कार्य यह होता है कि वह बालक से सम्बन्धित सभी पक्षों से परामर्श करके उसके भविष्य के लिए रचनात्मक कार्यक्रम तैयार करता है। निश्चय ही इन सभी व्यवस्थाओं के केन्द्र में बालक स्वयं होता है। पालन-गृह छोड़ने के उपरान्त बालक के रहने की व्यवस्था या तो उसके अपने घर में की जाती है या उसे किसी शिक्षा-संस्था में भेज दिया जाता है अथवा किसी व्यवसाय में लगा दिया जाता है। किसी व्यक्ति को अपने पैरों पर खड़े

होने के लिए तथा अकेले अपना रास्ता बनाने के लिए तैयारी करने की पहले से ही आवश्यकता होती ही है। अतः बालक के भविष्य के लिए यह तैयारी अपने आप या एकाएक नहीं हो जाती, बल्कि उसके लिए पालक-परिवार, उसके माता-पिता, स्वयं बालक और अभिकरण सब मिलकर काफी दिनों तक विचार-विमर्श करते हैं। बच्चा जब अपने घर वापस आ जाता है तो उसके बाद भी अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं। ये कठिनाइयाँ या तो साधारणतया वैसी ही होती हैं, जैसी प्रायः हर घर में दिखलाई पड़ती हैं अथवा उनका ऐसा गम्भीर रूप भी हो सकता है जिसके लिए बाहरी सहायता की आवश्यकता पड़ती है। अतः अभिकरण इस काम में भी बालक के माता-पिता की सहायता के लिए तैयार रहता है। हर हालत में सहायता-कार्य करते समय अभिकरण बालक के माता-पिता को ही उसके प्रति उत्तरदायी मानता है, क्योंकि वे ही किसी ऐसे अभिकरण से, जिसने कठिन समय में उनकी सहायता की है, बिना हिचक के पुनः सहायता की माँग कर सकते हैं।

संस्थागत देख-भाल

पूरी उन्नीसवीं शताब्दी में बच्चों के लिए किये जाने वाले कार्यों में संस्थागत देख-भाल के कार्य की प्रधानता के विरुद्ध होने वाली प्रतिक्रिया, बच्चों की देख-भाल-सम्बन्धी अन्य पद्धतियों के प्रादुर्भाव तथा सन् १९०९ के ह्वाइट-हाउस -सम्मेलन के प्रभाव के कारण बीसवीं शताब्दी के दूसरे , तीसरे और चौथे दशकों में बच्चों से सम्बन्धित सेवा-कार्यों का रुख संस्थागत देख-भाल की दिशा से हटकर अन्य दिशाओं में मुड़ गया। ईमानदारी से यह बात स्वीकार की जानी चाहिए कि प्रारम्भिक बाल-संस्थाएँ बहुत अधिक आत्म-केन्द्रित,बालकों की देख-भाल की सेवा से सम्बन्धित नवीन उपलब्धियों की ओर से अत्यधिक उदासीन तथा अपने को परिवर्तित करने के विचार का घोर विरोध करने वाली थीं। इन बातों के विरुद्ध प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति इस रूप में हुई कि बच्चों की संस्थागत देख-भाल से सम्बन्धित सभी पद्धतियों के बारे में लोगों के मन में सन्देह पैदा हो गया।

संस्थाओं पर इन सब बातों का प्रभाव पड़े बिना न रहा। यद्यपि बहुत आशावादी लोग ऐसे भी थे, जो अपनी योजनाओं द्वारा यह सिद्ध करना चाहते थे कि बच्चों की देख-भाल की दिशा में संस्थाओं का अब भी महत्त्वपूर्ण योग-दान हो सकता है। ऐसे लोगों तथा अन्य लोगों ने भी इस दिशा में नवीन ज्ञान और नवीन प्रायोगिक अनुभवों की उपलब्धि के लिए बहुत कुछ कार्य किया और इस शताब्दी के मध्य तक यह स्पष्ट हो गया कि संस्थाओं द्वारा भी बालकों की महत्त्वपूर्ण सेवा की जा सकती है। संस्थागत सेवा का अपना अलग महत्त्व था और जिस समय अन्य सेवाओं द्वारा बालक का कोई लाभ नहीं हो पाता था तभी

इन संस्थाओं की उपयोगिता समझ में आती थी और उनके साथ सामञ्जस्य स्थापित करने की भावना उत्पन्न होती थी। फलस्वरूप आज यह स्थिति है कि बच्चों के लिए की जाने वाली अन्य सेवाओं के साथ-साथ संस्थागत सेवाएँ भी सामान्य रूप में प्रचलित हैं और पालन-गृहों की देख-भाल, गोद लेने की व्यवस्था और अपने ही घरों में रहने वाले आश्रित बच्चों की सहायता से सम्बन्धित कार्यों के समान संस्थागत सेवा-कार्यों का भी महत्त्व स्वीकार कर लिया गया है। वर्तमान स्थिति तक पहुँचने के लिए संस्थागत सेवा-कार्यों के नेताओं को बहुत गम्भीर चिन्तन, मनन तथा संस्थाओं के स्वरूप में बहुत कुछ परिवर्तन करना पड़ा है। इन संस्थागत सेवा-कार्यों को जारी रखने के लिए वर्तमान संस्थाओं के स्वरूप और पद्धति में और भी सुधार करने की आवश्यकता है और इसके लिए अनवरत अध्ययन, आत्मपरीक्षण और अक्षुण्ण साधन-सम्पन्नता की आवश्यकता है। यह तभी-सम्भव होगा, जबकि संस्थागत सेवाओं का संचालन, पर्याप्त सूक्ष्म दृष्टि और मानव-व्यवहार विशेप रूप से बच्चों के व्यवहार की अच्छी जानकारी पर आधारित हो।

इस विषय पर आगे विचार करने के पूर्व यह आवश्यक है कि पिछले कुछ दशकों में संस्थागत देख-भाल तथा पालक परिवारों द्वारा की जाने वाली देख-भाल की सेवाओं से सम्बन्धित आँकड़ों का परीक्षण कर लिया जाय। सन् १९३३ और १९५० के बीच (अन्तिम दश-वार्षिक मत-गणना के आधार पर) बाल-संस्थाओं में रहने वाले बच्चों की संख्या एक लाख चालीस हजार से घटकर पञ्चानबे हजार हो गयी, अर्थात् यह संख्या सन् १९३३ की संख्या से ३८ प्रतिशत कम थी। इसकी तुलना में पालक-परिवारों की देख-रेख में रहने वाले बच्चों की संख्या, जो सन् १९३३ में एक लाख दो हजार थी, सन् १९५० में बढ़कर एक लाख सत्तर हजार हो गयी अर्थात् उसमें ४० प्रतिशत वृद्धि हुई। एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति यह दिखलाई पड़ी कि कि राजकीय तत्त्वावधान में चलने वाले पालन-गृहों में रहने वाले बच्चों की संख्या में १८७ प्रतिशत की वृद्धि हो गयी और इसके विपरीत गैर-सरकारी तत्त्वावधान में चलने वाले पालन-गृहों में रहने वाले बच्चों की संख्या ११ प्रतिशत कम हो गयी। देख-भाल सम्बन्धी सेवाओं के स्वरूप में होनेवाले इस परिवर्तन पर विचार करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है कि इस देश की सामान्य जनसंख्या भी जो सन् १९३० में बारह करोड़ बीस लाख थी, सन् १९५० में बढ़कर पन्द्रह करोड़ हो गयी अर्थात् उसमें २३ प्रतिशत वृद्धि हो गयी।[१]

१. यू० एस० जनगणना-समिति—चिल्ड्रेन अण्डर इन्स्टीच्यूशनल केयर एण्ड इन फोस्टर होम्स, १९३३–१९३५; तथा यू० एस बालकेन्द्र के प्रधान डाक्टर मर्था ईलियट का लेखक के नाम ३० अक्टूबर, सन् १९५३ का लिखा पत्र। संयुक्त राज्य

संस्थाओं में काम करने वाले वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता—बाल-संस्थाओं के विकास में कितनी तीव्रता है, इसका एक प्रमाण तो यही है कि उनमें काम करने वाले विशेषज्ञ वैयक्तिक कार्यकर्ताओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। इन संस्थाओं में वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता एक नियमित कर्मचारी होता है और उसकी कार्यसीमा के अन्तर्गत संस्था में बालकों के प्रवेश, निवास और मुक्ति से सम्बन्धित कार्य आते हैं। बच्चों के प्रवेश में वह संस्था के प्रवेश-सम्बन्धी नीति के अनुसार काम करता है और उन्हीं नियमों के अनुसार बच्चों के माता-पिता के आवेदन-पत्रों तथा न्यायालय-सम्बन्धी कामों को भी देखता है। आवेदक के साथ बातचीत करके वह बच्चे तथा उसके परिवार, दोनों की आवश्यकताओं का पता लगाता है। आवेदक को वह यह भी समझाता है कि संस्था किस प्रकार की सेवा करती है। इसके अतिरिक्त वह और आवेदक दोनों मिलकर यह विचार करते हैं कि समुदाय के किन अन्य साधनों से भी लाभ उठाया जा सकता है। वे अलग-अलग तथा एक साथ मिलकर अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आवेदक की आवश्यकताओं और समुदाय के साधनों को देखते हुए केवल उस संस्था की सेवाएँ ही उस बच्चे के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हैं। यह ध्यान देने की बात है कि इसके पूर्व इन संस्थाओं को सेवा का एक मात्र साधन अथवा अन्य साधनों के असफल हो जाने पर अन्तिम साधन समझने की जो धारणा थी, इस नवीन पद्धति के कारण वह बिलकुल बदल गयी। जैसा पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है, आधुनिक युग की बाल-संस्थाएँ बच्चों के लिए उसी प्रकार की उपयुक्त सेवा कर रही हैं, जैसी अन्य पद्धतियों द्वारा की जाती है।

वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता का दूसरा कार्य बच्चे के संस्था म रहते समय के अनुभवों से सम्बन्धित होता है। संस्था में कुटीरों और उनके अधीक्षकों (जिन्हें गृह-माता या गृह-पिता कहा जाता है) की व्यवस्था होती है। वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता प्रवेश के बाद बच्चे को उसके लिए निर्धारित कुटीर में पहुँचाता और गृह-माता या गृह-पिता से परिचय प्राप्त करने में उसकी सहायता प्राप्त करता है। वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता बच्चे के सम्बन्ध में कुटीर के व्यवस्थापक तथा बच्चे के परिवार की अनुभव-सामग्री का अध्ययन और उपयोग करता है और यह कार्य उसके अन्य सभी कार्यों के समान संस्था की नीति के अनुरूप होता है। उसी तरह जब बालक संस्था में प्रवेश करता है और धीरे-धीरे उन स्थितियों का, जिसमें उसे लाकर रखा गया है, अंग बन जाता है तो उस समय भी वैयक्तिक सेवा-

जनगणना समिति—यू० यस० सेन्सस आफ पापुलेशन, १९५०—खण्ड ४, विशेष प्रतिवेदन भाग २, अध्याय–सी—"इन्स्टीच्युशनल पापुलेशन"—वाशिंगटन डी० सी०, यू० एस० गवर्नमेण्ट प्रिंटिंग आफिस, १९५३ ।

कार्यकर्ता बच्चे और संस्था के प्रशासन अथवा व्यवस्थापक माता-पिता के बीच मध्यस्थ का काम करता है। यदि बच्चे को संस्था के अन्य बच्चों तथा गृह-माता-पिता के बीच रहकर दैनिक जीवन-सम्बन्धी किसी कठिनाई का अनुभव होता है तो वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता उसकी सहायता करता है। वह सहायता का जो भी कार्य करता है, उसके पीछे अनुशासन, अधिकार अथवा प्रशासन-सम्बन्धी कोई दबाव नहीं होता। यद्यपि बच्चा संस्था के प्रत्येक कर्मचारी से, जिसमें वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता भी होता है, अपनी बात कहने के लिए स्वतन्त्र होता है, किन्तु उसका सम्बन्ध मुख्य रूप से अधीक्षक माता या पिता से ही होता है। बालक और उसके परिवार के बीच सम्बन्ध बनाये रखने का उत्तरदायित्व भी वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता का ही है। बच्चे के भीतर इस भावना का होना आवश्यक है कि यद्यपि वह अपने माँ-बाप और परिवार से अलग हो गया है, फिर भी वे परोक्ष रूप में उसके पीछे हैं। इस भावना के कारण ही बच्चा संस्था की जीवन-विधि को अपनाने के प्रयत्न में सफलता प्राप्त कर सकता है। संस्था, बच्चा और उसका परिवार इन तीनों का अन्तिम लक्ष्य यही होता है कि बच्चा संस्था में एक सुधरा हुआ बच्चा बनकर फिर अपने घर वापस चला जाय और इस लक्ष्य की पूर्ति तभी हो सकती है जब कि बच्चा और उसके परिवार का सम्बन्ध बना रहे और परिवार के वातावरण में भी सुधार हो जाय।

वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता का तीसरा कार्य बच्चे की संस्था से अपने परिवार में जाने की क्रिया से सम्बन्धित होता है। बच्चे की दृष्टि से यह आवश्यक है कि कार्यकर्ता बच्चे और उसके परिवार दोनों को इस पुनर्मिलन के लिए पहले से ही अच्छी तरह तैयार कर दे। इसका अर्थ यह हुआ कि कार्यकर्ता बालक के माता-पिता से मिलकर उसकी शिक्षा तथा व्यवसाय-धन्धे से सम्बन्धित योजनाओं के बारे में तथा समुदाय बच्चे से जिन बातों की अपेक्षा रखता है, उनके सम्बन्ध में विचार-विमर्श करे। किन्तु कभी-कभी बच्चे का अपने घर लौटना असम्भव हो जाता है। ऐसी स्थिति में बच्चे को संस्था में न रखकर किसी उपयुक्त पालन-गृह में रखने की आवश्यकता होती है अथवा उसका मामला ऐसी संस्थाओं के हाथ में सौंप देना पड़ता है, जो बाल-व्यवस्थापन का कार्य करती हैं, और यह काम वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता ही करता है। बालक और उसके परिवार की तैयारी और बालक के सम्बन्ध में भावी योजना के निर्माण का कार्य सम्पन्न हो जाने के बाद बच्चे को संस्था से मुक्त किया जाता है और उस समय फिर कार्यकर्ता, बालक के परिवार, समुदाय और संस्था के बाहर की बिलकुल नयी दुनिया के साथ उसके जीवन का सामञ्जस्य स्थापित करने में उसकी सहायता करता है। यह सेवा-कार्य कितने दिनों तक चलेगा, यह प्रारम्भ में ही कहना असम्भव होता है, क्योंकि वह बहुत कुछ समाज के साथ सामञ्जस्य स्थापित

करने में बालक की क्षमता पर निर्भर करता है। इस सेवा का स्वरूप बहुत कुछ बच्चे की समस्याओं के स्वरूप तथा अपने आन्तरिक साधनों को अपने भीतर विकसित करने की उसकी क्षमता के आधार पर निर्धारित होता है। सेवा की समाप्ति कब होनी चाहिए इसका ज्ञान होना कार्यकर्ता के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना इस बात का ठीक-ठीक ज्ञान होना कि सेवा किसकी और कब होनी चाहिए। जब किसी बालक को सेवा की आवश्यकता नहीं रह जाती, उस समय भी उसकी सहायता करते रहने का अर्थ उसकी पराश्रयता की भावना को, जो संस्था में रहते समय उसमें थी, स्थायी बनाना है।

अब केवल संस्था के रूप, संगठन और कर्मचारियों के बारे में ही लिखना शेष रह जाता है। सभी यह मानते हैं कि बालकों की वे संस्थाएँ जिनमें छोटे-छोटे कुटीर होते हैं, जिनमें से प्रत्येक में कुछ बच्चे एक गृह-माता (अथवा गृह-पिता) की देख-रेख में अनौपचारिक पारिवारिक जीवन व्यतीत करते हैं, उन पुरानी संस्थाओं की तुलना में अच्छी होती हैं, जिनमें बालकों के रहन-सहन का तरीका बैरकों में रहने वाले सैनिकों जैसा होता था और जिनकी आवास-व्यवस्था भी बैरकों-जैसी होती थी। संस्थाओंके बाहर के जीवन की तुलना में किसी भी संस्था में रहने वाले व्यक्तियों के जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति की कुछ सुविधाओं का अपहरण तो हो ही जाता है तथा समूह की आवश्यकताओं के आगे उन्हें अपने वैयक्तिक स्वार्थों का भी कुछ त्याग करना ही पड़ता है। किन्तु संस्थाओं में ऐसा प्रायः होता है कि कुछ दिनों के बाद बालकों को अपनी वैयक्तिक जीवनाभिव्यक्तियों का मोह नहीं रह जाता और वे अपनी सबसे मूल्यवान् वस्तु—अपने व्यक्तित्व को ही खो देते हैं, जिसके भीतर व्यक्ति के रचनात्मक जीवन की क्षमता निहित रहती है। पुरानी संस्थाओं के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से लागू होती है, क्योंकि उनका गृह-प्रबन्ध तथा आर्थिक व्यवस्था बालकों को एक साँचे में ढालने के सिद्धान्त पर ही आधारित होती थी। किन्तु नवीन ढंग की संस्थाओं, विशेष रूप से कुटीर-पद्धति वाली संस्थाओं में बालक को अपनी वैयक्तिक जीवनाभिव्यक्ति के लिए अधिक अवसर प्राप्त होते हैं। साथ ही वहाँ बालक ऐसे अनेक गुणों को भी उपलब्ध करता है, जो व्यक्ति और समूह के बीच सामञ्जस्य स्थापित करने के प्रयत्न में सहज अनुभव के रूप में प्राप्त हो जाया करते हैं। यदि इस प्रकार की किसी संस्था के कर्मचारी संस्था के उद्देश्यों से पूर्णतः अवगत होकर कार्य करते हैं तो वहाँ व्यक्ति और समूह की जीवनाभिव्यक्तियों के सामञ्जस्य द्वारा बच्चों के विकास की दिशा में बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य हो सकता है। किसी संस्था के कर्मचारी तभी योग्य और मानव-व्यवहार की प्रेरणा-शक्ति और अभिव्यक्ति की पद्धतियों के अच्छे जानकार हो सकते हैं, यदि वे सामाजिक कार्य में कुछ प्रशिक्षित हैं अथवा उन्हें वैयक्तिक समाज-सेवा कार्य के सिद्धान्त और व्यवहार की कम-से-कम कुछ सामान्य जानकारी है। नयी संस्थाओं

में कार्य करने वाली गृह-माताओं से यह आशा करना व्यर्थ है कि वे किसी समाजसेवा विद्यालय की स्नातिका हों (गृह-पिताओं से भी इस प्रकार की उमीद करना उचित नहीं है) किन्तु उनसे इतनी आशा तो की ही जाती है कि उसमें पर्याप्त समझ, भावात्मक संवेदना, प्रत्युत्पन्नमतित्व और दूसरों के साथ उसके सम्बन्धों में पर्याप्त स्वाभाविकता आदि गुण हों। उसी तरह बच्चों के सम्पर्क में आनेवाले कर्मचारियों में भी उपर्युक्त गुणों का होना आवश्यक है। संस्था के अधीक्षक अथवा प्रधान अधिकारी में तो उनका होना विशेष रूप से आवश्यक है। उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त आज के युग में अधीक्षक से यह उमीद करना भी स्वाभाविक ही है कि वह किसी बाल-संस्था के इस प्रकार संचालन की योग्यता रखता हो, जिससे अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ समय के लिए उस संस्था में रखे गये बालकों के जीवन में एक नवीन रचनात्मक अध्याय का प्रारम्भ हो सके।

आधुनिक युग में संस्थाओं का कार्य जीवन-पद्धति के रूप में—उन्नीसवीं शताब्दी की बाल-संस्थाओं में से अधिकांश नहीं तो बहुत-सी ऐसी थीं, जो अनाथालय कहलाती थीं और उसी रूप में काम करती थीं तथा उनमें केवल ऐसे बच्चे ही भर्त्ती होते थे, जिनके माता-पिता में से दोनों या किसी एक की मृत्यु हो गयी रहती थी। उस पद्धति की तुलना में आज के अनाथालयों में प्रवेश की पद्धति बच्चों के माता-पिता के मरने पर आधारित नहीं है और केवल इसी आधार पर बाल-संस्थाओं में बच्चों का प्रवेश करना उचित भी नहीं है। आज के युग में पिता या माता की मृत्यु ही नहीं अन्य कारणों से भी परिवार टूट जाते हैं। अब छोटे-छोटे परिवार होते हैं, जिससे ऐसे सम्बन्धियों की संख्या भी कम रहती है, जो आवश्यकता पड़ने पर स्थायी या अस्थायी रूप में बच्चे की देख-भाल या पालन-पोषण कर सकते हैं। इसलिए अनेक बाल-संस्थाओं में ऐसे बच्चों का प्रवेश भी किया जाता है, जिनके माता-पिता किसी-न-किसी कारण से उनकी इस प्रकार देख-भाल और पालन-पोषण नहीं कर पाते, जिससे उनका समुचित विकास हो सके। आगे इस प्रकार की सेवाओं के कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों के सम्बन्ध में विचार किया जायगा।

कुछ बच्चों को अपने परिवार में ऐसे भीषण भावात्मक अनुभव होते हैं कि वे तत्काल किसी बाहरी व्यक्ति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए तैयार नहीं होते, किन्तु ऐसे बच्चे संस्था के भीतर अधिक लाभ उठाते हैं, क्योंकि वहाँ का वातावरण वैयक्तिक सम्बन्धों वाला नहीं होता। वे पालन-गृह में रहने के लिए तब तक तैयार नहीं होते, जब तक कि अपने परिवार के भीतर रहते हुए उनके मन पर जो आघात लगे हैं, उनका दुःख वे पूर्णतया भुला नहीं देते। प्रायः उन संस्थाओं के कर्मचारियों की कुशलता और वहाँ रहने वालों की सामूहिक जीवन-पद्धति का बच्चों के जीवन पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

जिन बच्चों की भावात्मक दृष्टि से उतनी अधिक क्षति नहीं हुई रहती है और जिन्हें विवश होकर एक पालन-गृह छोड़ना पड़ता है, जबकि दूसरे की व्यवस्था नहीं हुई रहती है,उन्हें अस्थायी रूप से किसी संस्था में रखा जाता है। ऐसे बच्चों को ये संस्थाएँ प्रायः वरदान सिद्ध होती हैं, क्योंकि वहाँ उन्हें एक प्रकार की सुरक्षा का अनुभव होता है तथा बाद के व्यवस्थापन के लिए तैयारी करने का भी उन्हें अवसर मिल जाता है। बहुत-से ऐसे बच्चे भी होते हैं, जिन्हें बारी-बारी कई पालन-गृहों में रहना पड़ता है और कहीं भी उनके सुधार-कार्य में सफलता नहीं प्राप्त होती, ऐसे बच्चों को संस्था की सेवा अधिक उपयोगी सिद्ध होती है,क्योंकि संस्थाओं में भी यद्यपि बच्चे का अन्य लोगों के साथ सम्बन्ध होता है, किन्तु पालन-गृहों की तरह उनमें बच्चे के प्रति उत्तरदायित्व का कठोर बन्धन नहीं होता।

ऐसे बच्चे, जिनके माता-पिता का कुछ दिनों पूर्व ही सम्बन्ध विच्छेद हुआ रहता है, संस्थाओं में पहुँचकर बहुत ही चैन की साँस लेते हैं। वे संस्थाएँ बच्चों को उनके माता या पिता से मिलने का भी अवसर प्रदान करती हैं, जिससे उन बच्चों का उनके साथ भावात्मक सम्बन्ध बना रहता है। ऐसा बच्चा जिसके अपने परिवार का संघटन उसके देखते-देखते ध्वस्त हो चुका है, किसी दूसरे परिवार या पालन-गृह में रहने योग्य होगा, इसकी अधिक सम्भावना नहीं है।

कभी-कभी ऐसे परिवार भी टूट जाते हैं, जिनमें तीन, चार या पाँच तक बच्चे होते हैं। ऐसे सभी बच्चों को एक ही पालन-गृह में अथवा पास-पास के कई पालक-परिवारों में रखने की शीघ्र व्यवस्था करना प्रायः बहुत कठिन होता है। ऐसे पालक माता-पिता की, जो इस प्रकार के बच्चों की आवश्यकताएँ पूरी कर सकें, खोज करने के लिए न केवल पर्याप्त समय की, बल्कि असीम धैर्य और पटुता की आवश्यकता होती है। अतः ऐसे समय किसी संस्था में उन बच्चों के रहने की व्यवस्था तुरन्त की जा सकती है, जहाँ अस्थायी रूप से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना सम्भव हो जाता है।

उपचार-केन्द्र के रूप में— ऊपर के अनुच्छेदों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि इन संस्थाओं का महत्त्व वहाँ रहने वाले बच्चों की जीवन-पद्धति के कारण ही है। उपर्युक्त कथन का कारण यह है कि इन संस्थाओं में बच्चे अस्थायी रूप से इसलिए रखे जाते हैं कि वहाँ वे यथासम्भव स्वाभाविक जीवन बिताने का अनुभव प्राप्त कर सकें, जिसका समुदाय की दृष्टि से हर बच्चा नैसर्गिक रूपसे अधिकारी होता है। यह सच है कि पालन-गृहों अथवा बच्चों के निजी परिवारों के समान इन संस्थाओं में भी बच्चों के दैनन्दिन ीवन से सम्बन्धित समस्याएँ निश्चित रूप से उत्पन्न होती हैं, किन्तु इस सम्बन्ध में संस्थाओं से यह आशा की जाती है कि वे ऐसे कर्मचारी रखने की व्यवस्था करेंगी,जो बच्चों की देख-भाल

और विकास के मार्ग में पड़ने वाली कठिनाइयों को दूर करने में सहायक हों। इधर पिछले कुछ वर्षों से यह माँग बढ़ती जा रही है कि बच्चों के लिए चिकित्सा-केन्द्र के रूप में काम करने वाली संस्थाएँ भी होनी चाहिए। जिन बच्चों का भावात्मक दृष्टि से मानसिक सन्तुलन इस तरह बिगड़ गया रहता है कि अपने निजी घरोंमें अथवा पालन-गृहों में उनका ठीक उपचार नहीं हो पाता, उनके लिए ऐसी संस्थाएँ बड़े काम की होती हैं, जिनमें कुशल और विशेषज्ञ कर्मचारियों की व्यवस्था होती है और जहाँ बच्चों को रखकर कुछ दिनों तक नियमित रूप से उनका उपचार किया जा सकता है। इसके लिए उपयुक्त वैयक्तिक सेवा-कार्य के साथ-साथ मनश्चिकित्सा-संबंधी परामर्श (संस्था के छोटे या बड़े स्वरूप के अनुसार इस प्रकार की चिकित्सा के लिए पूर्णकालिक या अंशकालिक मनश्चिकित्सकों की व्यवस्था भी की जा सकती है) तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षण-सम्बन्धी सेवाओं की व्यवस्था करना भी आवश्यक होता है। संस्था के सभी कर्मचारियों (पेशागत अथवा प्रशासकीय) को अव्यवस्थित मानस वाले बच्चे की समस्याओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए तथा उसके कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए, जिससे बच्चों की समस्याओं के अध्ययन तथा उनके उपचार की अधिकतम सुविधा प्रदान की जा सके। इसके अतिरिक्त संस्था में बच्चे के वैयक्तिकीकरण पर ध्यान देने के साथ ही संस्था के अन्तर्गत बच्चों के सामूहिक जीवन-यापन के लिए भी उपयुक्त सुविधा प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक है।[१०]

सामूहिक अवास-गृह

इस सम्बन्ध में एक बात और कहने की आवश्यकता है और वह उन गृहों के बारे में है, जिन्हें कभी-कभी "सामूहिक आवास-गृह" कहा जाता है। इंग्लैण्ड में ऐसे गृहों का प्रचलन कई वर्षों से है और इस देश में अभी-अभी उनकी ओर ध्यान दिया जाने लगा है। इनमें एक-एक कमरे में ६, ८, या १० बच्चों (जो प्रायः एक दूसरे के सम्बन्धी नहीं होते) को रखा जाता है और उनकी देख-भाल के लिए एक दम्पत्ति (पति-पत्नी) की भी व्यवस्था की जाती है, जिसे गृह-माता-पिता कहा जाता है। इंग्लैंड में इस प्रकार के सामूहिक आवास-गृहों के भवनों के निर्माण के लिए स्थानीय प्रशासन-अधिकारियों की देख-रेख में चलने वाली सरकारी भवन-निर्माण-योजनाओं से सम्बन्धित नकशों की पुस्तिका में आदर्श सामूहिक आवास-गृहों का नकशा भी दिया हुआ है। अमेरिका में व्यक्तिगत सहायता से चलने वाले कुछ अभिकरणों द्वारा इस प्रकार के सामूहिक आवास-गृहों की दिशा में कुछ प्रयोग किया गया है। वे अभिकरण

१०. जोसेफ एच० रीड तथा हेलेन आर० हागन—रेजिडेन्शल ट्रीटमेण्ट आफ इमोशन्ली डिस्टर्ब्ड चिल्ड्रेन—न्यूयार्क, चाइल्ड वेल्फेयर लीग आफ अमेरका, १९५२।

जिन सामूहिक आवास-गृहों का संचालन कर रहे हैं, उनमें बच्चों को सामूहिक जीवन बिताने की पर्याप्त सुविधा दी जाती है और इस तरह यह कार्य पालन-गृहों और झुंड के रूप में बच्चों को एकत्र करने वाली संस्थाओं के सेवा-कार्यों के बीच मध्यवर्ती बिन्दु पर स्थित है।

जिन संस्थाओं की अबतक चर्चा की गयी है, अमेरिका में चलने वाली बाल-संस्थाओं की सूची उन्हीं तक सीमित नहीं है, किन्तु उनके सम्बन्ध में ऊपर जो कहा गया है, उससे पिछले कुछ वर्षों में बाल-संस्थाओं की उपयोगिता और कार्य से सम्बन्धित धारणा का ज्ञान अवश्य हो जाता है। यहाँ पाठकों का ध्यान इस ओर अवश्य गया होगा कि उपर्युक्त सूची में नवजात बच्चों और स्कूल भेजे जाने की उम्र से कम उम्र वाले बच्चों की संस्थाओं का उल्लेख नहीं किया गया है। प्रायः सभी समाज-कल्याण-कार्यकर्ता निर्विरोध रूप से यह मत व्यक्त करेंगे कि नवजात बच्चों और स्कूल जाने की उम्र से कम उम्र वाले बच्चों के लिए संस्थाओं की कोई आवश्यकता नहीं है। मानसिक रोग-चिकित्सकों के शोध-कार्यों से इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि इतनी कम उम्र वाले बच्चोंके जीवन में माता या उसी के समकक्ष किसी व्यक्ति का जो स्थान है, उसकी क्षतिपूर्ति अन्य किसी प्रकार से नहीं की जा सकती। शारीरिक, भावात्मक, और शैक्षणिक (व्यापक और आधारभूत दृष्टि से देखने पर) सभी दृष्टियों से नवजात तथा कम उम्र के बालकों को माता या उसके समकक्ष किसी व्यक्ति के सहज और आसक्तिपूर्ण प्यार-दुलार, स्नेहपूर्ण तल्लीनता तथा स्वाभाविक "मानवीयता" की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। इन बातों की जो बच्चे के लिए अनिवार्य होती हैं, क्षतिपूर्ति किसी भी संस्था में, चाहे वहाँ के कर्मचारी कितने भी ईमानदार और कुशल क्यों न हों, किसी भी उपाय से नहीं हो सकती।

अंशकालिक देखभाल : दिवस-शिशुशाला और दिवस-पालनगृह की सेवा

इस उद्देश्य से कि केवल गरीबी के कारण बच्चों को उनके घर से हटाकर अन्यत्र न भेजना पड़े, केवल दिन में बच्चों की देख-भाल करने वाली शिशु-शालाओं की स्थापना की गयी है। अमेरिका में इस प्रकार की सेवा का प्रारम्भ सर्वप्रथम सन् १८५४ में हुआ था। इसका उद्देश्य ऐसे बच्चों के लिए दिन की शिशुशालाओं की व्यवस्था करना है, जिनकी माताएँ दिन में उनकी देख-भाल करने में असमर्थ होती हैं। इस सेवा से अधिकतर माताएँ लाभ उठाती हैं, जो दिन में कहीं काम करती है, अतः काम पर जाने के पहले अपने तीन-वर्ष से कम उम्र के बच्चे या बच्चों को दिवस-शिशु-शाला में रख जाती हैं, काम से लौटने पर, उन्हें अपने साथ वापस ले जाती हैं। यह सेवा बिलकुल निःशुल्क अथवा अल्प शुल्क लेकर की जाती है और इसका लक्ष्य ऐसी माताओं को सुविधा प्रदान करना, जिनके लिए दिन में काम करना आवश्यक होता है तथा उनके काम के समय में, उनके बच्चों की

देख-भाल की व्यवस्था करना है। किन्तु दिवस-शिशु-शाला में बच्चे को प्रविष्ट करने के पहले यह देख लिया जाता है कि बच्चे की देख-भाल तथा उसे घर में रखने के लिए अन्य साधनों और उपायों का सहारा लेने का उद्योग किया जा चुका है या नहीं। एक बार बच्चे का दिवस-शिशु-शाला में प्रवेश हो जाने पर बच्चे की देख-भाल के समुचित प्रबन्ध के लिए हर तरह प्रयत्न किया जाता है। इस सेवा के अन्तर्गत बच्चों की शिक्षा और मनोरंजन-सम्बन्धी आवश्यकताओं के साथ शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर भी ध्यान दिया जाता है। कई दिवस-शिशु-शालाओं में बच्चे और उसके परिवार को अधिक-से-अधिक लाभ पहुँचाने की दृष्टि से परिवार के साधनों का उपयोग करने लिए वैयक्तिक-सेवा-कार्य की व्यवस्था भी की जाती । इस प्रकार की दिवस-शिशु-शालाओं के कार्य-क्रमों का, समुदाय के अन्य सामाजिक सेवा-अभिकरणों, जैसे—बाल-कल्याण-समिति और परिवार-कल्याण-समिति के कार्यक्रमों के साथ पूर्ण सामञ्जस्य होता है।

अभी हाल में दिन में बच्चों की देख-भाल के क्षेत्र में एक नया प्रयोग, प्रारम्भ हुआ है, जिसे कि दिवस-पालन-गृह-सेवा कहा जाता है, और जिसकी प्रगति को बड़ी दिलचस्पी से देखा जा रहा है। इस सेवा के अन्तर्गत बच्चों को संस्था के रूप में कार्य करने वाली दिवस-शिशु-शालाओं में रखने की जगह, अभिकरण उन्हें सावधानी से चुने गये पालन-गृहों में दिन में रखने की व्यवस्था करता है। रात में बच्चों को उनके घर भेज दिया जाता है, जहाँ वे अपने माता-पिता और परिवार के साथ रात बिताते हैं अथवा किसी बच्चे की माँ यदि रात में काम करती है तो बच्चा रात में पालन-गृह में और दिन में उसके साथ और जब दिन में काम करती है तो रात में उसके साथ और दिन में पालन-गृह में रहता है। इस व्यवस्था का उद्देश्य यह है कि इससे बच्चे का उसके परिवार के साथ सम्बन्ध बना रहता है और साथ ही परिवार के साथ रहने से उसके व्यक्तित्व की स्वतंत्र अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है, जिसकी दिन में बच्चों के साथ सामूहिक जीवन विताने के कारण, उतनी सुविधा नहीं रहती है। सामाजिक अभिकरणों द्वारा संचालित बच्चों की देख-भाल-सम्बन्धी अन्य सेवाओं की भाँति इस सेवा में भी कुशल वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता की अनिवार्य आवश्यकता होती है, जो दिन में देख-भाल करने वाले पालक माता-पिता की सहायता के लिए हमेशा तत्पर रहता है।

गोद लेने की व्यवस्था

बच्चों की आवश्यकताओं से सम्बन्धित एक अन्य सेवा गोद लेने की पद्धति है। अविवाहित लड़कियों के बहुत-से नवजात बच्चों की जिम्मेदारी कुछ प्रसिद्ध अभिकरण लेते हैं ? इन अभिकरणों में ऐसे बच्चों की माताओं के साथ मिलकर इस सम्बन्ध में विचार किया जाता है कि उनके बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति का सर्वोत्तम उपाय क्या हो

सकता है । अधिकतर ऐसे ही बच्चों को गोद लेने की व्यवस्था की जाती है, किन्तु कभी-कभी विवाहित स्त्रियों के बच्चों के लिए भी इस प्रकार की व्यवस्था करनी पड़ती है, बशर्ते कि बच्चा अपनी माँ के पति से नहीं, किसी अन्य पुरुष से पैदा हुआ है । कभी-कभी ऐसे बच्चों को भी गोद दिलाने की व्यवस्था की जाती है, जिनका परिवार टूट गया रहता या पूर्णतः नष्ट हो गया रहता है और उस दुःखमय स्थिति में बच्चे को गोद दिलाने की व्यवस्था उसके लिए वरदान सिद्ध हो जाती है । कभी-कभी वैधानिक बच्चों को भी रिश्तेदारों द्वारा गोद लिया जाता है अथवा अभिकरण उन्हें गोद में देने के लिए अपने पास रख लेते हैं।

गोद लिये जाने के लिए बच्चों की पात्रता से सम्बन्धित शर्तें चाहे जो भी हों, किन्तु इस सम्बन्ध में वस्तुतः तीन आधारभूत विचारणीय बातें होती हैं—बच्चे की आवश्यकताएँ, बच्चे की माँ (अथवा माँ-बाप) की आवश्यकताएँ और गोद लेने वाले माँ-बाप (अथवा माँ) की आवश्यकताएँ । जब यह निश्चित कर लिया जाता है कि किसी विशेष बच्चे को गोद दिलाने की व्यवस्था करनी है तो उसके बाद यह अत्यन्त आवश्यक होता है कि बच्चे और उसकी पृष्ठभूमि के बारे में जो सूचनाएँ मिली हों, उन सबके बारे में ठीक-ठीक पता लगाया जाय । इस जानकारी का उद्देश्य यह होता है कि उसी के आधार पर गोद लेने वाले ऐसे परिवार की खोज की जा सके, जिसमें किसी विशेष बालक की आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव हो सके । प्रायः अभिकरण बच्चों को गोद दिलाने के पहले उन्हें प्यार और सुरक्षा प्रदान करने तथा उनको अच्छी तरह समझने की दृष्टि से आवास-गृहों में रखने की व्यवस्था करता है । इस तरह के अस्थायी आवास-गृह में बच्चे को दूसरों पर निर्भर रहने और उन्हें स्वीकार करने का अनुभव होता है वे और इस तरह उस समय के लिए तैयार हो जाते हैं, जब कि उन्हें गोद लेने वाले परिवार में जाकर रहना होगा। इसी तरह अस्थायी आवास-गृह के पालक माता-पिता भी बच्चों के साथ जब तक वे उस आवास-गृह में रहते हैं, न केवल रागात्मक मानवीय सम्बन्ध स्थापित करके उन्हें उल्लसित रखते हैं, बल्कि वे भावात्मक दृष्टि से बच्चे को इस प्रकार तैयार भी करते हैं कि वह गोद लिये जाने के समय उन्हें आसानी से छोड़ सके ।

जिस तरह बच्चे के बारे में कुछ-न-कुछ जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है, उसी तरह गोद लेने की इच्छा रखने वाले माता-पिता के बारे में भी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक होता है । अभिकरण पहले इस बात का पता लगाते हैं कि गोद लेने वाले माता-पिता की शारीरिक, आर्थिक और बौद्धिक स्थिति और तत्सम्बन्धी साधन एवं उनकी भावात्मक आवश्यकताएँ तथा प्रेरणाएँ क्या हैं ? यहाँ एक बार और यह बता देने की आवश्यकता है कि इन तमाम प्रयत्नों के मूल में बालक और उसकी आवश्यकताएँ ही होती हैं । उदाहरण के लिए, जो माता-पिता केवल इस उद्देश्य से किसी बालक को गोद लेना चाहते

हैं कि इससे उनके दाम्पत्य-जीवन की समस्याओं का समाधान हो जायगा, बच्चे की आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर शायद ही ध्यान दे पायेंगे। वस्तुतः ऐसे लोगों के लिए बच्चा उनकी इच्छाओं की पूर्ति का एक साधन होता है, जिससे बच्चे के हित की हानि हो सकती है। दूसरी तरफ ऐसे भी पति-पत्नी होते हैं, जो बच्चे के स्वाभाविक स्वास्थ्य और भावनात्मक सन्तोष के लिए उनसे उपयुक्त सम्बन्ध स्थापित करते हैं, जिससे बच्चे के भीतर निहित क्षमताओं का सही ढंग से विकास हो सकता है। बच्चे के इस प्रकार के जीवनानुभव उसके शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक इन सभी पक्षों के समुचित विकास में सहायक होते हैं।

बच्चा जब गोद लेने वाले माता-पिता के घर चला जाता है तो उसके कुछ समय (राज्यों के कानूनों के अनुसार यह समय भिन्न-भिन्न होता है) के बाद, जो छः मास से लेकर साल भर तक का हो सकता है, गोद लेने का कार्य विधानतः पक्का हो जाता है। इस अवधि के बीच अभिकरण का कार्यकर्ता गोद लेने वाले माता-पिता की, उनकी स्थिति की कठिनाइयों को सुलझाने में, सहायता करता है। हम सब लोगों को यह मालूम है कि माता-पिता को अपने ही बच्चों के पालन-पोषण में कितना श्रम करना पड़ता है और कितनी थकावट होती है, यहाँ तक कि इस काम में उन्हें कभी-कभी बाहरी सहायता लेने की भी आवश्यकता पड़ती है। गोद लेने के बाद प्रायः दो कारणों से परिस्थिति गम्भीर हो जाया करती है—(१) बच्चे के जीवन के पूर्ववर्त्ती अनुभवों का उसके ऊपर प्रभाव, और (२) गोद लेने वाले माता-पिता में उन अनुभवों की कमी जो नित्यप्रति उत्पन्न होने वाली बच्चों की समस्याओं को सुलझाने के प्रयत्न से प्राप्त होते हैं। जब बच्चा और उसे गोद लेने वाले माता-पिता एक दूसरे को समझकर सामञ्जस्य और सहयोग के साथ जीवन व्यतीत करने लगते हैं तो अभिकरण के कार्यकर्ता का कार्य समाप्त हो जाता है और गोद लेने की विधि पक्की हो जाने के बाद कार्यकर्त्ता और अभिकरण का उक्त परिवार के प्रति सेवा-सम्बन्धी उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है। उसके बाद तो वे उस परिवार के मामलों में तभी दखल देते हैं, जब उस परिवार के लोग सहायता के लिए उन्हें बुलाते हैं और यह अधिकार तो समुदाय के प्रत्येक परिवार को है कि वह जब चाहे अभिकरण से सहायता की माँग कर सकता है। गोद लेने की क्रिया पक्की हो जाने के बाद बालक और गोद लेने वाले माता-पिता दोनों के एक-दूसरे के प्रति कर्त्तव्य और अधिकार तथा उन्हें प्राप्त होने वाले लाभ बिलकुल वैसे ही होते हैं, जैसे अपने बच्चे से हो सकते हैं।[११]

११. सामाजिक कार्यों की प्रगति और गोद लेने की पद्धति के कानूनी पहलुओं के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण की जानकारी के लिए निम्नलिखित पुस्तिकाएँ देखी जा सकती

अविवाहित लड़कियों के गर्भ से उत्पन्न प्रत्येक बच्चा गोद नहीं ले लिया जाता और न तो जितने लड़के गोद लिये जाते हैं, वे सबके सब अवैधानिक बच्चे ही होते हैं, फिर भी अविवाहित लड़कियों से पैदा हुए बच्चों की संख्या इतनी अधिक होती है कि प्रख्यात सरकारी और गैर-सरकारी-अभिकरणों द्वारा उनमें से ही अधिकतर बच्चों को गोद दिलाने की व्यवस्था की जाती है। अतः यह आवश्यक प्रतीत होता है कि अविवाहित लड़कियों और उनसे उत्पन्न बच्चों की सेवा के सम्बन्ध में यहाँ कुछ और विचार किया जाय।

अवैधानिक बच्चों की सेवा का सम्बन्ध दो पक्षों से होता है, बालक और उसकी माँ। यद्यपि इस प्रसंग में बच्चे की माँ के सम्बन्धी तथा कानूनी दृष्टि से सम्बद्ध अन्य व्यक्तियों के साथ भी सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है, फिर भी जब कोई इस तरह का मामला आता या अन्य अभिकरणों द्वारा भेजा जाता है तो उसमें मुख्यता बालक और उसकी माता की ही होती है। इस सम्बन्ध में पहला प्रश्न यह उपस्थित होता है कि बच्चे की आवश्यकताएँ क्या हैं, उसकी माँ की आवश्यकताएँ क्या हैं और अभिकरण उनमें से किसी एक की या दोनों की किस प्रकार की सेवा या सहायता कर सकता है ? यदि कोई गर्भवती लड़की बच्चा पैदा होने के पहले ही अभिकरण में आती है तो उसके साथ मिलकर उसकी भावी योजना के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। ऐसा प्रायः देखा गया है कि अधिकांश उदाहरणों में यदि गर्भवती लड़की बच्चा पैदा होने के पहले ही अभिकरण में आकर अपने तथा अपने बच्चे की भावी योजना के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करके किसी निर्णय पर पहुँच जाती है तो यह उसके लिए अभिकरण की सहायता प्राप्त करने की दृष्टि से अधिक उपयोगी होता है। क्योंकि उस समय अनेक संकटों से घिरी रहने पर भी वह कम-से-कम इस स्थिति में होती है कि शान्ति और विवेक के साथ इस प्रश्न पर विचार कर सके कि उसके लिए सर्वोत्तम मार्ग क्या है। इतना हो जाने के बाद अभिकरण उसके लिए निश्चित योजना के अनुसार या तो बच्चे को उसी के पास रहने देता है अथवा उसके किसी मित्र या सम्बन्धी के पास भेज देता है, किसी संस्था में रखवा देता है या उसको गोद दिलाने की व्यवस्था कर देता है। साथ ही अभिकरण उसकी इस बात में भी सहायता करता है

हैं—"एडाप्शन प्रैक्टिस", न्यूयार्क, चाइल्ड वेल्फेयर लीग आफ अमेरिका, १९४१; "एसेन्शियल्स इन गुड एडाप्शन प्रैक्टिसेज," न्यूयार्क, स्टेट चैरिटीज ऐण्ड असोशियेशन, १९५०; "एसेन्शियल आफ एडाप्शन ला ऐण्ड प्रोसिड्योर," वाशिंगटन, डी० सी०, यू० एस० चिल्ड्रेन्स ब्यूरो, फेडरल सिक्योरिटी एजेन्सी, १९४९; "हाउ टु एडाप्ट ए चाइल्ड इन लूसियाना", बेटन रोग, लूसियाना डिपार्टमेण्ट आफ पब्लिक वेल्फेयर, समय अज्ञात (सम्भवतः १९४९)।

कि वह अपने निजी जीवन का भावी कार्यक्रम भी निश्चित कर सके। इस बात की आशंका हमेशा रहती है कि बच्चा पैदा होने के पूर्व जो योजना बनायी जाती है, वह बच्चा हो जाने के बाद कार्यान्वित न हो सके, क्योंकि प्रायः बच्चे के प्रसव के बाद माता की भावनाएँ बदल जाती हैं, जिससे पूर्व निश्चित समस्त योजना भी बदल देनी पड़ती है। अतः फिर वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्त्ता अपने कौशल से माता की इस बात में सहायता करता है कि वह निश्चय-पूर्वक यह व्यक्त कर सके कि उसकी वास्तविक इच्छा क्या है।

यदि कोई गर्भवती महिला बच्चा पैदा होने के पहले अभिकरण में नहीं जाती है तो भी पहले-जैसे ही प्रश्न उपस्थित होते हैं कि बच्चे और माँ के हितों की रक्षा सबसे अधिक किस प्रकार हो सकती है? यहाँ एक बात विशेष ध्यान देने की है कि इस प्रकार की सभी परिस्थितियों के लिए कोई एक अबाधित समाधान नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्येक परि-स्थिति अपनी निजी विशेषताओं और विचित्रताओं से युक्त होती है और हर एक में नये प्रकार के तथा भिन्न व्यक्तित्वों का योग रहता है। कुछ उदाहरणों में सबसे अच्छा समा-धान यही होता है कि माँ और बच्चा एक ही साथ रहें। अन्य उदाहरणों में यह उचित समझा जाता है कि बच्चे को उसकी माँ के किसी सम्बन्धी या मित्र के घर रख दिया जाय, ताकि वह माँ अपने जीविका-निर्वाह के लिए कोई उपाय निकाल सके। कभी-कभी बच्चों को पालन-गृह में भेज देना अथवा उन्हें गोद दिलाने की व्यवस्था करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

यदि अविवाहित माता और उसके अवैधानिक बच्चे की परिस्थितियों का समुचित अध्ययन करके उन्हें ठीक ढंग से समझा जाय तो यह विश्वास दृढ़ हो जायगा कि अन्य सभी बच्चों की तरह इस तरह के अवैधानिक बच्चे को भी प्यार और सुरक्षा की जरूरत होती है। इन बातों की आवश्यकता उसे इसलिए नहीं होती कि वह अवैधानिक बच्चा है, बल्कि इसलिए होती है कि वह एक मानव प्राणी है। यह संयोग की बात है कि उसका जन्म इस प्रकार अवैधानिक रूप में हुआ, अतः उसकी माँ का तथा जिनके पास वह सहायता के लिए जाती है, उन सबका यह उत्तरदायित्व होता है कि वे बच्चे को प्यार, सुरक्षा और सम्बन्ध-भावना प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करें। यदि प्रारम्भ में ही उसे यह सुविधा प्राप्त नहीं होती तो उसका भावनात्मक विकास अवरुद्ध हो जायगा, जिसके कारण बच्चा मानसिक दृष्टि से उसी प्रकार विकलांग हो जायगा जैसा कोई शरीर से विकलांग बालक होता है। इस दृष्टिकोण के अनुरूप ही बाल-अभिकरण इस बात का प्रयत्न करते हैं कि जहाँ तक सम्भव हो अवैधानिक बच्चे और उनकी माँ एक साथ रहें। अवैधानिक पिता के साथ साक्षात्कार करके इस बात पर विचार किया जाता है कि बच्चे की माँ से उसका विवाह सम्भव है या नहीं, किन्तु यदि उन दोनों में से कोई भी विवाह के लिए किसी कारण

से अपनी रजामन्दी नहीं देता तो किसी भी हालत में इसके लिए उन पर दबाव नहीं डाला जाता। अनेक अभिकरणों का यह अनुभव है कि उन पर दबाव डालने की अपेक्षा दोनों पक्षों के साथ बैठकर विचार-विमर्श करना अधिक उपयोगी होता है। यदि दोनों पक्षों में से कोई विवाह के लिए राजी नहीं है तो उस हालत में इस बात पर अवश्य विचार किया जाता है कि अवैधानिक पिता, बच्चे और उसकी माँ के जीवन-निर्वाह का भार वहन करे और यदि वह इसके लिए भी किसी हालत में तैयार नहीं होता तो बच्चे की माँ को विवश होकर न्यायालय की शरण लेनी पड़ती है। किन्तु न्यायालय में जाने के लिए अभिकरण प्रेरणा नहीं देता, यदि वह न्यायालय में जाती है तो अपनी ही इच्छा से जाती है।

यदि कभी माँ और बच्चे को अलग-अलग रखना आवश्यक भी समझा जाता है तो उस हालत में भी यह आवश्यक नहीं होता कि उन दोनों का सम्पर्क और सम्बन्ध भी समाप्त कर दिया जाय। बहुत-से अवैधानिक बच्चे अन्ततः गोद ले लिये जाते हैं, किन्तु जिनकी गोद दिलाने की व्यवस्था नहीं हो पाती है और विवश होकर उन्हें पालन-गृहों में ही रखना आवश्यक होता है, उनके सम्बन्ध में भी इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना पड़ता है कि अन्य बच्चों के समान उनके लिए भी अधिक-से-अधिक उपयुक्त पालन-गृहों की व्यवस्था की जाय। उनके लिए भी पालन-गृहों की खोज तथा उनमें होने वाले अधीक्षण के स्वरूप की जानकारी के सम्बन्ध में उतनी ही सावधानी बरतनी पड़ती है और ऐसे बच्चे जब पालन-गृह छोड़ने के योग्य हो जाते हैं तो उनके व्यवस्थापन के लिए भी सभी प्रकार योजना बनानी पड़ती है। पालन-गृह में रहते समय बच्चे का उसकी माँ के साथ सम्बन्ध बना रहना आवश्यक होता है और यदि बच्चे को अन्त में लौटकर उसकी माँ के पास ही जाना है, तब तो इस सम्बन्ध की और भी आवश्यकता होती है। इन सब विषयों पर पालन-गृहों के सेवा-कार्य के प्रसंग में पहले ही विचार किया जा चुका है। जिस बात पर विशेष बल देने की आवश्यकता है, वह यह है कि अवैधानिक बच्चों के साथ भी उसी प्रकार का व्यवहार होना चाहिए जैसा कि अन्य बच्चों के साथ, उन्हें एक अन्य वर्ग नहीं मानना चाहिए। जिस तरह किसी भी बच्चे की वृद्धि और विकास के लिए प्यार और सुरक्षा की सुविधाएँ आवश्यक होती हैं, उसी तरह अवैधानिक बच्चों के लिए भी होती हैं। अवैधानिक बच्चों के माँ-बाप की समस्याएँ बहुत कठिन होती हैं और उन्हें समाज की घृणा और निन्दा का शिकार बनना पड़ता है, इसलिए उनकी आवश्यकताएँ और भी अधिक होती हैं तथा उनके लिए और भी अधिक सहायता अपेक्षित होती है।

अन्य वैयक्तिक सेवा-कार्य

रक्षात्मक सेवाएँ—पिछले कुछ वर्षों से बच्चों की सेवा से सम्बन्धित कार्यों के अन्तर्गत बच्चों के माँ-बाप की सहायता पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। इस सहायता

का एक विशेष रूप यह है कि कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में, जो अपने बच्चों की यथोचित देख-भाल नहीं करना चाहता या नहीं कर सकता है, सूचना देकर सेवा-कार्य आरम्भ करा सकता है। यथोचित देख-भाल का तात्पर्य ऐसी देख-भाल से है, जो समुदाय की दृष्टि से आवश्यक और अपेक्षित है। उदाहरण के लिए, यदि बच्चे (या बच्चों) के माँ-बाप उसकी उपेक्षा करते अथवा अपशब्दोंका व्यवहार करते हैं तो बच्चेकी रक्षा के लिए तथा माँ-बाप की आदतों के सुधार में सहायता के लिए उनके मामले में दखल दिया जा सकता है, ताकि माँ-बाप कोई ऐसा काम न करने पायें, जो बच्चों के विकास के लिए हानिकर हो।

ऐतिहासिक परम्परा की दृष्टि से इस प्रकार की सेवा का प्रारम्भ इंग्लैंड में उस समय हुआ था, जब कि पशुओं के प्रति निर्दयता का व्यवहार रोकने के लिए सन् १८२२ में डिक मार्टिन-कानून स्वीकृत किया गया था। सी प्रकार का एक कानून अमेरिका में सन् १८६६ में स्वीकृत हुआ, जिसके अनुसार न्यूयार्क की "अमेरिकन पशु-निर्दयता-निरोधक समिति" को शासन-पत्र देकर यह अधिकार दिया गया था कि वह पशुओं तथा बच्चों के प्रति किये जाने वाले निर्दयतापूर्ण व्यवहार के मामलों में दखल दे सकती है। मिस एमा लुण्डबर्ग ने इस सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं, वे इतने रहस्योद्‌घाटक हैं कि उन्हें यहाँ उद्धृत करना अनुचित न होगा। "न्यूयार्क की पशु-निर्दयता निरोधक समिति को जब काम करते हुए ८० वर्ष बीत चुके, तब एकाएक लोगों को यह ख्याल हुआ कि सभी कानूनों के रहते हुए भी बालक की रक्षा के लिए कोई कानूनी उपाय नहीं है। कहा जाता है कि मिशन के एक कार्यकर्त्ता को "मेरी एलेन" नाम की एक बच्ची मिली, जिसे उसके अभिभावक—एक पुरुष और एक स्त्री—बुरी तरह पीटते और उसके साथ दुर्व्यवहार करते थे। उन्होंने उस लड़की को एक बाल-संस्था से बचपन में ही ले लिया था। कार्यकर्त्ता कानून द्वारा उस लड़की की रक्षा के लिए इतने गवाह नहीं इकट्ठा कर सका कि न्यायालय में अभियोग सिद्ध हो सके और उक्त लड़की अपने अभिभावकों के पास से हटायी जा सके। अतः उस कार्यकर्त्ता ने समिति के पास यह अपील की कि पशु-रक्षा कानून के अन्तर्गत उस लड़की की भी रक्षा होनी चाहिए। समिति का भी यह विचार था कि चूंकि "बच्चा भी एक पशु ही होता है" इसलिए उस पर भी यह कानून लागू हो सकता है। मिशन द्वारा वह लड़की न्यायालय में ले जायी गयी और उसके अभिभावकों के विरुद्ध मुकदमा दायर किया गया। न्यायालय की आज्ञा से उस लड़की को उसके अभिभावकों के पास से हटा दिया गया और उसके अभिभावकों को जिन्होंने उसके साथ दुर्व्यवहार किया था, बन्दी-सुधार-गृह में एक वर्ष के लिए भेज दिया गया। जब सब लोगों को मालूम हो गया कि उक्त संस्था ऐसे बच्चों की रक्षा का काम करती है, जिनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है तो उसके पास

इस विषय से सम्बन्धित ढेर की ढेर शिकायतें आने लगीं। फलस्वरूप यह निश्चय किया गया कि बच्चों की रक्षा के लिए सेवा-कार्य करने के निमित्त एक अलग समिति स्थापित की जाय।"[१२] अन्य नगरों में भी इसी तरह की समितियाँ स्थापित की गयीं। अन्य बहुत-सी जगहों में भी, जो मानवतावादी समितियाँ पशुओं की रक्षा के निमित्त कार्य करने के लिए निर्मित हुई थीं, उनके कार्यों के अन्तर्गत बालक-निर्दयता-निरोधक-सेवाओं को भी सम्मिलित कर लिया गया। अभी हाल में कानून द्वारा राज्य ने इस कार्य को न्यायालय अथवा समाज-कल्याण-सम्बन्धी सेवाओं का एक अंग मान लिया है।

प्रारम्भिक वर्षों में जो व्यक्ति अपने बच्चे की उपेक्षा करते या उनके साथ दुर्व्यवहार करते थे, उनके लिए भय, मुकदमा, सजा और दण्ड की व्यवस्था पर ही अधिक बल दिया जाता था। इसका अधिकतर अथवा प्रायः हमेशा यह परिणाम होता था कि बच्चे को उसके घर से हटाकर किसी संस्था या पालन-गृह में रख देना पड़ता था। किन्तु आज हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि इस प्रकार की सेवाओं का उद्देश्य बच्चों की रक्षा करना है और इसीलिए बच्चों के माँ-बाप की सहायता भी इन सेवाओं का एक लक्ष्य है। इस विचार-परिवर्तन से इस विश्वास का पता चलता है कि जो माँ-बाप अपनी परेशानियों या कठिनाइयों के कारण बच्चों के प्रति उपेक्षित व्यवहार करते हैं, उनकी कठिनाइयों को दूर करने में सहायता पहुँचाना ही इन सेवाओं का मूल उद्देश्य है। इससे इस विश्वास का भी पता चलता है कि किसी बच्चे के लिए उसका घर भले ही पूर्णतः उपयुक्त न हो, फिर भी उसके और उसके माता-पिता के बीच जो रागात्मक सम्बन्ध होता है, उसे उस परिवारके बाहर के लोगों को विवेक-हीन बनकर एकदम तोड़ देने का प्रयास नहीं करना चाहिए। माता-पिता अपने बच्चों के प्रति बार-बार जो दुर्व्यवहार करते हैं, वे इस बात के लक्षण हैं कि उन्हें अपनी समस्याओं को सुलझाने में सहायता की आवश्यकता है। वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्त्ता ऐसे माँ-बाम के पास जाते और उन्हें अपनी सेवाएँ अर्पित करते हैं। कई उदाहरण तो ऐसे हैं, जिनमें माता पिता के अपने बच्चे के दुर्व्यवहार के कारण समूचा समुदाय उक्त माँ-बाप से क्षुब्ध और निराश था, फिर भी वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्त्ता ने उनकी सहायता की, जिसके परिणाम-स्वरूप उनमें अपने उत्तरदायित्व तथा अपनी आन्तरिक क्षमताओं का बोध हुआ। ऐसे कार्यकर्त्ता इस पूर्व प्रतिज्ञा के साथ काम शुरू कर देते हैं कि माता-पिता में सुधार अवश्य होगा। सुधार के लिए जिम्मेदार व्यक्ति के रूप में माता-पिता को ही कदम उठाना और कार्य करना पड़ता है। किसी भी हालत में कार्यकर्त्ता माता-पिता के बच्चे के प्रति अधि-

१२. एमा ओ लुण्डबर्ग—अन टु दि लीस्ट आफ दीज—न्यूयार्क और लंदन, डी० एप्लेटन सेन्चुरी कम्पनी, १९४७, पृष्ठ १०३।

कारों और जिम्मेदारियों को अपने ऊपर नहीं लेता ? और न उनके परिवार के ढाँचे में ही कोई व्यतिक्रम उत्पन्न करता है। इस कार्यविधि की सफलता के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, (जैसे—रक्षात्मक सेवाएँ, राजकीय जन-कल्याण-विभाग की बॉल्टीमोर की नगर-शाखा) जिनसे यह प्रमाणित हो जायगा कि बच्चों को उनके माँ-बाप के साथ तनाव और कष्ट से युक्त परिस्थितियों के बीच रखने से अधिक अच्छा यह है कि उनके माँ-बाप की जीवन-विधि को परिवर्तित करने में उनकी सहायता की जाय। इसके अतिरिक्त सरकारी कर का इस सेवा में बहुत अच्छा उपयोग भी होता है, क्योंकि इसमें काम करने वाले विशेषज्ञ कार्य-कर्त्ता यह प्रयत्न करते हैं कि परिवार टूटने न पावें, उनके सदस्य एक साथ रहें तथा एक दूसरे का विश्वास करें और दैनिक जीवन के दुःख-सुख और सन्तोष के अनुभवों का समान भागीदार बनें।[१३]

परिवीक्षण कार्य और सुधार-संस्थाओं की सेवाएँ—जब छोटे बच्चे किसी गम्भीर कठिनाई में पड़कर बाल-न्यायालय में लाये जाते हैं तो उनमें से उन बच्चों के लिए, जिनका न्यायालय के मत से अपने घर में रहना आवश्यक होता है, परिवीक्षण-सेवा की व्यवस्था की जाती है। जिन बाल-न्यायालयों का क्षेत्र बड़ा होता है, उनमें उन बालकों की वैयक्तिक सेवा के लिए जिनका न्यायालय की दृष्टि में अपने घर में रहना आवश्यक है, परिवीक्षण कार्य करने वाले कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं। यदि ऐसा प्रबन्ध हो जाय तो सबसे अच्छा है, किन्तु वास्तविकता यह है कि देश के विभिन्न भागों में ये बाल-न्यायालय इतने छोटे-छोटे हैं कि वे स्वयं परिवीक्षण-कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति न करके जनपदों के जन-कल्याण-विभागों से वैयक्तिक सेवा-कार्य के लिए परिवीक्षण-कार्यकर्त्ताओं की माँग करते हैं। बालकों की सेवा का यह कार्य बाल-कल्याण-कार्य के विशेषज्ञ कार्यकर्त्ताओं द्वारा किया जाता है, जो बच्चों और उनके परिवार की कठिनाइयों को दूर करने में सहायता करते हैं, किन्तु यह सेवा किसी भी हालत में (चाहे वह न्यायालय के परिवीक्षण-अधिकारी द्वारा संचालित हो अथवा जनपद के जन-कल्याण-विभाग के कार्यकर्त्ता द्वारा) दण्ड के सिद्धान्त

१३. **एलिजाबेथ डी श्वाइनित्ज और कार्ल्स डी श्वाइनित्ज—"द प्लेस आफ एथारिटी इन दी प्रोटेक्टिव फंक्शन आफ द पब्लिक वेलफेयर एजेन्सी" शीर्षक निबन्ध—बुलेटिन आफ द चाइल्ड वेलफेयर लीग आफ अमेरिका—जिल्द २५, सितम्बर १९४६, पृ० १—६। क्लेयर हेनकाक—"प्रोटेक्टिव सरविस फार चिल्ड्रेन" शीर्षक निबन्ध—चाइल्ड वेलफेयर, जिल्द २८, मार्च १९४९, पृ० ३—९। बारबरा स्मिथ—"हेल्पिग निग्लेक्टफुल पैरेण्ट्स टु बिकम रिस्पान्सिबुल"—दी चाइल्ड, जिल्द १४, सितम्बर १९४९, पृ० ३६—३८, ४५—४६।**

पर आधारित नहीं होती और उसका मुख्य लक्ष्य बच्चे की इस तरह सहायता करना है कि वह जो कुछ है या जो कुछ करता है, उसके लिए उत्तरोत्तर अपने को अधिक उत्तरदायी समझने के योग्य हो जाय। साथ ही परिवार के अन्य लोगों की स्थिति पर भी ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि उन्हीं के कारण बालकों की परेशानियाँ उत्पन्न होती और बढ़ती हैं, किन्तु सेवा के अधिकारी मुख्यतः बच्चे ही होते हैं और अन्ततक वही मुख्य सेवार्थी बने रहते हैं।

न्यायतः यह बात स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि अपराधी-बालक-औद्योगिक-विद्यालय में बच्चे तब लाये जाते हैं, जब समुदाय के अन्य सभी अभिकरण उन्हें सुधारने के सभी उपायों का अवलम्बन कर लेने के बाद असफलता के कारण उनके सुधार की आशा छोड़ बैठे रहते हैं। इसके अतिरिक्त संस्थाओं की सेवा के सम्बन्ध में यह सन्देह या प्रश्न भी उठता है कि बालकों को मुक्त और स्वतन्त्र समाज में जीवन बिताने के योग्य बनाने की तैयारी, क्या संस्थाओं के ऐसे वातावरण में हो सकती है, जो मुक्त समाज के स्वतंत्र वातावरण से बिलकुल भिन्न ढंग का है? संस्थाओं के भीतर इन निहित दोनों अभावों की स्थिति स्वीकार कर लेने के बाद उन कार्यों का भी परीक्षण आवश्यक है, जो किसी सुधार-संस्था द्वारा विभिन्न बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से किये जाते हैं।

यदि इस सिद्धान्त के अनुसार कार्य किया जाय कि संस्था का अस्तित्व बच्चों के लिए है, न कि बच्चों का अस्तित्व संस्था के लिए, तो यह आवश्यक प्रतीत होगा कि बच्चों को दो सुविधाएँ देने का प्रयत्न किया जाय——सुरक्षा की सुविधा और विकास की सुविधा। कभी-कभी बच्चे को जब इन दोनों सुविधाओं में से एक या दोनों नहीं मिल पातीं, या उनके मिलने में रुकावट होती है, तो वह ऐसी नाजुक हालत में पहुँच जाता है कि समुदाय की दृष्टि से उसे किसी सुधारात्मक संस्था में भेजने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं रह जाता। इस तरह जब कोई बच्चा सुधार-संस्था में लाया जाता है तो उसे वहाँ और भी अधिक सुरक्षा और विकास की सुविधाओं की आवश्यकता होती है। इस कारण संस्था का यह उत्तर-दायित्व हो जाता है कि वह बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऐसे कर्मचारी रखे, जो इस प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करने में समर्थ हों। संस्था के भीतर रह कर बालक को इन बातों का अनुभव होना चाहिए कि वह किसी से सम्बन्धित है, जिस समूह में वह विवशता-पूर्वक लाकर रखा गया है, वह अब उसी का एक अंग है और उसी के भीतर उसे स्थिरता प्राप्त होगी, और दूसरे हर व्यक्ति के लिए उसकी कुछ-न-कुछ सार्थकता है, संस्था का कर्त्तव्य है कि वह ऐसी व्यवस्था करे कि बालक का उसके परिवार और घर के साथ सम्बन्ध बना रहे और उसके मन में यह भावना बनी रहे कि अन्त में वह वहाँ से अपने परिवार में

लौट जायगा। उसे संस्था में ऐसे अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिलना चाहिए कि वह अपने प्रति अपने उत्तरदायित्व का अधिक से अधिक निर्वाह कर सके और जब संस्था से लौट कर अपने घर जाने लगे उस समय उसकी वैयक्तिक विशेषताओं का लोप न हो गया रहे, बल्कि उनका विकास ही हुआ हो, ताकि समुदाय में जाकर वह अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्रता को प्रमाणित कर सके तथा उसे सुरक्षित रखे। इस संस्था में उसे ये सुविधाएँ नहीं मिलती हैं तो वह स्वयं अपना रास्ता अपने ढंग से बनाने का प्रयत्न करेगा और हो सकता है कि उस हालत में वह अपने को या दूसरे को क्षति पहुँचाये अथवा ऐसा दब्बू और उदासीन बन जाय कि अपने समुदाय में लौट जाने पर आज्ञाकारी व्यक्ति तो बन जाय, पर बाह्य जगत् में अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्रता के आधार पर कार्य करने की क्षमता उसमें न हो। संस्था बच्चों के व्यावसायिक प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध कर सकती है, ताकि वे वहाँ से जाने पर स्वयं अपनी आजीविका चला सकें। यह बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, किन्तु यदि इसके साथ ही संस्था में अन्य प्रकार की सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं तो व्यावसायिक प्रशिक्षण के बाद भी बच्चे में भयंकर अभाव रह जायेंगे और उसकी क्षमता का ऐसा विकास नहीं हो पायेगा कि वह वापस जाने पर समुदाय के साथ अपना सामंजस्य स्थापित कर सके अथवा रचनात्मक कार्य करते हुए अपना जीवन बिता सके।

अभी कुछ वर्षों से अपराधी बालकों के लिए भी पालन-गृह की व्यवस्था करने का प्रयोग किया गया है और उसमें सफलता भी मिली है। यद्यपि इस दिशा में किये जाने वाले आज के प्रयोग चार्ल्स लोरिंग ब्रेस के आरंभिक प्रयत्नों से बहुत भिन्न प्रकार के हैं, पर ब्रेस का सन् १८५९ का कहा हुआ यह सिद्धान्त-वाक्य आज के प्रयोग के मूल में निहित सिद्धान्तों के बहुत निकट है कि "परिवार बच्चों का ईश्वरीय सुधार-गृह है।" अनेक बाल-न्यायालयों द्वारा बहुत-से अपराधी घोषित बालकों को भी पालन-गृहों में भेजने का निर्णय दिया गया है। प्रायः ऐसे बालकों की देख-भाल के लिए उनके सम्बन्धियों के यहाँ व्यवस्था की जाती है, ताकि उनके परिवार से भी उनका सम्बन्ध बना रह सके। किन्तु न्यायालय और अभिकरण मुख्य रूप से इस बात पर ध्यान देते हैं कि किसी विशेष अपराधी बालक के लिए चुना गया पालन-गृह उसकी आवश्यकताओं की दृष्टि से उपयुक्त हो। यह अनुभव किया गया है कि बच्चों की अच्छी देख-भाल उनके लिए उपयुक्त पालन-गृह के चुनाव पर ही बहुत कुछ निर्भर करती है। यह बात प्रायः सर्वमान्य है कि मनमाने ढंग से किसी भी पालन-गृह में बच्चे को भेज देने का परिणाम बालक, उसके माता-पिता, पालक माता-पिता और अभिकरण, सबके लिए बड़ा कष्टदायी होता है। जब यह मालूम हो जाता है कि बालक अपराधी है तो उसके बाद सर्वाधिक महत्त्व का कार्य इस बात का निश्चय करना होता है कि कौन-सा पालन-गृह चुना जाय, जो उसके लिए उपयुक्त हो और स्वयं वह बालक

जिसमें रखे जाने के योग्य हो। इसके लिए इस बात की आवश्यकता है कि पहले बालक को ठीक-ठीक समझा जाय और फिर उस पालन-गृह के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त की जाय, जहाँ उस बालक को भेजना है। बालक के पालन-गृह में चले जाने के बाद यह आवश्यक है कि पालक-परिवार में बालक की कैसी देख-भाल हो रही है, उसका बराबर अधीक्षण कराया जाय और इस प्रकार की सहायता पहुँचायी जाय कि एक विशेष अवधि के भीतर बालक उस नये घर में सुरक्षा का अनुभव करने लगे और पालक माता-पिता को भी इस बात का सन्तोष होने लगे कि वे वस्तुतः कोई ठोस सेवा-कार्य कर रहे हैं। प्रायः सब इस विषय में सहमत हैं कि इस प्रकार के नवीन वातावरण में बालक के विकास के लिए जितना अवसर मिलता है, उतना उसके निजी घर के भिन्न वातावरण में किसी भी हालत में नहीं मिल सकता।

यदि बालक सुधार-गृह से अपने घर वापस जाता है, और अधिकांश उदाहरणों में उसको घर भेजना ही अधिक अच्छा समझा जाता है, तो उसके बाद भी वैयक्तिक सेवा-कार्य द्वारा उसकी सहायता की जाती है, ताकि अपनी सीमाओं और क्षमताओं को ठीक-ठीक समझते हुए वह समाज में उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से व्यवहार कर सके। सुधार-संस्था अपने वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्त्ता से यह काम कराती है और यदि किसी संस्था में ऐसे वैयक्तिक सेवा (या कारावकाश-सेवा) कार्यकर्त्ता नहीं हैं, जो बालकों के दूरस्थ समुदायों में पहुँचकर उनकी सहायता कर सकें, तो ऐसी हालत में वह इस प्रकार की सहायता देने के लिए स्थानीय जन-कल्याण-विभागों द्वारा व्यवस्था कराती है।

गृहकार्य-सहायता-सम्बन्धी सेवा

परिवारों में कभी-कभी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है कि गृह-स्वामिनी (कभी पालक-गृह की पालिका माँ भी) अपने पति और बच्चों को छोड़कर कहीं अन्यत्र चली जाती है और उस समय बच्चों और उनके पिता के सामने यह कठिन समस्या उपस्थित हो जाती है कि गृहस्थी की व्यवस्था कैसे हो। यह समस्या तब और भी गम्भीर रूप में उपस्थित होती है, यदि बच्चे स्कूल जाने की उम्र के या उससे भी छोटे होते हैं और पिता नौकरी करता रहता है, जिसे छोड़ने की स्थिति में वह नहीं होता। इसी तरह की और भी स्थितियाँ हो सकती हैं, जिनकी गम्भीरता उनके स्वरूप की भिन्नता के अनुसार कम या अधिक होती है। उदाहरण के लिए, ऐसा हो सकता है कि बच्चों की माँ को कोई ऐसा खतरनाक ऑपरेशन कराना हो, जिसके लिए उसका काफी समय तक अस्पताल में रहना आवश्यक हो और वहाँ से लौटने के बाद भी उसके स्वास्थ्य-सुधार में काफी समय लगने की सम्भावना हो, अथवा गृह-माता गर्भवती हो और बच्चा पैदा होने का समय निकट आ गया हो, अथवा वह मानसिक रोग या क्षयरोग से पीड़ित हो और उसे पागलखाने या

क्षयरोग-अस्पताल में भेजने का प्रबन्ध कर लिया गया हो। माता की मृत्यु, गृह-परित्याग या पति के साथ उसके सम्बन्ध-विच्छेद के कारण भी ऐसी स्थिति हो सकती है। इस प्रकार आपत्तिकालीन परिस्थिति उत्पन्न होने पर कुटुम्बी परिवार (और कभी-कभी मित्र भी) अस्थायी रूप से सहायता कर देते हैं, पर हर एक व्यक्ति के ऐसे कुटुम्बी या मित्र नहीं होते, अथवा हों भी तो सहायता करने को तैयार नहीं होते या कहीं दूर होते हैं अथवा वे स्वयं अपने बच्चों को छोड़ने की स्थिति में नहीं होते। अतः इस तरह की आवश्यकता की पूर्ति के लिए सरकारी और गैर-सरकारी अभिकरणों द्वारा सेवा-कार्य की व्यवस्था की जाती है। इस सेवा-पद्धति का उत्तरोत्तर प्रसार होता जा रहा है। इसको गृह कार्य-सहायता-सेवा कहा जाता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत किसी संकट-ग्रस्त परिवार में गृहस्वामिनी की जगह काम करने के लिए कोई बाहरी व्यक्ति रखा जाता है। गृहस्वामिनी प्रतिदिन गृहस्थी के जो काम किया करती थी, उनमें से अधिकांश काम वह नियुक्त व्यक्ति करता है, जिससे परिवार विच्छिन्न होने से बच जाता है और सदस्यों को इधर-उधर बिखरना नहीं पड़ता है। ऐसे गृहकार्य-सहायक या गृहकार्य-सहायिका को या तो प्रतिदिन आठ घंटे काम करना पड़ता है अथवा उसकी सेवाएँ चौबीस घंटे की होती। यदि पिता इस योग्य है कि अपने काम पर से लौट आने के बाद गृहस्थी का काम सँभाल सकता है, तब तो गृहकार्य-सहायक प्रतिदिन आठ घंटे काम करने के लिए नियुक्त किया जाता है, और यदि वह इस योग्य नहीं है अथवा परिवार की आवश्यकताएँ इतनी अधिक हैं कि वह उनकी पूर्ति अकेले नहीं कर सकता और उसके रहते भी एक गृहकार्य-कुशल सहायक की आवश्यकता होती है तो ऐसी हालत में चौबीस घंटे काम करने वाले सहायक की नियुक्ति की जाती है। ये सहायक या सहायिकाएँ गृह-माता के प्रायः सभी दैनिक काम—घर की सफाई, भोजन बनाना, कपड़े सीना और धोना, बच्चों की देख-भाल आदि—करती हैं। इसके सम्बन्ध में किसी ने कहा है कि यह ऐसी सेवा-पद्धति है जो समुद्र की लहर की तरह आती है, पर उसकी तरह कुछ बहाकर नहीं ले जाती, कुछ दे ही जाती है।

गृहकार्य-सहायकों की नियुक्ति किसी अभिकरण (राजकीय जन-कल्याण-विभाग, पारिवारिक अभिकरण, परिवार एवं बाल-अभिकरण, आदि) द्वारा होती है, उनकी भरती और प्रशिक्षण का प्रबन्ध भी अभिकरण ही करता है और उन्हें वेतन भी अभिकरण से ही मिलता है। जिन परिवारों में सहायकों की नियुक्ति होती है, वे अभिकरण को उसके लिए निर्धारित शुल्क देते हैं। इस शुल्क का निर्धारण प्रायः सेवार्थी-परिवार की आय और उसके सदस्यों की संख्या के आधार पर किया जाता है। अभिकरण ऐसे परिवारों की गृहकार्य सहायता-सेवा के साथ-साथ उनकी अन्य प्रकार की समस्याओं को सुलझाने के लिए अपने वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्त्ता को भी सेवार्थ भेजता है।

अधिकांश अभिकरण, जो इस प्रकार की सेवा की व्यवस्था करते हैं, किसी परिवार की सहायता एक सीमित अवधि तक ही करते हैं, क्योंकि इस सेवा का उद्देश्य केवल संकट-काल में ही परिवार की सहायता करना है,ताकि उस विकट परिस्थिति में पड़कर भी परिवार के सदस्य एक साथ रह सकें। जब किसी परिवार में गृहकार्य-सहायक को काम करते अधिक समय बीत जाता है और ऐसा मालूम पड़ता है कि उस परिवार को अनिश्चित काल तक सहायता की आवश्यकता बनी रहेगी,तो उस परिवार के मुखिया और अभिकरण के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे मिलकर यह निश्चित करें कि इस सम्बन्ध में आगे के लिए क्या योजना बनायी जा सकती है। इस तरह परिवार के सदस्यों को संकट-काल में भी आराम से जीवन बिताने तथा अपनी जीवन-विधि को नये सिरे से संघटित करने के लिए अपने साधनों को विकसित करने में अभिकरण से महत्त्वपूर्ण सहायता प्राप्त होती है।[१४]

बालकों के लिए अन्य सेवाएँ

बाल-कल्याण-सम्बन्धी और भी कई महत्त्वपूर्ण सेवाएँ हैं,जिनकी चर्चा अभी तक नहीं की जा सकी है। उनमें से एक सेवा विकलांग बालकों की सहायता है, जिसे "राजकीय सहायता और सामाजिक सुरक्षा" का अंग मान कर उसी विषय वाले अध्याय में रखा गया है। सामाजिक सुरक्षा-कानून के अन्तर्गत आने वाली एक अन्य सेवा, आश्रित बालकों की सहायता, के विषय में भी उपर्युक्त बात ही लागू होती है। बाल-न्यायालय और परिवीक्षण के सम्बन्ध में 'परिवीक्षण और कारावकाश-मुक्ति' विषयक अध्याय में विचार किया जायगा।

और भी कई ऐसी सेवाएँ हैं,जिनके सम्बन्ध में इस अध्याय में विचार किया जा सकता था। सामाजिक सेवा का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं है, जिसका अस्तित्व अन्य पक्षों से असम्बद्ध और अपने आप में पूर्ण हो, और बच्चों से सम्बन्धित सेवाओं के विषय में तो यह बात और भी अधिक सत्य है। फिर भी इस अध्याय में विचार के लिए उन्हीं सेवाओं को चुना गया है, जिनका उद्देश्य बच्चों की ,उनके घर में या घर के बाहर किसी संस्था के अन्तर्गत सहायता

१४. गृहकार्य-सहायता-सम्बन्धी सेवा की व्यवस्था केवल बच्चों वाले परिवारों के लिए ही नहीं है, यद्यपि ऐसे परिवारों को प्राथमिकता अवश्य दी जाती है। वृद्धों के लिए भी इस सेवा की व्यवस्था की जाती है, ताकि उन्हें किसी संस्था में या अन्य किसी के यहाँ न जाना पड़े और वे अपने घर में ही रह सकें। इस सम्बन्ध में विशेष विवरण के लिए "वृद्धों के लिए सामाजिक सेवा' शीर्षक तेरहवाँ अध्याय देखिए।

करना है । कई सेवाएँ ऐसी भी हैं, जिनसे बालकों को आनुषंगिक रूप से लाभ प्राप्त हो जाता है, पर इस अध्याय में केवल उन्हीं सेवाओं के सम्बन्ध में विचार किया गया है जिनका प्रधान लक्ष्य बालक की सहायता करना होता है अर्थात् जिनमें प्रमुख लाभार्थी बालक होते हैं ।

सहायक ग्रन्थ-सूची

पुस्तकें और पुस्तिकाएँ

विनिफ्रेड वाई० एलेन और डोरिस कैम्पबेल—"दि क्रिपेटिव नर्सरी सेण्टर"—न्यूयार्क, फेमिली सर्विस एसोसियेशन आफ अमेरिका, १९४८ ।

ग्रेस एबाट—दी चाइल्ड ऐण्ड दी स्टेट—दो भाग—शिकागो, युनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, १९३८ ।

ग्रेस आई० बिशप—द रोल आफ केस वर्क इन इन्स्टीच्यूशनल सर्विस फार एडोलेरोण्ट्स—न्यूयार्क, चाइल्ड वेलफेयर लीग आफ अमेरिका, १९४३ ।

जान बाउलबाई—मैटर्नल केयर ऐण्ड मेण्टल हेल्थ—न्यूयार्क, कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, १९५१ ।

ली एम० ब्रुक्स और इवलिन—एडवेन्चरिंग इन एडाप्शन—चैपेल हिल, युनिवर्सिटी आफ नार्थ कोरोलिना प्रेस, १९३९ ।

ईवा बरमीस्टर—फार्टीफाइव इन द फेमिली—न्यूयार्क, कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, १९४९ ।

ईवा बरमीस्टर—रूफ्स फार द फेमिली—न्यूयार्क, कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, १९५४ ।

अर्नेस्ट केडी—वी एडाप्टेड थ्री—न्यूयार्क, विलियम स्लोन ऐण्ड एसोशियेट्स, १९५२ ।

जे० लुइसी डेस्पर्ट—चिल्ड्रेन आफ डाइवोर्स—न्यूयार्क, डबुलडे ऐण्ड कम्पनी, १९५३ ।

अलबर्ट डायश—आवर रिजेक्टेड चिल्ड्रेन—वोस्टन, लिटिल, ब्राउन ऐण्ड कम्पनी, १९५० ।

सारा बी० एडलिन—दी अनमैरिड मदर इन आवर सोसाइटी—न्यूयार्क, फारार स्ट्रास ऐण्ड यङ्ग, १९५४ ।

होमर फोक्स—द केयर आफ डेस्टीच्यूट, निग्लेक्टेड ऐण्ड डेलिंक्वेंण्ट चिल्ड्रेन—न्यूयार्क, द मैकमिलन कम्पनी, १९०२ ।

सेलमा एच० फ्राइबर्ग—साइकोएनेलिटिक प्रिन्सिपुल्स इन केस वर्क विथ चिल्ड्रेन—न्यूयार्क, फेमिली सर्विस एसोशियेशन आफ अमेरिका, १९५४।

एलीनोर जी० गालाथेर—दी एडाप्टेड चाइल्ड—न्यूयार्क, रेनाल्ड ऐण्ड हिचकाक, १९३६।

हावर्ड डब्ल्यू हापकिर्क—इन्स्टीच्यूशन्स सर्विंग चिल्ड्रेन—न्यूयार्क, रसेल सेज फाउण्डेशन, १९४४।

डोरोथी हचिन्सन—इन क्वेस्ट आफ फोस्टर पैरेण्ट्स—न्यूयार्क, कोलम्बिया युनिवर्सिटी, प्रेस, १९४३।

जिसेला कोनोप्का—ग्रूप वर्क इन इन्स्टीच्युशन—न्यूयार्क, ह्वाइट-साइड, इन्क०, १९५४।

जिसेला कोनोप्का—थेराप्यूटिक ग्रूप वर्क विथ चिल्ड्रेन, मीनियापोलिस, युनिवर्सिटी आफ मिनेसोटा प्रेस, १९४९।

फ्रान्सिस लाकरिज—एडाप्टिंग ए चाइल्ड—न्यूयार्क, ग्रीनबर्ग, १९४७।

एमा ओलुण्डबर्ग—अन टू द लीस्ट आफ दीज़—न्यूयार्क, डी०, एप्लेटान सेञ्चुरी, १९४७।

सेसीलिया मैकगोवर्न—सर्विसेज टु चिल्ड्रेन इन इन्स्टीच्यूशन—वाशिंगटन, डी० सी०, नैशनल कानफ्रेन्स आफ कैथलिक चैरिटीज, १९४८।

ग्लेडीस मेयर—स्टडीज आफ चिल्ड्रेन—न्यूयार्क, किंग्स क्राउन प्रेस, १९४८।

नार्मा नाल पेज—प्रोटेक्टिव सर्विस—ए केस एलस्ट्रेटिव केस वर्क सर्विस विथ पैरेण्ट्स—न्यूयार्क, चाइल्ड वेलफेयर लीग आफ अमेरिका (प्रकाशन तिथि वही है, सम्भवतः १९४८)।

एडवर्ड पोडोल्स्की—द जेलस चाइल्ड—न्यूयार्क, फिलाडेलफिया लाइब्रेरी, १९५४।

केरोल एस० प्रेण्टिस—ऐन एडाप्टेड चाइल्ड लुक्स ऐण्ड एडाप्शन—न्यूयार्क डी०, एप्लेटन सेञ्चुरी, १९४०।

फ्रित्श रेड्ल और डेविड वाइन मैन—चिल्ड्रेन हू हेट—ग्लेङ्को (इलियानोइस), द फ्री प्रेस, १९५२।

एडवर्ड ए रिचार्ड्स (सम्पादक)—प्रोसीडिंग्स आफ द मिडसेंचुरी ह्वाइट हाउस कानफ्रेन्स आफ चिल्ड्रेन ऐण्ड यूथ—रेले, एन० सी०, हेल्थ पब्लीकेशन्स इन्स्टीच्यूट, १९५१।

फ्लोरेन्स राण्डेल और रूथ माइकेन्स—दी एडाप्टेड फेमिली—न्यूयार्क, क्राउन पब्लिशर्स, इन्क, १९५१।

अन्ना पेराट रोज़—रूम फार वन मोर—बोस्टन, ह्यूटन मिलिफन कम्पनी, १९५०।

सुसान शुल्ज़े—(सम्पादन)—क्रियेटिव ग्रूप लिविङ्ग इन ए चिल्ड्रेन्स इन्स्टीच्यूशन—न्यूयार्क, एसोसियेशन प्रेस, १९५१।

विलियम कार्ल्सन—द स्टेपचाइल्ड—शिकागो, युनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, १९५३।

विलियम कार्ल्सन—स्टैण्डर्ड्स फार स्पेशलाइज्ड कोर्टस डीलिंग विथ चिल्ड्रेन—चिल्ड्रेन्स ब्यूरो पब्लिकेशन, संख्या ३४६, वाशिंगटन, डी० सी०, यू० एस० गवर्नमेण्ट प्रिण्टिङ्ग आफिस, १९५४।

एडिथ एम० स्टर्न और एल्सा कास्टेनडिक—द हैण्डीकैप्ड चाइल्ड : ए गाइड फार पैरेण्ट्स—न्यूयार्क, ए० ए०, विन, इन्क, १९५०।

जेसी टाफ्ट (सम्पादक)—सेकेण्ड केस वर्क विथ चिल्ड्रेन—फिलाडेल्फिया, पेन्सिलवानिया स्कूल आफ सोशल वर्क, १९४०।

हेनरी डब्ल्यू थर्स्टन—द डिपेण्डेण्ट चाइल्ड—न्यूयार्क, कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, १९३०।

यू० एस० ब्यूरो आफ सेन्सस—यू० एस० सेन्सस आफ पापुलेशन, १९५०, जिल्द चार, स्पेशल रिपोर्ट, भाग २; अध्याय सी, इन्स्टीच्यूशनल पापुलेशन, वाशिंगटन, डी० सी०, यू० एस० गवर्नमेण्ट प्रिण्टिग आफिस, १९५३।

वालेण्टाइना पी० वागन—द चोजेन बेबी—संशोधित संस्करण, फिलाडेल्फिया, जे० बी० लिपिन काट कम्पनी, १९५०।

हेलेन विटमेर और रूथ कोटिन्स्की—परसनालिटी इन द मेकिंग—न्यूयार्क, हार्पर ऐण्ड ब्रदर्स, १९५२।

लियोण्टाइन यङ्ग—आउट आफ वेडलाक—न्यूयार्क, मेकग्रा-हिल बुक कम्पनी, १९५४।

महत्त्वपूर्ण लेख

नेज एम० बेकर—'अपहील्ड राइट्स आफ पैरेण्ट्स ऐण्ड चाइल्ड"—द चाइल्ड, जिल्द १३, अगस्त १९४८, पृ० २७—३०।

लाउरेटा बेण्डर—"इनफैन्ट्स रिवर्ड इन इन्स्टीच्यूशन्स परमानेण्टली हैण्डीकैप्ड"—बुलेटिन आफ द चाइल्ड वेलफेयर लीग आफ अमेरिका—जिल्द २४, सितम्बर १९४५ पृ० १—४।

मेरियान जेनारिया—"हेल्पिंग ड वेरी यंग चाइल्ड टु पार्टीसिपेट इन प्लेसमेण्ट"—जर्नल आफ सोशल वर्क प्रासेस; इलोनोइस, दिसम्बर १९३९, पृ० २९–५९।

क्लेपरे हानकाक—"प्रोटेक्टिव सर्विस फार चिल्ड्रेन"—चाइल्ड वेलफेयर—जिल्द २८, मार्च १९४९, पृ० ३–९।

एलिजाबेथ हैरल—"द फोस्टर पैरेन्ट ऐण्ड द एजेन्सी इन दी एडाप्शन प्रासेस—" प्रोसीडिंग्स आफ द नैशनल कान्फेन्स आफ सोशल वर्क, १९४१, पृ० ४११–४२५।

आलमेडा आर० जोलोविश—"ए फोस्टर चाइल्ड नीड्स हिज ओन पैरेण्ट्स"—द चाइल्ड, जिल्द १२, अगस्त १९४७, पृ० १८–२१।

एलन कीथ लूकास—"स्टेटस आफ पैरेण्ट डर्यूरिंग प्लेसमेण्ट"—चाइल्ड वेलफेयर, जिल्द ३२, जून १९५३, पृ० ३–५।

डेविस एल लेबाइन—"सेपरेशन एज ऐन एलीमेण्ट इन डे केयर प्लैनिंग"—जूइश सोशल सर्विस क्वार्टरली, जिल्द २७, जून १९५१, पृ० ४३६–४४१।

कालमैन राले—"ह्वाई डिफरेन्शियेट केसलोड्स इन द मल्टिपुल एजेन्सी"—बुलेटिन आफ द चाइल्ड वेलफेयर लीग आफ अमेरिका—जिल्द २६, जनवरी १९४७, पृ० १–७, ९।

फ्लोरेन्स जाइनर—"अचीवींग फोस्टर पेरेण्ट हुड"—पब्लिक वेलफेयर, जिल्द ३, नवम्बर १९४५, पृ० २५४–२५६।

मास्टर्स-परिवार और एक बाल-अभिकरण

डोरोथिया गिलबर्ट
निदेशिका,
बाल-सेवा-केन्द्र
श्रेवेपोर्ट, ला।[1]

तीन वर्ष पूर्व श्रीमती मास्टर्स ने फोन किया था। टेलीफोन पर उनकी वार्ता छोटी और संयत थी। उन्होंने अपना नाम बताया था और मिलने के लिए समय माँगा था। उन्होंने यह भी बताया था कि उनकी एक ढाई वर्ष की लड़की है। उनके शिशु-रोग-चिकित्सक ने उन्हें यह सलाह दी थी कि वह अपनी बच्ची को हमारे पास देख-भाल की

१. यह अभिकरण बच्चों के लिए योजना बनाने तथा सामूहिक देख-भाल, पालक परिवारों की व्यवस्था; दिन में घर से बाहर रहनेवाले बच्चों की देख-भाल की सुविधा से सम्बन्धित सेवा-कार्य करता है।

व्यवस्था करन के लिए भेज दें, यद्यपि "बच्ची पूर्ण स्वस्थ है।" मिलने के लिए उन्हें जो समय दिया गया था, उस पर उन्होंने दो दिन बाद अपनी स्वीकृति दी थी, किन्तु उसी दिन तीसरे पहर उन्होंन फोन पर कहा कि "निश्चित तिथि को उन्हें एक ऐसा काम आ पड़ा है कि वह अभिकरण में मिलने नहीं आ सकेंगी।" जब उनसे कोई दूसरी तिथि निश्चित करने के लिए कहा गया तो उन्होंने धन्यवाद देते हुए कहा कि इस सम्बन्ध में वह स्वयं बाद में फोन से सूचना देंगी।

छः सप्ताह बाद उन्होने फिर फोन किया और पहले की तरह ही रूखी और व्यावसायिक पद्धति से वे फिर मिलने का समय निश्चित किया, पर इस बार वह ठीक समय पर मिलने आयी थीं।

श्रीमती मास्टर्स, प्रथम दर्शन में एक तुनुकमिजाज, क्षुद्र, उद्विग्न, चिंतित और अत्यन्त थकी हुई महिला मालूम पड़ीं। उन्होंने साक्षात्कार में इस तरह बातचीत शुरू की कि मानो वह पहले से ही इसका रिहर्सल करके आयी थीं। उन्होंने बताया कि वह एक वकील के कानून-कार्यालय में प्राइवेट सेक्रेटरी का काम करती हैं। शिशु-रोग-चिकित्सिक डा० एलिस ने उन्हें यह सुझाया था कि वह अपनी बच्ची के पालन-पोषण के लिए कहीं अन्यत्र प्रबन्ध करेंऔर इस सम्बन्ध में उन्होंने उनसे हमारे अभिकरण के नाम की संस्तुति की थी। मैंने उनसे बताया था कि यह सही है कि हम बच्चों को अपने पालन-गृह में रखने की व्यवस्था करते हैं और डा० एलिस, जिन्होंने हमारे कुछ पालित बच्चों की देख-रेख की थी, हमारे कार्यों से बहुत प्रभावित थीं। शायद श्रीमती मास्टर्स अपनी पहली बातचीत के बाद से ही इस विषय पर विचार करती आ रही थीं। हम भी यह अनुभव करते हैं कि किसी बच्चे को अपने घर से अन्यत्र रहने के लिए भेजने का निर्णय करना कितना कठिन होता होगा। जब मैंने यह बात उनसे कही तो उन्होंने सन्तोष की साँस ली। मैंने उन्हें बताया कि हमारे सेवा-कार्य का एक अंग यह भी है कि जो माता-पिता अपने बच्चों के पालन-पोषण से सम्बन्धित समस्याओं पर अभिकरण से कुछ राय लेना चाहते हैं, अभिकरण उन्हें अपनी समस्या पर विचार-विमर्श करने का अवसर प्रदान करता है। फलस्वरूप कभी-कभी कोई ऐसा रास्ता भी निकल आता है कि बच्चों को पालन के लिए अन्यत्र भेजने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

उन्होंने बताया कि अच्छा हो कि वह पहले अपनी परेशानी का बयान कर लें। सहसा उनके आत्म-नियंत्रण का बाँध टूट गया और वह डेस्क पर सिर झुका कर कई मिनट तक सिसकती रहीं। जब उनकी मुट्ठियाँ खुलीं और सिसकियों का जोर कुछ कम हुआ तो उन्होंने अपनी रूमाल टटोली, पर वह नहां मिली। मैंने उनके हाथ में एक क्लीनेक्स थमा दिया। उन्होंने अपनी नाक साफ की और आँखें पोंछीं और सिर उठा कर मेरी

ओर देखते हुए हँसने का प्रयत्न किया। उनकी हँसी एक खिन्न लड़की की उदास हँसी थी। उन्होंने कहा कि वह बहुत लज्जित है। क्योंकि उन्होंने सोचा था कि उनका अपने ऊपर पर्याप्त संयम है ? यदि वह ऐसा जानतीं कि वह अपने ऊपर से अपना नियंत्रण खो देंगी तो यहाँ आती ही नहीं। वह सहज प्रवाह के साथ जुडी से सम्बन्धित अपनी कठिनाइयों का वर्णन करती रहीं, केवल एक बार बीच में उनकी आवाज़ कुछ लटपटाई थी।

उनकी बातचीत का सारांश यह था कि उनकी लड़की जुडी, जिसकी उम्र अभी दो वर्ष से कम है, जन्म से ही एक कठिन समस्या बन कर आयी है। वह हमेशा रोती रहती है, जिसके कारण वह और उसके पति दोनों किसी रात पूरी नींद नहीं सो पाते (यहाँ, साक्षात्कार प्रारम्भ होने के कुछ देर बाद मुझे यह मालूम हुआ कि कोई श्री मास्टर्स भी हैं)। वह और उसके पति दिन में काम पर चले जाते हैं। लड़की को एक बड़ी और खर्चीली व्यक्तिगत नर्सरी में दिन में रखने की व्यवस्था की गयी है। उन्हें इस बात की चिन्ता हो गयी है कि उनकी लड़की यद्यपि बातें समझ लेती है, पर कुछ बोलती नहीं है। वह बरावर कदम रखकर चलती भी नहीं है, चीजों को लेने के लिए झपटती और प्रायः गिर पड़ती या टकरा जाती है। सिखाने के बावजूद अभी तक वह शौच की सफाई करना नहीं सीख सकी है। यद्यपि वह खाना बहुत खाती है, पर उसका शरीर दुबला-पतला ही है। वह दूसरोंद्वारा खाना खिलाने का प्रतिरोध करती है, चम्मच का इस्तेमाल करने से इन्कार कर देती है, फर्श पर खाना गिरा दिया करती है। उनकी सबसे बड़ी समस्या यह है कि जुडी को अच्छी तरह नींद नहीं आती। नीद को वह अपने पास नहीं फटकने देना चाहती और जब कभी रोने और चिल्लाने के कारण थककर झपकी भी लेती है तो कुछ मिनट से अधिक नहीं सो पाती है। तुरन्त जाग जाती है (और उन लोगों को भी जगा देती है) और जोर-जोर से चिल्लाने लगती है। मैंने आश्चर्य प्रकट करते हुए उनसे पूछा कि क्या जुडी में यह बात पहले से नहीं थी, नयी शुरू हुई है ? उन्होंने उत्तर दिया कि प्रारम्भ से ही उसकी यही हालत रही है।

उन्होंने इस समस्या की पृष्ठभूमि के रूप में अपने विवाह के सम्बन्ध में कुछ बातें बतायीं। विवाह के कुछ दिन बाद ही उनके पति कोरिया चले गये थे। तीन वर्ष बाद उन्हें सेना की सेवा से मुक्ति मिली और कोरिया के युद्ध की थकान ने उन्हें इस तरह क्षीण कर दिया था कि घर लौटने से पहले उन्हें कई महीनों तक अस्पताल में रहना पड़ा था। उन्हें आंशिक रूप में अक्षम व्यक्तियों को दी जाने वाली क्षतिपूर्ति सहायता मिलती है और अभी थोड़े दिनों पूर्व से ही वह एक कम मेहनत वाला अंशकालिक काम करने लगे हैं। उन्होंने बताया कि उनके अपने काम में बहुत अच्छा वेतन मिलता है और उनका परिवार मुख्यतः उसी आय पर निर्भर है।

पर उनके पति अब उन्हें बिलकुल बदले हुए व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं। उन्हें भयंकर दुःस्वप्न दिखाई देते हैं, वह प्रायः निराशा और चिड़चिड़ेपन से भरी रहस्यमय मनः-स्थिति में रहते हैं और कभी-कभी तो उन्हें देखकर वह सन्देह में पड़ जाती हैं कि कहीं वह पागल तो नहीं हो गये हैं?

उनके पति के कोरियाई युद्ध से घर लौटने के एक वर्ष बाद जुडी का जन्म हुआ था। जब वह गर्भ में थी, उस समय उनके परिवार की स्थिति इतनी तनावपूर्ण हो गयी थी कि अपने मैके वालों के प्रेरित करने पर वह अपने पति से अलग रहने लगी थीं। पर जुडी के पैदा होने के कुछ दिनों पूर्व उनमें फिर मेल हो गया था। यद्यपि उनके मैके वाले उन दोनों की कुछ आर्थिक सहायता कर सकते थे, पर वे उन दोनों के विवाह के इतने विरुद्ध थे कि उन्होंने कुछ भी नहीं किया, जिससे विवश होकर उन्हें जुडी के जन्म के दो सप्ताह बाद ही नौकरी कर लेनी पड़ी थी। उस समय श्री मास्टर्स नौकरी नहीं करते थे, अतः अकेले वही जुडी की बहुत अच्छी तरह देख-भाल कर लेते थे। जब जुडी की उम्र सात महीने की थी, श्रीमती मास्टर्स स्वयं स्नायविक रोग से पीड़ित हो गयी थीं और उनका मस्तिष्क विकृत हो गया था। यद्यपि वह इस बात को बहुत जल्दी से कह कर आगे बढ़ गयीं, पर इतना बताया कि उस समय उन्हें कई सप्ताह अस्पताल में रहना पड़ा था। उनकी बीमारी की हालत में उनकी बच्ची को एक आवासीय शिशुशाला (नर्सरी) में रखा गया था, जहाँ वह एक वर्ष तक थी।

शिशुशाला के अधिकारियों ने श्रीमती मास्टर्स और उनके पति से यह कहा कि वे बच्ची से मिलने न जाया करें, क्योंकि उन्हें देख कर उसका मस्तिष्क विचलित हो जाता है। शिशुशाला की निरीक्षिका प्रायः उनसे कहा करती थी कि बच्ची का विकास उस तरह सहज रूप में नहीं हो रहा है, जैसा सामान्य बच्चों का होना चाहिए, वह प्रायः लगातार रोती-चिल्लाती रहती है, बहुत थोड़ी-थोड़ी देर के लिए केवल झपकी लेती है और उसकी उम्र के बच्चों के शरीर और प्रेरक तंत्रिकाओं का जैसा विकास होता है, वैसा उसका नहीं हो रहा है।[२] (बाद में शिशुशाला वालों ने बताया कि बच्ची हमेशा भयभीत-सी दिखाई पड़ती है और जैसे उसके रोएँ हमेशा भय से खड़े रहते हैं।) श्रीमती मास्टर्स के चिकित्सक ने उन्हें यह राय दी थी कि वह नौकरी न करें और घर पर रह कर ही अपनी बच्ची की देख-भाल करें। उधर शिशुशाला के अधिकारी बच्ची के कारण

२. समूह में रखने का बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसके विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—जान बाउनबी—मैटरनल केयर एण्ड मेण्टल हेल्थ—जेनेवा, विश्व-स्वास्थ्य-संघटन, द्वितीय संस्करण—१९५२।

इतने चिन्तित हो उठे थे कि उन्होंने श्रीमती मास्टर्स से अपनी बच्ची को वापस ले जाने के लिए अनेक बार आग्रह किया। अन्त में वे जुडी को छः महीने पहले अपने छोटे, सुन्दर और पतली दीवालों वाले कमरे में वापस ले आये थे।

श्रीमती मास्टर्स ने अभिकरण में आने का निश्चय इसलिए किया कि मकान मालिक ने परेशान होकर उन्हें यह चेतावनी दे दी थी कि या तो वह बच्ची का रोना बन्द करायें या कमरा खाली करके कहीं और चली जायँ। उन्होंने यह शंका प्रकट की कि कहीं जुडी का विकास रुक तो नहीं गया है ? उसने बताया कि जुडी की समस्या सुलझाने के तरीके के सम्बन्ध में उनमें और उनके पति में मतभेद है। कभी-कभी तो उनकी बच्ची से भी अधिक बीमार उनके पति हो जाते हैं और जब कभी उनका दिमाग ठिकाने नहीं रहता, वह जुडी को अकारण ही मार बैठते हैं।

श्री मास्टर्स को यह पसन्द नहीं था कि श्रीमती मास्टर्स हमारे अभिकरण में आयें। इसीलिए वह यहाँ उनकी चोरी से आयी थीं। श्री मास्टर्स का मत है कि वे स्वयं जुड़ी की समस्या को हल कर सकते हैं और अब उन्हें जुडी को कहीं दूसरी जगह नहीं भेजना चाहिए। कभी-कभी तो श्रीमती मास्टर्स यह भी सोचती है कि वह अपने पति को छोड़कर बच्ची को साथ लेकर कहीं और चली जायँ। पर वह अकेली जुडी का पालन-पोषण कैसे कर पायेंगी ? इसके अलावे जुडी अपने बाप को बहुत चाहती भी है। कभी वह यह भी सोचती हैं कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि उन्हीं (पति-पत्नी) में कोई दोष है, जुडी में वस्तुतः कोई बीमारी या दोष नहीं है ? जिस नर्सरी में आजकल दिन में जुडी को रखा जाता है, उसके अधिकारियों का कहना है कि वह दिन में ठीक रहती है, उन्होंने स्वयं भी वहाँ उसे प्रसन्न और सन्तुष्ट देखा है। डा० एलिस का कहना है कि जुडी को उन लोगों से अलग रखने की आवश्यकता है। अतः वह जानना चाहती हैं कि क्या उसे कहीं रखने की व्यवस्था हो सकती है, जहाँ रात में भी उसकी देख-भाल हो सके ? यदि उसे अलग रखना ही सर्वोत्तम उपाय हो तो इसके लिए क्या करना चाहिए ? उनका ख्याल है कि वह अपने पति को इसके लिए राज़ी कर लेंगी। मैंने उनसे कहा कि यदि जुडी को अलग रखना ही उसके लिए सबसे उत्तम मार्ग हो तो इस के लिए जब योजना बनायी जाय तो वह और उनके पति, दोनों उपस्थित रहें, ताकि दोनों की राय से योजना बने।

जब मैंने उन्हें अपने अभिकरण द्वारा परिचालित पारिवारिक पालन-योजना की बात बतायी तो वह उसे बड़े ध्यान से सुनती रहीं और बीच-बीच में प्रश्न भी पूछती रहीं। फिर उन्होंने अपनी उसी चिन्ता की बात शुरू की कि क्या सचमुच जुडी में कोई बीमारी है या स्वयं इन्हीं की यह गलती है कि वे जानते ही नहीं कि उन्हें बच्ची से क्या उम्मीद करनी चाहिए और क्या नहीं और पहले उन्हीं को सहायता की आवश्यकता है कि वे बच्ची

की आवश्यकताओं को ठीक तरह समझना सीख सकें। मैंने यह अनुभव किया कि जुडी के विषय में उनकी जो चिन्ताएँ थीं, उनका मुख्य कारण यह था कि इस समस्या का सम्बन्ध दो व्यक्तियों (वह और उनके पति) से था, अकेले उन्हीं से नहीं। यह भी स्पष्ट है कि वह अपनी पुत्री से उन बातों की उम्मीद करती थीं, जिनकी ३–४ वर्ष की उम्र वाले बच्चों से उम्मीद की जाती है, जबकि जुडी की उम्र उससे वहुत कम थी।

अन्त में उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या हमारे अभिकरण की ओर से दिन में बच्चों की देख-भाल करने वाली कोई शिशुशाला भी चलायी जाती है? जब मैंने बताया कि हम लोग इतने छोटे बच्चों को दिन की शिशुशाला में रखने की व्यवस्था को उचित नहीं समझते तो उन्हें इस पर आश्चर्य हुआ, पर इस बारे में उन्होंने अधिक जानने की दिलचस्पी भी दिखायी।[3] जब बहुत स्पष्ट रूप से इस बात का पता चल गया कि वह जुडी को अपने पास ही रखना चाहती हैं तो मैंने यह प्रश्न उठाया कि क्यों न वह जुडी के मामले में बाल-निर्देशन-केन्द्र की सलाह और सहायता लें। उन्होंने बताया कि कुछ मास पूर्व उन्होंने उक्त केन्द्र को फोन किया था, पर एक तो केन्द्र वालों ने जल्दी मिलने का समय ही नहीं निश्चित किया, दूसरे इस विचार मात्र से ही उनके पति विचलित हो गये थे, जिसके कारण उन्हें केन्द्र में आवेदन-पत्र देने का विचार छोड़ देना पड़ा था। उन्होंने कहा कि अब तो वह हम लोगों को जान गयी, इसलिए अभी वह कुछ दिन और इस समस्या पर विचार करेंगी, और यदि सम्भव हुआ तो फिर यहाँ आयेंगी, वह अपने साथ अपने पति को भी लाने की कोशिश करेंगी, क्योंकि उनका विश्वास है कि "उनके पति को जितनी अच्छी तरह हम लोग समझा सकेंगे, उतना वह स्वयं नहीं समझा पायेंगी।"

दूसरी बार जब वह आयीं तो अपने पति को साथ लायीं, पर उनके पति बेमन से पकड़ कर लाये गये प्रतीत हो रहे थे, जैसे कोई बच्चा अपनी माँ द्वारा खींच कर दन्त-चिकित्सक के पास ले जाया जाय। यह लज्जालु और भद्र नौजवान पुरुष थे और उनकी पत्नी ने उनका जो वर्णन किया था, वह उससे कहीं अधिक शक्ति-युक्त और ग्रहणशील प्रतीत हो रहे थे, यद्यपि उनकी मुख्य चिन्ता अपने ही स्वास्थ्य की मालूम पड़ती थी।

उन्होंने बताया कि यद्यपि जुडी बहुत परेशान करती है, पर इसकी क्षतिपूर्ति तब हो जाती है, जब कभी-कभी वह अत्यन्त लुभावनी और मधुर दिखाई पड़ती है। उन्होंने भी यह शंका व्यक्त की कि जुडी कहीं असामान्य (ऐबनार्मल) बालिका तो नहीं है? किन्तु दूसरे साक्षात्कार के बाद श्री मास्टर्स और श्रीमती मास्टर्स में से कोई भी

३. देखिये—"ए गाइड फार द डेवलपमेण्ट आफ डे केयर प्रोग्रैम्स"—न्यूयार्क—चाइल्ड वेलफेयर लीग, १९५१।

इस अभिकरण में अपनी बच्ची की पालन-योजना के सम्बन्ध में दुबारा बात करने नहीं आया। (डा० एलिस से हमारी जो बातचीत हुई, उसका व्योरा यहाँ छोड़ दिया गया है। उनके विचार हमारे निषेधात्मक मतों और निष्कर्षों से मिलते थे।)

तीसरे साक्षात्कार के बाद हम लोगों ने मिलकर यह निश्चय किया कि जुड़ी की आवश्यकताएँ क्या हैं,इसे ठीक-ठीक समझनेके लिए हम उसका मनोमितिक परीक्षण कराने की व्यवस्था करेंगे, साथ ही जुडी को उसके माँ-बाप खेलने के समय हमारे क्रीडा-केन्द्र में लाया करेंगे,जिससे उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन करके हम भी उसके सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कर सकेंगे।

जुडी एक दुबली-पतली, किन्तु सुगठित शरीर वाली सुन्दर लड़की थी। उसका गठन और नाक-नकशा उसकी माँ की तरह ही सुडौल और कोमल था, पर उसके चेहरे पर एक बृद्धा स्त्री के चेहरे के समान झुर्रियाँ थीं और उसकी चौड़ी खुली आँखों में चिन्ता की झलक दिखाई पड़ रही थी। जब उसके चेहरे पर अपेक्षाकृत शान्ति होती तो उसकी आँखों में आश्चर्यमिश्रित क्रोध झलकता था। अपने पिता की सुरक्षित गोद में कभी-कभी वह मुस्कराती, पर शीघ्र ही मुस्कुराहट से दूर भागती-सी पिता के कन्धों पर अपना सिर झुका कर मुँह छिपा लेती थी।

जब वह पहली बार यहाँ आयी तो उसने अपने पिता की गोद से उतरना अस्वीकार कर दिया, यद्यपि उसने उन खिलौनों में अपनी रुचि दिखायी, जिन्हें उसके पिता ने उसके आगे रखा था। दूसरी बार आने पर वह पिता की गोद से नीचे जरूर उतरी थी, पर अपने पिता के पास-पास ही खड़ी रहती थी। उसके बाद उसने आलमारी से सभी खिलौने निकाल लिये और उन्हें सफाई से पंक्ति में सजाकर अथवा तरतीब से एक के ऊपर एक रखा। लकड़ी के ब्लाकों को भी उसने बड़ी सावधानी से और अत्यन्त सतर्कतापूर्वक पुंजीभूत किया, किन्तु खिलौनों को उठाने और सजाने के अतिरिक्त उसके ऊपर खिलौनों का और कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता था। यहाँ उसके दूसरी बार आने के बाद से उसके उतने बार हमारी मनोवैज्ञानिक कार्यकर्त्री भी उस दल में सम्मिलित होने लगी। जुडी उसके साथ केवल प्रयोगात्मक रूप में खेलना स्वीकार करती, उसे वस्तुएँ देती तथा उसके हाथ से लेती थी। जाते समय वह उसे अपने पिता के कन्धों के पास मुँह करके विदा लेते हुए 'बाइ बाइ' भी करती थी।

दूसरी बार उसके आने पर, उसका जो मनोवैज्ञानिक परीक्षण किया गया, यद्यपि उस समय भी वह अपनी माँ की गोद में ही बैठी थी, पर उससे यह बता चला कि मानसिक दृष्टि से वह अपनी उम्र से केवल एक मास ही पीछे थी। अपनी टिप्पणी में मनोवैज्ञानिक कार्यकर्त्री ने यह लिखा था —

"जुडी के लिए इसे उसका अनुकूलतम मानसिक स्तर नहीं कहा जा सकता, क्योंकि निस्सन्देह उसकी सहयोग और सुरक्षा के अभाव की जो मनःस्थिति है, वह उसे कोई भी सक्रिय प्रयत्न नहीं करने देती। फिर भी उसने वे सब काम सफलतापूर्वक पूरे किये, जिनकी उसकी उम्र के बच्चों से उम्मीद की जाती है। ढाई वर्ष की उम्र के बच्चों के योग्य कामों में से दो में उसने सफलता प्राप्त की। इससे यह पता चलता है कि वह कम-से-कम औसत योग्यता की बालिका है। फिर वह उन बच्चों-जैसी नहीं है, जो दूसरों के साथ शीघ्र ही सन्तोषजनक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। परीक्षण के समय के उसके व्यवहार से यह मालूम पड़ता है कि उस उम्र के सामान्य बच्चे जैसे अपरिपक्क होते हैं, वैसी ही वह भी है। बाद में किसी दिन, जबकि उसकी नकारात्मक प्रवृत्ति समाप्त हो गयी रहेगी, उसका मानसिक परीक्षण फिर किया जायगा। उस समय शायद उसकी योग्यता का अधिक सही अनुमान किया जा सकेगा।"

इस बीच श्री मास्टर्स और उनकी पत्नी ने एक ऐसा मकान खोज लिया था, जहाँ उन्हें अपने पड़ोसियों की शिकायत का कोई भय नहीं था। उन्हें एक ऐसी पड़ोसिन मिल गयी, जिसके केवल दो बच्चे थे। यह पड़ोसिन दिन में जुडी की देख-भाल कर लेती थी। अब श्री मास्टर्स और उनकी पत्नी एक दूसरे के अधिक निकट आ गये थे और दोनों मिलकर जुडी की अधिक नियमित देख-भाल करने का प्रयत्न करते थे यद्यपि वे अब भी जुडी से उससे अधिक उम्र वाले बच्चों के योग्य कामों की उम्मीद करते थे।

इस तरह की कई मुलाकातों के बाद फिर जुडी को देख-भाल के लिए किसी परिवार में रखने और श्रीमती मास्टर्स के काम छोड़ देने के सम्बन्ध में कुछ विचार-विमर्श हुआ। इनमें से दोनों बातें न तो आवश्यक ही समझी गयीं, न व्यावहारिक ही। वस्तुतः श्रीमती मास्टर्स ने एक दिन मुलाकात के समय स्पष्ट शब्दों में कहा भी था कि अपनी नौकरी छोड़ने की बात वह कभी भी गम्भीरतापूर्वक नहीं सोच सकतीं। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि अपने घर पर वह बिलकुल आराम नहीं कर पाती हैं, इसी लिए उनके कार्यालय के घंटे ही वस्तुतः उनके आराम के घंटे हैं, क्योंकि उन्हें जो कुछ आराम मिल पाता है, अपने कार्यालय में ही मिलता है।

अन्त में उन्होंने हमारा यह सुझाव मान लिया कि उनका मामला बाल-निर्देशक-केन्द्र में भेज दिया जाय। तीन मास बाद केन्द्र से यह रिपोर्ट आयी कि जुडी का व्यक्तित्व इतना विकृत हो चुका है, और दूसरों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की उसकी क्षमता इतनी कम है कि प्रत्यक्ष उपचार से उसे तत्काल कोई लाभ नहीं हो सकता। परिवार के व्यक्तियों के इतिहास तथा प्रेरक अवयवों के विकास के अध्ययन के आधार पर केन्द्र वालों का यह मत था कि उसमें व्यवहार-सम्बन्धी असंगति आवश्यक थी और उसका कारण

सम्भवतः यह था कि पैदा होते समय आक्सीजन की कमी के कारण जुडी के मस्तिष्क के कोशों पर आघात लगने से उसके आंगिक संस्थान में गड़बड़ी आ गयी थी। केन्द्र वालों से जुडी के माता-पिता का मिलना-जुलना जारी था, श्रीमती मास्टर्स वहाँ नियमित समय पर जाती थीं, पर उनके पति कभी-कभी ही जाते थे। जुडी के व्यवहार में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हो पाया था।

सात मास बाद श्रीमती मास्टर्स का फोन आया। उन्होंने कहा, "हम आपके पास फिर आना और मुलाकात करना चाहते हैं।" मैंने उसी दिन तीसरे पहर मिलने का समय दिया, जिसे सुनकर उन्होंने लम्बी साँस ली, जो रिसीवर पर सुनाई पड़ी। जब मैंने उनसे पूछा कि क्या वह इतनी जल्दी नहीं आ सकेंगी तो वह कुछ आतंकित होकर हँसीं और बोलीं, "मैं सोचती हूँ कि मुझे जल्दी से जल्दी, जब तक कि मेरा उत्साह बना हुआ है, आप के पास आ जाना चाहिए।"

जब श्री मास्टर्स और उनकी पत्नी दोनों मेरे पास आये तो मैंने देखा कि वे दोनों एक दूसरे से बहुत निकट थे। उन्होंने बहुत सहृदयतापूर्वक और मैत्रीपूर्ण ढंग से अभिवादन किया। यद्यपि श्रीमती मास्टर्स ने ही सबसे निकट वाली कुर्सी पर पहले अधिकार जमाया था, पर बातचीत श्री मास्टर्स ने ही शुरू की। उन्होंने कहा, "हमें जुडी के लिए कुछ करने का कोई उपाय सोचना होगा।" श्रीमती मास्टर्स की आँखों में आँसू आ गये। श्री मास्टर्स ने बताया कि यदि उन दोनों को शीघ्र ही कुछ आराम नहीं मिला तो वे इस थकावट को अधिक बर्दाश्त नहीं कर पायेंगे। आज वे जुडी को किसी पालन-गृह में रखने के सम्बन्ध में बातें करने आये थे। उन्होंने बताया कि जुडी की हर बात में इन्कार करने की आदत अब भी बनी हुई है, और वे अपना सारा समय और बुद्धि जुडी की आवश्यकताओं की पूर्ति में ही लगा रहे हैं। उसे थोड़ी देर चुप रखने के लिए भी वे हर घड़ी उसकी सभी बातें मानने को तैयार रहते हैं। श्रीमती मास्टर्स ने फिर कहा, "यह न तो हमारे लिए और न जुडी के लिए ही ठीक बात है।" यह कह कर वह बड़ी देर तक अनियंत्रित रूप से सिसकती रहीं। जब उनके भावावेश की आँधी समाप्त हुई और सिसकना बन्द हुआ तो उन्होंने अपने भीतर शक्ति लाकर फिर कहा, "सचमुच मैं समझती थी कि मैं अपने को काबू में रखने में समर्थ हूँ।" इन सब बातों को सुनकर मैंने उन दोनों से कहा कि मुझे मालूम है कि उन लोगों ने जुडी के लिए कुछ भी उठा नहीं रखा है और इस समस्या का अब वे कोई नया हल ढूँढ़ना चाहते हैं। इस पर उन्होंने मुझसे कहा कि उन्हें डर है कि कहीं उनकी पहले वाली स्नायविक बीमारी फिर न हो जाय, क्योंकि वह इतनी थक गयी हैं कि कुछ सोच भी नहीं सकती हैं, काम करते-करते कई बार बेहोश हो चुकी हैं और अभी हाल में सर्दी और इनफ्लुएंजा से भी पीड़ित हो चुकी हैं।

उनके दिमाग में इस समय यह बात है कि जुडी को प्रयोगात्माक रूप से कुछ दिनों के लिए कहीं रखा जाय, ताकि उस बीच उन्हें कुछ विश्राम करने का अवसर मिल सके। उनका विचार है कि जुडी के पालन-पोषण का कहीं अन्यत्र प्रबन्ध होना चाहिए, जहाँ वह बड़ी होने तक रह सके, शायद उस समय तक उसमें बहुत कुछ सुधार भी हो गया रहेगा।

मैंने उनसे पूछा कि बच्चों की देख-भाल कराने की हमारी योजना के बारे में उन्हें मेरी पहले वाली बातें याद हैं या नहीं ? श्रीमती मास्टर्स ने बताया कि उन्हें हर एक बात याद है। और उनके पति ने बताया कि उन्हें बहुत कम बातें याद हैं। श्री मास्टर्स ने अपनी पत्नी को याद दिलाया कि उन्होंने इस सम्बन्ध में मुझसे सीधे बातें नहीं की थीं, इसीलिए उन्हें अधिक याद नहीं है। अतः जब मैं उन्हें दुबारा वे बातें बताने लगा तो बड़ी सावधानी से सुनते रहे और ऐसी विवेकपूर्ण बातें पूछते रहे, जिससे हमारी बातें और आगे बढ़ती थीं। मैंने उनसे बताया कि हमारे साथ काम करने वाले कुछ पालक माता-पिता हैं, जो बच्चों को अपने घर ले जाकर उनका पालन-पोषण करते हैं। उन्हें इस बात का पूर्ण ज्ञान रहता है कि उनके पास बच्चे आते और फिर चले जाते हैं, अतः उनमें बच्चों को अपना लेने की भावना नहीं उत्पन्न होती। बच्चों के माता-पिता जैसी योजना बनाते हैं उसीके अनुसार वे काम करते हैं। पालक माता-पिता वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता के साथ बच्चों के अनुभवों और प्रतिक्रियाओं के सम्बन्ध में तथा बच्चे जब तक उनके घर में रहते तब तक के उनके विकास और प्रगति के बारे में विचार-विमर्श करते हैं। बच्चों के माता-पिता प्रतिसप्ताह उनके घर जाकर अपने बच्चों से मिलते हैं और कभी-कभी उत्सव-पर्व के अवसर पर उन्हें अपने घर भी ले जाया करते हैं। हम लोग उनके साथ बच्चों की चिकित्सा, वस्त्र, भत्ता आदि के व्योरे की बातों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया करते हैं।

श्रीमती मास्टर्स की सबसे बड़ी चिन्ता यही है कि उन्हें इस बात का विश्वास हो जाना चाहिए कि जब वे अपनी बच्ची को वापस लेने की स्थिति में हो जायँगे तो वह उन्हें वापस मिल जायगी। वह बच्ची से मिलने के लिए पालक माता-पिता के घर जाने के विरुद्ध थी। जब मैंने उन्हें समझाया कि चाहे बच्ची उन्हें देखकर विचलित ही क्यों न हो जाया करे, फिर भी उसे देखने के लिए उनका जाना आवश्यक है, तो उन्होंने उत्तर दिया कि उनका यह अभिप्राय था कि उन्हें देख कर कहीं वह बहुत अधिक विचलित न हो जाय और यदि उनका जुडी से मिलने जाना उसके हित में अच्छा है तो वह अवश्य जायँगी।

मैंने अन्त में मज़ाक में कहा कि ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो जुडी अभी से पालन-गृह में चली गयी है। मैंने फिर बताया कि पहली बात तो यह है कि उसके लिए किसी पालन-गृह की खोज करनी होगी और यदि कोई पालक माता-पिता मिल जाते हैं तो जुडी को वहाँ ले जाकर रखने में श्री मास्टर्स और उनकी पत्नी की सहायता करनी होगी। फिर

हम लोगों ने इस प्रश्न पर विचार किया कि यह काम कैसे किया जायगा। मैंने कहा कि जो कार्यकर्त्री जुडी की योजना अपने हाथ में लेने जा रही है, उसे जुडी को निकट से समझना होगा, ताकि इसकी रिपोर्ट के आधार पर हम यह पता लगा सकें कि उसके लिए कौन पालन-गृह सबसे अच्छा होगा। वह उनके डाक्टर तथा बाल-निर्देशन-केन्द्र वालों से भी जुडी के सम्बन्ध में बातें करेगी। फिर वह पालक माता-पिता से बात-चीत करके उनसे पूँछेगी कि वे जुडी को सँभाल सकेंगे या नहीं। जुडी का भी, पालक माता-पिता के घर जाने के पूर्व, हमारी कार्यकर्त्री में कुछ विश्वास जम जाना चाहिए। हम यह भी चाहेंगे कि उसके जाने के पूर्व हमारा डाक्टर उसकी जाँच कर ले। अतः अभी यह कहना कठिन है कि यह सब करने में कितना समय लगेगा।

मैंने उनसे पूछा कि वे जुडी को कितने दिनों तक अन्यत्र रखने की बात सोचते हैं। श्रीमती मास्टर्स ने कहा, "तीन मास या छः मास।" मैंने कहा कि जुडी के दोषों के उन्मूलन के लिए तीन मास कम-से-कम समय है, अतः इतने कम समय में अधिक-से-अधिक यही हो सकता है कि हम देखते रहें कि उसकी स्थिति में कुछ परिवर्तन होता है या नहीं, तीन महीने बाद हम उसकी प्रगति के सम्बन्ध में विचार करेंगे और यह देखेंगे कि जुडी और उसके माता-पिता इस स्थिति में हो गये हैं या नहीं कि जुडी को उनके पास वापस भेज दिया जाय।

हम सब लोगों के सामने उनका आवेदन-पत्र लिखा गया। उसमें उन्होंने लिखा कि जुडी में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है। उसके खाने में कुछ सुधार अवश्य हुआ है, पर अब भी वह फूहड़पन के साथ बड़े-बड़े कौर निगलती है। अब भी सोते समय उसके पास बोतल रखी जाती है और उसे सुलाने के लिए बोतल को दूध या नारंगी के रस से दो तीन बार भर कर देना पड़ता है। जब कभी उसके सो जाने पर वे उसकी चारपाई दूसरे कमरे में ले जाने की कोशिश करते हैं तो वह भयभीत होकर जाग जाती है, और अन्त में उन्हें उसे अपने ही कमरे में सुलाना पड़ता है। रात में वह बिस्तर पर बराबर जगह बदलती रहती और निद्रा में भी जोर-जोर से चिल्लाया करती है और कभी भयानक स्वप्न देखकर जाग उठती है।

कभी-कभी वह कुछ शब्द जोड़ लेती है और उसकी बात भी कुछ समझ में आने लायक होती है। जब वह जरा भी उत्तेजित होती है तो इतनी जल्दी बोलती है कि उसकी बात जरा भी समझ में नहीं आती और साथ ही वह ऐसे मौके पर काफी हकलाने भी लगती है।

पाखाना करने के बाद ट्बायलेट कागज से अंगों की सफाई करने का वह पहले से अधिक विरोध करती है। यद्यपि अब दिन में वह कभी शायद ही अपने वस्त्रों में पेशाब

करती है। जब कागज से उसके अंगों की सफाई की जाती है, उस समय वह कुछ नहीं बोलती और चुपचाप पाखाने में बैठी रहती है, किन्तु जब वह उठकर पैन्ट पहन लेती है तो वह पैन्ट में ही पाखाना कर देती है। वह अपनी तिपहिया साइकिल को बहुत प्यार करती है, किन्तु उसे सड़क पर बहुत ही असावधानी और खतरों के प्रति लापरवाह होकर चलाती है। खेल की वस्तुओं के प्रति उन्हें तरतीब से सजाने के अतिरिक्त उसे कोई रुचि नहीं है। वह अपने हाथ को प्रायः अपने मुँह में डालकर चूसती रहती है अथवा पेशाब के स्थान में लगाये रहती है।

एकाएक जुडी के पिता की आँखों में आँसू आ गये। उन्होंने कहा कि वह नहीं जानता, जुडी के घर से चले जाने के दुख को वह किस प्रकार सहन कर सकेगा। फिर उन्होंने कुछ विचार करते हुए कहा कि वह यह सोच नहीं पा रहा है, जो स्थिति इस समय है, वैसी ही यदि आगे भी रही तो क्या दशा होगी ? इसके बाद उन्होंने पूछा कि उन का हमारे अभिकरण के साथ आर्थिक अनुबन्ध का क्या स्वरूप होगा। इस सम्बन्ध में इसके पहले हम लोगों में बहुत मामूली बात-चीत हुई थी। उन्होंने कहा कि जुडी के भोजन-वस्त्र-आवास आदि का पूरा व्यय दे देने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी। और वे अपनी आर्थिक स्थिति को उसके अनुरूप बना रहे हैं। कार्यकर्त्री कुमारी ली, जो जुडी का मामला अपने हाथ में लेने वाली थीं, श्रीमती मास्टर्स और उनके पति से मिलीं और उनसे यह तय किया कि वह किस दिन जुडी से मिलने उनके घर जायँगी।

कुमारी ली जब उनके यहाँ गयीं और कार से उनके दरवाजे पर उतर ही रही थीं कि भीतर से जुडी के चिल्लाने की आवाज सुनाई पड़ी। (यद्यपि बाहर पानी बरस रहा था फिर भी जुडी बाहर जाने के लिए कोट पहनने की कोशिश कर रही थी और अपने पिता के मना करने पर उनसे झगड़ रही थी) जब कुमारी ली भीतर गयीं और बातचीत शुरू हुई तो जुडी के माता-पिता ने जुडी पर बहुत दबाव डाला कि वह कुमारी ली से बातें करे, पर वे जितना ही जोर देते थे, वह कुमारी ली की ओर से उतनी ही विमुख होती जाती थी। पहले तो वह अपने माँ-बाप के पास खड़ी रही, पर अन्त में उसे लोभ देकर कुमारी ली ने अपने पर्स के साथ खेलने के लिए मना लिया और वह उससे एक हाथ की दूरी तक चली गयीं। किन्तु जब कुमारी ली ने उसे यह दावत दी कि वह अपने पिता के साथ उनके कार्यालय में आकर रोज खेला करे तो वह यह सुनकर उससे दूर हटकर अपने पिता के पास चली गयी।

इसी तरह दूसरी मुलाकात के लिए जब कुमारी ली उसके घर गयीं तो जुडी उसके साथ अपनी तीन पहिये वाली साइकिल लेकर सवारी करने के लिए बाहर चली आयी और उसको अपना आँगन दिखलाया। जब उसकी माँ ने यह कहा कि वह कुमारी ली के

साथ मोटर कार में बैठकर घूमने जाय तो यह सुनकर उस पर आतंक छा गया और इतना रोने लगी कि विवश होकर कुमारी ली को वापस चला आना पड़ा। तीसरी बार जब ली उसके घर गयीं तो जुडी उनकी कार में बैठी और उनकी कुंजी से खेलने लगी। जब कुमारी ली ने जुडी से यह प्रस्ताव किया वह उसके साथ गाड़ी में घूमने चले, वह जल्दी उसे वापस पहुँचा देंगी, तो जुडी ने तुरन्त स्वीकारात्मक रूप में सिर हिला दिया। जब तक कुमारी ली धीरे-धीरे गाड़ी चलाती हुई उसे कई मुहल्लों (ब्लाकों) की सैर कराती रहीं, वह चुपचाप बैठी रही। घूम कर लौटने पर उसने अपनी माँ का जी खोलकर अभिवादन किया, उसे प्यार से मुक्के मारने लगी, और उससे लिपट कर उसके सिर से अपना सिर लड़ाने लगी।

अगली बार जब कुमारी ली उसके घर गयीं तो जुडी को, खिलौनों से खेलने की बात कह कर, अपने साथ कार्यालय में ले आयीं। जुडी के लिए खेलने का यही अर्थ था कि वह सभी खिलौनों को आलमारी से निकाल कर रख लेती और फिर उन्हें तरतीब से आलमारी में रख देती थी। तीसरी बार जब वह कार्यालय के खेल के मैदान में खेलने गयी तो उसने कुमारी ली की परीक्षा लेने के लिए यह धमकी दी कि वह अकेले सड़क पर चली जायगी। जब उससे कहा गया कि वह जा सकती है, पर सड़क की पटरी के आगे न जाय तो उसने ऐसा ही किया, पर वह बार-बार सड़क की पटरी के पार जाने के लिए झुकती और अपना पैर पटरी के सड़क वाले सिरे तक ले जाती थी। इस बार कुमारी ली ने जुडी के माँ-बाप को बताया कि अगली बार वह जुडी को एक डाक्टर के पास ले जायँगी।

डाक्टर के दवाखाने में जुडी बराबर कुमारी ली की गोद में, उसे एक सुरक्षित स्थान समझकर उसी तरह बैठकर बाहरी दुनिया का निरीक्षण करती रही, जैसा वह अपनी माँ की गोद में बैठकर करती थी। जब तक उसका परीक्षण होता रहा, वह केवल एक बार रोयी, किन्तु फिर मान गयी। उसका शारीरिक स्वास्थ्य आवश्यक स्तर से नीचे था, उसकी लम्बाई औसत और वज़न सामान्य था। उसका स्नायविक परीक्षण भी खूब अच्छी तरह किया गया और उससे यह पता चला कि उसमें असामान्य या रोग का कोई लक्षण नहीं था।

इसके बाद कुमारी ली और जुडी के माता-पिता ने जुडी से उसके अन्यत्र भेजे जाने के सम्बन्ध में कभी-कभी बातें करते रहते थे। बड़ी सावधानी से उसके साथ इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया गया कि वह अपनी चीजों, जैसे—अपना बिस्तर, खिलौने, कपड़े आदि—में से क्या-क्या अपने साथ ले जायगी। अन्त में वह श्री फ्रैंक और श्रीमती फ्रैंक के साथ रहने के सम्बन्ध में भी बातचीत करने लगी।

श्री फ्रैंक और उनकी पत्नी की अवस्था ५० वर्ष के आसपास थी और उनके घर में कोई बच्चा नहीं था। अभी हाल में हमारे यहाँ से एक अत्यन्त अशान्त बालक उनके यहाँ रहने के लिए भेजा गया था और उसे सफलतापूर्वक रखने का उन्हें अनुभव प्राप्त था। उस बालक को फ्रैंक के पास रखने के साथ ही उसकी चिकित्सा की भी भरपूर व्यवस्था की गयी थी। उन्होंने जुडी के सम्बन्ध में हमारे साथ पर्याप्त विचार-विमर्श करने के बाद उसकी देख-भाल और पालन करने की बात स्वीकार कर ली।

जब श्रीमती मास्टर्स और श्री मास्टर्स जुडी के व्यवस्थापन के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए कार्यालय में आये, वे एक दूसरे के बहुत निकट थे। यद्यपि उनकी यह जानने में विशेष दिलचस्पी थी कि जुडी के लिए वह पालन-गृह कैसा रहेगा और उसे ही विशेष रूप से क्यों चुना गया है, फिर भी वे बहुत देर तक यह समझाते रहे कि इस समय यह कदम उठाना क्यों बहुत आवश्यक था। इस पर मैंने उनसे पूछा कि क्या सचमुच वे यह महसूस करते हैं कि जुडी को उनके पास से हटाना अच्छा होगा? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि सचमुच अभी तक उनके साथ जुडी के व्यवहार में कोई सुधार नहीं हुआ है और उन्हें इस सम्बन्ध में अपना मत स्थिर करने के लिए कुछ अवकाश मिलना चाहिए। जब बात-चीत समाप्त हो गयी, आर्थिक व्यवस्था की बातें तय हो गयीं, अनुबन्ध-पत्र पर हस्ताक्षर हो गये, और दूसरे दिन सबेरे जुडी को फ्रैंक के घर ले जाने की व्यवस्था के सम्बन्ध में ब्यौरे की बातें कर ली गयीं तो उन्हें ऐसा लग रहा था, जैसे उन्होंने आज एक बहुत अच्छा काम किया है।

दूसरे दिन सबेरे जब कुमारी ली श्री मास्टर्स के घर गयीं तो वहाँ जुडी का सब सामान बँध कर तैयार था। जुडी नये वस्त्रों में चुस्त और गर्वीली दिखाई पड़ रही थी, पर जब वह अपने सामानों को कार में ले जाने में सहायता कर रही थी और उसमें बैठ रही थी तो कुछ भयभीत-सी लग रही थी। उसने चलते समय माता-पिता को इस तरह यंत्रवत् अभिवादन किया कि उन दोनों की आँखों में आँसू आते-आते रह गये और वे उसके अभि-वादन का उत्तर देकर तेजी से घर के भीतर चले गये।

पालन-गृह जाते समय रास्ते में वह ट्रकों, ट्रेनों और अन्य दृश्यों की ओर इंगित करती रही, जिन्हें वह कार से आते-जाते समय पहले भी देख चुकी थी। किन्तु जब गाड़ी पालन-गृह के सामने खड़ी हुई और पालिका माँ गाड़ी के सामने आकर खड़ी हुई तो जुडी ने उसमें से उतरने की कोई उत्सुकता नहीं दिखायी और जब कुमारी ली ने गाड़ी से नीचे उतर कर उसका दरवाजा खोला और उसे उतरने में मदद देने की बात कही तभी वह नीचे उतरी। वह कुमारी ली का हाथ पकड़ कर उनसे सटी हुई, घर के भीतर घुसी। जब श्रीमती फ्रैंक ने उसका अभिवादन किया तो उसने उसका कोई उत्तर नहीं दिया, पर उसके मुँह

पर क्रोध का भाव दिखाई पड़ा और वह कुमारी ली के और पास सट गयी। जबतक कार में से सामान उतारा जाता रहा, वह एक उत्सुक दर्शक की तरह चुपचाप खड़ी होकर देखती रही, पर अपनी गुड़ियों को वह स्वयं उठाकर घर के भीतर ले गयी। जब उसकी पालिका माँ और कुमारी ली उसका विस्तर बिछा रहे थे तो वह बड़ी दिलचस्पी से खड़ी देखती रही। जब कुमारी ली के वहाँ से विदा होने का समय आया तो जुडी भयभीत दिखाई पड़ रही थी और उसकी आँखों में आँसू आ गये थे, किन्तु जब वह अपनी पालिका माँ के साथ बाहरी दरवाजे पर कुमारी ली को बिदा करते समय अभिवादन कर रही थी तो श्रीमती फ्रैंक ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और जुडी ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की।

किसी बच्चे के व्यवस्थापन का निर्णय करना बहुत ही गम्भीर कार्य होता है। जुडी-जैसी लड़की के सम्बन्ध में ऐसा निर्णय करना तो और भी कठिन कार्य था। क्योंकि उसके भीतर आधारभूत सुरक्षा की भावना नहीं थी, अन्य लोगों का साथ उसका कोई लगातार बना रहने वाला सम्पर्क नहीं था और उसका जीवन माता-पिता के बीच विभक्त था। माता-पिता के साथ उसका व्यवहार तो यों ही कठिनाइयों से भरा हुआ था, क्योंकि वह व्यवहार अधिकांश में निषेधात्मक ही था, उसके जीवन में कोई नया परिवर्तन उपस्थित करने से उसके व्यवहार में और भी असंगति और कठिनाई उत्पन्न हो जाने का भय था। दूसरी ओर, यदि वह अपने माता-पिता के साथ रहती तो वहाँ का वातावरण सन्देहों, प्रश्नों, चिन्ताओं, परेशानियों और प्रतिस्पर्द्धा से इतना भरा हुआ था कि उसके विकास का मार्ग ही अवरुद्ध-सा हो गया था।

जुडी के पालक माता-पिता कठिनाइयों का सामना करने के लिए तैयार थे। पर वहाँ पहले ही दिन जुडी के व्यवहार की अधिकांश ऐसी बातें गायब हो गयीं, जो उसके माता-पिता के लिए परेशानी का कारण बनी रहती थीं। एक महीने के बाद कुमारी ली ने अपने कार्य का सारांश इस प्रकार लिखा ––

"यद्यपि जुडी अनेक समस्याओं का पुंज रही है, परन्तु जब से वह 'फ्रैंक-दम्पति' के साथ रहने लगी है, उसने नयी परिस्थिति के साथ नाटकीय ढंग से अपना सामंजस्य स्थापित कर लिया है। वह खाना अच्छे ढंग से खाती है और रात में खूब सोती भी है। जब उसे विस्तर पर लेटा दिया जाता है और कोई कहानी सुना दी जाती है और उसके साथ सोने के पहले वाला कोई खेल खेला जाता है तो उसके बाद वह अपने आप सो जाती है और बिना जागे हुए रात भर चुपचाप सोती है। रात में वह अब भी तौलिया लपेट कर सोती है, पर दिन में पाखाने से सम्बन्धित अपने सब काम स्वयं कर लेती है। वह यह पसन्द करती है कि उसकी पालिका माँ उसे पाखाने में ले जाकर बैठाये और वहाँ तब तक खड़ी रहे, जब तक वह पूर्णतः निवृत्त न हो ले। वह श्रीमती फ्रैंक की अधिक निकटता या साथ

के लिए अकुलाहट नहीं प्रकट करती है, किन्तु जब श्री फैंक शाम को घर के बाहर जाते हैं तो वह नित्य उनके वापस आने की प्रतीक्षा करती रहती है। वह उनके साथ लगातार धमाचौकड़ी करना पसन्द करती है। यद्यपि उनके आने पर एक सप्ताह तक सोते समय उसे मुंह में लगाये रहने के लिए शीशी दी जाती थी, पर वह उसे लेने से इन्कार कर देती थी, इसीलिए श्रीमती फ्रैंक ने उस शीशी को उठाकर अलग रख दिया। अब भी उसके खेलने का तरीका यही है कि वह खिलौनों को एक के ऊपर एक स्तूपाकार रखती है। किन्तु अब कभी-कभी इस अर्थहीन यांत्रिक ढंग के खेल की जगह वह खिलौनों से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करके सही ढंग से खेलने का प्रयास भी करती है। अपने माँ-बाप की तरह वह अपने पालक माता-पिता से भी अपनी बातें मनवा लेती है, पर अब वह इन कामों के लिए संकेतों का नहीं, अधिकतर भाषा का सहारा लेती है। 'फ्रैंक-दम्पति' को जुडी एक प्रसन्नता देने वाली, विनोदप्रिय और सन्तोषजनक व्यवहार करने-वाली लड़की मालूम पड़ती है। पड़ोसियों और बाहरी बच्चों से वह अब भी संकुचित होकर दूर-दूर ही रहती है, पर उनके प्रति खुलकर अमैत्रीभाव का प्रदर्शन नहीं करती। पहले उसके पालक माता-पिता ने उसे बाहर सड़क पर जाने से कड़ाई के साथ मना कर दिया था, पर दस दिन बाद उन्हें यह अनुभव हुआ कि उसे अकेले बाहर जाने देने में कोई हर्ज नहीं है, क्योंकि अब उसकी शक्ति पर विश्वास किया जा सकता है। उसके पाखाने का समय अब नियमित हो गया है, यानी वह हर तीसरे दिन या तीन दिन में एक दिन पाखाने जाया करती है।"

जुडी के अपने नये पालन-गृह में जाने के चार मास बाद तक अर्थात् सितम्बर महीने तक उसके जीवन की यही गतिविधि थी। यह एक जादू-जैसी विलक्षण और जुडी के माता-पिता को घबरा देने वाली बात थी। उसके माता-पिता के लिए शायद यह अधिक सह्य होता यदि जुडी में पहले की परेशानी पैदा करने वाली कुछ बातें अब भी बनी रहतीं। पर उसकी वे सभी आदतें बदल गयी थीं, जिससे उनके मन में अपने प्रति ही घोर सन्देह उत्पन्न हो गया और वे एक दूसरे पर दोषारोपण करने लगे। जब श्रीमती मास्टर्स ने जुडी के जाने के दूसरे दिन फोन करके उसके बारे में पूछताछ की और उसे बताया गया कि जुडी ने अब शीशी का इस्तेमाल बन्द कर दिया है और रात में खूब मज़े में सोती है तो यह एक ऐसी बात थी, जिसे सहन करना उनके लिए कठिन था। उन्होंने फोन पर कमजोर स्वर में कहा, "ऐसा मालूम होता है कि जुडी की अब तक की सभी परेशानियों के मूल कारण हम दोनों प्राणी ही रहे हैं।" उन लोगों से यह निश्चित हुआ था कि वे नियमित रूप से सप्ताह के अन्त में पालन-गृह में जाकर जुडी से मुलाकात करेंगे। पर पहले सप्ताह की मुलाकात के दिन के पहले ही वे दोनों एक दिन जुडी के पिछले हफ्ते की जीवन-विधि

के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए कार्यालय में आ पहुँचे। जुडी के माँ ने कहा कि वह जुडी से मिलने नहीं जाना चाहतीं, क्योंकि शायद अभी इतनी जल्दी जाने से जुडी विचलित हो उठे। फिर भी अगले चार महीनों तक वे नियमित रूप से उससे मिलने जाते रहे और यह उनके लिए असह्य और विचलित कर देनेवाली बात थी कि वे जब भी जाते थे, जुडी उनका हार्दिक स्वागत करती थी और जब वहाँ से चलने लगते थे तो उतनी ही प्रसन्नता से उन्हें विदा भी देती थी।

जुडी के पालक माता-पिता उसके लिए जो कुछ करते थे, जुडी के माता-पिता को कम-से-कम ऊपर-ऊपर से वह सब कुछ स्वीकार था, मानो वे यह दिखाना चाहते थे कि इसी तरह वे भी कुछ सीख सकेंगे और एक या दो मास बाद ही यह सम्भव हो सका कि उनमें कार्यालय के साक्षात्कारों के समय व्यावहारिकता के आधार पर रचनात्मक प्रश्न करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। श्री मास्टर्स हमारे कार्यालय में केवल दो या तीन बार अकेले मुलाकात करने आये, अन्यथा श्रीमती मास्टर्स ही अधिकतर आतीं या फोन पर बातें करती थीं और मिलने का समय निश्चित कराती थीं। मुलाकातों में वह अपने वैवाहिक और पारिवारिक जीवन की समस्याओं की चर्चा करती थीं, जैसे यह कि उनका परिवार जुडी के लिए उपयुक्त था या नहीं, और भी श्री मास्टर्स के साथ उसकी अधिक निभ सकती थी अथवा नहीं ? जुडी के जाने के दो मास बाद ही श्री मास्टर्स की पदोन्नति हो गयी और उन्हें पूर्णकालिक और अच्छे वेतन वाला काम मिल गया, जिससे वह पहली बार, अपने परिवार के सबसे अधिक कमाने वाले व्यक्ति बन सके।

उन दोनों का यह कहना था कि यद्यपि जुडी के घर रहने से उनको परेशानियाँ बहुत थीं, पर उसके चले जाने पर, उन कामों का अभाव, जो वे उसके लिए किया करते थे, अब उन्हें बेतरह खलता है। उसके रहने पर वे हमेशा कामों में व्यस्त रहते थे, पर उसके जाने के बाद अब उनके पास कोई काम ही नहीं रह गया है, जिसके कारण दोनों को इस सम्बन्ध में सन्देह हो गया है कि उनके वैवाहिक जीवन को सौहार्द्रपूर्ण और सहज बनाने-वाली कोई ऐसी वस्तु है भी या नहीं जो दोनों को समान रूप से प्रिय हो। श्रीमती मास्टर्स ने बताया कि "ऐसे अवसर भी आते हैं जब मैं श्री मास्टर्स से बिलकुल आजिज़ हो उठती हूँ।" जुडी के पालन-गृह में जाने के दो या तीन सप्ताह बाद ही मास्टर्स जुडी को वापस लौटा लाने की बात करने लगे थे। यदि श्रीमती मास्टर्स ने बहुत दृढ़तापूर्वक यह न कह दिया होता कि अभी वह जुडी को सँभालने की स्थिति में नहीं हैं, तो वह जुडी को वापस लाने की बात पर अवश्य अड़ गये होते। तीन मास बाद उन्होंने फोन पर बताया कि वे दोनों कार्यालय में आकर मुलाकात करना चाहते हैं। इसके लिए समय निश्चित कर दिया गया। जब वे मिलने आये तो हम लोगों ने करीब डेढ़ घंटे तक पालन-गृह में जुडी

की स्थिति और जुडी के माता-पिता के घर की स्थिति के सम्बन्ध में तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया और अन्त में यह तय पाया कि जुडी ने तीन महीने में जो उपलब्धि की है, उसे स्थायी बनाने की दृष्टि से अभी उसे पालन-गृह से वापस बुलाना ठीक न होगा। वे दोनों भी उसे अभी वापस बुलाने के लिए तैयार नहीं थे। हम लोगों ने निश्चय किया कि हर महीने में एक बार इस विषय पर विचार करने के लिए हम लोग मिला करें।

दूसरे सप्ताह उन्होंने सरकारी बीमा-कर्ज के लिए आवेदन पत्र दिया। उस धन से वे ऐसा मकान लेना चाहते थे, जिसमें अलग-अलग, पर एक दूसरे से सम्बद्ध दो सोने के कमरे, परदेवाला क्रीडांगण और लम्बी तथा झाड़ी से घिरी खाली जमीन हो।

करीब एक महीने बाद जुडी के पालक माता को अवकाश-यात्रा पर जाने का एक अवसर हाथ आया था, अतः वे एक हफ्ते के लिए बाहर जाना चाहते थे। श्री मास्टर्स और उनकी पत्नी की यह राय हुई कि इस अवधि में जुडी को अपने घर ले जाकर देखा जाय कि अब वह कैसे रहती है। श्री मास्टर्स की छुट्टियाँ बहुत बाकी थीं, अतः उन्होने एक सप्ताह की छुट्टी ले ली, ताकि वह दिन में जुडी की देख-भाल कर सकें। जुडी ने इस समाचार का उत्फुल्ल मुस्कुराहट के साथ स्वागत किया।

जुडी के अपने घर वापस आने के दो दिन बाद उसकी माँ ने फोन पर बताया कि जिस दिन जुडी घर आयी, उसी रात से उसे पेचिश हो गयी है, साथ ही कै भी हो रही है और ज्वर भी है। हमारे डाक्टर ने उसे देखा , दवा लिख दी और पथ्य बता दिया। तीन दिन तक दवा करने के बाद श्री मास्टर्स ने फोन करके बताया कि जुड़ी की पेचिश अब भी जारी है और उन्हें उसकी बहुत चिन्ता हो गयी है। उन्होंने यह भी बताया कि जुडी चिड़चिड़ी और जिद्दी हो गयी है, बहुत अधिक रोती है, सोती भी बहुत कम है और चाहती है कि कोई बराबर उसके पास रहे।

कुमारी ली उन्हें लेकर डाक्टर के पास गयीं। उस समय जुडी बहुत दिनों की बीमार लड़की मालूम पड़ रही थी। श्री मास्टर्स उसे सहारे से पकड़े हुए थे, उसके बालों को थपथपा रहे थे और उसे आसपास की चीजें दिखा कर बहकाने का प्रयत्न कर रहे थे। वह कुछ भयभीत दिखाई पड़ रहे थे। वह कार्यकर्त्री को और इस तरह अपने को भी बार-बार यह कहकर आश्वस्त करने का प्रयत्न कर रहे थे कि उन्होंने तो अपनी ओर से जुडी की देख-भाल में कोई कोर-कसर नहीं की है। जुडी के रोग का निदान निश्चित नहीं हो सका। दो दिन बाद जुडी के पालक माता-पिता वापस आ गये। जब श्रीमती मास्टर्स और उनके पति जुडी को उसके पालन-गृह में वापस भेजने की बात कर रहे थे, उस समय वे जितने निराश और उदास दिखाई पड़ते थे, उतने वे कुछ महीने पहले भी नहीं थे।

उन्होंने तो सोच रखा था कि इस बार घर आने पर जुडी ठीक रहेगी और अब उसको उसके पालक माता-पिता के घर नहीं भेजना पड़ेगा।

जुडी जब अपने पालक माता-पिता के घर गयी तो वहाँ जाकर उसकी पेचिश ठीक हो गयी और तीन दिन के भीतर ही वह पहले-जैसा सामान्य भोजन करने लगी। लेकिन अब कब्ज उसके लिए एक नयी समस्या बन गया और दो सप्ताह तक उसे एनिमा और हलका जुलाब दिया जाता रहा।

दो मास बाद श्रीमास्टर्स फिर जुडी को वापस बुलाने के लिए जोर देन लगे। उधर श्रीमती मास्टर्स में और भी अधिक स्नायविक दुर्बलता आ गयी थी। जसा कभी नहीं होता था, अब उनके मासिक धर्म में भी गड़बड़ी उत्पन्न हो गयी थी, वह फ्ल्यू से पीड़ित थीं, काम करते समय बेहोश हो जाती थीं। अन्त में उन्हें अस्पताल ले जाया गया, जहाँ उनका ऑपरेशन किया गया। यह आपरेशन बहुत दिनों से टलता आ रहा था। उनकी बीमारी के समय श्री मास्टर्स अपने काम के बाद का सारा समय अस्पताल में अपनी पत्नी की सेवा में लगाते थे और उनके विशेष पसन्द का खाना बनाकर अस्पताल में उनके पास पहुँचाते थे।

कई सप्ताह बाद श्रीमती मास्टर्स ने अकेले मिलने के लिए समय निश्चित कराया। इस बार जब वह मिलने आयीं तो बताया कि वह अपने पति से सम्बन्ध-विच्छेद करने की बात सोच रही हैं। इसके अतिरिक्त कि जुडी को अपने घर में रखना ठीक नहीं होगा, वह सम्बन्ध-विच्छेद का अन्य कोई स्पष्ट कारण नहीं बता सकीं। उन्होंने यह आशंका व्यक्त की कि वह और उनके पति शायद कभी भी सौहार्द्रपूर्ण ढंग से एक साथ नहीं रह सकते और वह हमेशा अकेलेपन का अनुभव करती रहती हैं, उनके पति बराबर जुडी को वापस लाने की बात किया करते हैं और वह सोचती हैं कि वह जुडी के बारे में जितना सोचते हैं, उतना स्वयं उनके बारे में नहीं सोचते। यद्यपि उनके पति ने उनके लिए बहुत कुछ किया है, पर उन्हें अपने काम का इतना अभिमान है और वह उनके बारे में इतनी बातें करते हैं कि वह त्रस्त हो उठती हैं और उसके बाद अपने पर ही उन्हें लज्जा मालूम पड़ने लगती है। फिर हम लोगों ने उन दिनों के बारे में बातें कीं जब कि वह सोचा करती थीं कि वस्तुतः उनके दो बच्चे हैं, एक जुडी और दूसरा उनका पति। मैंने आश्चर्य प्रकट करते हुए उनसे पूछा कि अब वह अपने पति, बच्ची, यहाँ तक कि अपनी नौकरी की भी उतनी परवाह क्यों नहीं करती हैं? इस पर उन्होंने कहा कि पिछले कुछ वर्षों में उनके पति ने उनके लिए कितने ही भले और विचारपूर्ण कार्य किये हैं। वह स्वयं बहुत अच्छा खाना नहीं बना पातीं, घर-गृहस्थी के कामों से उन्हे घृणा है, पर उनके पति बहुत ही अच्छा खाना बनाते हैं। इस साक्षात्कार में भावनाओं के वास्तविक प्रवाह, व्यापक असन्तोष, अपने

प्रति सन्देहों और नयी सूझ के प्रकाश की अभिव्यक्ति के मौके आये। वह जो कुछ कह रही थीं, मानों वह स्वयं उसे सुन रही थीं। कुल मिलाकर उनका वक्तव्य अपने सम्बन्ध में एक घोषणा थी, जिसमें यह स्वीकार किया गया था कि यदि वह चाहें तो अपने जीवन को नये ढर्रे पर ले चलने के लिए स्वतंत्र हैं, पर उनके जीवन में जो अपूर्णताएँ हैं, उनकी क्षतिपूर्ति भी हो सकती है। उन्होंने अगले सप्ताह फिर मिलने के लिए समय माँगा।

इस बार वह अपनी नौकरी छोड़ने का विचार लेकर आयी थीं। दूसरी ओर यह विचार भी महत्त्वपूर्ण था कि उनकी नौकरी से परिवार को अतिरिक्त आय होती थी, जो अच्छा ही था। उनके पति इस बात पर जोर दे रहे थे कि अब वह इस योग्य हो गये थे कि वह जुडी को वापस बुलाकर और अपनी पत्नी की नौकरी छुड़ाकर दोनों का भार वहन कर सकें, बशर्ते कि वे घर का प्रबन्ध सावधानी से कर सकें। उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया कि पिछले सप्ताह वह न जाने क्या-क्या बातें कह गयी थीं। इस क्षण तो वह ऐसी बातें कर रही थीं मानों अभी से एक अच्छी गृहिणी बन चुकी हैं। उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि नौकरी छोड़ देने से उन्हें दिन में जुडी के साथ अकेले रहने का मौका मिल सकेगा और तब वह उसे ठीक ढंग से सँभाल सकेंगी, और सम्भव है, तब वह उससे अधिक निकटता का सम्बन्ध भी स्थापित कर लेंगी। फिर कुछ देर तक चुप रह कर विचार करने के बाद उन्होंने कहा "मेरा अनुमान है कि शायद सचमुच मैं जुडी से ईर्ष्या करती हूँ।" उन्होंने कहा कि आखिर उन्हें जुडी की अपनी स्वेच्छा से देख-भाल करने का अवसर ही कब मिला था? उन्होंने बड़े आग्रह और विश्वास के साथ कहा कि उनका ख्याल है कि वह एक अच्छी माता के कर्तव्यों और कार्यों को जल्दी ही सीख लेंगी। फिर कुछ वक्र हँसी हँसकर उन्होंने कहा, "शायद ऐसा हो जाय।" जाते-जाते वह यह विचार फिर व्यक्त करती गयीं कि वह बड़े दिन की छुट्टियों के बाद अपनी नौकरी से त्याग-पत्र दे देंगी। इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि छः सप्ताह के बाद वे जुडी को वापस बुला लेना चाहेंगे।

इसके कुछ दिनों बाद वे दोनों एक साथ कार्यालय में बड़े दिन की छुट्टी के लिए योजना बनाने का बहाना लेकर आये। श्रीमती मास्टर्स ने बताया कि वह कुछ दिनों की छुट्टी लेने जा रही हैं, अतः उन दोनों का विचार है कि जुडी की परीक्षा के लिए ही सही, उसे घर लाया जाय और वह उसके बाद ही स्तीफा देने का निश्चय करेंगी।

जुडी का अपने घर पर रहना उसके तथा उसके परिवार, दोनों के लिए न तो बहुत अच्छा ही था, न बहुत बुरा ही। वह अब भी कभी-कभी चिड़चिड़ी हो जाती थी और हर बात का विरोध करने लगती थी, पर उन दोनों का कहना था कि जितनी उन्हें आशंका थी, उसकी तुलना में अब वह बहुत अच्छी तरह रहती थी। "जो भी हो, पर वह कम-से-

कम बीमार तो नहीं पड़ती" और उसके साथ कभी-कभी तो सचमुच बहुत ही सुख का अनुभव होता है।

दो सप्ताह बाद उन्होंने फिर मिलने के लिए समय माँगा। निश्चित समय पर वे मिलने आये। उन्होंने अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक यह बताया कि उन्होंने इस विषय पर आपस में खूब अच्छी तरह बातें कर ली हैं और अब वे उसी सम्बन्ध में मुझसे बातें करने आये हैं। वे जुडी को दिन में देख-भाल के लिए कहीं रखने की व्यवस्था करना चाहते हैं। उन्हें एक नयी कार खरीदनी है, क्यों कि उनकी पुरानी गाड़ी बिलकुल घिस गयी है। अतः जब तक नयी गाड़ी का मूल्य नहीं चुका दिया जाता, श्रीमती मास्टर्स को नौकरी करनी पड़ेगी। श्रीमती मास्टर्स मेरी और बड़े ध्यान से देख रही थीं, फिर उन्होंने कुछ धूर्ततापूर्ण, किन्तु बहुत ही मनमोहक हँसी हँसते हुए कहा, "मैं समझती हूँ कि आप को तो यह मालूम ही होगा कि हमें गाड़ी खरीदने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी, किन्तु मैं जानती हूँ कि मैं एक अच्छी सचिव हूँ। अब यदि जुडी को घर में रखा जाता है तो मैं एक सफल माँ बनने के प्रयत्न में, दिनभर घर में अकेली रह कर, रुग्ण हो जाऊँगी और मेरे साथ रहने से जुडी भी रुग्ण हो जायगी। अतः मैं एक साधारण माँ बनने की अपेक्षा एक अच्छी सचिव बनना अधिक पसन्द करती हूँ।

उन्होंने यह तय किया कि दस दिन बाद शुक्रवार को जुडी को घर वापस लाना सबसे अधिक उपयुक्त होगा बशर्ते कि "हम उस समय भी यह सोचते रहें कि ऐसा करना बिलकुल ठीक है।" फिर वे शनिवार को एक साथ मिल कर छुट्टी मनायेंगे और उसके बाद जुडी को शिशु-शाला में भेजा जायगा। जब मैंने कहा कि आज तो वे इस सम्बन्ध में बिलकुल विश्वस्त मालूम पड़ते हैं कि यह एक बहुत अच्छी योजना है, तो श्रीमती मास्टर्स हँसीं और बोलीं, "भले ही आप यह कहें कि जुडी अभी पूरी तरह ठीक नहीं हो सकी है, फिर भी हम उसे वापस अवश्य ले जायेंगे।" अन्त में उन्होंने कहा कि वे गम्भीरतापूर्वक इस बात में विश्वास करते हैं कि जुडी घर वापस आने के योग्य हो गयी है और वे भी उसकी देख-भाल करने के लिए तैयार हैं।

श्रीमती मास्टर्स अपने साथ उन वस्तुओं की एक लम्बी सूची लायी थीं जिनका उनके घर में जुडी के आने के पहले होना आवश्यक है। उन्होंने जोर देकर कहा कि वह चाहती हैं कि जो-जो चीजें जुडी के पालन-गृह में थीं, उसके वापस आने पर वे सभी उसे अपने घर में भी मिलें। मैंने उनसे कहा कि सभी वस्तुएँ उस घर-जैसी कैसे हो सकती हैं? उन्होंने मेरी ओर क्षण भर के लिए आश्चर्य मिश्रित क्रोध से देखा और फिर सहज भाव से हँसती हुई बोलीं, "आप का अभिप्राय मैं समझती हूँ। मैं और श्रीमती फ्रैंक भी तो बिलकुल एक ही जैसी नहीं हैं?" मैंने स्वीकारात्मक रूप में सिर हिला कर कहा कि "श्री फ्रैंक

और उनकी पत्नी भी तो बिलकुल एक ही ढंग से जीवन नहीं बिताते ?" इसके उत्तर में वह कुछ सोचती हुई-सी बोलीं, "मैं समझती हूँ कि मैं किसी अन्य स्त्री का अनुकरण करने का प्रयत्न करके अच्छी माँ नहीं बन सकती।" श्री मास्टर्स ने कहा कि उनका ख्याल है कि श्री फ्रैंक और श्रीमती फ्रैंक के घर की वस्तुओं के सम्बन्ध में इस प्रकार की प्रश्नावली बनाकर वे वस्तुतः जुडी की देख-भाल की तैयारी करने की जगह ऐसी तैयारी करने जा रहे हैं, जिससे जुडी ही उनके जीवन का नियंत्रण करने लगेगी। मैंने उनका उत्तर देते हुए कहा, "मुझे अच्छी तरह मालूम है कि बच्चे के जीवन के सम्बन्ध में नियोजित कार्यक्रम और विधियों को जान लेने से बड़ा लाभ होता है। जुडी के पालन-गृह में नियोजित उसके जीवनक्रम को भी जान लेने से यह पता चल सकेगा कि उसमें किस प्रकार का परिवर्तन हुआ है, इस बात को जानने का यह उद्देश्य नहीं है कि वे अपने को ही उसके अनुरूप ढालें, बल्कि उन स्थितियाँ को पहचान सकें, जिनमें रहकर जुडी में परिवर्तन नहीं हो सकता, क्योंकि वे स्थितियाँ पालन-गृह की स्थितियों से भिन्न हैं।

उन्होंने यह सोचा था कि पालन-गृह से वापस आने पर जुडी को उसकी पुरानी पालिका माँ के पास भेज दिया जायगा, जो पहले दिन में उसकी देख-भाल करती थी। वह पालिका माँ जुडी को बहुत पसन्द करती थीं, और उनका ख्याल था कि जुडी भी उसे प्यार करती थी। किन्तु दूसरी ओर वहाँ एक कमी यह थी कि जुडी के खेलने के लिए वहाँ अधिक सामग्री नहीं थी और उस पालिका माँ के पास और दो बच्चे—एक छोटा और दूसरा पाँच वर्ष का—भी थे, जिससे वह जुडी को अधिक समय नहीं दे सकती थी। जुडी को अपनी उम्र के बच्चों के एक अच्छे दल के साथ खेलने की सुविधा मिलनी चाहिए। मैंने उन्हें यह राय दी कि वे पहले हमारी शिशु-शाला को देख लें और उसमें बच्चों के एक ऐसे ही दल की तलाश कर लें। वे इस सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद ही दोनों स्थानों में से किसी एक में जुडी को भेजने का निर्णय करें।

अगले सप्ताह श्रीमती मास्टर्स और उनके पति दिन में बच्चों की देख-भाल करने वाले शिशुकेन्द्र में आये और सबेरे का पूरा समय वहीं बिताया। उन्होंने अन्त में यह निर्णय किया कि जुडी को पहले यहीं भेज कर देख लिया जाय कि यह शिशुशाला उसके लिए उपयुक्त होगी या नहीं।

जुडी के पालक माता-पिता को यह खबर सुनकर कि जुडी अब चली जायगी, प्रसन्नता और दुख दोनों हुए। जैसा हर अच्छे पालक माता-पिता को होता है। उन्हें दुःख इस बात के लिए हुआ कि अब वह छोटी बच्ची, जो बहुत कुछ उनके जीवनका अंग बन चुकी थी, उनके पास से चली जायगी, साथ ही जुडी के लिए उन्होंने जो कुछ किया था, उसके लिए उनके मन में प्रसन्नतामिश्रित गर्व की भावना भी उत्पन्न हुई।

जब कुमारी ली ने जुडी से बताया कि अब वह अपने घर जायगी और वहाँ स्कूल में पढ़ने भी जाया करेगी तो वह खुशी से नाच उठी।

जब वह डाक्टर के पास जा रही थी तो फिर उसकी वही प्रसन्न और अदम्य मनः-स्थिति हो गयी, जो पहले की यात्राओं के समय होती थी। हमारे डाक्टर ने अपने प्रतिवेदन के अन्त में लिखा है, "दिलचस्प बात यह है कि इस लड़की में किसी भी भावनात्मक कठि-नाई या रोग के लक्षण नहीं हैं। वह चंचल और प्रसन्न मुद्रा में है तथा परीक्षण-सम्बन्धी प्रक्रियाओं को बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से तथा जिज्ञासा के साथ देख रही है, आदि।"

जिस दिन सबेरे जुडी को पालन-गृह से जाना था, वह पहले से ही कार्यकर्त्री कुमारी ली की प्रतीक्षा कर रही थी। उसकी आँखों में प्रकाश था और वह इतनी उत्तेजित थी कि अपने को सँभाल नहीं पा रही थी। जब उसका पालक पिता उसकी सन्दूकों को उठाकर कार में ले जा रहा था, तो वह उसकी मदद करने के लिए जिद करने लगी। विदा लेते समय वह पालिका माँ से लिपट गयी। उसने पालक पिता के दोनों गालों पर चुम्बन लिया और उससे कहा कि "मुझे गोद में लेकर गाड़ी तक पहुँचा दो।" जब गाड़ी चली तो उसने पीछे घूमकर अपने पालक माता-पिता की ओर नहीं देखा, बल्कि जमकर ठीक से बैठ गयी और कार्यकर्त्री की ओर देखकर हँसती हुई बोली,—"अब हम डैडी से मिलने चल रहे हैं।" एक क्षण बाद उसने फिर कहा कि क्या वहाँ ममी और डैडी दोनों होंगे? जिस समय वे कार्यालय में पहुँचे, श्रीमती मास्टर्स और श्री मास्टर्स भी ठीक उसी समय दूसरी ओर से आ रहे थे। जुडी ने उन्हें दूर से ही पहचान लिया और उत्तेजित होकर पुकारने लगी, "हेलो डैडी, हेलो डैडी।" जब वह पागल की तरह चिल्लाती हुई उनकी ओर दौड़कर जा रही थी, उसकी माँ ने आगे होने के कारण उसे पहले ही पकड़ कर अपने पास खींच लिया, किन्तु कुछ क्षण बाद ही जुडी ने अपनी माँ से अपने को छुड़ा लिया और अपने पिता के पास दौड़ गयी। जब कार्यालय से जाने का समय हुआ, श्री मास्टर्स ने उसे उठा लिया और अपने कन्धे पर बैठा कर गाड़ी तक ले गये। श्री मास्टर्स और जुडी की ओर देखती हुई मेरी आँखों से श्रीमती मास्टर्स की आँखें मिल गयीं, वह विषाद के साथ हँस पड़ीं और हँसते हुए ही अपने कन्धों को हिलाया और अपने पति के पीछे-पीछे चल पड़ीं।

दूसरे दिन सबेरे श्री मास्टर्स जुडी को हमारे शिशु-केन्द्र में पहुँचा गये। वह दोपहर के भोजन के समय के बाद तक वहीं रही। पहले तो वह करीब तीन मिनट तक रोयी, फिर शीघ्र ही चुप हो गयी और अपना दोस्त बनाने के लिए बच्चों की खोज करने लगी। पहले सप्ताह में उसे कई बार जोर से ठोकर लगी, पर उसको अधिक दर्द हुआ हो, ऐसा उसने प्रकट नहीं किया। केवल कुछ हकलाते हुए उनका बयान भर किया। पहले तो वह ऊँचाई पर चढ़ने से कुछ भयभीत होती थी, किन्तु प्रारम्भ के दो या तीन हफ्तों के बाद

वह निर्भय और सावधान होकर काफी ऊँचाई तक चढ़ जाती थी और कभी-कभी तो सबसे ऊँची एकान्त जगह चुनकर वहीं बैठना पसन्द करती थी। जितना खाना उसे दिया जाता था, वह सब खा जाती थी और कभी-कभी तो चौथी बार परोसवाने के लिए पहुँच जाती थी। महीने का अन्त होते-होते उसकी अधिक खाने की यह प्रवृत्ति कम हो गयी और वह स्वाभाविक मात्रा में भोजन करने लगी। सोने के समय उसे धीरे-धीरे नींद आती थी, पर एक बार सो जाने पर वह बड़ी देर तक बिना बीच में जगे सोती रहती थी। दूसरे महीने में अध्यापक ने जुड़ी के बारे में यह लक्ष्य किया कि वह अब भी पहले-जैसी फुर्तीली थी। जब उसे चोट लगती या जब कोई उसकी भावनाओं को चोट पहुँचाता तो वह खुल कर रोती भी थी। अकस्मात् कोई आवाज सुन कर या गति देखकर वह अस्वाभाविक रूप से चौंक उठती थी। वह शिशु-केन्द्र में होने वाले खेल-कूद के कार्यों को देखकर बहुत अधिक आनन्दित होती थी। उसमें पानी से खेलने का नया शौक पैदा हो गया था और उसके अध्यापक का ख्याल था कि वह बहते हुए पानी में अपना हाथ डालकर केवल मौज के लिए घंटों बैठी रह सकती थी। उसने दो अवसरों पर कपड़े में ही पेशाब कर दिया था, जिसके कारण वह बहुत घबरायी थी, पर समझाने और साहस दिलाने पर फिर आश्वस्त हो गयी थी।

जब भी उसके माँ-बाप शिशु-केन्द्र में आते थे तो वह बिलकुल छोटी बच्ची बनकर कूदने, किलकारी भरने और चिल्लाने लगती, और बड़ी जल्दी-जल्दी दरवाजे के बाहर दौड़ कर जाने लगती थी। और प्रायः माता-पिता के नियंत्रण के बिलकुल बाहर हो जाती थी। तीसरे महीने में उसने बुरी तरह हकलाना शुरू कर दिया और एक दिन उसके माता-पिता बहुत चिन्तित होकर मुलाकात करने के लिए आये। वे इस बात के लिए चिन्तित थे कि जुडी को अब घर में सँभालना मुश्किल होता जा रहा था। यद्यपि इस बार की स्थिति पहले-जैसी कष्टकारक नहीं थी फिर भी काफी गम्भीर थी और उन्हें भय था कि कहीं बिलकुल पहले-जैसी परेशानी फिर न शुरू हो जाय।

चौथे महीने में उन्होंने सूचना दी कि जुडी अब घर पर पहले से अच्छे ढंग से रहती है, उसका हकलाना बन्द हो गया है और ऐसा लग रहा है कि प्रत्यक्षतः उसकी चतुरता और आकर्षण के कारण वे दोनों पति-पत्नी अब एक दूसरे के इतने निकट आ गये हैं, जितने इसके पहले वे अपने गर्व के कारण कभी नहीं थे। यद्यपि वे अब भी 'कठोर' माता-पिता थे और श्रीमती मास्टर्स विशेष रूप से ऐसी थीं, किन्तु अब जब वह अधिक चिन्तित और क्षुब्ध रहती हैं, तब भी वे दोनों साथ-साथ हँस सकते हैं।

इस समय श्री मास्टर्स-परिवार में ऐसा सन्तुलन आ गया है कि वे दोनों समुचित सन्तोषपूर्ण जीवन बिता रहे हैं, जिसके कारण जुडी भी मस्त और स्वस्थ जीवन बिता रही

है और इस बीच वह एक बार भी बीमार नहीं हुई है। हमारा विश्वास है कि इस उत्तरोत्तर सफलता और सुरक्षा की भावना के कारण जुडी और उसके माता-पिता में अनवरत स्वयं ही परस्पर एक दूसरे के प्रति ऐसी मित्रता एवं आत्मविश्वास का उदय और विकास हो रहा है, जो भविष्य में आनेवाली आपदाओं से उन्हें सामञ्जस्य करने के योग्य बना सकेगा।

अब वे नयी समस्याओं के उत्पन्न होने पर सहायता माँगने और उसे प्राप्त करने के लिए पहले से अधिक सरलता से तैयार रहेंगे, ताकि वास्तविक संकट के उपस्थित होने की नौबत ही न आने पाये।

परिवार और व्यक्ति के रूप में श्री मास्टर्स के परिवार और उनके सदस्यों की अन्य परिवारों की तुलना में अधिक आलोचना की जा सकती है, किन्तु इस परिवार को जो सफलता प्राप्त हुई, उसके फलस्वरूप एक छोटी बच्ची को उसके माता-पिता मिल गये हैं और उसके माता-पिता भी उस बच्ची को सही ढंग से समझने और उसे अधिक प्यार दे सकने के योग्य हो गये हैं।

अध्याय ९

मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य

मानसिक रोगों का विस्तार-क्षेत्र

यद्यपि यूरोपीय-अमरीकी जातियों के आदिम लोग तथा उनके इतिहास के प्राचीन काल के लोग मानसिक विकृति-सम्बन्धी रोगों से बिलकुल अपरिचित नहीं थे, किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि उन लोगों के सामने यह रोग कभी ऐसी समस्या के रूप में उपस्थित हुआ था, जैसा आज हम उसे समझते हैं। हमारी आज की जटिल और क्षिप्र गति से आगे बढ़नेवाली सभ्यता में यह बीमारी एक नहीं, अनेक रूपों में एक गम्भीर समस्या बन गयी है। कुछ लोगों का विचार है कि शान्ति स्थापित करने की समस्या के बाद आज की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या मानसिक स्वास्थ्य (जो मानसिक रोग का ही दूसरा पहलू है) की ही है। बहुत-से लोगों का यह कहना है कि आधुनिक युग में व्यक्ति की भावनात्मक दृढ़ता और मानसिक स्थिरता की कमी का आज की भयंकर गरीबी, अपराधी मनोवृत्ति और युद्ध-सम्बन्धी भय की भावना के साथ सम्बन्ध अवश्य है, अर्थात् मानसिक रोगों का कारण आज का सामाजिक भय और दुःख ही है।

अच्छा हो, यदि हम पहले मानसिक रोगों से सम्बन्धित तथ्यों और अनुमानों पर दृष्टिपात कर लें। सन् १९४६ के मार्च मास में अमेरिका के लोक-स्वास्थ्य-विभाग के सर्वोच्च चिकित्साधिकारी (महा शल्य चिकित्सक) डा० टामस पैरन ने सीनेट की स्वास्थ्य और शिक्षा विषयक उपसमिति के सामने वक्तव्य देते हुए कहा था—"इस देशमें, ८०लाख अर्थात् पूरी आबादी के ६ प्रतिशत से अधिक व्यक्ति किसी-न-किसी प्रकार की मानसिक बीमारी से पीड़ित हैं।"[१] डा० पैरन ने मानसिक स्वास्थ्य के कार्यों के लिए राजकीय आर्थिक सहायता और राज्य द्वारा कार्यारम्भ करने के सम्बन्ध में उपस्थित किये गये

१. "हियरिंग्स बिफोर ए सब कमीटी आफ द कमिटी आन एडूकेशन एण्ड लेबर, युनाइटेड स्टेट सीनेट सेकेण्ड सेशन—आन एस—११६०, य० एस० गवर्नमेण्ट प्रिण्टिग आफिस, वाशिंगटन, १९४६, पृ० ७।

एक विधेयक के पक्ष में गवाही दे रहे थे। उन्होंने इस सम्बन्ध में आगे बताया—"अमेरिका के सभी अस्पतालों में मरीजों के लिए जितनी जगहें (चारपाइयाँ) हैं, जिनकी संख्या करीब ६ लाख है, उनमें से आधी में तो केवल मानसिक रोगके मरीज भरे हुए हैं।" उन्होंने आगे कहा—"यह संख्या उन लोगों की है, जिनकी बीमारी भयंकर रूप धारण कर चुकी है, जिससे विवश होकर उन्हें अस्पतालों में रखना पड़ा है और इस संख्याको देखने से इस बात का पूरा अन्दाज नहीं लग सकता कि यह समस्या कितना भयंकर रूप धारण कर चुकी है। इससे मानसिक दृष्टि से पूर्णतः विकलांग रोगियों की पूरी संख्या का भी अनुमान नहीं किया जा सकता, क्योंकि अनेक राज्यों के अस्पतालों में मरीजों के लिए जितनी चारपाइयाँ होती हैं, उतने ही रोगी भरती किये जाते हैं, न कि जितने रोगी आते हैं, सभी को भरती कर लेने का प्रबन्ध किया जाता है, इस कारण बहुत-से रोगी अस्पतालों में भरती नहीं हो सकते, जिनकी संख्या उपर्युक्त संख्या में सम्मिलित नहीं है।"[२] उनके वक्तव्य के अनुसार प्रतिवर्ष स्वास्थ्य-संस्थाओं में मानसिक रोग के १,२५,००० नयेमरीज भरती किये जाते हैं और देश की वर्तमान आबादी में से प्रायः एक करोड़ व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्हें कभी-न-कभी मानसिक चिकित्सा के लिए अस्पतालों में भरती करने की आवश्यकता होगी।

उसी उपसमिति के सामने गवाही देते हुए राष्ट्रीय सैनिक-चुनाव-सेवा-योजना के निदेशक जेनरल लेलिवस बी० हेर्शे ने बताया कि सेना में भरती के लिए आनेवाले लोगों में से जिन्हें छाँट दिया जाता है, उनकी कुल संख्या करीब ५० लाख होती है, जिनमें से करीब १० लाख केवल मानसिक रोगों के कारण छाँटे जाते हैं। इस तरह छाँटे गये लोगों में सबसे अधिक संख्या इस बीमारी से पीड़ित व्यक्तियों की ही होती है, "इनमें से ४ लाख व्यक्ति २६ वर्ष से कम अवस्था के होते हैं।"[३]

अमरीकी सेना विभाग के मनश्चिकित्सा—प्रभाग के प्रधान, ब्रिगेडियर जेनरल विलियम सी० मेनिंगर ने सन् १९४६ में अमरीकी मनश्चिकित्सा-परिषद् के सामने अपने उन विचारों की व्याख्या की, जिनको उन्होंने उसके कई मास पूर्व सीनेट की एक उपसमिति के सामने व्यक्त किया था। उनके अनुसार "१ जनवरी १९४३ से ३० दिसम्बर १९४५ के बीच की अवधि में सैनिक सेवा के लिए आये लोगों में से करीब १८ लाख ७५ हजार व्यक्ति केवल स्नायविक मनोविकृति के कारण छाँटे गये थे। यह संख्या, भरती के लिए जितने लोगों का परीक्षण किया गया था, उनकी संख्या की १२ प्रतिशत और कुल छाँटे

२. वही—पृष्ठ ७।
३. वही—पृष्ठ ४७।

गये व्यक्तियों की संख्या की ३७ प्रतिशत थी।"[४] इसी अवधि में सैनिक अस्पतालों में स्नायविक मनोविकृति के करीब १० लाख मरीज भरती हुए थे। यह भरती हुए कुल मरीजों की संख्या की छः प्रतिशत संख्या थी और इस संख्या की दृष्टि से प्रतिवर्ष १००० सैनिकों में से ४५ सैनिक मानसिक विकृति के रोग के कारण अस्पतालों में भरती हुए थे। करीब ३ लाख ८० हजार सैनिक स्नायविक मनोरोग के कारण चिकित्सकीय प्रमाण के आधार पर सैनिक सेवा से मुक्त किये गये थे। इसके साथ ही १ लाख ३७ हजार सैनिक प्रशासकीय प्रमाण के आधार पर व्यक्तित्व-विकृति के कारण सेवा-मुक्त किये गये थे, और इस तरह मानसिक रोगों के कारण सेवामुक्त हुए कुल सैनिकों की संख्या ५ लाख से अधिक थी।

इसी के साथ यदि जल-सेना के आँकड़ों पर भी विचार कर लेना अच्छा होगा। अमरीकी जल-सेना के स्नायविक मनःरोग-प्रभाग के प्रधान कैप्टेन ब्रेसलैण्ड ने उक्त उप-समिति के सम्मुख अपनी गवाही में कहा था कि सन् १९४२, १९४३, १९४४ में और सन् १९४५ के प्रारम्भ के छः महीनों में ७६,७२१ सैनिक स्नायविक मनोरोग सम्बन्धी अक्षमताओं के कारण नव सैनिक सेवा से अलग किये गये थे। इसके अतिरिक्त नये भरती हुए ९१,५६५ सैनिक जो विभिन्न प्रशिक्षण-केन्द्रों में प्रशिक्षित हो रहे थे, अयोग्यता और स्नायविक मनोरोग-सम्बन्धी अक्षमता के कारण छाँट दिये गये थे।

डा० पैरन ने अपने वक्तव्य में इस बात पर भी जोर दिया था कि इन रोगों के कारण रोगियों और उनके परिवार वालों को तो महान् कष्ट भोगना ही पड़ता है, उनपर राजकीय कोश का भी बहुत अधिक धन व्यय होता है। उन्होंने कहा था कि सन् १९४२ में अमेरिका के सभी मानसिक रोग-चिकित्सालयों के लिए स्वीकृत आयव्ययक कुल १७ करोड़ डालर का था और जिस गति से यह खर्च बढ़ता जा रहा है, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि सन् १८५२ में यह व्यय बढ़ कर अनुमानतः २५ करोड़ डालर हो जायगा। डा० पैरन ने हिसाब लगा कर बताया था कि यदि मरीजों की आय की हानि को भी उन पर

४. विलियम सी० मेनिंगर—"साइकियाट्रिक इक्सपीरियेन्स इन द वार—१९४१—१९४६"—दी अमेरिकन जनरल आफ साइकियाट्री—जिल्द १०३, मार्च १९४७, पृ० ५७८। जेनरल मेनिंगर की सीनेट की उपसमिति के सम्मुख गवाही का अभिलेख उस प्रतिवेदन में भी पृष्ठ ५८—६३ पर है, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। इसके अतिरिक्त देखिए—विलियम सी० मेनिंगर—"फैक्ट्स एण्ड स्टेटिस्टिक्स आफ सिग्नीफिकेन्स फार साइकियाट्री"—बुलेटिन आफ मेनिंगर क्लिनिक—जिल्द १२, जनवरी १९४८ पृ० १—२५।

किये गये खर्च में ही सम्मिलित कर लिया जाय और पागलखानों तथा मानसिक स्वास्थ्य-सेवाओं के कर्मचारियों के वेतन और उनके अन्य खर्चों को भी उसी में जोड़ दिया जाय तो इस मद का कुल व्यय करीब एक अरब डालर हो जायगा।[५]

द्वितीय महायुद्ध शुरू होने के पहले और बाद में इस विषय पर जो शोध-कार्य किया गया है, उससे भी उपर्युक्त मत का समर्थन होता है, विशेषरूप से बाल्टीमोर के एक शहरी केन्द्र और टेनेसी राज्य के एक देहाती जनपद में किये गये अध्ययन और शोध से उपर्युक्त बात विशेष रूप से प्रमाणित होती है। दोनों क्षेत्रों के अन्तर को स्वीकार करते हुए, उनके सम्मिलित आँकड़ों के आधार पर हिसाब लगाने पर पता चलता है कि वहाँ की कुल आबादी के ६ प्रतिशत व्यक्ति किसी-न-किसी प्रकार के गम्भीर मानसिक रोग से पीड़ित हैं। यदि इसी नियम को पूरे देश की आबादी पर लागू किया जाय तो उसके अनुसार सन् १९५४ में देश की कुल आबादी (१६ करोड़) में से उसके ६ प्रतिशत अर्थात् करीब १० लाख व्यक्ति किसी-न-किसी गम्भीर मानसिक रोग के मरीज थे।

मानसिक रोग की भयंकर वृद्धि की जाँच करने का एक अन्य तरीका यह है कि पुराने मानसिक रोगियों के लिए जो अस्पताल हैं, उनमें रहने वाले मरीज़ों की संख्या पर दृष्टिपात किया जाय। संयुक्तराष्ट्र-लोक-स्वास्थ्य विभाग के श्री फेलिक्स और श्री क्रेमर का कहना है कि सन् १९५० में पागलखानों में मरीजों की कुल संख्या देश की पूरी आबादी की ३.८ प्रतिशत थी। अतः इस हिसाब से सन् १९५० की कुल आबादी (१६ करोड़) में से पागलखानों में रहने वाले मरीजों की संख्या अनुमानतः सात लाख मानी जा सकती है। (वर्तमान शताब्दी में अस्पतालों में मानसिक रोग के मरीजों की बढ़ती हुई संख्या के सम्बन्ध में विचार करते समय उन तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है, जिन्हें फेलिक्स और क्रेमर ने इस बीमारी की वृद्धि का प्रधान कारण माना है।) मानसिक रोग का प्रसार-क्षेत्र कितना व्यापक हो गया है इसका पता प्रतिवर्ष मानसिक रोग-अस्पतालों (पागलखानों) में भरती होने वाले रोगियों की संख्या देख कर आसानी से लग सकता है। सन् १९४९ में इन अस्पतालों में भरती होने वाले मरीज़ों की संख्या ढाई लाख से ऊपर थी, जब कि अस्पताल से मुक्त होनेवाले और मृत रोगियों की सम्मिलित संख्या इससे काफी कम थी।[६]

५. हियरिंग बिफोर ए सब कमिटी आफ द कमिटी आन एडुकेशन ऐण्ड लेबर—पृ० ८–९

६. आर० एच० फेलिक्स और मार्टन क्रेमर—"इक्स्टेण्ट आफ द प्राब्लेम आफ मेण्टल डिजार्डर्स"—एनल्स आफ द अमेरिकन एकेडमी आफ पोलिटिकल ऐण्ड सोशल साइन्स—जिल्द २८६, मार्च १९५३, पृ० ५–१४। उपर्युक्त प्रसंग में जो अद्यतन

मानसिक रोग के सम्बन्ध में पूर्ववर्ती धारणाएँ

मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक आरोग्य-विज्ञान-विषयक आन्दोलनों के प्रारम्भ के पूर्व शताब्दियों तक मानसिक रोगों के स्वरूप और कारणों के सम्बन्ध में लोगों में बहुत-सी भ्रान्तियाँ और अन्ध-विश्वास फैले हुए थे। यद्यपि आज हम इस बात के लिए बहुत चिन्तित हैं कि वर्तमान युग में मानसिक रोगों की निरन्तर वृद्धि होती जा रही है, पर यदि कुछ ध्यान से देखा जाय या इस विषय पर शोध किया जाय तो पता चलेगा कि ये बीमारियाँ प्राचीन काल में भी प्रचलित थीं। शिक्षा के प्रारम्भ के पूर्व और सभ्यता का प्रारम्भ हो जाने के बाद भी समाज में विकृत मस्तिष्क वालों को बहुधा पागल, मूर्ख या ऐसा व्यक्ति माना जाता था, जिससे देवता नाराज हैं। उसके बारे में प्रायः यह धारणा भी होती थी कि उस पर किसी भूत-प्रेत का प्रकोप हुआ है या वह जादू-टोने का शिकार हो गया है अथवा वह अपने पापों का दण्ड भोग रहा है। मानसिक रोगों के मूल कारणों पर प्रकाश डालने का कार्य तो आधुनिक युग में प्रारम्भ हुआ है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की थी कि उनके कारणों की वैज्ञानिक आधार पर खोज-बीन की जाती, अतः चिकित्सा-विज्ञान के अपेक्षाकृत व्यापक क्षेत्र में होनेवाले शोध-कार्यों के कारण मानसिक रोगों के कारणों के सम्बन्ध में भी खोज के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ है।[७]

सांख्यिक आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं, उनको कांग्रेस की पूर्वोल्लिखित उपसमितियों के सामने दी गयी गवाहियों की सख्याओं से मिलाकर तो देखना ही चाहिए, उन्हें उन स्रोतों के सन्दर्भ में भी रखकर देखना चाहिए, जहाँ से उन्हें लिया गया है।

७. यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका निर्णय शायद कभी नहीं हो सकता कि क्या आज हम मानसिक रोगों के सम्बन्ध में प्राचीन काल के लोगों से अधिक जानते हैं। प्राचीन काल की जानकारी और आधुनिक ज्ञान के बीच इतना ही अन्तर हो सकता है कि उन रोगों के कारणों की व्याख्या आज अधिक वैज्ञानिक आधार पर की जा रही है। प्राचीन काल के मूल्यों और तत्कालीन भाषा की शब्दावली को ध्यान में रखकर देखने पर पता चलता है कि आदिम बर्बर युग के लोग मानसिक रोग-सम्बन्धी अपनी मान्यताओं को अपने ढंग से एक तार्किक संगति प्रदान करते थे। इसी तरह उस युग में जीवन-मूल्य सत् और असत् प्रवृत्तियों के द्वन्द्व पर आधारित थे और यह माना जाता था कि सत् प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि देवताओं और असत् प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि राक्षसों में सदा संघर्ष होता रहता है तथा यह भौतिक जीवन मृत्यु के बाद के पारलौकिक जीवन की तैयारी मात्र है, अतः उस समय की यह

आधुनिक युग में मानसिक रोगों के कारणों के सम्बन्ध में जो नवीन धारणाएँ उत्पन्न हुई हैं, उनके कारण मानसिक रोगियों के उपचार और देख-भाल की पद्धति में भी पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। जिस युग में यह माना जाता था कि दैत्य या भूत-प्रेत के उपद्रव के कारण व्यक्ति पागल हो जाता है, उस समय मंत्र-तन्त्र द्वारा उस उपद्रव को शान्त करने अथवा भूत-प्रेत को भगाने की पद्धति समान्य रूप से प्रचलित थी तथा उसके लिए कुछ विशेष धार्मिक विधियों एवं अन्य लोकप्रचलित उपायों का भी सहारा लिया जाता था और यह माना जाता था कि जादू-टोना और मंत्र-तंत्र द्वारा पागल व्यक्तियों को दैत्यों और भूत-प्रेत के प्रभाव से मुक्त किया जा सकता है। परवर्ती युगों में यह धारणा प्रचलित थी कि मनुष्यों के पागल होने का कारण उसके द्वारा किये गये पाप हैं और प्रार्थना तथा बलि द्वारा उन पापों से मुक्ति पायी जा सकती है। उस काल में बहुधा यह भी प्रचलित था कि कि जड़ी-बूटियों का भी इस रोग पर बड़ा शान्तिकर प्रभाव पड़ता है। मध्ययुग में भी यही माना जाता था कि भूत-प्रेत के उपद्रव के कारण पागलपन होता है और इसलिए पागल व्यक्तियों को बहुत अधिक क्लेश तथा शारीरिक कष्ट पहुँचाया जाता था एवं उन पर अत्याचार किया जाता था और कभी-कभी तो यह मानकर कि पागल व्यक्ति जादू-टोना का अभ्यास करते हैं, उन्हें जला दिया जाता था या फ़ाँसी पर लटका दिया जाता था अथवा पानी में डुबा दिया जाता था। हमारे देश में ही आज से दो शताब्दी पूर्व उपनिवेश-काल में पागलों के साथ व्यवहार से सम्बन्धित उपर्युक्त ढंग की घटनाओं तथा

धारणा कि मानसिक रोग भूत, प्रेत आदि के उपद्रव के कारण होते हैं। तत्कालीन मान्यताओं की दृष्टि से यह बात बिलकुल तर्कसंगत तथा तत्कालीन समाज को मानसिक सन्तोष देने वाली थी। जहाँ तक इन रोगों के भौतिक कारणों का सम्बन्ध है, इस प्रकार की विचार-धारा ही आधुनिक युग की वस्तु और आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति की देन है। यहाँ यह बात फिर दुहरा देने की आवश्यकता है कि आधुनिक युग का मनुष्य प्राचीन आदिम जातियों के लोगों से हमेशा अधिक स्फूर्ति-युक्त होता है, यह सोचना अनुचित होगा। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने की बात है कि मानसिक रोगों के लिए आधुनिक युग की मानसिक आघात-चिकित्सा-पद्धति तथा आदिम जातियों एवं अंधविश्वासी लोगों की भूत भगाने की पद्धति में आश्चर्य-जनक समानता दिखलाई पड़ती है। इस सम्बन्ध में विशेष विवरण के लिए देखिए; —फ्रान्ज बाओस—द माइन्ड आफ़ प्रिमिटिव मैन—न्यूयार्क, द मैकमिलन कम्पनी, १९११। अल्बर्ट डायश—द मेन्टल इल इन अमेरिका गार्डेन सिटी, डबुल डे, डोरन कम्पनी, १९३७, संशोधित संस्करण १९४९।

विश्वासों के उदाहरण मिल जाते हैं, यहाँ तक कि १९वीं शताब्दी में भी, जब कि पागलपन के कारणों का अच्छी तरह ज्ञान नहीं हो सका था, हम लोग पागलों को या तो अपराधी समझकर दण्ड देते थे या उनकी समस्या को एक जटिल पहेली समझकर उनकी ओर से उदासीन हो जाते थे। उस समय पागलपन के सम्बन्ध में चिकित्सा-विज्ञान की दृष्टि से शोध-कार्य तो अवश्य प्रारम्भ हो गया था, किन्तु उसके उपचार के नाम पर पागलों को बाँधकर या बन्द कर रखा जाता था, ताकि वे समाज के किसी व्यक्ति को क्षति न पहुँचा सकें। आधुनिक मनोविश्लेषण-शास्त्रीय आन्दोलन के कारण पागलपन के सम्बन्ध में हमारी धारणा में परिवर्तन और तत्सम्बन्धी ज्ञान में बहुत अधिक अभिवृद्धि हो गयी है, किन्तु उसके प्रारम्भ के पहले पागलपन के मनोजात कारणों के सम्बन्ध में हमारी कोई जानकारी नहीं थी। किस तरह इस ज्ञान का उदय हुआ और उसके आधार पर पागलपन की चिकित्सा और रोक-थाम के लिए किस तरह संगठित प्रयत्न किये गये, इन सब बातों की जानकारी मानसिक आरोग्य-विज्ञान के आन्दोलन का इतिहास पढ़ने से अच्छी तरह से प्राप्त हो सकती है।[८]

मनश्चिकित्सा-शास्त्र, मनोविश्लेषण-शास्त्र और मनोविज्ञान की प्रेरणा

प्रायः पूरी १९वीं शताब्दी में इस बात पर विशेष जोर दिया जाता रहा कि पागलों की देख-भाल से सम्बन्धित सुरक्षात्मक अथवा दण्डात्मक पद्धतियों में सुधार की आवश्यकता है। मानसिक रोगों के सम्बन्ध में इस समय जो अध्ययन किया भी गया, वह मुख्यतया विवरणात्मक था, जिसकी चरम परिणति क्रेप्लिन की उस विश्लेषणात्मक पद्धति में दिखलाई पड़ती है, जिसमें मानसिक रोगों का नहीं, उसके कारणों का विवेचन किया गया है। इसी समय सिग्मण्ड फ्रायड ने मूर्च्छा रोग के सम्बन्ध में अपना अध्ययन प्रारम्भ किया था, जिसके फलस्वरूप मनोविश्लेषण-शास्त्र का प्रारम्भ हुआ और मानसिक रोगों के उपचार के क्षेत्र में सफल प्रयोग किये जाने लगे। फ्रायड ने अचेतन मन का जो विश्लेषण किया, उससे मानव-मन और मानव-व्यक्तित्व के सम्बन्ध में बिलकुल नवीन मान्यताएँ सामने आयीं। पहले यह माना जाता था कि मानव-व्यक्तित्व एक स्थिर वस्तु है, फ्रायड की विचारधारा के परिणामस्वरूप उक्त पुरानी धारणा में पूर्णतः नहीं, तो आंशिक रूप से ही सही परिवर्तन हुआ और यह माना जाने लगा कि मानव-व्यक्तित्व एक गत्यात्मक वस्तु है। अमेरिका के बहुत-से मनश्चिकित्सकों ने मनोविश्लेषण-शास्त्रीय दृष्टिकोण की अभिव्यंजना की। यद्यपि वे किसी भी अर्थ में न तो मनोविश्लेषणशास्त्री थे न फ्रायडवादी। इन व्यक्तियों ने, जिनमें से एडोल्फ मेयर, आगस्ट हाश, सी० मैक्फी

८. अल्बर्ट डायश—द मेण्टली इल इन अमेरिका—प्रकाशक वही, अध्याय—१।

कैम्पबेल तथा टामस डब्लू० साल्मन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, मनश्चिकित्सा के विकास में अतुलनीय योग दिया है। प्रारम्भ में इस क्षेत्र में अधिक प्रभाव रखने वालों में सम्भवतः केवल विलियम एलान्सन ह्वाइट और ए० ए० ब्रिल ही पक्के फ्रायडवादी थे।

मनोवैज्ञानिक क्षेत्र की प्रगति का भी मानव-व्यवहार के क्षेत्र पर प्रभाव बढ़ता जा रहा था। बच्चे की विकास-प्रक्रिया के सम्बन्ध में होनेवाले शोध-कार्यों से उन बातों पर विशेष प्रकाश पड़ा, जिनका बच्चों के जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। अब यह स्पष्ट रूप से मान लिया गया कि बच्चे के प्रारम्भिक जीवन के भावनात्मक अनुभवों तथा उनसे उत्पन्न धारणाओं का उसके व्यक्तित्व के विकास पर स्थायी प्रभाव पड़ता है। मनोमितिक अध्ययन अर्थात् विभिन्न व्यक्तियों के मानसिक संघटन के अन्तर के अध्ययन से इस बात पर प्रकाश पड़ा कि विभिन्न व्यक्तियों की बुद्धि और क्षमता का स्तर भिन्न-भिन्न होता है। मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य-गृहों की भी स्थापना होने लगी, जिनमें से फिलाडेल्फिया में विटमेर का स्वास्थ्य-गृह सबसे पहले, सन् १८९६ में स्थापित हुआ था। इन स्वास्थ्य-गृहों के कारण विभिन्न व्यक्तियों के मानसिक स्तर के अन्तर के स्वरूप तथा व्यक्तित्व के विकास पर उनके प्रभाव से सम्बन्धित ज्ञान में बहुत अधिक वृद्धि हुई।

इस तरह बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के दो दशकों तक ऐसे लक्षण दिखलाई पड़ने लगे, जिनसे मानसिक रोग के उपचार तथा अध्ययन की दिशा में एक नवीन परिवर्तन का पूर्वाभास मिलता था। मनश्चिकित्सा-शास्त्र भी पागलपन के उपचार की दण्डात्मक पद्धतियों को छोड़कर उसके कारणों के विश्लेषण की ओर विशेष रूप से प्रवृत्त हो रहा था। यदि मनोविश्लेषण-शास्त्र ने गत्यात्मक पद्धति का प्रचार किया तो मनोविज्ञान ने बच्चों की विकास-प्रक्रिया का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया और उनके मानसिक स्तर के पारस्परिक अन्तर को स्पष्ट करने की ओर विशेष ध्यान दिया। इन विभिन्न पद्धतियों और धारणाओं का सामूहिक प्रभाव यह पड़ा कि व्यक्ति के मन (अथवा व्यक्तित्व) की संगठन-प्रक्रिया, स्वास्थ्य और रोग के सम्बन्ध में बिलकुल नवीन दृष्टिकोण का प्रारम्भ हुआ। यह दृष्टिकोण मूलतः इस मान्यता पर आधारित था कि मानव-व्यक्तित्व का विकास भावनात्मक प्रेरणाओं पर आधारित होता है और व्यक्ति के बाह्य व्यवहारों को अच्छी तरह समझने के लिए उसके चेतन-मन के नीचे, अचेतन-मन में दबे प्रेरणा-स्रोतों या प्रेरक-शक्तियों को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

क्लिफोर्ड बियर्स और मानसिक आरोग्य-आन्दोलन

जब हम इस बात की ओर ध्यान देते हैं कि चिकित्सा-विज्ञान और लोक-स्वास्थ्य के क्षेत्र में रोगों के उपचार के साथ उनके निरोध का सिद्धान्त भी मान्य हो गया था, तो यह

बात सहज ही समझ में आ जाती है कि मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी अन्ततः इस सिद्धान्त की स्वीकृति अनिवार्य और स्वाभाविक है। मानसिक आरोग्य-आन्दोलन इसका उदाहरण है। इस सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है कि इस आन्दोलन का आरम्भ सबसे पहले कब हुआ, किन्तु इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि क्लिफोर्ड बियर्स ने इस आन्दोलन को प्रारम्भ करने में बहुत अधिक योग दिया। यदि बियर्स ने इस दिशा में कार्य न किया होता तो यह आन्दोलन न जाने कितने वर्षों बाद प्रारम्भ होता, फिर भी यह बात निश्चित है कि यह आन्दोलन कभी-न-कभी निस्संदेह प्रारम्भ होता।

क्लिफोर्ड बियर्स का योग-दान क्या था? उनके कार्य की विशिष्टता को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि सौ वर्ष से भी अधिक पहले एक फ्रान्सीसी मनो-रोग-विशेषज्ञ पाइनेल ने सबसे पहले साल्पेत्रियेर के अस्पताल में पागलों को जंजीरों के बन्धन से मुक्त किया था। पर उसके बाद भी पूरी शताब्दी में अमेरिका तथा अन्य देशों के पागलखानों में पागलों की सुरक्षात्मक या दण्डात्मक देख-भाल पर ही विशेष बल दिया जाता था और इस बात को समझने का बिलकुल प्रयत्न नहीं किया जाता था कि कोई व्यक्ति किस कारण पागल हुआ है। यद्यपि पागलखानों की देख-भाल की पद्धति में उत्तरोत्तर सुधार होता गया और मानसिक रोगों के वर्गीकरण से सम्बन्धित ज्ञान में भी पर्याप्त वृद्धि हुई, फिर भी प्रायः सभी राजकीय अथवा गैर-सरकारी संस्थाओं में मानसिक रोगियोंके उपचार और समुचित देख-भाल के सम्बन्ध में भयंकर अज्ञान फैला हुआ था। पागलखानों में रहने वाले जो पागल भोले-भाले थे तथा दूसरों को क्षति नहीं पहुँचाते थे और न तो अधिक चीख़-पुकार और हल्ला-गुल्ला ही करते थे, उनके साथ किये जानेवाले व्यवहार और उनकी देख-भाल का स्तर अवश्य औचित्यपूर्ण एवं शालीनतायुक्त होता था। पर जो पागल ऐसे उपद्रवकारी होते थे कि उनका रोग अनियन्त्रित और हिंसात्मक कार्यों के रूप में प्रकट होता था, उनके साथ कर्मचारी क्रुद्ध होकर नृशंसता और कठोरता का भी सहारा लेते थे। अतः पागलखानों में पागलों को पीटना, उनका गला दबाना, अथवा कई दिनों तक उन्हें तन्हाई में या तंग कमरों में रखना सामान्य बात थी।

जिस समय इस प्रकार की परिस्थिति थी, क्लिफोर्ड बियर्स—(१८७६–१९४३) भी एक मरीज के रूप में पागलखाने में भेजा गया। बियर्स सन् १८९७ में स्नातक हुआ था और उसके बाद तीन वर्ष तक व्यापार के काम में लगा रहा। वह छः वर्षों तक मृगी रोग से पीड़ित रहा जो सन् १९०० में मनोग्रस्ति रोग में बदल गया। उसने आत्महत्या करने का भी प्रयत्न किया, पर उसमें सफल नहीं हुआ। इसके बाद वह कानेक्टिकट राज्य के तीन पागलख़ानों में बारी-बारी से तीन वर्ष तक रहा। पहला मुनाफे के लिए चलाया जाने वाला एक गैर-सरकारी पागलखाना था, दूसरा भी गैर, सरकारी पागलखाना ही था,

पर उसका उद्देश्य मुनाफा करना नहीं था और तीसरा एक राजकीय मानसिक रोग-अस्पताल था। इन तीनों में बीमारों के साथ बहुत ही कठोर और अमानवीय व्यवहार किया जाता था। इस प्रकार के व्यवहार का मूल कारण मानसिक रोगों की उत्पत्ति के कारणों और उनके स्वरूप के सम्बन्ध में तत्कालीन प्रचलित भ्रम था। बियर्स के साथ किया जाने वाला व्यवहार उस काल की दृष्टि से कोई असाधारण बात नहीं थी, फिर भी यदि उसे इस प्रकार का अनुभव न हुआ होता तो शायद बादमें उसने अपना जीवन मानसिक आरोग्य-आन्दोलन के लिए न अर्पित किया होता। अस्पतालों में प्रचलित उस सामान्य व्यवहार के अनुभव के फलस्वरूप ही बियर्स ने अस्पताल से रिहा होनेके बाद पालन-गृह में रहते समय इस सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी। अस्पतालों की स्थिति का उद्घाटन करने वाली बहुत-सी पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं, जिनपर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था और बियर्स की पुस्तक की भी वही दशा हुई होती यदि उसको लिखने में उसने अपनी सच्ची आस्था का परिचय न दिया होता तथा उसे यह बात न सूझी होती कि प्रकाशित होने के पूर्व पुस्तक को विभिन्न प्रख्यात मनश्चिकित्सकों और मनोवैज्ञानिकों के पास समीक्षा के लिए भेजा जाय। उसकी पुस्तक का नाम था "मन की आत्मोपलब्धि" (ए माइण्ड दैट फाउण्ड इट-सेल्फ)। यह पुस्तक सन् १९०८ में प्रकाशित हुई। इसकी भूमिका उस युग के प्रख्यात अमरीकी मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक विलियम जेम्स ने लिखी थी। उसके प्रकाशन के एक वर्ष के भीतर कानेक्टिकट राज्य में पहली राजकीय मानसिक आरोग्य-समिति स्थापित की गयी और उसके दूसरे ही वर्ष देश भर के लिए राष्ट्रीय मानसिक आरोग्य-समिति की स्थापना हुई।

मानसिक आरोग्य-आन्दोलन

इस आन्दोलन के प्रारम्भ और प्रसार के पीछे प्रेरक और संचालक के रूपमें क्लिफोर्ड बियर्स का बहुत अधिक हाथ था। यद्यपि उसके सामने आर्थिक और अन्य प्रकार की निराशाजनक कठिनाइयाँ भी आती थीं, पर वह अपनी पुस्तक की आय से तथा अपनी संघटनशक्ति द्वारा मानसिक रोगियों के साथ होनेवाले व्यवहार और उनकी देख-भाल की पद्धति के सुधार के लिए बराबर प्रयत्न करता रहा। अपनी पुस्तक में उसने उक्त तीनों संस्थाओं में अपने साथ किये गये जिस पाशविक व्यवहार का वर्णन किया है, वह कोई उसी के साथ नहीं, सबके साथ समान रूप से होता था। बियर्स के प्रयत्न से यह बात समझ में आने लगी कि उन नृशंस व्यवहारों का कारण मानसिक रोगोंके प्रकृत स्वरूप के सम्बन्ध में सारी दुनिया में फैला हुआ अज्ञान था। यह बात भी समझ में आयी कि अत्याचार और अमानवीय व्यवहार करने वाले दो एक कर्मचारियों को दण्डित करने या सेवा-

मुक्त कर देने से पागलखानों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हो सकता, यह तो तभी सम्भव है जबकि अस्पतालों के समस्त कर्मचारियों, अधिकारियों और उनसे सम्बद्ध व्यक्तियों के दृष्टिकोण में ही मौलिक परिवर्तन नहीं हो जाता। उनका तत्कालीन दृष्टिकोण वस्तुतः उस समय देश भर में सामान्य रूप से प्रचलित पागलपन से सम्बन्धित विश्वासों का प्रतिफल था।

मानसिक रोग-संस्थाओं की देखभाल की पद्धति के सुधार के लिए तो आन्दोलन जारी ही रहा, साथ ही अन्य ढंग से भी पागलखानों की बुराइयों पर चोट की जाती रही। मानसिक रोग के स्वरूप तथा उसकी वृद्धि की प्रक्रिया के सम्बन्ध में अध्ययन और शोध का कार्य भी किया जाने लगा। इसके लिए यह आवश्यक था कि युग से प्रचलित पागलपन-सम्बन्धी परम्परागत वर्गीकरण और हेतु-विज्ञान से आगे बढ़कर उसके बारे में नये ढंग और नवीन दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाय। मानसिक रोग के कारणों के विश्लेषण के फलस्वरूप एक ऐसी विधेयात्मक पद्धति का विकास हुआ, जिसके द्वारा इस रोग को जड़ से दूर करने का प्रयत्न किया जाता था, केवल रोग के लक्षणों के आधार पर मानसिक रोगियों का वर्गीकरण करके ही सन्तोष नहीं कर लिया जाता था। इस तरह मानसिक रोग का अध्ययन अब श्रेणी-विभाजन के क्षेत्रसे आगे बढ़कर व्यक्तित्व के गत्यात्मक विकास और व्यक्तित्व-सामंजस्य के ज्ञान की दिशा में अग्रसर हो गया था।

मानसिक आरोग्य-कार्यक्रम के प्रारम्भिक उद्देश्यों में से तीसरा उद्देश्य मानसिक रोग के निरोध का महत्त्व प्रतिपादित करना था। निरोध की आवश्यकता इसलिए थी। कि मानसिक रोग-अस्पतालों में कम मरीज जायँ, जिससे उनके साथ अधिक मानवीय व्यवहार हो सके, साथ ही मानसिक रोग के कारणों से सम्बन्धित सिद्धान्तों की तरह यह सिद्धान्त भी बहुत महत्त्वपूर्ण था कि समाज में मानसिक दृष्टि से विकलांग लाखों व्यक्तियों की जो विशाल सेना थी,उसमें और अधिक वृद्धि न होने पाये। निरोध का सिद्धान्त स्पष्टतः रोग के कारणों के सम्बन्ध में नवीन जानकारी पर आधारित था, अतः उन कारणों की खोज के क्षेत्र में नित्य विकास होते रहने के कारण निरोध-सिद्धान्त का भी अन्तिम रूप नहीं निर्धारित हो सका था। इस सम्बन्ध में केवल रोग के निषेधात्मक पक्षों पर ही नहीं उसके विधेयात्मक आदर्श पर भी विशेष रूप से बल दिया जाता था अर्थात् किसी मानसिक रोगी को बार-बार यह याद दिलाने से ही काम नहीं चल सकता था कि उसे अमुक, अमुक काम नहीं करना चाहिए नहीं तो पागलखाने में भेज दिया जायगा, बल्कि उसके लिए यह और भी अधिक आवश्यक था कि उसकी इस प्रकार सहायता की जाय,जिससे वह अपने स्वस्थ, सक्रिय व्यक्तित्व को पुनः उपलब्ध कर उसकी रक्षा कर सके। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से इस निरोध-सिद्धान्त को चिकित्सा-विज्ञान ने स्वीकार कर लिया,

जिसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह हुआ कि मानसिक आरोग्य-आन्दोलन में भी इस विचार-धारा को शीघ्र ही अपना लिया गया। यह सिद्धान्त चिकित्सा-विज्ञान की इस मान्यता के अनुरूप था कि बीमार होने पर रोगी के उपचार की जितनी आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक आवश्यक बात यह है कि स्वस्थ व्यक्तियों को बीमार न होने दिया जाय और स्वास्थ्य-रक्षा के कार्य में उनकी सहायता की जाय।

मानसिक आरोग्य-आन्दोलन का चौथा और एक अनिवार्य तत्त्व, जिसपर बहुत बल दिया जाता था, यह था कि मानसिक रोग के कारणों, उपचार और निरोध से सम्बन्धित ज्ञान का अधिक-से-अधिक प्रसार होना चाहिए। इसके लिए इतना ही पर्याप्त नहीं था कि केवल मनोरोग-चिकित्सक ही मानसिक रोग के विविध पक्षों के जानकार हों, बल्कि यह भी आवश्यक था सामान्य जनता भी इन बातों से पूरी तरह अवगत हो। राष्ट्रीय मानसिक आरोग्य-समिति ने, जिसके क्लिफोर्ड बियर्स मन्त्री थे और जिसको देश के प्रख्यात मनश्चिकित्सकों का समर्थन प्राप्त था, इस विषय से सम्बन्धित अधिकाधिक ज्ञान के प्रसार के लिए, पुस्तकों, पुस्तिकाओं, जन-सभाओं और अध्ययन-गोष्ठियों के माध्यम से आन्दोलन प्रारम्भ किया। राज्यों की मानसिक आरोग्य-समितियों ने भी व्यक्तियों और संस्थाओं के साथ मिलकर इस प्रकार के आन्दोलनात्मक कार्यों में ठोस सहायता की। इन तमाम प्रयत्नों का प्रशंसनीय प्रभाव यह पड़ा कि बहुसंख्यक जन-समुदाय ने मानसिक आरोग्य के सिद्धान्तों और नियमों तथा रोजमर्रा के जीवन में उनके प्रयोग के बारेमें व्यापक रूप से जानकारी प्राप्त कर ली। शायद इतिहास में यह प्रथम अवसर था कि सामान्य जनता मानसिक स्वास्थ्य के विषय में इतना सचेत हो गयी थी तथा उस दिशा में सक्रिय प्रयत्न भी करने लगी थी।

मानसिक आरोग्य-आन्दोलन का अन्तिम निर्देशात्मक सिद्धान्त यह था कि ऐसी पद्धतियों और साधनों की खोज होनी चाहिए, जिससे जनता को रचनात्मक जीवन व्यतीत करने तथा अपनी आन्तरिक क्षमताओं की उपलब्धि करने में सहायता मिल सके। निरोध का यह तात्पर्य नहीं है कि निषेधों और वर्जनाओं का इतना अधिक ढोल पीटा जाय और उनपर इतना अधिक बल दिया जाय कि जनता चिन्तित हो जाय या घबड़ा उठे,जिससे उल्टा ही प्रभाव पड़ने लगे। यह तो वैसी ही बात हो जायगी,जैसे कोई व्यक्ति बीमारी से बचने के लिए इतना अधिक सावधान रहे कि उसे स्वस्थ जीवन का आनन्द प्राप्त करने का अवसर ही न मिल सके। यद्यपि मानसिक आरोग्य-आन्दोलन का प्रारम्भ में मनोविक्षिप्ति और उन्माद रोगों के बारे में अध्ययन करना ही मुख्य उद्देश्य था,किन्तु बाद में मानसिक असंगति के अन्य उन सभी स्वरूपों का भी विचार किया जाने लगा,जिनके कारण व्यक्ति अपने ही भीतर तथा उस समाज में जिसका वह अंग है, अपने को व्यवस्थित नहीं कर

पाता। इसका परिणाम यह हुआ है कि न केवल व्यक्ति को मानसिक अक्षमता-सम्बन्धी अव्यवस्था से मुक्ति पाने में सहायता देने की ओर लोगों का ध्यान नये रूप में आकृष्ट हुआ, बल्कि विधेयात्मक मानसिक स्वास्थ्य की ओर भी लोग विशेष रूप से अग्रसर हुए। इस आन्दोलन का अन्तिम लक्ष्य मानव-अनुभव को इस प्रकार समृद्ध करना था, जिससे समाज के लोग अपना जीवन रचनात्मक ढंग से व्यतीत कर सकें तथा सफल जीवन बिताने के लिए अपनी आन्तरिक क्षमताओं का समुचित विकास कर सकें।

मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य का विकास

इस शताब्दी के प्रारम्भ में मानसिक रोगियों की रक्षात्मक और दण्डात्मक देख-भाल की पद्धति के स्थान पर व्यक्तिगत रूप से उनके रोगों के अध्ययन और उपचार पर अधिक बल दिये जाने का परिणाम यह हुआ कि मानसिक रोगियों की देख-भाल के लिए नवीन पद्धतियों का प्रारम्भ हुआ। यह कार्य सबसे पहले नये स्थापित मनश्चिकित्सकीय अस्पतालों, तंत्रिका-विज्ञान-स्वास्थ्य-गृहों तथा अस्पतालों के सामाजिक सेवा-विभागों में प्रारम्भ किया गया। मनश्चिकित्सक इस बात से उत्तरोत्तर अधिक परिचित होते जा रहे थे कि भावनात्मक अनुभवों का व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर कितना अधिक प्रभाव पड़ता है। साथ ही इस बात पर भी जोर दिया जाता था कि किसी भी प्रकार की मानसिक विकृति के मूल में व्यक्ति की परिस्थितियों का दवाव भी कारण रूप में वर्तमान रहता है। प्रारम्भिक मनश्चिकित्सा-अस्पतालों में, जिनमें सर्वप्रथम अस्पताल मिशिगन में सन १९०६ में स्थापपित हुआ था, मानसिक रोगों के प्रारम्भिक अध्ययन, निदान और उपचार पर ही विशेष ध्यान दिया जाता था। मनश्चिकित्सक मनोरोगों के अध्ययन और निदान के अंग के रूप में रोगियों के जीवन-वृत्त की सामग्री एकत्र करने का काम भी करते थे। बाद में जीवन-वृत्त-संग्रह का कार्य मनश्चिकित्सकों के निर्देशन में काम करने वाले क्षेत्र-कार्यकर्ताओं के हाथ में सौंप दिया गया।

सबसे पहले माशाशूचेट्स के सार्वजनिक अस्पताल के तन्त्रिका-विज्ञान-स्वास्थ्य-गृह में, जिसके निर्देशक डा० जेम्स जे० पुटनम थे, सन् १९०५ में एक सामाजिक कार्यकर्ता की नियुक्ति हुई थी। दूसरे ही वर्ष न्यूयार्क के बेलेव्यू अस्पताल के मानसिक रोग वार्ड में भी अच्छा होनेवाले मानसिक रोगियों की सहायता के लिए एक सामाजिक कार्यकर्ता की नियुक्ति की गयी। न्यूयार्क राज्य की दान-सहायता-समिति ने भी सन् १९१० में अपनी मानसिक स्वास्थ्य-उपसमिति के माध्यम से न्यूयार्क के दो अस्पतालों में से अच्छे होकर निकलने वाले रोगियों की देख-रेख के लिए एक सामाजिक कार्यकर्ता की नियुक्ति हुई। सन् १९११ में मैनहाटन राज्य के मानसिक रोग-अस्पताल में सर्वप्रथम सामाजिक कार्यकर्ता की नियुक्ति की गयी। सन् १९१३ में माशाशूचेट्स के भी दो अस्पतालों—

डन्वर्स राजकीय अस्पताल और बोस्टन राजकीय अस्पताल——में भी सामाजिक कार्य-कर्ताओं को अस्पताल के कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया।

इस प्रकार के कार्य-विकास को वास्तविक प्रोत्साहन तब मिला जबकि सन् १९१३ में बोस्टन के मानसिक चिकित्सा-अस्पताल में सामाजिक सेवा-विभाग की स्थापना हुई। इस विभाग का संचालन डा० अर्नेस्ट साउदर्ड और मिस मेरी सी० जेरिट के हाथ में था। यह प्रायोजना अभी प्रारम्भ ही हुई थी कि प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। सन् १९१७ में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका जब इस युद्ध में सम्मिलित हुआ तो उस समय यह अनुभव किया जाने लगा कि असैनिक अस्पतालों में भी सामाजिक सेवा की भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी सैनिक अस्पतालों में, किन्तु इसमें एक व्यावहारिक बाधा यह थी कि इस संकट-कालीन स्थिति की आवश्यकताओं के अनुसार जितने प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता थी, उतने कार्यकर्ताओं का मिलना कठिन था। फलस्वरूप बोस्टन के मनश्चिकित्सा-अस्पताल में इस प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था का विस्तार किया गया और अन्त में स्मिथ कालेज, राष्ट्रीय मानसिक आरोग्य समिति और बोस्टन के मनश्चिकित्सा-अस्पताल के संयुक्त तत्त्वावधान में आपाती प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम की व्यवस्था की गयी। इस प्रकार के प्रशिक्षित कार्य को 'मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य' कहा जाने लगा। ऐसा समझा जाता है कि साउदर्ड और मिस जैरिट ने सर्वप्रथम यह नामकरण किया था। उन्होंने अपनी पुस्तक "प्रेत-राज्य" (द किंगडम आफ़ इविल्स) में लिखा है कि सामाजिक कार्य की यह शाखा कोई नयी वस्तु नहीं है, बल्कि पूर्वप्रचलित, बिखरे हुए विचारों और कार्यों से ही इसका विकास हुआ है। इस दृष्टि से यह सामाजिक कार्य भी सामान्य चिकित्सा के क्षेत्र के सामाजिक कार्य के समान ही है।

पहले तो सन् १९१८ में इस प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम की अवधि आठ सप्ताह की रखी गयी थी, उसके बाद एक वर्ष के भीतर ही स्मिथ कालेज में एक वर्ष की अवधि के पाठ्यक्रम वाले सामाजिक कार्य-प्रशिक्षण के लिए स्थायी रूप से एक स्नातक-विद्यालय का प्रारम्भ किया गया। इस प्रकार के कुछ अन्य विद्यालय पहले से ही स्थापित थे, जैसे—न्यूयार्क का सामाजिक कार्य-विद्यालय, पेन्सिलवानिया का सामाजिक एवं स्वास्थ्य-कार्य-विद्यालय-और शिकागो का नागरिक शास्त्र एवं परोपकार-विद्यालय। इन संस्थाओं ने मनश्चिकित्स-कीय सामाजिक कार्य के क्षेत्र में बराबर रुचि लेने का कार्य जारी रखा और इस कार्य के क्षेत्र को जो पहले ही अस्पताल की सीमा के बाहर पहुँच गया था, और भी विस्तृत किया। एक दशक के भीतर ही कोई भी ऐसा सामाजिक कार्य-विद्यालय नहीं रह गया, जिसमें मनश्चिकित्सकीय दृष्टिकोण और विचारों को स्थान नहीं दिया गया था और कुछ समय तक तो वह पाठ्यचर्या का अपरिहार्य अंग बना रहा। उसी तरह सामाजिक कार्य करनेवाला

कोई अभिकरण अथवा सामाजिक कार्य का कोई भी अंग ऐसा नहीं था, जो मनश्चिकित्सा शास्त्र के सिद्धान्तों और आशय के प्रभाव से अछूता बचा था।

मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य का स्वरूप

मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य भी एक प्रकार का वैयक्तिक समाज-सेवा-कार्य ही है। यह कार्य ऐसे अस्पतालोंऔर स्वास्थ्य-गृहों में किया जाता है, जिनमें मानसिक और भावात्मक रोगों के उपचार का अन्तिम उत्तरदायित्व मनश्चिकित्सकों पर होता है। कुछ पाठकों को यह कथन एक सामान्य वक्तव्य के रूप में मालूम पड़ सकता है और अन्य लोग इसे अस्पष्ट तथा अर्थहीन भी कह सकते ह। कुछ लोग इसका यह अर्थ भी कर सकते हैं कि ऐसे अस्पतालों में कार्यकर्ता से अधिक व्यवस्थापन पर बल दिया जाता है। इन सबका उत्तर यह दिया जा सकता है कि इस विषय की परिभाषा में सभी सामाजिक कार्यकर्ता, यहाँ तक कि मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ताभी कभी एकमत नहीं हो सकते। किन्तु इस अध्याय तथा इस पुस्तक की दृष्टि से यहाँ जो परिभाषा दी जा रही है, वही हमारे विचार-विमर्श का आधार होगी। यह परिभापा निश्चय ही उस अध्ययन के मेल में है, जो अभी हाल में अमरीकी मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्तृ-संघ द्वारा प्रस्तुत किया गया है।[१] यहाँ इस बात पर बल दिया जायगा कि किस वातावरण, संस्था अथवा व्यवस्थापन के अन्तर्गत इस प्रकार की सेवाएँ की जाती हैं, जैसे—राज्यों और संव-सेना-विभाग तथा स्वेच्छा-संचालित मानसिक रोग-अस्पताल (चाहे उनका उद्देश्य आर्थिक लाभ हो या न हो), अस्पतालों से सम्बद्ध स्वास्थ्य-गृह अथवा सामुदायिक मनश्चिकित्सा-स्वास्थ्य-गृह या बालनिर्देशन-स्वास्थ्य-गृह, चाहे उनका आर्थिक आधार जो भी क्यों न हो। उपर्युक्त बात पर बल देने के साथ ही इस बात पर भी विशेष जोर दिया जायगा कि मनश्चिकित्सक,स्वास्थ्य-गृहों के मनोवैज्ञानिक और मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता संघटित रूप में और एक दूसरे से मिलकर किस प्रकार कार्य करते हैं और उनका यह सम्बन्ध अपने कार्य की ईमानदारी के कारण स्थापित होता है, केवल कृत्रिम और मौखिक रूप में ही नहीं होता।

मानसिक रोग-अस्पतालों में मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य

जब मानसिक रोग-अस्पतालों में रोगियों की रक्षात्मक और दण्डात्मक देख-भाल तथा रोगों के वर्गीकरण के कार्य से आगे बढ़कर उनके उपचार की ओर अधिक ध्यान दिया

१. **टेसी डी० बर्कमैन—प्रैक्टिस आफ सोशल वर्कर्स इन साइकियाट्रिक क्लिनिक्स ऐण्ड हास्पिटल्स—न्यूयार्क, अमेरिकन एसोशियेशन आफ साइकियाट्रिक सोशल वर्कर्स,**

जाने लगा तो उसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि अस्पताल से रोगियों की मुक्ति के बाद उनके व्यवस्थापन का महत्त्व भी स्वीकार किया जाने लगा। डा० एडोल्फ मेयर ने लिखा है कि अस्पताल से मुक्ति के बाद रोगियों की देख-भाल का कार्य एक शताब्दी पहले ही स्विटजरलैण्ड और फ्रांस में प्रारम्भ हो गया था और उसके बहुत बाद अमेरिका में मानसिक रोग से सम्बन्धित संस्थाओं में उसका प्रारम्भ हुआ।[10] बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक अनेक मानसिक रोग-अस्पतालों में अस्पताल से मुक्ति के बाद रोगियों की सहायता करने वाले अभिकर्ताओं तथा मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ताओं की नियुक्ति काफी संख्या में होने लगी थी।

अस्पताल से मुक्त होने के बाद रोगी की देख-भाल-सम्बन्धी जिस सेवा का उस समय प्रारम्भ हुआ था, उसका उत्तरोत्तर विकास होता गया है, और रोगी की पेरोल पर रिहाई के काल में अथवा वहाँ से स्थायी रूप से रिहा हो जाने के बाद उसकी देख-भाल के अनेक कार्यक्रम सफलतापूर्वक चलाये जाते रहे हैं। रिहाई की इन दो स्थितियों में स्पष्ट रूप से इस आधार पर अन्तर किया जाता है, पहली स्थिति में अस्पताल से अवकाश-मुक्ति मिलने पर रोगी अपने ही घर पर वापस जाकर रहता है और दूसरी स्थिति में अस्पताल से रिहा होने पर उसे किसी अन्य घर में रखने का प्रबन्ध किया जाता है, जिसे पालन-गृह-देख-भाल कहा जाता है। कुछ कार्यकर्ताओं की राय से पालन-गृह की देख-भाल में ऐसे रोगियों को रखा जाता है, जिन्हें उनके निजी घर के पूर्ववर्ती वातावरण में रखना उचित नहीं समझा जाता अथवा जो इस योग्य नहीं होते कि अपनी जीविका के लिए कुछ कर सकें, किन्तु उपर्युक्त अन्तर सर्वमान्य नहीं है। रोगी को अस्पताल से मुक्ति के बाद रहने के लिए कहाँ भेजा जाय, इस सम्बन्ध में निर्णय करने के लिए अधिकांश कार्यकर्ता यह देखते हैं कि क्या वह परिवार, जहाँ से रोगी अस्पताल में आया था, उसे फिर वापस लेने को तैयार है? यदि रोगी का परिवार उसे वापस लेने को तैयार नहीं है अथवा उसे वहाँ वापस भेजना उसके हित में बहुत ही हानिकर सिद्ध हो सकता है तो ऐसी हालत में उसके लिए किसी अन्य परिवार की तलाश करनी पड़ती है, जहाँ वह रह सके। यह निर्णय बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि अस्पताल से बाहर जाने पर रोगी के रहन-सहन-सम्बन्धी अनुभवों के आधार पर ही न केवल यह निश्चय किया जाता है कि उस रोगी की मुक्ति के बाद भी

१९५३। और भी देखिए; उसी संस्था द्वारा प्रकाशित पुस्तिका, "ह्वाट इज साइकियाट्रिक सोशल वर्क" प्रकाशन तिथि अज्ञात, सम्भवतः १९५४।

१०. एडोल्फ मेयर—हिस्टारिकल स्केच एण्ड आउट लुक आफ साइकियाट्रिक सोशल वर्क—हास्पिटल सोशल सर्विस, जिल्द ५, अप्रैल १९२२, पृष्ठ २२१।

कितनी सहायता की जा सकती है, बल्कि यह भी देखा जाता है कि उस सहायता से सन्तोष-जनक लाभ होता है या नहीं।

अस्पताल से मुक्ति के बाद की देख-भाल के सम्बन्ध में और अधिक व्याख्या करने से पूर्व, इस सम्बन्ध में विचार कर लेना आवश्यक है कि सामाजिक कार्यकर्ता के सामने, रोगी के साथ व्यवहार करते समय कौन-कौन-सी समस्याएँ आती हैं। किसी मानसिक रोग-अस्पताल में प्रवेश पाने के पूर्व रोगी की स्थिति के सम्बन्ध में दो डाक्टरों का प्रतिज्ञाबद्ध प्रमाण-पत्र आवश्यक होता है। कभी-कभी प्रवेश के पूर्व उसके और उसके परिवारके तथा समुदाय के बारे में भी कुछ विवरण उपस्थित किया जाता है। यह विवरण उन राज्यों और जनपदों के जनपद-कल्याण-विभाग के कार्यकर्ताओं द्वारा तैयार किया जाता है, जहाँ इसके लिए समुचित व्यवस्था होती है। प्रवेश के समय मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता रोगी के उन सम्बिन्धियों से बातचीत करते हैं। उस समय भी रोगी के सम्बन्ध में कुछ और जानकारी प्राप्त की जाती है। इन सब कार्यों का उद्देश्य यह होता है कि रोगी के अस्पताल में भर्त्ती होने के कारण उत्पन्न उसके परिवार की कुछ समस्याओं को सुलझाने में सहायता की जा सके, परिवार वालों की चिन्ता और भय को दूर किया जा सके और उन्हें अस्पताल की सुविधाओं तथा कार्यक्रमों के सम्बन्ध में समझाया जा सके। रोगी के परिवार के साथ इस प्रकार सम्पर्क स्थापित करने का बहुत अधिक महत्त्व है, क्योंकि इससे रोगी के परिवार तथा अस्पताल के बीच आगे जारी रहनेवाले सम्बन्ध का स्वरूप पहले ही निश्चित हो जाता है। इस प्रारम्भिक सम्पर्क द्वारा यह पता चलता है कि रोगी के परिवार के लोगों की धारणा क्या है, क्या वे यह सोचते हैं कि रोगी से उनका पिंड छूटा और उसके सम्बन्धमें उन्हें अब कुछ नहीं करना है अथवा वे इसे इस रूपमें देखते हैं कि अभी तो इस दिशा में यह प्रारम्भिक कार्य है। मानसिक रोगों और मानसिक रोग-अस्पतालों के सम्बन्ध में प्रचलित पूर्ववर्ती रूढ़ धारणाओं के कारण इस सेवा की और भी अधिक आवश्यकता होती है क्योंकि इसके द्वारा रोगी के परिवार वालों को यह अच्छी तरह समझाया जा सकता है कि मानसिक रोग-अस्पतालों का उद्देश्य रोगी का उपचार करके उसे इस योग्य बना देना है कि वह समाज में फिर अपना पूर्व स्थान प्राप्त कर सके, उसका उद्देश्य रोगी को कैदखाने में डालकर उसका जीवन अभिशप्त बना देना नहीं है।

जब रोगी अस्पताल में प्रविष्ट हो जाता है तो उसके बाद मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता रोगी, उसके परिवारतथा समुदाय के साथ सम्पर्क बनाये रखता है। रोगी का वास्तविक चिकित्सकीय और मनश्चिकित्सकीय उपचार तो डाक्टर और उसके सहायक करते हैं, किन्तु प्रायः अनेक मामलों में उपचार के सम्बन्ध में सामाजिक कार्यकर्ता को भी बुलाया जाता है और उसकी सहायता का भी रोगी के ऊपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

उदाहरण के लिए, भावना के क्षेत्र में मुख्यतया सामाजिक कार्यकर्ता का कार्य यह देखना होता है कि किसी व्यक्ति के रोग को उसके परिवार वाले किस रूप में देखते हैं तथा स्वयं रोगी उसके बारे में क्या सोचता है। वैवाहिक जीवन की समस्याओं को, जो प्रायः भावनात्मक कारणों से उत्पन्न होती हैं, सुलझाने में भी उसका महत्त्वपूर्ण योग होता है। इनके अतिरिक्त कई और व्यावहारिक समस्याएँ, जैसे—कानूनी मामले, बीमा, मकान, वस्त्र आदि की समस्याएँ उपस्थित होती हैं, जिनमें कार्यकर्ता की सहायता की आवश्यकता होती है। सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा की जानेवाली ये सेवाएँ उसके पेशे के कार्यों के अन्तर्गत आती हैं, तथा रोगी के लिए निश्चित उपचार की विधियों में उनका भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मनश्चिकित्सक अनिवार्यतः रोगी की बीमारी के उन पक्षों का विश्लेषण और अध्ययन करता है, जो उसकी आन्तरिक कठिनाइयों को दूर करने में बाधा उत्पन्न करती हैं। किन्तु सामाजिक कार्यकर्ता प्रायः रोगी की उन समस्याओं को भी अपने हाथ में लेता है, जो उसके अच्छे हो जाने के बाद के उसके दैनन्दिन जीवन के कार्यों से सम्बन्धित होती हैं। मनश्चिकित्सक और मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता दोनों ही मानसिक रोग-संस्था की उस समग्र प्रक्रिया के एक अंग होते हैं, जिसके अन्तर्गत रोगी को अपनी क्षमताओं के अनुसार संस्था की सेवाओं से लाभान्वित होने का पूरा अवसर प्राप्त होता है। अस्पताल में रोगी के मनश्चिकित्सकीय उपचारकर्ताओं के दल के सदस्य जब रोगी में सुधार के लक्षण देखते हैं तो उसके उपचार के कार्यक्रम में भी कुछ परिवर्तन किये जाते हैं। कभी-कभी अस्पताल के कर्मचारियों की बैठक में रोगी की स्थिति के सुधार के सम्बन्ध में प्रतिवेदन उपस्थित किया जाता है तथा यह निश्चय किया जाता है कि रोगी के सुधार की हालत में उसकी देख-भाल के लिए कुछ अन्य उपाय निकालना चाहिए। जैसे—या तो उसे उसके निजी परिवार में भेज देना चाहिए अथवा उसके लिए पालन-गृह की देख-भाल की व्यवस्था होनी चाहिए। अस्पताल का समाज-सेवा-विभाग रोगी के सम्बन्धियों के साथ सम्पर्क स्थापित करके यह पता लगाता है कि उनके साधन क्या हैं तथा उनमें से कोई रोगी का उत्तरदायित्व ले सकता है या नहीं, साथ ही वह यह पता लगाने का भी प्रयत्न करता है कि रोगी के भावी जीवन की योजना की और क्या सम्भावनाएँ हो सकती हैं। इस बार फिर कार्यकर्ता को रोगी और उसके सम्बन्धियों की चिन्ता और शंकाओं का सामना करना पड़ता है, ये चिन्ताएँ और शंकाएँ रोगी के अस्पताल में प्रवेश के बारे में नहीं, बल्कि वहाँ से उसकी मुक्ति के बाद की स्थिति के सम्बन्ध में होती हैं।

जब रोगी अस्पताल से मुक्त होता है तो उसके बाद भी उसकी सहायता की आवश्यकता होती है। उस समय यह देखना आवश्यक होता है कि रोगी अपनी नयी परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढाल रहा है या नहीं, यदि उसे किसी रोजगार में लगाया जाता है तो

उसका काम सन्तोषजनक है या नहीं, उसे अस्पताल के बाहरी दवाखाने (अथवा किसी निकटस्थ स्वास्थ्य-गृह) ले जाकर दिखलाना लाभकर होगा या नहीं। निष्कर्ष यह कि यह जानना आवश्यक है कि रोगी रोग की स्थिति से रोगमुक्ति की ओर सन्तोषजनक रीति से अग्रसर हो रहा है कि नहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि अस्पताल में प्रविष्ट होने वाले सभी रोगी इस प्रकार प्रविष्ट हो जाते हैं अथवा अस्पताल से मुक्त होने वाले सभी रोगी समुदाय में व्यवस्थित होकर जीवन व्यतीत करने लगते हैं। किन्तु इससे यह प्रमाणित होता है कि उपचार-सम्बन्धी सेवाओं का उद्देश्य यह है कि अस्पताल में कम से कम रोगी अनिश्चित काल तक रहें और अधिक से अधिक रोगी अस्पताल से मुक्त होकर अपने परिवार तथा समुदाय में जाकर सुव्यवस्थित जीवन बिता सकें। इससे न केवल मानसिक रोगों पर किये जाने वाले खर्च में बचत होती है, बल्कि रोगियों की रचनात्मक शक्तियों के विकास का भी अवसर मिलता है, जिससे वे अपने जीवन को पुनः व्यवस्थित कर सकते हैं। आजकल विविध प्रकार की चिकित्सा-पद्धतियों का ज्ञान इतना विकसित हो गया है और अस्पतालों के भीतर तथा बाहर किये जानेवाले सामाजिक कार्यों का इतना अधिक विस्तार हो गया है कि अब शायद ही कहीं ऐसे रोगी मिलेंगे, जो यह कह सकें कि उन्हें मानसिक रोग-अस्पतालों में ५० वर्ष तक रहना पड़ा है।[११]

मनश्चिकित्सकीय स्वास्थ्य-गृहों में मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य

मनश्चिकित्सकीय वैयक्तिक समाज-सेवा का दूसरा क्षेत्र मनश्चिकित्सकीय स्वास्थ्य-गृह हैं। उसका तीसरा क्षेत्र बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृहों का है, जिनके सम्बन्ध में आगे विचार किया जायगा।

जिन स्वास्थ्य-गृहों के सम्बन्ध में यहाँ विचार किया जायगा, उनके नाम इस प्रकार के होते हैं, जैसे—तंत्रिका-विज्ञान-स्वास्थ्य-गृह, तंत्रिका-मनश्चिकित्सकीय स्वास्थ्य-गृह, मानसिक आरोग्य-गृह और मनश्चिकित्सकीय स्वास्थ्य-गृह। इनमें से कुछ तो सार्वजनिक अस्पतालों से सम्बद्ध होते हैं और कुछ का सम्बद्ध मानसिक अस्पतालों तथा न्यायालयों (फौजदारी और बाल-न्यायालय) से होता है। इनके अतिरिक्त कुछ स्वास्थ्य-गृह समुदाय द्वारा स्वेच्छा दान से चलाये जाते हैं और उनका उद्देश्य किसी एक या कई सामाजिक अभिकरणों के तत्त्वावधान में मनश्चिकित्सकीय सेवा की सुविधा प्रदान करना है।

इन स्वास्थ्य-गृहों का संचालन चाहे जो भी करता हो तथा वे चाहे जिसके साथ सम्बद्ध

११. हेस्टर क्रूचर—फोस्टर होम केयर फार मेण्टल पेशेन्ट्स—न्यूयार्क, द कामनवेल्थ फण्ड, १९४४, पृ० १।

हों, पर उन सबमें मनश्चिकित्सक और मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का सम्बन्ध अनिवार्य होता है। जहाँ तक मानसिक रोग-अस्पतालों का सम्बन्ध है, उनके द्वारा की जाने वाली सेवाओं में बहुत अधिक वैविध्य होता है। अधिकांश स्वास्थ्य-गृहों में रोगी के प्रवेश के समय मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता ही रोगी के साथ साक्षात्कार करता है। जहाँ भी ठोस वैयक्तिक सेवा कार्य किया जाता है, वहाँ कार्यकर्ता द्वारा प्रारम्भिक साक्षात्कार के बाद कार्यार्थी (रोगी) को उत्तरोत्तर अधिक गत्यात्मक प्रक्रिया में लगाने का अवसर प्रदान किया जाता है। आवेदन-पत्र के विषय में रोगी और सामाजिक कार्यकर्ता के बीच जो साक्षात्कार होता है, उससे इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि रोगी की कठिनाई या कठिनाइयाँ क्या हैं, अभिकरण के सम्भावित साधन क्या हैं और स्वास्थ्य-गृह के उपचार से रोगी किस सीमा तक लाभान्वित हो सकता है। उपचार प्रारम्भ होने पर रोगी की औषधि-चिकित्सा और मनश्चिकित्सा का उत्तरदायित्व मनश्चिकित्सक के ऊपर चला जाता है। उस समय भी मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता रोगी की वास्तविक समस्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त करता है, पर उसका ध्यान मुख्य रूप से रोगी के दनिक जीवन के पहलुओं पर केन्द्रित होता है, जैसे—रोगी की आर्थिक स्थिति, आवास आदि का प्रबन्ध, नौकरी, उसके परिवार के सदस्य आदि। प्रायः कार्यकर्ता को रोगी के परिवार के लोगों तथा उसके समुदाय में रहने वाले, दोस्तों, रिश्तेदारों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। मानसिक रोग-अस्पतालों के समान इन मानसिक स्वास्थ्य-गृहों में भी मनश्चिकित्सक और मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता के कार्य परस्पर पूरक होते हैं। इनमें से प्रत्येक विशेष रूप से तो अपने क्षेत्र की सीमा में ही काम करता है, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर रोगी की सहायता की दृष्टि से बैठकों में तथा अन्य समय भी वे एक दूसरे के साथ सहयोग करते हैं।

बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह

यद्यपि अमेरिका में सबसे पहला बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह सन् १९२२ में स्थापित हुआ था, किन्तु इस दिशा में विचार करने का कार्य कई दशकों पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था। सन् १८९६ में लाइटनर विटमेर ने पेन्सिलवानिया यूनिवर्सिटी में एक मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य-गृह का प्रारम्भ किया था। जिसका उद्देश्य केवल शैक्षणिक ज्ञान प्रदान करना था। सन् १९०९ में डा० विलियम हीली ने शिकागो की बाल-मनश्चिकित्सा संस्था में वहाँ के बाल-न्यायालय द्वारा भेजे गये अपराधी बालकों की मनोवैज्ञानिक परीक्षा का कार्य प्रारम्भ किया। डा० विलियम हीली उस संस्था के सर्वप्रथम निदेशक थे। वे स्वयं ओषधि-चिकित्सक और मनश्चिकित्सक दोनों थे और उनके अपराधी मनोवृत्ति से सम्बन्धित कार्यों में सहायता के लिए कई मनोवैज्ञानिक और क्षेत्र-कार्यकर्ता नियुक्त थे, जो बालकों का

मानसिक परीक्षण करते थे तथा उनके अपराधों की पृष्ठभूमि से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्र करते थे। विटमेर और हीली ने जो कार्य किये, उनसे बच्चों के भावात्मक जीवन, उनके पारिवारिक और सामाजिक जीवन की असंगति तथा उनकी अपराधी मनोवृत्ति के बीच के सम्बन्ध-सूत्रों पर बहुत अधिक प्रकाश पड़ा। उनका यह कार्य पूर्ववर्ती, अमरीकी बाल-मनोविज्ञान-वेत्ताओं के शोध-परिणामों के मेल में था और बाद में मनोविश्लेषण-शास्त्र के गत्यात्मक क्षेत्र की उपलब्धियों से भी उन कार्यों की सार्थकता प्रमाणित हुई।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के समय तक इस क्षेत्र में काम करने वालों के लिए विशेष शिक्षा की व्यवस्था की दिशा में कदम उठाया जाने लगा था। साथ ही महायुद्ध की परिस्थितियों के कारण मानसिक क्षमताओं के सम्बन्ध में हमारे ज्ञान में पर्याप्त वृद्धि हो गयी थी, क्योंकि सेना में भर्ती होने वाले लाखों व्यक्तियों का मानसिक परीक्षण किया जाता था, जिससे इस विषय का ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता गया। मनश्चिकित्सा-शास्त्र की तो और भी उन्नति हो रही थी। सन् १९१८ तक न केवल युद्धजन्य मनोदौर्बल्य और उन्माद रोगों के सम्बन्ध में अभूतपूर्व ज्ञान वृद्धि हो गयी, बल्कि इस सम्बन्ध में भी बहुत अधिक सूचनाएँ प्राप्त हुईं कि अपरिहार्य दबाव में पड़ कर मानव-व्यक्तित्व किस प्रकार विपरीत परिस्थितियों से समझौता कर लेता है। यह सब ज्ञान उस पूर्ववर्ती ज्ञान की वृद्धि में सहायक हुआ, जो मानसिक चिकित्सालयों में मनश्चिकित्सकों द्वारा तथा बालकों के मानसिक रोगों की चिकित्सा के क्षेत्र में काम करने वाले मनश्चिकित्सकों द्वारा उपलब्ध किया गया था। इन सब कामों का जो अनुभव हुआ, उसको मानसिक आरोग्य-आन्दोलन के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया गया और वर्तमान शताब्दी के तीसरे दशक के प्रारम्भ से इस क्षेत्र में मानसिक चिकित्सा-सम्बन्धी विविध पद्धतियों——मनश्चिकित्सा-पद्धति, मनोवैज्ञानिक पद्धति, सामाजिक कार्य-पद्धति आदि——का अद्भुत समन्वय प्रारम्भ हो गया।

कामनवेल्थ-कोश

उपर्युक्त पद्धतियों के समन्वय का ही परिणाम बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह के रूप में दिखाई पड़ा। सन् १९२२ में राष्ट्रीय मानसिक आरोग्य समिति के तत्त्वावधान में सबसे पहले इस प्रकार के स्वास्थ्य-गृहों की स्थापना हुई। जिन साधनों की सहायता से इस दिशा में कदम उठाया गया, उनमें से कामनवेल्थ-कोश की राष्ट्रीय समिति द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता विशेष उल्लेखनीय है। यह एक निजी धर्मादासंस्था थी, जिसकी स्थापना सन् १९१८ में हुई थी। बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह कुछ ही दिनों में अपनी विशिष्टताओं के कारण काफी ख्याति पा गया। उसकी विशिष्टता यह थी कि उसमें बालकों की मानसिक चिकित्सा से सम्बन्धित उपर्युक्त पद्धतियों का सम्मिश्रण हुआ था। उसके

कार्यों में बालकों के व्यवहारों और व्यक्तित्व-सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर करने के लिए उपयुक्त कौशल और ज्ञान के विकास की सभी सम्भावनाएँ वर्तमान थीं। आज के बाल निदशन-स्वास्थ्य-गृहों की परिवर्तित कार्य-पद्धति को ध्यान में रखते हुए, जब हम उस समय के बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह के उद्देश्यों पर दृष्टिपात करते हैं तो उसका केवल ऐतिहासिक महत्त्व दिखलाई पड़ता है, क्योंकि उस समय बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह का उद्देश्य बाल-न्यायालय द्वारा भेजे गये बालकों की देख-भाल के माध्यम से केवल बाल-अपराध-सम्बन्धी समस्याओं के विषय में पता लगाना तथा उनका समाधान खोजना था। इसका प्रमाण यह है कि राष्ट्रीय मानसिक आरोग्य-समिति ने बाल-अपराध-प्रभाग के माध्यम से ही सबसे पहले बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृहों के सम्बन्ध में एक प्रदर्शन (प्रदर्शनी) कराया था।

इस आन्दोलन के नेताओं का प्रारम्भ में जो उद्देश्य था, उसके आधार पर नवम्वर सन् १९२१ में एक पंचवर्षीय प्रयोगात्मक कार्यक्रम स्वीकार किया गया और सन् १९२२ की वसन्त ऋतु में उस कार्यक्रम का प्रारम्भ हुआ। कामनवेल्थ-कोश के सन् १९२२ के वार्षिक प्रतिवेदन में उक्त कार्यक्रम के उद्देश्य इस प्रकार लिखे गये थे—

(१) स्कूलों और बाल-न्यायालयों के अपराधी अथवा अपराध की ओर अग्रसर होने वाले बालकों का मनश्चिकित्सकीय अध्ययन करना तथा इस अध्ययन को विकसित करना, साथ ही उस अध्ययन के आधार पर उपचार की उचित पद्धतियों का विकास करना।

(२) विभिन्न स्कूलों में अतिथि-अध्यापकों की व्यवस्था करना तथा उनके कार्यों का विकास करना। इससे स्कूलों में पढ़ने वाले छोटे-छोटे बच्चों के साथ अतिथि-अध्यापकों का सीधा सम्पर्क होता है और यह सम्पर्क बच्चों की समस्याओं को समझने तथा उनके विकास के कार्य की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण होता है।

(३) इस क्षेत्र में कार्य करने की इच्छा रखने वालों तथा उसके लिए योग्य व्यक्तियों के लिए ठोस ढंग के प्रशिक्षण-कार्यक्रम की व्यवस्था करना।

(४) विभिन्न शक्षणिक प्रयत्नों द्वारा इन पद्धतियों के ज्ञान और प्रयोग का प्रचार-प्रसार करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों में से प्रथम तीन उद्देश्यों को कार्य रूप में परिणत करने के लिए अनेक संस्थाओं से, जो पहले से ही स्थापित थीं, सहायता ली गयी। न्यूयार्क-सामाजिक कार्य-विद्यालय को ऐसी सुविधा दी गयी कि वहाँ मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य का अतिरिक्त पाठ्यक्रम रखने तथा इस नवीन क्षेत्र में कार्य करने वाले छात्रों को प्रशिक्षित करने के लिए शिक्षावृत्ति देने की व्यवस्था की जा सकी, साथ ही वहाँ एक मनश्चिकित्सा-

स्वास्थ्य-गृह भी स्थापित किया गया, जहाँ असाधारण समस्याओं वाले बालकों का अध्ययन और उपचार किया जाता था और इस विषय के छात्रों को क्षेत्रीय प्रशिक्षण भी दिया जाता था। राष्ट्रीय मानसिक आरोग्य-समिति ने भी अपना एक नया विभाग—बाल-अपराध-निरोध-विभाग—खोला जिसका काम बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृहों का प्रदर्शन और प्रचार करना था। उसी तरह न्यूयार्क के लोक-शिक्षा-संघ ने राष्ट्रीय अतिथि-अध्यापक-समिति नाम की एक नयी संस्था संघटित की, जो देश के विभिन्न क्षेत्रों में अतिथि अध्यापकों के कार्यों के प्रदर्शन की व्यवस्था करती थी। अपने चतुर्थ उद्देश्य की पूर्ति के लिए कामन-वेल्थ-कोश की ओर से एक अपना अभिकरण स्थापित किया गया, जिसका नाम "बाल-अपराध-निरोध-पद्धति-संयुक्त-समिति" था और जिसका काम कामनवेल्थ-कोश द्वारा संचालित विभिन्न कार्यक्रमों के बीच समन्वय करना तथा लेखों और विशिष्ट शोध-कार्यों द्वारा उन कार्यक्रमों की व्याख्या और प्रचार करना था।

सन् १९२२ के प्रारम्भ में सेण्ट लुई में पहला प्रदर्शनात्मक बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह स्थापित किया गया, जिसमें काम करने के लिए एक मनश्चिकित्सक, एक मनोवैज्ञानिक तथा एक मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को नियुक्त किया गया। इस स्वास्थ्य-गृह में विभिन्न विद्यालयों, संस्थाओं, बाल-न्यायालयों तथा निजी परिवारों से ऐसे बच्चे भेजे जाते थे, जिनके चरित्र और व्यवहार में कोई असंगति या त्रुटि होती थी। इनमें से तीन चौथाई बच्चे केवल बाल-न्यायालय से भेजे जाते थे और शीघ्र यह अनुभव किया जाने लगा कि यदि बाल-अपराध-निरोध-सम्बन्धी सेवा का प्रारम्भ करना है तो वह ऐसे चरित्र वाले बच्चों से प्रारम्भ होनी चाहिए, जिन्हें बाल-न्यायालय में भेजने की नौबत बहुत बाद में आती है। इन नये स्थापित बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृहों का उद्देश्य 'बाल-अपराध-निरोध-समिति' के नाम को सार्थक करने वाले कार्य करना नहीं था, यदि वे ऐसा करने लगते तो निश्चय ही वे कुछ भी प्रभावोत्पादक कार्य नहीं कर पाते, क्योंकि स्वास्थ्य-गृहों के अलावे बहुत से ऐसे अभिकरण थे, जिनका मुख्य उत्तरदायित्व बाल-अपराध-निरोधक कार्य करना ही था। यह बात नारफोक, वर्जीनिया, डालास, टेक्सास, मीनियापोलिस और सेण्टपाल, लास एन्जलेस, क्लीवलैण्ड और फिलाडेल्फिया के स्वास्थ्य-गृहों के शेष समय में किये जाने वाले प्रदर्शनात्मक कार्यों से अधिकाधिक स्पष्ट होती गयी। यह अनुभव किया जाने लगा कि इस कार्य के लिए सामुदायिक सेवा-संस्थाएँ—जैसे विद्यालय तथा सामाजिक अभिकरण विशेषकर बाल-सेवा-अभिकरण बहुत महत्त्व की थीं, क्योंकि वे बालक की, उसके रचनात्मक उद्देश्य की पूर्ति के प्रयत्न में, सहायता करती हैं तथा उसे ऐसी क्षमता प्रदान करती हैं, जिसके माध्यम से उसको अच्छी तरह समझा जा सकता है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि स्वास्थ्य-गृह के संघटनात्मक अवयवों में सामाजिक

कार्य के अवयव पर अधिक बल देना आवश्यक था और इसका परिणाम यह हुआ कि स्वास्थ्य-गृहों के कर्मचारियों की संख्या के अनुपात में परिवर्तन कर दिया गया और अब प्रत्येक स्वास्थ्य-गृह में एक मनश्चिकित्सक, एक मनोवैज्ञानिक और तीन सामाजिक कार्यकर्ता रखे जाने लगे।

स्वास्थ्य-गृह के कार्य

बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह में जब किसी बच्चे का मामला प्रेषित किया जाता है तो सबसे पहले सेवा प्राप्त करने के लिए बच्चे की ओर से आवेदन-पत्र दिया जाता है और उसके बाद बच्चे के अध्ययन और उपचार की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। स्वास्थ्य-गृह के अधिकारी अधिकतर यही पसन्द करते हैं कि आवेदन-साक्षात्कार के लिए बालक के माँ-बाप बिना बालक को साथ लिए, अकेले ही आयें। साक्षात्कार के समय बच्चे के माता-पिता (दोनों या दोनों में से कोई एक) मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को यह बताते हैं कि बच्चे की कठिनाई का स्वरूप क्या है? साथ ही सामाजिक कार्यकर्ता भी स्वास्थ्य-गृह, वहाँ की सेवाओं और कार्यक्रम की व्यवस्था के सम्बन्ध में बच्चे के माता-पिता को अवगत कराता है। इस साक्षात्कार के समय माता-पिता को यह सोचने का अवसर मिल जाता है कि उन्हें अपने बच्चे को उपचार के लिए यहाँ लाना चाहिए या नहीं, साथ ही स्वास्थ्य-गृह के कर्मचारियों को इस बात पर विचार करने का मौका मिल जाता है कि उस बच्चे की समस्याएँ या कठिनाइयाँ स्वास्थ्य-गृह के सेवा-क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं या नहीं। यदि दोनों पक्ष इस सम्बन्ध में एकमत हो जाते हैं कि इस मामले में स्वास्थ्य-गृह की सहायता अपेक्षित है तो बच्चे को मनश्चिकित्सक के साथ तथा बच्चे के माँ-बाप को मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता के साथ मिलाने का समय निश्चित किया जाता है और साथ ही शुल्क का धन भी बता दिया जाता है, जो आवेदक की आय के अनुसार निश्चित किया जाता है। यदि बच्चे के चिकित्सकीय या मनोवैज्ञानिक परीक्षण की आवश्यकता समझी जाती है तो स्वास्थ्य-गृह के भीतर अथवा कहीं अन्यत्र उसके लिए प्रबन्ध किया जाता है। चूँकि प्रत्येक बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह में एक मनोवैज्ञानिक होता ही है, इसलिए मनोवैज्ञानिक परीक्षण स्वास्थ्य-गृह में ही होता है, किन्तु चिकित्सकीय परीक्षण प्रायः स्वास्थ्य-गृह के बाहर अथवा उसके अधीनस्थ किसी डाक्टर द्वारा होता है। बच्चे की चिकित्सा करने वाला मनश्चिकित्सक यह काम प्रायः नहीं करता है।

एक बार जब स्वास्थ्य-गृह में बच्चे के परीक्षण आदि का कार्य शुरू हो जाता है तो सामान्य पद्धति यह है कि प्रतिसप्ताह मनश्चिकित्सक बच्चे को देखता है और मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता बच्चे के माता-पिता से मुलाकात करता है। जब तक उपचार चलता

रहता है, उपचार करने वाले मनश्चिकित्सक तथा सामाजिक कार्यकर्ता मिलकर आपस में विचार-बिमर्श करते हैं, जिससे दोनों को एक दूसरे से यह पता चलता रहता है कि बालक की स्थिति में कुछ सुधार हुआ या नहीं। यदि बालक स्वास्थ्य-गृह में किसी सामाजिक अभिकरण या विद्यालय द्वारा भेजा गया रहता है तो उन्हें बराबर यह सूचित किया जाता है कि उपचार-साक्षात्कार द्वारा बच्चे में कुछ सुधार हुआ या नहीं और साथ ही स्वास्थ्य-गृह की बैठकों में सम्बन्धित विद्यालय या अभिकरण के प्रतिनिधियों को भी विचार-विमर्श के लिए बुलाया जाता है। स्वास्थ्य-गृह के लिए यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि बालक तथा उसके माता-पिता के जीवन में क्या परिवर्तन हो रहा है, साथ ही सामाजिक अभिकरण और विद्यालय को भी इस बात का ज्ञान होना आवश्यक है कि स्वास्थ्य-गृह की सहायता से बालक में कुछ परिवर्तन हो रहा है या नहीं। किसी बच्चे का आवेदनपत्र स्वीकृत करने के उपरान्त मनश्चिकित्सक के साथ अन्य सम्बन्धित व्यक्ति मिल कर यह विचार करते हैं कि वह बालक ऐसे मानसिक स्तर वाले बालकों के वर्ग में आता है या नहीं, जिनकी सहायता स्वास्थ्य-गृह अधिक प्रभाव-पूर्ण ढंग से कर सकता है। अनुभव से यह देखा गया है कि निश्चित रूप से अवसामान्य मानसिक स्तर वाले बच्चे स्वास्थ्य-गृह के उपचार से अधिक लाभ नहीं उठा पाते हैं और इसीलिए स्वास्थ्य-गृह ऐसे बच्चों का आवेदनपत्र स्वीकार नहीं करता। उपचार की प्रक्रिया में ऐसे अवसर भी आते हैं, जबकि स्वास्थ्य-गृह का मनोवैज्ञानिक अन्य लोगों के साथ मिलकर बालक की उन क्षमताओं का विश्लेषण करता है, जो स्वास्थ्य-गृह, स्कूल या घर में बच्चे द्वारा प्रयुक्त न होने के कारण अवरुद्ध हो गयी हैं। उपचार की प्रक्रिया में ऐसी बैठकें भी होती हैं, यद्यपि हर बच्चे के मामले में उनकी आवश्यकता नहीं पड़ती, जिनमें स्वास्थ्य-गृह के कर्मचारी, विशेष रूप से मनश्चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक और मनश्चिकित्सकीय कार्यकर्ता भाग लेते हैं। इस प्रकार की बैठकों से सबको अपने-अपने विचार व्यक्त करने का अवसर मिलता है तथा इन तीनों विभागों के कार्यों के अन्तर को भी समझने का अवसर मिलता है, जिसके फलस्वरूप किसी बालक की समस्या के सम्बन्ध में प्राय: उपचार का नया मार्ग निकल आता है। व्यक्तित्व और व्यवहार के अध्ययन के क्षेत्र में बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृहों की यह एक महत्त्वपूर्ण देन है कि उनमें विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियों के विशेषज्ञों को सामूहिक चिन्तन का अवसर मिलता है।

इन स्वास्थ्य-गृहों में बहुधा स्कूलों के बालकों की समस्याओं, बालकों के बौद्धिक स्तर से सम्बन्धित प्रश्नों तथा उनमें विशेष योग्यताओं की स्थिति या अभाव, के सम्बन्ध में स्कूलों, सामाजिक अभिकरणों और बालकों के माता-पिता के साथ परामर्श करने तथा मनोवैज्ञानिक निदान करने का कार्य किया जाता है। स्वास्थ्य-गृह में पता लगाकर यह

बताया जाता है कि बच्चे की मूल कठिनाई क्या है और यह सुझाव भी दिया जाता है कि बच्चों को उनके लिए उपयुक्त किन अभिकरणों में भेजना चाहिए अथवा उनके सम्बन्ध में किन सामुदायिक सुविधाओं का उपयोग करना चाहिए। स्वास्थ्य-गृह में विचार-विमर्श की इस पद्धति के कारण कभी-कभी उपचार की लम्बी अवधि की समस्या का निवारण हो जाता है। सेवार्थी बहुधा स्वास्थ्य-गृह से सम्पर्क स्थापित करके भी अधिक-से-अधिक लाभ उठा लेते हैं।

स्वास्थ्य-गृह के कार्य और पद्धति—बाल-निर्देशन—स्वास्थ्य-गृहों के आन्दोलन के प्रारम्भिक काल में उनका कार्य उस नाम में निहित क्षेत्र तक ही सीमित था। उस वक्त स्वभावतः यह मान लिया जाता था कि बालक के माता-पिता उसके जीवन से सम्बन्धित निर्देशों के बारे में सुझाव माँगने आयेंगे और उन्हें जो कुछ बताया जायगा उसे वे अवश्य करेंगे, बाद में स्वास्थ्य-गृहों द्वारा बच्चों के माता-पिता को ही उनकी अथवा उनके बच्चों की समस्या का केन्द्र-बिन्दु मान कर उन्हीं पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा, अतः इससे अधिक आसान बात क्या हो सकती थी कि माँ-बाप के दृष्टिकोण को ही ठीक करके सारी समस्या सुलझा दी जाय। इस पद्धति की बुराइयों की ओर अभी ध्यान गया ही था तब तक दूसरी छोर की ओर तेजी से झुकाव प्रारम्भ हो गया। अब उपचार का मुख्य लक्ष्य बालक बन गया और माता-पिता को गौण समझा जाने लगा अर्थात् कानून की शब्दावली में वह मुख्य तथ्य का सहायक बन गया।

समय और अनुभव ने सिद्ध कर दिया कि इन सभी पद्धतियों की अपनी सीमाएँ और अपूर्णताएँ थीं, बाद में स्वास्थ्य-गृहों के सिद्धान्तों में कुछ परिवर्तन हुआ और यह माना जाने लगा कि बालकों को नैतिक उपदेश देकर, सुन्दर तर्क उपस्थित करके अथवा उनके वातावरण को बदल कर उनकी व्यवहार-सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूर की जा सकती हैं। इसका परिणाम यह हुआ और इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी कि बहुत-से लोग, जिसमें स्वास्थ्य-गृह के कर्मचारी भी सम्मिलित थे,स्वास्थ्य-गृहों की उपयोगिता के सम्बन्ध में शंका प्रकट करने लगे। जिस समय तक स्वास्थ्य-गृह यह दावा करते रहे कि वे बच्चों को, बाह्य रूप में ही सही, जादू की छड़ी से ठीक कर देंगे, तब तक बच्चों के माता-पिता को अपनी समस्याओं तथा बच्चों के व्यवहार पर, उनके प्रभाव के बारे में कुछ भी सोचने की आवश्यकता ही नहीं थी। अतः व्यक्तित्व और व्यवहार से सम्बन्धित भावात्मक तथ्यों के विषय में जब तक पूरी तरह अध्ययन नहीं कर लिया गया और चिकित्सा के क्षेत्र में उसका उपयोग नहीं होने लगा, तब तक बाल-निर्देशन स्वास्थ्य-गृहों के कार्य में कोई विशेष उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो सकी। इन सबके मूल में यह विश्वास निहित था कि व्यक्ति के व्यावहारिक चरित्र में तब तक परिवर्तन नहीं हो सकता, जब तक

उन तत्त्वों में परिवर्तन नहीं हो जाता, जिनके कारण उस व्यक्ति के चरित्र का निर्माण हुआ है।

इधर कुछ वर्षों से स्वास्थ्य-गृह में, बच्चों के उपचार के समय, अथवा उसके बाहर बच्चे और उनके माता-पिता के जीवन के परस्पर सम्बन्ध पर विशेष बल दिया जाने लगा है। यद्यपि आज भी स्वास्थ्य-गृहों के नाम के साथ बाल-निर्देशन शब्द जुड़ा हुआ है, फिर भी आज स्वास्थ्य-गृहों का यह उत्तरदायित्व माना जाता है कि वे बालक और उसके माता पिता दोनों की सहायता करें, किन्तु अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि स्वास्थ्य-गृह द्वारा बालक और उसके माता-पिता की जो भी सहायताकी जाती है, वह स्वास्थ्य-गृह के कार्यों का अनिवार्य अंग है। इस नवीन परिवर्तन के साथ-साथ स्वास्थ्य-गृहों का मुख्य कार्य, जो आज भी पूर्ववत् चल रहा है, यह माना जाता है कि बच्चे के भावात्मक विकास में सहायता करनी चाहिए जिससे वह अपनी उन क्षमताओं का अधिक विकास कर सके, जिनके द्वारा वह अपने और अपने वातावरण के बीच उपयुक्त सामञ्जस्य स्थापित कर सकता है। ये सभी बातें बालक के माता-पिता के लिए भी लागू होती हैं, अन्तर इतना ही है कि माता-पिता की सहायता केवल बच्चे के साथ उनके सम्बन्धों को ध्यान में रख कर की जाती है। यद्यपि सामञ्जस्य की परिभाषा और प्रतिमान भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, किन्तु स्वास्थ्य-गृह इस बात पर जोर देता है कि सामञ्जस्य की पहचान यह है कि व्यक्ति अपनी आन्तरिक तथा बाह्य क्षमताओं का अन्य व्यक्तियों के साथ किये जाने वाले व्यवहार में किस प्रकार उपयोग करता है। बहुत-से बच्चे मानसिक और शारीरिक दृष्टि से सामान्य होते हैं और बिना किसी प्रत्यक्ष कठिनाई के जीवन की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर लेने की व्यवस्था कर लेते हैं। किन्तु जब अन्य व्यक्तियों, जैसे—माता-पिता, भाई-बहन, खेल और स्कूल के साथी, अध्यापक आदि, के साथ उनके भावात्मक सम्बन्ध के क्षेत्र में उनका जो व्यवहार होता है, उसमें उनकी कमियाँ दिखलाई पड़ने लगती हैं और उनके व्यवहार की कठिनाइयाँ स्पष्ट हो जाती हैं। जब यह स्थिति इतनी गम्भीर हो जाती है कि माता-पिता घबड़ा उठते हैं अथवा उससे बच्चे का भावनात्मक विकास अवरुद्ध दिखाई पड़ने लगता है तो ऐसी हालत में स्वास्थ्य-गृह सहायता करने के लिए हमेशा तैयार रहता है। स्वास्थ्य-गृह एक सामुदायिक अभिकरण है, जिसकी सेवाओं का उपयोग बालक और उसके माता-पिता दोनों ही कर सकते हैं, किन्तु स्वास्थ्य-गृह में आने और उपचार कराने की पूरी जिम्मेदारी बालक और उसके माता-पिता की ही होती है और यह निश्चित करना उन्हीं का काम होता है कि स्वास्थ्य-गृह की जो सहायता वे प्राप्त करने जा रहे हैं, वह उनकी आवश्यकता के अनुरूप होगी या नहीं।

बालक, उसके माता-पिता और स्वास्थ्य-गृह—स्वास्थ्य-गृह की कार्य-पद्धति का मूलाधार बालक और उसके माता-पिता की उपर्युक्त परस्पर सम्बद्ध विकास प्रक्रिया ही है। बालक और उसके माता-पिता (या दोनों में से कोई एक) किसी स्वास्थ्य-गृह में तभी आते हैं, जब उनके बीच के सहज सम्बन्धों की गति में कोई वक्रता आ गयी रहती है अथवा उनमें से किसी एक या दोनों के विकास की गति या सहज अनुभूति में कोई अवरोध उत्पन्न हो जाता है। स्वास्थ्य-गृह उनकी कुछ भी सेवा करने में तभी सफलता प्राप्त कर सकता है, यदि वह उनको उसी रूप में स्वीकार करता है जैसे वे हैं और उनमें से प्रत्येक की वैसी ही सहायता करता है, जिसकी उसे जरूरत होती है, और जिसका वह समुचित उपयोग कर सकता है। व्यक्ति का, अपने ढंग से अपना जीवन व्यतीत करने का जो अधिकार और उत्तरदायित्व होता है, उसे स्वास्थ्य-गृह अपने कन्धों पर कभी नहीं लेता। उसकी दृष्टि से कार्यार्थी में अपनी समस्याओं को सुलझाने की जो अन्तर्निहित क्षमता होती है, उसमें किसी प्रकार का व्यवधान नहीं डालना चाहिए, बल्कि उसके लिए उसे अवसर प्रदान करना चाहिए। यही सहायता-पद्धति मनश्चिकित्सक और बालक तथा सामाजिक कार्यकर्ता और बच्चे के माता-पिता के बीच की कार्य-प्रक्रिया का आधार होती है। बच्चे और उसके माता-पिता के जीवन में यदि कोई परिवर्तन होता है तो, बहुत धीरे-धीरे होता है और एक का जीवन-परिवर्तन दूसरे व्यक्ति के जीवन की गतिविधि पर आधारित होता है। उदाहरण के लिए, एक माता अपने बच्चे को स्वास्थ्य-गृह में लाती और अत्यन्त आग्रह के साथ उसके उपचार के लिए प्रार्थना करती है, पर उसके इस आग्रह के बावजूद बच्चे में तब तक कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं आता, जब तक कि माँ स्वयं यह सोच कर कि वह भी बालक की परिस्थिति का एक अंग है, अपनी जीवन-विधि को परिवर्तित नहीं करती है। यदि हम एक कल्पित परिस्थिति का उदाहरण उपस्थित करें तो उससे बच्चे और माता-पिता के व्यावहारिक चरित्र में घटित होने वाले परिवर्तन के अन्तरावलम्बन का रूप स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिए कि स्वास्थ्य-गृह किसी जादुई शक्ति से बच्चे के व्यवहार को बदल देने में सफल हो जाता है, पर माता के व्यवहार को पूर्ववत् ही रहने देता है, उसमें परिवर्तन करना आवश्यक नहीं समझता, तो इसमें पूर्ण सन्देह है कि बालक की व्यवहार-सम्बन्धी कठिनाई स्थायी रूप या काफी दिनों के लिए दूर हो सकती है, क्योंकि बच्चे को उस छोटी दुनियाँ का, जिसमें रह कर वह क्रिया-प्रतिक्रिया करता है, उसकी माता (परिवार आदि) भी एक अंग है। यह तो वही परिस्थिति है, जिसमें बच्चा स्वास्थ्य-गृह में आने के पूर्व रहता था और उसी में उसे फिर जाकर रहना पड़ता है। यदि बच्चे के जीवन की पृष्ठभूमि या परिस्थिति पहले-जैसी ही है तो स्वास्थ्य-गृह की सहायता से उसमें होने वाले सुधार के बाद भी वह फिर अपनी पूर्ववर्ती व्यवहार-विधि

को ही अपनायेगा, इसमें सन्देह की अधिक गुंजाइश नहीं है। कारण यह है कि व्यक्तित्व का विकास शून्य में नहीं होता है। उपर्युक्त उदाहरण में यदि स्वास्थ्य-गृह की सहायता से बालक की नहीं, उसकी माँ की जीवन-विधि में सुधार हुआ होता, और उसे भी अपने अपरिवर्तित बच्चे के साथ पूर्ववर्ती परिस्थिति में ही रहने के लिए जाना पड़ा होता, तो उसकी भी वही दशा होती, जिसका वर्णन बच्चे के प्रसंग में किया जा चुका है। यह ऐसा मामला नहीं है, जिसमें दो में से किसी एक पक्ष को दोष देने से काम चल जायगा। स्वास्थ्य-गृह इस फेर में नहीं पड़ता कि दोष किसका है, बल्कि इस बात की चिन्ता करता है कि किस व्यक्ति को सहायता की आवश्यकता है। वह स्वीकार करता है कि बालक और उसके माता या पिता का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न होता है, बालक इस दुनियाँ में कुछ अन्तर्निहित शक्तियाँ लेकर उत्पन्न होता है, उन्हीं शक्तियों को आधार बना कर वह अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है और उसके व्यक्तित्व के निर्माण में उसके वातावरण——अर्थात् बालक से सम्बद्ध व्यक्तियों——का बहुत अधिक योग होता है। स्वास्थ्य-गृह को यह भी जानकारी होती है कि बालक के माता-पिता ने अनेक वर्षों के लम्बे काल में अपने व्यक्तित्व का स्वरूप विकसित किया है और वर्तमान में अपने बच्चों के व्यक्तित्व-विकास की प्रक्रिया तथा अपने चतुर्दिक की दुनिया के साथ अपने जीवन का सामंजस्य स्थापित करने के प्रयत्न में भी वे अपना व्यक्तित्व का विकास करते चलते हैं। मानव-व्यक्तित्व के गत्यात्मक विकास-सम्बन्धी इस धारणा के अनुसार ही स्वास्थ्य-गृह बालक और उसके माता-पिता के सेवा-कार्य में प्रवृत्त होता है।

बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह का किसी भी हालत में यह उद्देश्य नहीं होता कि वह किसी बच्चे के माता-पिता को किसी विशेष ढंग से जीवन बिताने के लिए आदेश दे या मजबूर करे। वह यह स्वीकार करता है कि प्रत्येक मानव का व्यक्तित्व अपनी विशिष्टताएँ रखता है और इसी कारण विभिन्न व्यक्तियों के व्यक्तित्व में अन्तर होता है। इसी विश्वास की तार्किक परिणति में यह मान्यता है कि व्यक्ति अपने जीवन की योजना स्वयं बना कर उसे कार्यान्वित कर सकता है, किसी बाहरी अभिकरण द्वारा बनायी गयी जीवन-योजना कभी भी सफल रूप में कार्यान्वित नहीं की जा सकती। कोई व्यक्ति किसी अभिकरण, (इस प्रसंग में स्वास्थ्य-गृह) में इसलिए नहीं आता कि उसके जीवन-क्रम को उलट-पलट दिया जाय या उसे अस्तव्यस्त करके उसे एक बिलकुल नया ही व्यक्ति बना देने का प्रयत्न किया जायगा, इसके विपरीत वह ऐसी सहायता चाहता है, जिससे वह अपने वर्तमान व्यक्तित्व के अनुरूप ही अधिक अच्छी तरह जीवन बिता सके। कोई माँ जब अपने बच्चे को लेकर स्वास्थ्य-गृह में आती है तो वह अपनी दृष्टि में दो-एक छोटी-मोटी बातों में ही सहायता चाहती है और यदि उसके लिए उससे यह माँग की जायगी कि अपनी

समूची जीवन-विधि को बदल दे तो वह जी-जान से इसका विरोध करेगी। वह स्वेच्छा से स्वास्थ्य-गृह में आती है, उसे जैसी सहायता की आवश्यकता होती है वह उसे प्राप्त करती है और उसके बाद यदि वह सोचती है कि उसकी आवश्यकता पूरी हो गयी, तो वह वहाँ से चली जाती है। यदि वह, कृत्रिम रूप में ही सही, अपने या अपने किसी बच्चे के विषय में कोई राय माँगने आती है तो भी वह उस विषय से सम्बन्धित परामर्श के अतिरिक्त और कुछ भी सुनना पसन्द नहीं कर सकती। स्वास्थ्य-गृहों को बहुत पहले से यह अनुभव हो चुका है कि ऐसा परामर्श जो कार्यार्थी के उपचार-कार्य से सीधे-सम्बन्धित नहीं है, बिलकुल व्यर्थ जाता है। इसके कम-से-कम दो निश्चित कारण हैं। एक तो यह है कि परामर्श देते समय, यदि परामर्श देना जरूरी ही हो, कठिनाइयों के कारणों का शायद ही कभी पूर्ण ज्ञान होता है। व्यक्ति अथवा उसकी परिस्थिति को बदलने का प्रयत्न करने के पूर्व उन तथ्यों को जानना आवश्यक है, जिनके कारण कोई विशेष कठिनाई उत्पन्न हुई है। बहुत अधिक परामर्श देना तो केवल कार्य और कारण के सम्बन्धों के पूर्ण ज्ञान में अवरोध उपस्थित करने के समान है। दूसरा कारण यह है कि एक व्यक्ति का किसी दूसरे व्यक्ति को परामर्श देना उसके आत्म-निर्णय के अधिकार को छीनना है। वस्तुतः परामर्श देते समय परामर्शदाता मानों यह कहता है कि "यदि मैं तुम्हारी जगह होता तो ऐसा करता।" पर इससे अधिक असत्य बात और कुछ नहीं हो सकती। कोई व्यक्ति किसी भिन्न परिस्थिति में रहने वाले अन्य व्यक्ति की स्थिति में अपने को रखकर यह भविष्यवाणी कैसे कर सकता है कि यदि वह स्वयं उस दूसरे व्यक्ति की परिस्थिति में रहता तो अमुक काम करता। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह काल्पनिक जीवन है, जिसके बारे में वह भविष्यवाणी करता है?

यहाँ कुछ रुक कर इस सम्बन्ध में कुछ और विचार कर लेना आवश्यक है कि माता-पिता बच्चे को बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह में किस कारण लाते हैं और स्वास्थ्य-गृह उनके लिए क्या करता है। कोई समस्याग्रस्त बालक स्वास्थ्य-गृह में तब लाया जाता है, जब उसके माँ-बाप में ऐसे महत्त्वपूर्ण आवेग दिखाई पड़ने लगते हैं, जो उनकी अवरोधपूर्ण दुर्लंघ्य स्थिति के कारण उत्पन्न होते हैं। उन आवेगों में और स्वास्थ्य-गृह में उपचार के समय उनमें उत्पन्न उनके अन्य आवेगों में अपने बच्चे के सम्बन्ध में उनकी भय, आशा, आशंका, प्यार और घृणा की भावनाएँ छिपी रहती हैं। जब बच्चे की माँ अपनी यह समस्या स्वास्थ्य-गृह के सामने लाती है तो इसका यही अर्थ है कि वह अपनी उपर्युक्त भावनाओं को अपनी निजी मानसिक सीमा से बाहर निकाल कर एक तटस्थ और उस विषय के जानकार व्यक्ति के सामने ले जाती है। अधिकतर वह ऐसा इसलिए करती है कि इसी तरह वह उनका सामना करने में समर्थ हो पाती है और अपने-अपने बच्चे तथा

उसकी सहायता की आवश्यकता के विषय में उठने वाले अपने मानसिक द्वन्द्व को भी कुछ हद तक सुलझा लेती है। सामाजिक कार्यकर्ता बालक की माता की भावनाओं को समझता है और उसे इस बात के लिए प्रोत्साहित करता है कि वह स्वास्थ्य-गृह की अधिक-से-अधिक सहायता स्वीकार करने में आपत्ति न करे तथा स्वास्थ्य-गृह की सहायता का उपयोग तब बन्द करे, जब कि वह इस दृष्टि से सुरक्षित हो गयी रहे कि अपनी समस्याओं और अपने बच्चे की कठिनाइयों को सुलझाने के लिए उसमें पर्याप्त शक्ति आ गयी है। अभिकरण (स्वास्थ्य-गृह) यह जानता है कि यह कार्य एक ही दिन में नहीं हो जाता है। बालक की माँ को यह समझने में कुछ अरसा लगता है कि स्वास्थ्य-गृह का अनुभव आकस्मिक नहीं, विकासमान अनुभव होता है। इसीलिए स्वास्थ्य-गृह की सहायता स्वीकार करने में उसे कुछ समय लग सकता है और यह बात उसकी समझ में देर में आ सकती है कि उस सहायता की प्रक्रिया में उसके व्यक्तित्व का अस्तित्व नहीं खोने पायेगा। साथ ही इस सहायता द्वारा वह जीवित रहने के लिए अपनी निजी क्षमताओं को भी उद्बुद्ध कर सकती है।

स्वास्थ्य-गृह का इस प्रकार का आदर्शमूलक स्वरूप-वर्णन पढ़कर यह न समझना चाहिये कि उसमें कोई त्रुटि है ही नहीं, वस्तुतः उसमें अनेक त्रुटियाँ हैं। यद्यपि मनश्चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कार्यकर्ता के एक स्थान पर एकत्रीकरण के फल-स्वरूप स्वास्थ्य-गृह में मानव के व्यक्तित्व और व्यवहार के बारे में विशेषीकृत ज्ञान का विकास हुआ है। फिर भी वहाँ मानव-व्यक्तित्व की पहेली को पूर्णतः नहीं सुलझाया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य-गृहों में कौशल-सम्बन्धी इतनी पूर्णता भी नहीं आ सकी है कि उनके सामने जितनी समस्याएँ आयें, उन सबको वे सुलझाने में समर्थ हो सकें। आज के युग में उपलब्ध ज्ञान-विज्ञान और अद्यावधि विकसित कौशलों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि बच्चों और उनके माता-पिता की अनेक ऐसी कठिनाइयाँ हो सकती हैं, जिनको सुलझाना स्वास्थ्य-गृहों के लिए सम्भव नहीं है। इस प्रकार की सहायता की पद्धति इतनी अधिक वैयक्तीकृत हो चुकी है कि किन्हीं भी दो कार्यार्थियों के लिए एक ही चिकित्सा-कौशल काम नहीं दे सकता। इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में बहुत-से ऐसे लोग हैं, जिनकी सहायता करने में स्वास्थ्य-गृह असमर्थ होते हैं। ऐसे भी बहुत-से मामले होते हैं, जिनमें बालक या उसके माता-पिता स्वास्थ्य-गृह से अथवा किसी भी व्यक्ति से किसी प्रकार की सहायता लेना दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर देते हैं। कभी-कभी स्वास्थ्य-गृह के कर्मचारियों की अपनी ही प्रशिक्षण एवं अनुभव-सम्बन्धी कमी के कारण भी पूरी तरह सहायता नहीं की जा सकती है। अपने अस्तित्व के तीस वर्षों में बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृहों ने अपनी उपयोगिता का पूरी तरह प्रदर्शन किया है, किन्तु साथ ही उन्होंने अपनी खामियों को भी स्वीकार किया है। उनके कुछ कार्यों के देखने से तो यह पता चलता है

कि उन्होंने आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है और कुछ को देखने पर मालूम पड़ता है कि उन्हें गहरी असफलता मिली है। यद्यपि मनुष्य के व्यवहार और व्यक्तित्व को समझने की दिशा में स्वास्थ्य-गृहों की देन बहुत महत्त्वपूर्ण है, किन्तु अभी भी बहुत-सी बातें रह गयी हैं, जिनके सम्बन्ध में अभी पूर्ण ज्ञान नहीं उपलब्ध हो सका है और सम्भवतः स्वास्थ्य-गृह उसी अनागत ज्ञान की प्रतीक्षा में हैं।

विगत दो महायुद्धों के अनुभव

यद्यपि प्रथम महायुद्ध के कारण मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य का प्रारम्भ नहीं हुआ, फिर भी जैसा इस अध्याय में पहले दिखाया जा चुका है, उसने इस के लिए अत्यधिक प्रेरणा दी। दो महायुद्धों के बीच के बीस-पच्चीस वर्षों में यद्यपि मानसिक आरोग्य-विज्ञान के क्षेत्र में बहुत अधिक विकास हुआ था, पर युद्ध के बाद सैनिकों की भर्ती के समय उनके मानसिक परीक्षण का जो परिणाम घोषित किया गया, उसे सुनकर पूरा देश स्तम्भित रह गया। युद्ध के बाद सैनिकों की सेवा-मुक्ति के समय जो सैनिक मानसिक परीक्षण के बाद मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ घोषित किये गये, उनका अभिलेख और भी स्तम्भित करने वाला था। यह सोचकर आश्चर्य होता है कि उन वर्षों में मानसिक आरोग्य-सम्बन्धी जो प्रयत्न किये गये, उनसे कुछ भी लाभ क्यों नहीं पहुँचा। दूसरी ओर यह सोचना भी उचित ही है कि उन वर्षों में मनश्चिकित्सा-शास्त्र की जितनी भी उन्नति हुई, वह यदि न हुई होती तो हमारी स्थिति आज क्या होती।

सन् १९४१ तक दूसरा महायुद्ध हमारे सिर पर भी आ गया था। इस महायुद्ध में मनश्चिकित्सक और मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता विजय-प्राप्ति के प्रयत्नों में किस प्रकार की सहायता कर सकते थे? मनश्चिकित्सकों को युद्धकाल में निम्नलिखित कार्यों में लगाया गया; जैसे—प्रेरणा-केन्द्र, देश के विभिन्न भागों के सामान्य अस्पताल और केन्द्र-अस्पताल और विदेशों में निष्क्रान्त सैनिकों के सामान्य और केन्द्र-अस्पताल। इसके अतिरिक्त उन्हें देश-विदेश के तन्त्रिका-विज्ञान-मनश्चिकित्सा-अस्पतालों, बाहरी रोगियों के लिए स्थापित अस्पतालों, में जिन्हें मानसिक आरोग्य-परामर्श-सेवा-अस्पताल कहा जाता था——रखा जाता था तथा उन बुनियादी प्रशिक्षण-शिविरों में भी रखा जाता था, जहाँ वे भर्त्ती हुए सैनिकों को सैनिक वातावरण में अपने को व्यवस्थित करने में सहायता प्रदान करते थे तथा सैनिक अधिकारियों (कमान) को सैनिकों के साहस और मानसिक-स्वास्थ्य-सम्बन्धी मामलों में परामर्श देते थे। उन्हें उन यात्री जहाजों और अस्पताली जहाजों में भी रखा गया था, जिनसे मानसिक रोगियों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जाता था। उन्हें अनुशासन-बैरकों तथा सैनिक-कैदी-पुनर्वास-केन्द्रों

में भी काम करने के लिए नियुक्त किया गया था। मनश्चिकित्सक लड़ाकू सैनिक टुकड़ियों के साथ भी रहते थे। उन सैनिक केन्द्रों में जहाँ से सेनाओं को अलग-अलग भेजा जाता है अथवा विच्छेदक केन्द्रों में भी वे सैनिकों के परीक्षण-कार्य में अधिकारियों की सहायता करते थे। यही नहीं, वे सैनिक कमानों, स्थल-सेना और वायु-सेना के सैनिकों तथा युद्ध-नाट्य-शालाओं को परामर्श देने का भी कार्य करते थे।[१२]

सैनिक मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य

अमरीकी सेना के इतिहास में पहली बार मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को सैनिक दर्जा प्राप्त हुआ, इस पद के अन्तर्गत सामाजिक कार्यकर्ता को "एस एस एन को २६३" और मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को "एम ओ एस २६३" कहा जाता था। जैसा एलिजाबेथ रास ने लिखा है—"सैनिक मनश्चिकित्सकीय सामाजिक-कार्यकर्ता भी एक सैनिक ही होता है, पर उसका कार्य लड़ना नहीं बल्कि किसी मनश्चिकित्सकीय दल में किसी विशेषज्ञ मनश्चिकित्सक के प्रशासन के अधीन रहकर कार्य करना है।"[१३] इस प्रकार के कार्यकर्ता का क्या कार्य था? इसका उत्तर भी बहुत सीधा-सादा है, उसका कार्य था—युद्ध करने वाले सैनिकों की शक्ति को सुदृढ़ बनाकर युद्ध में विजय प्राप्त करने में सहायता करना। यहाँ पुनः श्रीमती रास के लेख से उद्धरण देना आवश्यक है—

१२. विलियम सी० मेनिंगर—"साइकियाट्रिक एक्सपीरियन्स इन द वार, १९४१–१९४६"—अमेरिकन जरनल आफ साइकियाट्री, जिल्द १०३, मार्च १९४७, पृष्ठ ५७७–५८६। नौसेना-सम्बन्धी इस प्रकार के अनुभवों के लिए देखिए—एफ० जे० ब्रेसलैण्ड—"साइकियाट्रिक लेसन्स, फ्राम वर्ल्ड वार सेकेण्ड"—अमेरिकन जरनल आफ साइकियाट्री, जिल्द १०३, मार्च १९४७, पृष्ठ ५८७–५९३। वायु-सेना-सम्बन्धी अनुभवों के लिए देखिए—जे० एम० मरे—"एकम्पलिशमेण्ट्स आफ साइकियाट्री इन दि आर्मी एयर-फोर्सेज"—अमेरिकन जरनल आफ साइकियाट्री, जिल्द १०३, मार्च १९४७, पृष्ठ ५९४–५९९। और भी देखिए—विलियम सी० मेनिंगर कृत—"साइकियाट्री एण्ड द वार"—शीर्षक निबन्ध, जो माडर्न एटीच्यूड्स इन साइकियाट्री नामक पुस्तक में है—न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४६, पृष्ठ—९०–११५।

१३. एलिजाबेथ एच० रास—"ह्वाट्स सो डिफरेन्ट एबाउट आर्मी साइकियट्रिक सोशल वर्क"—द फेमिली, जिल्द २७, अप्रैल १९४६, पृष्ठ ७०।

"सेना के अन्तर्गत सामाजिक सेवाओं की व्यवस्था इसलिए की जाती है कि युद्ध में शत्रु को पराजित करने के लिए प्रथम श्रेणी के लड़ाकू तैयार किये जा सकें। उन सेवाओं से सैनिक-दलों की आवश्यकताओं की पूर्ति उसी तरह होती है, जिस प्रकार ओषधि-चिकित्सा और मनश्चिकित्सा से होती है........सिद्धान्त रूप में सेना-विभाग को इस बात की विशेष चिन्ता होती है कि प्रत्येक सैनिक का एक सच्चे वीर के रूप में विकास और अभिवृद्धि होनी चाहिए। अतः सैनिकों की इस आवश्यकता की प्रभावोत्पादक ढंग से और शीघ्रतापूर्वक पूर्ति के उद्देश्य से इन सेवाओं की व्यवस्था की गयी है, और इस युद्ध में तो अन्य युद्धों की अपेक्षा व्यक्ति की इस प्रकार की सेवा की और भी अधिक आवश्यकता है।"[१४]

सैनिक सेवा में नियुक्त मनश्चिकित्सकों और मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ताओं का समान लक्ष्य यह था कि वे सेना में काम करने वाले उन सैनिकों की मानसिक अव्यवस्था को दूर करने के कार्य में सहायता करें, जो मानसिक और व्यवहार-सम्बन्धी कठिनाइयों का सामना कर रहे थे। जो सैनिक पुनः सैनिक सेवा में लौटने के योग्य न हो पाते थे, उनके लिए इस प्रकार की सहायता की व्यवस्था की जाती थी कि वे पुनः समाज में जाकर अच्छी तरह नागरिक जीवन व्यतीत कर सकें।[१५] सामान्यतया सैनिक मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता भी वही काम करते थे, जो सैनिक मनश्चिकित्सक करता था, अन्तर इतना ही था कि उन्हें सर्वेक्षण, प्रशासन, और शोध-सम्बन्धी विशेष कार्य भी करना पड़ता था। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद की अवधि में सैनिक मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ताओं के सेवा-कार्यों का एक विस्तृत सन्दर्भ ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में जो सामग्री दी गयी है, उसका अधिकांश युद्ध में काम करते समय उन सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा ही प्रस्तुत किया गया था अथवा उन्होंने बाद में अपने अनुभवों का मूल्यांकन करते हुए और मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य या समग्र सामाजिक सेवाकार्य के पेशे के लिए उनका महत्त्व प्रतिपादित करते हुए उस ग्रन्थ की सामग्री प्रस्तुत की थी।"[१६]

१४. वही पृष्ठ ६४।

१५. विलियम सी० मेनिंगर—"साइकियाट्रिक सोशल वर्क इन दि आर्मी एण्ड इट्स इम्प्लीकेशन्स फार सिविलियन सोशल वर्क"—प्रोसीडिंग्स आफ द नेशनल कान्फ्रेन्स आफ सोशल वर्क—१९४५, पृष्ठ ७८।

१६. द्वितीय महायुद्ध के समय मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य के सम्बन्ध में विपुल सामग्री प्रकाशित हुई थी, उसको यहाँ उद्धृत करने का प्रयत्न नहीं किया गया

सेना में मनश्चिकित्सकीय कार्य पहले पूछ-ताछ के बाद आरम्भ होता था और बाद में प्रशिक्षण, वर्गीकरण, पुनर्वर्गीकरण, व्यवस्थापन, पुनर्वास और सेवा-मुक्ति के विविध अवसरों पर उस कार्य की आवश्यकता पड़ती रहती थी। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि इस प्रकार की सेवा हर जगह, हर समय उपलब्ध हो जाती थी अथवा हर जगह इसके लिए पर्याप्त प्रशिक्षित कर्मचारी होते थे। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि द्वितीय महायुद्ध में अमेरिका के प्रवेश के समय तक विगत २५ वर्षों में मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य-सम्बन्धी कौशलों का इतना अधिक विकास हो चुका था कि उनसे हमारी सेनाओं के लक्ष्य की भी पूर्ति हो सकती थी अर्थात् उनकी सहायता से युद्ध भी जीता जा सकता था। यद्यपि प्रारम्भ में मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य को सेना के लिए उपयोगी मान कर उसमें चालू कराने में काफी कठिनाई उठानी पड़ी थी, पर अब इसमें कोई सन्देह नहीं रह गया है कि युद्ध के सफल संचालन के लिए अन्य अनगिनत सेवाओं के समान इसका भी योग बहुत महत्त्व का होता है।

नागरिक-क्षेत्र के समान सैनिक-क्षेत्र में भी मानश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता अपना ध्यान सैनिक (कार्यार्थी) की उस यथार्थ परिस्थितियों पर केन्द्रित करता है जिनके बीच पड़ कर उसका मानसिक सन्तुलन बिगड़ता है। जिस सेना में १ करोड़ १० लाख

है। फिर भी जो पाठक इसमें दिलचस्पी रखते हों, इसके कुछ या सभी पक्षों की की जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक हों, उनके लिए अबतक प्रकाशित कुछ उपयोगी सन्दर्भ-ग्रन्थों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। उनमें से कुछ अधिक उपयोगी ग्रन्थ ये हैं—मिन्ना फील्ड "बिब्लियोग्राफ़ी आफ द डेवलप्मेण्ट ऐण्ड प्रैक्टिस आफ मिलिटरी साइकियाट्रिक सोशल वर्क"—जुलाई १९४५, वितरक, जोशिया मैकी, फाउन्डेशन, न्यूयार्क। डोरथी एलक्रो—"सेलेक्टेड बिब्लियोग्राफी आन साइकियाट्रिक सोशल वर्क"—मई १९४५—अमेरिकन एशोसियेशन आफ साइकियाट्रिक सोशल वर्कर्स। सौल हाप्सटीन ने जो सन्दर्भात्मक सूचनाएँ दी हैं, वे विशेष महत्त्व की हैं—सौल हाप्सटीन—"डिफरेन्सेज इन मिलिटरी साइकियाट्रिक केस वर्क प्रैक्टिस"—जरनल आफ साइकियाट्रिक सोशल वर्क, जिल्द १६, शरद १९४६–४७, पृष्ठ ७४-८३। सैनिक वातावरण में मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य-सम्बन्धी अनुभवों के जो अभिलेख हेनरी एस० मास द्वारा सम्पादित पुस्तक में संकलित हैं, उनका बहुत अधिक महत्त्व है; देखिए—हेनरी एस० मास (संम्पादक)—"ऐडवेन्चर इन मेण्टल हेल्थ"—न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५१।

सैनिक हों, उसमें बहुत-से ऐसे सैनिकों का होना स्वाभाविक है, जो सेना की नवीन और भिन्न परिस्थिति के बीच अपने को व्यवस्थित न कर सकने के कारण मानसिक कठिनाइयों से ग्रस्त हो जाते हैं। यह बात केवल बाकायदे भरती हुए सैनिकों पर ही नहीं, युद्ध में गये स्वयंसेवकों (और स्वयंसेविकाओं) पर भी लागू होती है। सेना के भीतर की जीवन-विधि नागरिक-जीवन-विधि से भिन्न होती है। सेना में पत्नी, बच्चे, माता-पिता, घर, नौकरी-धन्धा आदि की झंझटें दैनिक जीवन का अंग नहीं होतीं, पर नागरिक-जीवन में वह इन्हीं झंझटों में रहकर उनके साथ सन्तोषपूर्ण सामंजस्य स्थापित करता है। किन्तु वे ही नागरिक जब सेना में भर्ती होते हैं तो उन कामों की जगह भरनेवाले काम उन्हें नहीं मिलते। उनकी जगह उन्हें शत्रु को पराजित करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रशिक्षण उन्हें बड़ी-बड़ी छावनियों में मिलता है, जिनमें लाखों व्यक्ति हफ्तों और महीनों तक एक साथ रहते और काम करते हैं। उसके बाद उन्हें युद्धभूमि में भेजा जाता है, वे जहाजों द्वारा विदेशों के लिए रवाना होते, और समुद्री तटों, जंगलों, रेगिस्तानों और पहाड़ों में जाकर युद्ध करने लगते हैं। इस तरह भूख, थकावट, चोट और मृत्यु ही उनके भाग्य में मिलती हैं।

अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अपना सैनिक कर्तव्य करते हुए जिन्दगी के किसी कदम पर, किसी क्षण, दिन में या रात में मानव होने के नाते इन सैनिकों को भी सामाजिक कार्यकर्ता की सहायता की आवश्यकता पड़ जाती है। किन्तु उस विशाल भीड़ में, जिसे सेना कहा जाता है, रहने वाले हजारों, लाखों या करोड़ों व्यक्तियों के मुख से दर्दभरी चीख नहीं निकलती। कारण यह है कि ये लोग भी नागरिक क्षेत्र के लोगों की तरह ही, जहाँ रहते हैं वहीं की जिन्दगी के अनुसार अपने को ढाल लेते हैं और फिर तो वे जिस वातावरण में रहते हैं, उन्हें उसी में सन्तोष मिलने लगता है। पर जो व्यक्ति उस वातावरण के अनुसार अपने को ढाल नहीं पाता और इस कार्य में अत्यधिक कठिनाई या कठिनाइयों का अनुभव करने लगता है, तो सार्जेण्ट, कम्पनी कमाण्डर, स्थानीय अस्पताल और अनुशासन-बैरक के अधिकारियों का ध्यान उसकी ओर जाता है और सम्बन्धित अधिकारियों और विभागों को उसकी चिन्ता करनी पड़ती है। मनश्चिकित्सकों के दल की सेवा का उद्देश्य ऐसे ही व्यक्तियों की सहायता करना होता है।

इन व्यक्तियों की समस्याएँ विविध प्रकार की और सीमाहीन होती हैं, उनका सम्बन्ध सैनिक के उस नागरिक जीवन से हो सकता है, जिसमें वह अपनी नौकरी या काम-धन्धा परिवार, और मित्रों के बीच रह कर सन्तोष प्राप्त करता था अथवा सैनिक जीवन से हो सकता है, जिसमें वह व्यक्तियों की ऐसी भीड़ में खो जाता है जिसमें और भी बहुत-से लोग उसी की तरह व्याकुलता, घबड़ाहट, निराशा और हताशा के चंगुल में फँसे हुए

हैं। जो व्यक्ति नागरिक जीवन में संरक्षणात्मक उपायों द्वारा किसी तरह अपनी मानसिक स्थिति को संतुलित रखते या किसी तरह उस सन्तुलन को सँभाले रहते हैं, वे सैनिक वातावरण में एकाएक पहुँचने पर एकदम किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं क्योंकि वहाँ प्रारम्भ में नागरिक जीवन की तरह की कोई टेक नहीं मिल पाती। अतः इसकी उन पर यह प्रतिक्रिया होती है कि या तो वे बीमार पड़ जाते हैं या वहाँ से भाग जाते हैं अथवा किसी सैनिक अधिकारी से लड़ पड़ते या उस पर वार कर बैठते हैं।

यदि कोई व्यक्ति भर्ती के समय की पूछ-ताछ और भर्ती के बाद की शिवर की जिन्दगी के धक्के को किसी प्रकार बर्दाश्त कर लेने में सफल हो जाता है, तो भी प्रशिक्षण के काल में उसके कठिनाई में पड़ने की आशंका बनी रहती है। उनको सैनिक प्रशिक्षण के कार्य असह्य प्रतीत हो सकते हैं अथवा सेना के विशेषीकृत पेशों या कार्यों के चुनाव में अपनी इच्छा की अभिव्यक्ति करने में उन्हें कठिनाई का अनुभव हो सकता है। और यदि वे उच्च बौद्धिक स्तर के तथा पहले से ही किसी-न-किसी पेशे की जानकारी रखने वाले व्यक्ति हैं, फिर भी वे सैनिक वातावरण में अपने को व्यवस्थित करने में असमर्थता का अनुभव कर सकते हैं।

बहुत-से व्यक्तियों की कठिनाइयाँ उस समय उत्पन्न होती हैं, जब प्रशिक्षण की अवधि समाप्त होने वाली रहती है और यह निश्चित हो जाता है कि अब उन्हें युद्ध के लिए विदेश में भेजा जायगा। बहुत-से व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो युद्धभूमि में वास्तविकता का सामना करने पर भय और चिन्ता का शिकार हो कर अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं। अन्य व्यक्तियों की भयंकर परेशानियाँ उस समय शुरू होती हैं, जबकि वे युद्धभूमि में घायल होते या घायल होकर काफी समय तक अस्पताल में पड़े रहते हैं अथवा अस्पताल में अच्छे होकर फिर युद्धभूमि में भेजने के योग्य हो जाते हैं।

कुछ सैनिकों की मानसिक समस्याएँ उनके सैनिक-जीवन के अन्तिम काल में प्रारम्भ होती हैं, और उनकी चरम परिणति सैनिक की स्थायी अक्षमता या स्नायविक दौर्बल्य के कारण उसकी सेवा-मुक्ति के रूप में होती है। कुछ ऐसे भी होते हैं, जिनकी समस्या यह होती है कि वे अवकाश-प्राप्ति के बाद नगरिक जीवन कैसे बिता सकेंगे और यही समस्या उनका मानसिक सन्तुलन बिगाड़ देती है।

यहाँ यह बता देना और बल देकर बता देना आवश्यक है कि सैनिकों की मानसिक विकृतियों की स्थिति के जो उदाहरण यहाँ दिये गये हैं, देश के कुल सैनिकों की संख्या के अनुपात में उनकी प्रतिशत संख्या बहुत कम है। यों तो जितने व्यक्ति नागरिक जीवन छोड़कर सैनिक जीवन में प्रवेश करते हैं और वहाँ शिविरों से युद्धभूमि और फिर सैनिक जीवन से सेवामुक्ति की स्थितियों से होकर गुजरते हैं, वे सभी कभी-न-कभी कठिनाइयों

का अनुभव करते हैं। किन्तु यहाँ केवल ऐसे व्यक्तियों की चर्चा की जा रही है, जिनके ऊपर उक्त कठिनाइयों की प्रतिक्रिया ऐसी होती है, जिससे युद्ध के समय सेना के बल और क्षमता में कमी होने की आशंका रहती है। यहाँ यह बात फिर दुहरा देने की आवश्यकता है कि सेना की उद्दाम और अनिरुद्ध गति का लक्ष्य शत्रु को पराजित करना है। अतः उस लक्ष्य तक पहुँचने में जिस किसी उपाय या वस्तु को सहायक समझा जाता है, उसका प्रयोग किया जाता है। उसी तरह उस लक्ष्य तक पहुँचने में बाधा उपस्थित करने वाली बातों या व्यक्तियों का त्याग किया जाता है अथवा यदि सम्भव हो तो उनका सुधार और उद्धार करके फिर उन्हें अपने काम के लिए उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया जाता है। इसी अन्तिम उद्देश्य की पूर्ति के लिए सेना के अन्तर्गत मनश्चिकित्सा और मनश्चिकित्सकीय सामाजिक सेवा का प्रारम्भ किया गया और इस तरह उत्तरोत्तर उससे अधिक-से अधिक लाभ उठाया जाने लगा।[१७]

युद्ध में सफलतापूर्वक सहायता प्रदान करने का श्रेय प्राप्त करने के बाद अब इस युद्धोत्तर काल में जब कि हम सब लोग तरह-तरह के संघर्षों में हताश होकर जूझ रहे हैं, क्या मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य फिर अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकता है? हाँ, शायद उतने प्रदर्शनीय रूप में तो नहीं, जैसा प्रथम महायुद्ध के बाद उसकी उपयोगिता सिद्ध हुई थी, फिर भी इस समय उस कार्य द्वारा व्यक्तियों की (और राष्ट्रों की भी) इस तरह महत्त्वपूर्ण और सशक्त सहायता की जा सकती है कि वे रचनात्मक जीवन व्यतीत करने के लिए अपनी क्षमताओं का अधिक-से-अधिक सन्तोषजनक उपयोग कर सकें। इन सेवाओं और उनकी देन को आज कितना महत्त्व दिया जा रहा है, यह इसी से स्पष्ट है कि आज चारों ओर प्रशिक्षित मनश्चिकित्सकीय कार्यकर्ताओं और मनश्चिकित्सकों की माँग बहुत अधिक बढ़ गयी है। इस प्रकार की सेवाओं और कार्यकर्ताओं के लिए राजकीय कोश की सहायता से चलने वाली राष्ट्रीय योजना लागू करने के आन्दोलन भी

१७. इस प्रसंग में अमरीकन रेडक्रास द्वारा द्वितीय महायुद्ध में मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य के विकास और प्रसार की दिशा में किये गये कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अमरीकन रेडक्रास ने सैनिक केन्द्रों और संस्थाओं में पूर्णरूप से प्रशिक्षित सैकड़ों वैयक्तिक समाज-सेवा-कार्यकर्ता भेजने का प्रबन्ध किया, और उन कार्यकर्ताओं से अपेक्षित तथा उनके द्वारा किये गये सेवा-कार्य का स्तर इतना ऊँचा था कि उससे हमारी सेना के कल्याणसम्बन्धी कार्यों में अत्यधिक सहायता मिली। देखिए—इमोजीन एस० यंग—"अमेरिकन रेड क्रास साइकियाट्रिक सोशल वर्क"—पृष्ठ २२८–२३८।

प्रारम्भ हो गये हैं। कांग्रेस ने संयुक्तराज्य-जन-स्वास्थ्य-विभाग को यह उत्तरदायित्व सौंपा है कि वह देश भर के लिए मानसिक स्वास्थ्य-सम्बन्धी कार्यक्रम बना कर उसे चालू करे तथा उसका विकास एवं प्रसार करे। राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य-कानून में उसके उद्देश्यों का उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में हुआ है—

इसका उद्देश्य यह "है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के लोगों के मानसिक स्वास्थ्य का विकास किया जाय और उसके लिए मानसिक असन्तुलन के कारणों, निदान और उपचार के विषय में शोध, अन्वेषण, प्रयोग और प्रदर्शन के कार्यक्रम चलाये जायँ। इस तरह के शोध-कार्यों को सरकारी और गैर-सरकारी अभिकरण प्रारम्भ करें तथा उनकी सहायता करें और उन सब शोधों के जो परिणाम निकलें उनको कार्य रूप में परिणत किया जाय, साथ ही मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में कार्य करने के लिए कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने की व्यवस्था की जाय और मानसिक व्यतिक्रम के निरोध, निदान और उपचार की प्रभावपूर्ण पद्धतियों को लागू करने तथा विकसित करने के कार्य में राज्यों को आर्थिक सहायता दी जाय।"[१८]

राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य-कानून के उद्देश्य के अनुसार संयुक्तराज्य-जन-स्वास्थ्य-विभाग ने जो कार्य आरम्भ किये तथा ऐसे कार्यों में जो ठोस सहायता की, उससे देश भर में इस प्रकार के कार्यक्रमों का प्रारम्भ हुआ है, उन्हें प्रोत्साहन मिला है तथा उनका प्रसार और अभिवर्द्धन हुआ है। इन कार्यक्रमों में न केवल मनश्चिकित्सा, स्वास्थ्य-गृह-मनोविज्ञान, मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य और मनश्चिकित्सकीय उपचर्या के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी है, बल्कि उनमें राज्यों और स्थानीय समुदायों में शोध-सम्बन्धी प्रायोजनाएँ चलाने एवं मानसिक स्वास्थ्य-सेवाओं के विकास के लिए भी व्यवस्था है।

सैनिक क्षेत्र में भी युद्ध की समाप्ति के बाद सेना में मनचिकित्सकीय ज्ञान से लाभ उठाने का कार्य समाप्त नहीं किया गया और न सैनिक-सेवा में मनश्चिकित्सकीय कार्यकर्ताओं की नियुक्ति ही बन्द की गयी। युद्ध-काल की कठिन परिस्थितियों में मनश्चिकित्सकीय ज्ञान के उपयोग से जो लाभ उठाया गया था, उसकी सैनिक-सेवा के अन्तर्गत शान्तिकाल में भी उतनी ही आवश्यकता थी। क्योंकि उन सैनिकों को किसी भी समय फिर अमरीकी जनता की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए बुलाया जा सकता है। इसीलिए अधिकारि-मण्डल को प्रशिक्षित करने के साथ ही सेना भर के कमीशनप्राप्त और

१८. पब्लिक ला ४८७—७९ वी कांग्रेस, अध्याय ५३८—द्वितीय अधिवेशन, एच० आर १५१२। राष्ट्रपति द्वारा ३ जुलाई, १९४६ को हस्ताक्षरित। पृष्ठ—१, धारा २।

कमीशन न पाये हुए अधिकारियों को उस ज्ञान से परिचित कराने की भी व्यवस्था की जाती है।

सैनिक-मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य सेना वालों की दृष्टि में कितना मूल्यवान् है, इसके अनेक निश्चित और ठोस प्रमाण दिये जा सकते हैं। यद्यपि शान्ति-काल में भी स्थायी रूप से सेना में काम करने वाले मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ताओं का वर्गीकरण करके अधिकारी-पद पर रखने के लिए भी पहले से ही व्यवस्था कर दी गयी है। एक नियमित सैनिक अधिकारी को सेना-विभाग के सर्जन जेनरल के कार्यालय में तंत्रिका-विज्ञान-मनश्चिकित्सा-परामर्श-प्रभाग का शाखा-प्रधान नियुक्त किया गया। इसके अतिरिक्त सेना में काम करने वाले मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता सैनिक चिकित्सा-सेवा-दल के नियमित कर्मचारी मान लिये गये हैं और मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य के अधिकारियों की सहायता के लिए नियुक्त कर्मचारियों के प्रशिक्षण का कार्यक्रम भी चालू किया गया है।[१९]

अवकाश-प्राप्त सैनिक-प्रशासन के कार्यक्रमों के अन्तर्गत भी मनश्चिकत्सकीय सेवाओं को काफी हद तक अपनाया गया है। इन सेवाओं की व्यवस्था केवल सार्वजनिक अस्पतालों और क्षेत्रीय कार्यालयों में ही नहीं, बल्कि देशभर में फैले हुए तंत्रिका-विज्ञान-मनश्चिकित्सालयों में भी उक्त प्रशासन की ओर से की गयी है। अवकाशमुक्त सैनिक प्रशासन-अस्पतालों और उनके निकटवर्ती चिकित्सा-विद्यालयों के बीच डीन-समिति की कुशलता के फलस्वरूप ऐसा गठबन्धन है कि उससे अवकाशप्राप्त-सैनिक-प्रशासन द्वारा दी जाने वाली चिकित्सा-सुविधाओं का स्तर और मूल्य बहुत अधिक बढ़ गया है।

व्यक्तिगत चिकित्सा और सामूहिक चिकित्सा

अब तक जिस चिकित्सा का विवेचन किया गया है, उसमें चिकित्सा का सम्बन्ध दो व्यक्तियों से होता है—कार्यार्थी और मनश्चिकित्सक अथवा कार्यार्थी और मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता। किन्तु अब यह बात भी उत्तरोत्तर अधिक स्पष्ट होती जाती है कि चिकित्सा का सम्बन्ध व्यक्ति और समूह के बीच भी हो सकता है, अर्थात् मनश्चिकित्सक या मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता एक समूह या दल का एक साथ ही उपचार करते हैं और उससे भी लोगों को काफी लाभ होता है। इस कार्य को सामू-

१९. एलवुड डबल्यू कैम्प—"साइकियाट्रिक सोशल वर्क इन आर्मी टुडे"—देखिए, हेनरी एस० मास की पुस्तक—पृष्ठ २०२–२२० तथा मिलिट्री साइकियाट्रिक सोशल वर्क। टेकनिकल मैनुअल, पृष्ठ ८–२४१, सेना-विभाग, मार्च १९५०।

हिक कार्य-अभिकरणों के कार्यकर्ताओं द्वारा जनसमूह के साथ किये जाने वाले कार्यों से मिलाकर गड्डमड्ड करने की आवश्यकता नहीं है। पर साथ ही इसमें यह सिद्धान्त स्वीकृत किया गया है कि हम में से अधिकांश व्यक्तियों का जीवन समूहों में ही बीतता है, अतः व्यक्ति का समाजीकरण अनिवार्यतः सामूहिक कार्यक्रम की सहायता से ही किया जा सकता हैं। उसी तरह हम में से किसी को जब अपने भीतर कठिनाइयों का अनुभव होता है और वे कठिनाइयाँ इतना गम्भीर रूप धारण कर लेती हैं कि बाहरी सहायता लेना आवश्यक हो जाता है, उस समय सामूहिक चिकित्सा-पद्धति तथा मनश्चिकित्सा-विशेषज्ञ कर्मचारियों की सेवाएँ बहुत उपयोगी सिद्ध होती हैं।

सामूहिक चिकित्सा अथवा सामूहिक मनश्चिकित्सा अपेक्षाकृत अधिक नवीन चिकित्सा-पद्धति है, जिसका विकास अभी बहुत हाल में हुआ है। सन् १९३४ में "जेविस बोर्ड आफ गार्जियन्स" के एस० आर० स्लैब्सन ने सबसे पहले इस दिशा में कार्यारम्भ किया था। द्वितीय महायुद्ध तक मानसिक विकृति वाले बालकों और माता-पिता की चिकित्सा का जो अनुभव हुआ था, उसके आधार पर इस चिकित्सा-पद्धति को सेना में भी अपना लिया गया। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि सामूहिक चिकित्सा के अपने अन्तर्हित मूल्य तो हैं ही, उनके अतिरिक्त भी सेना की दृष्टि से उसकी उपयोगिता बहुत अधिक है क्योंकि सेना में इतने अधिक लोगों को मानसिक चिकित्सा-सम्बन्धी सेवा की आवश्यकता होती है कि व्यक्तिगत रूप से सबके पास पहुँचना कार्यकर्ताओं के लिए कठिन होता है, अतः सामूहिक चिकित्सा-पद्धति द्वारा अधिक-से-अधिक सैनिकों की सहायता करना सम्भव हो जाता था। प्रत्येक ऐसे सैनिक अस्पताल में जहाँ मानसिक रोगियों की संख्या अधिक होती थी, सामूहिक चिकित्सा की पद्धति अपनायी जाती थी। अस्पतालों के अतिरिक्त विभिन्न पुनर्वास-केन्द्रों, विभिन्न शिविरों में चलने वाले मानसिक आरोग्य-गृहों, मोर्चे के निकटवर्ती निकासी-केन्द्रों, क्लान्ति-केन्द्रों तथा मोर्चों के बहुत पीछे स्थित स्वास्थ्यलाभ-अस्पतालों में सैनिक कैदियों के लिए भी सामूहिक चिकित्सा की व्यवस्था की गयी थी। युद्ध-समाप्ति के बाद तथा अवकाश-मुक्त-सैनिक-प्रशासन-कार्यक्रमों के विस्तार के साथ सामूहिक चिकित्सा-पद्धति अस्पतालों में अवकाशप्राप्त सैनिकों की चिकित्सा का प्रधान अंग बन गयी है।

सैनिक क्षेत्रों के अतिरिक्त राजकीय मानसिक-रोग-अस्पतालों, बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृहों, जेलों, और कभी-कभी भावात्मक कारणों से विचलित मस्तिष्क वाले बालकों के लिए स्थापित आवासीय उपचार-केन्द्रों में भी इस चिकित्सा-पद्धति का प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सामूहिक चिकित्सा व्यक्तिगत चिकित्सा की स्थानापन्न पद्धति नहीं है। इसके विपरीत अपनी जगह इस पद्धति की

उपयोगिताएँ और उसकी अन्तर्निहित विशेषताएँ अलग मूल्य रखती हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि इन दोनों पद्धतियों में अन्तःसम्बन्ध है, क्योंकि बहुत-से अभिकरण और संस्थाएँ इनको एक दूसरे का पूरक मानकर इनका प्रयोग करती हैं, जैसे—सामूहिक चिकित्सा के लिए एकत्र दल में सम्मिलित होने वाले व्यक्ति व्यक्तिगत चिकित्सा के लिए भी मनश्चिकित्सक के पास जाकर लाभ उठा सकते हैं। मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता और मनश्चिकित्सक का परस्पर सम्बन्ध इस चिकित्सा-पद्धति में भी वैसा ही होता है जैसा अन्य चिकित्सा-पद्धतियों में, जिनका वर्णन पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। अर्थात् औषधि-चिकित्सा तथा मनश्चिकित्सा का पूर्ण उत्तरदायित्व मनश्चिकित्सक पर ही होता है।

उपसंहार

इस अध्याय में मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य का जो वर्णन किया गया है, उससे स्पष्ट है कि स्वास्थ्य-गृहों में मनश्चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक और मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ताओं की टोली की सहायता से वैयक्तिक समाज-सेवा का कार्य किया जाता है। मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य का उद्भव और विकास मनश्चिकित्सा-शास्त्र, मनोविश्लेषण-शास्त्र और मनोविज्ञान की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों के आधार पर हुआ है और इसी कारण कुछ लोग यह मानते हैं कि यही वैयक्तिक समाज-सेवाकार्य का आदि और अन्त है। यद्यपि कोई भी योग्य वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता इस भ्रमपूर्ण मान्यता को स्वीकार नहीं करेगा, फिर भी इस प्रकार की विचारधारा अन्य देशों में प्रचलित है, जिससे यहाँ इस सम्बन्ध में कुछ शब्द स्पष्टीकरण के रूप में कहने पड़े। मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य की इस विशेषीकृत सेना के पहले भी वैयक्तिक समाज-सेवा की पद्धति प्रचलित थी। ज्यों-ज्यों मनश्चिकित्सकीय सामाजिक सेवा का विकास होता गया, उसने वैयक्तिक समाज-सेवा की पद्धति से बहुत-सी बातें ग्रहण कीं तथा वैयक्तिक समाज-सेवा-पद्धति ने भी उससे बहुत-सी बातें सीखीं। इस समय जहाँ भी और जिस किसी के तत्त्वावधान में वैयक्तिक सेवाकार्य किया जा रहा है, सर्वत्र उसमें मनश्चिकित्सा-शास्त्र की नवीन उपलब्धियों का उपयोग किया जाता है। यथार्थवादी वैयक्तिक समाज-सेवा-कार्यकर्ता यह अच्छी तरह समझ गये हैं कि वैयक्तिक समाज-सेवा में जिन बातों पर बल दिया जाता है और उसका जो संगठनात्मक स्वरूप है, वे बिलकुल सही हैं। वे यह भी अनुभव करते हैं कि दोनों पद्धतियों के कायक्षेत्र का परस्पर परिवर्तन कभी-कभी बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। इसीलिए पारिवारिक वैयक्तिक-सेवा-कार्यकर्ता तथा मनश्चिकित्सकीय वैयक्तिक-सेवा-कार्यकर्ता एक दूसरे से बहुत-सी बातें ग्रहण करते हैं। परिवीक्षण-अधिकारी मनश्चिकित्सकीय वैयक्तिक-

सेवा-पद्धति की अनेक उपलब्धियों से लाभ उठाता है और उसी तरह मनश्चिकित्सकीय वैयक्तिक-सेवा-कार्यकर्ता भी दण्डित अपराधियों के बीच काम करने वाले वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ताओं के अनुभवों से लाभान्वित होते हैं।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त इस बात का ज्ञान भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि मानव-समाज में दूसरे व्यक्तियों की सहायता के लिए जो भी कार्य किये जा रहे हैं, उन सब पर मानसिक आरोग्य-विज्ञान की उपलब्धियों का प्रभाव पड़ा है। जहाँ इन सेवाओं का स्वरूप बिलकुल निश्चित होता है और वे सामाजिक कार्य-अभिकरणों द्वारा व्यक्तियों की सहायता के लिए प्रयुक्त होती हैं, वहाँ उन्हें वैयक्तिक समाज-सेवा-कार्य कहा जाता है। किन्तु जहाँ वे सामाजिक अभिकरणों से भिन्न अन्य अभिकरणों के तत्त्वावधान में संचालित होती हैं, वहाँ भी उनका मूल्य कम नहीं माना जाता और हमारी संस्कृति के विकास में योग देने वाली महत्त्वपूर्ण सेवाओं में उनकी भी गणना की जाती है। इस प्रकार चर्च में पादरियों की प्रार्थना और परार्श-सम्बन्धी सेवाएँ इसके उदाहरण के रूप में उपस्थित की जा सकती हैं अथवा बालकों की समस्याओं और पारिवारिक जीवन के विषय में परामर्श-सम्बन्धी सेवाओं या शिशु-पाठशालाओं के बालकों की व्यक्तिगत समस्याओं से सम्बन्धित सेवाओं को भी उदाहरण के रूप में रखा जा सकता है।

ये सभी बहुत ही महत्त्वपूर्ण सेवाएँ हैं किन्तु वैयक्तिक समाज-सेवा-पद्धति तथा मनश्चिकित्सकीय सेवाओं के मूलभूत तत्त्वों से उनकी तुलना नहीं की जा सकती, न उन्हें एक-जैसा माना जा सकता है। मनश्चिकित्सकीय सामाजिक सेवा द्वारा भी लोगों की कठिनाइयों को दूर करने में बहुत अधिक सहायता मिलती है, अतः उसका भी सामाजिक कार्य के क्षेत्र में बहुत अधिक महत्त्व है। इसलिए उसको भी उन्हीं सेवाओं के समान मान्यता मिलनी चाहिए, जिनकी जनता को आवश्यकता होती है, न कि उसके सम्बन्ध में यह धारणा होनी चाहिए कि उसमें रहस्यात्मक और जादू-टोने की शक्तियों का प्रयोग किया जाता है।

सहायक ग्रन्थ-सूची

पुस्तक और पुस्तिकाएँ

फ्रेन्ज अलक्जेन्डर और हेलेन रास (सम्पादन)—"डायनेमिक साइकियाट्री" शिकागो, यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, १९५२ ।

फ्रेंडेरिक एच० एलेन—"साइकोथिरेपी विथ चिल्ड्रेन"—न्यूयार्क, डब्लू० डब्लू० नार्टन ऐण्ड कम्पनी, १९४२ ।

क्लीफोर्ड डब्लू बीयर्स—"ए माइण्ड दैट फाउण्ड इटसेल्फ"—न्यूयार्क, लांगमैन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी, १९०८ ।

टेसी डी० बर्कमैन—"प्रैक्टिस आफ सोशल वर्कर्स इन साइकियाट्रिक हास्पिटल ऐण्ड क्लीनिक्स"—न्यूयार्क, अमेरिकन एशोसियेशन आफ, साइकियाट्रिक सोशल वर्कर्स, १९५३ ।

इलिनर क्लीफ्टन और फ्लोरेन्स हालिस—"चाइल्ड थिरेपी : ए केस वर्क सिम्पोजियम"—न्यूयार्क, फेमिली सर्विस एशोसियेशन आफ अमेरिका, १९४८ ।

हेस्टर बी० क्रूचर—"फोस्टर होम केयर फार मेन्टल पेशेन्ट्स"—न्यूयार्क, कामन वेल्थ फण्ड, १९४४ ।

अल्बर्ट ड्यूत्स—"दि मेण्टली इल इन अमेरिका, (संशोधित संस्करण)"—न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४९ ।

—"दि सेम आफ दि स्टेट्स"—न्यूयार्क, हरकोर्ट, ब्रेस ऐण्ड कम्पनी, १९४८ ।

जान डोलार्ड और नील इ० मिलर,—"परसनालिटी ऐण्ड साइकोथिरेपी"—न्यूयार्क, मैक-ग्रा-हिल बुक कम्पनी, १९४० ।

—फ्रैन्क आउल्ड जेर और इलिस एम० ह्वाइट—"स्टेप्स इन साइकोथिरेपी"—न्यूयार्क, दि मैकमिलन कम्पनी, १९५३ ।

"एजुकेशन फार सोशल वर्क : प्रोसीडिंग्स आफ दि डार्टमाउथ कान्फ्रेन्स"——न्यूयार्क, अमेरिकन अशोसियेशन आफ साइकियाट्रिक सोशल वर्कर्स, १९५० ।

स्पर्जियन ओ० इंग्लिश और जेराल्ड एच० जे० पर्सन—"इमोशनल प्राब्लम्स आफ लीविंग"—न्यूयार्क, डब्लू० डब्लू० नार्टन ऐण्ड कम्पनी, १९४५ ।

लूसी फ्रीमैन—"फाइट अगेंस्ट फियर्स : ए वेरी परसनल एकाउण्ट आफ ए ओमेन्स साइकोएनालिसिस"—न्यूयार्क, किंग्स क्राउन प्रेस, १९५१ ।

—"होप फार दि ट्रबुल्ड"—न्यूयार्क, किंग्स, क्राउन प्रेस, १९५१ ।

जार्ज ई० गार्डनर—"केस स्टडीज़ इन चाइल्डहुड इमोशनल डिसएबिलिटीज़"—न्यूयार्क, अमेरिकन, आर्थोसाइकियाट्रिक एशोसियेशन, १९५४ ।

हेराल्ड ए० ग्रीनवर्ग, जूलियन एच० पाथमैन, हेलेन ए सटन, एम० मरजोरिया ब्राउन,—"चाइल्ड साइकियाट्री इन दि कम्युनिटी"—न्यूयार्क, जी० पी० पुटनेम सन्स, १९५० ।

गोर्डेन हेमिल्टन—"साइकोथिरेपी इन चाइल्ड गाइडेन्स"—न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४७ ।

करेन हार्नी—"न्यूरासिस एण्ड ह्यूमन ग्रोथ," न्यूयार्क, डब्लू० डब्लू० नार्टन एण्ड कम्पनी, १९५० ।

लासन जी लारे—"साइकियाट्री फार सोशल वर्कर्स, (संशोधित संस्करण)" न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५० ।

हेनरी पी० मास (सम्पादक)—"एडवेन्चर इन मेण्टल हेल्थ : साइकियाट्रिक सोशल वर्क विथ दि आर्मफोर्सेज इन वर्ल्ड वार सेकेण्ड"—न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५१ ।

जेराल्ड एच० जे० परसन—"इमोशनल डिसआर्डर आफ चिल्ड्रेन"—न्यूयार्क, डब्लू० डब्लू० नार्टन एण्ड कम्पनी, १९४९ ।

थामस ए० सी० रेनी—और—लूथर ई० वुडवर्ड—"मेण्टल हेल्थ इन माडर्न सोसाइटी",—न्यूयार्क, कामनवेल्थ फण्ड, १९४८ ।

टेम्पुल वर्लिंग और लूथर ई० वुडवर्ड—"वोकेशनल रिहैबिलियेशन आफ साइकियाट्रिक पेशेण्ट्स"—न्यूयार्क, कामनवेल्थ फण्ड, १९५० ।

एस० आर० स्लेब्सन—"एनालिटिक ग्रुप साइकोथिरेपी विथ चिल्ड्रेन, एडोलेसेन्ट्स एण्ड एडल्ट्स"—न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५० ।

हैरी स्टैक सुलीवान—"दि इन्टरपरसनल थियरी आफ परसनालिटी"—न्यूयार्क, डब्लू० डब्लू० नार्टन एण्ड कम्पनी, १९५४ ।

हेलेन एल० विटमेर—"साइकियाट्रिक इन्टर व्यूज़ विथ चिल्ड्रेन"—न्यूयार्क, कामनवेल्थ फण्ड, १९४६ ।

महत्त्वपूर्ण लेख

हर्सेल आल्ट—"द रोल आफ दि साइकियाट्रिक सोशल वर्कर इन दि रेजिडेन्शल ट्रीटमेण्ट आफ चिल्ड्रेन"—सोशल केस वर्क, जिल्द ३२, नवम्बर १९५१, पृ० ३६३-३६९ ।

टैसी डि० वर्कमैन—"दि कन्ट्रीब्यूशन आफ साइकियाट्रिक सोशल वर्क टु दि फील्ड आफ सोशल वर्क"—जरनल आफ साइकियाट्रिक सोशल वर्क, जिल्द २२, जून १९५३, पृ० २००–२०५ ।

इलिनर वी० बोसरमैन—"ट्रेन्ड्स इन केस वर्क ट्रीटमेण्ट इन इन-पेशेन्ट सर्विस इन हास्पिटल सेटिंग्स"—जरनल आफ साइकियाट्रिक सोशल वर्क, जिल्द २२, जनवरी १९५३, पृ० ६१ –६४ ।

हेनरीयेटा बि० डि विट—"फेमिली केयर एज दि फोकस फार सोशल केस वर्क इन ए स्टेट मेण्टल हास्पिटल"—मेण्टल हाइजीन, जिल्द २८, अक्टूबर १९४४, पृ० ६०२–६३१ ।

साउल हाफ्स्टीन—"इन्टररिलेटेड प्रोसेस इन पैरेन्ट चाइल्ड काउन्सेलिंग"—ज्यूज सोशल सर्विस क्वार्टर्ली, जिल्द २६, दिसम्बर १९४९, पृ० २८६–२९९ ।

रूथ क्नी—"द ओपेन क्वेश्चन : इज देयर एनीथिंग यूनीक एबाउट साइकियाट्रिक सोशल वर्क"—जरनल आफ साइकियाट्रिक सोशल वर्क, जिल्द २३, अक्टूबर १९५३, पृ० ४२–४८।

"साइकियाट्रिक सोशलवर्क इन दि साइकियाट्रिक क्लीनिक"—रिपोर्ट नं० १६, टोपेका कन्स, ग्रुप फार दि एडवान्समेण्ट आफ साइकियाट्री, सितम्बर १९५०।

"दि साइकियाट्रिक सोशल वर्कर इन दि साइकियाट्रिक हास्पिटल"—रिपोर्ट नं० २, कैन्स टोपेका, ग्रुप फार दि एडवान्समेण्ट आफ साइक्रियाट्री, जनवरी १९४८।

लेसली रोसेन्थाल—"ग्रुप साइकोथिरेपी इन ए चाइल्ड गाइडेन्स क्लीनिक"—सोशल केस वर्क, जिल्द ३२, अक्टूबर १९५१, पृ० ३३७–३४२।

विलियम एस० रूने, फ्रैन्सिस जे० रियन, ग्रेस ए० क्रास "साइकियाट्रिक केस वर्क इन ऐन आर्मी सेटिंग"—सोशल केसवर्क, जिल्द ३२, जनवरी १९५१, पृ० ३१–३७।

लोर्ना सिलवेस्टर—"फेमिली रिलेशनशिप इन चाइल्ड गाइडेन्स"—ज्यूज सोशल सर्विस क्वार्टर्ली, जिल्द २७, दिसम्बर १९५०, पृ० १८०–१८६।

मेरियन ए० टीनेन्ट—"साइकियाट्रिक सोशल वर्क इन ए प्राइवेट मेण्टल हास्पिटल"—जरनल आफ साइकियाट्रिक सोशल वर्क, जिल्द २३, जून १९५४, पृ० २३४–२४१।

वेलमा उड—"केस वर्क प्रैक्टिस इन मेण्टल हेल्थ क्लीनिक्स" जरनल आफ साइक्रियाट्रिक सोशल वर्क, जिल्द २२, जनवरी १९५३, पृ० ६४–६६।

राजकीय अस्पतालों के मनोरोगियों के पुनर्वास से सम्बन्धित मनश्चिकित्सीय सामाजिक कार्य

एलसी जाकेल, डी० एस० डब्ल्यू०
डाइरेक्टर, मनश्चिकित्सीय सामाजिक कार्य,
स्प्रिंगफील्ड राजकीय अस्पताल,
साइकेसविले, मेरीलैण्ड।

स्प्रिंग फील्ड के राजकीय अस्पताल में चलनेवाले मनश्चिकित्सीय सामाजिक कार्य-सम्बन्धी कार्यक्रम का उद्देश्य यह है कि रोगी पुनः नीरोग होकर सामाजिक व्यक्ति बन सके और अन्त में अपने घर और समुदाय में वापस जाकर रह सके। इस दुहरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए सामाजिक सेवा की व्यवस्था की गयी है। यह सेवा अस्पताल में रोगी की चिकित्सा के दौरान में उस समय की जाती है, जब किन्हीं सामाजिक समस्याओं के कारण मनोरोगी के सुधार की प्रगति में बाधा उपस्थित हो जाती है।

अस्पताल की समग्र सेवा के अन्तर्गत इस नवीन सामाजिक सेवा के प्रारम्भ और विकास का कारण यह था कि बहुत-से रोगी अच्छे हो जाने पर भी अस्पताल से इसलिए अन्यत्र कहीं नहीं जा पाते थे कि उनका कोई घर-परिवार नहीं था, जहाँ वे जाकर रहते, उनके लिए पुनर्वास का प्रबन्ध करने की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। मेरीलैण्ड राज्य के पाँच राजकीय अस्पतालों में से स्प्रिंगफील्ड के अस्पताल में सबसे पहले एक सामाजिक कार्यकर्ता रखा गया। उसी ने सर्वप्रथम ऐसे रोगियों की देख-भाल-सम्बन्धी सेवा का प्रारम्भ किया, जो अच्छे हो जाने के बाद भी अस्पताल छोड़कर जा नहीं सकते थे, क्योंकि उनके लिए ऐसा कोई उपयुक्त घर-परिवार नहीं था, जहाँ वह अस्पताल से निकलने पर जाकर रहते। यद्यपि प्रारम्भ में इस सेवा का रूप बहुत छोटा था, किन्तु उस समय के इस अस्पताल में किये गये कार्यों के अनुभवों से ही उन विचार-धाराओं का उदय हुआ है, जिनके आधार पर इस प्रकार के मानसिक रोग-अस्पतालों में की जाने वाली आज की सामाजिक सेवाओं के उद्देश्यों और कर्तव्यों का रूप निर्धारित हुआ है।

इस कथन के उदाहरण के रूप में आगे जो सामग्री दी जा रही है, उससे आज की इस प्रकार की प्रचलित सामाजिक सेवा का रूप स्पष्ट हो सकता है। लिलियन टामस की समस्या के उदाहरण से यह पता चल जायगा कि सामाजिक कार्यकर्ता, जो रोगियों को अस्पताल में प्रविष्ट करने का कार्य करता है, किस तरह रोगी को अस्पताल में प्रवेश कराने तथा वहाँ के अनुभवों से रचनात्मक ढंग से लाभ उठाने में सहायता पहुँचाता है। एलिजाबेथ रोजर्स के उदाहरण से यह स्पष्ट होगा कि रोगी का सामाजिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत कर के प्रवेश कराने वाला वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता किस प्रकार रोगी के किसी रिश्तेदार को इस बात के लिए तैयार करता है कि रोगी के ठीक हो कर अस्पताल से लौटने पर वह उसे अपने घर में रख ले। डोरोथी विलियम्स की कहानी इस बात पर प्रकाश डालती है कि पेरोल के पहले की सेवा, अस्पताल से मुक्ति के बाद की देख-भाल-सम्बन्धी सेवा और स्वास्थ्य-गृह के भीतर की सेवा द्वारा वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता किस तरह रोगी के पुनः स्वस्थ होने और सामाजिक व्यक्ति बनने की दिशा में सहायता-कार्य का प्रारम्भ करता और उसे अन्त तक जारी रखता है।

प्रवेश-सम्बन्धी सेवा

इस संस्था में प्रवेश के बाद की देख-भाल का आधार यह विश्वास है कि मानसिक रोगी के अस्पताल में प्रवेश के साथ ही उसके पुनर्वास की तैयारी भी शुरू हो जाती है। अतः प्रवेश की प्रक्रिया के अन्तर्गत पुनर्वास-सम्बन्धी तीन प्रमुख सेवाओं—उपचार, देख-

भाल और सामाजिक सेवा——को भी समाविष्ट कर लिया गया है, ताकि रोगी को आरम्भ में ही इस बात की परीक्षा कर लेने का अवसर मिले कि अस्पताल उसके लिए कैसा रहेगा। रोगी को अस्पताल में प्रायः उस समय लाया जाता है, जबकि उसके जीवन का घोर संकट-काल उपस्थित होता है, अर्थात् जब उसके और समाज के बीच बहुत चौड़ी खाई बन गयी रहती है, अतः अस्पताल के कर्मचारियों में से सबसे पहले सामाजिक कार्यकर्ता ही रोगी और उसके परिवार वालों से मिलता है, क्योंकि उसके पास ऐसे विशिष्ट साधन होते हैं, जिनके द्वारा वह सामाजिक संकट की स्थिति में व्यक्ति की सहायता करता है। वह सहायता-कार्य की प्रक्रिया में सहायतार्थी व्यक्तियों को भी स्वेच्छापूर्वक भाग लेने के लिए प्रेरित करता है और इस अनुभव के कारण रोगियों की समझ में यह बात आ जाती है कि अस्पताल सचमुच उनकी सहायता कर सकता है।

वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता मनोरोगी के सम्बन्ध में स्वयं उससे और उसके सम्बन्धियों से पूछ-ताछ करके सूचनाएँ प्राप्त करता है और इस वार्ता में सम्मिलित होने तथा पूरी सूचना देने के लिए उन लोगों को प्रोत्साहित करता है। वह उनके साथ इस तरह व्यवहार करता है कि उन लोगों को यह महसूस होता है मानों वे अस्पताल के बाहर हों। वह उन्हें अस्पताल का दैनिक कार्यक्रम समझाता तथा रोगी का प्रवेश करने वाले चिकित्सक से परिचय कराता है। जब रोगी का प्रवेश के लिए परीक्षण होता रहता है, उस समय वैय-क्तिक कार्यकर्ता ही प्रतीक्षा करने वाले उसके सम्बन्धियों के पास रहता है, जब प्रवेश हो जाने के बाद रोगी के सम्बन्धी उससे विदा लेने लगते हैं तो वह उन्हें अपनी भावनाओं को नियंत्रित करने में सहायता देता है।

यद्यपि मेरीलैण्ड के किसी भी राजकीय मानसिक रोग-अस्पताल में रोगी को प्रविष्ट करने के बाद उसके सम्बन्धियों को अधिकृत चिकित्सकीय प्रमाण-पत्र दे दिया जाता है, फिर भी रोगी को राजकीय संरक्षण में देने से सम्बन्धित उसके परिवार की योजना को प्रायः रोगी से गुप्त रखा जाता है। इसलिए जब रोगी अस्पताल में पहुँचता है, तब उसे लगता है कि उसके साथ छल किया गया है और उसके सम्बन्धी अपने को अपराधी समझ-कर लज्जा का अनुभव करने लगते हैं।

इस अस्पताल में सामाजिक कार्यकर्ता का यह उत्तरदायित्व है कि वह रोगी और उसके सम्बन्धियों से सम्बन्धित समस्याओं का सामना करे और खुले दिल से उनके समाधान के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करे। ऐसा करने के मूल में यह विश्वास निहित है कि सहायता द्वारा रोगी और उसके सम्बन्धी अपने पारस्परिक सम्बन्धों को पुनः स्थापित कर सकते हैं और यह पुनःस्थापना अधिक स्वस्थ और अधिक वास्तविकतापूर्ण आधार पर होनी चाहिए।

लिलियन टामस

"श्रीमती लिलियन टामस एक क्षीण और सुनहरे बालों वाली नवयुवती थीं। जब मैं उनसे यह बताने गया कि मैं एक सामाजिक कार्यकर्ता हूँ और उनके अस्पताल के भीतर प्रवेश के कार्य में उनकी सहायता करने आया हूँ, तो मैं देखा कि वह अस्पताली गाड़ी के स्ट्रेचर पर शान्त पड़ी हुई थीं। मेरी बातों के उत्तर में उन्होंने केवल हलका संकेत भर किया। दूसरी ओर उनके पति श्री टामस को देखने से पता चलता था कि वह पर्याप्त मुक्ति का अनुभव कर रहा था।

उन्होंने आगे बढ़कर मुझे अपना परिचय देते हुए कहा कि वह रोगिणी के पति हैं। जब मैंने एम्बुलेन्स गाड़ी के वाहकों से कहा कि वे श्रीमती टामस को प्रवेश-कक्ष में पहुँचाने में सहायता कर दें, तो श्री टामस ने भी उत्सुकतापूर्वक मेरी बात का समर्थन किया। उन्होंने स्वयं भी उस पहियेदार स्ट्रेचर को ढकेल कर भीतर ले जाने में सहायता की।

जब हम सब लोग सुस्थिर हो गये तो मैंने देखा कि रोगी की कलाइयाँ अब भी स्ट्रेचर में बँधी हुई थीं। मैंने उनकी ओर घूम कर उनसे पूछा कि क्या वह यह पसन्द नहीं करतीं कि वह भी हम लोग के साथ बन्धनहीन होकर बैठे ? उन्होंने मेरी ओर चिन्तापूर्ण दृष्टि से देखते हुए, पर बाद में अधिक प्रफुल्लित होकर सन्तोष के साथ बोलीं, "मेरा विश्वास है कि कलाई में बँधे इन पट्टों को मैं स्वयं खोल सकती हूँ।" सचमुच वह उन्हें खोलने लगीं और उसके बाद फिर आराम से विस्तर पर बैठ गयीं।

मैंने उन दोनों से बताया कि आज श्रीमती टामस के सम्बन्ध में यहाँ जो कार्रवाई होने वाली है, मैं उसमें उनकी सहायता करने आया हूँ और क्या इस सम्बन्ध में हम लोग कुछ बातें शुरू कर सकते हैं ? उदाहरण के लिए, क्या श्रीमती टामस इस बारे में कुछ जानती हैं कि यह कैसी जगह है ?

रोगिणी ने अपना सिर इस तरह हिलाया मानो वह कहना चाहती थी कि वह इस जगह की नहीं है। फिर उसने अस्पताल के बारे में कहा "यह एक 'गूं-गूं-घर' यानी पागलखाना है, क्या ऐसी बात नहीं है ?" फिर उसने उत्साह के साथ विनोद करते हुए कहा "स्वयं 'गूं-गूं' करने वाली या पागल नहीं है। फिर अपने उमड़ते आँसुओं को किसी तरह रोककर बोली, "मैं नहीं जानती थी कि वह (उसका पति) मेरे साथ इस तरह छल करेगा !"

मैंने उसकी बात स्वीकार करते हुए उसे समझाया कि यह एक मानसिक रोग-अस्पताल है, जिसमें उसी की तरह के रोगी चिकित्सा के लिए रखे जाते हैं। मैंने फिर कहा कि किसी व्यक्ति को इस अस्पताल की सेवाओं की चाहे कितनी भी आवश्यकता क्यों न हो, फिर भी यहाँ आना लोगों को बहुत ही भयप्रद मालूम पड़ता है। मैंने फिर स्पष्ट किया कि

श्रीमती टामस के लिए तो यहाँ आना और भी कठोर काम मालूम पड़ा होगा, क्योंकि मुझे मालूम हुआ है कि उनके यहाँ लाये जाने के सम्बन्ध में वे दोनों एकमत नहीं थे। मैंने यह सुझाव रखा कि क्यों न हम लोग पहले इसी प्रश्न पर विचार कर लें, ताकि यह पता चल जाय कि मैं उनके नये सिरे से जीवन प्रारम्भ करने में उनकी क्या सहायता कर सकता हूँ। उनके अनुबन्ध-पत्रों की ओर संकेत करके मैंने कहा कि पहले हम लोग उन्हीं बातों के बारे में विचार करें, जिन्हें इस समय हम सब जानते हैं। वे ये हैं कि श्री टामस ने श्रीमती टामस के बारे में दो डाक्टरों से राय ली थी और उन्होंने यह सुझाव दिया था कि रोगिणी को अस्पताल में भेज देना चाहिए। फिर मैंने उन्हें समझाया कि उन्हें इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि इस अस्पताल में श्रीमती टामस की देख-भाल किस रूप में होगी। मैंने वादा किया कि थोड़ी देर बाद मैं इस अस्पताल के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करने में उनकी सहायता करूँगा।

जब मैंने श्री टामस की बातों का समर्थन और उनकी कठिनाइयों को स्वीकार किया तो उत्साहित होकर उन्होंने बताया कि उनके लिए अपनी पत्नी से यह बताना अत्यन्त कठिन कार्य था कि उन्हें अस्पताल में भेजने की आवश्यकता है। बड़े दुख के साथ उन्होंने बताया कि उनकी पत्नी उनसे कितना डरती थीं, जब डरी होती थीं तो कैसे भागती थीं और किस तरह वह स्वयं इस बात को अच्छी तरह जानते कि उन्हें पत्नी के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य करना चाहिए। यह सब सुनकर तथा पति को अपनी ओर स्नेह-दृष्टि से देखते देखकर रोगिणी ने भी कुछ कम्पित होकर उनकी ओर प्यार भरी नजरों से देखा और उसके बाद, मानो अपनी विधेयात्मक भावनाओं को निकाल कर बाहर फेंकने का प्रयत्न करती हुई वह धीरे से बुदबुदाई और अनमने भाव से यह समझाने की कोशिश की कि वह तो एक 'पगली' है। फिर, जब उन्होंने यह अनुमान किया कि मैं उनकी ओर नहीं देख रहा हूँ, पर मैं छिपे तौर पर देख रहा था, उन्होंने अपने पति की ओर पर्याप्त आसक्तिपूर्ण दृष्टि से देखा।"

यह तो स्पष्ट ही था कि श्रीमती टामस के अनजान में उन्हें अस्पताल में प्रवेश कराने के लिए अनुबन्ध-पत्र भरा गया था। उन्हें अब इस बात में कोई सन्देह नहीं रह गया था कि पुलिस की गाड़ी के स्ट्रेचर में उनके हाथ बाँध कर उन्हें जहाँ लाया गया था, वह और कुछ नहीं, अस्पताल का प्रवेश-कक्ष ही था। उनकी आत्म-सम्मान-भावना लुप्तप्राय हो गयी थी। पर, जैसा उनके व्यवहार से अनुमान किया जा सकता है, श्रीमती टामस को इस बात से सन्तोष हुआ था कि उनके अस्तित्व को भी मान्यता दी गयी और इसी कारण उन पर मेरी बातों की स्वीकारात्मक प्रतिक्रिया हुई थी। यद्यपि उन्होंने अस्पताल का विरोध करने के लिए उसे विकृत भाषा में 'गूं-गूं-घर' कहा था, पर उनकी बातों और प्रति-

क्रियाओं से यह स्पष्ट पता चलता है कि वह अस्पताल को एक दण्ड-संस्था नहीं, बल्कि एक ऐसा स्थान समझ रही हैं, जहाँ उनकी सहायता की जायगी।

वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता की रिपोर्ट में ध्यान देने की बात यह है कि वह प्रारम्भ से ही इस बात पर विशेष बल देता है कि रोगी तथा उसके सम्बन्धियों के साथ उसका घनिष्ठ सम्पर्क होना चाहिए, वह उन्हें किसी-न-किसी कार्य में सक्रिय भाग लेने के लिए भी प्रारम्भ से ही उत्साहित करता है, उसके ऐसा करने से रोगिणी और उसका पति दोनों सचमुच कुछ-न-कुछ करने लगते हैं—

"मैं कुछ देर के लिए चुप हो गया, ताकि वे इस बीच एक दूसरे की आन्तरिक भावनाओं को पढ़ और समझ सकें। उसके बाद मैंने उन्हें बताया कि हमारे अस्पताल के नियमों के अनुसार प्रवेश-विधि का प्रथम चरण क्या है। मैंने श्रीमती टामस से कहा कि पहले वह अभिलेख तैयार करने के लिए अधिक-से-अधिक व्यक्तिगत बातों की सूचनाएँ दे। मैंने यह भी कहा कि बहुत-से प्रश्न तो ऐसे होंगे, जिनका ठीक-ठीक उत्तर केवल वही दे सकती हैं, अतः क्या वह इसके लिए कोशिश करेंगी ? यह सुन कर रोगिणी उठकर बैठ गयी। मेरे प्रश्नों को ध्यानपूर्वक सुना और प्रसन्नतापूर्वक मेरे प्रश्नों के उत्तर में अपने जीवन की बहुत-सी बातें बतायीं जो हमारे बड़े काम की थीं। आमने-सामने की बातचीत द्वारा उसके जीवन-सम्बन्धी विवरण का लेखा तैयार करते समय मैंने देखा कि इससे उसमें इस बात का आत्म-विश्वास उत्पन्न हुआ कि वह अपनी परिस्थितियों से सम्बन्धित ब्यौरों को याद कर के अभिव्यक्त करने की क्षमता का प्रदर्शन कर सकती है। अन्त में मैंने उसके सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए उसे इसके लिए धन्यवाद दिया और प्रसन्नता व्यक्त की कि वह अपनी सहायता स्वयं करने के लिए इस तरह तैयार हो गयी।

श्री टामस ने उन घटनाओं और परिस्थितियों का वर्णन किया, जिनके कारण मजबूर होकर उन्हें अपनी पत्नी को अस्पताल भेजने की व्यवस्था करनी पड़ी थी। उनके अनुसार अभी हाल में वह एक दिन कहीं बाहर निकल गयी और बहुत खोजने के बाद अन्त में एकदम भयभीत-सी और ठिठुरी हालत में अपने पिता के एक ट्रक में पायी गयी थी। श्रीमती टामस ने इस पर यह बताया कि वह अपने पति से भागकर चली गयी थी। उनकी इस बात से यह पता चला कि वह अपने पति से बहुत डरती थी। पत्नी की इस बात से श्री टामस के हृदय को चोट लगी, यह उसे देखने से ही पता चल रहा था, क्योंकि वह उदास होकर अपना सिर हिलाता हुआ चुपचाप बैठा था। जब मैं उनसे इस तरह की ब्यौरे की बातें पूछकर उनका सांख्यिक अभिलेख तैयार कर रहा था तो उस बीच उन दोनों को अपने हृदय की बातें खुल कर अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित भी करता जाता था।

जब यह काम समाप्त हो गया तो मैंने उन्हें बताया कि अब डाक्टर रोगिणी को

देखने आयेगा। मैंने श्रीमती टामस से पूछा कि उन्हें इसकी तैयारी के लिए मेरी किसी प्रकार की सहायता चाहिए ? उन्होंने सिर हिलाते हुए कहा कि उसके बाद क्या होगा ? मैंने बताया कि चिकित्सकीय परीक्षण के बाद नर्स आकर उन्हें उनके वार्ड में ले जायगी। मैंने भीतरी भय को जानकर उन्हें समझाया कि पहले वह जिस वार्ड में भेजी जायँगी वहाँ प्रारम्भिक सहायता का कार्य होता है। उसमें दरवाजे बन्द कर दिये जाते हैं और उनमें ताला लगा दिया जाता है। वहाँ और भी बहुत-से रोगी रहते हैं। उन्होंने चिन्तित होकर पूछा कि ऐसे वार्ड में उन्हें कितने दिन तक रहना पड़ेगा ? मैंने उन्हें बताया कि किस तरह रोगी को एक के बाद दूसरे ऐसे वार्डों में भेजा जाता है जहाँ उत्तरोत्तर अधिक स्वतंत्रता और सुविधाएँ मिलती जाती हैं, पर यह इस बात पर निर्भर करता है कि रोगी की दशा में किस गति से सुधार होता है। अतः यह बताना कठिन है कि उन्हें पहले वार्ड में कितने दिन तक रहना पड़ेगा, क्योंकि यह तो वस्तुतः उन्हीं पर बहुत कुछ निर्भर करेगा कि वह किस तरह व्यवहार करती हैं। मैंने उनसे कहा कि यदि मैं ये बातें उसे अभी न बताता तो क्या उसे अधिक आराम मिलता, क्योंकि उसे तो स्वयं ही वहाँ का अनुभव हो जायगा। मैंने यह भी कहा, "जब मैं कल सवेरे आप के वार्ड में आपसे मिलने आऊँगा तो आप मुझे बताइयेगा कि वहाँ आपकी पहली रात कैसे कटी।" यह सुनकर उनकी आँखों में आँसू आ गये और उन्होंने स्वीकृति व्यक्त करने के लिए सिर हिलाया। किन्तु सन्तुष्ट रूप में उन्होंने ये बातें वहीं समाप्त कर दीं और डाक्टर के आने की प्रतीक्षा करने लगीं। इस बीच हम लोग अस्पताल के नियमों और दैनिक कार्यक्रमों तथा डाक्टर द्वारा परीक्षण के दिन आदि के बारे में बातें करते रहे। श्रीमती टामस ने पूछा कि अस्पताल में रविवार को चर्च में प्रार्थना होती है या नहीं, क्योंकि रविवार को जब उनके पति उनसे मिलने आयेंगे तो यहाँ चर्च की प्रार्थना न होने पर उनकी प्रार्थना ही छूट जायगी। श्री टामस ने उन्हें ढाढस बँधाया और कहा कि वह ऐसा उपाय करेंगे कि उनकी चर्च की प्रार्थना भी नहीं छूटने पायेगी और वह आकर उनसे मिल भी लेंगे। श्रीमती टामस ने अस्पताल के चर्च में क्रिश्चियन साइण्टिस्ट सिद्धान्त को मानने वालों के लिए प्रार्थना की व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रश्न पूछा था, मैंने उसका भी उत्तर उन्हे दिया।

मैंने दुःख के साथ उन्हें सूचित किया कि यहाँ अस्पताल में क्रिश्चियन साइण्टिस्ट मत के अनुसार प्रार्थना नहीं होती, बल्कि हर रविवार को सामान्य ढंग की भक्तिपरक प्रार्थनाएँ होती हैं। मैंने कहा कि मैं जानता हूँ कि इससे उन्हें सन्तोष नहीं होगा। पर क्या उन्हें अपने मत के अनुसार प्रार्थना करने पर भी कुछ मानसिक शान्ति मिलती है ? इसके उत्तर में उन्होंने स्वीकारात्मक रूप में सिर हिलाया और धीरे-धीरे सिसकने लगीं। मैं और श्री टामस उनके शान्त होने की प्रतीक्षा करने लगे।

इस सम्बन्ध में हम लोगों की बातें पूरी हो ही रही थीं कि प्रवेश के लिए परीक्षण करने वाला डाक्टर आ गया। मैंने डाक्टर से श्रीमती टामस और उनके पति का परिचय कराया। उसके बाद मैं और श्री टामस स्वागत-कक्ष में चले गये और वहीं बैठकर परीक्षण-कार्य की प्रतीक्षा करने लगे। पहले तो श्री टामस का यह विचार था कि अपनी पत्नी के वार्ड में भेजे जाने के पूर्व ही वह वहाँ से चले जायँ, इसलिए उन्होंने मुझसे जरूरी आवेदन-पत्र आदि माँगे, ताकि वह शीघ्र ही वहाँ से चले जायँ। उन्होंने कहा कि वह कागज-पत्रों को घर पर ही भरेंगे और बाद में दे जायेंगे। मैंने उन्हें आवेदन-पत्र के कागज दे दिये और कहा कि यदि उनका जाना जरूरी हो तो वह जाने के लिए स्वतंत्र हैं, पर मेरे विचार से उन्हें अपनी पत्नी के वार्ड में भेजे जाने के समय तक वहाँ रुकना चाहिए। मैंने उनसे बताया कि मैं उनकी इस समस्या से सम्बन्धित सभी मामलों में उनकी सहायता करने को तैयार हूँ। श्री टामस के चेहरे पर कम्पन दिखाई पड़ा। उन्होंने कहा कि अब बहुत हो चुका, बहुत दिनों से वह इतना कष्ट उठाते आ रहे हैं कि इससे अधिक बर्दाश्त करना उनकी शक्ति के बाहर है। उनकी पत्नी की दो और बहनें हैं और उनको भी मानसिक बीमारी है। वह नहीं कह सकता कि उनकी पत्नी की भी अपनी बहनों-जैसी हालत हो जायगी या वह ठीक हो जायँगी। मैंने उन्हें आश्वासन दिया और कहा कि मैं उनकी चिन्ता की बात बहुत अच्छी तरह समझता हूँ। शायद उनके मन में इसका भी दुख था कि अपनी पत्नी को अनजान में उस अस्पताल में लाने का उन्होंने गुप्त रूप से जो प्रबन्ध किया था, मैंने उसे सबके सामने खोल कर कह दिया था। पहले तो उन्होंने इस बात को मानने से इन्कार किया कि उनके मन में पत्नी को यहाँ लाने के कारण कोई चोट पहुँची है, पर बाद में उन्होंने स्वीकार किया कि प्रवेश-कक्ष में अवश्य ऐसे क्षण आये थे, जबकि उनके मन में कचोट हुई थी। मैंने उनसे कहा कि ऐसी स्थिति में मन में कचोट होना स्वाभाविक ही है, इस पर किसी का वश नहीं चल सकता। फिर भी, मुझे ऐसा लगा कि श्री टामस ने उस दिन अवश्य कुछ ऐसा काम किया था, जो उनके लिए बिलकुल नया था। वह अपनी पत्नी को अस्पताल में इसलिए लाये थे कि देखा जा सके कि यहाँ उसको क्या सहायता मिलती है। मैंने उनसे कहा कि इस अस्पताल की स्थापना ही इसीलिए हुई है। मैंने उनसे निवेदन किया कि आज वह इतना और करें कि श्रीमती टामस के आने तक रुके रहें और उन्हें वार्ड में पहुँचाने में मदद दें। इस पर उन्होंने रुक जाने का निश्चय किया और साथ ही सहज भाव से मुझसे यह पूछा कि क्या वह अगले हफ्ते मुझे पत्र लिख सकते हैं ? मैंने उत्तर दिया कि निश्चय ही वह ऐसा करते हैं।

रोगिणी अब वार्ड में जाने को तैयार थी और मैंने तथा श्री टामस ने उसे ले जाने में उन नर्सों की सहायता की जो इस कार्य के लिए बुलायी गयी थीं। अन्त में हम सब लोगों ने

एक दूसरे से विदा ली। श्रीमती टामस स्ट्रेचर से उठकर क्षण भर के लिए अपने पति के पास चुपचाप खड़ी रहीं, फिर दृढ़तापूर्वक वार्ड की ओर चल पड़ीं।"

एलिजाबेथ रोजर्स

श्रीमती एलिजाबेथ रोजर्स अपने पति और १५ वर्षीया पुत्री फ्लोरेन्स द्वारा अस्पताल में लायी गयी थीं। उसके अस्पताल में प्रवेश से सम्बन्धित कार्य-विधि को फ्लोरेन्स बहुत व्यथा के साथ चुपचाप देखती रही। जब फ्लोरेन्स और उसके पिता प्रवेश-कार्यालय से जा रहे थे तो फ्लोरेन्स की आँखों में आँसू आ गये थे, फिर भी उस समय उसकी आँखों में एक ममता भरा प्रकाश था। जब उसने अपने पिता से अपना यह निश्चय व्यक्त किया कि जब तक उसकी माँ अस्पताल में रहेंगी, वह स्वयं उसकी गृहस्थी सँभालने में मदद करने का प्रयत्न करेगी। प्रवेश के दूसरे दिन सबेरे अपने वार्ड में प्रथम साक्षात्कार के समय श्रीमती रोजर्स ने बताया कि उसे इस बात का बहुत दुख है कि उसकी बच्ची को भी अस्पताल में उसके प्रवेश के समय का दुखद दृश्य देखना पड़ा। वार्ड में दूसरे साक्षात्कार के समय भी कार्यकर्ता ने रोगिणी को उसी रूप में देखा। उसने श्रीमती रोजर्स को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया कि वह अपने पति को पत्र लिख कर दे दे, जिसमें लड़की का विशेष रूप से ध्यान रखने की बात भी लिख दे, और यह भी लिख दे कि उसकी अनुपस्थिति में गृहस्थी का प्रबन्ध किस रूप में होना चाहिए।

श्री रोजर्स के साथ जीवनवृत्त संग्रह के लिए जो साक्षात्कार हुआ, उसमें मुख्य रूप से इस प्रश्न पर विचार-विमर्श हुआ कि रोगिणी का पति अस्पताल में उसके स्वास्थ्य-सुधार की प्रगति में किस रूप में सहायक हो सकता है। इस प्रकार का साक्षात्कार रोगी के सम्बन्धियों की आवश्यकताओं को समझने की दृष्टि से किया जाता है।

श्री रोजर्स जीवनवृत्त-साक्षात्कार के लिए ठीक निश्चित समय पर आया। वह उसके लिए पूरी तरह तैयारी करके आया था, जैसा इस प्रकार के साक्षात्कार में प्रायः लोग नहीं करते हैं। प्रश्न-पत्रक में प्रश्नों के उत्तर (जिन्हें उसने अपनी पत्नी के सम्बन्धियों से पूछ-पूछकर इकट्ठा किया था)। लिखने के अतिरिक्त उसने अपनी पत्नी की बीमारी के इतिहास के बारे में एक लम्बा वक्तव्य भी तैयार किया था जिसमें उन परिस्थितियों और घटनाओं का भी वर्णन किया गया था, जिनके कारण मजबूर होकर उसे अस्पताल में भेजने का निर्णय करना पड़ा था। इतनी तैयारी के बाद भी अब वह साक्षात्कार के लिए आया तो उसके मन में एक भय की भावना थी। फिर भी जब मैंने उसे याद दिलाया कि पिछले सप्ताह मैंने उससे वादा किया था कि आज मैं उसकी सहायता करने को तैयार रहूँगा तो सुस्थिर चित्त होकर उसने बताया कि किस तरह वह चिन्ता के बोझ से दब रहा है और

अपनी पत्नी को इस अस्पताल में भेजने के कारण उसके मन में किस तरह पश्चात्ताप और दुख की भावनाएँ उठती रही हैं।

फिर उसने यह मत व्यक्त किया कि "पहले के समय" से आज की स्थिति कितनी बदल गयी है, पहले जब लोग अपने किसी सम्बन्धी को पागलखाने में भेजते थे तो समझते थे कि उन्होंने उसे हमेशा के लिए घर से बाहर निकाल दिया। किन्तु जाने क्यों अब ऐसा नहीं लगता है। फिर उसने अपने मन की इस अनुभूति को व्यक्त किया कि इस वियोग को सहन करना कितना कठिन है।

मैंने इस बात के लिए उसकी प्रशंसा की कि उसने रोगी के जीवन-वृत्त-संग्रह का कार्य बहुत ही परिश्रम से और अच्छे ढंग से किया है। उसके बाद मैंने उसके पूर्वोक्त विचार का समर्थन करते हुए कहा कि आज तो हम राजकीय मानसिक रोग अस्पतालों को पागलखाना या जेलखाना न समझ कर एक ऐसा स्थान समझते हैं, जहाँ रोग की चिकित्सा होती है। इसका यह अर्थ है कि लोगों के मन में इस तरह के अस्पतालों के प्रति एक नयी आशा उत्पन्न हुई है, पर साथ ही रोगियों के परिवारों के लिए नयी समस्याएँ भी पैदा हो गयी हैं। मैंने उससे पूछा कि यहाँ की एक रोगिणी का पति होने के नाते उससे जो काम करने को कहे गये थे, उन्हें करने में क्या उसे कठिनाई का अनुभव हुआ? उसने नकारात्मक उत्तर देते हुए कहा कि उसके सामने कोई ऐसी समस्या नहीं आयी थी। उसने बताया कि जिस समय उसकी पत्नी पर इस बीमारी का आक्रमण हुआ था, उस समय उसे जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, उनसे बड़ी शायद ही कोई और कठिनाई हो। उसने यह भी बताया कि उसकी पत्नी कई बार घर छोड़ कर भाग गयी थी, उस समय किस तरह उसने अपना घर सँभाला था, और एक ही साथ परिवार की देख-भाल करने और जीविका के लिए अपने काम पर भी जाने के कारण उसे कितनी मिहनत करनी पड़ती थी, जिससे वह बिलकुल थक जाता था।

अपनी कठिनाइयों और कार्य-भार का वर्णन कर लेने के बाद अन्त में उसने कुछ दुखभरी आवाज में पूछा कि उसकी पत्नी अब कैसी थी और घर की किसी बात के बारे में उसके मन में कोई चिन्ता तो नहीं थी, अपनी पुत्री फ्लोरेन्स के बारे में या रुपये-पैसे के सम्बन्ध में तो कुछ नहीं पूछ रही थी? मैंने उससे बताया कि अब वह विस्तर में नहीं पड़ी रहती, बल्कि वार्ड के रसोईघर में जाकर कुछ-न-कुछ करने में अपनेको व्यस्त रखती है।

मैंने उसे राय दी कि यदि वह चाहे तो जाने के पहले अपनी पत्नी के चिकित्सक से मिलकर उससे भी उसके सम्बन्ध में पूछ-ताछ कर ले। मैंने उससे इस सम्बन्ध में भी बातें कीं कि वह अब क्या करना चाहता है। मैंने फिर उसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि उसने रोगिणी का जीवनवृत्त संग्रह कितने अच्छे ढंग से तैयार किया है और अब इसी तरह का

कार्य अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। मैंने उससे पूछा कि आज साक्षात्कार के लिए वह जो सामग्री संगृहीत करके लाया था, उसमें स्वयं उसके लिए कौन-सी बात विशेष महत्त्व की थी ? उसने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। यद्यपि उसे सामग्री एकत्र करने के महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए गर्व का अनुभव हो रहा था, फिर भी वह बहुत चिन्तित दिखाई पड़ रहा था। मैंने उसको बातों में लगाने की दृष्टि से कहा कि अस्पताल के रोगी अपने सम्बन्धियों के पत्रों की बड़ी प्रतीक्षा करते हैं, क्या वह भी अपनी पत्नी को पत्र नहीं लिख सकता था। उसे देखने से ऐसा लग रहा था कि वह अपनी गलती महसूस कर रहा है, लेकिन उसके बाद मेरी समझ की परीक्षा लेने की परीक्षा लेते हुए उसने कहा कि उसने अपनी पत्नी के लिए अब तक जो कुछ किया है वही बहुत है, उसने स्वीकार किया कि इससे अधिक कुछ भी करना उसके लिए अत्यन्त कठिन है, क्योंकि उसकी पत्नी ने उसे जितना परेशान किया है, उसके लिए उसे क्षमा नहीं किया जा सकता। उसने कहा कि इस बारे में उसका मुझसे बात कर लेना अच्छा ही है। इन सब बातों का एक दूसरा पहलू भी है, उदाहरण के लिए, अर्थ की समस्या, इसका सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है। वह आर्थिक मामलों के बारे में हमेशा चिन्तित रहती थी और इस बात का विरोध करती थी कि वह अपनी वृद्धा माँ के जीवन-यापन के खर्च का भार अपने सिर पर क्यों उठाता था। फिर रोजर्स ने कुछ उद्धत भाव से कहा कि उसका ख्याल है कि उसका अपनी माँ के लिए खर्च करना उचित ही था, क्योंकि उसका वेतन इतना है कि वह अपने पूरे परिवार का खर्च चला सकता है। उसकी पत्नी विवाह के पहले भी यह जानती थी कि वह अपनी माँ की भी देख-भाल करता रहेगा। अस्पताल के बिल की भुगतान के सम्बन्ध में भी उसके मन में कुछ नाराजगी थी। उसने बताया कि जनपद-कार्यालय से उसे सूचना मिली है कि अपनी पत्नी के लिए उसे प्रति मास अस्पताल को ५० डालर देना होगा। अतः ऐसे समय में उसकी पत्नी इस तरह की बातों की चिन्ता क्यों करती है, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था।

मैं यह अच्छी तरह समझ रहा था कि वह अपनी पत्नी पर ही नहीं नाराज था, मेरे ऊपर भी इसलिए नाराज था कि मैं उसके व्यक्तिगत मामलों के बारे में क्यों बातें कर रहा था। जब मैंने उससे पूछा कि क्या वह इन विषयों पर मुझसे बातें नहीं करेगा तो उसने कहा कि नहीं, ऐसी बात नहीं है, इसके बाद फिर बात बदलते हुए उसने कहा कि अस्पताल से सम्बन्धित बातें पहले से आज कितनी बदल गयी हैं। मैंने उससे अपनी सहमति प्रकट करते हुए कहा कि अस्पताल में परिवर्तन का अर्थ केवल अस्पताल की चिकित्सा-पद्धति में ही परिवर्तन नहीं है, बल्कि हमारे (अस्पताल वालों के) साथ जिनका भी सीधा सम्बन्ध होता है, उन सब में परिवर्तन हो गया है और यही कारण है कि मैं आज उससे इतनी बातें कर रहा था, अन्यथा रोगिणी के जीवन-वृत्त से सम्बन्धित सूचनाएँ प्राप्त करने

के बाद ही मैं उससे विदा ले सकता था। मैंने उससे स्पष्ट कहा कि सम्भवतः उसके लिए यह विचार ही एक समस्या का रूप धारण कर लेता होगा कि उसकी पत्नी फिर एक दिन लौटकर उसके घर में जायगी और सम्भवतः उसे इस बात में सन्देह ही होगा कि उसकी पत्नी इसके लिए तैयार हो जायगी।

इसके बाद श्री रोजर्स ने कुछ चिन्ता व्यक्त करते हुए बताया कि इन सब बातों का उसकी पुत्री फ्लोरेन्स पर क्या प्रभाव पड़ा है, जो एक असामान्य वातावरण में रह कर घर की गृहस्थी को किसी प्रकार आगे ढकेल रही है। उसने मुझे विश्वास दिलाया कि फ्लोरेन्स बहुत अच्छी तरह है। वह उसके लिए खाना बनाती है, बिस्तर लगाती है और स्कूल भी जाती है। जब मैंने उसे इस बात के लिए उत्साहित किया कि वह इस बारे में कुछ और बताये कि वे दोनों पिता-पुत्री कैसे काम चला रहे हैं, तो उसने बताया कि यद्यपि उसे इस बात की प्रसन्नता थी कि उसकी बच्ची घरेलू काम-धन्धे करने लगी है, पर उसे यह ठीक नहीं लगता कि इतनी छोटी उम्र में वह इतने परिश्रम के काम करे। उसने अपने इस सन्देह और भय की चर्चा की कि फ्लोरेन्स की सखियाँ उससे पूछ सकती हैं कि उसकी माँ कहाँ है और तब वह क्या जवाब देगी। मेरे कुछ और उकसाने पर उसने अपने सन्देह को व्यक्त किया। असहाय भाव से मेरी ओर देखते हुए उसने पूछा क्या अपनी पत्नी के अस्पताल में प्रवेश के समय फ्लोरेन्स को साथ में लाना ठीक नहीं था ? हम दोनों ने इस बारे में कुछ देर तक बातें कीं और मैंने समझाया कि फ्लोरेन्स को यहाँ लाने में 'अच्छाई' या 'बुराई' की कोई बात नहीं है। मेरे विचार से तो पिछले सप्ताह उसे यहाँ लाना उसी के हित में आवश्यक था, यद्यपि उस समय के दुख को सहना उसके लिए कठिन अवश्य था। मैंने उससे पूछा कि उसकी दृष्टि में उसकी पुत्री का अपनी माँ की चिकित्सा में मदद करना कर्तव्य नहीं था ?

मैंने कहा कि पिछले सप्ताह वे दोनों रोगिणी के साथ इस अस्पताल में इसलिए आये थे कि वह उसकी पत्नी और फ्लोरेन्स की माँ थी। यह बात उन दोनों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और गम्भीर थी। रोजर्स ने स्वीकारात्मक रूप में सिर हिलाया, उसके चेहरे पर कम्पन हुआ और फिर खड़ा होकर उसने कहा कि अब वह यहाँ से चला जायगा, नहीं तो अधिक रुकने पर चिल्ला कर रोने लगेगा। जब वह धीरे-धीरे दरवाजे की ओर बढ़ रहा था तो मैंने उससे कहा कि कुछ बातें ऐसी होती हैं, जिनके लिए रोना अच्छा ही होता है। यह सुनकर श्री रोजर्स फिर बैठ गया और जब तक कुछ कहने की तैयारी करता रहा, मैं चुपचाप प्रतीक्षा करता रहा। उसने अपनी आँखों को तो पोंछा, पर चेहरे पर बह आय आँसुओं को पोंछने की चिन्ता नहीं की। उसने अपनी पुत्री के प्रति अपने स्नेह तथा पत्नी के प्रति अपने द्वन्द्वपूर्ण भावों के बारे में बताया और यह चिन्ता भी व्यक्त की कि पता

नहीं उसका और उसके परिवार वालों का क्या होगा ? इसके साथ ही उसे यह भय भी था कि यदि वह स्वयं इस बीच बीमार पड़ गया तो उसके परिवार को सँभालने वाला कोई नहीं होगा। मैंने विनम्र भाव से पूछा कि क्या इस डर से कि कहीं परिवार टूट न जाय, वह कोई नया कदम उठाने में हिचकिचायेगा ? कभी-कभी समुदाय में रहने वाले लोगों को इस तरह के मामलों में सहायता लेने की आवश्यकता पड़ जाती है। इस विषय पर हम लोगों ने कुछ देर तक बातें कीं। उसके पहले मैं उसे बता चुका था कि अस्पताल में प्रवेश-सम्बन्धी सेवा-प्रक्रिया थोड़े दिनों तक के लिए ही होती है और उसकी व्यवस्था तभी तक के लिए होती है जब तक कि रोगी अस्पताल में रहता है। उसके जिज्ञासा और चिन्तापूर्ण प्रश्नों के उत्तर में मैंने कहा कि उसकी पत्नी की चिकित्सा और देख-भाल केवल डाक्टर ही नहीं, पूरा अस्पताल करता है। बाद में यदि वह अच्छी होकर अपने घर जाने की बात सोचती है तो उसके मार्ग में उपस्थित होने वाली बाधाओं और कठिनाइयों को दूर करने के लिए उसके साथ एक सामाजिक कार्यकर्ता रखने की व्यवस्था कर दी जायगी। अन्त में मैंने इतनी बात और कही कि मैं उससे एकबार और मिलना चाहता था, क्योंकि मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हम लोगों की बातें अभी अधूरी रह गयी हैं।"

उपर्युक्त जीवन-वृत्त साक्षात्कार के करीब तीन सप्ताह बाद रोजर्स दूसरी बार साक्षात्कार के लिए आया। इस बार उसके दृष्टिकोण और व्यवहार से यह स्पष्ट पता चलता था कि उसने पिछली बार की सामाजिक कार्यकर्ता के साथ हुई बातचीत से कितना अधिक लाभ उठाया है। रोगिणी के प्रति उसकी विरोधी-भावना बहुत कुछ कम हो गयी थी। इसके विपरीत उसने यह जानने की कोशिश की थी कि उसकी पत्नी की स्थिति में धीरे-धीरे किस प्रकार सुधार हो रहा था। हर सप्ताह दो बार वह रोगिणी से मिलने आया करता था और हर बार की मुलाकात का उसकी पत्नी पर अच्छा प्रभाव था, जिससे यह विश्वास दृढ़ होता गया था कि उसकी पत्नी शीघ्र ही अच्छी होकर उसके और उसकी पुत्री के पास लौट जायगी, उसका यह भाव भी उत्तरोत्तर समाप्त होता गया था कि अब उसकी पत्नी से उसे छुटकारा मिल गया था और अब उसके स्वास्थ्य तथा देख-भाल के सम्बन्ध में उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं रह गया था।

इधर श्रीमती रोजर्स पर भी उपचार तथा अस्पताल के रक्षात्मक वातावरण की अच्छी प्रतिक्रिया हुई थी, उसने इस प्रकार के कार्यों में पूरी तरह सहयोग किया था। उसके डाक्टर की राय थी कि अब वह इस योग्य हो गयी थी कि उसे प्रयोगात्मक रूप में उसके घर में कुछ समय तक रहने के लिए भेजा जाय। किन्तु साथ ही डाक्टर की, जो रोगिणी के जीवन-वृत्त के आधार पर उसकी जटिल सामाजिक परिस्थिति से अवगत था, यह भी राय थी कि रोगिणी के परिवार की स्थिति में भी इस तरह सुधार होना चाहिए कि स्वास्थ्य-

सुधार-काल में जब वह वहाँ रहने के लिए जाय तो उस पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़े, और घर की स्थिति उसके स्वास्थ्य-सुधार की दृष्टि से उपयुक्त हो। अतः डाक्टर की रोगिणी के लिए जो चिन्ता थी, उसी के बारे में विचार-विमर्श करने के लिए रोजर्स दूसरी बार सामाजिक कार्यकर्ता के साथ साक्षात्कार के लिए आया था। उसने कुछ गर्व के साथ अपनी पत्नी के स्वास्थ्य-सुधार की प्रगति के बारे में सूचना दी, फिर कुछ शर्माते हुए बताया कि किस तरह अपनी पत्नी और पुत्री के प्रति उसके भावों और व्यवहारों में परिवर्तन हो गया है और उस दिशा में जैसे एक नये अध्याय का प्रारम्भ हो गया है। उसने अपना यह विश्वास व्यक्त किया कि जब उसकी पत्नी का अस्पताल में उपचार हो रहा है, इस बात की आवश्यकता है कि उसकी पत्नी के साथ-साथ स्वयं उसमें भी परिवर्तन होना आवश्यक है और इसके लिए उसे सामाजिक कार्यकर्ता की मदद की आवश्यकता है। यदि इस स्थिति को बचाना है कि दुबारा उनके पारस्परिक सम्बन्धों में विच्छिन्नता न उत्पन्न होने पाये तो इस प्रकार के परिवर्तन की नितान्त आवश्यकता है। अतः इसके सम्बन्ध में उसने यह जानना चाहा कि समुदाय में क्या इस प्रकार के साधन वर्तमान हैं, जिनसे उसके परिवार को कुछ अतिरिक्त सहायता मिल सके, ताकि जब उसकी पत्नी लौटकर घर जाय तो परिवार में अपने को पुनर्व्यवस्थित करने के उन प्रारम्भिक नाजुक दिनों में आर्थिक समस्याओं को लेकर उसके मन पर कोई आघात न लगने पाये।

सामाजिक कार्यकर्ता ने रोजर्स का अस्पतालके बाहरी स्वास्थ्य-गृह से सम्पर्क स्थापित कराया। उसी ने रोजर्स और उसकी पत्नी का उस स्वास्थ्य-गृह के सामाजिक कार्यकर्ता से भी परिचय कराया। इस नये कार्यकर्ता ने इस बात के लिए प्रबन्ध करा दिया कि श्रीमती रोजर्स के अस्पताल से पेरोल पर छूटने के समय तक उसको मनश्चिकित्साकीय सेवाएँ प्राप्त होती रहें। उसने उन्हें एक पारिवारिक परामर्श-अभिकरण के पास भी पहुँचाया जहाँ उन्हें अपनी पारिवारिक समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिल सकती थी।

अस्पताल से अवकाश के पूर्व की सेवाएँ

अस्पताल में जब कोई मानसिक रोगी अपने विकृत मानसिक-लोक से बाहर निकल चेतन रूप में अपने भविष्य की ओर देखने में सक्षम हो जाता है तो उसके सामने एक नवीन संकट की स्थिति उत्पन्न होती है। उसको अपने पिछले जीवन की अपने घर-परिवार से सम्बन्धित असफलताएँ दिखाई पड़ने लगती हैं, जिनकी अन्तिम परिणति के रूप में उसे मानसिक रोग अस्पताल में आना पड़ा था। उसे यह भी याद आता है कि अस्पताल की मन्द गति वाली, किन्तु कठोर जीवन-प्रक्रिया द्वारा किस तरह उसने धीरे-धीरे सामाजिक व्यक्तित्व की पुनः उपलब्धि की है। जब वह रोगी यह सोचने लगता है कि परिवर्तन की

यह गति उसे कहाँ ले जायगी तो उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसके अपने घर और समुदाय में लौट कर जाने का अर्थ है फिर उसी दुनिया की परिस्थितियों का सामना करना, जिनमें उसे एक बार असफलताएँ मिल चुकी हैं, और वहाँ लौटने पर समाज के लोग उसके पागलपन के समय के असामाजिक व्यवहारों की याद कर उस पर उँगली उठायेंगे, और उसे कलंकी समझ कर उसके साथ पक्षपात और उपेक्षा का व्यवहार करेंगे। इस संकटपूर्ण समस्या को सुलझाने में सहायता के लिए रोगी का डाक्टर उसे सामाजिक सेवा-विभाग में भेज देता है, जहाँ अस्पताल से अवकाश-मुक्ति के पहले रोगी की सहायता की जाती है। यद्यपि इस विभाग की वैयक्तिक सेवाएँ सभी रोगियों को उपलब्ध होती हैं, पर अधिकतर इनसे वे रोगी लाभ उठाते हैं, जिन्हें अस्पताल छोड़ कर अपने घर जाना होता है और यह बात उनके लिए ऐसी समस्या बन जाती है, जिसे सुलझाने में उनके परिवार वालों से कोई सहायता नहीं मिलती।

इस प्रकार की सहायता से मानसिक रोगी अपनी बीमारी से उत्पन्न हुई सामाजिक समस्याओं और लौट कर घर जाने पर सामुदायिक जीवन में अपने को पुनर्व्यवस्थित करने के मार्ग में उपस्थित होने वाली कठिनाइयों का समाधान ढूँढ़ने में सफलता प्राप्त करता है। उससे यह कहा जाता है कि वह इस तरह जीवन बिताये, जिससे यह प्रमाणित हो जाय कि वह अस्पताल के बाहर जाकर रहने योग्य हो गया है और अस्पताल में रहते हुए ही इस तरह के कार्य करे, जिनसे यह आशा बँधे कि बाहर जाने पर उसके अपने उत्तर-दायित्व की भावना में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जायेगी। इसके लिए पेशागत, मनोरंजनात्मक और व्यवसात्मक चिकित्सा-पद्धति का प्रयोग किया जाता है और रोगी को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाता है कि वह इनमें से किसी एक में अपने को लगाये और अस्पताल से बाहर जाने पर भी अपने समुदाय में उपलब्ध इसी प्रकार की सेवाओं में से किसी एक का चुनाव करे।

डोरोथी विलियम्स

दो वर्ष पहले श्रीमती विलियम्स इस अस्पताल में प्रविष्ट हुई थीं। वह ७० वर्ष से अधिक उम्र की एक विधवा स्त्री हैं। प्रवेश के समय वह इतनी भौचक्की और खिन्न दिखाई पड़ती थीं कि प्रवेश करने वाले सामाजिक कार्यकर्ता को उसके साथ बड़ी मिहनत करनी पड़ी। उससे बातचीत करने पर पता चला कि उसके पारिवारिक जीवन की बहुत-सी समस्याएँ कभी सुलझीं ही नहीं और अन्त में भविष्य की ओर देखना ही उसका एकमात्र काम रह गया। प्रवेश के समय परीक्षण के बाद उसके रोग का यह निदान किया गया कि उसे जटिल विषाद-रोग हो गया था। अस्पताल में आराम करने से उसकी

चिन्ताएँ दूर हो गयी थीं, किन्तु ज्यों ही उसमें कुछ सुधार हुआ, उसकी पुरानी उलझी हुई समस्याएँ उसकी स्मृति में फिर ताजी हो गयीं। उसे अस्पताल में इसलिए भेजा गया था कि उसने आत्महत्या करने की कोशिश की थी। यद्यपि उसकी विषादपूर्ण मनःस्थिति बहुत पहले से थी, पर जीवन में कभी भी उसे मनश्चिकित्सात्मक देख-भाल के लिए अस्पताल में नहीं जाना पड़ा, और उसका काम यों ही चलता रहा। पर जब उसके अविवाहित पुत्र ने ५० वर्ष की उम्र में शादी कर ली तो उसके परिवार की स्थिति में सहसा भारी परिवर्तन घटित हो गया। इस नयी स्थिति में उसे ऐसा लगने लगा कि उसके परिवार को अब उसकी आवश्यकता नहीं रह गयी है। अतः अन्त में उसने अपने जीवन का अन्त कर लेने का निश्चय किया था।

मरीज को अवकाश-मुक्ति से पहले वाली सहायता दी गयी, क्योंकि उसके चिकित्सक ने इसके लिए संस्तुति की थी। इस सहायता का उद्देश्य यह था कि रोगिणी अपनी उस आन्तरिक क्षमता का पता लगाये और उसका इस्तेमाल करे, जिसके सहारे वह अपने परिवार से सहायता लिए बिना ही अपने समुदाय में लौट कर जीवन बिता सके। धीरे-धीरे अपने लिए अपनी योजना स्वयं बनाने में उसे सन्तोष मिलने लगा। उत्तरोत्तर अपने मार्ग के निर्माण की दिशा में उठाये जाने वाले कदम के चुनावों और निर्णयों के लिए अपने को उत्तरदायी समझने की उसे आदत पड़ने लगी।

श्रीमती विलियम्स के लिए अवकाश-मुक्ति के पहले वाली सहायता की आवश्यकता इसलिए थी कि उसे अस्पताल से निकलने पर एक पालन-गृह में रखा जाने वाला था। इस सहायता के कारण उसकी स्थिति में जो सुधार हुआ, उसे देखकर अन्त में उसके पुत्र ने यह जिम्मेदारी ली कि वह अपनी माँ के अवकाश-मुक्ति-काल में उसके लिए एक अलग मकान की व्यवस्था करेगा। श्रीमती विलियम्स को अवकाश-मुक्ति के वर्ष के अन्त में अस्पताल से रिहा किया जाने वाला था और यह समय उसके पुत्र द्वारा उसकी अवकाश-मुक्ति की जमानत के तीन मास बाद आने वाला था।

अस्पताल में प्रारम्भ में उसकी स्थिति में सुधार की गति धीमी थी। उसके लिए यह बात असह्य थी कि उसका पुत्र उसे अपने घर में नहीं रखेगा। इसी कारण उसने अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में किसी प्रकार की बाहरी सहायता, चाहे वह कितनी भी आवश्यक क्यों न हो, लेना अस्वीकार कर दिया। यद्यपि वह सामाजिक सेवा के सम्बन्ध में बहुत सतर्क होकर पूछ-ताछ करती थी, जिससे यह पता चलता था कि उसके व्यक्तित्व की बाह्य उदासीनता के भीतर घोर संघर्ष और भय की प्रवृत्तियाँ वर्तमान थीं। अवकाश-मुक्ति के पहले उसके विषय में जो अभिलेख तैयार किया गया था, उसका प्रारम्भिक अंश नीचे दिया जा रहा है—

"जब मैं श्रीमती विलियम्स को यह सूचित करने गया कि उसके डाक्टर ने उसका मामला हम लोगों के पास भेज दिया है, तो देखा कि वह अपने वार्ड के—जो बन्द था—अन्य मरीजों के साथ रहने पर भी अकेली गुमसुम बैठी थी। जब उसकी नर्स ने उससे मेरा परिचय कराया तो उसके चेहरे की भाव-भंगिमा से ऐसा लगा मानो वह कह रही हो "यह बात है।"

उसके साथ मेरे इस प्रथम साक्षात्कार का जो उद्देश्य था, मैंने अपने को उसकी सीमा के बाहर नहीं जाने दिया और उससे केवल इतना ही कहा कि मैं उससे बातचीत के लिए समय देने को तैयार हूँ। ऐसा करने का कारण यह था कि मेरी समझ से उसके लिए यह आवश्यक था कि वह अपने भविष्य के लिए अपनी योजनाएँ स्वयं बनाये। उसने अत्यन्त भद्रतापूर्वक मुझे धन्यवाद देते हुए मेरे निवेदन को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि इस बारे में वह विश्वस्त थी कि उसका पुत्र उसे अस्पताल से अपने घर ले जायगा। फिर भी उसने उन दो तिथियों में से, जो मैंने बात-चीत के लिए सुझाव के रूप में उसके सामने रखी थीं, पहले वाली तिथि को स्वीकार कर लिया और इस कार्य के लिए निश्चित तिथि पर मेरे कार्यालय में आने को तैयार हो गयी।

यद्यपि श्रीमती विलियम्स ने दृढ़तापूर्वक कहा कि उसे बिलकुल याद नहीं है कि मैं उसके वार्ड में पिछली बार उससे किसलिए मिलने गया था, फिर भी वह मुझसे मिलने के लिए ठीक समय पर आयी थी। उसकी नर्स उसे मेरे पास लायी थी और वह उसे साक्षात्कार के बाद वार्ड में फिर उसे वापस ले जाने के लिए प्रतीक्षा करती रही। साक्षात्कार में उसने बार-बार यह बात दुहरायी कि उसे अपनी उलझी हुई और अस्थिर परिस्थितियाँ बराबर याद रहती हैं। उसने सामाजिक सेवाओं, विशेष कर पालन-गृह की देख-भाल-सम्बन्धी व्यवस्था के बारे में कई बार पूछा और यह भी जानना चाहा कि इस सम्बन्ध में उसे क्या करने की आवश्यकता होगी, यद्यपि मैंने उससे इन बातों के बारे में कोई चर्चा नहीं की थी, किन्तु साथ ही उसने स्पष्ट रूप से यह भी कहा कि उसे अपनी परिस्थितियों में परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं महसूस होती। पहले की तरह इस बार भी वह इसी बात पर अड़ी रही कि वह यहाँ से लौट कर अपने पुत्र के ही पास जायगी, क्योंकि अपने जीवन के ५० वर्ष उसने उसी के साथ बिताये हैं। फिर भी जब मैंने अपना यह सन्देह प्रकट किया कि उसका यह दृढ़ विश्वसा शायद यथार्थ स्थिति पर आधारित नहीं है और उसकी इस योजना में बाधाएँ हो सकती हैं, तो उसने मेरी बात का विरोध नहीं किया। इस प्रसंग में उसने यह तो नहीं स्वीकार किया कि उसके लड़के ने शादी कर ली है, पर यह अवश्य बताया कि उसका पुत्र कहा करता था कि उसने एक गृह-सहायिका (नौकरानी) रख ली है। उसे यह भी याद था कि वह नौकरानी उसके

पुत्र तथा घर की देख-भाल करती है। उसने न चाहते हुए भी एक वाक्य ऐसा कहा जो अधूरा होते हुए भी उसके भीतर के भाव को व्यक्त करने वाला था, यद्यपि उसने उस आधी बात को न कहकर अपने मन का भेद छिपाना चाहा था। वह वाक्य था, "यदि मेरा वहाँ रहना वे पसन्द नहीं करते. . . . ."। मैंने साक्षात्कार के समय अपनी ओर से बातों की दिशा मोड़ने का प्रयत्न नहीं किया, बल्कि उसे पूरी स्वतंत्रता दे दी थी कि वह जो कहना चाहे, कहे। मैंने उसे बताया कि मेरे विचार से अपने इरादों के बारे में वह स्वयं संदेहशील थी। अन्त में इससे उत्तेजित होकर वह इस बारे में मेरे साथ मिलकर विचार करने लगी कि अपनी स्थिति की वास्तविकता का ज्ञान उसे किस प्रकार हो सकता है और मैं इसमें उसकी क्या सहायता कर सकता हूँ। मुझे ऐसा लगा कि इसके पहले कि रोगिणी अपने जीवन के सम्बन्ध में कुछ निर्णय करने की बात स्वीकार करे, उसे इस बात का ज्ञान हो जाना आवश्यक है कि उसके परिवार में उसकी क्या स्थिति है और परिवार के सदस्यों के साथ इस समय उसके सम्बन्ध कैसे हैं। अन्त में हम लोगों ने इस निश्चय के साथ साक्षात्कार समाप्त किया कि हम दोनों अलग-अलग उसके पुत्र को पत्र लिखेंगे और अगले सप्ताह फिर मिलकर विचार करेंगे कि पत्र लिखने का क्या परिणाम हुआ है।

श्रीमती विलियम्स ने अगली बार बड़ी आसानी से स्वीकार कर लिया कि उसे अपनी योजना बनाने में सहायता की आवश्यकता है। उसने पालन-गृह की देख-भाल के सम्बन्ध में भी कुछ और प्रश्न पूछे। उसकी बातों से यह संकेत मिला कि वह सचमुच सोचती है कि उसके पुत्र के घर में अब उसकी कोई पूछ नहीं होगी। इसीलिए उसने यह आश्वासन माँगा कि हम लोग उसका साथ देंगे। फिर भी उसने साफ-साफ यह नहीं व्यक्त किया कि हमारी कैसी सहायता की आवश्यकता है और इसी कारण मैंने भी इस सम्बन्ध में कोई मत नहीं व्यक्त किया कि जब वह अस्पताल छोड़कर जाने लगेगी तो उसके सामने कौन-कौन से मार्ग होंगे, जिनमें से किसी एक को वह चुन सके।[1]

१. वस्तुतः अस्पताल छोड़ते समय रोगी के सामने कई रास्ते होते हैं, जिनमें से उसे अपने लिए किसी एक का चुनाव करना पड़ता है। यद्यपि उन्हें चिकित्सकीय प्रमाणपत्र के आधार पर अस्पताल भेजा जाता है, पर वन्दी-साक्षात्कार-सम्बन्धी कार्रवाई का उनका कानूनी अधिकार सुरक्षित रहता है। उसी तरह उन्हें पेरोल पर मुक्त होने का या कानूनी कार्रवाई द्वारा हमेशा के लिए मुक्त होने का अधिकार होता है। वे पालन-गृह की सेवा प्राप्त करने के लिए आवेदनपत्र दे सकते हैं। कभी-कभी वे बिना अनुमति के ही अस्पताल से भाग जाते हैं (पर उस हालत में अस्पताल को उन्हें पकड़वाकर बन्द करने का अधिकार होता है और उनकी तलाश

कुछ और टालमटोल के बाद, मेरे इस प्रश्न पर कि वह अस्पताल से मुक्ति पाने-पर बाहर जाकर रहने के लिए अपने को किस प्रकार तैयार कर रही है, श्रीमती विलियम्स ने इस सम्बन्ध में कुछ देर तक बातें की। मुझे उससे कहना पड़ा कि मुझे उसकी स्थिति पर आश्चर्य हो रहा है कि वह कैसे कुछ कर पायेगी, क्योंकि अन्त में अस्पताल से जाने का काम तो उसे ही करना है, चाहे वह अपने पुत्र के पास जाय अथवा और कहीं रहने की योजना बनाये। मैंने उससे पूछा कि वही बताये कि वह किसी घर की गृहस्थी या किसी दूकान का प्रबन्ध कैसे कर पायेगी, जबकि अभीतक उसे मेरे कार्यालय में पहुँचाने के लिए उसके साथ एक नर्स आया करती है और अब भी उसे रक्षा की दृष्टि से बन्द वार्ड में रखा जाता है ?[२]

इसके बाद के साक्षात्कार के अभिलेख में हम देखते हैं कि रोगी की प्रक्रिया किस तरह नवीन दिशा में मुड़ी——

"आज जब श्रीमती विलियम्स निश्चित समय पर साक्षात्कार के लिए आयी तो वह बिलकुल बदली हुई दिखाई पड़ती थी। बैठने के साथ ही उसने बताया कि उसको इस सप्ताह क्षेत्रीय पैरोल की अनुमति प्राप्त हुई है (क्षेत्रीय पैरोल का अर्थ है कि रोगी को अस्पताल के मैदान में अस्पताल के किसी कर्मचारी की सहायता के बिना अकेले घूमने की स्वतंत्रता।) इसके बाद तुरन्त ही उसने यह भी बताने की जल्दबाजी की, मानों यदि वह न बताती तो उसकी इस सफलता का श्रेय मैं ही ले लेता कि उसने क्षेत्रीय पेरोल की अनुमति स्वयं अपने लिए नहीं, बल्कि अपनी एक साथिन के लिए ली है, जिसे क्षेत्रीय पैरोल की अनुमति मिली थी। श्रीमती विलियम्स का कहना था कि उसे अकेले घूमने में 'अकेलेपन' का अनुभव होता, इसलिए उसका साथ देने के लिए ही उसने भी क्षेत्रीय-पैरोल के लिए अनुमति माँगी थी। उसने यह भी बताया कि वह नर्सों से पूछा करती

की जाती है।) अन्य कोई मार्ग न पसन्द आने पर रोगी यदि अस्पताल में रहना पसन्द करे, तो ऐसा कर सकता है।

२. जब तक पूर्णतः इस बात का विश्वास नहीं हो जाता कि स्वतंत्र छोड़ देने पर रोगी अपनी या दूसरों की कोई क्षति नहीं करेगा, तब तक उसे वार्ड में बन्द कर के रखा जाता है। जहाँ वह पूरी तरह रक्षित होता है। इस अस्पताल में यह नियम है कि रोगियों को पहले बन्द वार्डों में रखा जाता है और ज्यों-ज्यों उनमें सामाजिक जीवन व्यतीत करने की योग्यता के लक्षण दिखाई पड़ते हैं और जैसे-जैसे वे अस्पताल के भीतर नियोजित गृहव्यवस्था-सम्बन्धी कार्यों के प्रति अपनी जिम्मेदारी का अनुभव करते जाते हैं, उन्हें उत्तरोत्तर बन्द वार्डों से अर्द्ध-रक्षित वार्डों और फिर खुले वार्डों में रहने के लिए भेजा जाता है।

थी कि वार्ड के कामों में वह क्या सहायता कर सकती है। उसने सन्तोष व्यक्त करते हुए बताया कि उसे तश्तरियाँ पोंछने और फर्नीचर साफ करने का काम मिला है।

उसने उस सप्ताह में जो-जो कार्य किये थे, मैंने उनकी प्रशंसा करते हुए उसे बधाई दी और बताया कि मुझे उसमें काफी परिवर्तन दिखाई पड़ता था। इन बातों से उसे ऐसा अनुभव हो रहा था, वस्तुतः उसने कुछ उपलब्धि की है और इस सफलता की भावना ने इस दिशा में और भी आगे बढ़ने के लिए उसमें साहस उत्पन्न किया। पहली बार उसने मुझसे स्वयं प्रश्न किया कि उसके पुत्र ने मुझे कोई पत्र लिखा है या नहीं। इसके पहले हमेशा वह यही कहा करती थी कि वह अपने पुत्र के बारे में विश्वस्त थी। आज इस प्रश्न द्वारा अपने मन का यह सन्देह उसने पहली बार व्यक्त किया कि जैसा वह सोचती थी, बात वैसी नहीं थी।

मैंने उसे बताया कि कल उसके साथ मेरा साक्षात्कार हुआ था। मैंने उसे सूचित किया कि शायद उसे यह बात आश्चर्यजनक और नयी नहीं मालूम पड़ेगी कि उसका पुत्र उसके अस्पताल में से रिहा होने पर, उसे अपने घर नहीं ले जाना चाहता था। यह सुन कर उसमें भावनात्मक आवेग आया, जो उसके लिए एक नयी बात थी। वह रोने लगी और फिर यह बताया कि इस बात से उसके हृदय को कितनी ठेस लगी है। बाद में उसने अपने मन के क्रोध तथा उन भावनाओं को व्यक्त किया, जो इस धारणा से उत्पन्न हुई थी कि उसके पुत्र ने उसका त्याग कर दिया है। निराशा से भर कर उसने भावावेग में मेरा हाथ पकड़ लिया और चिल्लाकर मुझसे पूछा कि दुनिया में अब न्याय बचा रह गया है? मैंने उसका समर्थन करते हुए स्वीकार किया कि उसका ऐसा सोचना ठीक ही था। फिर मैंने उससे कोमलता के साथ पूछा कि क्या जो बुरा है, उसे हमेशा बुरा बनाये रहना ही उचित है? पहले तो कुछ देर तक उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि अपना लड़का ही उसके साथ ऐसा व्यवहार करेगा। उसने बताया कि जब वह स्वयं अपने लड़के की स्थिति में थी, उस समय बातें कितने भिन्न ढंग की थीं? वह न केवल अपने माँ-बाप की देख-भाल करती थी, और वह उनके लिए इससे भिन्न कोई बात सोच ही नहीं सकती थी, बल्कि अपने सास-ससुर की भी, जब कि वे बेसहारा हो गये थे, उसने उसी तरह सेवा की थी। वह अपनी उस आन्तरिक वेदना के साथ संघर्ष करने लगी, जो अस्पताल में रहते हुए उसके मन को आन्दोलित करती रहती थी, पर जिसके बारे में उसने मुझसे कभी कुछ नहीं कहा था, उसे मुझसे हमेशा छिपा कर रखा था। पहले उसका लड़का जब भी उससे मिलने आता था, उसे दो डालर देता था। बाद में उसने हर बार एक-एक डालर देना शुरू किया और पिछली बार जब आया था तो उसने उसे कुछ भी नहीं दिया था। अब उसके पास कुल ४५ सेण्ट की पूंजी बची थी।

कुछ देर रुकने के बाद वह फिर सिसकने लगी, पर इस बार उसकी सिसकी उतनी निराशापूर्ण नहीं थी। वह धीरे-धीरे सिसकते हुए बोली कि यह उसके लिए अत्यन्त पीड़ा देने वाली, सम्भवतः प्रसव-पीड़ा से भी अधिक कष्टप्रद बात थी, जिसका अनुभव उसने इस के पहले कभी नहीं किया था। फिर उसने अपने को सँभाला, मानों उसे कोई नयी बात सूझ गयी हो, और बोली कि अब वह अपने पुत्र के निर्णय की प्रतीक्षा नहीं करेगी। फिर उसने कहा, 'तुम्हारा क्या ख्याल है, क्या मैं तुम्हारे साथ मिल कर अपने भविष्य की योजना स्वयं नहीं बना सकती ?' मैं ने कहा कि निश्चय ही वह ऐसा कर सकती है। मैंने यह बात उसके सामने फिर दुहरायी कि मैं तो इसी काम के लिए उसके पास आया ही हूँ ! मैं ने उसके उत्साह और साहस की प्रशंसा की कि वह अपने बारे में स्वयं योजना बनाने को तैयार हो गयी है ।

फिर तो श्रीमती विलियम्स आश्चर्यजनक सूझ-बूझ के साथ सक्रिय रूप से बातचीत करने लगी। उसने ब्यौरे के साथ मुझसे पूछा कि पालन-गृह में भेजे जाने योग्य बनने के लिए उसे क्या तैयारी करनी होगी और पालन-गृह की सेवा किस प्रकार की होती है ? वह चाहती थी कि मैं कर्मचारियों की विचार-गोष्ठी की कोई ऐसी तिथि उसे बता दूँ जिस दिन वह पालन-गृह-सेवा प्राप्त करने के लिए अपना आवेदन-पत्र उस बैठक में प्रेषित कर सके।

हम लोगों ने इस सम्बन्ध में बातें कीं कि वह कर्मचारियों की गोष्ठी के निर्णय के लिए क्या तैयारी करे, इस पर मुझे उससे यह बताने का अवसर मिला कि उसे इस बात का अनुभव स्वयं कर लेना चाहिए कि इससे सम्बन्धित सभी बातें एक ही दिन में नहीं की जा सकतीं। अतः हम लोगों ने एक बार फिर मिलने के लिए दिन निश्चित किया और यह भी तै किया कि कर्मचारियों की बैठक होने के पूर्व हमारा साक्षात्कार दो बार और होगा। उसे यह जान कर सन्तोष हुआ कि न केवल उसे कुछ काम करने को मिलेगा, बल्कि काम करने के लिए अधिक समय भी मिलेगा।"

धीरे-धीरे रोगिणी अस्पताल के बाहर भी घूमने जाने लगी, उसकी यह प्रगति मनोवैज्ञानिक थी। अब उसने अपने अतीत के भूत से अपना पीछा छुड़ा लिया था और अस्पताल तथा अपने परिवार के सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण बदल गया था। यह बात कुछ सप्ताह बाद उसके साथ होने वाले एक साक्षात्कार से बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो गयी। यह साक्षात्कार उस समय हुआ था, जब उसने अपने 'बच्चों' के साथ व्यावहारिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया था—

"रोगिणी अपने सबसे अच्छे वस्त्र पहन कर मिलने आयी। आते ही उसने कहा कि अब वह "अस्पताल से जाने के लिए बिलकुल तैयार है"। उसने यह भी कहा कि एक

साक्षात्कार के बाद उसे दूसरे साक्षात्कार के लिए बड़ी लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। मानों यह स्पष्ट करने के लिए कि मैं कहीं उसे गलत न समझ रहा होऊँ, उसने कहा कि उसके पुत्र के घर में काफी परिवर्तन हो गया है और यदि वह अपने पुत्र के घर में रहने के लिए जायगी भी तो अब वह उसका अपना घर नहीं होगा।

उसकी बातों से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि अब वह अपने परिवार को एक नयी दृष्टि से देखने लगी थी। उसने बड़ी ममता के साथ बताया कि उसके पुत्र और पुत्रवधू उसके लिए क्या-क्या करते थे। पहले वे केवल उससे मिलने आते थे और उनका इतना करना ही उसके लिए बहुत था, पर अब वे उसे बाहर घुड़सवारी के लिए तथा खाना खिलाने के लिए अपने साथ ले जाते थे। उसकी लड़की उसे बाजार में अपने साथ ले गयी थी और उसे अपने लिए नये कपड़े पसन्द करने के लिए कहा था। पहले यही लड़की अपने मन से जो चाहती थी, खरीद कर उसके पास भेज देती थी।

हम दोनों इस बात से बहुत प्रसन्न थे कि अब उसके बच्चों के साथ उसका सम्बन्ध बहुत ही सन्तोषपूर्ण हो गया था। फिर उसने बताया कि यहाँ अस्पताल में नये-नये काम करने में उसे कितना मजा आता है। वह अपने लिए टिकट लाने स्वयं अस्पताल के डाकखाने तक गयी थी। कार्यालय में स्वयं जाकर उसने अपना रुपया भी भुनाया था।

नये कदम उठाने की उसकी तत्परता और योग्यता को देख कर मुझे स्मरण हो आया कि अब उसे मेरी सहायता की आवश्यकता नहीं होगी, क्योंकि हमारी इस मुलाकात के बाद ही उसे सामाजिक आयोजना-विभाग की बैठक में उसका मामला जानेवाला था। मैंने उसके भीतरी भय को भाँप कर उससे कहा कि मैं उसे सामाजिक आयोजना-विभाग का कक्ष दिखा दूंगा। इसके बाद उसने अपने बैठने के लिए स्वयं स्थान खोज लिया। उसे यह जानकर सन्तोष हुआ कि सामाजिक आयोजना-विभाग के साथ उसकी मुलाकात के समय मैं और उसका डाक्टर दोनों वहाँ उपस्थित रहेंगे।"

दूसरे सप्ताह में रोगिणी सामाजिक आयोजना-विभाग में गयी और पालन-गृह की सेवा प्राप्त करने के सम्बन्ध में उसका आवेदन-पत्र बिना कुछ पूछे स्वीकार कर लिया गया। सामाजिक आयोजना-विभाग यह निश्चय करता है कि रोगी के अस्पताल छोड़ कर समुदाय में जाने पर अस्पताल उसका उत्तरदायित्व किस सीमा तक ग्रहण कर सकता है। इस विभाग की बैठकों की अध्यक्षता अस्पताल का स्वास्थ्य-गृह-निदेशक करता है। उन बैठकों में सभी मनश्चिकित्सक जो प्रशासन-कार्य करते हैं, सामाजिक सेवा-विभाग के सभी कर्मचारी तथा अस्पताल के सभी मनोवैज्ञानिक और मनोरंजन-चिकित्सा विशेषज्ञ उपस्थित रहते हैं। रोगी के चिकित्सक और उसके लिए नियुक्त उसका सामाजिक कार्यकर्ता, दोनों इस सम्बन्ध में बैठक के सामने अपनी संस्तुति उपस्थित करते हैं

कि रोगी को अस्पताल के बाहर व्यवस्थापन के लिए भेजा जा सकता है या नहीं ? किन्तु वस्तुतः सबसे महत्त्वपूर्ण स्वयं रोगी के साथ होने वाला साक्षात्कार होता है। इस साक्षात्कार से ही इस बात का अधिक आसानी से पता चलता है कि रोगी अस्पताल से रिहा होने के योग्य हो गया है या नहीं।

पैरोल पर छूटने से पहले का सेवा-कार्य करने वाले कार्यकर्ता के साथ होने वाले साक्षात्कार के समय श्रीमती विलियम्स ने अपने सामाजिक कार्यकर्ता और अस्पताल से अपने अलग होने के कारण किसी भी प्रकार की उद्विग्नता का परिचय नहीं दिया। यह साक्षात्कार सामाजिक सेवा-विभाग की बैठक से पहले हुआ था—

"मरीज ने मेरे कमरे में घुसते ही कहा कि उसकी सभी साथिनें अस्पताल से मुक्त हो कर चली गयी हैं, इसलिए वह भी अब जल्दी -से-जल्दी यहाँ से चली जाना चाहती है। वह किसी भी घर में, जहाँ उसे रहने को कहा जायगा, चाहे वह एक तम्बू ही क्यों न हो, रहने के लिए तैयार है, पर वह जायेगी जरूर।

श्रीमती विलियम्स के लिए वह एक विदाई की घड़ी थी, जिसमें वह जल्दी-से-जल्दी सबसे बिदा लेकर जाने को आतुर थी, यहाँ तक कि वह मुझको भी नमस्कार करके बिदा लेने को तैयार मालूम पड़ती थी। आज भी उसने अपने सबसे अच्छे कपड़े पहन रखे थे। उसने मुझे याद दिलाया कि मैंने पहले उससे कहा था कि मुझे उसका अच्छे वस्त्र पहनना बहुत अच्छा लगता है। उसने मेरे प्रति जो रागात्मकता दिखायी मैंने उसको इस तरह स्वीकार किया कि उसने उत्साहित होकर बताना शुरू कर दिया कि पिछले सप्ताह उसे किस प्रकार एक निराशापूर्ण अनुभव हुआ था। उसके पुत्र-पुत्रवधू पिछले रविवार को उससे मिलने नहीं आयी थी, यद्यपि उन्होंने उसके लिए कुछ प्यालेनुमा केक भेज दिये थे, क्योंकि उसके पुत्र को याद था कि वह उन्हें पसन्द करती थी। पर उनका न आना एक माने में अच्छा ही रहा, क्यों कि उसकी पुत्रवधू ने एक पत्र लिखा था, जिसमें उसने पूछा था कि क्या वह (पुत्रवधू) उसे "अम्माँ" कह कर पुकार सकती है ? इस बात से श्रीमती विलियम्स ने कहा कि वह इससे प्रभावित हुई थी और उसे 'गर्व' का भी अनुभव हुआ था।

जब तक हम लोग सामाजिक सेवा-विभाग की बैठक में उपस्थिति करने के लिए कागज पत्र तथा अन्य बातों की तैयारी करने में लगे रहे, ऐसा लग रहा था कि मेरे साथ थोड़े दिनों का उसका जो सम्पर्क था, उसकी समाप्ति देखने के लिए भी वह अपने को तैयार कर रही थी। उसने मुझको अपनी नयी जिन्दगी की 'आधार-शिला' बताते हुए पूछा कि यदि वह स्टाफ की बैठक में मेरी सेवाओं के लिए मुझे धन्यवाद दे और मेरे बारेमें तथा मेरी सहायता के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक ढंग से कुछ कहे तो यह अनुचित तो न होगा? मैंने उससे कहा कि बैठक में वह जो कुछ कहेगी, उसे पसन्द किया जायेगा। उसने

अपने लिए जो कुछ किया था, मैंने भी उसका प्रशंसात्मक ढंग से उल्लेख किया और उसका महत्त्व स्वीकार किया और उससे बताया कि वह अपनी जीवन-विधि में कहाँ से कहाँ पहुँच गयी है।

जब मैंने पूछा कि क्या उसे यहाँ रहनेवाले हम लोगों की याद आयेगी ? तो उसने उत्तर दिया कि जरूर याद आयेगी और नर्सों की, तथा विशेष रूप से मेरी कमी उसे बहुत खलेगी। फिर भी वह अस्पताल से जाना जरूर चाहती थी। उसने मेरे नाम का पहला अंश तथा मेरा पता पूछा ताकि वह मुझे पत्र लिख सके।"

श्रीमती विलियम्स के लिए स्टाफ की बैठक का अनुभव बहुत महत्त्वपूर्ण था—"बुजर्गों-जैसी विनम्रता के साथ श्रीमती विलियम्स डाक्टर बी० के निकट वाली कुर्सी पर बैठी और उसने बहुत ही स्वच्छन्द भाव से तथा सीधे-सीधे यह बताया कि वह अब अस्पताल से वापस जाने को बहुत इच्छुक है। उसने यह स्वीकार किया कि जब वह अस्पताल में आयी थी, उस समय वह निश्चित रूप से बीमार थी और उसे अपने पाँवों पर स्वयं खड़ा होने के लिए अस्पताल में रह कर पाँच मास तक चिकित्सा करानी पड़ी है। उसने बताया कि पहले तो उसे ऐसा लगता था कि अब जीवन व्यर्थ है, क्योंकि जीने लायक कुछ नहीं रह गया है, किन्तु बाद में वह सोचने लगी थी कि एक बार और जीने का प्रयत्न करके देख लेना चाहिए। उसने अपनी किसी पसन्द की बात की प्रार्थना नहीं की कि उसके लिए कैसे परिवार की आवश्यकता है। इसके बदले उसने यह विश्वास व्यक्त किया कि अस्पताल के कर्मचारी स्वयं उसके लिए ऐसा परिवार तलाश करेंगे, जो उसे अच्छी तरह रख सकेगा। उसने बताया कि उसे मालूम है कि इस बैठक के बाद कोई अन्य सामाजिक कार्यकर्ता उसकी सहायता के काम पर नियुक्त होगा। साथ ही इस अवसर पर उसने अपनी सहायता के लिए मेरे द्वारा किये गये कार्यों की प्रशंसा भी की।

मैंने उसे दरवाजे तक पहुँचाया और चलते-चलते उसे विश्वास दिलाया कि मैं अभी वहाँ रुक कर बैठक की कारवाई देखूँगा और बाद में उससे बताउँगा कि बैठक में उसके लिए क्या निर्णय किया गया और उसकी सहायता के लिए किस नये कार्यकर्ता को नियुक्त किया गया है।"

पालन-गृह की देख-भाल

पालन-गृह की देख-भाल-सम्बन्धी सेवा मनश्चिकित्सकीय वैयक्तिक सेवा के कार्यक्रमों का ही एक अंग है। यह सेवा उन रोगियों के लिए है, जिन्हें अस्पताल के रक्षित वातावरण में अधिक रखने की आवश्यकता नहीं समझी जाती, अतः उन्हें समुदाय के किसी परिवार में

रखा जाता है, ताकि उन्हें समाज में पुनः व्यवस्थित जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त हो सके।

सामाजिक आयोजन-सम्बन्धी बैठक के बाद रोगी समुदाय में अपने साधनों और सम्बन्धों की खोज शुरू करते हैं। यह प्रारम्भ का काल खोज का काल होता है, जिसे व्यवस्थापन-पूर्व-काल कहा जाता है। इस काल में सामाजिक कार्यकर्ता रोगी को पालन-गृह की, और यदि वह काम करने के योग्य है तो नौकरी या रोजगार की तलाश में अस्पताल के बाहर घुमाने ले जाता है। जब कोई ऐसा पालक परिवार मिल जाता है, जो अस्पताल के नियमों तथा रोगी की पसन्द के अनुरूप है, और जब रोगी का डाक्टर एक बार फिर उसका परीक्षण कर लेता है, तो उसके बाद रोगी को उस परिवार में रहने के लिए भेज दिया जाता है। इसी को पालन-गृह की देख-भाल (फोस्टर केयर) कहा जाता है।

सामाजिक आयोजना-बैठक में श्रीमती विलियम्स का आवेदन-पत्र स्वीकृत कर लिया गया और उसके बाद उसका व्यवस्थापन-पूर्व-काल प्रारम्भ हो गया —

"जब श्रीमती विलियम्स से मेरा साक्षात्कार हुआ तो मैंने देखा कि मेरे साथ सहयोग करने को उत्सुक थी और साथ ही वह अस्पताल छोड़ने के लिए भी बहुत आतुर थी। जब मैं उससे इस सम्बन्ध में बातें कर रहा था कि अब उसे एक ऐसे परिवार में जाकर रहना है, जिससे उसका कोई रिश्ता नहीं है, उसे यह बात फिर याद हो आयी कि उसका लड़का उसे अपने घर में रखने को तैयार नहीं था। फिर भी वह इसके लिए कृतसंकल्प थी कि वह समाज में रह कर जीवन बिताने का प्रयत्न करेगी। पहले तो उसे यह बात सुनकर बड़ी निराशा हुई कि अस्पताल के नियमों के अनुसार उसे सामाजिक-आयोजना-बैठक के बाद दो सप्ताह तक अस्पताल में अनिवार्यतः रहना ही होगा, पर इससे उसका उत्साह नहीं भंग हुआ। इस बाधा की चिन्ता न करते हुए वह इसके लिए भी तैयार थी कि यदि कोई उपर्युक्त परिवार न भी मिले तो वह किसी के साथ, एक ही कमरे में सही, हिस्सा बँटाकर तबतक रह सकती है, जब तक उसके लिए किसी स्थायी पालन-गृह का प्रबन्ध नहीं हो जाता।

मैंने उससे दुबारा मिलने का समय निश्चित किया, पर उस साक्षात्कार के पूर्व मैं आर्थिक प्रश्नों पर विचार करने के लिए उसके पुत्र से मुलाकात की। वह आर्थिक दृष्टि से अपनी माँ का भरण-पोषण करने में समर्थ था, अतः मैंने श्रीमती विलियम्स की ओर से उससे बताया कि हम लोग यह आशा कर रहे हैं कि वह अपनी माँ के लिए खर्च देगा। उसने अपनी पहले की बात दुहराते हुए यह स्वीकार किया कि वह अपनी माँ के आवास, भोजन, वस्त्र और चिकित्सा के व्यय का भार वहन करेगा।

श्रीमती विलियम्स निश्चित समय से कुछ मिनट पहले ही मिलने के लिए आ गयी थी। वह मेरे साथ श्रीमती फार्मर के घर जाकर उससे मिलने को तैयार थी। श्रीमती फार्मर ने अभी कुछ दिनों पहले ही इस बात के लिए आवेदन-पत्र दिया था कि वह देख-भाल का कार्य करने को तैयार है। आज उससे मिलने का समय निर्धारित किया गया था, अतः श्रीमती विलियम्स को लेकर मुझे उसके घर जाना था। श्रीमती फार्मर और श्रीमती विलियम्स मिलीं। भोजन, आवास आदि के प्रबन्ध के बारे में विचार करने में उन्होंने बड़ी रुचि दिखायी। दोनों को यह अच्छी तरह मालूम था कि उनके लिए यह प्रथम प्रयास था, जब कि एक अपने घर में एक रोगिणी को रखने जा रही थी और दूसरी पुनः समाज में रह कर जीवन बिताने जा रही थी। वे दोनों इस बात के लिए विश्वस्त थीं कि उनका प्रयत्न असफल नहीं होगा और उनका कार्यक्रम लक्ष्य के विपरीत फल नहीं देगा।

श्रीमती फार्मर के घर जाते समय रास्ते में हम दोनों ने फार्मर के घर की सुविधाओं और असुविधाओं के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया था। मैंने यह स्वीकार किया था कि उसके अपने घर के समान दूसरा घर मिलना कठिन था। मैं उससे यह भी बताया था कि श्रीमती फार्मर का घर उसके घर से काफी दूर था, जिससे उसका अपने पुत्र के घर अधिक जाना सम्भव नहीं होगा। श्रीमती विलियम्स ने इसका जो उत्तर दिया था, उससे मुझे आश्चर्य हुआ था। उसने कहा था, "इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। आखिर मुझे रहना तो वहीं है और यदि मैं उस घर को पसन्द करती हूँ तो यही सबसे बड़ी महत्त्व की बात है। मेरे पुत्र और पुत्रवधू को अपनी जिन्दगी बितानी है और मुझे अपनी।"

जब हम लोग अपनी सफलता की बातें सोचते हुए सुख की नींद सोने के लिए अस्पताल में वापस आये तो श्रीमती विलियम्स ने कहा, "श्रीमती बी०, मैं इतनी प्रसन्न हूँ कि लगता है, खुशी के मारे रोने लगूँगी।" और सचमुच वह रोने लगी।

दस दिनों के बाद मैंने श्रीमती विलियम्स को उसके नवीन पालन-गृह में पहुँचा दिया। जाने की पूरी तैयारी हो जाने पर, अस्पताल से चलने के पूर्व हम दोनों ने उसके चिकित्सक डा० जी० से बातें की थीं और उन्होंने श्रीमती विलियम्स के व्यवस्थापन की योजना का समर्थन किया था। श्रीमती फार्मर और उसके पति फार्मर दोनों ही बहुत अच्छे व्यक्ति हैं। यद्यपि वे अपने परिवार के मामलों में स्वयं इतने मशगूल रहने वाले हैं कि बाहरी व्यक्ति को अपने बीच खपाना उनके लिए कठिन ही था, विशेष रूप से फार्मर इस सम्बन्ध में सन्देहशील था कि एक अजनवी व्यक्ति को अपने बीच वे कैसे रख सकेंगे। फिर भी वह इसके लिए राजी था कि प्रयत्न करके देख लेने में कोई हानि नहीं है।

यद्यपि फार्मर के सन्देहों को ध्यान में रखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि रोगिणी के लिए इस व्यवस्थापन का काल कठिन परीक्षण का काल होगा, पर श्रीमती विलियम्स

की दृष्टि से देखने पर कहा जा सकता है कि यह उसे पहली बार अनेक प्रत्यक्ष अनुभवों के लिए अवसर प्रदान करेगा। रोगिणी ने इस पालन-गृह के चुनाव में वास्तविक सहयोग किया था, अतः इसीलिए वहाँ उसे सन्तोष मिल रहा है। वह अपने सन्देहों को बाहर नहीं व्यक्त करती है। इस प्रकार फार्मर और श्रीमती विलियम्स, दोनों के मन में समान रूप से सन्देह वर्तमान हैं और इससे रोगिणी को इस बात के लिए मौका मिल रहा है कि वह अपनी इस इच्छा की सच्चाई की परीक्षा करे कि चाहे जो भी बाधा क्यों न आये, वह अस्पताल के बाहर कहीं भी रहने को तैयार है।"

पालन-गृह का चुनाव चाहे कितनी भी सावधानी से क्यों न हो और उसका अधीक्षण चाहे कितनी भी मुस्तैदी से क्यों न कराया जाय, उससे रोगी का पूरा-पूरा सामंजस्य नहीं हो सकता है। फिर भी उसे एक औसत परिवार का ऐसा वास्तविकतापूर्ण घर होना चाहिए, जिसमें एक और व्यक्ति को रखने की आवश्यकता का अनुभव किया जाता रहा हो और जहाँ रोगी को भी इस बात का अनुभव हो सके कि वह भी उस परिवार के लिए आवश्यक और उपयोगी व्यक्ति है।

पेरोल की एक वर्ष की अवधि में, जब कि रोगी पालन-गृह की देख-रेख में रहता है, सामाजिक कार्यकर्ता उसके वैयक्तिक सेवा-कार्य तथा अधीक्षण के लिए सदा तत्पर रहता है। इस अवधि में रोगी को ऐसी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जो उसके सामुदायिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयत्न के दौरान में उत्पन्न होती हैं। सामाजिक कार्यकर्ता इन समस्याओं को हल करने में रोगी की तो सहायता करता ही है, वह उस व्यक्ति की भी सहायता करता है, जिसके साथ रोगी रहता है। रोगी के उसके घर में रहने के कारण पालन-गृह की स्वामिनी के, जो रोगी की देख-भाल करती है, सामने भी अनेक समस्याएँ आती रहती हैं, जिन्हें हल करने में कार्यकर्ता सहायता करता है। वह अस्पताल में रोगी के चिकित्सक के साथ तो सम्पर्क बनाये ही रखता है, उन सामुदायिक अभिकरणों से भी निकट सम्बन्ध स्थापित करता है, जो रोगी के पुनर्वास के कार्य में सहायक हो सकते हैं। रोगी इन सुविधाओं से जिस सीमा तक लाभ उठाता है, उतना ही वह अपने को इस बात के लिए योग्य सिद्ध करता है कि अब उसे अस्पताल से रिहा किया जा सकता है, क्योंकि उसने अपने कार्यों से यह प्रमाणित कर दिया है कि उसने अपने पावों पर खड़ा होकर सामाजिक जीवन बिताने के लिए उपयुक्त तैयारी कर ली है।

इस पालन-गृह-योजना का लक्ष्य यह होता है कि पेरोल-वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद रोगी अस्पताल से रिहा होने के योग्य हो जाय। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि रोगी समुदाय में अपने को नये सिरे से इस प्रकार से व्यवस्थापित करे, जो उसके लिए तथा समुदाय के लिए समान रूप से सन्तोषजनक हो। प्रायः इसका यही

परिणाम होता है कि रोगी में आत्म-निर्भरता की नयी भावना जाग्रत होती है और यदि वह किसी परिवार में रहता है तो उसमें उस परिवार के साथ एक सीमा तक सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता का विकास होता है। किन्तु स्वभावतः यह आशा की जाती है कि समुदाय के साथ रोगी धीरे-धीरे सामंजस्य स्थापित करेगा—

"व्यवस्थापन का प्रथम मास श्रीमती विलियम्स के लिए बहुत अच्छी तरह बीता। पलिका गृहणी श्रीमती फार्मर और रोगिणी श्रीमती विलियम्स एक साथ रहकर सुखपूर्वक जीवन बिता रही हैं, ऐसा प्रतीत होता था। विलियम्स भी नियमित रूप से अपनी माँ से मिलने आया करता था, कभी-कभी उसे बाजार में सामान खरीदने के लिए अपने साथ भी ले जाता था और सप्ताहान्त मे (हर शनिवार) को उसे अपने घर भी ले जाया करता था।

फिर भी श्रीमती विलियम्स कभी-कभी अकेलेपन का अनुभव करती है। यद्यपि श्रीमती फार्मर का व्यवहार उसके प्रति बहुत ही सद्भावनापूर्ण था, पर उसके पति फार्मर के लिए वह एक समस्या बनी रही, क्योंकि वह बराबर यह अनुभव करता था कि उसके घर में एक अजनबी व्यक्ति रहता है। श्रीमती फार्मर ने मुझसे इस बारे में चिन्ता व्यक्त की और कहा कि उसे भय है कि कहीं उसके पति के इस प्रकार के व्यवहार से श्रीमती विलियम्स के हृदय पर ठेस न लगे। मैंने उसे सलाह दी कि उसे श्रीमती विलियम्स से इस बारे में साफ-साफ बता देना चाहिए ताकि वह इस विषय में पहले से जानती रहे और साहस के साथ इस परिस्थिति का सामना कर सके।

जब श्रीमती विलियम्स को ज्ञात हुआ कि फार्मर परिवार उसे अपने घर में रखना पसन्द नहीं करता तो पहले तो उसे घोर निराशा हुई। हताश होकर उसने अपने पुत्र से प्रार्थना की कि वह उसे अपने घर ले चले और उसके पुत्र ने मुझे बताया कि वह अपनी माँ को तब तक अपने घर ले जाने को तैयार नहीं है, जब तक वह अपने को इस योग्य नहीं बना लेती कि वह अपने-आप अपनी देख-भाल कर ले। उसने इस सम्बन्ध में मेरी सहायता चाही।

इस अवधि में रोगिणी की मनःस्थिति ऐसी थी कि उसे अत्यधिक सहायता की आवश्यकता थी। जब उसने मुझसे बताया कि उसे ऐसा लगता है कि कोई भी उसे अपने पास नहीं रखना चाहता तो मैंने उससे पूछा कि क्या उसके विचार से इस दिशा में फिर से कोई नया प्रयत्न करना बेकार है? पहले तो इस परिस्थिति से उबरने का उसे कोई रास्ता ही नहीं सूझ रहा था और उसके भीतर यह वह भावना भर गयी थी कि सबने उसका पूर्णतः त्याग कर दिया है। पर मैंने उसे ढाढ़स बँधाया और पूछा कि वह अपने प्रयत्नों में इस प्रकार की पूर्ण असफलता का अनुभव क्यों करती है, जबकि कुछ सप्ताह पहले ही उसने

मेरे साथ मिल कर इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया था कि उसे अनेक परिस्थितियों में रह कर पहले आजमाइश कर लेनी चाहिए, तभी अन्त में वह कहीं स्थायी रूप से व्यवस्थित हो सकेगी।"

यद्यपि श्रीमती विलियम्स के पुत्र के मन में यह द्वन्द्व चलता रहा कि वह अपनी माँ का उत्तरदायित्व दुबारा ग्रहण करे या नहीं, पर धीरे-धीरे उसका झुकाव इस विचार की ओर अधिक होता गया कि उसे अपने पारिवारिक मामले में अस्पताल की सहायता लेना बन्द कर देना चाहिए। उसने स्वयं प्रार्थना कर के पालन-गृह-सामाजिक कार्यकर्ता से कई बार साक्षात्कार किया और उससे बताया कि उसने अपनी माँ को अपने परिवार में रखने के सम्बन्ध में विचार किया है और उसके मन में नये सिरे से यह भावना जाग्रत हुई है और बढ़ती जा रही है कि उसे अपनी माँ को वापस बुलाने के लिए राज़ी हो जाना चाहिए। यद्यपि वह अपनी माँ को अपने ही घर में रखने की बात को बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं समझता था, पर वह उसके लिए अलग घर और देख-भाल की व्यवस्था कर देना अवश्य चाहता था। बाद में उसने उसे एक सुरक्षित आवास-गृह में रखने की एक सुन्दर योजना बनायी और इस बात के लिए भी राज़ी हो गया कि वह उसे अस्पताल के बाहरी स्वास्थ्य-गृह में ले जाकर दिखाया करेगा। उसने अपनी माँ को पालन-गृह से हटा कर अधीक्षित अवकाश-मुक्ति की योजना के अन्तर्गत रखने के लिए आवेदन-पत्र दिया, जो स्वीकार कर लिया गया—

"श्रीमती विलियम्स के साथ पिछली बार मेरा जो साक्षात्कार हुआ, उसके बाद मैंने उसके चिकित्सक से मुलाकात करके उससे उसके मामले को पालन गृह-योजना से हटाकर अवकाश-मुक्ति-योजना के अन्तर्गत भेज देने की सम्भावना के सम्बन्ध में बातचीत की। फिर मैंने श्रीमती विलियम्स और उसके पुत्र को बुला कर उनसे एक साथ मिलने की व्यवस्था की, ताकि उन्हें समझाया जा सके कि श्रीमती विलियम्स के मामले को दूसरी योजना के अन्तर्गत भेजने का तात्पर्य क्या है और उस स्थिति में भी हम लोग उनकी किस प्रकार की सेवा कर सकते हैं। मुलाकात के समय मैंने उनसे अस्पताल के बाहरी स्वास्थ्य-गृह के सम्बन्ध में बताया। यद्यपि मुझे मालूम है कि उस स्वास्थ्य-गृह में अब उसे अधिक सहायता लेने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, फिर भी मेरे कहने का उन दोनों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा, क्योंकि उन्हें यह सन्तोष हुआ कि अस्पताल से अब भी उन्हें किसी-न-किसी प्रकार की सहायता मिलती रहेगी।

उनके सामने ही मैंने स्वास्थ्य-गृह के कार्यकर्ता को बुलवाया। विलियम्स ने अपनी माँ की ओर से जरूरी कागजपत्रों पर हस्ताक्षर किये और इस पर रोगिणी ने बहुत प्रसन्नता व्यक्त की। उसने संक्षेप में पालन-गृह में अपने अनुभवों पर टीका-टिप्पणी की। उसके बाद मेरे सहायता-कार्यों की प्रशंसा करते हुए उसने मुझे हार्दिक धन्यवाद दिया।"

स्वास्थ्य-गृह-सेवा

स्प्रिंगफील्ड अस्पताल के बाहरी स्वास्थ्य-गृह में अस्पताल से अवकाश-मुक्ति-प्राप्त रोगियों तथा उनके परिवार वालों की मनश्चिकित्सकीय और सामाजिक सेवा की जाती है। यद्यपि यह स्वास्थ्य-गृह इस अस्पताल का ही एक अंग है, फिर भी यह मुख्य रूप से रोगियों के पुनर्वास का एक सामुदायिक साधन है, उसमें मुख्य अस्पताल में किये जाने वाले कार्यों का ही अनुगमन नहीं किया जाता है, बल्कि इस स्वास्थ्य-गृह की सेवा में मुख्यतः ऐसी सहायता की ओर भी ध्यान दिया जाता है, जिससे अस्पताल से मुक्त हुए रोगी समुदाय में अपने को उचित ढंग से व्यवस्थित कर सकें और उन्हें कोई इस तरह का सामाजिक आघात न लगने पाये कि उनको फिर लौट कर अस्पताल में आना पड़े। सामाजिक कार्यकर्ता वैयक्तिक सेवा-कार्य द्वारा रोगियों की इस तरह सहायता करता है कि वे समुदाय में नये सम्बन्ध स्थापित करने में सफलता प्राप्त करते हैं और धीरे-धीरे अस्पताल की सहायता पर निर्भर रहने की उनकी प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है।

प्रायः अवकाश-मुक्ति के काल में रोगी अपने ही परिवारों में जाकर रहते हैं। अतः स्वास्थ्य-गृह का सामाजिक कार्यकर्ता रोगियों को पत्र लिखता है, उन्हें समुदाय के सभा-उत्सवों में निमन्त्रित करता है और यह स्वीकार करके कि रोगियों का नये सिरे से जीवन शुरू करने का कार्य बड़ा कठिन होता है, वह रोगियों तथा उनके परिवार वालों की, स्वास्थ्य-गृह की ओर से, सब प्रकार की सहायता करता है। यदि रोगी को स्वास्थ्य-संस्था या सामाजिक अभिकरण की सहायता की आवश्यकता होती है तो वह समुदाय के अन्य साधनों की सहायता भी उपलब्ध करता है। उसके इस कार्य में यह विश्वास निहित होता है कि जब समुदाय रोगी की सहायता के लिए तत्पर होगा, तभी रोगी अपने घर में भी सही अर्थ में अपने को फिर से व्यवस्थित कर पायेगा।

अस्पताल से रिहा हुए रोगियों और उनके सम्बन्धियों की जो समस्याएँ स्वास्थ्य-गृह के सामने मुख्य रूप में उपस्थित की जाती हैं, वे दो क्षेत्रों से सम्बन्धित होतीह—अवकाश-मुक्त रोगियों का क्षेत्र और अस्पताल से पूर्णतः मुक्त रोगियों का क्षेत्र।

रोगी जब तक अस्पताल में रहता है, उसके परिवार वाले उसके कल्याण का अपना उत्तरदायित्व बहुत कुछ अस्पताल पर डाल देते हैं। जब वह पेरोल पर अस्पताल से रिहा होता है तो उसका अधिकांश उत्तरदायित्व फिर उसके परिवार वालों पर चला आता है। रोगी की मानसिक रोग-अस्पताल में चिकित्सा हुई है, इस बात को लेकर समाज में तरह-तरह की बातें होती हैं, जिससे पेरोल की अवधि में रोगी और उसके परिवार वालों के मन में अक्सर फिर भय घर करने लगता है।

जब रोगी के अस्पताल से रिहा होने की तिथि निकट आती है तो इस प्रकार की समस्याएँ फिर विकट रूप धारण करके सामने आती हैं। यद्यपि रिहाई की बात से रोगी को बड़ा सन्तोप और सुख मिलता है, परन्तु उसके मन में इस बात का कुछ भय भी होता है कि अस्पताल में उसके लिए जो रक्षात्मक प्रबन्ध था, जिसका वह पूरी तरह आदी हो चुका था, वह अस्पताल से बाहर जाने पर उसे उपलब्ध नहीं होगा।

श्रीमती विलियम्स और उसके पुत्र को स्वास्थ्य-गृह-सेवा-योजना के अन्तर्गत थोड़े ही दिनों तक रहना पड़ा। इस योजना के अन्तर्गत उन्हें केवल इतनी ही सहायता की आवश्यकता थी, जिससे वे अपनी ऐसी स्थायी व्यवस्था कर सकें कि उन्हें अस्पताल की सेवा की जरूरत न रह जाय। जब श्रीमती विलियम्स की अस्पताल से स्थायी रूप से मुक्ति के सम्बन्ध में बात-चीत करने के लिए रिहाई से एक मास पूर्व उन्हें पत्र लिख कर बुलाया गया तो वे दोनों निश्चित समय पर आये। इस पत्र में कार्यकर्ता ने लिखा था कि सम्भव है, इस परिवर्तन की स्थिति से उनके मन में कोई भय या आशंका उत्पन्न हुई हो, फिर भी वे एक बार और आकर मिल जायँ, ताकि श्रीमती विलियम्स की रिहाई से सम्बन्धित औपचारिक कार्रवाई पूरी की जा सके। इसके बाद जो साक्षात्कार हुआ, उसके सम्बन्ध में रोगी के अभिलेख में स्वास्थ्य-गृह के सामाजिक कार्यकर्ता ने निम्न लिखित बातें लिखी हैं—

"श्रीमती विलियम्स अपने पुत्र के साथ आज पूर्वनिश्चित समय पर साक्षात्कार के लिए आयी। अगले मास श्रीमती विलियम्स अस्पताल से स्थायी रूप से रिहा होनेवाली थी और इसी सम्बन्ध में उन्हें डा० एस० से मिलना था। मैंने उनसे अपना यह विचार व्यक्त किया कि श्रीमती विलियम्स की रिहाई के बारे में आधिकारिक कार्रवाई पूरी होने के पूर्व उन्हें मेरे साथ संक्षेप में इस सम्बन्ध में बातें कर लेनी चाहिए कि वे इसके लिए अच्छी तरह तैयारी कर चुके हैं या नहीं। मैंने उन्हें इस बात के लिए उत्साहित किया कि वे इस अस्पताल से सम्बन्धित अपने अनुभवों के बारे में अपने विचार व्यक्त करें।

प्रारम्भ में तो उन्होंने केवल कुछ दिनों पूर्व तक की बातों, जैसे पालन-गृह में श्रीमती विलियम्स के अनुभव, के बारे में बातें कीं। विलियम्स ने यह भी बताया कि किस तरह वह अपनी माँ को अपने पास रखने में हिचकिचाता था। एक ओर तो वह अपनी माँ को अपने पास रखना चाहता था, दूसरी ओर अपनी माँ के उत्तरदायित्व से मुक्त भी होना चाहता था। एक बार तो उसने यह भी कहा कि वह तो अपनी माँ की पूरी जिम्मेदारी लेने को तैयार है और जब तक वह पालन-गृह में थी, उसका पूरा खर्च वही देता था और उसके मनोरंजन तथा अन्य आकस्मिक जरूरतों का व्यय भी वहन करता था। जब मैंने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि हम लोग तो उससे हमेशा इसी बात की उम्मीद करते

रहे हैं तो उसने अपना यह विश्वास दुहराया कि वह इसके अलावा और कुछ कर ही नहीं सकता था। धीरे-धीरे वे और भी सुदूर अतीत की बातें याद करने लगे। और अन्त में उस समय की बातें करने लगे जब श्रीमती विलियम्स को अस्पताल में लाना आवश्यक हो गया था। श्रीमती विलियम्स ने बताया, उसे याद है कि उस समय उसके साथ किसी का रहना कितना कठिन था। उस समय तो उसका यही ख्याल था कि उसके घर में जो 'अजनबी' औरत—उसकी पुत्रवधू—आ गयी है, उसी के कारण सभी परेशानियाँ उत्पन्न हुई हैं। अब वह सोचती है कि वह स्वयं सबसे डरती थी और अपने आन्तरिक भय के कारण ही वह यह सहन नहीं कर सकती थी कि उसके पुत्र के जीवन में और कोई प्रवेश करे। जब वह अस्पताल में पहुँचायी गयी थी तो उस समय तो उसने यही सोचा था कि अब उसकी जीवन-यात्रा समाप्त हो गयी। जब मैंने उससे पूछा कि क्या दर असल अस्पताल में उसे ऐसा ही अनुभव हुआ तो उसने कहा, "नहीं, इसके विपरीत यहाँ तो मुझे ऐसा लगा कि जैसे मेरी जीवन-यात्रा नये सिरे से प्रारम्भ हुई है। पहले तो यहाँ का जीवन इतना कठोर मालूम पड़ा कि उसका निर्वाह असम्भव प्रतीत होने लगा, पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, ऐसा लगने लगा कि इस प्रकार मुझे यहाँ कुछ नया और अच्छा काम करने के लिए एक सुन्दर अवसर मिल गया है।

मैंने श्रीमती विलियम्स के सम्बन्ध में यह टिप्पणी की कि आज वह कितनी अच्छी और स्वस्थ दिखाई पड़ रही थी। इस पर उसने गर्व के साथ बताया कि अब वह किस तरह अपनी देख-भाल स्वयं कर लेती है और जब वह सप्ताहांत में अपने घर जाती है तो किस तरह वह अपने पुत्र और पुत्रवधू की गृहस्थी के कामों में मदद करती है और वे इसके लिए अनुमति भी दे देते हैं। उसके पुत्र ने भी कहा कि घरेलू कामों में उसकी माँ की सहायता से उनका भी कुछ स्वार्थ सधता है। उसने बताया कि उसकी माँ की सहायता उसके लिए आवश्यक है क्योंकि गृहस्थी के कामों में जो गड़बड़ी और शिथिलता आ गयी रहती है, उसकी माँ सप्ताहान्त में जाकर उसे ठीक कर देती है। वह और उसकी पत्नी दोनों सप्ताह के काम के दिनों में काम करते हैं और सप्ताहान्त में ही उन्हें घर के लिए सुख-चैन की वस्तुएँ जुटाने का मौका मिलता है। माता और पुत्र दोनों ने प्रसन्नतापूर्वक और मुस्कराते हुए बताया कि किस तरह अब वे यह बात समझने का प्रयत्न कर रहे हैं कि माँ का स्थान कहाँ समाप्त होता है और पत्नी का स्थान कहाँ से प्रारम्भ होता है।

मैंने उनकी बातों से यह समझा कि वे सप्ताह में केवल एक दिन साथ रहते हैं और बाकी दिन श्रीमती विलियम्स कहीं और रहती है, और इस पर मैंने उनके सामने कुछ आश्चर्य भी प्रकट किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ कहा उसका निष्कर्ष यह था कि रोगिणी अक्सर अपने पुराने मित्रों से मिलने उनके घर जाया करती है और उनसे जैसे

फिर नये सिरे से परिचय करती है। मानसिक रोग-अस्पताल से लौट कर आये हुए व्यक्ति के लिए यह पता लगाना कठिन कार्य नहीं कि कौन वास्तविक मित्र है और कौन नहीं। मैंने कहा कि सचमुच श्रीमती विलियम्स का उन लोगों से मिलने जाना बड़े साहस का काम था, जो यह बात जानते थे कि वह मानसिक रोग-अस्पताल में रह चुकी है। इस पर कुछ उदासी भरे स्वर में श्रीमती विलियम्स ने बताया कि उसके सभी पुराने मित्र अब उसके मित्रों की सूची में नहीं रह गये हैं, फिर भी उसका ख्याल है कि उसके मित्रों ने उसे बिलकुल छोड़ा नहीं है। जब वह किसी के यहाँ जाती है और उसे अपने कारण भयभीत या संशंकित देखती है तो यही सोचती है कि ऐसे व्यक्ति इस बीमारी से सम्बन्धित बातों को नहीं जानते, अतः इसमें उनका अधिक दोष नहीं है। उन बेचारों को शायद यह नहीं मालूम है—जैसा इस अस्पताल में हम सब लोगों को मालूम है कि मानसिक रोगी अपनी बीमारी से मुक्ति पाकर फिर नये सिरे से, पहले से भिन्न प्रकार का, जीवन व्यतीत कर सकता है। उसने यह भी बताया कि जो लोग उससे मिलने के लिए उसके घर आते हैं, उनके साथ वह बहुत अधिक व्यस्त रहती है। अभी हाल में दो महिलाओं ने उसे यह सलाह दी थी कि उसे गोल्डेन–एज–क्लब की सदस्य बन जाना चाहिए और वह नगर में उक्त क्लब की किसी शाखा में जाकर इस बारे में पता लगायेगी। श्रीमती विलियम्स ने फिर कहा, "मैं नहीं जानती, मुझे क्लब में जाने की फुरसत मिल पायेगी या नहीं, फिर भी मैं कम-से-कम एक बार वहाँ जाकर देख जरूर आऊँगी।"

मैंने उससे कहा कि वह तो इतनी तेजी से प्रगति के रास्ते पर बढ़ रही थी कि उसके साथ हम लोगों का चलना कठिन था, और वह हमें पीछे छोड़ती जा रही थी। उन दोनों ने एक साथ यह बात कही कि आखिर अस्पताल के अधिकारी उसे मुक्त करने को तैयार हो गये थे। मैंने उनकी बात का समर्थन करते हुए कहा कि हाँ, यह सत्य है, पर क्या वे सोचते हैं कि अस्पताल वाले उसे "ज़बर्दस्ती बाहर खदेड़ रहे हैं?" इसके उत्तर में उन्होंने जो कहा, उससे पता चलता था कि वे अस्पताल से मुक्ति और अस्पताल की निर्भरता, दोनों की आवश्यकता का अनुभव करते थे। मैंने यह अनुमान किया कि अस्पताल से मुक्ति की बात से कुछ भय की भावना के साथ सदैव आनन्द की भावना भी मिली रहती है। मैंने उनसे कहा कि वे अभी से बिलकुल आश्वस्त न हो जायँ कि इस परिवर्तन के बाद सब कुछ अच्छा ही अच्छा होगा। फिर भी उन्हें प्रयत्न करते रहना चाहिए। और आखिर यह अस्पताल तो रहेगा ही, और उन्हें जब भी कोई आवश्यकता होगी, अस्पताल के अधिकारी उनकी सहायता के लिए तत्पर रहेंगे।

विलियम्स खड़ा हो गया और एक हाथ अपनी माँ के कन्धे पर रखे हुए ही दूसरे हाथ से उसने मुझसे हाथ मिलाया। रोगिणी ने भी वैसा ही किया और पूछा कि डाक्टर का

कार्यालय किधर है। मैंने उन्हें डाक्टर एस० के कमरे के दरवाजे तक पहुँचा दिया। करीब तीस मिनट बाद मैंने देखा कि वे डाक्टर के कमरे से निकल कर बात-चीत करते हुए अस्पताल के बाहर चले जा रहे थे।''

रोगिणी का अभिलेख कार्यालय में लौटा दिया गया, जहाँ उसे 'मुक्त रोगियों' की फाइल में रख दिया गया।

अध्याय १०

चिकित्सकीय सामाजिक कार्य

सन् १९०५ में औपचारिक प्रारम्भ

पिछले अध्यायों में वैयक्तिक समाज सेवा-कार्य के विकास तथा कुछ विशेष-प्रकार की आवश्यकताओं के लिए और कुछ निश्चित अभिकरणों द्वारा उनके प्रयोग के सम्बन्ध में पर्याप्त विवेचन किया जा चुका है। इस तरह वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता का आधारभूत कौशल और उसकी कार्य-पद्धति ही एक प्रकार से वैयक्तिक समाज-सेवा है और आवश्यकताओं एवं वातावरण के अनुरूप उसकी पद्धति में जो भिन्नता आ जाती है, उसे बाल-कल्याण-कार्यकर्ता, मनश्चिकित्सक सामाजिक कार्यकर्ता, लोक-सहायता-कार्यकर्ता आदि की कार्य-पद्धतियों में देखा जा सकता है। अब हम यह देखेंगे कि अन्य आवश्यकताओं और भिन्न वातावरण में वैयक्तिक समाज-सेवा की पद्धति का उपयोग किस रूप में होता है या हो सकता है। वे आवश्यकताएँ, बीमारी और चिकित्सकीय देख-भाल से सम्बन्धित हो सकती हैं और वह भिन्न वातावरण किसी चिकित्सा संस्था, वार्ड, प्रयोगशाला और स्वास्थ्य-गृह का हो सकता है।

कुमारी इडा एम० कैनन ने अपनी पुस्तक 'सोशल वर्क इन हास्पिटल्स' में चिकित्सकीय सामाजिक कार्य के पूर्ववर्ती स्वरूपों का जो विवरण दिया है उसके अनुसार वे सेवाएँ निम्न लिखित वर्गों में रखी जा सकती हैं—(१) जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंड और अमेरिका में पागलों की चिकित्सोत्तर देख-भाल से सम्बन्धित सेवाएँ; (२) लंदन के अस्पतालों में महिला-समाज-सेविकाओं द्वारा की जानेवाली सेवाएँ; (३) न्यूयार्क शहर में लिलियन वार्ड और मेरी ब्यूस्टर द्वारा प्रारम्भ की गयी रोगीके घर जाकर उपचर्या करने से सम्बन्धित सेवा अथवा सामान्य उपचर्या-सेवा; (४) जॉन्स हाप्किन्स मेडिकल स्कूल और अस्पताल में चिकित्सा शास्त्र के विद्यार्थियों को क्षेत्र-कार्य का प्रशिक्षण।[1]

१. इडा एम० कैनन—सोशल वर्क इन हास्पिटल्स—न्यूयार्क, रसेल सेज फाउन्डेशन, १९२३।

इन सेवा-कार्यों के कारण ही ऐसी पृष्ठभूमि तैयार हो सकी कि सन् १९०५ में औप-चारिक रूप से बोस्टन में दो चिकित्सा-संस्थाओं में यह सेवा प्रारम्भ हुई और उसी वर्ष के अक्टूबर महीने में एक साथ दो दिनों तक सामाजिक कार्यकर्ताओं को सेवा करने का अवसर प्रदान किया गया। एक दृष्टि से इसे "संयोग की बात" कहा जा सकता है। किन्तु दूसरी दृष्टि से अर्थात् सांस्कृतिक पूर्व-परिस्थिति के विश्लेषण की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि उस समय चिकित्सा के क्षेत्र में सामाजिक सेवा का उपयोग अनिवार्य हो गया था, किन्तु इससे उन व्यक्तियों (स्त्रियों और पुरुषों) का, जिन्होंने इस प्रकार के कार्यों का प्रारम्भ किया था, महत्त्व कम नहीं हो जाता, फिर भी उपर्युक्त कथन में इस महत्त्वपूर्ण आवश्यकता पर जोर दिया गया है कि किसी भी नवीन कार्य के प्रारम्भ और विकास का श्रेय किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों को नहीं दिया जा सकता और इस सामान्य धारणा में सुधार करने की आवश्यकता है। सन् १९०५ के अक्टूबर महीने में माशाशूचेट्स के सार्वजनिक अस्पताल में कुमारी गार्नेट पेल्टन ने तथा बर्कले-रुग्णावास में में कुमारी मेबेल वार्कले ने सबसे पहले चिकित्सकीय सामाजिक कार्य का प्रारम्भ किया। बर्कले-रुग्णावास के प्रबन्धक-परिषद् के एक भूतपूर्व सदस्य के कथनानुसार उक्त रुग्णावास की स्थापना तथा उसमें सामाजिक कार्य की व्यवस्था का विचार सबसे पहले डा० सैमुअल ब्रेक के मन में आया था। डा० ब्रेक फ्लोटिंग अस्पताल के संस्थापकों में से थे। उक्त विचार उनके अपने कार्यालय-सम्बन्धी कार्यों के अनुभव तथा उक्त अस्पताल में स्त्रियों और बच्चों के साथ उनके सम्पर्क का परिणाम था। उन्होंने उसके बाद व्यापक पैमाने पर उस तरह का कार्य करने की आवश्यकता का अनुभव किया। डा० रिचार्ड सी० कैबट का यह विचार था कि रोगी की सफल चिकित्सा और देख-भाल के लिए यह आवश्यक है कि पहले उसके बारे में पूरी जानकारी प्राप्त की जाय। डा० कैबट माशा-शुचेट्स के सार्वजनिक अस्पताल के डाक्टर थे तथा बोस्टन की बाल-सहायता-समिति के कार्यों से उनका कई वर्षों तक बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। यह उन्हीं की सूझ थी कि अस्पताल में डाक्टरों और अस्पताली परिचारकों की सेवाओं के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र में प्रचलित सेवाओं को भी अपनाना चाहिए ताकि उससे प्रभावित होकर रोगी अपस्ताल की सेवाओं से अधिक लाभान्वित हो सकें। चिकित्सोपरान्त देख-भाल, रोगी के घर पर उपचर्या की व्यवस्था, अस्पताल में प्रवेश और चिकित्सकीय छात्रों के प्रशिक्षण से सम्बन्धित सेवाओं की सूची में वैसी ही एक और सेवा को जोड़ देना डा० कैबट का लक्ष्य नहीं था और न तो उन्होंने ऐसा किया ही। इस प्रकार की सेवाओं को चिकित्सकीय सामाजिक कार्य नहीं कहा जा सकता। वे तो वैसी ही हैं, जैसे किसी मोटर गाड़ी के विभिन्न पुर्जे, जैसे पहिये, दाहक-यंत्र, भिन्नक गियर, ब्रेक आदि होते हैं। मोटर गाड़ी एक ऐसी वस्तु है जो पहियों,

मशीन, गियर, ब्रेक तथा अन्य पुर्जों के संयोजन से बनी है और उनका संयोजन इस प्रकार हुआ है कि मोटर गाड़ी एक नयी वस्तु हो गयी है, जो उन पुर्जों को एक साथ रख देने या सबको एक में मिलाकर गड्डमड्ड कर देने से कदापि नहीं बन सकती थी। चिकित्सकीय सामाजिक कार्य के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। वह एक ऐसी सेवा-पद्धति है, जिसमें चिकित्सोपरान्त की देख-भाल, उपचर्या, अस्पताल में प्रवेश, छात्रों का प्रशिक्षण आदि सभी कार्य एक निश्चित रूप में संयोजित किये गये हैं, यद्यपि उन्हें एक साथ इकट्ठा कर देने से ही उनको रोगियों के लिए उपयोगी एक नवीन सेवा नहीं कहा जा सकता।

यह सब इसलिए कहा गया है कि जिस वातावरण में चिकित्सकीय सामाजिक कार्य किया जाता है, उसके साथ उसका सम्बन्ध जोड़ा जा सके। इसी जगह डा० कैबट के अनुभवों का भी उल्लेख कर देना अच्छा होगा। एक दस मास का बच्चा, जिसके पेट में तकलीफ थी, माशाशुचेट्स के सार्वजनिक अस्पताल में लाया गया। पाँच सप्ताह तक उसे अस्पताल में रखा गया और अच्छा हो जाने पर उसकी माँ उसे वापस ले गयी, पर उसे यह नहीं बताया गया कि क्या खिलाया-पिलाया जाय और कैसे रखा जाय। कुछ सप्ताह बाद बच्चा फिर पहले-जैसा बीमार होकर अस्पताल में दाखिल हुआ। बच्चे की दुबारा चिकित्सा कराने में उसकी माँ को फिर ३० डालर खर्च करने पड़े और अच्छा होने पर फिर उसकी माँ को उसकी देख-भाल के बारे में कुछ नहीं बताया गया और वह उसे लेकर चली गयी। डा० कैबट को बच्चे का अस्पताल और घर के बीच स्थायी रूप से आवागमन अजीब लगा और उन्होंने लिखा, "बच्चा अस्पताल से घर जाता है, बच्चा घर जाकर बीमार पड़ता है, बच्चा फिर अस्पताल में लाया जाता है, बच्चा अच्छा होकर फिर घर जाता है और यही क्रिया निरन्तर चलती रहती है।" उस समस्या के समाधान के रूप में डा० कैबट ने अस्पताल में एक सामाजिक कार्यकर्ता की नियुक्ति की, जिसका काम यह था कि वह उन परिस्थितियोंका अध्ययन करे जिनमें रोगी रहते हैं, और अस्पताल के डाक्टर रोगी के उपचार के सम्बन्ध में जो हिदायतें देते हैं, उनका पालन करने में वह रोगी की सहायता करे। चिकित्सकीय सामाजिक सेवा का प्रारम्भिक रूप यही था। पहले तो इस सेवा-पद्धति का प्रचार धीरे-धीरे होता रहा, पर बाद में उसका जोर उत्तरोत्तर बढ़ता गया और आज तो उसकी यह स्थिति है कि शायद ही कोई प्रथम श्रेणी का अस्पताल ऐसा होगा, जिसमें चिकित्सकीय सामाजिक सेवा का एक अलग विभाग न हो।[२]

२. इस पुस्तक के पूर्ववर्ती संस्करणों में मैंने इडा एम० कैनन की पुस्तक "सोशल वर्क इन हास्पिटल्स" से कई बहुमूल्य सामग्री ली थी। मैंने इस संस्करण में लेखिका की दूसरी पुस्तक "आन सोशल फ्राण्टियर आफ मेडिसिन" से भी पर्याप्त सहायता

चिकित्सकीय सामाजिक कार्य की संस्थागत पृष्ठभूमि

इस शताब्दी में अमेरिका की जनता की चिकित्सा-सम्बन्धी सेवा के क्षेत्र में कई दृष्टियों से बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई है। एक प्रगति तो यही है कि अब अस्पताल की सेवा का बहुत अधिक विस्तार हो गया है और उससे बहुसंख्यक लोग लाभ उठाने लगे हैं। इस के जो आँकड़े प्रतिवर्ष "जनरल आफ दी अमेरिकन मेडिकल एशोसियेशन" में प्रकाशित होते हैं, उनसे इस विषय पर काफी प्रकाश पड़ता है। उसके १५ मई, सन १९५४ के अंक में जो प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ है, उसके अनुसार सन् १९०९ में अमेरिका में कुल ४३५९ अस्पताल थे, जिनमें कुल ४,२१,०६५ रोगियों को रखने की जगहें थीं। सन् १९५३ में अस्पतालों की संख्या बढ़ कर ६८४० हो गयी, जिनमें कुल १५,७३,०१४ रोगी रह सकते थे। यदि इन आकड़ों को उस अवधि में देश की बढ़ी हुई आबादी की तुलना में रख कर देखा जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि अस्पतालों के सेवाकार्य का कितना अधिक विस्तार और विकास हो गया है। देश की जनसंख्या सन् १९०९ में ९ करोड़ थी, जो बढ़कर सन् १९५३ में १६ करोड़ १० लाख हो गयी। इस तरह उसमें ७८ प्रतिशत वृद्धि हुई थी। पर अस्पतालों में रोगियों के रहने की जगहों की संख्या में करीब २७३ प्रतिशत की बृद्धि हुई थी।[३]

ली है और इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। इस दूसरी पुस्तक में विस्तार के साथ न केवल अस्पतालों में चिकित्सकीय समाजसेवा के प्रवेश के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों का वर्णन किया गया है, बल्कि वर्तमान समय में अस्पतालों के कार्य के एक अनिवार्य अंग के रूप में उसके विकास का इतिहास भी बताया गया है। इस पुस्तक में डा० कैबट के विचारपूर्ण, साहसयुक्त और दिशा-निर्देशक कार्यों का प्रशंसा और और आदर के साथ स्पष्ट उल्लेख किया गया है। कुमारी कैनन की पुस्तक की भूमिका में डा० जेम्स हावर्ड मीन्स ने डा० कैबट के बारे में लिखा है—"यह उन्हीं की प्रतिभा का परिणाम था कि उन्होंने माशासुचेट्स के सार्वजनिक अस्पताल में रोगियों की सर्वांगीण सेवा के लिए सामाजिक कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की। उस समय समाज-सेवा-कार्य होता था, पर अस्पतालों में उसका प्रवेश अभी नहीं हुआ था। डा० कैबट की महान् देन यही है कि उन्होंने अस्पतालों में चिकित्सकीय देख-भाल के क्षेत्र में भी सामाजिक सेवा का प्रवेश कराया।"

३. एफ० एच० अरेस्टाड और मेरी ए० मैकगोवर्न—"हास्पिटल सर्विस इन द युनाइटेड स्टेट्स"—जनरल आफ द अमेरिकन मेडिकल एशोसियेशन, जिल्द १५५, मई १९५४, पृ० २५५।

उसी तरह वर्तमान शताब्दी में यद्यपि अस्पतालों से अधिक-से-अधिक लोग लाभ उठा रहे हैं, पर उनके भिन्न विभागों की संख्या भी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। डॉ० जी० कैनबी राबिन्सन ने "द पेशेन्ट एज ए परसन" नामक पुस्तक में डॉ० डासेज के अनुभवों का वर्णन करते हुए लिखा है—

"......डॉ० डासेज ने दिल की बीमारी वाले दो रोगियों के अभिलेखों का तुलनात्मक अध्ययन किया, उनमें से एक तो अस्पताल में पचीस वर्ष पूर्व से चिकित्सा करा रहा था और दूसरा रोगी उसी अस्पताल में सन् १९३८ में लाया गया था। पहले रोगी की चिकित्सा उसके घर जाने वाले एक चिकित्सक, एक अस्पताल के चिकित्सक, एक रोग-विज्ञान और जीवाणु-विज्ञान के विशेषज्ञ द्वारा होती थी और उसके सम्बन्ध में ढाई पृष्ठों का अभिलेख तैयार किया गया था। दूसरे रोगी की चिकित्सा और परीक्षण तीन घर जाने वाले चिकित्सकों, पाँच अस्पताल के भीतरी चिकित्सकों, दस विशेषज्ञों, चौदह प्रविधिज्ञों, इस प्रकार कुल ३२ व्यक्तियों द्वारा हुआ था और उससे सम्बन्धित लेख २९ पृष्ठों का था।"[४]

इस समय अस्पतालों में इतने विभाग हैं—ओषधि-चिकित्सा, शल्य-चिकित्सा, तन्त्रिका-विज्ञान-चिकित्सा, मनश्चिकित्सा, प्रसूति-चिकित्सा, स्त्री-रोग-चिकित्सा, विकलांग-चिकित्सा, हृद्-रोग-चिकित्सा, बाल-रोग-चिकित्सा, नेत्र-रोग-चिकित्सा, कर्ण-रोग-चिकित्सा, और एक्सरे-विभाग। इन विभागों को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि चिकित्सा के क्षेत्र में विशेषीकरण की कितनी अधिक वृद्धि हो चुकी है। इसका परिणाम, जैसा प्रायः लोग कहा करते हैं, यह हुआ कि चिकित्सा-विज्ञान में रोगों के सम्बन्ध में जितनी ही अधिक जानकारी होती जा रही है, चिकित्सक रोगियों से उतना ही दूर होता जा रहा है, अर्थात् उनके बारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त कर पाता है। पुराने समय में, जबकि अस्पताल को एक ऐसा स्थान समझा जाता था, जहाँ लोग जाकर मरते हैं, रोगियों को वैयक्तिक रूप में समझने की समस्या गम्भीर नहीं थी। उसी तरह जब चिकित्सा-विज्ञान का सामान्य जनता में अधिक प्रचार होने लगा, उस समय भी चिकित्सक के लिए यह आवश्यक नहीं समझा जाता था कि वह रोगियों और उनके प्रवेश के बारे में विशेष जानकारी प्राप्त करे। चिकित्सक रोगी के किसी विशेष रोग निमोनिया, मधुमेह, मलेरिया आदि की चिकित्सा नहीं करता था, बल्कि एक बीमार व्यक्ति की चिकित्सा करता था चाहे उसकी बीमारी कुछ भी क्यों न हो। अतः ऐसे चिकित्सक और उसके मरीज के बीच में कोई व्यवधान नहीं होता था। उसके लिए किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं

४. जी० कैनबी राबिन्सन—"द पेशेन्ट एज ए परसन"—न्यूयार्क, कामनवेल्थ फण्ड, १९३९, पृष्ठ ७–८।

थी, जो मरीज की बातें उससे बताता तथा उसके निदान आदि को मरीज से समझाता। इस तरह चिकित्सक रोगी के उपचार के लिए जो व्यवस्था देता था, उसमें व्यक्ति की प्रधानता होती थी अर्थात् उसके सामने रोगी एक व्यक्ति के रूप में रहता था।

किन्तु आज चिकित्सा के क्षेत्र में विशेषीकरण और संस्थात्मकीकरण के कारण उपर्युक्त स्थिति बहुत कुछ बदल गयी है। आज तो अस्पतालों में अनेक विकसित विभाग हो गये हैं,उनमें एक के बाद दूसरे स्वास्थ्य-गृह बराबर खुलते जा रहे हैं और विशेषज्ञों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है, उनमें उपकरण आदि की समुचित व्यवस्था है तथा चिकित्सा कराने वाले रोगियों की संख्या भी अनगिनत हो गयी है। ऐसी स्थिति में इस बात की पूर्ण आशंका है कि बीमार व्यक्ति चिकित्सा-क्षेत्र की इस भूल-भुलैया में एकदम खो जायेगा।[५] किसी अस्पताल में चाहे संसार के सभी आवश्यक उपकरण क्यों न वर्तमान हों,किन्तु चिकित्सक को रोगी के सम्बन्ध में जिन बातों की जानकारी आवश्यक होती है, उनसे उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार चिकित्सा के क्षेत्र में अत्यधिक विशेषीकरण, संस्थात्मकीकरण और विभागीकरण के कारण चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की आवश्यकता का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। ये कार्यकर्ता मुख्य रूप से रोगियों की सहायता करते हैं, चिकित्सकों की सहायता करना उनका गौण कार्य है।

सन् १९०५ में चिकित्सकीय सामाजिक कार्य के प्रारम्भ के जो मूल कारण थे, वे आज भी किसी सीमा तक वर्तमान हैं। डॉ० कैबट की दृष्टि में चिकित्सकीय सामाजिक कार्य-कर्ता की आवश्यकता इसलिए थी कि वह रोगी की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करके तथा उसके जीवन एवं वातावरण से सम्बन्धित सूचनाएँ चिकित्सक को देकर रोग के निदान और उपचार में चिकित्सक की सहायता करता था। इसके अतिरिक्त वह अस्पताल में तथा रोगी के घर पर एवं उसके समुदाय में ऐसे साधन संघटित करता था,जिनसे उसकी चिकित्सा प्रभावपूर्ण सिद्ध होती थी, किन्तु जान्स हाप्किन्स अस्पताल के डॉ० एडोल्फ

५. डॉ० हेनरी बी रिचर्डसन ने कुछ मजाक के रूप में, किन्तु चुभते हुए शब्दों में इस प्रवृत्ति की निन्दा की है कि अस्पतालों में रोगियों को व्यक्ति न समझ कर रोग ही माना जाने लगा है और अस्पतालों में उनका हवाला इस प्रकार दिया जाता है, "बायीं ओर की दूसरी चारपाई पर' मेट्रल-संकट रोग", "दाहिनी ओर की चौथी चारपाई पर आमाशय-व्रण।" देखिए, हेनरी बी० रिचार्डसन—"पेशेन्ट्स हैव फेमिलीज"—न्यूयार्क, कामनवेल्थ-फण्ड, १९४५, अध्याय १४, पृष्ठ २०९। और भी देखिए—लियो डब्लू० साइमन्स और हैरोल्ड जी० ओल्फ—"सोशल साइन्स इन मेडिसिन"—न्यूयार्क, रसेल सेज फाउण्डेसन, १९५४।

मेयर की दृष्टि में अस्पतालों में वैयक्तिक सेवा-कार्य का उद्देश्य यह था कि उससे इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती थी कि अस्पताल में रोगी की क्या दशा है, उसके अस्पताल से घर लौटने पर उसके घर की स्थिति, उसके स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयुक्त होगी या नहीं और उसके घर पर लौटने के बाद वहाँ की स्थिति को उसके स्वास्थ्य के अनुकूल कैसे बनाया जा सकता है। यह सब काम करते समय सामाजिक कार्यकर्ता का चिकित्सक के साथ बराबर सम्पर्क बनाये रखना आवश्यक था।

बीमारी के सामाजिक और भावात्मक कारणों का अध्ययन करने वाले एक दूसरे विद्वान् डा० हेनरी बी रिचार्डसन् ने अभी हाल में यह विचार व्यक्त किया है कि चिकित्सकीय सामाजिक सेवा का तात्कालिक उद्देश्य रोगी को उसके आन्तरिक और बाह्य दबाओं से मुक्त करना है, चाहे वे दबाव बाह्य वास्तविकताओं और बीमारी के कारण उत्पन्न हुए हों अथवा प्रधान रूप से उसके वैयक्तिक दृष्टिकोण और भावनाओं के कारण। "उसका अन्तिम लक्ष्य यह है कि रोगी चिकित्सा कराते समय अथवा रोगों के निरोध और अपने स्वास्थ्य की रक्षा के प्रयत्न में अपनी क्षमताओं का संचयन स्वयं करे।"[६]

एक दूसरे चिकित्सक, डॉ० एच० एम० मार्गोलिस ने सन् १९४६ में यह मत व्यक्त किया कि चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता भी चिकित्सा-क्षेत्र से सम्बन्धित समुदाय का एक अभिन्न अंग है। उन्होंने लिखा है—

"चिकित्सक, सामाजिक कार्यकर्ता के साथ मिलकर रोगी के सम्बन्ध में इसलिए विचार करता तथा उसके लिए योजनाएँ बनाता है, ताकि रोगी को दी जानेवाली इस संयुक्त सहायता से उसे निश्चित रूप में लाभ पहुँचे। रोगी के सामाजिक वातावरण, परिवार के लोगों के साथ उसके सम्बन्ध, और उसके सामाजिक, आर्थिक तथा भावात्मक साधनों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें मुख्य रूप से चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता पर ही निर्भर रहना पड़ता है।.... उसमें ऐसी क्षमता होती है कि वह डाक्टर और रोगी के बीच सम्बन्ध-सूत्र जोड़ करके रोगी को उपचार कार्य में स्वयं हाथ बँटाने के लिए उत्साहित करता है तथा चिकित्सक की भी रोगी के रोग-निदान और उपचार की प्रक्रिया में सहायता करता है। उसी से इस बात का विशेष रूप से ज्ञान होता है कि रोगी के समुदाय के व्यावसायिक काम-धन्धे से सम्बन्धित साधन क्या हैं और उसकी बीमारी से सम्बन्धित अन्य सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे की जा सकती है।"[७]

६. वही, पृष्ठ २१२।

७. एच० एम० मार्गोलिस—"दि साइकोसोमेटिक, अप्रोच टु मेडिकल डाइग्नोसिस एण्ड ट्रीटमेण्ट"—जरनल आफ सोशल केस वर्क, जिल्द २७, दिसम्बर १९४६, पृ० २९८—

अधिकांश चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता इस बात को स्वीकार करेंगे कि पिछले कुछ वर्षों में डॉ० रिचार्डसन, डॉ० मार्गोलिस और अन्य बहुत-से चिकित्सकों ने इस प्रकार के सामाजिक कार्य की जो विशेषज्ञताएँ बतायीं हैं, वे बिल्कुल सही हैं। जॉन हाप्किन्स अस्पताल में मार्गरेट ब्राग्डेन (एक दिशा-निर्देशक चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता) की स्मृति में आयोजित एक भाषण में कुमारी काकेरिल ने यह स्वीकार किया था कि चिकित्सक का मुख्य उत्तरदायित्व रोग का निदान और उपचार करना होता है। कुमारी काकेरिल के अनुसार चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का ध्यान मुख्यत: "उन सामाजिक तथ्यों पर, जिनके कारण रोगी बीमार पड़ा है, और उन सामाजिक समस्याओं की ओर, जो रोगी की बीमारी के कारण उत्पन्न हुई हैं तथा उन अवरोधों पर, जो रोगी के चिकित्सा से लाभान्वित होने के मार्ग में बाधक होते हैं", रहता है। अपने भाषण के एक दूसरे भाग में कुमारी काकेरिल ने कहा था कि चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की सेवाओं का मुख्य उद्देश्य "ऐसा प्रयत्न करना है जिससे रोगी को चिकित्सा से अधिक-से-अधिक लाभ हो सके और अस्पताल अपने चिकित्सा-सम्बन्धी उद्देश्य की पूर्ति कर सके।"[८] एक दूसरी मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्त्री मिन्ना फील्ड लम्बी बीमारियों वाले रोगियों की सेवा से सम्बन्धित अपने अनुभवों का वर्णन करते हुए इससे भी एक कदम आगे—वस्तुत: अस्पताल के क्षेत्र से भी बाहर—पहुँच गयीं हैं। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि सामाजिक सेवा समग्र चिकित्सकीय सेवा का एक अंग है और बीमार व्यक्ति को उसके परिवार तथा समुदाय के सन्दर्भ में ही देखना चाहिए—

"सहायता की इस प्रक्रिया में सामाजिक कार्यकर्ता, जो चिकित्सकीय दल का एक अंग होता है, उन्हीं आधारभूत कौशलों का प्रयोग करता है, जिनका प्रयोग सामान्य वैयक्तिक सेवा-कार्य में किया जाता है; वे कौशल हैं—मानव व्यवहार का ज्ञान तथा उस ज्ञान को इस प्रकार प्रयुक्त करने की क्षमता कि उससे कठिन परिस्थितियों में भी रोगी की ठोस सहायता की जा सके। अन्य वैयक्तिक सेवा-कार्यों के समान इसमें भी, विशेषकर उन बीमारियों में, जिनमें रोगी की अक्षमता के कारण उसकी अपने मूल्य और स्थिति-सम्बन्धी

२९९। "चिकित्सा क्षेत्रीय समुदाय" के विषय में विशेष जानकारी के लिए देखिए—बिस्सी स्लेस—"अचीविंग मैक्सीमम एडजस्टमेण्ट इन क्रानिक इलनेस"—जरनल आफ सोशल केस वर्क—जिल्द २७, दिसम्बर १९४६, पृष्ठ ३२०–३२५।

८. इलिवर काकेरिल—"दि यूज आफ दि साइकोमेटिक कान्सेप्ट इन सोशल केस वर्क"—बुलेटिन आफ दि जान हाप्किन्स हास्पिटल, जिल्द ८०, जनवरी १९४७, पृ० ८६–९७।

भावना का लोप हो जाता है। कार्यकर्ता के लिए मुख्य रूप से इस बात की आवश्यकता होती है कि वह रोगी के रोग की स्थिति और उसकी क्षति की मात्रा का ख्याल किये वगैर बीमार व्यक्ति के गौरव को महत्त्व दे और उसके अधिकारों का सम्मान करे।

हम यह स्वीकार करते हैं कि रोगी का उसके परिवार के सदस्यों के साथ जो भावात्मक सम्बन्ध होता है, उसका बहुत अधिक महत्त्व है और रोगी के हित के लिए उसके पारिवारिक सम्बन्धों का सन्तोषजनक होना अत्यन्त आवश्यक है। अतः इस दृष्टि से सामाजिक कार्यकर्ता को अनिवार्यतः इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए कि रोगी के परिवार के सदस्यों की जो भी आवश्यकताएँ हों, उनकी पूर्ति में वह सहायता करे, उन्हें रोगी की बीमारी के कारण उत्पन्न हुई समस्याओं को सुलझाने अथवा उसकी बीमारी के पीछे निहित कारणों को समझने, रोगी के आन्तरिक मूल्यों का आदर करने, बीमारी के कारण उत्पन्न उसकी अक्षमताओं को देखते हुए, उससे अधिक कुछ माँग न करने, उसकी अवशिष्ट क्षमताओं का कुशलता के साथ उपयोग करने और पारिवारिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए उत्साहित करने में सामाजिक कार्यकर्ता की सहायता की आवश्यकता होती है।"[९]

चिकित्सकीय सामाजिक कार्य की प्रणाली

औसत दर्जे का सामान्य व्यक्ति अस्पतालों के सम्बन्ध में अपनी एक निश्चित धारणा रखता है। उसकी दृष्टि में अस्पताल एक ऐसा स्थान है जहाँ बीमार व्यक्ति जाते हैं, और अस्पताल का काम बीमारों की चिकित्सा करना तथा उन्हें अच्छा करना है। यद्यपि अस्पतालों के विभिन्न विभागों की संख्या और विविधता से सामान्य व्यक्ति को कुछ घबराहट और उलझन हो सकती है, पर थोड़ी कठिनाई के बाद उसे यह बात मालूम हो जाती है कि विभिन्न विभागों के डाक्टर कैसे क्या करते हैं। उदाहरण के लिए, सामान्य व्यक्ति पहले 'पैडियाट्रिक्स' शब्द सुन कर चौंकता है, पर शीघ्र ही जान जाता है कि यह वह विभाग है, जहाँ बालकों की चिकित्सा होती है। उसी तरह वह आब्स्टेट्रिक्स का अर्थ प्रसूति-विज्ञान समझ लेता है और फिर शीघ्र ही वह आँख, कान, नाक, और गले की चिकित्सा के विभागों का नाम भी जान जाता है। उनको जानने के लिए शब्दकोश की भी आवश्यकता नहीं होती। सामान्य सर्जरी ? वह भी स्पष्ट है। एक्स-रे ? इसे तो सभी जानते हैं। जिनेकालोजी ? इसका सम्बन्ध भी स्त्रियों के रोगों से होना चाहिए।

९. मिन्ना फील्ड—"पेशेन्ट्स आर पीपुल"—न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५३, पृ० २२९–२३०।

यूरालोजी ? इसका सम्बन्ध मूत्र-परीक्षण या मूत्र-तंत्र से होगा। आर्थोपेडिक्स ? इसका सम्बन्ध हड्डियों से है। सामान्य औषधि ? सम्भव है यहाँ ऐसी चिकित्सा होती है, जिसका सम्बन्ध अन्य उपर्युक्त विभागों से नहीं है। किन्तु सामाजिक सेवा ? भला सामाजिक सेवा का अस्पताल से क्या सम्बन्ध हो सकता है ? अब ऐसे लोगों को यह कैसे समझाया जाय कि अस्पताल का सामाजिक सेवा-विभाग कौन-सा कार्य करता है। इस विभाग में न तो दवाओं के नुसखे दिये जाते हैं, न हड्डी बैठायी जाती है और न रोगों का परीक्षण ही होता है। फिर वह विभाग करता क्या है ? अस्पताल में कौन-सा काम बाकी रह जाता है जिसे यह विभाग करता है और मरीजों को अच्छा करने में वह क्या योग देता है ?

इन सब प्रश्नों का जो उत्तर होगा उससे चिकित्सकीय सामाजिक कार्य के मर्म तक पहुँचा जा सकता है। अस्पताल की तरह चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता के सामने भी केन्द्रीय समस्या मरीज की बीमारी ही होती है। जब कोई रोगी अस्पताल में दवा कराने आता है तो अस्पताल के सभी सम्बन्धित विभाग उसे नीरोग करने के प्रयत्न में जुट जाते हैं। चिकित्सा-विज्ञान की जितनी जानकारी और कौशल होते हैं, सब का उस रोगी को सुधारने और रोगमुक्त करने में उपयोग किया जाता है। उसके रक्त की परीक्षा होती है और रक्त-कणिकाओं को गिना जाता है, फेफड़ों का एक्स-रे होता है, दिल का परीक्षण होता है, चर्म का परीक्षण होता है, मूत्र का परीक्षण होता है, सहज क्रियाओं का परीक्षण होता है, पाचन-क्रिया की जाँच की जाती है। ये कुछ ऐसे कार्य हैं, जो प्रायः कम परेशानी वाले होते हैं। यह सब यह पता लगाने के लिए किया जाता है कि रोगी को क्या बीमारी है ताकि उसी के आधार पर उसका उपचार हो सके। पर कभी-कभी बीमारी की जाँच-पड़ताल इतने जोर-शोर से होती है कि उस प्रवाह में बेचारे रोगी व्यक्ति की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। पर एक बार जब रोग का पता चल जाता है अर्थात् उसका निदान हो जाता है तो उसके उपचार का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। चिकित्सा-शास्त्र की अच्छी-से-अच्छी पुस्तकों के आदेश के आधार पर रोगी के उपचार की विस्तृत योजना बनायी जाती है। और इस तरह फिर रोग का ही उपचार प्रारम्भ हो जाता है, रोगी पीछे छूट जाता है।

स्पष्ट ही इन बातों को शायद कुछ अतिरंजित करके कहा जा रहा है। ये बातें सभी अस्पतालों और सभी चिकित्सकों पर लागू नहीं होतीं। यदि ऐसी बात होती तो आज अस्पतालों में सामाजिक कार्य का कहीं अस्तित्व ही नहीं होता। चिकित्सकीय सामाजिक कार्य का प्रारम्भ और संरक्षण उन चिकित्सकों द्वारा हुआ था, इस समय भी हो रहा है, जिनका यह विश्वास है कि व्यक्ति (रोगी) और रोग दोनों का उपचार होना चाहिए। इस वक्तव्य से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि ऐसे बहुत-से अस्पताल और चिकित्सक हैं, जिन्होंने

अस्पताल के संघटन के भीतर वैयक्तिक समाज-सेवा-कार्यकर्ता की सेवाओं को पूरक सेवा के रूप में आवश्यक माना है। पर इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि इस तरह अस्पताल की सेवाओं में चिकित्सक की सेवाओं का महत्त्व कम करके आँका जाय। उसका आधार यह तथ्य है कि चिकित्सा-सम्बन्धी प्रशिक्षण का सम्बन्ध मुख्यतः रोग की सम्यक् पहचान या ज्ञान से होता है और इसी कारण आधुनिक अस्पतालों में भी जहाँ, उपकरण की पूर्णता होती है, कुशल प्रविधिज्ञों का दल होता है, चिकित्सा-प्रविधि में प्रशिक्षित कर्मचारी होते हैं और नित्य अनगिनत मरीजों का आना-जाना लगा रहता है, रोग के चिकित्सात्मक पहलू पर ही बल दिया जाता है। दूसरी ओर अक्सर ऐसा भी होता है कि प्रशिक्षित होनेवाले तथा अस्पताल में काम करने वाले ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो यह समझते हैं कि रोग-सम्बन्धी उनके ज्ञान का प्रयोग सब से पहले रोगियों पर ही होना चाहिए।

अस्पतालों के सामाजिक कार्यकर्ता

सामाजिक कार्यकर्ता को अनिवार्यतः किसी-न-किसी अन्य विभाग में नियुक्त विशेषज्ञ व्यक्ति के साथ सहयोग से काम करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि शल्य-चिकित्सा-विभाग में किसी रोगी के उदर-व्रण का आपरेशन होना है तो उस स्थिति में स्पष्टतः शल्य-चिकित्सक बिना कोई प्रश्न पूछे रोगी का आपरेशन कर सकता है अथवा बहुत सम्भव है कि वह रोगी की पृष्ठभूमि (रोग के इतिहास से भिन्न), उसके कार्य, पारिवारिक उत्तरदायित्व, आपरेशन के बाद किसी काम-धन्धे में लगने की उसकी इच्छा आदि से सम्बन्धित बातें भी जानना चाहे, किन्तु अस्पताल में काम करने वाले शल्य-चिकित्सकों में से बहुत कम के पास इतना समय और इस प्रकार की आवश्यक विशेष कुशलता होती है कि वे रोगी के सम्बन्ध में पूरी तरह जाँच-पड़ताल करें। ऐसी ही स्थिति में सामाजिक सेवा-विभाग की आवश्यकता पड़ती है। सामाजिक कार्यकर्ता रोगी को, अस्पताल की चिकित्सा से अधिक-से-अधिक लाभ उठाने में सहायता करता है और साथ ही वह शल्य-चिकित्सक को रोगी के बारे में जानकारी देकर उसके समय की बचत करता है तथा उसे इस जानकारी द्वारा ऐसी सुविधा प्रदान कर देता है, जिससे चिकित्सक रोगी की इस प्रकार चिकित्सा करता है कि वह उससे अधिक-से-अधिक लाभान्वित होता है। सामाजिक कार्यकर्ता रोगियों की जो सेवा करता है, उसमें चिकित्सक के साथ भी उसका सम्बन्ध अनिवार्य रूप से बना रहता है। चिकित्सक के साथ सम्बन्ध बनाये रखने का कारण यह मान्यता है कि अस्पताल की मुख्य सेवा रोगी की चिकित्सा ही है और वह समस्त मानवों के लिए पूर्वनिर्दिष्ट है। चिकित्सक और सामाजिक कार्यकर्ता के सहयोगपूर्ण कार्य का यही आधार है, जिसे दोनों को ही अच्छी तरह समझना चाहिए। यह सम्बन्ध चिकित्सा-संस्था के समग्र कार्य का एक अविभाज्य अंग है।

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की कार्य-पद्धति रोगी की आवश्यकताओं पर आधारित होती है। उन आवश्यकताओं में से कुछ तो चिकित्सा से सम्बन्धित होती हैं जैसे—पट्टी, अस्पताल में चारपाई, वातिल-वक्ष-रोग का उपचार, मस्तिष्क की गिल्टी की शल्य-चिकित्सा, आदि। शेष आवश्यकताओं का सम्बन्ध रोगी के ऊपर होनेवाली उसके रोग की भावात्मक प्रतिक्रियाओं तथा रोग-मुक्ति के लिए उठाये जाने वाले कदमों से होता है। चिकित्सक का काम रोगी की चिकित्सा-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करना है और सामाजिक कार्यकर्ता का काम रोगी की इस प्रकार सहायता करना है कि वह चिकित्सकीय देख-भाल से अधिक-से-अधिक लाभ उठा कर पुनः स्वस्थ हो सके। रोगी की सहायता के लिए सामाजिक कार्यकर्ता को सर्वप्रथम रोगी को ही जानना और समझना आवश्यक है, उसे यह जानना चाहिए कि उसकी वर्तमान मनःस्थिति और बीमारी की उत्पत्ति कैसे हुई और उसका कारण क्या है और अच्छा हो जाने के बाद अपने उत्तर-दायित्व का भार उठाने के लिए उसमें पर्याप्त क्षमता है या नहीं। उसे यह भी जानना चाहिए कि रोगी के मार्ग में क्या बाधाएँ हैं, उनका क्या कारण है और उन्हें दूर करने के लिए क्या किया जा सकता है? उसे इस बात का पता लगाना चाहिए कि रोगी अपनी बीमारी को किस रूप में देखता है और उससे उसकी स्वयं से सम्बन्धित भावनाएँ किस रूप में प्रभावित हुई हैं तथा उसके सामाजिक सम्बन्धों पर क्या प्रभाव पड़ा है। निष्कर्ष यह कि सामाजिक कार्यकर्ता चिकित्सक न होते हुए भी चिकित्सा-सम्बन्धी समस्याओं और मनश्चिकित्सक न होते हुए भी रोगी के भावनात्मक मामलों को सुलझाने का कार्य करता है, किन्तु वह ये दोनों कार्य उन सामाजिक परिस्थितियों और सामाजिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में करता है, रोगी जिनका एक अनिवार्य अंग है। यदि चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ताओं और अस्पताल के कर्मचारियों को इस प्रकार काम करना है कि दोनों के कार्यों में सामञ्जस्य बना रहे तो चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को उपर्युक्त परिभाषा की निश्चित सीमा-रेखा के भीतर ही अपने कार्यों को सीमित रखना होगा और इस बात पर जितना अधिक बल दिया जायेगा, उतना ही अच्छा होगा।

रोगी—व्यक्ति के रूप में

इस अध्याय में सर्वत्र "रोगी—व्यक्ति के रूप में" संज्ञा का प्रयोग किया गया है, पर यह लेखक का कोई मौलिक कथन नहीं है। फिर भी पिछले कुछ वर्षों में जो अनेक शब्द या कथन प्रचलित रहे हैं; उनमें से सम्भवतः सबसे संक्षिप्त और आकर्षक कथन यही है। अन्य प्रचलित वक्तव्यों में प्रत्येक व्यक्ति के स्वाभाविक "व्यक्तिगन" को अनिवार्य तत्त्व मानकर उसपर जोर दिया जाता रहा है। शिक्षा तथा वैयक्तिक समाज-सेवा के अन्य

सभी क्षेत्रों में भी इसी प्रवृत्ति के अनुसार व्यक्ति पर ही जोर दिया जाता रहा है। शिक्षा-विदों की दृष्टि में विद्यार्थी पहले व्यक्ति है बाद में अध्येता, अर्थात् वह ऐसा व्यक्ति है, जो अध्ययन करता है। इसी तरह परिवीक्षण या पेरोल-अधिकारी अथवा सुधार-गृह का सामाजिक कार्यकर्ता भी यही समझता है कि अपराधी सबसे पहले एक व्यक्ति है, जो अपराध करता है। ठीक इसी तरह चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता भी रोगी को सर्वप्रथम एक व्यक्ति ही समझता है, जो रोगग्रस्त हो गया है। इन सब में एक ही सिद्धान्त मान्य है, जो यह है कि सहायता चाहने वाला मानव, चाहे वह विद्यार्थी हो अथवा परिवीक्षा-धीन या वचनबद्ध अवकाशमुक्त अभियुक्त, कैदी हो या रोगी, अपना विशिष्ट व्यक्तित्व रखता है। उसका यह व्यक्तित्व ही उसे अन्य व्यक्तियों से भिन्न करता है।

ये सब बातें बीमार व्यक्ति पर भी लागू होती हैं। प्रत्येक बीमार व्यक्ति को इन विषयों के बारे में निर्णय करना आवश्यक होता है कि वह अपनी बीमारी के सम्बन्ध में क्या करेगा, वह किसी डाक्टर के पास अस्पताल में जायेगा या नहीं, बीमारी का निदान होने पर उसकी क्या स्थिति होगी और उस स्थिति का सामना वह कैसे करेगा, उपचार के सम्बन्ध में बतायी गयी विधियों का पालन वह किस तरह करेगा तथा अपने जीवन को वह किस प्रकार पुनर्व्यवस्थित करेगा। कोई भी दो व्यक्ति चाहे उनकी बीमारी एक ही क्यों न हो, एक ही प्रकार का निर्णय या व्यवहार नहीं करते, न उन पर एक प्रकार की प्रतिक्रिया ही होती है। इसका कारण यह है कि वे दोनों व्यक्ति अपनी बीमारी को अपने-अपने ढंग से अलग-अलग रूप में समझते तथा उसी के अनुसार उस बीमारी से प्रभावित भी होते हैं। अतः इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि कोई व्यक्ति अपनी किसी विशेष बीमारी को, किसी विशेष समय में किस रूप में ग्रहण करता है?

अस्पताल के कर्मचारियों को—जिनमें चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता भी होते हैं—चाहिए कि वे रोगी के सम्बन्ध में विचार करते समय इस बात पर भी विचार करें कि रोगी का अपनी बीमारी तथा अपने सम्बन्ध में क्या दृष्टिकोण है? किन्तु साथ ही उन कर्मचारियों को, विशेष रूप से चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को, इस बात की ओर भी ध्यान देना चाहिए कि रोगी अपने सामाजिक सम्बन्धों की सापेक्षिक व्यवस्था का एक अंग है। इस सापेक्षिक व्यवस्था में उसके परिवार और पेशे का स्थान विशिष्ट होता है। कोई भी व्यक्ति अपने आप तक सीमित नहीं रह सकता यानी अकेले नहीं रह सकता। और यदि कोई व्यक्ति बीमार पड़ता है या उसके साथ कोई गड़बड़ी उत्पन्न होती है, चाहे वह व्यवहार के क्षेत्र की गड़बड़ी हो, जैसे—बाल-अपराध और वयस्क-अपराध, अथवा स्वास्थ्य के क्षेत्र की, जैसे—क्षय रोग या उपदंश, तो यह देखना आवश्यक हो जाता है कि उस व्यक्ति का उसके परिवार के साथ कैसा सम्बन्ध है अर्थात् वह अपने परिवार को

किस रूप में देखता है और उसका परिवार उसे किस रूप में देखता है। यही बात उस व्यक्ति की नौकरी और पेशे के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। अधिकांश लोगों के लिए नौकरी या पेशे का अर्थ केवल इतना ही नहीं होता कि उसके कारण वे अपना तथा अपने परिवार का भरण-पोषण करते हुए समाज में अपना एक विशेष स्थान बनाते हैं, बल्कि उसके कारण उनके मन में इस बात का संतोष भी होता है कि वे कुछ कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त नौकरी या पेशे के कारण व्यक्ति में एक स्थायित्व आता है, जिसके द्वारा वह व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के विकास और अभिव्यक्ति के लिए अपने को सशक्त और समर्थ बना सकता है। अतः किसी रोगी के रोग के निदान के लिए ही नहीं, उसके उपचार के लिए भी यह जानना आवश्यक है कि बीमारी के कारण उस व्यक्ति की नौकरी छूट जाने या काम-धन्धा रुक जाने से उस पर क्या प्रभाव पड़ा है या पड़ेगा।[१०]

मनःशारीरिक दृष्टि

पिछले दो दशकों में एक नवीन पद्धति की ओर लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है, जिसे 'मनःशारीरिक पद्धति' नाम दिया गया है। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि बीमारी की चिकित्सा में उसके मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार के कारणों को ध्यान में रखना चाहिए। वस्तुतः यह कोई नया सिद्धान्त नहीं है, क्योंकि रोग के निदान और उपचार का आधार ही यही है और इसका प्रारम्भ सम्भवतः उसी समय हो गया था, जब कि रोगों के उपचार की विद्या का प्रारम्भ हुआ था। पर आधुनिक औषधि-विज्ञान के चमत्कारपूर्ण आविष्कारों के कारण रोग के विषय में मन और शरीर के पारस्परिक सम्बन्धों की ओर से लोगों का ध्यान हट गया था। इस सम्बन्ध में डा० एच० एम० मार्गोलिस ने ठीक ही लिखा है––

"जीवाणु-विज्ञान, रोग-विज्ञान, शल्य-चिकित्सा, जीव-रसायन-शास्त्र और जीवभौतिकी के क्षेत्र में होने वाले चिकित्सकीय आविष्कार, जिनमें रोगों को दूर करने की क्षमता

१०. इस अध्याय के इस भाग तथा अन्य भागों में जिन बातों का उल्लेख किया गया है, उनके सम्बन्ध में और भी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण पुस्तकों और निबन्धों में बल देकर विवेचन किया गया है। जो पाठक इन विचारों के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हों और उनसे सम्बन्धित उदाहरण देखना चाहते हों, उन्हें निम्न लिखित पुस्तकें पढ़नी चाहिए––मिन्रा फील्ड––"पेशेन्ट्स आर पीपुल"––न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५३; हेनरी बी० रिचार्डसन––"पेशेन्ट्स हैव फेमिलीज"––न्यूयार्क, कामनवेल्थ-फण्ड, १९४५; जी० कैन्बी राबिन्सन––"दि पेशेन्ट एेज ए परसन"––न्ययार्क, कामनवेल्थ-फण्ड, १९३९।

थी, चिकित्सा-शास्त्र के क्षेत्र में प्रगति का एक वेगपूर्ण तूफान लेकर आये। यह प्रगति उथल-पुथल मचा देने वाली थी। उसमें एक गणितशास्त्र-जैसी सुनिश्चितता थी, जैसी इसके पूर्व इस क्षेत्र में कभी नहीं देखी गयी थी। उनके कारण कुछ बीमारियों के सम्बन्ध में प्रचलित यह धारणा ही असत्य सिद्ध हो गयी कि वे संक्रामक होती हैं और कुछ रोगों में उनके कारण ऐसी अमोघ-चिकित्सा का प्रारम्भ हुआ, जिसकी इसके पूर्व किसी ने कल्पना तक नहीं की होगी। इन सभी आविष्कारों और चिकित्सा-विधियों में रोगी के शारीरिक संघटन और उसके रोगों पर ही ध्यान दिया जाता था और उन्हीं सफलताओं पर जोर दिया जाता था, जो शारीरिक या भौतिक साधनों द्वारा उपलब्ध होती थीं। चिकित्सा-शास्त्र के साहित्य से एक प्रकार से 'मनुष्य' शब्द बहिष्कृत हो गया और उसकी जगह 'मानवीय अंगरचना' शब्द का व्यवहार होने लगा, जिसका अध्ययन बहुत ही सूक्ष्मता से किया जाता था और जिस पर यांत्रिक विधि से प्रयोग भी किया जाता था। धीरे-धीरे चिकित्सा-शास्त्र के विद्यार्थी और चिकित्सक मानवीय शरीर-संघटन को उसी प्रकार की एक जैव इकाई समझने लगे, जैसा अमीबा या शलजम को समझते थे। वे भूल गये कि व्यक्ति शलजम से बड़ी वस्तु है; इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य का शरीर एक जैव इकाई भी होता है, पर उसमें एक अत्यन्त संवेदनशील स्नायु-तंत्र भी होता है, जो मनुष्य के अत्यन्त जटिल भाव-यंत्र को जिसमें स्मृतियाँ, प्यार, घृणा, भय, सुरक्षा-भावना, चिन्ता आदि संचित रहते हैं, संतुलित रखता है।"[११]

चूँकि प्यार, घृणा, भय, सुरक्षा-वृत्ति और चिन्ता आदि भावनाओं का व्यक्ति की बीमारी, उसकी अवधि तथा उससे मुक्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, अतः चिकित्सक को रोग के भावात्मक और शारीरिक कारणों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। पहले केवल बीमारियों के शारीरिक कारणों पर ही जोर दिया जाता था, किन्तु अब चिकित्सकों के उपयोग के लिए इस प्रकार का प्रभूत साहित्य तैयार किया जा रहा है, जिसमें रोगों के भावात्मक कारणों पर अधिक जोर दिया गया है। डा० एच० एम० फ्लैन्डर्स डन्बर ने अपनी पुस्तक "इमोशन्स ऐण्ड बाडिली चेन्जेज" (१९३५, १९३८, १९४६) में जिसमें २३०० सहायक ग्रन्थों की महत्त्वपूर्ण सूची है, इस बात को स्पष्ट किया है कि इस समय बीमारी के मानसिक और शारीरिक दोनों कारणों पर विचार करने की प्रवृत्ति किस रूप में बढ़ती जा रही है। डा० डन्बर ने अपनी एक बाद की पुस्तक "माइण्ड ऐण्ड बाडी—साइकोसोमेटिक मेडिसिन" में, जो सामान्य लोगों के लिए लिखी गयी है और जिनमें उनके अध्ययन का सम्पूर्ण सार संकलित है, अनेक उदाहरण देकर समझाया है कि मन और

११. एच० एम० मार्गोलिस का पूर्वनिर्दिष्ट निबन्ध।

शरीर एक दूसरे को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। उसमें कुछ बीमारियों के जैसे—उण्डुक-शोथ, सन्धि-शोथ, दमा, कर्क, बृहद् आन्त्र-शोथ, मधुमेह, उँकवत, परागज ज्वर, हृद्-रोग, अव्रकपारी, फुफ्फुग-दाह (निमोनिया), आमवातिक-हृदय, चर्म-रोग, क्षय-रोग और व्रण, भावात्मक कारणों तथा उनसे सम्बन्धित तथ्यों पर प्रकाश डालने के लिए रोगियों के वैयक्तिक जीवन-वृत्त भी दिये गये हैं। बाद में डा० वाइस और डा० इंग्लिश ने अपनी मनःशारीरिक चिकित्सा-सम्बन्धी पाठ्य पुस्तक में, डा० अलेक्जेण्डर और डा० फ्रेञ्च ने मनःशारीरिक चिकित्सा-सम्बन्धी अपने प्रकाशित निबन्धों और ग्रन्थों में और माइल्स, काब और सैन्स की हाल में प्रकाशित वैयक्तिक जीवन-वृत्त-सम्बन्धी पुस्तक में इस चिकित्सा-पद्धति के प्रयोगों और विकास पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त "साइकोसोमेटिक मेडिसिन" नामक त्रैमासिक पत्रिका भी, जो करीब दस वर्ष से प्रकाशित हो रही है, इस दिशा में बहुत अच्छा कार्य करती आ रही है।

यहाँ इस विषय में अपने निर्णय को सन्तुलित रखने की आवश्यकता है, अन्यथा सहज ही यह भ्रम हो सकता है कि मनःशारीरिक चिकित्सा के क्षेत्र में कोई नवीन और क्रान्ति-कारी आविष्कार है, जो प्राचीन पद्धतियों से बिलकुल भिन्न है। डा० वाइस ने, जिनकी पाठ्य पुस्तक का उल्लेख ऊपर किया गया है, इस मत का खण्डन किया है कि रोगों का कारण कार्यात्मक अथवा आवयविक होता है। इसके विपरीत उनके मतानुसार दोनों की परस्पर सम्बद्धता पर विचार करना आवश्यक है। उनका कहना है कि मनश्चिकित्सा-शास्त्र ठोस वैज्ञानिक आधारों पर आधारित है और सामान्य चिकित्सा-विज्ञान का इस प्रकार अंग हो गया है कि "उसके लिए अब मनःशारीरिक" शब्द के प्रयोग की आवश्यकता नहीं रह गयी है, क्योंकि उत्तम चिकित्सा तो मनःशारीरिक होगी ही।"[१२]

इस सिलसिले में व्यक्ति की सम्पूर्णता पर भी प्रायः उतना ही बल देते हुए डा० राबिन्सन ने यह मत व्यक्त किया है कि "मनुष्य मन और शरीर की अन्विति है और चिकित्सा के लिए इस इकाई को ध्यान में रखना आवश्यक है। शरीर-विज्ञान, रसायन-शास्त्र और जीव-विज्ञान अलग-अलग या समग्र रूप से भी बीमारी की जटिलताओं को

१२. एडवर्ड वेइस—"साइकोथिरैपी इन एब्रीडे प्रैक्टिस,"—इन माडर्न एटीच्यूड्स इन साइकियाट्री—न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४६, पृ० ११८; और भी देखिए, फ्रैन्ज अलेक्जेन्डर "प्रेजेन्ट ट्रेन्ड्स इन साइकियाट्री ऐण्ड दि फ्यूचर आउट लुक, इन माडर्न एटीच्यूड्स इन साइकियाट्री" पृ० ८३–८४।

स्पष्ट नहीं कर सकते। मन और शरीर के व्याघातों पर अलग-अलग विचार नहीं किया जा सकता, वे एक ही समस्या के दो पहलू या अवस्थाएँ हैं।"[१३]

बीमारी की रोगी पर प्रतिक्रिया

यह समझ लेना आवश्यक है कि बीमारी के कारण रोगी के व्यक्तित्व के लिए क्या खतरे हो सकते हैं और वह रोगी की समस्त जीवन-पद्धति को किस रूप में प्रभावित कर सकती है। बीमारी व्यक्ति को अव्यवस्थित कर देती है, दूसरे व्यक्तियों के साथ उसके मतभेदों को उग्र बना देती अथवा नये मतभेद पैदा कर देती है, जिनको सहन करना, विशेष-कर बीमारी की अवस्था में, बहुत कठिन होता है। वह व्यक्ति में हीनता की भावना पैदा करती है अथवा उस भावना को, जो स्वस्थ होने पर शायद कुछ भी अहित नहीं कर पाती, और भी उग्र बना देती है। बीमारी की अवस्था में जबकि मनुष्य अपनी रक्षा के उपायों से भी प्रायः वंचित हो जाता है, यह हीन-भावना अत्यधिक पराभूत कर देती है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जिन्हें बीमार रहने में ही लाभ होता है और इसीलिए वे बीमारी से चिपके रहते हैं। बीमारी के कारण उन्हें एक लाभ तो यही होता है कि सब लोग उनकी ओर ध्यान देते हैं, बीमार न रहने पर प्रायः उन्हें महत्त्वहीन समझ कर उपेक्षित कर दिया जाता है। बीमार व्यक्ति की सहायता करते समय चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को इन सभी सम्भव प्रतिक्रियाओं का ध्यान रखना चाहिए। किन्हीं भी दो बीमार व्यक्तियों पर एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं होती। कुछ रोगी तो ऐसे होते हैं जो यह स्वीकार ही नहीं करते कि वे बीमार हैं। और इस प्रकार जिस शक्ति का उपयोग वे अपने रोग को अच्छा करने में करते, उसे उल्टे वे बीमार बने रहने के लिए प्रयुक्त करते हैं। बीमारी को स्वीकार न करने का अर्थ है, उससे मुक्त होने के उत्तरदायित्व को अस्वी-कार करना। दूसरे कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जो यह तो स्वीकर करते हैं कि वे बीमार हैं, किन्तु रोग मुक्त होने की कोई चिन्ता नहीं करते, वस्तुतः ऐसे ही व्यक्ति नीरोग रहने में उतना लाभ नहीं देखते, जितना बीमार रहने में। अतः उन्हें बीमार रहने में ही सन्तोष और आनन्द मिलता है। तीसरे प्रकार के व्यक्ति वे होते हैं, जो अपने बीमार होने की बात स्वीकार करते हैं और यह समझने का प्रयत्न करते हैं कि उनकी बीमारी के मूल में उनकी कौन-सी त्रुटियाँ और सीमाएँ निहित हैं और उसके बाद अपने को रोगमुक्त करने

१३. कैन्बी जी० राबिन्सन की पूर्वनिर्दिष्ट पुस्तक; पृ० १०; और भी देखिए, ई० लीलैण्ड हिन्सी—"दि परसन इन दि बाडी"—न्यूयार्क, डब्लू० डब्लू० नार्टन एण्ड कम्पनी, १९४५।

में अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं। कुछ व्यक्तियों पर बीमारी की अवधि में विभिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया होती है। ऐसे लोगों में से कुछ व्यक्ति शुरू में तो अपनी बीमारी की बात स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु जब देखते हैं कि उसकी चिकित्सा आदि का कार्य बड़ा कठिन है तो हार मानकर यह कहने लगते हैं कि अब वे अच्छे हो गये। जो व्यक्ति शुरू में बीमारी की बात अस्वीकार करते हैं, आगे चलकर उनमें से कुछ की बीमारी इतना भयंकर रूप धारण कर लेती है कि उन्हें मृत्यु अथवा स्थायी अक्षमता का खतरा दिखाई पड़ने लगता है, ऐसे व्यक्ति अन्त में अपने को सही रूप में समझकर यह स्वीकार करते हैं कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है। कुछ रोगी ऐसे भी होते हैं, जो तभी तक चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता लेते हैं, जब तक उनके पास कोई रहता है, किन्तु अकेले रहने पर वे अपना उत्तरदायित्व वहन करने में बाह्य रूप में अपने को पूर्णतः असमर्थ पाते हैं। ऐसे सभी रोगियों के साथ चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को व्यवहार करना पड़ता है और उन सबके साथ अलग-अलग वह भिन्न-भिन्न कौशलों का प्रयोग करता है।

अधिकांश चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता इस पेशे में आने के कुछ दिन बाद ही यह जान जाते हैं कि चिकित्सा-शास्त्र की सुविधाओं के बावजूद रोगी का अच्छा होना या न होना बहुत कुछ स्वयं रोगी पर ही निर्भर करता है। कुछ कार्यकर्ता तो यहाँ तक कहने का साहस करते हैं कि रोगी को और कोई भी अच्छा नहीं कर सकता, स्वयं वही अपने को अच्छा कर सकता है। और चिकित्सक उसे अच्छा करने की चाहे कितनी भी उत्कट इच्छा क्यों न रखता हो, जबतक रोगी स्वयं अच्छा होने की इच्छा नहीं करेगा, वह अच्छा नहीं हो सकता क्योंकि रोगमुक्ति में चिकित्सक या सामाजिक कार्यकर्ता की नहीं स्वयं रोगी की इच्छा ही प्रधान रूप से सहायक होती है।[१४] प्रारम्भ में इस तथ्य की जानकारी हो जाने से चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता रोगी से उसके सम्बन्ध में अपनी

१४. डा० क्लैण्डर्स डनबर ने निम्नलिखित अनुच्छेद में बड़े ही नाटकीय ढंग से इस बारे में लिखा है—

"अस्पताल के एक वार्ड में दो व्यक्तियों की चारपाइयाँ पास-पास थीं। दोनों लेटे थे। दोनों हृद्-वाहिका-रोग से पीडित थे। रोग काफी बढ़ चुका था। उनके रोग की गम्भीरता अस्पताल के लिए कोई नयी बात नहीं थी। ऐसे रोगी किसी ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते, जिसे वे या उनके चिकित्सक महत्त्वहीन समझते हों। वे तब तक अस्पताल में रह कर प्रतीक्षा करते हैं, जब तक कि उनका उच्च स्तरीय उपचार नहीं होता। वे इतने दिनों तक अस्पताल में रह सकने का साहस दिखाने के लिए अपने को बधाई देते हैं। वे बहुत पहले ही अच्छे हो गये होते, पर

या अन्य किसी की योजना मनवाने के श्रम से बच जाता है, जिसके लिए उसे व्यर्थ ही घंटों समय खर्च करना पड़ता। यद्यपि इस जानकारी के कारण कुछ निराशा हो सकती है, किन्तु उसका एक अच्छा प्रभाव यह होता है कि रोगी और सामाजिक कार्यकर्ता का पारस्परिक सम्बन्ध बीमारी की समस्या पर ही केन्द्रित रहता है। साथ ही सामाजिक कार्यकर्ता रोगी की सामाजिक और समाजोद्भूत मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं और सहायता ग्रहण करने की उसकी क्षमता पर भी अपने ध्यान को केन्द्रित रखता है।

सम्भवतः चिकित्सा के क्षेत्र में सहायता-सम्बन्धी वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रक्रिया का प्रथम चरण यही है कि रोगी, उसके रोग, रोग के सम्बन्ध में उसकी धारणा और अपनी नवीन परिस्थिति के अनुसार अपने को ढालने की उसकी क्षमता के बारे में अच्छी तरह जानकारी प्राप्त की जाय। यदि चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता अस्पताल का एक अंग होते हुए भी अस्पताल के कर्मचारियों से कुछ भिन्नता रखता है तो इसी अर्थ में कि वह अस्पताल के वातावरण में एक नयी बात पैदा करता है। इसी भिन्नता के कारण

उस हलात में उन्हें इस प्रकार का साहस दिखाने का अवसर नहीं मिला होता। वे दोनों पास-पास सोये व्यक्ति इसका उत्कृष्टतम उदाहरण थे। दोनों नीरोग होने के लिए इतने व्याकुल थे कि उन्हें देखकर दया आती थी। चिकित्सक जब परीक्षण करने आता था तो दोनों उसे साँस रोक कर देखते थे। अन्त में डाक्टर से कहते थे :—

"अब यह आप के ऊपर है डाक्टर साहब !" एक बोलता।

"मुझे अच्छा होने के लिए कुछ करना ही होगा डाक्टर !" दूसरा कहता। ये दोनों ही दुबिधाग्रस्त थे। वे निश्चित नहीं कर पाते थे कि रोग-मुक्ति के लिए उन्हें स्वयं क्या करना चाहिए। उनके अतीत जीवन-वृत्त और रोग के लक्षण एक-जैसे थे, इसी कारण उन्हें एक ही रोग की श्रेणी में रखा गया था। पहले का व्यक्तित्व उतना समन्वित नहीं था जितना दूसरे का था। फलतः पहले ने अपनी चिकित्सा की पूरी जिम्मेदारी डाक्टर पर छोड़ दी, जबकि दूसरे की प्रतिक्रिया इन शब्दों में व्यक्त हुई 'अच्छा होने के लिए मैं क्या कर सकता हूँ ?' इनमें से पहला मर गया और दूसरा अच्छा हो गया, यद्यपि प्रयोगशाला की प्रयोगात्मक जाँच और स्वास्थ्य-गृह के परीक्षण से दोनों की हालत में कोई अन्तर नहीं मालूम पड़ा था।"

एच फ्लैण्डर्स डनबर—'माइण्ड एण्ड बाडी—साइको सोमेटिक मेडिसिन'—न्यूयार्क, रैण्डम हाउस—१९४७—पृ० ६५–६६।

कार्यकर्ता रोगी को एक व्यक्ति मानकर उसी के आधार पर उसके साथ व्यवहार करता है, उसके रोग के सन्दर्भ में उसके विषय में जानकारी प्राप्त करता है, उसको रोग-मुक्त करने और स्वस्थ बनाने की चिन्ता व्यक्त करता है, किन्तु साथ ही इन सब बातों के सम्बन्ध-निर्णय करने का अन्तिम अधिकार वह रोगी के हाथ में ही छोड़ देता है। रोगी जब यह देखता है कि कोई उसकी सहायता करने को तैयार है, जो रोग के अच्छा होने तक हर कदम पर उसकी सहायता करेगा तथा जब उसे विश्वास हो जाता है कि उस व्यक्ति की सहायता को स्वीकार करने या अस्वीकार करने की उसे पूर्ण स्वतन्त्रता है, तब उसकी समझ में आ जाता है कि वैयक्तिक समाज-सेवा का क्या अभिप्राय है।

जब कोई रोगी किसी चिकित्सक या नर्स द्वारा अस्पताल में अथवा सामाजिक कार्यकर्ता के पास भेजा जाता है तो इसका यह अर्थ है कि वह व्यक्ति अपनी बीमारी के बारे में कुछ करने की दिशा में तत्पर है। हो सकता है कि उसे इस बात का पूर्ण ज्ञान न हो कि वह क्या करना चाहता है अथवा अस्पताल में उसके साथ क्या किया जायगा। उदाहरण के लिए, किसी बच्चे को लिया जा सकता है, जो अपने माता-पिता द्वारा बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह में लाया जाता है। अस्पताल में उस रोगी का आना अथवा बाल निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह में बच्चे का ले जाया जाना यह प्रमाणित करता है कि रोगी और उसके अभिभावक कुछ कर रहे हैं। ऐसे अवसर पर चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता से यह आशा की जाती है कि वह यह समझने का प्रयत्न करे कि रोगी अपनी बीमारी के बारे में क्या सोचता है, और वह रोगी द्वारा उठाये गये कदमों का समर्थन करे और उसे यह बताये कि आगे वह हर स्थिति में उस रोगी की सहायता करने में तैयार रहेगा। रोगी जिस स्थिति में है, सामाजिक कार्यकर्ता को उसे उसी रूप में ग्रहण करना चाहिए न कि उसे ऐसी स्थिति में ले जाने की कोशिश करनी चाहिए जिसमें उसे रहना चाहिए अर्थात् उसे यह देखना चाहिए कि रोगी क्या है, न कि यह देखना चाहिए कि उसे क्या होना चाहिए। कार्यकर्ता को रोगी के साथ कदम मिलाकर, जिस दिशा में वह जा रहा है, उसी दिशा में जाना चाहिए; न कि रोगी को अपनी तीव्र गति के साथ घसीटकर अपेक्षित लक्ष्य की ओर ले जाना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि कार्यकर्ता रोगी के साथ अनुचर बनकर चलता और उसके साथ अपने सम्बन्धों में सुधार नहीं करता है। वस्तुतः वह वही काम करता है, जिसकी रोगी को आवश्यकता होती है, न कि वह अपनी इच्छा के अनुसार रोगी से काम कराता है।

रोगी द्वारा सहायता का उपयोग

जब किसी को सहायता की आवश्यकता होती है तभी वह उपलब्ध सहायता का उपयोग करता है। यह एक बहुत सीधी और सामान्य बात मालूम पड़ सकती है, किन्तु

वैयक्तिक समाज-सेवा का कार्य करने वालों को सहायता-कार्य के प्रसंग में इस बात का पूरा अनुभव हो जाता है कि रोगी, चाहे वह कितना भी हतप्रभ और किंकर्तव्यविमूढ़ क्यों न हो गया हो, अपने जीवन को व्यवस्थित करने के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ इच्छा या संकल्प अवश्य करता है, अथवा उस विषय में किसी आवश्यकता का अनुभव अवश्य करता है। जो स्वस्थ व्यक्ति हैं, उन्हें यह कथन निरर्थक मालूम होगा कि बीमार व्यक्ति में नीरोग होने के लिए संकल्प नहीं होता, उन्हें यह बात भी निरर्थक मालूम होगी कि कोई बीमार व्यक्ति अपने बीमार होने की बात स्वीकार नहीं करता। किन्तु फिर भी यह बात सही है और ऐसे ही रोगियों की सहायता के लिए चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को बुलाया जाता है। डाक्टर किसी मरीज के रोग का निदान करके बताता है कि उसे हृद्रोग, गुर्दे की बीमारी, क्षय रोग, उपदंश, कैन्सर या और कोई रोग हो गया है। केवल रोग के निदान से ही यह निश्चित नहीं हो जाता कि रोगी अच्छा होने की इच्छा रखता है। इसके विपरीत निदान के कारण वस्तुतः उसके मन में अनेक प्रकार की शंकाएँ और भय उत्पन्न हो सकते हैं, जिनसे वह कुछ करने में अपने को असमर्थ पा सकता है। उसी तरह यदि कोई रोगी निदान में बताये गये रोग का नाम दुहराता है तो भी इससे यह नहीं प्रमाणित होता कि वह अपनी बीमारी की बात स्वीकार करता है, क्योंकि बुद्धि से कोई बात कहना और बात है और हृदय से उसे स्वीकार करना तथा उस सम्बन्ध में कुछ प्रयत्न प्रारम्भ कर देना बिलकुल दूसरी बात है। हृदय से स्वीकार करने का अर्थ यह है कि रोगी अपने शरीर में रोग के अस्तित्व को स्वीकार करता है, उसके बारे में अपना मत व्यक्त करता है, और अन्त में उसके लिए कुछ प्रयत्न प्रारम्भ करता है। अतः इसी समय चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की सहायता की आवश्यकता होती है। रोगी को इस काम में सहायता की आवश्यकता होती है कि वह रोग को समझे और यह जान सके कि बीमारी आगे क्या रूप ग्रहण करेगी, प्रभाव उस पर क्या होगा, रोग को दूर करने के लिए उसे अस्थायी या स्थायी रूप से अपने जीवन को किस रूप में पुनः व्यवस्थित करना होगा, उसके मार्ग में क्या बाधाएँ उपस्थित होंगी और उन्हें कैसे दूर किया जा सकेगा। रोगी जब अपनी बीमारी को अच्छी तरह समझ लेता है और यह अनुभव करने लगता है कि बीमारी से लड़ने में अपनी सारी शक्ति खर्च करने से अच्छा है कि अपनी सीमाओं के भीतर ही वह अच्छी तरह जीवन बिताने और कार्य करने का प्रयत्न करे, तभी वह यह समझता है कि उसे सहायता मिल रही है। रोगी का बीमारी को स्वीकार करना और उसके अनुसार अपने को व्यवस्थित करने की आवश्यकता का अनुभव करना ही इस बात का प्रमाण है कि रोगी कुछ ऐसी बातों का अनुभव कर रहा है, जिनका इसके पहले अपने जीवन में उसने कभी अनुभव नहीं किया था।

ये बातें केवल सैद्धान्तिक कल्पना नहीं है, अनगिनत व्यक्तियों के दैनिक जीवन से इनके उदाहरण दिये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक तीस वर्ष के ऐसे युवक को लीजिए, जो एक सफल रोजगारी है और क्षयग्रस्त होकर अस्पताल में आता है। उसे केवल खाँसी थी और फिर भी पिछले कुछ दिनों से वह कड़ा परिश्रम करता रहा है। और तब उसके मन में शंका होती है, "हो सकता है, यह क्षयरोग हो। यदि ऐसा हुआ तो मेरी क्या गति होगी, और मेरे रोजगार तथा मित्रों का क्या होगा ? नहीं, मैं छः महीने तक घर बैठ कर आराम नहीं कर सकता, न किसी क्षयरोग अस्पताल ही में जा सकता हूँ। मैंने रुपया तो बचाया नहीं है। नहीं, मैं आपरेशन कराना नहीं चाहता, भले ही मुझे पंगु बन कर चलना पड़े या मैं मर जाऊँ और सब कुछ समाप्त हो जाय।"[१५]

धनी हों या गरीब, सबसे सामाजिक कार्यकर्ता का सम्पर्क होता है और सब के बीच सामान्य रूप से उसे इसी प्रकार के अनुभव करने पड़ते हैं। सामाजिक सेवा द्वारा व्यक्ति की इस प्रकार सहायता की जाती है कि वह अपनी वास्तविक स्थिति, अपनी बीमारी, अपनी जटिलता आदि से भली-भाँति अवगत हो जाता है। धीरे-धीरे रोगी स्थिति की यथार्थता को स्वीकार करना सीख जाता है। उदाहरणार्थ, उक्त क्षयरोगी छः महीने तक तो आराम करता ही है, उसके बाद फिर उसे छः महीने तक विश्राम करने की आवश्यकता बतायी जाती है और वह उसके लिए भी तैयार हो जाता है। जब एक वर्ष पूरा हो जाता है, तो उसके लिए एक नियमित कार्यक्रम बनाया जाता है, जिसे उसको कड़ाई के साथ पालन करना पड़ता है, उसे उपचार कराना जारी रखना पड़ता है और उसको यह हिदायत दी जाती है कि वह अपने रोजगार का काम क्रमशः धीरे-धीरे चालू करे और अपनी आदतों, समय और मनोरंजन के कार्यों पर संयम और नियंत्रण रखे। एक वर्ष पूर्व वह जिन कामों को करने के लिए तैयार नहीं था, वह अब उन्हें आसानी से कर रहा है। एक अर्थ में उसके जीवन का एक वर्ष व्यर्थ ही निकल गया। जैसे वह उसके जीवन में

१५. क्षयग्रस्त रोगियों की कठिनाइयों से सम्बन्धित विवरण के लिए अभी हाल में प्रकाशित यह निबन्ध अवलोकनीय है—मेरी एस० ब्रुक—"साइकालोजी आफ दि ट्यूबरक्लोसिस पेशेण्ट"—जरनल आफ सोशल केस वर्क—जिल्द २९, फरवरी १९४८, पृ० ५७–६०। इस निबन्ध में ओस्लर का यह सिद्धान्त-वाक्य दुहराया गया है, "क्षयरोग का दूर होना इस बात पर अधिक निर्भर करता है कि रोगी के मन में क्या है बनिस्बत इसके कि उसकी छाती के भीतर क्या है।"—और भी देखिए—जेरोम हार्टज—"ह्यूमन रिलेशनशिप इन ट्यूबरक्लोसिस"—पब्लिक हेल्थ रिपोर्ट्स—जिल्द—६५, अक्तूबर ६, १९५०, पृ० १२९२–१३०५।

आया ही नहीं था, पर दूसरे अर्थ में उसने अपने को इस तरह नियंत्रित करना सीख लिया है, जो पहले उसके लिए कभी संभव नहीं होता। एक वर्ष की बीमारी के कारण उसकी अपने स्वास्थ्य की अदूरदर्शितापूर्ण उपेक्षा की प्रवृत्ति कम हो गयी है, रोजगार में सफलता की दिशाएँ अग्रसर होने वाली उसकी क्षिप्र गति समाप्त हो जाती है और एक विनोदपूर्ण तथा अच्छा आदमी बनने का उसका उद्देश्य भी विलुप्त हो गया। दो वर्ष बाद वह फिर नियमित समय के अनुसार अपने रोज़गार पर जाने लगता है। उसके मनोरंजन और विश्राम के समय में भी कुछ परिवर्तन किया जाता है। वह विवाह भी कर लेता है और जीवन उसके लिए उद्देश्यपूर्ण प्रतीत होने लगता है। सम्भवतः अन्य क्षतिजन्य अनुभवों का भी ऐसा ही परिणाम हुआ होता, किन्तु इस मामले में अविस्मरणीय तथ्य यह है कि उस व्यक्ति के अपनी बीमारी की बात स्वीकार करने और अपनी सीमाओं के भीतर ही रहकर उसके संयमित रूप से काम करने में कार्य-कारण-सम्बन्ध अवश्य है। उसी तरह उसकी अपनी बीमारी की संयमित जीवन-स्थिति की सीमाओं को स्वीकार करने तथा उसके फलस्वरूप व्यापक जीवन-क्षेत्र के रचनात्मक अनुभव प्राप्त करने की ओर उसकी प्रवृत्ति में भी कोई-न-कोई सम्बन्ध है। पहले वह मृत्यु की बात सोचता था, किन्तु अव उसके लिए जीवन ठोस रचनात्मक अर्थ से युक्त बन गया है।

रोगी की जिम्मेदारी

भावनाओं, समवेदनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति अन्ततः कार्यों के रूप में ही होती है और कार्यों का ही दूसरा नाम व्यक्ति का व्यवहार है। रोगी और चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता दोनों को यह चिन्ता करनी पड़ती है कि रोगी का व्यवहार इस प्रकार का हो कि वह अपनी बीमारी और अवरोधों की स्थिति से अपना सामञ्जस्य स्थापित कर सके अथवा स्वास्थ्य-लाभ की दिशा में अग्रसर हो सके। सभी बीमारियाँ अच्छी नहीं होती और न तो सभी रोगी पूर्ण रूप से स्वास्थ्य-लाभ ही कर पाते हैं। फिर भी गम्भीर या अस्थायी अक्षमता अथवा अवरोध की स्थिति में अपने को व्यवस्थित करने और स्वास्थ्य-लाभ के लिए उत्साहपूर्वक प्रयत्न करने के कार्य में व्यक्ति को सहायता लेने की आवश्यकता पड़ती है। चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की सेवाओं के अन्तर्गत रोगियों से साक्षात्कार करने और उन्हें परामर्श देने के अतिरिक्त यह कार्य भी आता है कि रोगियों की इस प्रकार सहायता की जाय कि वे रोगजन्य परिस्थितियों की सीमाओं के बीच अपने को व्यवस्थित कर सकें और स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए सक्रिय कदम उठा सकें। चिकित्सक या सामाजिक कार्यकर्ता यदि इस सम्बन्ध में रोगी का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेते हैं तो इसका अर्थ यह होगा कि वे रोगी को अपनी समस्याएँ स्वयं सुलझा लेने का अवसर

नहीं देते। यदि वे रोगी को अपनी जिम्मेदारी सँभालने का अवसर देते हैं तो इसका परिणाम यह होता है कि वह अपनी ओर से स्वयं निर्णयात्मक कार्य करने के लिए स्वतन्त्र हो जाता है और इस तरह वह अपने लिए कुछ करने के लिए अपनी स्वतः प्रेरणा से प्रवृत्त होता है। सामाजिक कार्यकर्ता रोगी को इस बात के लिए उत्साहित करता है कि वह अपने भय और आशंकाओं को खुलकर व्यक्त करे, वह रोगी को उसी रूप में स्वीकार करता है, जिस रूप में वह है, उसमें आस्था और विश्वास भरता है, उसके साथ मिलकर उसकी कठिनाइयों पर विचार करता है, आवश्यकता पड़ने पर भावी जीवन की योजनाएँ बनाने में उसकी सहायता करता है और इन सब कार्यों द्वारा वह रोगी के मन को इस प्रकार मुक्त और हल्का कर देता है कि रोगी अपने सम्बन्ध में स्वयं निर्णय करने और कदम उठाने के योग्य हो जाता है। सम्भवतः रोगी अपनी सीमाओं के कारण इतनी दूर तक नहीं देख पाता कि वह अकेले ही अपनी समस्याओं को सुलझा सके, और यह बात हममें से अधिकांश व्यक्तियों पर लागू होती है। किन्तु वह इतना तो कर ही सकता है कि अपनी समस्या से सम्बन्धित पहले कोई छोटा कार्य प्रारम्भ करे। इस तरह सफलता मिलने पर, जब उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न हो जायेगा तो वह जीवन के व्यापक क्षेत्रों में भी कार्य कर सकने में समर्थ हो सकेगा। कार्य करने में प्रवृत्त होना ही भय को दूर करने का सबसे बड़ा उपाय है, क्योंकि यदि कोई रोगी कार्य करने का निश्चय करता है और उसके अनुसार कार्य प्रारम्भ कर देता है तो उसके बहुत-से भय, जो उसे हमेशा घेरे रहते थे अपने आप भाग जाते हैं। कम-से-कम इतना तो निश्चित रूप से हो जाता है कि उसकी बेसहारापन की भावना बहुत क्षीण हो जाती है। रोगी और चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता के बीच जो मुक्त सम्बन्ध होता है, उसमें रोगी को अपनी बातें खुलकर कहने में निन्दा या घृणा की आशंका नहीं होती, अपने भय को आमने-सामने करके देखने का अवसर मिलता है और उसके मन में यह भावना भी उत्पन्न होती है कि कोई उसे स्वीकार करके महत्त्व देता है और उसको समझता है। इस तरह इन बातों के लिए रोगी को इससे अधिक स्वातन्त्र्ययुक्त और कोई माध्यम नहीं मिल सकता। इस सम्बन्ध द्वारा रोगी अपने "स्व" का, अपनी रचनात्मक शक्तियों का और अपने जीवन का उत्तरदायित्व ग्रहण करने की अपनी आन्तरिक क्षमताओं का अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र उपयोग कर सकता है।

रोगी अपने सामाजिक सम्बन्धों के प्रवाह का एक अंग तथा अपने सामुदायिक परिवेश में किसी सामाजिक समूह या संगठन का एक सदस्य होता है। वह किसी परिवार का सदस्य होता है, जिसके अन्य सदस्यों को प्रभावित करता तथा उनके द्वारा प्रभावित होता है, उसी तरह पेशा या रोजगार से सम्बन्धित उसके कुछ सम्बन्ध और अनेक प्रकार के सामुदायिक सम्पर्क होते हैं। बीमारी के कारण उसे कुछ समय के लिए अपने परिवार तथा

समुदाय से दूर हो जाना पड़ता है, किन्तु अन्त में अच्छा होने पर उसे फिर उसी परिवार या समुदाय में लौटना पड़ता है। जिन सीमाओं और अभावों का वह सामना करता है तथा उनके बीच अपने को व्यवस्थित करने के लिए जो प्रयत्न करता है, उनका सम्बन्ध भी उसकी सामाजिक परिस्थिति से होता है। सामाजिक कार्यकर्ता के लिए इस बात को भी बराबर ध्यान में रखना आवश्यक है। बीमार व्यक्ति भी अन्य व्यक्तियों के समान ही यथार्थ परिस्थितियों के साथ अपना सामञ्जस्य स्थापित करते हैं, किसी पूर्वनिर्दिष्ट या आदर्श परिस्थिति के साथ नहीं। चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की प्राविधिक कौशल चाहे जैसा भी हो और रोगी की व्यक्तित्व-सम्बन्धी आवश्यकताएँ चाहे जितनी भी गम्भीर हों, कार्यकर्ता का केन्द्रीय कार्य यही है कि वह रोगी और उसके लिए निर्मित चिकित्सकीय योजना को सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में रखकर संयोजित करे। कार्यकर्ता की सफलता की अन्तिम कसौटी यही है कि व्यक्ति की क्षमताओं, उसकी बीमारी या अक्षमता के स्वरूप और सामाजिक परिस्थितियों की माँग को ध्यान में रखते हुए यह देखा जाय कि चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की सहायता से क्या रोगी अपने समुदाय के साथ ऐसा सामंजस्य स्थापित कर सका है, जिससे समाज से उसकी आवश्यकताओं और उससे समुदाय की माँगों की पूर्ति सन्तोषपूर्ण ढंग से हो रही है ?

अस्पताल के बाहर चिकित्सकीय सामाजिक सेवा

अस्पतालों में चिकित्सकीय सेवा-कार्य परम्परागत रूप में होता आ रहा है। पिछले कुछ वर्षों में अस्पताल के बाहर भी चिकित्सकीय सामाजिक सेवा-कार्य की पद्धति का विकास हुआ है। चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता जिन समस्याओं को हाथ में लेता है, वे अस्पताल के बाहर भी वैसी ही होती हैं, जैसी अस्पताल के भीतर, उनका सम्बन्ध व्यक्तियों, बीमारियों और सामाजिक परिस्थितियों से होता है। इस अपेक्षाकृत नवीन चिकित्सकीय सामाजिक सेवा-पद्धति द्वारा विकलांग बालकों के सहायता-कार्यक्रम में तथा व्यावसायिक पुनर्वास-योजना के अन्तर्गत अधिक चमत्कारपूर्ण कार्य किया गया है।

सन् १९३५ के सामाजिक सुरक्षा-कानून की धाराओं तथा उसमें बाद में किये गये संशोधनों के अनुसार संघ-सरकार सभी राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में विकलांग बच्चों की सेवा के लिए धनराशि की व्यवस्था करती है। ये राज्य और प्रदेश विकलांग बालकों की सेवा-सम्बन्धी अपनी-अपनी स्वीकार्य योजनाएँ संघ के पास भेजते हैं। योजनाओं की स्वीकृति के लिए यह शर्त होती है कि उनमें खर्च होने वाले धन का कुछ भाग सम्बन्धित राज्यों या प्रदेशों को भी देना होगा, उनका प्रशासन किसी राजकीय अभिकरण के हाथ

में रहेगा और राज्य या प्रदेश के चिकित्सा, स्वास्थ्य, उपचर्या और कल्याण का कार्य करने वाले सभी विभाग या वर्ग इस कार्य में सहयोग करेंगे।

बाल रोग-चिकित्सकों और विकलांग-चिकित्सा-विदों ने विकलांग बच्चों की सहायता के कार्यक्रम में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा किये गये कार्यों का स्वागत किया है। यद्यपि इस क्षेत्र में गैरसरकारी तौर पर व्यक्तिगत रूप में बहुत दिनों से पर्याप्त सेवा-कार्य होता आ रहा है,किन्तु फिर भी विकलांगों की चिकित्सा की आवश्यकता इतनी बढ़ी हुई है कि बेचारे चिकित्सक कार्यभार से दबे रहते हैं और केवल रोगी के चिकित्सा-सम्बन्धी पक्षों पर ही ध्यान दे पाते हैं। अतः इस क्षेत्र में भी पूर्वनिर्दिष्ट क्षेत्रों के समान रोगी को व्यक्ति के रूप में देखकर उसकी चिकित्सा करने की बहुत अधिक आवश्यकता है। और कुछ नहीं तो कम-से-कम विरूपता, अक्षमता और बाधाग्रस्तता के कारण विकलांग बालकों को जो दुःख भोगने पड़ते हैं,उन्हीं को देखते हुए इस सेवा की तात्कालिक आवश्यकता का बहुत अधिक महत्त्व है। निश्चय ही ऐसे बालकों के सम्बन्ध में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को यह जानना बहुत आवश्यक है कि उनकी बीमारी क्या है, उसका उनके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, उस बीमारी के कारण बच्चे किस तरह समाज के अन्य बच्चों से भिन्न रूप में देखे जाते हैं, और किस तरह अपने घर में तथा स्कूल में वे अपना प्राप्य स्थान खो देते हैं, कैसे वे घर और समाज में उपेक्षित होते हैं तथा अपने को औरों के ऊपर भार समझने लगते हैं अथवा अन्य बालकों की तुलना में अपने को हीन दृष्टि से देखने लगते हैं। अतः यहाँ भी रोगी को, भले ही वह बालक है, ऐसी सहायता की आवश्यकता है कि वह अपनी विकलांगता की स्थिति को स्वीकार करे, अपने सम्बन्ध में स्वयं निर्णय करे, अपनी सीमाओं के अनुसार कार्य करे, और अच्छा हो जाने पर क्षतिपूर्ति-सम्बन्धी उन साधनों का त्याग कर सके, जिन्हें विकलांगावस्था में अनिवार्य रूप से अपनाने की उसकी आदत पड़ गयी थी। उसी तरह उसे सामुदायिक जीवन में भाग लेने के कार्य में भी सहायता की आवश्यकता होती है। संक्षेप में विकलांगता का कष्ट और उससे मुक्ति पाना ये बालक के विकास से सम्बन्धित ऐसे अनुभव हैं, जो उसे जीवन में फिर दुबारा नहीं प्राप्त हो सकते। इस अनुभव का अवसर मिलने के लिए बालक, कार्यकर्ता की सहायता के कारण, अपनी विकलांगता का भी उपकार मानता है। कार्यकर्ता बालक को उसकी क्षमताओं का ज्ञान कराने में सहायता करके जिस आत्मिक सुख का अनुभव करता है, वह अन्य लोगों के लिए दुर्लभ होता है।

एक अन्य क्षेत्र, जिसमें चिकित्सकीय सामाजिक सेवा का उपयोग अधिकाधिक हो रहा है, व्यावसायिक पुनर्वास का है। व्यावसायिक पुनर्वास-सम्बन्धी सेवासंघ और राज्य के सहयोग के आधार पर सन् १९२० का व्यावसायिक पुनर्वास कानून स्वीकृत होने के बाद

प्रारम्भ हुआ था और सन् १९३५ का सामाजिक सुरक्षा कानून, सन् १९४३ का व्यावसायिक पुनर्वास कानून (बार्डेन ला फ्लोलेटे), तथा उसके १९५४ के संशोधनों के लागू होने के बाद उसकी उपयोगिता बहुत बढ़ गयी। पिछले पृष्ठों में इस बात पर बल दिया गया है कि रोगी की बीमारी और उसके अनुसार रोगी के अपने को व्यवस्थित करने के प्रयत्न का क्या प्रभाव पड़ता है और उसका महत्त्व क्या है। बीमारी के सम्बन्ध में सामाजिक सेवा की सफलता की जो बात कही गयी है वही बीमारी या दुर्घटना के कारण उत्पन्न बाधाग्रस्तता पर भी लागू होती है। पर बाधाग्रस्तता की स्थिति में जो व्यावसायिक और भावात्मक सामंजस्य स्थापित किया जाता है, वह अल्पकालिक नहीं, जीवन भर के लिए होता है। व्यावसायिक पुनर्वास-सम्बन्धी सहायता की सफलता के लिए बाधाग्रस्त व्यक्ति के रोग के निदान और चिकित्सकीय उपचार की ही नहीं, और भी कई बातों की आवश्यकता होती है, जैसे शारीरिक और पेशागत चिकित्सा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और पुनःप्रशिक्षण, वित्तीय सहायता, रोजगार-व्यवस्था और वैयक्तिक सेवा-कार्य। इस तरह व्यावसायिक पुनर्वास के कार्य में तीन सेवा-पद्धतियों का सम्मिश्रण हुआ है, चिकित्सा, शिक्षा और सामाजिक सेवा।[१६]

चाहे संघ, राज्य और स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के सहयोग से सरकारी सहायता लेकर चलने वाले कार्यक्रम हों अथवा स्वेच्छा-दान से चलने वाले अनेक राष्ट्रीय अभिकरणों द्वारा किये जाने वाले, क्षयरोग, कैन्सर, शिशु-पक्षाघात आदि से सम्बन्धित सेवा-कार्य, सब में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ताओं को परामर्श और प्रशासन-सम्बन्धी पदों पर उत्तरोत्तर अधिक संख्या में नियुक्त किया जा रहा है। इसका अर्थ यह है कि चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता उत्तरोत्तर जन-स्वास्थ्य-विभाग के जनपदों, विशेषकर बड़े जनपदों और राज्यों में स्थित कार्यालयों से अधिक संख्या में सम्बद्ध होते जा रहे हैं। उन कार्यालयों में चिकित्सकीय सामाजिक समस्याओं का विवेचन किया जाता है और उसके आधार पर कार्यक्रम बनाये जाते हैं। सन् १९५० में राजकीय सहायता कार्यक्रमों में स्थायी रूप से एवं पूर्णतः अक्षम व्यक्तियों की सहायता का कार्यक्रम भी जुड़

१६. पुनर्वास और दीर्घकालिक रोगों से सम्बन्धित चिकित्सकीय सेवाकार्य के विषय में इधर हाल में कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनका उल्लेख आवश्यक है। पुनर्वास-सम्बन्धी सेवाओं के लिए देखिए—कारोलाइन एच० एलेज—दि रिहैबिलिटेशन आफ दि पेशेण्ट—फिलाडेलफिया, जे० बी० लिपिनकाट कम्पनी, १९४८। दीर्घकालिक रोगों की सेवा से सम्बन्धित पुस्तक के लिए देखिए—मिन्ना फील्ड पेशेण्ट्स आर पीपुल—न्यूयार्क, कोलिम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, १९५३।

जाने के बाद से राजकीय कल्याण-कार्यक्रमों में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ताओं को नियुक्त करके उनकी सेवाओं का अधिक-से-अधिक उपयोग किया जा रहा है। राजकीय सहायता पाने वाले व्यक्तियों की तथा ऐसे व्यक्तियों की जिन्हें राजकीय सहायता तो नहीं मिलती, पर जिन्हें चिकित्सा कराने में आर्थिक दृष्टि से असमर्थ प्रमाणित किया है, चिकित्सा-सम्बन्धी सेवा की बढ़ती हुई समस्या ने लोक-कल्याण और स्वास्थ्य-विभागों को चिकित्सकीय सामाजिक कार्य का अवलंबन लेने के लिए जिस रूप में बाध्य किया है, वैसा पहले कभी नहीं किया था। इस प्रकार की बड़ी संस्थाएँ, जैसे अमरीकन रेड्क्रास, राज्य और संघ के क्षयरोग-समितियाँ (तथा सरकारी और गैरसरकारी क्षयरोग-अस्पताल), अवकाश-प्राप्त सैनिक-प्रशासन, संयुक्त राष्ट्र लोक-स्वास्थ्य-विभाग, संयुक्त राष्ट्र बाल-सहायता-संघ आदि भी चिकित्सकीय सामाजिक कार्य को अपनी सेवाओं का अभिन्न अंग मानती हैं। यद्यपि इन संस्थाओं या विभागों में काम करने वाले चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता वस्तुतः प्रत्यक्ष रूप में बीमार व्यक्तियों का उपचार नहीं करते, फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से उनके कौशल और ज्ञान का उपयोग, नीतियों और संघटनों द्वारा इस उद्देश्य से किया जाता है कि अधिक व्यापक क्षेत्र में अधिक-से-अधिक लोगों की अपेक्षाकृत अधिक सफलता के साथ सेवा की जा सके। हर हालत में सामाजिक कार्यकर्ता के कार्यों के मूल में रोगियों या कार्यार्थियों के लिए सभी प्रकार के चिकित्सकीय और सामाजिक साधनों की खोज, विकास और संयोजन का उद्देश्य निहित होता है।[१७]

१७. संयुक्तराष्ट्र बाल-सहायता-संघ के चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत उपयोगी पुस्तिका "मेडिकल सोशल सर्विसेज फार चिल्ड्रेन" में जच्चा-बच्चा-स्वास्थ्य तथा विकलांग बालकों से सम्बन्धित कार्यक्रमों के अन्तर्गत किये जाने वाले वैयक्तिक सेवा-कार्यों पर ही नहीं, बल्कि उन सहायक सेवाओं पर भी बल दिया गया है, जो इन क्षेत्रों में चिकित्सकीय सामाजिक सेवा-कार्यों के संचालन के लिए आवश्यक हैं। उन सहायक सेवाओं में से कुछ ये हैं—कार्यक्रम बनाना, नीति-निर्धारण, स्तर-निर्धारण, सामुदायिक आयोजना, शैक्षणिक कार्य, चिकित्सा-सम्बन्धी अध्ययनों और शोधकार्यों के लिए योजना बनाना और उनमें भाग लेना। देखिए—

"मेडिकल सोशल सर्विसेज फार चिल्ड्रेन"—वाशिंगटन, डी० सी०। चिल्ड्रेन्स ब्यूरो, संयुक्त राज्य स्वास्थ्य, शिक्षा, कल्याण-विभाग— १९५३, पृ० १०—३१।

निष्कर्ष

वैयक्तिक सेवा-कार्य के क्षेत्र में अन्य विशेषीकृत सेवाओं की तरह चिकित्सकीय सामाजिक कार्य भी उन आधारभूत परिवर्तनों का परिणाम है, जो वर्तमान शताब्दी में सेवा-सम्बन्धी सिद्धान्तों और व्यवहार के क्षेत्र में घटित हुए हैं। इस क्षेत्र में प्रारम्भ में इस बात पर बल दिया जाता था कि रोगी की परिस्थिति को ही इस रूप में बदल देना चाहिए कि वह उसके लिए आदर्श परिस्थिति बन जाय और वह उसमें अच्छी तरह जीवन बिता सके। धीरे-धीरे इस सिद्धान्त की जगह यह नवीन विचार-धारा प्रचलित हो गयी कि बीमारी में भावात्मक तत्त्व भी कारण-रूप होते हैं, इसलिए रोगी की मानसिक या भावात्मक आवश्यकताओं का मनोवैज्ञानिक आधार पर पता लगाना चाहिए और उन आन्तरिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में रोगी की इस प्रकार सहायता करनी चाहिए कि वह बीमारी की परिस्थिति के अनुसार अपने को ढाल सके। अब इधर कुछ दिनों से इस बात पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है कि रोगी को उसकी सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में रखकर देखना चाहिए और उसी के अनुसार उसकी सहायता करनी चाहिए। यह नवीन विचार-धारा व्यक्ति के परिवेश का उसके जीवन पर पड़नेवाले प्रभाव का महत्त्व स्वीकार करती है, किन्तु उसके अनुसार परिवेश के अन्तर्गत व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्धों का अत्यन्त व्यापक क्षेत्र भी सम्मिलित है। इसके पूर्व मनोविश्लेषण-शास्त्र के अनुयायियों और पोषकों की इस सम्बन्ध में जो मान्यताएँ थीं, उनको इस विचार-धारा में भी स्वीकार किया जाता है और यह माना जाता है कि व्यक्ति के भावों या समवेदनाओं, पूर्व अनुभवों आदि का उसके व्यवहार या चरित्र के स्वरूप-निर्माण में बहुत अधिक हाथ होता है, किन्तु उसमें यह भी स्वीकार किया जाता है कि उन भावों और अनुभवों का अन्य तथ्यों तथा व्यक्ति की वर्तमान परिस्थिति से भी घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। आज की चिकित्सकीय सामाजिक सेवा को उपर्युक्त प्रथम और द्वितीय विचार-धाराओं का मेल या सम्मिश्रण नहीं समझना चाहिए। इसके विपरीत उसे एक ऐसा विकासशील और गत्यात्मक विचार-प्रक्रिया समझना चाहिए, जिसमें पूर्ववर्ती दोनों विचारधाराओं की उपलब्धियों को आत्मसात् करके, उनका इस प्रकार समन्वय किया गया है कि उसके फलस्वरूप यह सेवा अधिक उपयोगितापूर्ण और व्यापक हो सकी है। इसी कारण इस सेवा में रोगी, चिकित्सक

और भी देखिए—एलिज़ाबेथ पी० राइस का "मेडिकल सोशल वर्क" शीर्षक निबन्ध—सोशल वर्क इयर बुक—न्यूयार्क, अमेरिकन एशोसियेशन आफ सोशल वर्कर्स—१९५४, पृ० ३३९–३४६।

और सामाजिक कार्यकर्ता के पारस्परिक सम्बन्धों की अनिवार्य गत्यात्मकता पर तथा अपनी विशेष सामाजिक परिस्थितियों की सीमा के अन्तर्गत ही रोगी द्वारा अपनी अन्तर्निहित क्षमताओं की पहिचान की सम्भावनाओं पर बहुत अधिक बल दिया जाता है।

सहायक ग्रन्थ-सूची

पुस्तकें और पुस्तिकाएँ

फ्रांज़ अलेक्जेण्डर—साइकोसोमेटिक मेडिसिन : इट्स प्रिन्सिपुल्स ऐण्ड अप्लीकेशन्स—न्यूयार्क, डब्ल्यू० डब्ल्यू० नार्टन ऐण्ड कम्पनी, १९५०।

रिचार्ड सी० कैबट—सोशल सर्विस ऐण्ड दि आर्ट आफ हीलिंग—संशोधित सं०, न्यूयार्क, डाड, हेड ऐण्ड को० १९२८।

इडा एम० कैनन—आन दि सोशल फ्राण्टियर आफ मेडिसिन—कैम्ब्रिज, हारवर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, १९५२।

एलीनार काकेरिल (सम्पादन)—सोशल वर्क प्रैक्टिस इन दि फील्ड आफ ट्यूबरक्यूलोसिस—पिट्सबर्ग, पिट्सबर्ग युनिवर्सिटी, १९५४।

कैरोल एच० कूली—सोशल ऐस्पेक्ट्स आफ इलनेस—फिलाडेलफिया, डब्ल्यू० बी० साण्डर्स कम्पनी, १९५१।

एडिथ डब्ल्यू० क्रेसमैन—(सम्पादन)—फंक्शनल केस वर्क इन ए मेडिकल सेटिंग—फिलाडेलफिया, पेन्सिलवानिया स्कूल आफ सोशल वर्क, १९४४।

एच फ्लैण्डर्स डनबर—माइण्ड ऐण्ड बाडी : साइकोसोमेटिक मेडिसिन—संशोधित संस्करण; न्यूयार्क, रैण्डम हाउस, १९५५।

कारोलाइन एच० एलेज—दि रिहैबिलिटेशन आफ दि पेशेण्ट—फिलाडेलफिया, जे० बी० लिपिनकाट कम्पनी, १९४८।

मिन्ना फील्ड—पेशेण्ट्स आर पीपुल—न्यूयार्क, कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, १९५३।

जेम्स एफ० गैरेट—साइकोलाजिकल ऐस्पेक्ट्स आफ डिसएबिलिटी—वाशिंगटन, डी० सी०, आफिस आफ वोकेशनल रिहैबिलिटेशन, स्वास्थ्य शिक्षा और कल्याण-विभाग, यू० एस० गवर्नमेण्ट प्रिण्टिग आफिस, १९५३।

डोरा गोल्डस्टाइन—रीडिंग इन दि थियरी ऐण्ड प्रैक्टिस आफ मेडिकल सोशल वर्क—शिकागो, शिकागो युनिवर्सिटी प्रेस, १९५४।

लीलैण्ड ई० हिन्सी—दि पर्सन इन दि बाडी—न्यूयार्क, डब्ल्यू० डब्ल्यू० नार्टन ऐण्ड कम्पनी, १९५२।

हेनरी एच० डब्ल्यू० माइल्स, स्टैनली काब और हार्ली सी शैण्ड्स—केस हिस्टरीज़ इन साइकोसोमेटिक मेडिसिन—न्यूयार्क, डब्ल्यू० डब्ल्यू० नार्टन ऐण्ड कम्पनी, १९५२ ।

पालिन मिलर—मेडिकल सोशल सर्विस इन ए ट्यूबरक्यूलोसिस, सैनिटोरियम—वाशिंगटन, डी० सी, यू० एस० पब्लिक हेल्थ सर्विस, फेडरल सिक्योरिटी एजेन्सी, यू० एस० गवर्नमेण्ट प्रिण्टिंग आफिस, १९५१ ।

हेनरी बी० रिचार्डसन—पेशेण्ट्स हैव फेमिलीज़—न्यूयार्क, कामनवेल्थ फण्ड, १९४५ ।

जो० केनबी राबिन्सन—दि पेशेण्ट ऐज़ ए पर्सन—न्यूयार्क, कामनवेल्थ फण्ड, १९३९ ।

लियो डब्ल्यू० साइमन्स और हेरोल्ड जी० वूल्फ—सोशल साइन्स इन मेडिसिन—न्यूयार्क, रसेल सेज फाउण्डेशन, १९५४ ।

जेनेट थार्नटन—दि सोशल काम्पोनेण्ट इन मेडिकल केयर—न्यूयार्क, कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, १९३७ ।

फ्रान्सेस अप्ह्य—ए डाइनेमिक अप्रोच टु इलनेस—ए सोशल वर्क गाइड—न्यूयार्क, फेमिली सर्विस एसोसियेशन आफ अमेरिका, १९४९ ।

महत्त्वपूर्ण लेख

रूथ डी० अब्राम्स—"सोशल केस वर्क विथ कैन्सर पेशेण्ट्स"—सोशल केस वर्क—जिल्द ३२, दिसम्बर १९५१, पृ० ४२५, ४३२ ।

हैरियेट एम० बार्टलेट—"पर्सपेक्टिव इन पब्लिक हेल्थ सोशल वर्क"—चिल्ड्रेन, जिल्द १, जनवरी-फरवरी १९५४, पृ० २१—२५ ।

एलीनार काकेरील—"न्यू इम्फैसिस आन ऐन ओल्ड कान्सेप्ट इन मेडिसिन"—जरनल आफ सोशल केस वर्क; जिल्द ३०, जनवरी १९४९, पृ० १०—१५ ।

मेरी एल० डंकेल—"केस वर्क हेल्प फार न्यूरोडेरमेटिटिस पेशेण्ट्स"—जरनल आफ सोशल केस वर्क—जिल्द ३०, मार्च १९४९, पृ० ९७—१०३ ।

कैरो लाइन एच० एलेज—"दि मीनिंग आफ इलनेस"—मेडिकल सोशल वर्क, जिल्द २, अप्रैल १९५३, पृ० ४९—६५ ।

मिन्ना फील्ड—"मेडिकल सोशल वर्क फार दि एज़ेड"—बुलेटिन आफ दि अमेरिकन एशोसियेशन आफ मेडिकल सोशल वर्कर्स, जिल्द २२, फरवरी १९४९, पृ० ४—१६ ।

—"दि रोल आफ दि सोशल वर्कर इन ए माडर्न हास्पिटल", सोशल केस वर्क, जिल्द ३४, नवम्बर १९५३, पृ० ३९८—४०२ ।

एक्का गार्डन—"ट्रीटमेण्ट आफ प्राब्लम्स आफ डिपेण्डेन्सी रिलेटेड टु इलनेस"—दि फेमिली, जिल्द २३, अक्तूबर १९४२, पृ० २१०—२१८ ।

मारग्रेट मोफेट—"केस वर्क विथ दि पेशेन्ट हैविंग कार्डियक सर्जरी"—मेडिकल सोशल वर्क, जिल्द ३, जनवरी १९५४, पृ० २१–३१।

ऐलिजाबेथ पी० राइस—"जेनेरिक एण्ड स्पेसेफिक इन मेडिकल सोशल वर्क"—जर्नल आफ सोशल केस वर्क, जिल्द ३०, अप्रैल १९४९, पृ० १३१–१३६।

बेसी जी० स्क्लेस—"सोशल केस वर्क विथ दि आरथिरिटिक पेशेण्ट"—दि फेमिली, जिल्द २५, जनवरी १९४५, पृ० ३३१–३३७।

ग्रेस ह्वाइट—"दि डिस्टिंग्विशिंग कैरेक्टेरेस्टिक्स आफ मेडिकल सोशल वर्क"—मेडिकल सोशल वर्क, जिल्द १, सितम्बर १९५१, पृ० ३१–३९।

अवकाशप्राप्त सैनिक-प्रशासन-अस्पताल में चिकित्सकीय सामाजिक कार्य–

आर्थर एल० लीडर, मुख्य सामाजिक कार्यकर्ता
और श्रीमती मेबेल जे० रेमर्स, वैयक्तिक कार्य-अधीक्षिका,
विण्टर अवकाश-प्राप्त सैनिक-प्रशासन-अस्पताल
टापेका, कान्सास।

अवकाशप्राप्त सैनिक-प्रशासन (वी० ए०) ऐसे अवकाशप्राप्त सैनिकों की सहायता के लिए, जो उचित अधिकारी होते हैं, बड़े पैमाने पर चिकित्सा-सम्बन्धी कार्यक्रमों का संचालन करता है। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत चिकित्सा-क्षेत्र की सभी आधुनिक सुविधाओं की व्यवस्था, योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति और विश्वविद्यालयीय प्रशिक्षण-कार्यक्रमों में सहयोग द्वारा चिकित्सा के स्तर को अधिक-से-अधिक ऊँचा रखने का प्रयत्न किया जाता है।

जो अवकाशप्राप्त-सैनिक-अस्पताल में भर्त्ती होना चाहता है, उसे पहले 'वी० ए० अस्पताल' अथवा अपने घर के निकटवर्त्ती, उक्त प्रशासन के किसी क्षेत्रीय कार्यालय में आवेदन-पत्र देना पड़ता है। वह आवेदन-पत्र अस्पताल में किसी चिकित्सक के माध्यम से, चाहे वह आवेदक का निजी चिकित्सक हो अथवा क्षेत्रीय कार्यालय का चिकित्सक, उसके हस्ताक्षर के साथ अस्पताल में आना चाहिए। रोगी को जिसका आवेदनपत्र क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा भेजा जाता है, अस्पताल के अधिकारियों द्वारा भर्त्ती के लिए निश्चित तिथि की सूचना दी जाती है। उसका अस्पताल में भर्त्ती होना इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी आवश्यकता कैसी है, प्रवेश पाने की उसकी इच्छा बलवती है या नहीं, उसका रोग क्या और किस स्थिति में है, उसे प्रतीक्षक-सूची में रखा जा सकता है या नहीं और वह अवकाशप्राप्त सैनिक होने की शर्तें पूरी करता है या नहीं।

विभिन्न 'वी० ए० अस्पतालों' में सेवाकार्य की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ प्रचलित हैं। कान्सास राज्य में टोपेका के "विन्टर वेटेरन्स ऐडमिनिस्ट्रेशन अस्पताल" में जो पद्धति प्रचलित है, उसका विवरण आगे दिया जा रहा है। वहाँ पहले भर्त्ती करने वाले चिकित्सक द्वारा प्रवेशार्थी आवेदक का परीक्षण किया जाता है। यदि उसकी दृष्टि में रोगी की आवश्यकताएँ ऐसी हैं कि उसे अस्पताल में भर्त्ती करना आवश्यक है तो उसे तुरन्त उसके लिए उपर्युक्त ऐसे वार्ड में भेज दिया जाता है, जहाँ उसके रोग का समुचित अध्ययन और उपचार हो सके। इस युग में चिकित्सा का रूप इतना व्यापक हो गया है कि अब रोगी को शारीरिक एवं भावात्मक सम्बन्धों से समन्वित एक समग्र व्यक्ति मानकर उसकी चिकित्सा की जाती है। अस्पतालों के विशेषीकरण की ओर उतना ध्यान न देकर आधुनिक केन्द्रों में इस बात को महत्त्व दिया जाता है कि चाहे रोगी की बीमारी का सम्बन्ध मुख्यतः मनश्चिकित्सकीय क्षेत्र से हो या चिकित्सकीय क्षेत्र से, पर हर स्थिति में उसे एक सम्पूर्ण व्यक्ति मानकर ही उसका उपचार होना चाहिए।

टोपेका के अस्पताल में भर्त्ती करने वाले चिकित्सक द्वारा परीक्षण किये जाने के बाद यदि यह उचित समझा जाता है कि किसी भावात्मक व्याघात वाले रोगी को किसी ताला-बन्द वार्ड में रखना चाहिए,तो पहले उसे ऐसे ही किसी उपयुक्त बन्द वार्ड में रहने के लिए भेजा जाता है। वहाँ विशेषज्ञों के एक दल द्वारा, जिसमें मनश्चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक, नर्स, सामाजिक कार्यकर्ता, सहायक और कई पुनर्वास-चिकित्सक होते हैं, रोगी का अध्ययन और उपचार किया जाता है। भर्त्ती हो जाने के बाद यदि किसी रोगी के बारे में यह पता चलता है कि उसकी बीमारी उतनी अधिक मानसिक नहीं है, जितनी शारीरिक और उसे ओषधि-चिकित्सा की ही विशेष आवश्यकता है तो भर्त्ती करनेवाला अधिकारी उसे बन्द वार्ड से हटाकर उसके लिए उपयुक्त चिकित्सकीय या शल्य-चिकित्सकीय वार्ड में भेज देता है। अन्य रोगियों की, जिनमें नैदानिक समस्याओं वाले रोगी भी होते हैं, अस्पताल के विशेष निदान और जाँच-विभाग द्वारा देख-भाल की जाती है और जब उनका अच्छी तरह अध्ययन कर लिया जाता है तो या तो उन्हें अस्पताल से मुक्त कर दिया जाता है अथवा ऐसे वार्ड में भेज दिया जाता है जहाँ प्रत्यक्ष उपचारकार्य होता है। रोग का पता लगाने के प्रसंग में रोगी का, मनश्चिकित्सक, अस्पताल के भीतरी डाक्टर, सामाजिक कार्यकर्ता, मनोवैज्ञानिक तथा वार्ड के अन्य कर्मचारियों से सम्पर्क होता है। ये सभी मिलकर रोगी की आगे की चिकित्सा के सम्बन्ध में एक साथ सहयोग पूर्ण संस्तुति करते हैं।

खुले वार्डों में रहने वाले रोगियों का, जिनको ओषधि-चिकित्सा की आवश्यकता रहती है, अस्पताल के ओषधि-चिकित्सा-विभाग में उपचार किया जाता है। मनः शारीरिक चिकित्सा के सिद्धान्तों के अनुसार इन सभी वार्डों में मनश्चिकित्सक तथा

अस्पताल के भीतरी डाक्टर रोगी के समग्र व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर सहयोग पूर्ण ढंग से उपचार-कार्य करते हैं। इस प्रकार की चिकित्सा में, जिसमें दो तरह के डाक्टर काम करते हैं, वार्ड के अन्य कर्मचारियों के परामर्श और सहयोग की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। किसी एक व्यक्ति में चिकित्सकीय अधिकार केन्द्रित करने से कई सुविधाएँ होती हैं। इसलिए प्रत्येक वार्ड में किसी एक डाक्टर को, चाहे वह अस्पताल का भीतरी डाक्टर हो या मनश्चिकित्सक, प्रधान चिकित्सक नियुक्त कर दिया जाता है और दूसरा डाक्टर उसे परामर्श देने का कार्य करता है। चिकित्सकीय कर्मचारी अन्य विशेषज्ञों के सहयोग से प्रत्येक रोगी के लिए वैयक्तिकीकृत उपचार का कार्यक्रम निर्धारित करते हैं। वार्ड का डाक्टर प्रत्येक रोगी के अनुशासन-सम्बन्धी कार्यों और प्रतिक्रियाओं की जानकारी करके उसके बारे में अपनी धारणा बनाता है और उसी समझ तथा धारणा के आधार पर यह निश्चित किया जाता है कि किसी रोगी की सेवा कौन, किस समय करेगा। इस तरह अस्पताल में किये जानेवाले उपचार के अन्तर्गत अनेक चिकित्सा और प्रबन्ध-सम्बन्धी बातें सम्मिलित होती हैं, जैसे---चिकित्सकीय उपचार की आवश्यकता न रहने पर भी रोगी के लिए चारपाई पर विश्राम करने की व्यवस्था करना, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, शारीरिक चिकित्सा, व्यावसायिक चिकित्सा, किसी विशेष प्रकार की सामाजिक सेवा और इनमें से दो या कई के मिश्रण द्वारा उपचार।

सामाजिक कार्यकर्ता अपने दल के नियमित अंग के रूप में कार्य करते हैं। उनकी सेवाओं से रोगी अधिक-से-अधिक लाभ उठा सके, इसके लिए जो प्रशासकीय प्रबन्ध किया गया है, उसके अनुसार वे स्वास्थ्य-गृह, अध्ययन तथा प्रशासन-सम्बन्धी सभी विचार-गोष्ठियों या बैठकों में भाग लेते हैं, वार्ड के चिकित्सकीय निरीक्षण के समय साथ रहते हैं तथा प्रत्येक डाक्टर के साथ मिलकर हर सप्ताह विचार-विमर्श करते हैं (यद्यपि डाक्टरों के साथ उनका नित्य सम्पर्क होता रहता है)। सामाजिक कार्य का स्वरूप और सिद्धान्त ऐसा है कि चिकित्सकीय और मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यों में कोई अन्तर नहीं किया जा सकता। किसी रोगी की बीमारी की हालत जैसी होती है, उसीके अनुसार यह निश्चित किया जाता है कि उसे किस प्रकार के उपचार की आवश्यकता है, किनके सहयोग की आवश्यकता है और किस प्रकार की सामाजिक सेवा उसके लिए आवश्यक होगी।

वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता किसी औषधि चिकित्सा के लिए लाये गये रोगी की सेवा में प्रवृत्त होने के लिए अनेक तरीके इस्तेमाल कर सकता है। कभी-कभी अस्पताल का 'नैदानिक और जाँच-विभाग' ही अपनी संस्तुति में किसी रोगी के लिए सामाजिक कार्य का रूप निर्दिष्ट कर देता है। उस हालत में या तो स्वयं रोगी अपने वार्ड के लिए नियुक्त

सामाजिक कार्यकर्ता से मिलकर सहायता की माँग करता है अथवा सामाजिक कार्यकर्ता ही उक्त संस्तुति के आधार पर रोगी से सम्पर्क स्थापित करता है। स्वास्थ्य-गृह के कर्मचारियों की बैठक में भी विचार-विमर्श करके, वार्ड के चिकित्सक की संस्तुति के आधार पर अथवा सामाजिक कार्यकर्ता के प्रस्ताव पर, रोगी के लिए सामाजिक सेवा-कार्य की व्यवस्था की जाती है। वार्ड के निरीक्षण के समय सामाजिक कार्यकर्ता भी साथ रहता है, इसलिए उस समय भी रोगियों की सामाजिक सेवा का भार उसके ऊपर डाल दिया जाता है। सामाजिक कार्यकर्ता निश्चित समय पर या अनियमित रूप में भी, डाक्टरों से बराबर मिलकर विचार-विमर्श करता रहता है। ऐसे अवसरों पर ही सम्भवतः सबसे अधिक मामले उनको सुपुर्द किये जाते हैं। कभी-कभी समुदाय के अभिकरण किसी व्यक्ति की घरेलू चिन्ताओं या समस्याओं के बारे में लिखकर पूछ-ताछ करते या सामाजिक कार्यकर्ताओं की सेवाओं की माँग करते हैं। इस स्थिति में भी अस्पताल के सामाजिक कार्यकर्ता की सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है। अस्पताल का कोई भी कर्मचारी किसी रोगी या उसके परिवार की सामाजिक समस्या के बारे में सामाजिक कार्यकर्ता को सूचना दे सकता है। इसके अतिरिक्त कोई रोगी स्वयं अपनी ओर से भी सामाजिक कार्यकर्ता से सहायता की याचना कर सकता है।

अपने कार्यों के साधनों की चिन्ता न करके सामाजिक कार्यकर्ता अपना यह उत्तर-दायित्व समझता है कि वह अपनी योजनाओं और कार्यों के बारे में निरन्तर सम्बन्धित चिकित्सक को सूचित करता रहे तथा अपने सेवा-कार्यों को रोगी की समग्र चिकित्सा-योजना से जोड़ने का प्रयत्न करता रहे, क्योंकि अस्पताल के संघटन के अन्तर्गत वह हमेशा डाक्टर के अधीन रहकर तथा चिकित्सकीय संस्तुतियों के आधार पर ही कार्य करता है। इस प्रकार के वातावरण में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को कभी-कभी दो भिन्न चिकित्सा-धिकारियों से सम्बद्ध होकर कार्य करना पड़ता है। अतः उसमें इतनी कुशलता होनी चाहिए कि वह न केवल निरन्तर अपने वर्तमान कार्यों की उपयोगिता के सम्बन्ध में अपने अधिकारियों को समझाता रहे, बल्कि उसके समझाने या बताने का तरीका भी स्पष्ट और सरल हो। उसे हमेशा अपने उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान रहना चाहिए। उसको तथा उससे सम्बन्धित मनश्चिकित्सक को, विशेष रूप से, परस्पर सहयोग द्वारा एक दूसरे की सेवाओं के औचित्य और उपयोगिता को भी समझना और स्वीकार करना चाहिए। उन्हें हमेशा ऐसा अनुभव करना चाहिए कि वे अगले विचारणीय विषयों के सम्बन्ध में एक दूसरे को सुझाव देने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र हैं। इसके अतिरिक्त जब तीन व्यक्तियों—दो चिकित्सक और एक सामाजिक कार्यकर्ता—के बीच सहयोगिता की आवश्यकता होती है, उस समय उनमें से प्रत्येक को अस्पताल के अन्य चिकित्सकों से सम्पर्क स्थापित

करना आवश्यक होता है और इस सम्पर्क को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है। इस प्रकार के दल का कोई भी सदस्य अकेले ही किसी रोगी का उपचार करके अधिकतम लाभ नहीं पहुँचा सकता। उदाहरण के लिए, जब किसी रोगी के अस्पताल से रिहा होने का समय निकट आता है तो उसकी तैयारी से सम्बन्धित योजना बनाने में रोगी की सहायता करने के लिए सामाजिक कार्यकर्ता को रोगी की चिकित्सा की स्थिति और उसके रिहा होने की तिथि के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करने के लिए सम्बन्धित डाक्टर से नियमित रूप से मिलना और परामर्श करना पड़ता है। सामाजिक कार्यकर्ता इस सम्बन्ध में रोगी अथवा उसके सम्बन्धियों अथवा दोनों से सम्पर्क स्थापित करके उनका विचार चिकित्सक तक पहुँचाता है और इसके फलस्वरूप कभी-कभी चिकित्सक के रोगी की सामाजिक योजनाओं या उसकी रिहाई की तिथि से सम्बन्धित अपने विचारों में परिवर्तन भी करना पड़ता है। यदि किसी रोगी के सम्बन्ध में मनश्चिकित्सक को अधिक जानकारी प्राप्त करने का अवसर नहीं मिल सका है तो सामाजिक कार्यकर्ता और अस्पताल का भीतरी डाक्टर, दोनों इस सम्बन्ध में मिलकर विचार करते हैं कि उक्त रोगी के मनश्चि-कित्सकीय उपचार या तत्सम्बन्धी परामर्श की आवश्यकता है या नहीं। यदि मनश्चि-कित्सक ने सक्रिय रूप से कार्य किया है तो दोनों चिकित्सक और सामाजिक कार्यकर्ता मिलकर यह तय करते हैं कि कितने-कितने समय के पश्चात् रोगी को अस्पताल में अपने को दिखाने के लिए आना चाहिए। इस प्रकार की परिस्थिति में सामाजिक कार्यकर्ता को रोगी के अस्पताल के जीवन से सम्बन्धित कार्यों के बारे में विचार-विमर्श करने की आवश्यकता पड़ सकती है। उदाहरण के लिए, वह व्यावसायिक परामर्शदाता, व्यावसायिक चिकित्सक अथवा संगीत-चिकित्सक से इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श करता है कि अस्पताल से रिहा होने के बाद रोगी को व्यावसायिक तथा मनोरंजनात्मक कार्यों के क्षेत्र में अपने को व्यवस्थित करने के लिए क्या सुविधाएँ मिलनी चाहिए। यह अस्पताल पुनर्वास-सम्बन्धी साधनों की दृष्टि से बहुत सम्पन्न है, अतः सामाजिक कार्यकर्ता तथा अन्य लोगों का यह उत्तरदायित्व होता है कि वे रोगी की इस प्रकार सहायता करें कि वह अपनी वैयक्तिक और सामाजिक क्षमताओं के रचनात्मक और व्यापक उपयोग में इन साधनों से पूरी तरह लाभ उठा सके।

आगे वैयक्तिक सेवा-कार्य-सम्बन्धी जो सामग्री दी जा रही है, उसमें एक रोगी की चिकित्सा-योजना तथा उसकी सहायता करनेवाले चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता के तत्सम्बन्धी कार्य का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

वार्ड की साप्ताहिक परामर्श-गोष्ठी में, जिसमें उस वार्ड से सम्बन्धित अस्पताल के भीतरी डाक्टर, सामाजिक कार्यकर्त्री, नर्स और सहायक सम्मिलित थे, वार्ड की नर्स ने

बताया कि रोगी आर्थिक समस्या के विषय में बहुत चिन्तित है, अस्पताल के अपने प्रासंगिक व्यय के लिए भी उसके पास पैसे नहीं हैं, वह बेचैन रहता है और उसे कई बार रोते हुए भी देखा गया है। सामाजिक कार्यकर्त्री को उस रोगी के बारे में यह जानकारी प्राप्त हुई थी कि वह एक ३५ वर्ष का अविवाहित निग्रो था, जिसे कोई अज्ञात-ग्रंथि-रोग था, जिसका स्पष्ट निदान अभी नहीं हो सका था। रोग का बाह्य रूप यह था कि उसकी गर्दन और कन्धों के पास चमड़े के नीचे कई गिल्टियाँ या पिण्ड निकल आये थे। उस स्थान पर सूजन हो जाने के कारण उसे बड़ी तकलीफ थी और खाते समय कौर घोंटने में भी बाधा पहुँचने के कारण उसे कष्ट होता था। कभी-कभी तो उसके लिए भोजन करना भी असम्भव हो जाता था। वह हमेशा थका-थका रहता था। इस अस्पताल में तथा अन्य अस्पतालों में भी वह इसी बीमारी की कई बार चिकित्सा करा चुका था। कई सप्ताह पहले, जबकि उसके रोग के निदान का कार्य अभी हो ही रहा था, वह अस्पताल के अधिकारियों की राय के विपरीत अस्पताल छोड़ कर चला गया था। परामर्श-गोष्ठी में यह निश्चय किया गया कि सामाजिक कार्यकर्त्री उस रोगी की आर्थिक सहायता तथा उसकी अन्य सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित सहायता करने का उपाय करे। वार्ड से सम्बन्धित, अस्पताल के भीतरी डाक्टर ने कहा कि वह वार्ड का निरीक्षण करते समय रोगी को इस बात की सूचना दे देगा।

जब रोगी का साक्षात्कार प्रारम्भ हुआ तो प्रारम्भ में उसने आत्मरक्षात्मक रूप में, पर सकुचाते हुए, बातचीत शुरू की—

"उसने बताया कि वह मुझसे इसलिए मिलने आया है कि उसे बताया गया है कि उसका मुझसे मिलना बड़ा उपयोगी होगा। जब मैंने उससे कहा कि किसी अपरिचित व्यक्ति से बातचीत करने को तैयार होना तो जरा टेढ़ा काम होता है, तो यह कहते हुए कि हाँ, ऐसा होता तो है, उसने कुछ शान्ति का अनुभव किया। उसने बताया कि वह किसी से कुछ माँगना पसन्द नहीं करता था—और अपनी देख-भाल स्वयं कर लेने का आदी था। मैंने नरमी के साथ पूछा कि फिर इस समय भी वह ऐसा ही क्यों नहीं करता? जब उसने अपनी बीमारी के बारे में बताया तो मैंने उससे कहा कि मिलने आने का यह एक बहुत अच्छा कारण है और उसने मेरे पास आकर बातचीत करके बहुत अच्छा किया है, यद्यपि इसके लिए उसे पर्याप्त साहस बटोरना पड़ा होगा। उसने अपनी वित्तीय आवश्यकताओं के बारे में व्यावहारिक ढंग से सब कुछ समझाया।

"मैंने उससे कहा कि उसकी आवश्यकताओं को देखते हुए मैं उसे एक विशेष कोश से कुछ धन सहायता के रूप में इस शर्त पर दे सकती हूँ कि उसको चिकित्सा-सम्बन्धी ऐसी योजना पर व्यय किया जाय, जिससे सचमुच वह लाभ उठा सके। (यह कोश अमेरिकन

रेड्क्रास की स्थानीय शाखा की सहायता से अस्पताल में चिकित्सा करानेवाले अवकाश-प्राप्त सैनिकों की चिकित्सीय आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित व्यक्तिगत खर्च के लिए स्थापित किया गया है)। उसने आगे कहा कि उसे आशा है कि यदि आर्थिक सहायता मिल गयी तो इस बार वह पहले की तरह अस्पताल से भागने की जल्दी नहीं करेगा, बल्कि उसके कारण उसका भागना रुक जायगा। उसने स्वीकार किया कि पहले उसके अस्पताल से भागने के केवल आर्थिक कारण ही नहीं रहते थे, और भी कई कारण होते थे। उसने आश्वासन दिया कि इस बार वह अस्पताल में तब तक रहेगा जब तक यह पता न चल जाय कि उसकी बीमारी क्या है, उसकी क्या चिकित्सा हो सकती है और अच्छा हो जाने पर भविष्य में जीवन-यापन-सम्बन्धी नवीन योजना किस रूप में बनायी जा सकती है। मैंने उससे कहा कि उसके पहले के अस्पताल से भागने के उदाहरणों को देखते हुए तो यह एक बहुत बड़ी 'प्रतिज्ञा' मालूम पड़ती है, फिर भी यदि वह मेरे साथ सहयोग करने को तैयार हो तो मैं प्रयत्न करूँगी कि उसे आर्थिक सहायता मिल जाय। यह सुनकर वह बच्चों की तरह खुश हो गया।

मैंने उसे याद दिलाया कि उसने यह कहा था कि उसकी बीमारी के आर्थिक ही नहीं, कुछ और भी कारण हैं, उसका क्या अर्थ है? इसके उत्तर में उसने जल्दी-जल्दी बताया कि अपनी बीमारी का ठीक-ठीक पता न लगने के कारण ही उसका मन विक्षुब्ध हो उठता था और वह घबरा जाता था। उसे इस बात से और भी आशंका होती थी कि डाक्टरों को अब भी इसका पता नहीं चला था कि उसको कौन-सी बीमारी है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि अपनी बीमारी के परीक्षण की पद्धति, विशेष कर जीवोतिपरीक्षा के लिए प्रयुक्त सूइयों से सबसे अधिक डर लगता है। मैंने उसकी परेशानियों की बात स्वीकार करते हुए कहा कि सम्भवतः इस बार भी यहाँ रहने में उसे उसी तरह के शारीरिक और मानसिक दुःख उठाने पड़ रहे हैं। उसने हँसते हुए उत्तर दिया कि हो सकता है कि इस बार वह सब दुःखों को आसानी से झेल ले। मैंने कहा कि ऐसा ही होना चाहिए, पर इसके लिए उसे स्वयं निश्चय करना होगा। हो सकता है कि अस्पताल से चले जाने में उसे आराम दिखाई पड़े, पर यहाँ रुका रह कर ही वह अपने स्वास्थ्य को ठीक करने में योगदान कर सकता है। यद्यपि उसे अपने स्वास्थ्य के ठीक होने के बारे में अब भी सन्देह था, फिर भी मैंने उससे कहा कि यदि वह चाहेगा तो इस अनिश्चय और प्रतीक्षा की अवधि में उसकी सहायता करने तथा उसके भविष्य के लिए योजना बनाने के कार्य में सहयोग करने के लिए मैं उससे मिलने को सदा तैयार रहूँगा। उसने दुबारा मिलने के लिए समय निश्चित करने के विषय में उत्सुकता दिखायी।"

साक्षात्कार के बाद सामाजिक कार्यकर्त्री ने रोगी के साथ हुई अपनी बातचीत के बारे में अस्पताल के भीतरी डाक्टर से बताया और यह बात विशेष जोर देकर कही कि रोगी अपनी बीमारी का ठीक-ठीक पता न लगने के कारण बहुत चिन्तित है और परीक्षण-सम्बन्धी कुछ प्रक्रियाओं के कारण उसे और भी अधिक परेशानी है। डाक्टर को यह जानने में विशेष दिलचस्पी थी कि कहीं ऐसा तो नहीं था कि रोगी पहले अपने दृष्टिकोण के कारण ही अस्पताल से जल्दी रिहा कर दिया जाया करता था। डाक्टर ने स्वयं इस बात की ओर संकेत किया कि यद्यपि अभी तक वह रोगी की बिमारी का ठीक-ठीक निदान नहीं कर सका है, फिर भी वह रोगी से मिलकर वात्सल्यपूर्ण ढंग से बात करेगा और उसे अस्पताल में कुछ दिन और रुके रहने की राय देगा। सामाजिक कार्यकर्त्री और डाक्टर, दोनों की राय थी कि जीवोति-परीक्षा के लिए प्रयुक्त सूइयों का शरीर पर निरर्थक प्रयोग और उसके कारण त्वचा के सफेद छालों को देख कर रोगी का भयभीत होना स्वाभाविक ही था। दोनों इस सम्बन्ध में एकमत थे कि रोगी को अस्पताल से भागने न देने तथा उसके भविष्य के लिए योजनाएँ बनाने में सहायता करने के उद्देश्य से उसके लिए वैयक्तिक सेवाकार्य की व्यवस्था आवश्यक है।

अन्य रोगियों की तरह इस रोगी के पास अपने रोजमर्रा के खर्च के लिए पैसे नहीं थे। अस्पताल में ऐसे वित्तीय साधन सीमित होते हैं और उनसे सभी रोगियों की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति कभी नहीं हो सकती। अतः सामाजिक कार्यकर्ता केवल ऐसे ही जरूरतमन्द रोगियों को आर्थिक सहायता दिलाने की व्यवस्था करते हैं, जो अपनी वर्तमान अवस्था को सुधारने में कुछ दिलचस्पी दिखाते हैं। यद्यपि उक्त कार्यकर्त्री इस बारे में पूर्ण आश्वस्त नहीं थी कि वह रोगी उस अनुदान का उपयोग उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए करेगा, फिर भी रोगी ने खुले दिल से और सच्चाई के साथ अपनी भावनाओं को व्यक्त किया था। उसकी अभिव्यंजना-पद्धति जैसी अकृत्रिम और व्यंग्यपूर्ण थी उससे यह पता चलता था कि आर्थिक सहायता तथा डाक्टर और कार्यकर्त्री द्वारा उसके मामले में ली जानेवाली दिलचस्पी के फलस्वरूप रोगी सम्भवतः तब तक अस्पताल में रहेगा, जबतक उसके उपचार का कार्य पूरा नहीं हो जाता और उसके अस्पताल से रिहाई के बाद के जीवन के लिए उसकी योजना पूरी तरह नहीं बन जाती।

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का उद्देश्य रोगी की इस प्रकार सहायता करना है कि वह अपनी बीमारी के होते हुए भी आराम से रह सके और स्वास्थ्य-लाभ के लिए जो भी आवश्यक हो, उसे करने को तत्पर हो सके। उक्त कार्यकर्त्री ने अपने पहले साक्षात्कार में उपर्युक्त रोगी की मानसिक सहायता इस रूप में की कि वह अपने मन की चिन्ताओं और भय को, जिन्हें उसने अस्पताल के जीवन में कभी नहीं व्यक्त किया था, व्यक्त करने में

सफल हुआ। कार्यकर्त्री यह जानती थी कि वैयक्तिक सेवा कार्य में कार्यकर्ता और रोगी के सम्पर्क का पहला कदम यही है कि रोगी अपने मन की बातों को खुलकर व्यक्त करे, ताकि उसके आधार पर कार्यकर्ता रोगी की सहायता करे और उस सहायता का परिणाम यह हो कि रोगी स्वयं अपनी चिकित्सीय-सामाजिक समस्याओं को सुलझाने की अधिक-से-अधिक जिम्मेदारी ले सके।

दूसरे साक्षात्कार के समय रोगी ने अपनी बीमारी का ठीक-ठीक पता न लगने के लिए फिर चिन्ता प्रकट की। उसने बताया कि अब उसके शरीर के अन्य भागों में भी चमड़े के नीचे गिल्टियाँ उभड़ने लगीं थीं और लोग यह कहते सुने जाते थे कि "वह सफेद होता जा रहा है।" उसने यह भी बताया कि वह हमेशा अपनी बीमारी के सम्भव कारणों के सम्बन्ध में अनुमान किया करता तथा चिन्तित रहा करता है। तरह-तरह के जो विचार उसके मन में आते थे, उनमें से एक यह भी था कि सम्भवतः उसे अपने किसी पाप का फल भोगना पड़ रहा है, यद्यपि उसने हमेशा सच्चाई और ईमानदारी से जीवन बिताया है, फिर भी हो सकता है कि अपने जीवन को अत्यधिक संयमित रखने तथा उसके कारण उत्पन्न अकेलेपन के बावजूद उससे कुछ भूलें हो गयी हों, जिनके कारण आज उसकी यह स्थिति है। साथ ही उसने अपनी चिन्ता का एक कारण यह भी बताया कि वह अपने कुछ सम्बन्धियों की आर्थिक सहायता करता रहा है और बीमारी के कारण वह अब अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करने में असमर्थ है। कार्यकर्त्री ने उसकी वर्तमान परिस्थिति या उसके भविष्य के सम्बन्ध में कुछ आश्वासन नहीं दिया, न वह दे ही सकती थी। उसने इस बारे में भी निश्चित रूप से कुछ कहने से इन्कार किया कि रोगी के अस्पताल में रुके रहने से उसकी चिकित्सा सफल सिद्ध होगी और उसकी स्थिति में थोड़ा ही सही, सुधार होगा। किन्तु उसने साक्षात्कार का जो अभिलेख प्रस्तुत किया है उसके अन्तिम भाग से, जो नीचे दिया जा रहा है, यह पता चलता है कि उसने रोगी की भावनाओं के प्रति सहानुभूति दिखायी थी और उसके प्रति आदर का भाव व्यक्त किया था —

"मैंने उससे कहा कि वह इस समय जो कार्य कर रहा है वह उसके सम्बन्धियों की आर्थिक सहायता से अधिक महत्त्वपूर्ण है। मैंने अपना यह विचार भी व्यक्त किया कि सचमुच लगातार इस बात की प्रतीक्षा करते रहने में कि डाक्टर उसके रोग का क्या निदान करते हैं और उसके उपचार के सम्बन्ध में क्या निर्णय करते हैं, उसको कितने धैर्य और साहस की आवश्यकता पड़ती होगी, इसे शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति समझ सकता है। उसने मेरी बात दुहराते हुए कहा कि उसे प्रतीक्षा का जो दुःख भोगना पड़ता है, उसे कोई नहीं जान सकता, किन्तु उसके बारे में इस समय बात करने से उसे कुछ आराम अवश्य मिल रहा है। मैंने उसे विश्वास दिलाया कि अस्पताल में काम करने वाले हम लोग

उसके दुःख को कुछ-कुछ समझते हैं और जब तक वह यहाँ रहेगा, हम लोग उसके हित की चिन्ता करते रहेंगे। उसने मेरी बात की सच्चाई में विश्वास प्रकट किया और कहा कि अब उसने निश्चय कर लिया है कि वह अस्पताल में रहेगा और जो कुछ उस पर बीतेगी, सब सहन करेगा। उसने यह भी जानना चाहा कि क्या वह मुझसे फिर मिलकर बात कर सकता है। मैंने उससे बताया मैं सप्ताह में एक बार उससे मिलता रहूँगा।"

रोगी ने अपने सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय कर लिए है, जैसे—यह कि वह अब अस्पताल में रहेगा और वैयक्तिक सेवा-कार्य में सहयोग करेगा। उसके पिछले जीवन को देखते हुए इसे एक बहुत बड़ी उपलब्धि माना जायगा। इन निर्णयों से रोगी की आन्तरिक शक्ति का तो पता चलता ही है, साथ ही यह भी प्रमाणित होता है, और सामाजिक कार्यकर्ता नित्य इसका अनुभव भी करते रहते हैं कि परेशानियों में पड़े हुए व्यक्तियों को जब अपनी भावनाओं को खुल कर अभिव्यक्त करने तथा सामाजिक सेवा से सम्बन्धित सोद्देश्य सहायता का उपयोग करने की सुविधा मिलती है तो वे अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में नये और भिन्न ढंग से सोचने और उसीके अनुसार कार्य करने लगते हैं। उक्त कार्यकर्त्री भी जानती थी कि रोगी की इस प्रकार सहायता करने के लिए कि जिससे वह अपनी वर्तमान स्थिति का सामना करता रहे और अपने भविष्य के सम्बन्ध में आवश्यक योजनाएँ बना सके, यह जरूरी है कि वह रोगी से नियमित समय पर मिलना-जुलना जारी रखे। सप्ताह में एक बार रोगी से सम्पर्क स्थापित करने से रोगी को यह अनुभव करने का अवसर मिलता रहेगा कि कार्यकर्त्री सचमुच उसमें दिलचस्पी रखती है और रोगी को उसके पूर्ववर्ती जीवन की अवशिष्ट आवेगात्मक प्रवृत्तियों को संयमित करने में मदद दे सकती है।

कर्मचारियों के दल की अगली बैठक में कार्यकर्त्री ने रोगी के "सफेद होते जाने" के अनवरत भय, जीवोति-परीक्षा के प्रति उसकी प्रतिक्रिया, अपने स्वास्थ्य के प्रति अपनी जिम्मेदारी से कतराने की उसकी प्रवृत्ति और उसकी निराशापूर्ण उदासी के बारे में वक्तव्य दिया। यह निश्चय किया गया कि मनश्चिकित्सक रोगी से मिलकर उसकी भावात्मक स्थिति तथा उसके मनश्चिकित्सकीय उपचार के सम्बन्ध में विचार और निर्णय करे। बाद में मनश्चिकित्सक ने रोगी से मिलकर उसकी मानसिक स्थिति के सम्बन्ध में पता लगाया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यद्यपि रोगी कुछ अवसादग्रस्त, अपरिपक्व, मानसिक स्थिति वाला और अपने उत्तरदायित्व के निर्वाह के सम्बन्ध में दुविधाग्रस्त है, फिर भी उसे मानसिक रोगी नहीं माना जा सकता, अतः उसे मनिश्चकित्सा की आवश्यकता नहीं है। उसकी चिन्ताएँ मुख्यतः अपने शारीरिक स्वास्थ्य तथा अपनी वर्तमान परिस्थिति से सम्बन्धित समस्याओं, आर्थिक आवश्यकता, पारिवारिक सम्बन्ध, भविष्य की योजनाओं

आदि पर आधारित हैं। अन्त में यह तय हुआ कि रोगी के चिकित्सीय उपचार के साथ-साथ सामाजिक कार्यकर्ता भी उसकी सहायता का कार्य जारी रखें।

इसके कुछ दिनों बाद उक्त रोगी के रोग का निदान हो गया और यह पता चला कि उसे ग्रैव लसीका-ग्रन्थि-सम्बन्धी चर्म-गिल्टी-रोग तथा पीयूष-ग्रन्थि-गुल्म रोग हो गये हैं। उसके चमड़े के छाले घातक नहीं हैं और उसके रोग के फलानुमान की सफलता के लिए उद्योग जारी है। प्रायोगिक उपचार, जिसमें कॉर्टीजोन का इस्तेमाल भी सम्मिलित है, प्रारम्भ कर दिया गया है। रोगी की दशा में नाटकीय ढंग से सुधार हुआ है और निश्चय किया गया है कि उसे अभी वही दवा दी जाती रहेगी।

बीमारी में सुधार के कारण रोगी दुविधा की स्थिति में पड़ गया। अस्पताल में रुके रहने का निश्चय करने के कुछ दिन बाद ही, स्वास्थ्य में सुधार की गति देखकर, वह फिर अस्पताल छोड़ कर जाने की बात सोचने लगा। यद्यपि डाक्टरों ने उसके सम्बन्ध में यह संस्तुति की थी कि उसका अस्पताल में रह कर कुछ दिन और चिकित्सा कराना जरूरी है, पर वह यह सोचता था कि जब उसमें इतना सुधार हो गया है तो उसका अस्पताल में पड़ा रहना अनैतिक है, और उसे तुरन्त कोई नौकरी कर लेनी चाहिए। उसका कहना था कि नौकरी करने से वह अपने परिवारवालों की भी कुछ सहायता कर सकेगा तथा उधार लाये गये सामानों का मूल्य भी चुका सकेगा। यह जानने के लिए कि रोगी फिर अस्पताल से जाने के लिए उतावला क्यों हो गया है तथा इस बात में उसकी सहायता करने के लिए कि वह अस्पताल में रह कर चिकित्सा-सम्बन्धी आदेशों के अनुसार कार्य करता रहे, कार्यकर्त्री ने रोगी से बातें की। पर रोगी ने अपने निर्णयों के जो कारण बताये, कार्यकर्त्री ने जानबूझ कर उन पर आपत्ति नहीं की या उनका खण्डन नहीं किया, क्योंकि वह जानती थी कि कभी-कभी मुँह से कही गयी बातें भीतर की उन भावनाओं को छिपाने का आवरण मात्र होती हैं, जिनको अभिव्यक्त करके उनकी गम्भीरता का सामना करने का साहस व्यक्ति में नहीं होता है। पर सामाजिक कार्यकर्ता का रोगी के साथ जो रागात्मक और सहज स्वीकार्य सम्बन्ध होता है, उसके कारण जब रोगी को धीरे-धीरे उन अन्तर्हित भयावह भावनाओं का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है तो कभी-कभी वह उनका आसानी से सामना करता और उनके कारण उत्पन्न स्थिति के कष्ट को सहन करता है।

कार्यकर्त्री ने उससे फिर पूछा कि उसके ऊपर किन लोगों की आर्थिक सहायता की जिम्मेदारी है। बातचीत करने पर पहले कार्यकर्त्री को और बाद में स्वयं रोगी को यह स्पष्ट हो गया कि किसी भी सम्बन्धी की आर्थिक सहायता करना उसके लिए इतना आवश्यक नहीं था कि उसके बिना काम ही नहीं चल सकता। इसके बाद आन्तरिक भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए जैसे उसका मन स्वतंत्र हो गया। उसे यह भय

था कि उसके स्वास्थ्य में जो सुधार हुआ है शायद वह स्थायी नहीं है, इसी कारण उसकी चिन्ताएँ बहुत बढ़ गयी थीं। फलतः वह अपने उत्तरदायित्व से भागने को तैयार हो गया था। साथ ही उसे यह भी भय था कि डाक्टर उसे किसी भी समय अस्पताल से रिहा कर सकता है। यह आश्चर्य की बात थी कि उसे ऐसा भ्रम हो गया था, क्योंकि डाक्टर ने इसकी उल्टी ही संस्तुति की थी। अतः कार्यकर्त्री ने इस मामले में भी रोगी की भावनाओं के मूल तक पहुँचने की कोशिश की। जब उसने रोगी को याद दिलाया कि डाक्टर ने तो यह राय दी है कि वह अस्पताल में रुककर दवा कराना जारी रखे तो इसके उत्तर में उसने कहा कि हो सकता है, अब बीमारी में सुधार देखकर डाक्टर उसे अस्पताल में अधिक रखना पसन्द न करे। इतनी बातचीत के बाद रोगी अब यह अनुभव करने लगा था कि वस्तुतः उसके मन में यह बात थी कि वह अस्पताल में रहे। उसकी आन्तरिक इच्छा अस्पताल छोड़कर जाने की नहीं थी। वह अपने स्वास्थ्य सुधार के लिए डाक्टर के प्रति ही नहीं, सामाजिक कार्यकर्त्री के प्रति भी कृतज्ञता का अनुभव कर रहा था, क्योंकि उसके अनुसार एक ने उसका चिकित्सीय उपचार करके और दूसरे ने उसके मामले में दिलचस्पी दिखा कर उसकी बहुत अधिक सहायता की थी। उसने अस्पताल से रिहा किये जाने की जो आशंका व्यक्त की थी, उसके मूल में यह तथ्य निहित था कि वह चाहता था कि उसकी आवश्यकताओं को देखते हुए चिकित्सा-अधिकारी स्पष्ट शब्दों में उसे विश्वास दिलायें कि उसे अभी अस्पताल से रिहा नहीं किया जायेगा। जब कार्यकर्त्री ने उसे विश्वास दिलाया कि अभी उसका अस्पताल में रहना जरूरी है तो इसके लिए भी उसने अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।

एक अर्थ में हम सब लोगों को किसी-न-किसी मात्रा में इसकी आवश्यकता, दूसरों पर निर्भर रहने की आवश्यकता, होती है और उसकी पूर्ति के लिए हम सभी अपने-अपने ढंग से प्रयत्न करते हैं। कुछ तो इस आवश्यकता के अस्तित्व को ही अस्वीकार कर देते हैं और परिणामस्वरूप जरूरत से अधिक स्वतंत्र ढंग से काम करते हैं। इस प्रकार के कुछ व्यक्ति प्रायः अकेले-अकेले रहते और अन्य लोगों के साथ निकटता का सम्बन्ध नहीं स्थापित करते हैं। यह रोगी भी ऐसा ही था, जो किशोरावस्था से ही अनिवार्यतः अकेले और स्वतंत्र रहने का आदी था। अपना रास्ता बनाने और अपने को व्यवस्थित करने में उसे काफी संघर्ष भी करना पड़ा था। उसके रोजगार-धन्धों से सम्बन्धित जीवन-वृत्त से पता चलता था कि उसे कई तरह के कार्य करने पड़े थे और उसके मित्र बहुत कम थे। इस तरह दूसरों पर निर्भर रहने की आधारभूत आवश्यकता को वह प्रारम्भ से ही अस्वीकार करता आया है।

अस्पताल में आकर सामाजिक कार्यकर्त्री और डाक्टर की सहायता के फलस्वरूप इस बार उसे उन पर निर्भर होना आवश्यक हो गया और इसीलिए पर-निर्भरता के सम्बन्ध

में उसके मन में घोर द्वन्द्व भी हुआ था, जिसका कष्ट उसे झेलना पड़ा। यही नहीं, अन्त में उसे अपना गर्व छोड़ कर अपने मुँह से कहना पड़ा कि वह अस्पताल में रहना चाहता है और उसे सामाजिक कार्यकर्त्री तथा चिकित्सक की सेवाओं की आवश्यकता है। इस तरह चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्त्री ने रोगी की उन भावात्मक और शारीरिक समस्याओं को पहचाना, जो उसकी बीमारी और अस्पताली चिकित्सा के कारण उत्पन्न हुई थीं। साथ ही उसने इस बात में भी रोगी की सहायता की कि वह चिकित्सक के आदेशों का पालन उचित ढंग से करे। इसी तरह सामाजिक कार्यकर्त्री ने उसकी आर्थिक सहायता की जो व्यवस्था की, उसके कारण न केवल उसकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हुई, बल्कि उसके मन पर भी यह प्रभाव पड़ा कि वह पर-निर्भरता की स्थिति में उत्पन्न अपने आन्तरिक संघर्ष से सम्बन्धित दुःख को सहन कर सकता है। अतः इस बार अस्पताल में उसकी चिकित्सा का एक अच्छा परिणाम तो यही हुआ कि वह दूसरों की सहायता स्वीकार करने लगा, जैसा इसके पहले उसने अपने जीवन में कभी नहीं किया था।

चूंकि चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का सम्बन्ध मुख्यतः रोगी की बीमारी के सामाजिक पहलू से ही होता है, अतः इस मामले में भी सामाजिक कार्यकर्त्री यह आशा करती थी कि इस साक्षात्कार के बाद वह चिकित्सक के आदेशों का पालन करने में ही रोगी की सहायता नहीं करेगी, बल्कि उसे चिकित्सा-काल की परिस्थिति में अधिक-से-अधिक आराम से जीवन बिताने के उपाय भी बतायेगी।

उसी साक्षात्कार में रोगी ने अपनी नौकरी से सम्बन्धित जीवन-वृत्त के बारे में भी बातें की। उसके अनुसार उसकी नौकरी-सम्बन्धी अव्यवस्था का कारण उसकी बीमारी नहीं थी, बल्कि यह था कि वह अपने को दूसरों से बड़ा मानता था तथा दूसरे उसके बारे में यह शिकायत करते थे कि वह काम में सुस्त था। उसने स्वयं स्वीकार किया कि उसका मन दिवास्वप्नों में अधिक रमता था तथा वह काम में भी अधिक दिलचस्पी नहीं लेता था। पर उसने आशा व्यक्त की कि इस बार जब वह अस्पताल से वापस जायेगा तो ऐसा नहीं करेगा, अब वह एक बदला हुआ व्यक्ति होगा। उसके मामले से सम्बन्धित अभिलेख का एक अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

"मैंने उससे पूछा कि किस अर्थ में अब वह एक बदला हुआ व्यक्ति होगा ? इसके उतर में उसने बताया कि अब वह कोई ऐसा नियमित ढंग का काम करना चाहता है, जिसमें वह स्थायी रूप से टिका रह सके, साथ ही वह ऐसी जगह रहना चाहता है, जिसे वह अपना घर कह सके। अब वह इस बात से ऊब और थक गया था कि उसका कोई परिवार नहीं था जिसके बीच वह निकटता का अनुभव करता हुआ जीवन बिता सके। मैंने स्वीकार किया कि सचमुच उसकी ये समस्याएँ वास्तविकता पर आधारित हैं, पर साथ ही मैंने कुछ शंका

व्यक्त करते हुए उससे पूछा कि इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए वह क्या करेगा? उसने उत्तर दिया कि वर्षों बाद पहली बार उसके स्वास्थ्य में इतना सुधार हुआ था और उसमें फिर शक्ति आ रही थी। इसके अतिरिक्त अब वह न जाने क्यों पहले से अधिक सन्तोष का अनुभव करता था और उसे अपने को भुला कर दिवा स्वप्नों में भटकने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। पिछले कुछ हफ्तों में उसने अपने बारेमें बहुत अधिक सोचा था और यह अनुभव किया था कि उसका जीवन एक ऐसी तैरती नौका के समान रहा है,जो लंगर-विहीन थी। पर उसके बाद फिर उसकी वही पुरानी भावना वापस आ गयी, मानो उसे लगा हो कि वह अपने अतीत को भुला कर बहुत आगे बढ़ता जा रहा है। यह बात उसकी उस आन्तरिक कामना की अभिव्यक्ति थी कि कोई दूसरा व्यक्ति उसे बच्चे की तरह दुलार-फटकार कर अपने वश में करे। उसने कहा कि उसके लिए सबसे अच्छा यह होगा कि वह ट्रक में दूध की बाल्टी लादने की नौकरी के लिए आवेदन पत्र दे दे, यद्यपि यह बात डाक्टर की संस्तुति के विपरीत होगी। पर ऐसा करके वह अपनी आय बढ़ा सकेगा। मैंने जब पूछा कि इसका परिणाम क्या होगा तो उसने कहा कि इससे उसे अस्पताल से जल्दी ही छुट्टी मिल जायगी। मैंने अपना सन्देह व्यक्त किया कि अस्पताल से बाहर जा कर जीवन बिताना अभी उसके लिए आसान नहीं होगा और वस्तुतः उसके लिए अभी अस्पताल छोड़ने की बात सोचना भी उचित नहीं है।

उसकी आँखों में आँसू आ गये, जब उसने कहा कि यह बात सच है। उसने बताया कि जबसे वह अपना पहला कई कमरों वाला मकान छोड़ कर अपने वर्तमान मकान में आया था, तभी से उसकी स्थिति में गड़बड़ी शुरू हो गयी थी। उसके पहले मकान की मालकिन उसके लिए माँ की तरह थी और उसे पुत्र की तरह मानती थी। वहाँ उसे ऐसा लगने लगा था कि वह अपने ही परिवार में है। तभी उसने वह मकान छोड़ कर दूसरा मकान किराये पर ले लिया। वह यह नहीं पसन्द करता था कि उसकी मकान-मालकिन उसके अतिरिक्त अन्य किसी की ओर ध्यान दे। मैंने उससे पूछा कि इससे उसके मन पर क्या प्रतिक्रिया होती थी तो उसने बताया कि उसे यह देखकर क्रोध होता था। उसने स्वीकार किया कि इसी कारण उसने उसका मकान छोड़ दिया था। मैंने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि परिवार का सदस्य होने पर कई कठिनाइयाँ भी सामने आती हैं, विशेष कर तब जब कि एक माँ के कई बच्चे हों क्योंकि माँ के 'मातृत्व' में सबका हिस्सा होता है। उसने आगे बताया कि वह मकान छोड़ कर चले आने के बाद उसे अपने क्रोध की बात सोच कर लज्जा मालूम होती थी, इसीलिए वह वहाँ फिर कभी नहीं गया, यद्यपि वह अब तक जितने मकानों में रह चुका था, उनमें से उस मकान-मालकिन के कारण वही सब से अच्छा मकान था। वह भी वस्तुतः यह नहीं चाहती थी कि वह उसका मकान

छोड़ू। मैंने उससे पूछा कि जब बहुत दिनों तक उस मकान-मालकिन को उसका कुछ समाचार नहीं मिला होगा तो उसने अपने मन में क्या सोचा होगा? उसने कहा कि सम्भव है, उसे इस बात से दुख हुआ हो, क्योंकि वस्तुतः उन दोनों के बीच एक आन्तरिक स्नेह-सम्बन्ध था। मैंने कहा कि इस प्रकार का रागात्मक सम्बन्ध तो स्वाभाविक है, पर इसके होते हुए भी वे दोनों अलग क्यों हो गये, यह बात समझ में नहीं आती। मैंने इस सम्बन्ध में अपना यह मत व्यक्त किया कि यदि वह सचमुच वहाँ जाने की इच्छा रखता है तो वहाँ वापस जाकर रहने के बारे में न सोचना तथा उसके लिए प्रयत्न न करना मूर्खता ही होगी। इस पर उसने कहा कि सम्भवतः वह बहुत अधिक आवेगशील व्यक्ति रहा है, इसीलिए उसने ऐसा किया था। उसने कहा कि वह सोचता है कि कभी उस मकान-मालकिन के घर जाकर उससे मुलाकात करे।"

जिस बात को हम सबसे अधिक पसन्द करते हैं या चाहते हैं, कभी-कभी उसी का विरोध करना सबसे अधिक आसान होता है, यद्यपि उसका परिणाम उतना अच्छा नहीं होता। हर व्यक्ति चाहता है कि कोई उसकी देख-भाल या चिन्ता करे, पर यह रोगी इस विचार का ही विरोधी है। यद्यपि उसे इस प्रकार की देख-भाल की आवश्यकता कई बार पड़ चुकी है और दूसरे उसकी देख-भाल या सहायता कर चुके हैं, जैसा उसके कई बार अस्पताल में आने की बात से ही स्पष्ट है, पर फिर भी वह हमेशा इस सामान्य आवश्यकता को अस्वीकार करता रहा, और उसकी इसी भावना की अभिव्यक्ति उसके बार-बार अस्पताल छोड़कर भागने की घटना के रूप में होती रही है। उसी तरह जब उसे एक माँ और एक स्थानापन्न परिवार मिलने ही वाले थे कि वह उस घर को ही छोड़ कर भाग निकला था। किन्तु चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्त्री की सहायता के फलस्वरूप उसकी 'पलायन की प्रवृत्ति' उत्तरोत्तर कम होती गयी और उसकी जगह उसने भीतर ही भीतर अपनी आवश्यकताओं के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया। इस स्वीकृति के कारण उसे अधिक आराम और मानसिक सुख मिलने लगा।

अब यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि रोगी के पहले के आवेगात्मक और अस्वीकृति-प्रधान मानसिक संघटन में, जिसके कारण उसके स्वास्थ्य-सुधार में अत्यधिक बाधा पड़ रही थी, किस तरह परिवर्तन प्रारम्भ हो गया था। सामाजिक कार्यकर्त्री के विचार से रोगी के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से यह बहुत आवश्यक था कि वह अपना अधिक-से-अधिक उत्तरदायित्व स्वयं ग्रहण करे, ताकि उसके स्वास्थ्य में यथोचित और अपेक्षित सुधार हो सके। अपने वैयक्तिक और सामाजिक सम्बन्धों के सुधार में वह जितना ही अधिक सक्रिय सहयोग करेगा, उसके स्वास्थ्य की रक्षा और समाज के साथ उसके पूर्ण सामंजस्य की भी उतनी ही अधिक सम्भावना होगी।

बाद में डाक्टर के साथ परामर्श करते समय सामाजिक कार्यकर्त्री को मालूम हुआ कि रोगी को अभी और कई सप्ताह तक अस्पताल में रह कर चिकित्सा करानी होगी और कार्टीज़ोन का इस्तेमाल तो उसे अनिश्चित काल तक करना होगा। डाक्टर ने कहा कि वह रोगी को इस बात की सूचना दे देगा और इस अवधि में रोगी को भी कार्यकर्त्री के साथ मिलकर अपने भविष्य की योजनाएँ बनाने के लिए पर्याप्त अवसर मिल जायगा। उन दोनों की यह राय थी कि यदि रोगी की दशा में इसी तरह सुधार होता रहा तो उसके नौकरी कर लेने से कोई हानि नहीं होगी, बशर्ते कि नौकरी ऐसी हो, जिसमें अधिक श्रम न पड़े। डाक्टर की यह भी राय थी कि यदि उसे अस्पताल के आसपास ही कहीं नौकरी मिले तो बहुत अच्छा होगा, क्योंकि इससे रोगी को निकट से देखते रहने में सुविधा होगी और जब आवश्यकता समझी जायगी, उचित दवा द्वारा उसके रोग को नियंत्रित और स्वास्थ्य को संरक्षित किया जा सकेगा।

सामाजिक कार्यकर्त्री के साथ साक्षात्कार की अगली तिथि तक प्रतीक्षा करने का धैर्य न रख कर रोगी ने उसके पहले ही कार्यकर्त्री से बड़े उत्साह के साथ बताया कि वह अपनी पहली मकान-मालकिन से मिलने गया था और उसके साथ यह तै कर आया था कि अस्पताल से लौट कर वह उसी के घर में जाकर रहेगा। उसने यह भी बताया कि अब उसने ट्रक में दूध की बाल्टियाँ लादने का काम करने का इरादा छोड़ दिया है। उसने आज पहली बार बताया कि वह एक बार अस्पताल में रसोईघर के सहायक के रूप में काम कर चुका है, और वह यह काम फिर कर सकता है। उसने कहा कि अस्पताल में और भी कई ऐसे काम हैं, जो उसे पसन्द हैं। जब कार्यकर्त्री ने यह सुझाव दिया कि वह इस सम्बन्ध में अस्पताल के कार्मिक अधिकारी से बातें करे तो पहले तो उसको हिचकिचाहट हुई, पर बाद में इसके लिए राज़ी हो गया।

अगले साक्षात्कार में रोगी ने कार्यकर्त्री से कुछ दुबिधापूर्ण ढंग से रुक-रुक कर बोलते हुए बताया कि वह कार्मिक अधिकारी से मिला था। जब कार्यकर्त्री ने उसकी हिचकिचाहट देखकर स्वयं बातें शुरू की और कहा कि लगता है, कहीं कुछ गड़बड़ी हो गयी है, तो उसके मन का बोझ कुछ हलका हुआ और उसने मुक्त भाव से बोलना प्रारम्भ किया। उसने बताया कि अवकाश-प्राप्त सैनिक-प्रशासन के अन्तर्गत कोई काम मिलने में उसे पूरा सन्देह है क्योंकि इसके पहले जब वह यहाँ काम करता था तो असन्तोषजनक कार्य के लिए नौकरी से निकाल दिया गया था। सुस्ती का आरोप लगाये जाने की बात से उसे बहुत आघात पहुँचा था। उसने बताया कि यद्यपि उस समय उसे अपनी बीमारी का ज्ञान नहीं था, फिर उस अज्ञात बीमारी के कारण ही वह काम में ढिलाई करता था। डाक्टर ने भी कार्यकर्त्री से कहा था कि चूँकि रोगी की बीमारी बहुत दिनों से है, अतः काम में उसकी

अक्षमता उसकी बीमारी के कारण ही रही होगी। कार्यकर्त्री ने देखा कि रोगी अपने को इस बात के लिए अपराधी मानकर आत्मरक्षात्मक तर्क दे रहा है। अतः उसने डाक्टर के मत का हवाला देते हुए उसे विश्वास दिलाया कि चिकित्सीय दृष्टि से काम में उसकी उस समय की सुस्ती का कारण उसकी बीमारी ही मानी जायगी।

रोगी को बहुत दिनों की प्रतीक्षा के बाद यह निश्चित सूचना मिली कि नौकरी के लिए उसका आवेदन-पत्र अस्वीकृत कर दिया गया है, पर वह इस निर्णय के विरुद्ध अपील कर सकता है। इस अवधि में सामाजिक कार्यकर्त्री उससे नियमित रूप से मिलती रही जिससे वह किसी तरह इस मानसिक व्यथा को सह सका। इस बीच कार्यकर्त्री से अपनी मुलाकातों में उसने अपने पिछले जीवन की कठिनाइयों का भी वर्णन किया कि कैसे उसे जाति-भेद (रंग-भेद) का शिकार होना पड़ा, गरीबी के बीच पलना पड़ा और बचपन में माँ-बाप की मृत्यु के कारण कठिन दुःख सहना पड़ा था।

जब उसने अपना आवेदन-पत्र अस्वीकृत किये जाने की बात सुनी तो उसने कार्यकर्त्री से शीघ्र साक्षात्कार करने की प्रार्थना की जो स्वीकार कर ली गयी। इस साक्षात्कार की बातों का सारांश निम्नलिखित अभिलेख में दिया गया है—

"जब उसने बताया कि कार्मिक अधिकारी की दृष्टि में वह 'बेकाम का आदमी' था, तो उसकी आँखों में आँसू आ गये थे, पर वह इस व्यक्ति को दिखा देना चाहता था कि वह बहुत अच्छा काम कर सकता है। जब मैंने उससे पूछा कि वह किसको ऐसा करके दिखायेगा तो उसने कहा कि वस्तुतः वह अपनी ही दृष्टि में अपने को एक अच्छा कार्मिक प्रमाणित करना चाहता है। वस्तुतः वह स्वयं इस बारे में विश्वस्त नहीं था कि उसके पिछले जीवन की कार्य-सम्बन्धी अक्षमता का कारण उसकी बीमारी थी, अतः अब भी जब कि वह बिलकुल अच्छा हो गया था, उसके मन में इस सम्बन्ध में अनिश्चितता और भय की भावना थी कि वह लगातार एक समान श्रम करते हुए कोई कार्य कर सकने में समर्थ हो सकेगा। मैंने उसे विश्वास दिलाया कि भविष्य में नये ढंग से काम करने का निश्चय करते समय मन में इस तरह के भय या आशंका का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। उसने आगे बताया कि उसी कारण उसे अब अस्पताल छोड़ने में भी भय मालूम पड़ता था। मैंने इस भावना को भी स्वाभाविक बताया और इस बात के लिए उसकी प्रशंसा की कि उसने अपनी भावना को बिना छिपाये खुल कर अभिव्यक्त कर दिया है। कोई नया काम प्रारम्भ करने पर शुरू में कुछ कठिनाई का अनुभव हो सकता है। उसने यह आशंका व्यक्त की कि यदि कहीं वह फिर बीमार हो गया तो क्या होगा? मैंने हँसते हुए उससे पूछा कि वह अस्पताल में बीमारी का बहाना करके क्यों पड़े रहना और कोई-न-कोई समस्या खड़ी करके दूसरों को परेशान करना चाहता है? उसने बताया कि अस्पताल में फिर लौटने

के विचार से ही उसे घृणा हो गयी है। इसके बदले वह अस्पताल से बाहर रह कर सभी प्रकार के कष्ट भोगने को तैयार है, भले ही उसकी नौकरी छूट जाय और कार्य-सम्बन्धी अनिश्चितता बनी रहे। उसने यह भी कहा कि जब मैं और डाक्टर अस्पताल छोड़ कर चले जायँगे तो उसके लिए यहाँ की सभी बातें बदल जायँगी, फिर यहाँ क्या रखा रहेगा। मैंने कहा कि ऐसा हो सकता है, पर इससे वह अस्पताल में आना क्यों बन्द करेगा, पहले तो उसमें इतना साहस था कि अस्पताल में बार-बार भर्ती होता था यद्यपि उस समय चिकित्सक को या मुझको वह जानता भी नहीं था। उसने कहा कि पता नहीं, लोग उसे सचमुच पसन्द करते हैं या ऊपर उससे दिखावा भर करते हैं, जैसे कि डाक्टर ही, पता नहीं, सचमुच उसमें दिलचस्पी रखता है अथवा अपने काम का एक अंग समझ कर कर्तव्य-निर्वाह के रूप में वह उसके मामले में रुचि लेता था। मैंने उसे बताया कि उसमें ऐसे गुण हैं कि लोग उसे पसन्द कर सकते हैं। फिर मैंने उससे पूछा कि वह डाक्टर के आदेशों का पालन क्यों करता था? उसने उत्तर दिया, "आप को मालूम है कि मैं डाक्टर को सचमुच कितना प्यार करता हूँ, पर स प्यार का शायद असली कारण यह है कि मैं डाक्टर की चिकित्सा से रोग-मुक्त होना चाहता हूँ।" मैंने उसे समझाया कि यद्यपि उसके (रोगी के) लिए अस्पताल के कर्मचारियों के उसके प्रति दृष्टिकोण का भी महत्त्व नहीं है, पर सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अपने सम्बन्ध में उसका अपना दृष्टिकोण क्या है और नीरोग होने की उसके मन में कितनी बलवती इच्छा है। इसके बाद उसने बताया कि वार्ड के अन्य मरीजों और कर्मचारियों के साथ उसके सम्बन्ध कितने अच्छे हो गये हैं। यह बता कर एक तरह से उसने अपने प्रश्न का स्वयं ही उत्तर दे दिया।

इसके बाद रोगी ने नौकरी के लिए अपने आवेदन-पत्र के अस्वीकृत किये जाने की फिर चर्चा की। मैंने कहा कि चूंकि इस सम्बन्ध में उसकी चिन्ता बनी हुई है, अतः यदि वह चाहे और यदि यह समझता हो कि अब उसमें नौकरी के लिए अपेक्षित गुण आ गये हैं, तो अपने आवेदन-पत्र की अस्वीकृति के सम्बन्ध में वह अपील कर सकता है। मेरी तरह उसे भी यह निश्चित रूप से मालूम था कि डाक्टर का यह साधार विश्वास था कि उसकी (रोगी की) पूर्ववर्ती सुस्ती या अक्षमता का कारण उसकी बीमारी थी। हम लोगों ने अपील के सम्बन्ध में कुछ और विचार किया। मैंने उसे बताया कि यदि वह अपील करता है तो उसमें एक खतरा यह भी था कि उसका आवेदन-पत्र फिर अस्वीकृत हो सकता है। इसके बाद उसने बताया कि वह हमेशा अपने उत्तरदायित्व से कतराने का आदी ज्ञात हो रहा है। मुझसे बातें करने के बाद उसे यह बात और भी अधिक स्पष्ट रूप से ज्ञात हो गयी है, पर अब वह अपने उत्तरदायित्व से पीछे नहीं हटना चाहता और अपना यह कर्तव्य समझता है कि आवेदन-पत्र के मामले में अपील करे, क्योंकि इससे उसे

इस बात का सन्तोष होगा कि इस बारे में उससे जितना हो सकता था, उसने सब कुछ किया।

इसके बाद रोगी ने अपनी उन जिम्मेदारियों की चर्चा की, जो अपने सम्बन्धियों के प्रति उसने वर्षों से ले रखी थीं। उसने स्वयं इस बात के औचित्य में शंका प्रकट की कि आखिर उनकी जिम्मेदारी उसने अपने ऊपर क्यों ओढ़ रखी थी! ऐसा प्रतीत होता था कि वह उनकी कृतज्ञता और चिन्ता के भार से इतना दबा हुआ था कि उसे अपने भविष्य के बारे में सोचने का अवकाश ही नहीं मिलता था। उसने बताया कि वह एक निरुपाय परिवार का एक मात्र जिम्मेदार सदस्य था और अपनी मेहनत की सारी कमाई अपने परिवार के सदस्यों पर ही खर्च कर देता था तथा स्वयं उस कमाई का कुछ भी आनन्द नहीं उठा पाता था, पर अब समय आ गया था कि वह अपनी चिन्ता भी करे और वह ऐसा ही करेगा। उसने आशा व्यक्त की कि इससे कोई उलझन नहीं पैदा होगी, क्योंकि उसके परिवार में उसका एक भाई था, जो एक अन्य अस्पताल में चिकित्सा करा रहा था और एक बहन थी जो शीघ्र ही विवाह करने वाली थी, पर वह तो उसकी सहायता के बिना ही अपना काम चलाती रही है। मैंने उससे कहा कि उसने जो कुछ कहा है, सब ठीक है, फिर भी अपने परिवार से सम्बन्ध बनाये रखना प्रभाव की दृष्टि उसके लिए बड़ा उपयोगी होगा। इस पर उसने बिना कुछ बोले ही सिर हिला दिया।"

सामाजिक कार्य का उद्देश्य साररूप में यही है कि परेशानी में पड़े लोगों की इस प्रकार सहायता की जाय कि वे अपनी भावनाओं और कार्यों के लिए अपने उत्तरदायित्व का अनुभव अधिकतम रूप में कर सकें। चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का भी यही लक्ष्य होता है, पर उसका कार्यक्षेत्र रोगियों की बीमारी तक ही सीमित रहता है, किन्तु कभी-कभी रोगी अपनी सामाजिक समस्याओं के कारण बाधाग्रस्त हो जाते हैं अथवा उनको ऐसी भावनाओं की अनुभूति होती है, जिनके कारण उनके नीरोग होने में अथवा सुधार की हालत में उनके स्वास्थ्य के संरक्षण में बाधा पड़ती है। इस मामले में भी चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्त्री ने, उस रोगी की बीमारी के सामाजिक कारणों से अवगत होने के कारण, उसके सुधरे हुए स्वास्थ्य के संरक्षण के कार्य में उसकी सहायता करने का प्रयत्न किया। उसने अधिक स्थायित्वपूर्ण सामाजिक जीवन बिताने के उद्देश्य से अपने लिए योजनाएँ बनाने में तथा अपने भीतर अधिक आत्म-विश्वास पैदा करने के कार्य में रोगी की सहायता की। यदि रोगी को अपनी सामाजिक और वैयक्तिक समस्याओं को सुलझाने में उपर्युक्त सहायता का अवलम्बन न प्राप्त होता तो इस बात की पूरी आशंका थी कि वह फिर अपनी पुरानी आवेगात्मक मानसिक स्थिति में पहुँच जाता, उपचार-प्रक्रिया के बीच में ही अस्पताल छोड़ कर भाग जाता, उसकी काम-सम्बन्धी अक्षमता

पूर्ववत् बनी रहती, उसके मन में अपने को अपराधी समझने की कष्टदायक भावनाएँ उठती रहतीं और इन सब बातों का परिणाम यह होता कि शारीरिक और भावनात्मक, दोनों ही दृष्टियों से उसका स्वास्थ्य एकदम चौपट हो जाता।

इसलिए कार्यकर्त्री ने उसको इस बात के लिए उत्साहित किया कि वह दूसरों के सामने अपनी अक्षमता या अपूर्णता को सिद्ध या स्थापित करने का आवेशपूर्ण प्रयत्न करने की जगह समस्या को उसी जगह केन्द्रित करके देखे, जहाँ से वह उत्पन्न हुई थी अर्थात् अपने भीतर उसके कारणों को ढूँढ़े तथा अपनी अक्षमता का विश्लेषण करे। कार्यकर्त्री ने इस कार्य में उसकी पूरी सहायता की, जिससे वह अपने मन में छिपी दुविधाओं और चिन्ताओं को बाहर अभिव्यक्त कर सकने में सफल हुआ। इस प्रकार उसका मन मुक्त होकर सही ढंग से वास्तविकता के आधार पर विचार करने के योग्य हो गया और उसमें यह निर्णय करने की शक्ति आ गयी कि वह क्या करे क्या न करे, इसीलिए उसने अपने आवेदन-पत्र के सम्बन्ध में अपील करने का भी निर्णय किया। यदि उसकी विवेक-बुद्धि को जाग्रत न किया जाता तो यह भी सम्भावना थी कि वह धर्मपरायणता की भावना से प्रेरित होकर अपने को अपराधी सिद्ध करने का प्रयत्न करता, जिससे उसकी रचनात्मक शक्ति को आघात पहुँचता। क्या किया जाय और क्या न किया जाय, इस प्रश्न पर निर्णय करते समय व्यक्ति अपनी आन्तरिक भावनाओं से भी बहुत अधिक प्रभावित होता है और इस प्रभाव के स्वरूप के कारण उसके निर्णय में भी अन्तर आ सकता है। निर्णय का स्वरूप प्रायः इस बात पर निर्भर करता है कि कोई व्यक्ति अपने भविष्य के बारे में अपने मन के सन्देहों और अरक्षा की भावना के अस्तित्व को ही अस्वीकार करता है या उसे साहसपूर्ण ढंग से स्वीकार कर लेता है।

इसी पद्धति के अनुसार, उक्त सामाजिक कार्यकर्त्री ने, रोगी के यह पूछने पर कि पता नहीं लोग उसे पसन्द करते हैं या नहीं, इस प्रश्न का लम्बा उत्तर देने के चक्कर में न पड़ कर, दूसरा ही प्रसंग छेड़ दिया। उसने रोगी का ध्यान उसके रोग-मुक्त होने की समस्या की ओर आकृष्ट किया और इस बात में उसकी सहायता की कि वह अपनी इस समस्या को स्वयं समझ सके और अच्छा होने के लिए अपनी समस्त शक्ति और आन्तरिक प्रेरणा का उपयोग करने का उत्तरदायित्व वहन कर सके। जब रोगी ने नौकरी-सम्बन्धी अपना आवेदन-पत्र अस्वीकृत किये जाने के सम्बन्ध में अपनी चिन्ता दुबारा व्यक्त की तो कार्यकर्त्री ने उसे इस बात के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जिससे वह अपने को अपराधी समझ कर पश्चात्ताप के दलदल में फँस जाय, बल्कि उसको इस बात के लिए प्रेरणा दी कि वह इस बारे में ठोस कार्य करने की अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह करे। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्त में रोगी ने अपनी पर्याप्तता को दूसरों के सामने सिद्ध करना

आवश्यक न समझ कर, उसकी जगह इस बात को आवश्यक समझा कि वह अपनी पूरी जिम्मेदारी स्वयं ग्रहण करेगा, चाहे उसका जो भी परिणाम हो। अतः इससे यह आशा उत्पन्न हुई कि उसकी मानसिक स्थिति में जो नया परिवर्तन हुआ था, उसके कारण वह अपने वैयक्तिक, सामाजिक और रोजगार-सम्बन्धी मामलों में अधिक औचित्यपूर्ण सामंजस्य स्थापित करने में सफल हो सकेगा।

साक्षात्कार के बाद रोगी ने अपनी नौकरी-सम्बन्धी अपील दाखिल की, जो स्वीकृत हो गयी अर्थात् उसका आवेदन-पत्र स्वीकृत कर लिया गया। वह पहले से बहुत अधिक सक्रिय, स्फूर्तियुक्त हो गया। अस्पताल में तो उसकी नौकरी निश्चित ही हो गयी थी, पर अस्पताल से रिहा होने के बाद के लिए अस्पताल के पास ही एक उपाहार-गृह में रसोई घर के सहायक का काम करने की नौकरी भी उसने ठीक कर ली। इस नौकरी में अस्पताल की नौकरी से तनख्वाह अधिक थी। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तथा चिकित्सा की दृष्टि से भी यह बात उसके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि इससे उसे अस्पताल के निकट ही रहने का अवसर मिलेगा। उसने कार्यकर्त्री से बताया कि उसमें जो नया आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ है, उसका उसके स्वास्थ्य के लिए उतना ही महत्त्व है, जितना अस्पताल में उसकी ओषधि-चिकित्सा का। वह सप्ताहान्त में अपनी पुरानी मकान-मालकिन के घर भी गया था और वहाँ जाकर रहने की पहले वाली योजना पक्की कर आया था। उसे अस्पताल छोड़ने में कुछ हिचकिचाहट भी हो रही थी, क्योंकि यद्यपि उसे अस्पताल में थोड़े ही दिनों तक रहना पड़ा था, फिर भी एक प्रकार से यह वार्ड उसे अपना ही घर मालूम पड़ता था।

ज्यों-ज्यों रोगी की दशा सुधरती गयी, वह सहज रूप से अपने भाई और बहन के प्रति अपने सम्बन्ध के स्वरूप की सार्थकता तथा उनके साथ अपने उत्तरदायित्वपूर्ण पद के निर्वाह के बारे में अधिकाधिक विचार करने लगा। कार्यकर्त्री ने भाँप लिया कि यद्यपि रोगी अपने हित की बातों की अधिक जिम्मेदारी महसूस करता था, पर साथ ही यह भी अनुभव करता था कि कुछ ऐसी बातें थीं (ये बातें उन दोनों को ही अज्ञात थीं) जिनके कारण उसे अपने परिवार के साथ सम्पर्क बनाये रखना आवश्यक था।

अपने अस्पताल के जीवन के अन्तिम सप्ताह में उसने कार्यकर्त्री से अपनी यह इच्छा प्रकट की कि वह उससे अपने परिवार के बारे में कुछ और बातें करना चाहता था। उसने बताया कि वह यह सोचता रहा है कि आखिर उसके परिवार वाले इतने 'निरुपाय' क्यों है। उसका अनुमान था कि उनकी निरुपायता या लाचारी के कुछ कारण अवश्य होंगे, जैसे स्वयं उसके व्यवहारों के कुछ कारण होते हैं। इसके अतिरिक्त अब वे उतनी बुरी तरह जीवन नहीं बिता रहे थे। रोगी ने यह स्वीकार किया कि उसके सम्बन्धी

(भाई-बहन) भी, उसी की तरह कभी-कभी घर छोड़ कर भाग जाते या घर छोड़ने को तैयार हो जाते थे। अभी कुछ दिन पहले ही उन्होंने रोगी को घर पर मिलने के लिए बुलाया था और उसने जाने की योजना भी बना ली थी। उसने यह सोच कर जाना स्वीकार किया था कि अब वे उसे एक सुस्त व्यक्ति नहीं समझते हैं, क्योंकि अब वह अपनी बीमारी की बात पहले की तरह अस्वीकार नहीं करता, बल्कि उसे स्वीकार कर उसे दूर करने का प्रयत्न कर रहा है।

अपने परिवार वालों से मुलाकात करके लौटने के बाद रोगी ने कार्यकर्त्री से बड़े सन्तोष और उत्सुकता के साथ अपने अनुभवों का वर्णन किया। उसका कहना था कि इस मिलन से उसका अपने परिवार वालों से सम्बन्ध पहले से बहुत अच्छा हो गया है। जब उसने उन लोगों से अपनी बीमारी की बातें बतायीं तो उन्होंने उनको ध्यान से सुनकर समझने का प्रयत्न किया और उसके प्रति सहानुभूति भी दिखायी। उसने कहा कि उसका विचार है कि उसका उन लोगों के साथ कुछ सम्बन्ध बनाये रखना आवश्यक है, क्योंकि आखिर वे ही उसका "परिवार" हैं। उन लोगों ने एक मत से यह निश्चय किया था कि अपने पारिवारिक कब्रगाह को अन्यत्र हटाने के लिए वे सभी बराबर-बराबर खर्च दें।

वार्ड के कर्मचारी-दल की बैठक में नर्स और सहायक ने यह सूचना दी कि रोगी सामाजिक कार्यों तथा मनोरंजन के कार्यक्रमों में पहले से अधिक भाग लेता है, वह अन्य कई मरीजों के साथ कैण्टीन में जाता है और पहियादार कुर्सी में बैठकर चलने वाले एक मरीज की, जो बहुत उदासी और अकेलेपन का अनुभव करता था, सहायता करने में वह विशेष दिलचस्पी लेता रहा है।

जब यह निश्चित हो गया कि रोगी की दशा में जितना सुधार हो गया है, वह स्थायी है और उसे अस्पताल से रिहा किया जा सकता है, तो उसके बाद चिकित्सक ने बताया कि रोगी की बीमारी जड़ से कभी नहीं अच्छी होगी, वह दीर्घकालीन रोग है, अतः उसे अनिश्चित काल तक दवा का प्रयोग करना होगा। डाक्टर ने कहा कि वह रोगी को सूचित कर देगा कि या तो उसे समय-समय पर अस्पताल में आकर अपना रोग दिखाने के लिए रहना होगा या किसी निजी रूप से चिकित्सा करने वाले बाहरी चिकित्सक के यहाँ इस बात का प्रबन्ध कराना होगा कि वह उसके रोग की स्थिति पर ध्यान रखे और यह देखा करे कि दवा की उसके रोग पर क्या प्रतिक्रिया होती है और कब कौन दवा देना ठीक होगा। उसने यह भी राय दी कि रोगी को कठिन श्रम वाले कामों से बचना होगा और संयमित-जीवन का मार्ग अपनाना होगा।

अन्तिम साक्षात्कार के समय रोगी अस्पताल छोड़ने के लिए व्यग्र दिखाई पड़ता था। उसको देखने से साफ पता चलता था कि वर्षों बाद आज पहली बार वह पूर्ण प्रसन्न और

स्वस्थ था। रोगी और सामाजिक कार्यकर्त्री, दोनों ने मिलकर विचारपूर्वक इस बात के लिए एक निश्चित योजना बनायी कि रोगी अपनी सामाजिक सक्रियता को व्यापक और विस्तृत बनाने के उद्देश्य से किसी उपासना-संस्था का सदस्य बन जाय और चर्च के सामाजिक कार्यों में भाग लिया करे।

रोगी को अस्पताल से रिहा हुए एक वर्ष हो गया। इस बीच सामाजिक कार्यकर्त्री उस रेस्तराँ में, जहाँ वह जम कर कार्य कर रहा है, उससे कई बार मुलाकात कर चुकी है। वहाँ रोगी अपने काम से बहुत खुश था और यह भी साफ पता चलता था कि रेस्तराँ का मालिक उसका आदर करता है। समय-समय पर वह अस्पताल के डाक्टर से मिलकर थोड़े थोड़े दिनों के लिए अस्पताल में भर्ती हो कर चिकित्सा कराने की व्यवस्था भी कर लिया करता था। अस्पताल में रहते समय उसके सम्बन्ध में कोई ऐसी समस्या नहीं उत्पन्न होती थी कि सामाजिक कार्यकर्त्री की सेवाओं की आवश्यकता पड़े। उसने कार्य-कर्त्री को बताया है कि वह कई बार अपने परिवार वालों से मिल कर आनन्दपूर्ण समय बिता चुका है। लगातार दवा का प्रयोग करते रहने से उसके स्वास्थ्य की स्थिति अच्छी रहती है। उसने अपने ही धार्मिक विश्वास (सम्प्रदाय) के एक व्यक्ति से मित्रता कर ली है और दोनों एक ही मकान में रहते तथा चर्च के कार्यों में सक्रिय भाग लेते हैं। इसके अतिरिक्त उन दोनों ने मिलकर एक पुरानी गाड़ी खरीद ली और फुरसत के समय में प्राय: वे उस गाड़ी के पुर्जे ठीक-ठाक करने में लगे रहते हैं। उसने जीवन में पहली बार नृत्य करने का अभ्यास भी प्रारम्भ कर दिया है। वह एक उपासना-संस्था का भी सक्रिय सदस्य हो गया है।

अवकाश प्राप्त सैनिक-प्रशासन के द्वारा प्रकाशित एक विज्ञप्ति के अनुसार "किसी भी आधुनिक सुस्थित अस्पताल का लक्ष्य ऐसा कार्यक्रम चलाना है,जिससे उसमें रहने वाले रोगियों के रोगों को उपचार करके उनका स्वास्थ्य सुधारा जा सके, ऐसी व्यवस्था की जा सके कि उन्हें दुबारा वे रोग न होने पायें और शारीरिक, भावात्मक और सामाजिक दृष्टि से अनुकूलतम स्वास्थ्य की उपलब्धि और संरक्षण में उनकी सहायता की जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पहली आवश्यकता यह है कि अस्पताल के सभी चिकित्सा-वृत्तिक कर्मचारी रोगी को अपने निजी और विशेष परिवेश में कार्य करने वाला एक व्यक्ति मान कर उसे अच्छी तरह समझने का प्रयत्न करें।......"[१] चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता

१. एथेल कोहेन—"दि सोशल केस वर्कर्स रिस्पान्सिबिलिटीज इन मेडिकल रेजिडेंसी ट्रेनिंग प्रोग्राम"— वेटरन्स ऐडमिनिस्ट्रेशन टेक्निकल बुलेटिन टी० बी० १०—५०५—वाशिंगटन, डी० सी०, वेटरन्स ऐडमिनिस्ट्रेशन, नवम्बर, १९५०।

को मूलतः मानव की जीवन-प्रक्रिया का सम्यक् ज्ञान तो होना ही चाहिए, साथ ही चिकित्सीय समस्याओं और रोगी की वैयक्तिक तथा सामाजिक स्थिति के साथ उनके सम्बन्ध के बारे में भी पूरी और विस्तृत जानकारी भी होनी चाहिए। उसका मुख्य कार्य रोगी की बीमारी को उत्पन्न करने में सहायता पहुँचाने वाली अथवा चिकित्सा-सम्बन्धी सेवाओं के अधिकतम उपयोग में बाधा उपस्थित करने वाली उसकी वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करना है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि वह चिकित्सक के सहयोग से रोगी के साथ सोद्देश्य सम्बन्ध स्थापित करे और रोगी की सहायता के साथ ही आवश्यकता पड़ने पर उसके सम्बन्धियों तथा उसके जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाले अन्य व्यक्तियों की भी सहायता करे। कार्यकर्ता का एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह भी है कि वह रोगी के उपयोग के लिए उसकी परिस्थितियों के भीतर से ही उपयुक्त साधनों को संघटित करने का प्रयत्न करे।

वैयक्तिक सेवा-कार्य का जो उदाहरण यहाँ दिया गया है, उसमें हम देखते हैं कि रोगी और अस्पताल के कर्मचारियों के सामने सबसे पहली समस्या यही उपस्थित हुई कि रोगी के रोग का निश्चित निदान नहीं हो सका था और इसीलिए उसके उपचार का रूप भी नहीं निश्चित हो सका था। रोगी की चिकित्सा में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि वह अस्पताल में स्थिर होकर रहे और लगातार नियमित रूप से उपचार कराये। चूँकि उसकी वैयक्तिक समस्याएँ, जो उसकी बीमारी और मानसिक संघर्ष का प्रमुख कारण थीं, उसके उपचार-कार्य की प्रभावात्मकता में बाधा डाल रही थीं, अतः सामाजिक कार्यकर्त्री ने उन्हें सुलझाने का पूरा प्रयत्न किया। रोगी की आधारभूत आवश्यकताओं को अच्छी तरह समझ कर तथा अपने उत्तरदायित्व से भागने और आवश्यकताओं को अस्वीकृत करने की उसकी प्रवृत्ति का अध्ययन करके कार्यकर्त्री ने उसकी इस तरह सहायता की कि उसने अपनी बीमारी और अस्पताल में अपनी चिकित्सा से सम्बन्धित अपनी भावनाओं को दमित करने की जगह, उन्हें बात-चीत में अभिव्यक्त किया और पहिचाना। दूसरों की सहायता न लेने की उसकी प्रवृत्ति के कारण उसके मन में अपर्याप्तता और दुबिधा की जो भावनाएँ गहराई में घुसी बैठी थीं, बीमारी के कारण वे मन के ऊपरी तल पर आ गयी थीं। कार्यकर्त्री रोगी के साथ सम्पर्क स्थापित करके बराबर उसे सहारा देती रही, जिसका परिणाम यह हुआ कि रोगी अपने कार्यों तथा अपनी भावी योजनाओं के बारे में अपने उत्तरदायित्व को समझने लगा। फलतः उसने महसूस किया कि दूसरों की सहायता की आवश्यकता कितनी महत्त्वपूर्ण है और इस प्रकार की सहायता से उसने सन्तोषजनक लाभ भी उठाया। साथ ही इससे उसका आत्मविश्वास भी बहुत बढ़ गया।

उसके स्वास्थ्य में आकस्मिक रूप से सुधार होना शुरू हो जाने के बावजूद उसके मन में एक बार फिर नयी चिन्ताएँ और आशंकाएँ उत्पन्न हो गयीं, जिन्होंने उसके भीतर आत्म-संदेह के बीज बोना प्रारम्भ किया। उस समय कार्यकर्त्री ने फिर उसे सहारा दिया और दूसरों की सहायता की आवश्यकता के औचित्य को समझने में उसकी सहायता की। इसके अनुसार कार्य करने पर, उसे और भी लाभ हुआ और वह भविष्य के लिए अपनी सामाजिक योजनाओं के सम्बन्ध में वास्तविकता के आधार पर सोचने में समर्थ हो सका।

डाक्टर ने यह राय दी थी कि रोगी को कोई कठिन श्रम वाला काम नहीं करना चाहिए तथा नियमित रूप से और सावधानतापूर्वक दवा का प्रयोग करते रहना चाहिए। रोगी से इस संस्तुति का पालन कराने के लिए तथा उसके मनोकूल जीवन को टिकाऊ बनाने के लिए यह आवश्यक था कि उसका वैयक्तिक और सामाजिक जीवन सन्तोषपूर्ण बन जाय। अतः सामाजिक कार्यकर्त्री की सहायता से उसने यह अच्छी तरह समझ लिया कि चिकित्सीय देख-भाल-सम्बन्धी योजनाओं का विरोध करने या उनसे भागने की जगह उसे भविष्य के लिए चिकित्सा-सम्बन्धी व्यवस्था करने में प्रवृत्त होना चाहिए। इसके बाद उसने अपनी उस सामाजिक परिस्थिति को, जो पहले उसे असह्य प्रतीत होती थी, अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया। साथ ही अपने बढ़े हुए आत्म-विश्वास के कारण उसने नौकरी-सम्बन्धी अपने आवेदन-पत्र की अस्वीकृति के विरुद्ध अपील भी की, जिसका उद्देश्य नौकरी पाने से अधिक यह दिखाना था कि अब वह इस योग्य हो गया है कि स्वयं अपने उत्तरदायित्व का वहन कर सकता है।

अपनी कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान करके उसने न केवल अपने जीवन-निर्वाह की सन्तोषजनक व्यवस्था करने में सफलता प्राप्त की, बल्कि अपने परिवार के साथ नये सिरे से सम्बन्ध भी स्थापित किया। वर्षों तक अपने परिवार वालों से कटे रहने और उनके प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाये रहने के बाद अब उसने उन लोगों को नये प्रकाश में देखना प्रारम्भ किया। साथ ही अस्पताल में रहते समय और वहाँ से रिहा होने के बाद भी उसकी सामाजिक और मनोरंजन-सम्बन्धी सक्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। यद्यपि अस्पताल से रिहा होने के बाद भी चिकित्सा का सिलसिला लगा रहा जिसके कारण रोगी को संयमित जीवन के बन्धनों में रहना पड़ता था, पर उन बन्धनों के भीतर ही वह आराम की जिन्दगी बिताने लगा। दूसरों के साथ सम्बन्ध-सूत्र में बँध जाने के कारण अब उसके जीवन में अधिक स्थायित्व, सोद्देश्यता और सुसम्पन्नता आ गयी और इस महत्त्वपूर्ण सामाजिक परिसम्पत्ति के कारण उसके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण में बहुत अधिक सहायता मिली।

पारिभाषिक शब्दावली

(अंग्रेजी से हिन्दी)

A

Abnormal—असामान्य, अपसामान्य
Academic—शैक्षणिक
Academic year—शैक्षणिक वर्ष
Acceleration—त्वरण
Activity—क्रिया
Activities—क्रिया-कलाप
Adequacy—पर्याप्तता
Adjustment—समायोजन, समानुरूपण
Adjustment Committee—समायोजन-समिति, समानुरूपण-समिति
Administrative Office—प्रशासन कार्यालय
After-care—चिकित्सोत्तर देख-भाल
Age-group—आयु-वर्ग
Age-group Council—आयुवर्गीय समिति
Agent—अभिकर्ता
Aging—वृद्धता
Aide—सहायक अधिकारी
Alacrity—तत्परता
Alley—क्रीड़ा-भूमि, खेल का मैदान
Alms House—दानगृह, अनाथालय
Alternates—प्रत्यावर्ती प्रतिनिधि
Altruism—परार्थ-भावना
American Association of Psychiatric Social Workers—संयुक्तराज्य मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता-संघ
American Association of Schools of Social Work—संयुक्तराज्य सामाजिक सेवाकार्य-विद्यालय-संघ
American Association of Social Workers—संयुक्तराज्य सामाजिक कार्यकर्ता-संघ
American Public Welfare Association—संयुक्तराज्य जनकल्याण-संघ
Annotation—टिप्पण-लेखन, टिप्पणी
Annual Report—वार्षिक कार्य-विवरण
Anomalous—संगतिविहीन, असंगत
Antagonism—विरोध, शत्रुता
Anthropology—मानव-विज्ञान
Apparatus—उपकरण, यन्त्र
Appendicitis—उण्डक शोथ (अपेण्डिसाइटिस)
Apprenticeship—प्रशिशिक्षुता
Approach—उपागम
Appropriation—विनियोजन
Approved—स्वीकृत, स्वीकृति-प्राप्त
Arbiter—निर्णयकर्ता, मध्यस्थ
Armistice—युद्ध-विराम
Arteriosclerosis—धमनी-काठिन्य
Arthritis—सन्धि-शोथ
Assembly—सभा, विधान-सभा
Asset—परिसम्पत्ति
Assign—कार्य-निर्देश, काम सौंपना
Assignment—निर्दिष्ट कार्य, अधिन्यस्त कार्य
Assistant to the Superintendent—अधीक्षण-सहायक
Associate Group—सहयोगी संस्था, सहयोगी समह
Asthma—दमा

Athletic Director—व्यायाम-निदेशक
Attendance Officer—उपस्थिति अधिकारी
Attitude—अभिवृत्ति, दृष्टिकोण
Audit—लेखापरीक्षा
Auspices—तत्त्वावधान
Authority—प्राधिकार, प्राधिकारी
Authorized—अधिकृत, प्राधिकृत
Autonomous—स्वायत्त, स्वतंत्र
Avocation—धन्धा, उद्योग
Award—पुरस्कार
Awareness—जागरूकता, परिज्ञान।

B

Baccalaureate Degree—स्नातक उपाधि, विश्वविद्यालय की प्रथम उपाधि
Back slide—पाप में फँसना
Bacteriology—जीवाणु-विज्ञान
Bacteriologist—जीवाणु-वैज्ञानिक
Balance—सन्तुलन
Banner—नामांकित ध्वज, विज्ञप्ति-पट
Barrack—बैरक
Bed Rock—मूल सिद्धान्त
Beneficiary—हिताधिकारी
Benefit—लाभ, बीमा-लाभ
Benign—अघातक, अतीव्र
Biennial—द्विवार्षिक
Bio-chemistry—जीव-रसायन-शास्त्र
Biological—जैव, जीव-वैज्ञानिक
Bio-physics—जीव-भौतिकी
Biopsy—जीवोतिपरीक्षा
Blade—फलक
Blight—मुरझा देना, वृद्धि का ह्रास करना
Blithely—खुशी से
Blotch—छाल
Block System—खण्ड-पद्धति
Boarding home—आवास-गृह
Board of Charity—धर्मादा-परिषद्, दान-परिषद्
Board of Directors—निदेशक-मण्डल
Board of Education—शिक्षा-परिषद्
Board of Guardians—अभिभावक-परिषद्
Board of Managers—प्रबन्धक-परिषद्
Board of Trade—व्यवसाय-परिषद्
Body—निकाय, सभा
Boxing Match—मुष्टि-युद्ध-प्रतियोगिता
Boys Club—बाल-क्लब
Brace—पट्टी
Budget—आय-व्ययक
Bulletin—बुलेटिन, विज्ञप्ति
Bureau—केन्द्र, कार्यालय, परिषद्
Bureau of Census—जनगणना-कार्यालय
Bureau of Prisons—कारागार-कार्यालय
By-laws—उपनियम

C

Callousness—क्रूरता, कठोरता
Cancer—कैन्सर, कर्क
Care—देख-भाल, सेवा
Careholder—पालन-गृह-स्वामी, पालक-गृहस्वामी या पालिका गृहिणी
Cardiology—हृदय-विज्ञान
Cardio-vascular Disease—हृद्वाहिका-रोग
Case-consultant—सेवाकार्य-परामर्शदाता
Case-history—वैयक्तिक जीवन-वृत्त
Case load—कार्यभार, सेवाकार्य-भार
Case-record—व्यक्ति-वृत्त-अभिलेख
Case-worker—वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता
Casual Labor—अनियमित मजदूरी
Catatonic state—कैटेटोनिया की स्थिति
Ceramics—मृत्तिका-शिल्प
Cerebral Haemorrhage—मस्तिष्क-रक्त-स्राव
Certificate—प्रमाण-पत्र

Cervical—ग्रैव, ग्रीवा-सम्बन्धी
Channel—सरणि, माध्यम
Chapter—शाखा, अध्याय
Charter—शासन-पत्र, चार्टर
Charitable Agency—दान-अभिकरण, परार्थ-अभिकरण
Charity Organization Society—दान-संघटन-समिति
Check—जाँच-पड़ताल, अवरोध
Chest—दानादाय, दान-पेटिका
Child Guidance Clinic—बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह
Child Labor Law—बाल-श्रम-कानून
Children's Aid Society—बाल-सहायता समिति
Child Bureau—बाल-सहायता-केन्द्र
Children's Charter—बाल-कार्य-शासन-पत्र
Children's Home—बाल-निकेतन, बाल-गृह
Child Welfare League of America—संयुक्त राज्य-बाल-कल्याण-परिषद्
Child Welfare Service—बाल-कल्याण-सेवा
Chronic—चिरकालिक, जीर्ण
Circulation—परिसंचार
Citizen's Association—नागरिक-संघ
City Government—नगर-शासन
Civic Centre—नागरिक-केन्द्र
Civil Service—नागरिक सेवा, असैनिक सेवा
Civil Works Administration—असैनिक-श्रम-प्रशासन
Classification Clinic—वर्गीकरण-चिकित्सालय
Classification Committee—वर्गीकरण-समिति
Clearing House—निकासी-कार्यालय, समाशोधन-गृह
Client—सेवार्थी
Code of Ethics—आचार-संहिता
Coed—सहपाठिनी
Cohesive Whole—संश्लिष्ट इकाई
Colitis—बृहद् अन्त्र-शोथ
Collateral—आनुषंगिक
Combat Division—लड़ाकू सैन्य-प्रभाग
Combustion—दहन-इंजन
Commissary—सामग्री-अधिकारी
Committee on Administration Management—प्रशासन-प्रबन्ध-समिति
Communicant—ईसाई सम्प्रदाय में दीक्षित होनेवाला, सम्प्रदाय-दीक्षित
Communication—सम्प्रेषण, संचार
Community Centre—सामुदायिक केन्द्र
Community Chest—सामुदायिक दानादाय, सामुदायिक दान-पेटिका
Community Dynamics—सामुदायिक गति-विज्ञान
Community House—सामुदायिक भवन
Community Organization—सामुदायिक संघटन
Community Organization Worker—सामुदायिक संघटन-कार्यकर्ता
Community Planning Council—सामुदायिक योजना-समिति
Community Welfare Council—सामुदायिक कल्याण-समिति
Compatible—अविरोधी
Complex—जटिल
Component—अवयव, संघटक अवयव
Compute—गणना करना
Concept—धारणा, मान्यता
Conduct—संचालन, आचरण
Conference—परामर्श गोष्ठी, विचार-विमर्श, सम्मेलन
Confinement—कारावास, परिरोध
Confounded—हतबुद्धि

Conformity—नियम परायणता
Configuration—सापेक्षिक व्यवस्था
Conservation—संरक्षण
Consistent—अनुरूप
Constitution—संविधान
Contributory Pension—अंशदान-वृत्ति
Convalescent Hospital—स्वास्थ्य-लाभ-अस्पताल
Co-operative work—सहकारी कार्य
Co-ordination—समन्वय
Co-operative Group—सम्मिलित समूह, सहयोगी समूह
Correctional Services—सुधारात्मक सेवाएँ
Correlate—समवाय-सम्बन्ध स्थापित करना
Corresponding Secretary—तत्स्थानी मंत्री
Cortisone—कार्टीजोन
Council of Social Agencies—सामाजिक अभिकरण-समिति
Council of Social Education—सामाजिक शिक्षा-समिति
County—जनपद
County Welfare Department—जनपद-कल्याण-विभाग
Course—पाठ्यक्रम
Court—न्यायालय
Covered Employment—पूर्व-निर्धारित रोजगार
Coveted—वांछित, इच्छित
Criminal Court—आपराधिक न्यायालय, फौजदारी कचहरी
Criminal justice—आपराधिक न्याय
Crippled—विकलांग
Criteria—निकष, कसौटी
Critical—गम्भीर
Cross-Examination—जिरह
Cross-Section Community—विभिन्न वर्गीय समुदाय
Crutch—अवलम्बन, बैसाखी
Cub-scouts—शेर बच्चा-बालचर दल, शिशु-बालचर
Cumulative—संचित
Curriculum—पाठ्यचर्या
Current—सामयिक
Custodial Officer—अभिरक्षा-अधिकारी
Custodian—अभिरक्षक

D

Dairy—दुग्धशाला
Data—तथ्य, सामग्री
Dating—डेटिंग, समय निश्चित करके पर-स्त्री-पुरुषका बाहर घूमने-फिरने जाना
Day Centre—दिवा-केन्द्र, दिवस-केन्द्र
Decipher—अस्पष्ट लिपि बाँचना
Decode—संकेत-वाचन
Defence—रक्षा, प्रतिरक्षा
Defence Department—रक्षा-विभाग, प्रतिरक्षा-विभाग
Defence Project—रक्षा-प्रायोजना, सैन्य-प्रायोजना
Degenerative—अपकर्षी
Degree—उपाधि, मात्रा
Delegate—प्रतिनिधि
Delegate Member—प्रतिनिधि सदस्य
Delegate Body—प्रतिनिधि निकाय, प्रतिनिधि-सभा
Demography—जनांकिकी
Demote—पदावनत करना
Demur—आपत्ति करना, आगा-पीछा करना
Denominational—साम्प्रदायिक
Department of Pupil, Personel and Counseling—छात्र-कर्मचारी परामर्श-विभाग
Department of Public Welfare—जन-कल्याण-विभाग

Department of Social Welfare—सामाजिक कल्याण-विभाग
Department of School Social Services—विद्यालयीय सामाजिक सेवा-विभाग
Dependibility—पराश्रयता, परनिर्भरता, भरोसा
Depository—संग्रहागार
Depressed—अवसादग्रस्त
Deputy Keeper—सहायक अधीक्षक, सहायक पालक
Desertion—उत्तरदायित्व-त्याग, पलायन
Destructive—हानिकर, ध्वंसात्मक
Detention—नजरबन्दी
Detention Home—नजरबन्दी गृह
Determinism—नियतिवाद
Diabetes—मधुमेह
Diagnosis—निदान
Diagnostic—नैदानिक, निदान-सम्बन्धी
Dictum—सिद्धान्त-वाक्य
Dietician—आहार-विशेषज्ञ
Differential Gear—भिन्नक गियर
Digestion—पाचन-क्रिया
Dignity—गरिमा, प्रतिष्ठा
Dilemma—द्विविधा, संशय
Direction—निदेशन
Director—निदेशक
Directory—निदेशिका, निर्दशिका
Disable—अक्षम
Dis-abled—अक्षम
Dis-charge—सेवामुक्त, मुक्त, रिहा
Disciplinary—आनुसाशनिक, अनुशासन-सम्बन्धी
Dismiss—निष्कासन, पदच्युति
Division—प्रभाग, श्रेणी
Division of child welfare—बाल-कल्याण-प्रभाग
Division of Special Services—विशिष्ट सेवा-प्रभाग
Document—प्रलेख
Doity—छोटा रूमाल
Dolt—मूर्ख
Domestic Relation Court—पारिवारिक सम्बन्ध-न्यायालय
Draft—आलेख, प्रारूप
Drive—प्रयास, उद्योग, यत्न
Drive-shaft—चालन-दण्ड
Dynamic—गतिक, गत्यात्मक
Dystrophy—दुष्पोषण

E

Echeton—सोपानक, श्रेणी
Eczema—उकँवत
Educational—शैक्षिक, शैक्षणिक, शिक्षात्मक
Educational Process—शिक्षात्मक प्रक्रिया
Elaborate—विकृत, विस्तृत
Eligibility—पात्रता
Emergency—आपात, आपाती संकटकालीन
Emergency Basis—आपाती आधार, आपत्कालीन आधार
Emergency Period—संकटकाल, आपत्-काल, आकस्मिक स्थिति
Emergency Meeting—आपाती बैठक
Emergency Relief Act—आपाती सहायता कानून
Emotion—भाव, संवेग
Employer—मालिक, स्वामी
Employment Office—रोजगार-दफ्तर
Eneuresis—अनैच्छिक मूत्रस्राव
Enterprise—उद्यम
Enunciation—प्रतिपादन, प्राव्यापन, प्रारम्भ
Environment—पर्यावरण, परिवेश
Episcopal Service for Youth—धर्माध्यक्षीय युवक सेवा-समिति

Equanimity संतुलन, धैर्य
Equipment उपकरण, साज-सामान, परिपूर्ति
Equity साम्य
Etiology—हेतु-विज्ञान, हेतुकी
Evacuation—निष्क्रमण, खाली करना
Evaluation—मूल्यांकन, आकलन
Evolution—विकास-प्रक्रिया
Exchange—विनिमय
Exchange Arrangements—विनिमय-व्यवस्था
Executive—कार्यकारी
Executive Committee—कार्यकारिणी-समिति
Executive Officer कार्यकारी अधिकारी कार्याधिकारी, अधिशासी अधिकारी
Executive Order कार्यान्वियन आज्ञा, अधिशासी आज्ञा
Exhaustion Centre क्लान्ति-केन्द्र
Exibit—प्रदर्शनीय वस्तु
Extent विस्तार-सीमा

F

Face Sheet—मुख पृष्ठ
Facetous—हास्यास्पद
Facile—सुगम
Factor—घटक, तथ्य, कारण
Family Agency—पारिवारिक अभिकरण
Family Case-work—परिवारगत वैयक्तिक सेवाकार्य
Family Court—पारिवारिक न्यायालय
Family Foster-care—परिवारगत पालन-सेवा
Family Service Agency—पारिवारिक सेवा-अभिकरण
Family Service Association of America—संयुक्तराज्य पारिवारिक सेवा-संघ
Family Service Society—पारिवारिक सेवा-समिति
Family Society—पारिवारिक सहायता-समिति
Federal Department of Public welfare—संघीय जन-कल्याण-विभाग
Federal Government—संघीय-शासन, संघ-सरकार
Federal Security Administration संघीय सुरक्षा-प्रशासन
Federal Security Agency—संघीय सुरक्षा-अभिकरण
Federation of Social Agencies—सामाजिक अभिकरण-संघ
Fee—शुल्क
Feeling भावना
Fellow-ship शिक्षा-वृत्ति
Fend व्यवस्था करना
Fervid दृढ़
Field Instruction व्यावहारिक कार्य-शिक्षण, क्षेत्रीय-कार्य-शिक्षण
Field Secretary व्यावहारिक कार्य-मन्त्री (मन्त्रिणी), क्षेत्रीय-कार्य-मन्त्री (मन्त्रिणी)
Field Training व्यावहारिक-कार्य प्रशिक्षण, क्षेत्रीय कार्य-प्रशिक्षण
Field Work—व्यावहारिक कार्य, क्षेत्रीय कार्य
Field Worker व्यावहारिक कार्यकर्ता क्षेत्रीय कार्यकर्ता
File—मिसिल
Finance वित्त
Financial Federation—वित्तीय संघ
Focus ध्यान-केन्द्र
Folk-ways लोकरीति
Form—विधा, रूप
Foster Care पालन-सेवा
Foster Home पालन-गृह
Foster Home Placement पालन-गृह

में व्यवस्थापन
Fraternal—बिरादरी-सम्बन्धी, भ्रात्रीय
Frustration—नैराश्य, कुण्ठा, वंचना
Function—आयोजन, समारोह

G

Gasoline—गैस-नलिका
Gastric Ulcer—आमाशय-व्रण
General Conference—महासम्मेलन, महाधिवेशन
Generalization—सामान्यीकरण, साधारणीकरण
Geriatrics—जराव्याधि-चिकित्सा-शास्त्र
Gerontology—वृद्ध-रोग-विज्ञान
Gland—ग्रन्थि
Glandular—ग्रन्थि सम्बन्धी, ग्रन्थिल
Glandular Disfunction—ग्रन्थिल क्रियाहीनता
Graduate—स्नातक
Grant-in-aid—सहायतानुदान, अनुदान
Groove—लीक, प्रणाली
Ground Parole—क्षेत्रीय पेरोल
Group Discussion—सामूहिक विचार-विमर्श, सामूहिक विवाद-गोष्ठी
Group Home—सामूहिक आवास-गृह
Group Therapy—सामूहिक चिकित्सा
Group Work—सामूहिक सेवा-कार्य, समूहगत सेवा-कार्य
Group Work Agency—सामूहिक कार्य-अभिकरण
Group Worker—सामूहिकसेवा-कार्यकर्ता
Guard—अभिरक्षण, अभिरक्षक
Guidance—निर्देशन
Guidance Bureau—निर्देशनकेन्द्र
Gynaecology—स्त्रीरोग-विज्ञान

H

Habeaus Corpus—बन्दी-प्रत्यक्षीकरण
Hall—सभाकक्ष
Handicapped—अवरोधग्रस्त, बन्धित
Hang out—मिलना-जुलना
Hay Fever—परागज-ज्वर
Health Insurance—स्वास्थ्य-बीमा
Hèlping-learning process—सहायता-ज्ञानार्जन-प्रक्रिया
History Interview—जीवनवृत्त-साक्षात्कार
Hoax—छल, चाल
Hobby—शौक, अभिरुचि
Home for the Aged—वृद्धावास, वृद्ध-निवास-गृह
Home Maker Service—गृह-कार्य-सहायता-सेवा
Home Sickness—गृह-चिन्ता-रोग
Horizontal—समस्तरीय
Hospitalization—अस्पताल में भर्ती होकर चिकित्सा कराना, अस्पताली चिकित्सा
Hospital Social Service—चिकित्सालयीय सामाजिक सेवा
House Employment—घरेलू नौकरी, घरेलू रोजगार
House Parent—गृह-माता या गृह-पिता
House Parents—गृह-माता-पिता
Housing and Home Finance Agency—गृह-परिवार वित्ताभिकरण
Housing Unit—आवास-यूनिट, आवास-शाखा
Hypochondriae—रोगभ्रमी

I

Ice-skating—हिम-स्केटिंग
Illustration—निदर्श-चित्र, उदाहरण
Immigration—आप्रवास
Impairment—क्षति
Impetus—प्रेरणा, बल
Implement—कार्यान्वित करना

Impulse—आवेग
Impulsive—आवेगशील
Inalianable—अहस्तान्तरणीय
Incarceration—कारावास, कैद
Incidental Expenses—प्रासंगिक व्यय
Inclination—प्रवृत्ति, झुकाव
Indenture—अनुबन्धन, करारबद्धता
Indeterminate—अनिर्धारित, अनिश्चित
Indian Affairs-Bureau—आदिवासी इण्डियन-विषयक-कार्यालय
Individualization—वैयक्तिकीकरण
Individualized Services—वैयक्तिकीकृत सेवाएँ
Induction Centre—प्रेरण-केन्द्र
Infectious—संक्रामक
Infirmary—रोगी-गृह, रुग्णावास
Informal—अनौपचारिक
Infraction—व्यतिक्रमण
Infringe—अतिलंघन, अतिक्रमण
Inhibition—अन्तर्बाधा, आवर्जना
Injunction—व्यादेश
Inmate—संवासी
Inquisition—समीक्षण, जिज्ञासा
Insight—अन्तर्दृष्टि
Institute—संस्थान
Institutionalization—संस्थात्मकीकरण
Institutional Foster-care—संस्थागत पालन-सेवा
Instructor—शिक्षक
Intake Doctor—भर्ती करने वाला डाक्टर
Integration—समाकलन, समन्वय, एकता
Integrity—अखण्डता, इकाई
Inter-Bureau Committee—अन्तर्कार्यालय-समिति
Inter-group—अन्तस्समूह, अन्तस्सामूहिक
Interview—साक्षात्कार, मुलाकात
Introductory—प्रस्तावनात्मक, परिचयात्मक
Investigation—जाँच, अनुसन्धान
Inviolable—अलंघनीय
Issue—समस्या, प्रश्न, विषय

J

Jewish Community Services—यहूदी-सामुदायिक-सेवा
Jewish Welfare Board—यहूदी-कल्याण-परिषद्
Judicial—न्यायिक
Junior Member—कनिष्ठ सदस्य
Juvenile Court—बाल-न्यायालय

K

Keeper—पालक, सहायक (गृह)
Kidney—गुर्दा
Kosher—यहूदी खाद्य की दुकान

L

Laboratory for Group Development—सामूहिक-विकास प्रयोगशाला
Labour Union—श्रमिक-संघ, मजदूर-संघ
Labyrinthine—गूढ़, जटिल, विषम
Laryngitis—कण्ठ-शोथ
Law—विधि, कानून
Leadership Training—कार्यकर्ता-प्रशिक्षण
Leather work—चर्म-शिल्प
Leeway—मार्गभेद
Legal Aid Society—कानूनी सहायता-समिति
Legislative—विधान-सम्बन्धी, वैधानिक
Lesion—क्षतस्थल
Liaison—सम्पर्क
Licence—अनुज्ञापत्र
Life-guard—जीवन-अभिरक्षक
Limit—प्रतिबन्ध, सीमा, बन्धन
Localize—स्थानीकरण

Long Range Project— दीर्घकालिक प्रायोजना
Lump—पिण्ड, राशि
Lymph—लसीका

M

Maintenance—अनुरक्षण, रख-रखाव
Maladjustment—कुसमंजन, कुसामंजस्य
Matching Basis—समतुल्य आधार
Maternity and Infancy Law—मातृ-शिशु-कानून, जच्चा-बच्चा-कानून
Maze—भूल-भुलैया, चक्रव्यूह
Mechanization—यन्त्रीकरण
Medical Social Service Department चिकित्सकीय सामाजिक सेवा-विभाग
Medical Treatment—चिकित्सकीय उपचार
Medication—औषध-प्रयोग, औषधीकरण
Meeting Room—गोष्ठी-कक्ष, सभा-कक्ष
Melancholia—विषाद-रोग
Mental Disorder— मानसिक विक्षेप, मानसिक असन्तुलन
Mental health—मानसिक स्वास्थ्य
Mental Hygiene—मानसिक आरोग्य-बिज्ञान
Mental Hygiene Movement—मानसिक आरोग्य-आन्दोलन
Merger—विलीनीकरण, एकीकरण
Metal works—धातु-शिल्प,
Metral Stenosis—मेट्रल-संकट
Middle Fourth Grade Level—मध्यवर्ती चतुर्थ श्रेणी का स्तर
Migraine—अधकपारी
Milieu—वातावरण, स्थिति
Minutes—कार्यवाही, कार्य-विवरण
Monograph—प्रबन्ध-ग्रन्थ
Morale—मनोबल, हौसला
Mores—लोकसंस्कृति, लोकाचार
Motivation—प्रेरणा, अभिप्रेरण
Motor Nerve—प्रेरक तन्त्रिका
Move—धार्मिक विश्वास, सम्प्रदाय
Musical Therapy—संगीत-चिकित्सा
Myriad—अनगिनत, असंख्य

N

National Association of Housing officials—राष्ट्रीय आवास-अधिकारी संघ
National Association of Societies for Organizing Charity—राष्ट्रीय दान-संघटन-समिति-संघ
National Charity and Correction Conference—राष्ट्रीय दान एवं सुधार सम्मेलन
National Civic Federation—राष्ट्रीय नागरिक-संघ
National Committee of Visiting Teachers—राष्ट्रीय अतिथि-अध्यापक-समिति
National Conference of Social Work—राष्ट्रीय सामाजिक सेवा-कार्य सम्मेलन
National Federation of Settlement राष्ट्रीय व्यवस्थापन-संघ
National Federation of Settlements and Neighbourhood Centres राष्ट्रीय व्यवस्थापन एवं पड़ोस-केन्द्र-संघ
National Selective Service System—राष्ट्रीय सैनिक-चुनाव-सेवा-परिषद्
National Social Welfare Assembly—राष्ट्रीय समाज-कल्याण-सभा
Native—सहजात, नैसर्गिक
Neighbourhood Council—महल्ला-समिति, पड़ोस-समिति
Nephritis—गुर्दाशोथ

Nervous System—तन्त्रिका-तन्त्र, स्नायु-तन्त्र
Neuro-psychiatric Dis-order—स्नायविक मनोविकृति
Neurology—तन्त्रिका-विज्ञान
Neurosis—उन्माद, आधि
Niggardly—मितव्ययी
Nodule—ग्रन्थि, गिल्टी
Nomination—नामांकन, मनोनयन
Nonprofit—निःस्वार्थ
Normal—सामान्य, स्वाभाविक
Normalcy—सामान्यता
Notation—संकेतन
Nub—विषय
Nursing—उपचर्या

O

Objective—वस्तुनिष्ठ
Objectivity—वस्तुपरकता
Observation—प्रेक्षण, पर्यवेक्षण
Observer—प्रेक्षक, पर्यवेक्षक
Obsession—मनोग्रस्तिरोग, कुण्ठा
Obsolescent—लोपोन्मुख, अप्रचलनोन्मुख
Obsolete—अप्रचलित, लुप्त, अप्रयुक्त
Obstretics—प्रसूति-विज्ञान
Occupational Therapy—व्यावसायिक चिकित्सा
Officials—अधिकारी-वर्ग
Official Delegate—आधिकारिक प्रतिनिधि
Old Age and Survivors Insurance वृद्धावस्था एवं उत्तराधिकारी बीमा
Old Folks Home—वृद्धावस्था, वृद्ध-निवासगृह
Open Forum—मुक्त वाक्पीठ, खुला मंच
Operation—शल्य-चिकित्सा
Ophthalmology—नेत्रचिकित्सा-विज्ञान
Optimum—अनुकूलतम, सर्वोत्तम
Orientation—पुनर्नवीकरण
Orthopedics—विकलांग-चिकित्सा
Otolaryngology—कर्ण-रोग-चिकित्सा
Outing—सैर
Overlapping—परस्परव्यापी
Oversimplification—अति सरलीकरण

P

Paid—सशुल्क, वैतनिक
Panic—आतंक
Parents Night—अभिभावक सम्मिलन-उत्सव
Parent - Teacher - Association—अभिभावक-अध्यापक-संघ
Parlance—बोलचाल की शब्दावली
Parliamentary Procedure—संसदीय पद्धति
Parolee—वचनबद्ध कारावकाश प्राप्त अभियुक्त, पैरोल पर छूटा व्यक्ति
Parole Bureau—पैरोल-कार्यालय, कारावकाश-कार्यालय
Parole-officer—कारावकाश-अधिकारी, पैरोल-अधिकारी
Part-time Job—अंशकालिक काम
Pastoral Psychiatry—धर्मोपदेशकीय मनश्चिकित्सा
Pathology—रोग-विज्ञान
Patriarchal State—पितृ-सत्तात्मक राज्य-व्यवस्था
Pediatrics—बालरोग-विज्ञान
Peer—साथी
Penal Institution—दण्ड-संस्था
Penitentiary—बन्दी-सुधार-गृह
Pent-up—नियंत्रित, अवरुद्ध
Perfunctory—उदासीन, लापरवाह
Perphery—परिधि, परिमा
Perplexity—परेशानी,
Personnel—कार्मिक, कर्मचारी-वर्ग
Personnel Officer—कार्मिक अधिकारी

Personality व्यक्तित्व
Pest पीड़क, बाधा
Phase अवस्था, प्रावस्था
Phobia भीति, भय
Physiology—शरीर-विज्ञान
Picnic सैर-सपाटा
Pituitary Gland पीयूष ग्रन्थि
Placement—काम देना, कार्यनिर्धारण, कार्य-व्यवस्थापन
Placing—व्यवस्थापन
Platform—मंच
Pledge to Children—बाल-कार्य प्रतिज्ञा-पत्र
Plight दुर्दशा
Pneumonia [illegible]
Pneumothorax वातिल-वक्ष
Policy Statement नीति-वक्तव्य
Poliomyelitis शिशु-पक्षाघात, पोलिओ
Pool स्नान-कुण्ड
Poor Farm निर्धन कृषिफार्म
Poor House निर्धन-आवास-गृह
Position पद
Positive विधेयात्मक
Postencephalitis उत्तर मस्तिष्क-शोथ रोग
Philanthropic School लोकोपकार-विद्यालय
Practice व्यवहार, पेशा, कार्य
Precedence—पूर्व निदर्शन, नजीर
Preceding पूर्वगामी
Predatory उपद्रवी (परभक्षी)
Preference वरीयता
Prejudice—पूर्वग्रह
Pre-placement period—पूर्व-व्यवस्था-पन-काल
Pre-social Work Course—पूर्व-सामाजिक सेवाकार्य-पाठ्यक्रम
Prevention— निवारण, निरोध
Preventive Service—निवारक-सेवा, निरोधक-सेवा
Primal बुनियादी
Private Residence Care—निजी आवास-व्यवस्था-सेवा
Probation—परिवीक्षा
Probationary Period—परिवीक्षा-अवधि
Probationer—परिवीक्षाधीन व्यक्ति
Probation Department—परिवीक्षा-विभाग
Problem-child—समस्या-बालक
Proceeding—कार्यवाही, कार्य-विवरण
Procedure—क्रिया-विधि, पद्धति
Process—प्रक्रिया
Productivity रचनात्मकता, उत्पादन-शक्ति
Production—उत्पादन
Profession—वृत्ति, पेशा
Professional Genius—वृत्तिक कौशल
Profession Membership Association—वृत्तिक-सदस्य-संघटन
Professional Organization—वृत्तिक संघटन
Professional Skill—वृत्तिक कौशल
Professional Social Work—वृत्तिक सामाजिक सेवाकार्य
Professional Social Worker—वृत्तिक सामाजिक कार्यकर्त्ता
Proficiency—प्रवीणता
Prognosis—फलानुमान
Project—प्रायोजना
Projection—प्रक्षेपण
Project Method—प्रक्षेप-पद्धति
Promote—पदोन्नति करना
Promotional Process—उन्नयनात्मक प्रक्रिया
Propinquity—सान्निध्य-सम्बन्ध

Prosecuting Attorney—अभियोजक अटार्नी
Protection—संरक्षण
Protective Services—संरक्षणात्मक सेवाएँ
Proviso—शर्त, प्रतिबन्ध
Psyche—मन
Psychological clinic—मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य-गृह
Psychometric—मनोमितिक
Psychometry—मनोमिति
Psychosis—मनोविक्षिप्ति, मनोविक्षेप
Psycho-somatic—मन:शारीरिक
Public Assistance—राजकीय सहायता
Public Assistant Worker—राजकीय सहायता-कार्यकर्त्ता
Publie Education Association—लोक-शिक्षा-संघ
Public Service—राजकीय सेवा, लोक सेवा
Public Work House—राजकीय श्रम-गृह, राजकीय श्रमालय
Purpose—उद्देश्य
Prosecution—अभियोजन

Q

Qualification—अर्हता, योग्यता
Quarantere—संग-रोध
Quarter—निवास-स्थल
Questionnaire—प्रश्न-पत्रक

R

Reality—वास्तविकता
Recency—अधुनातनता
Receptionist—स्वागतकर्ता
Reception Unit—स्वागत-दल, स्वागत-यूनिट
Recommendation—संस्तुति
Reconstruction Finance Corporation—पुनर्निर्माण-वित्त-निगम
Record—वृत्त, अभिलेख
Recreation Director—मनोरंजन निदेशक
Referral—अन्यत्र प्रेषण
Reflex—सहजक्रिया
Reformatory—सुधारालय
Reform school—सुधार-विद्यालय
Refreshment—उपाहार
Refugee—शरणार्थी, विस्थापित
Regimentation—अधिशासन, एकमार्गीकरण
Regional—क्षेत्रीय
Registration Form—पंजी-पत्र
Regulation—नियम, नियमन
Rehabilitation—पुनर्वास
Relativity—सापेक्षता
Relevance—संगति, सम्बन्धता
Relief and Aid Society—सहायता एवं अनुदान समिति
Report—प्रतिवेदन, कार्य-विवरण
Report-card—प्रगति-पत्रक
Representative—प्रतिनिधि
Requirement—आवश्यकता, शर्त, अर्हता
Reserach—अनुसन्धान
Research Cantre for Group Dynamics—सामूहिक गत्यात्मकता अनुसन्धान-केन्द्र
Reservation—आरक्षण
Resident Programme—आवासी कार्यक्रम
Resident Club—आवासी-क्लब
Resource—साधन, स्रोत
Response—अनुक्रिया
Restaurant—उपाहार-गृह
Retarded—विलम्बित, पिछड़ा हुआ
Retirement—सेवा-निवृत्ति, अवकाश-प्राप्ति
Retribution—प्रतिशोध, प्रतिकार, दण्ड
Revocation—प्रतिसंहरण

Rheumatic Heart—आमवातिक हृदय
Righteous—धर्मपरायण, न्यायपूर्ण
Role—कार्य-भूमिका, कार्य
Round—निरीक्षण, दौरा
Rumpus—कोलाहल, हल्ला-गुल्ला

S

Safeguard—सुरक्षोपाय
Salvation Army—निस्तार-सेना, उद्धार-सेना
Sarcoidosis—चर्म-गिल्टी-रोग
Salient—मुख्य, प्रमुख
Scape-goat—कलंकित व्यक्ति
Scare—अकारण भय
Scared—अकारण भयभीत
Scheme—योजना
Scholarship—छात्रवृत्ति
School Counselor—विद्यालयीय परामर्श-दाता
School of Philanthropy—लोकोपचार-विद्यालय, लोकहित-विद्यालय
School Social Worker—विद्यालयीय सामाजिक कार्यकर्त्ता
Screening—अन्वीक्षण
Segment—अंश, टुकड़ा
Segregation—पृथक्करण, अलगाव, तनहाई
Selective Service System—भर्ती-सेवा-निकाय
Self-government—स्वायत्त-शासन
Semester—अर्द्धवार्षिक सत्र
Seminar—विचार-गोष्ठी
Senate—धारा-सभा
Senior Apartment Hotel—वृद्धावास-कक्ष वाले होटल
Sensitive—संवेदनशील, सुग्राही
Sequelae—अनुप्रभाव
Service—सेवा, सहायता, नौकरी, उपासना
Service Organization—उपासना-संस्था
Session—अधिवेशन, बैठक, कक्षा-भाषण
Settlement House—व्यवस्थापन-गृह
Shiftless—निरुपाय, लाचार
Shop—श्रमालय
Shop-group—दूकानदार-वर्ग
Short Range Project—अल्पकालिक प्रायोजना
Sibling—सहोदर
Situation—स्थिति, परिस्थिति
Skeptical—संशयशील, सन्देहशील
Skill—कौशल
Slum—गन्दी बस्ती
Smoldering—अन्तर्जलन
Social Adjustment—सामाजिक समायोजन, सामाजिक सुसंगति
Social Agency—सामाजिक अभिकरण
Social Case-work—सामाजिक व्यक्ति-सेवा-कार्य
Social Ease—सामाजिक सुख-चैन
Social Group Work—सामाजिक समूह-सेवा-कार्य
Social History—सामाजिक जीवन-वृत्त
Social Insurance—सामाजिक बीमा-योजना
Social Inter-group Work—सामाजिक अन्तस्समूह-सेवा-कार्य
Social Maturity—सामाजिक परिपक्वता (प्रौढ़ता)
Social Planning—सामाजिक आयोजना
Social Planning Staff—सामाजिक आयोजना-विभाग
Social Science—सामाजिक विज्ञान, समाज-विज्ञान
Social Sciences—समाज-वैज्ञानिक विषय (शास्त्र)
Social Security Act—सामाजिक सुरक्षा-कानून
Social Security Administration—

सामाजिक सुरक्षा-प्रशासन
Social Service Agency सामाजिक सेवा-अभिकरण
Social Settlement—सामाजिक व्यवस्थापन
Social Welfare—सामाजिक कल्याण-कार्य, समाज-कल्याण
Social Welfare Forum—समाज-कल्याण-वाक्पीठ
Social Work Research Group—सामाजिक सेवा-अनुसंधान-समिति
Social Work Year Book—सामाजिक सेवा कार्य-अब्दकोष
Sociology—समाजशास्त्र
Soma—शरीर
Sound—सुस्थित, सुदृढ़
Sound Movies—सवाक् चलचित्र
Sparsely Populated—विरल आबादी-वाला
Specialization—विशेषीकरण
Special Teacher—विशेष अध्यापक
Specific—निश्चित, निर्धारित, विशिष्ट
Sponsor—प्रायोजन
Sponsorship—प्रायोजकत्व
Spontanious Reaction—सहजोच्छ्वसित प्रतिक्रिया
Spur—प्रेरित करना
Squealing—मुखबिरी
Stability—स्थायित्व
Staff—कर्मचारी-वर्ग, कार्मिक, विभाग
Staff-conference—कार्मिक-गोष्ठी
Standard—प्रतिमान, मानक
Statistic—सांख्यिकी
Statistical—सांख्यिकीय
Status—प्रतिष्ठा, मर्यादा, पद
Statute—परिनियम, संविधि
Statutory—सांविधिक, परिनियमगत
Step-father—सौतेला पिता
Stigma—दोष, कलंक
Stomach-ulcer—उदर-व्रण
Stricture—कड़ी आलोचना, निन्दा
Structure—ढाँचा, संरचना
Stuttering—तुतलाना
Sub-committee—उपसमिति
Sub-normal—अवसामान्य, अवसाधारण
Subsidy—उपदान, आर्थिक सहायता
Succinct—संक्षिप्त, लघु
Sullenness—विक्षोभ, रोष
Summer Camping—ग्रीष्म-शिविर
Super—महत्तम
Superintendent—अधीक्षक
Supervision—पर्यवेक्षण, परिवीक्षण
Supervised Parole—परिवीक्षित पेरोल
Supervisor—परिवीक्षक, पर्यवेक्षक
Supervisory Personality—परिवीक्षण व्यक्तित्व
Survey—सर्वेक्षण
Swelling—सूजन, शोथ
Symptomatic—लक्षणात्मक
Symptomatology—रोग-लक्षण विज्ञान
Synagogy—यहूदी उपासना-गृह
Syphilis—उपदंश
System—व्यवस्था, पद्धति, निकाय

T

Tag—फीता
Technician—प्रविधिज्ञ
Technical Assistance—प्राविधिक सहायता
Technique—प्रविधि
Terminal Care—मार्मिक देख-भाल
Territory—प्रदेश (संघ-शासित)
Tier—श्रेणी, पंक्ति, विभाग
Therapy—चिकित्सा
Thesis—प्रबन्ध, शोध-प्रबन्ध
Timid—संकोची, भीरु
Timidity—संकोच, भीरुता

Transgression—अतिक्रमण
Transient—एकाकी
Traumatic—अभिघातज
Trend—प्रवृत्ति, झुकाव
Treatment—उपचार
Treatment Centre—उपचार-केन्द्र
Treatment Interview—उपचार-साक्षात्कार
Truancy—पलायन, आवारागर्दी
Truant—आवारा
Truculent—लड़ाकू, झगड़ालू
Tuberculosis—क्षय-रोग
Tumor (Tumour)—गुल्म, गिल्टी

U

Ulcer—नासूर, अल्सर
Unacceptable—अस्वीकार्य, अग्राह्य
Under graduate—पूर्वस्नातक
Under privileged—अल्पसुविधा-प्राप्त
Unemployment—बेकारी, बेरोजगारी
Unemployment Insurance—बेकारी का बीमा
Unemployment Trust Fund—बेकारी न्यास-कोष
Unification—एकीकरण, मिलन
Unit—इकाई, शाखा, विभाग
United Help and Welfare Fund—संयुक्त स्वास्थ्य एवं कल्याण-कोष
United States Children's Bureau—संयुक्तराज्य बाल-सेवा-कार्यालय
Unpaid—निःशुल्क
Upper Middle Class—उच्च मध्य-वर्ग
Urinary System—मूत्र-तंत्र
Urology—मूत्र-रोग-विज्ञान

V

Value—मूल्य, जीवन-मूल्य
Vegetate—निश्चेष्ट होना, निष्क्रिय होना
Vent—प्रकाशन, अभिव्यक्ति
Venture—उपक्रम, साहस
Vertical—उर्ध्वस्तरीय, उर्ध्वाधर
Veteran—सेवा-निवृत्त सैनिक, भूतपूर्व सैनिक
Veteran Administration—सेवा-निवृत्त सैनिक-प्रशासन
Veto—निषेधाधिकार
Victory Gardens—विजय-उद्यान
Vindictiveness—दण्ड-भावना, प्रतिशोध-भावना
Violate—अतिक्रमण करना
Visiting Housekeeper—अतिथि-गृह-कार्य-सहायक
Visiting Teacher—अतिथि अध्यापक
Visiting Teacher Project—अतिथि अध्यापक-प्रायोजना
Visitor—आगन्तुक, अतिथि

W

Waiting List—प्रतीक्षक-सूची
Ward—वार्ड, खण्ड
Warden—संरक्षक, खण्डपाल, वार्डन
Wayfarer's Lodge—यात्री-निवास, पद यात्री-निवास, पद-यात्री-संवास
Welfare Agency—समाज कल्याण-अभिकरण
Welfare Federation—समाज-कल्याण-संघ
Well Adjusted—सुव्यवस्थित, सामंजस्य-युक्त
Will—इच्छा-शक्ति, संकल्प
Wing Officer—कक्ष-अधिकारी, टुकड़ी-अफसर
Wood-work—काष्ठ-शिल्प
Work-a-day—कामकाजी, व्यवहारी
Worker—श्रमिक, मजदूर, कार्यकर्ता
Work-house—श्रम-गृह, श्रमालय
Work Relief Activity—श्रम-सहायता-कार्यक्रम
Work Supervisor—श्रम-परिवीक्षक, श्रमनिरीक्षक

(हिन्दी से अंग्रेजी)

अ

अंश—Segment
अंशकालिक काम—Part-time Job
अंशदान-वृत्ति—Contributory Pension
अकारण भय—Scare
अकारण भयभीत—Scared
अक्षम, अपंग—Disabled
अखण्डता—Integrity
अघातक—Benign
अतिक्रमण—Transgression
अतिथि-अध्यापक—Visiting Teacher
अतिथि अध्यापक-प्रायोजना—Visiting Teacher Project
अतिथि-गृहकार्य-सहायक—Visiting House-keeper
अतिलंघन—Infringement
अतिसरलीकरण—Over-simplification
अधकपारी—Migraine
अधिकृत—Occupied
अधीक्षक—Superintendent
अधीक्षक का सहायक—Assistant to the Superintendent
अधिशासी आज्ञा—Executive Order
अधुनातनता—Rececy
अनगिनत, असंख्य—Myriad
अनिर्धारित, अनिश्चित—Indeterminate
अनियमित मजदूरी—Casual Labour
अनुकूलतम—Optimum
अनुक्रिया—Response
अनुज्ञा-पत्र—Licence
अनुबन्धन, करारबद्धता—Indenture
अनुप्रभाव—Sequelae
अनुरक्षण, रखरखाव—Maintenance
अनुरूप—Consistent
अनुशासनिक—Disciplinary
अनुसन्धान—Research
अनैच्छिक मूत्र-स्राव—Eneuresis
अनौपचारिक—Informal
अन्तर्कार्यालय-समिति—Inter-bureau committee
अन्तर्जलन—Smoldering
अन्तर्दृष्टि—Insight
अन्तर्बाधा, आवर्जना—Inhibition
अन्तःसामूहिक, अन्तःसमूह—Inter group
अन्तःसामूहिक समाज-सेवा-कार्य—Social Inter-group Work
अन्वीक्षण—Screening
अपकर्षी—Degenerative
अप्रचलित, लुप्तप्रयोग—Obsolete
अप्रचलनोन्मुख, लोपोन्मुख—Obsolescent
अभिकरण—Agency
अभिकर्ता—Agent
अभिघातज—Traumatic
अभिप्रेरण, प्रेरण—Motivation
अभिभावक-अध्यापक-संघ—Guardian-Teacher-Association
अभिभावक परिषद्—Board of Guardians
अभिभावक-सम्मिलन उत्सव—Parents' Night
अभियोजक अटार्नी—Prosecuting Attorney
अभियोजन—Prosecution
अभिरक्षक—Custodian
अभिरक्षा-अधिकारी—Cusodial Officer
अभिलेख—Record

अभिवृत्ति, दृष्टिकोण—Attitude
अमेरिकन सामाजिक सेवाकार्य-विद्यालय-संघ—American Association of Schools of Social Work
अर्धवार्षिक सत्र—Semester
अर्हता, आवश्यकता—Requirement
अलंघनीय—Inviolable
अल्पकालिक प्रायोजना—Short-range Project
अल्प-सुविधा-प्राप्त—Under-privileged
अवरोधग्रस्त, बाधित—Handicapped
अवरोधन-गृह—Detention House
अवसादग्रस्त—Depressed
अवसामान्य, अवसाधारण—Sub-normal
अविरोधी—Comatible
असामान्य, अपसामान्य—Abnormal
असामंजस्य, कुसमंजन—Maladjustment
अस्पताली चिकित्सा कराना—Hospitalization
अस्पष्ट लिपि-वाचन—Decipher
अस्वीकार्य, अग्राह्य—Unacceptable
अहस्तान्तरणीय—Inalienable

आ

आगन्तुक—Visitor
आचार-संहिता—Code of Ethics
आतंक—Panic
आदिवासी इण्डियन-विभागीय कार्यालय—Indian Affairs Bureau
आधिकारिक, सरकारी—Official
आधिकारिक प्रतिनिधि—Official Delegate
आनुषंगिक—Collateral
आपत्ति करना, आगा-पीछा करना—Demur
अपराध—Offence, Crime
आपराधिक न्याय—Criminal Justice
आपराधिक न्यायालय, फौजदारी कचहरी—Criminal Court
आपात, आपाती—Emergency
आपाती आधार—Emergency Basis
आपाती बैठक—Emergency Meeting
आपाती सहायता कानून—Emergency Relief Act
आपाती स्थिति, संकटकाल—Emergency Period
आप्रवास—Immigration
आमवातिक हृदय—Rheumatic Heart
आमाशय व्रण—Gastric Ulcer
आय-व्ययक—Budget
आयु-वर्ग—Age-group
आयु-वर्गीय-समितियां—Age-group Councils
आयोजन, समारोह—Function
आयोजना—Planning
आरक्षण—Reservation
आलेख, प्रारूप—Draft
आवयविक, घटक—Components
आवर्जना, कुंठा—Inhibitoin
आवारा—Truant
आवारागर्दी—Truancy
आवास-गृह—Boarding House
आवास-शाखा, आवास-यूनिट—Hosing Unit
आवासी - कार्यक्रम—Resident - programme
आवासीय क्लब—Residence Club
आवेग—Impulse
आवेगशील—Impulsive
आहार-विशेषज्ञ—Dietician

इ, ई

इकाई—Unit
ईसाई सम्प्रदाय में दीक्षित—Communicant
ईसाई नवयुवक-संघ—Young Men's Christian Association

ईसाई नवयुवती-संघ—Young Women's Christian Association

उ

उँकवत—Eczema
उच्च-मध्यवर्ग—Upper Middle Class
उण्डुक शोथ—Appendicitis
उत्तरदायित्व-त्याग, पलायन—Desertion
उद्देश्य—Purpose
उन्नयनात्मक प्रक्रिया—Promotional Process
उत्पादन—Production
उत्पादन-शक्ति—Productivity
उन्माद, आधि—Neurosis
उद्यम—Enterprise
उद्योग—Enterprise, Effort
उल्लंघन—Violation
उदर व्रण—Stomach Ulcer
उदासीन, लापरवाह—Perfunctory
उदाहरण-पाठ—Illustration
उपकरण, यंत्र, यंत्रोपकरण—Apparatus
उपकरण, उपस्कर, साधन—Equipment
उपक्रम—Venture
उपचर्या—Nurse
उपचार—Treatment
उपचार-केन्द्र—Treatment Centre
उपचार-साक्षात्कार—Treatment Interview
उपचारिका—Nurse
उपदान, आर्थिक सहायता—Subsidy
उपद्रवी—Predatory
उपनियम—By-laws
उपसमुदाय—Sub-committee
उपव्यवसाय, धन्धा—Avocation
उपागम—Approach
उपाधि, मात्रा—Degree
उपासना-संस्था—Service Organization
उपाहार—Refreshment
उपाहार-गृह—Refreshment Room, Restaurant
उपस्थिति-अधिकारी—Attendence Officer
ऊर्ध्वस्तरीय—Vertical

ए

एकीकरण—Unification
एकमार्गीकरण—Regimentation
एकाकी—Transient

औ

औषध—Medicine
औषधीकरण—Medication

क

कक्ष—Wing
कक्ष-अधिकारी—Wing Officer
कक्षा—Class
कक्षा-भाषण—Classroom Lecture, Session
कड़ी आलोचना, कटु निन्दा—Stricture
कण्ठ शोथ—Laryngitis
कनिष्ठ सदस्य—Junior Member
कर्क, कैन्सर—Cancer
कर्ण-रोग-चिकित्सा—Octolaryngology
कर्मचारी—Employee
कर्मचारी-वर्ग, कर्मचारी मण्डल—Staff
कलंक, दोष—Stigma
कलंकित व्यक्ति—Scape-goat
कल्याण—Welfare
कल्याण-कार्य-अभिकरण—Welfare Agency
कानूनी सहायता-समिति—Legal Aid Society
कामकाजी, व्यवहारी—Work-a-day
कारागार-कार्यालय, कारागर-ब्यूरो—Bureau of Prisons
कारावास, कैद—Incarceration
कार्मिक, कर्मचारी-वर्ग—Personnel

कार्मिक-अधिकारी—Personnel Officer
कार्मिक-परामर्श-गोष्ठी—Staff Conference
कार्य—Activity, Function, Role, Practice, Work
कार्यकर्ता—Worker, Leader
कार्यकर्ता प्रशिक्षण—Leadership Training
कार्यकारिणी-समिति—Executive Committee
कार्यकारी—Executive
कार्यकारी अधिकारी—Executive Officer
कार्यकारी सचिव—Executive Secretary
कार्यनिर्धारण, व्यवस्थापन—Placement
कार्य-पद्धति—Procedure
कार्य-भार—Case-load
कार्य भूमिका, कार्य—Role
कार्यवाही—Proceeding, Minutes
कार्य-विवरण—Minutes, proceeding
कार्यार्थी—Client
कार्यान्वयन—Implement
कार्यालय—Office, Bureau
काष्ठ कला—Wood-work
कुंठा, नैराश्य—Frustration
कुसमंजन, असामंजस्य—Maladjustment
केन्द्र—Centre, Bureau
कोलाहल, हल्ला-गुल्ला—Rumpus
कौशल—Skill
क्रिया कलाप, कार्य—Activities
क्रिया-विधि—Procedure
क्रियाशील—Active
क्रीड़ा-भूमि—Alley
क्रूरता, कठोरता—Callousness
क्लान्ति-केन्द्र—Exhaustion Centre
क्षत-स्थल—Lesion
क्षति—Impairment
क्षय-रोग—Tuberculosis
क्षेत्र—Region, Field, Ground
क्षेत्रीय—Regional
क्षेत्रीय कार्य—Field Work
क्षेत्रीय पेरोल—Ground Parole
क्षेत्रीय सामाजिक सेवा-कार्य—Field Social Service

ख

खण्ड—Block, Section
खण्ड-पद्धति—Block System
खतरनाक—Critical, Dangerous

ग

गणना, गिना जाना—Compute
गतिक, गत्यात्मक—Dynamic
गन्दी बस्ती—Slum
गम्भीर, खतरनाक—Critical
गरिमा—Dignity
गिल्टी—Noduler
गुर्दा—Kidney
गुर्दा-शोथ—Nephritis
गूढ़—Labyrinthine
गृहकार्य-सहायक—House-keeper
गृहकार्य-सहायता-सेवा—Home-maker-service
गृह-चिन्ता-रोग—Home Sickness
गृह-परिवार - वित्ताभिकरण—Housing and Home Finance Agency
गृह-माता या गृह-पिता—House Parent
गृह-माता-पिता—House Parents
गैस-नलिका—Gasoline
गोष्ठी-कक्ष—Meeting Room
ग्रन्थि—Gland
ग्रन्थिल क्रियाहीनता—Glandular Distunction
ग्रन्थिल स्थिति, ग्रन्थि-सम्बन्धी रोग—Glandular Condition
ग्रीष्म-शिविर—Summer-camp
ग्रव, ग्रीवा-सम्बन्धी—Cervical

घ

घटक—Factor
घरेलू नौकरी, घरेलू रोजगार—House Employment

च

चक्रव्यूह, भूल-भुलैया—Maze
चर्म-गिल्टी-रोग—Sarcoidosis
चर्म-शिल्प—Leather Work
चालन-दण्ड—Drive shaft
चिकित्सा—Therapy
चिकित्सीय उपचार—Medical Treatment
चिकित्सकीय—Medical
चिकित्सकीय समाज-सेवा-विभाग—Medical Social Service Department
चिकित्सालय—Hospital
चिकित्सालयीय सामाजिक-सेवा—Hospital Social Service
चिकित्सोत्तर सेवा—After-care
चिरकालिक, जीर्ण—Chronic

छ

छल, चाल—Hoax
छाल—Blotch
छात्र कर्मचारी एवं परामर्श-विभाग—Department of Pupil Personnel and Counselling
छात्र-वृत्ति—Scholarship

ज

जच्चा-बच्चा-कानून, मातृ-शिशु-कानून—Maternity and Infancy Law
जटिल, पेचीदा—Complex
जन-गणना-कार्यालय—Bureau of Census
जनपद—County
जनपद-कल्याण-विभाग—County Welfare Department
जनांकिकी—Demography
जरा-व्याधि-चिकित्सा-शास्त्र—Geriatrics
जाँच, परीक्षण—Check
जाँच-पड़ताल, अनुसन्धान—Investigation
जिरह—Cross Examination
जीर्ण, चिरकालिक—Chronic
जीवन-मूल्य—Value
जीवन-रक्षक—Life-guard
जीवनवृत्त-साक्षात्कार—History Interview
जीव-भौतिकी—Bio-physics
जीव-रसायन शास्त्र—Bio-chemistry
जीव-विज्ञान—Biology
जीवाणु-विज्ञान—Bacteriology
जीवोति-परीक्षा—Biopsies
जैविक—Biological

ट

टिप्पण-लेखन—Annotation
टिप्पणी—Note

त

तंत्र—System
तंत्रिका-तंत्र—Nervous system
तंत्रिका-विज्ञान—Neurology
तत्परता—Alacrity
तत्त्वावधान—Auspices
तत्स्थानी—Corresponding
तुतलाना—Stuttering
त्वरण—Acceleration

द

दंड-संस्था—Panel Institution
दमा—Asthma
दहन-दज्जन—Combustion
दान-गृह, अनाथालय—Alms House
दान-संघटन-समिति—Charity Organization Society
दानादाय, दान-पेटिका—Chest

दिवस-केन्द्र, दिवा-केन्द्र—Day Centre
दीर्घकालिक प्रायोजना—Long-range Project
दुकान-वर्ग—Shop-group
दुग्धशाला, डेरी—Dairy
दुर्दशा—Plight
दुष्पोषण—Dystrophy
दृढ़—Fervid
दृष्टिकोण, अभिवृत्ति—Attitude
देखभाल, सेवा—Care
द्विवार्षिक—Biennial
द्विविधा—Dilemma

ध

धन्धा, अल्प काम—Avocation
धमनी काठिन्य—Arteriosclerosis
धर्म परायण, न्यायपूर्ण—Righteous
धर्मादा परिषद्, दान-परिषद्—Board of Charity
धर्माध्यक्षीय युवक सेवा-समिति—Episcopal Service For Youth
धर्मोपदेशकीय मनश्चिकित्सा—Postol-psy chiatry
धातु शिल्प—Metal work
धारणा, मान्यता—Concept
धारा सभा—Senate
धार्मिक विश्वास, सम्प्रदाय—Move
ध्यान-केन्द्र—Focus

न

नगर शासन—City Government
नजरबन्दी—Detention
नजरबन्दी-गृह, अवरोधगृह—Detention House
नागरिक केन्द्र—Civic Centre
नागरिक श्रम-प्रशासन—Civil Works Administration
नागरिक सेवा, असैनिक सेवा—Civil Service
नागरिक संघ—Citizen's Association
नामांकन, मनोनयन—Nomination
नामांकित ध्वज—Banner
नासूर—Ulcer
निकष, कसौटी—Criteria
निकाय—Body, System
निकासी कार्यालय, समाशोधन-गृह—Clearing House
निजी-आवास व्यवस्था-सेवा—Private Residence care
निदर्श-चित्र, उदाहरण-पाठ—Illustrations
निदान—Diagnosis
निदेशक—Director
निदेशक-मण्डल—Board of Directors
निदेशन—Direction
नियंत्रित, अवरुद्ध—Pent up
नियतिवाद—Diterminism
नियम—Regulation
नियमपरायणता—Conformity
निरंकुश—Arbitrary
निरीक्षण—Inspection, To Make round
निरुपाय, लाचार—Shiftless
निरोध, निवारण—Prevention
निर्णयकर्ता, मध्यस्थ—Arbiter
निर्दिष्ट कार्य, सौंपा गया कार्य, अधिन्यस्त कार्य—Assignment
निर्देशन—Guidance
निर्देशन-केन्द्र—Guidance Bureau
निर्देशिका—Directory
निर्धन आवास-गृह—Poor House
निर्धन कृषि-फार्म—Poor Farm
निवारक सेवा, निरोधक सेवा—Prevention Service
निवास-स्थल—Quarter
निःशुल्क—Unpaid
निश्चित, विशिष्ट—Specific

निश्चेष्ट होना, निष्क्रिय होना—Vegetate
निषेधाधिकार—Veto
निष्कासन, पदच्युति—Dismissal
निष्क्रमण—Evacuation
निस्तार-सेना, उद्धार-सेना—Salvation Army
निस्स्वार्थ—Non-profit
नीति-वक्तव्य—Policy Statement
नेत्र-चिकित्सा-विज्ञान—Ophthalmology
नैदानिक—Diagnostic
नैराश्य, कुंठा—Frustration
न्यायपूर्ण, धर्म-परायण—Righteous
न्यायार्थी, कार्यार्थी, लाभार्थी—Client
न्यायालय—Court
न्यायिक—Judicial

प

पंजिका—Register
पंजी-पत्र—Registration
पट्टी—Brace
पड़ोस-समिति, मुहल्ला-समिति-Neighbourhood Council
पद, नौकरी—Position
पदावनति—Demotion
पदोन्नति—Promotion
पद्धति, व्यवस्था, निकाय, परिषद्—System
परस्परव्यापी—Overlapping
परागज-ज्वर—Hay Fever
परामर्श के लिए प्रेषण—Referral
परामर्श-गोष्ठी, विचार-विमर्श—Conference
परिज्ञान—Awareness
परिधि, परिसा—Periphery
परिनियम, संविधि—Statute
परिरोध कारावास—Confinement
परिवारगत पालन-सेवा—Family Foster Care
परिवारगत वैयक्तिक सेवाकार्य—Family Casework
परिवार-सहायता-समिति—Family Society
परिवार-सेवा-समिति—Family Service Society
परिवीक्षक—Supervisor
परिवीक्षण—Supervision
परिवीक्षण-कर्मचारी—Supervisory Personnel
परिवीक्षा—Probation
परिवीक्षा-अवधि—Probationary Period
परिवीक्षाधीन व्यक्ति—Probationer
परिवीक्षा-विभाग—Probation Department
परिवीक्षित पेरोल—Supervised Parole
परिसंचार—Circulation
परिसम्पत्ति—Asset
परेशानी—Perplexity
परोपकार विद्यालय, लोकोपकार विद्यालय—School of Philanthropy
पर्यवेक्षण—Observation, Supervision
पर्याप्तता—Adequacy
पर्यावरण—Environment
पश्चात् मस्तिष्क-शोथ-रोग—Postencephalitis
पाचन-क्रिया—Digestion
पाठ्यक्रम—Course
पाठ्यचर्या—Curriculum
पात्रता—Eligibility
पाप में पड़ना—Backslide
पारिवारिक अभिकरण—Family Agency
पारिवारिक न्यायालय—Family Court
पारिवारिक सम्बन्ध न्यायालय, घरेलू सम्बन्ध न्यायालय—Domestic Relation Court
पारिवारिक सेवा-अभिकरण—Family Service Agency
पालक—Keeper
पालन-गृह—Foster Home
पालन-गृह में व्यवस्थापन—Foster Home

Placement
पालन गृह स्वामी, पालिका गृहिणी—Care-holder
पालन-सेवा—Foster Care
पिण्ड—Lump
पितृ-सत्ताक राज्य—Patriarchal State
पीड़क, बाधा—Pest
पीयूष-ग्रन्थि—Pituitary Glands
पुनर्नवीकरण—Reorientation
पुनर्निर्माण-वित्त-निगम—Reconstruction Finance Corporation
पुनर्वास—Rehabiliation
पुरस्कार—Award
पूर्वगामी—Preceding
पूर्वग्रह—Prejudice
पूर्व-निदर्शन, नजीर—Precedence
पूर्व-निर्धारित रोजगार—Cared Employment
पूर्व-व्यवस्थापन-काल—Preplacement Period
पूर्व-सामाजिक सेवाकार्य-पाठ्यक्रम—Presocial Work Course
पृथक्करण, अलगाव, तनहाई—Segregation
पेरोल, कारावकाश मुक्ति—Parole
पेरोल अधिकारी—Parole Officer
पेरोल-कार्यालय—Parole Bureau
पेरोल-मुक्त अभियुक्त—Parolee
प्रकाशन—Vent
प्रक्रिया—Process
प्रक्षेपण—Projection
प्रक्षेप-पद्धति—Project Method
प्रगति-पत्रक—Report Card
प्रतिनिधि—Representative, Delegate
प्रतिनिधि-सदस्य—Delegate Member
प्रतिनिधि-सभा, प्रतिनिधि-निकाय—Delegate Body
प्रतिपादन, व्याख्यापन—Enunciation
प्रतिमान, मानक—Standard
प्रतिवेदन, कार्यविवरण—Report
प्रतिशोध-भावना, दण्ड-भावना—Vindictiveness
प्रतिशोध लेना, दण्ड देना—Retribution
प्रतिष्ठा, मर्यादा—Status
प्रतिसंहरण—Revocation
प्रतीक्षक-सूची—Waiting List
प्रत्यावर्ती प्रतिनिधि—Alternates
प्रदर्शनीय वस्तु—Exhibit
प्रदेश (संघ शासित)—Territory
प्रबन्ध १—Monograph
प्रबन्ध २—Thesis
प्रबन्ध ३—Management
प्रबन्धक-परिषद्—Board of Managers
प्रभाग-श्रेणी—Division
प्रमाण-पत्र—Certificate
प्रयास—Drive
प्रलेख—Document
प्रविधि—Technique
प्रविधिज्ञ—Technician
प्रवीणता—Proficiency
प्रवृत्ति, झुकाव—Trend, Inclination
प्रकाशन-प्रबन्ध-समिति—Committee on Adminsitration Management
प्रशासन-कार्यालय—Administrative Office
प्रशिशिक्षुता—Aprnticeship
प्रश्न-पत्रक—Questionaire
प्रसूति-विज्ञान—Obstretics
प्रस्तावनात्मक, परिचायात्मक—Introductory
प्राधिकार—Authority
प्राधिकृत—Authorized
प्रायोजकत्व—Sponsorship
प्रायोजन—Sponsor
प्रायोजना—Project
प्रावस्था, अवस्था—Phase

प्राविधिक सहायता—Technical Assistance
प्रासंगिक व्यय—Incidental Expenses
प्रेक्षक—Observer
प्रेक्षण—Observation
प्रेरक-तंत्रिका—Motor Nerve
प्रेरण-केन्द्र—Induction Centre
प्रेरणा, बल—Impetus
प्रेरित करना—Spur

फ

फलक—Blade
फलानुमान—Prognosis
फीता—Tag
फुपफुस-दाह—Pneumonia

ब

बदी-प्रत्यक्षीकरण—Habeas Corpus
बर्फ पर फिसलना—Ice-skating
बाल-अपराध, किशोर-अपचार—Juvenile Delinquency
बाल-कल्याण-प्रभाग—Division of Child Welfare
बाल-कल्याण-सेवा—Child Welfare Service
बाल-कार्य-प्रतिज्ञा—Pledge to Children
बाल-कार्य-शासन-पत्र—Children's Charter
बाल-क्लब—Boys' Club
बाल-निकेतन, बाल-भवन—Children's Home
बाल-निर्देशन-स्वास्थ्य-गृह—Child Clinic
बाल-न्यायालय—Juvenile Courtt
बाल-रोग-विज्ञान—Pediatrics
बाल-सहायता-केन्द्र—Child Bureau
बाल-सहायता-समिति—Children's Aid Society
बाल-श्रम-कानून—Labour Law
बिरादरी सम्बन्धी, भ्रातीय—Fraternal
बुनियादी—Basic, Primal
बुलेटिन, विज्ञप्ति—Bulletin
बेकारी-न्यास-निधि—Unemployment Trust Fund
बेकारी बीमा—Unemployment Insurance
बैरक—Barrack
बैसाखी, अवलम्बन—Cruth
बोलचाल घी शब्दावली Parlance

भ

भय—Phobia
भरोसा—Dependibility
भर्ती करना—Intaking
भर्ती करने वाला डाक्टर—Intake Doctor
भर्ती-सेवा-निकाय—Selective Service System
भाव, संवेग—Emotion
भावना—Feeling
भिन्नक गियर—Differential Gear
भिन्न वर्गीय समुदाय—Cross-section Community
भीति, भय—Phobia

म

मंच—Platform
मधुमेह—Diabetes
मध्यवर्ती चतुर्थ श्रेणी का स्तर—Middle Fourth Grade Level
मन: शारीरिक—Psychosomatic
मन—Psyche
मनोग्रस्ति, ग्रस्तता—Obsession
मनोबल, हौसला—Morale
मनोमितिक—Psychometric
मनोरंजन कार्य निदेशक—Recreation Director
मनोविक्षिप्ति, मनोविक्षेप—Psychosis

मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्यगृह—Psychological Clinic
मस्तिष्क-रक्तस्राव—Cerebral Hemorrhage
महत्तम—Super
महासम्मेलन, महाधिवेशन—General Conference
मानव-विज्ञान, नृतत्त्वशास्त्र—Anthropology
मार्ग-भेद—Leeway
मानसिक आरोग्य-आन्दोलन—Mental Hygiene Movement
मानसिक आरोग्यशास्त्र—Mental Hygiene
मानसिक व्यतिक्रम, मानसिक असन्तुलन—Mental disorder
मानसिक स्वास्थ्य—Mental Health
मालिक—Employer
मितव्ययी—Niggardly
मिलना-जुलना—Hangout
मिसिल—File
मुक्त वाक्-पीठ, खुला मंच—Open forum
मुख-पृष्ठ—Face-sheet
मुखबिरी—Squealing
मुख्य, प्रमुख—Salient
मुष्टियुद्ध-प्रतियोगिता—Boxing Match
मूर्ख—Dolt
मूल सिद्धान्त—Bed Rock
मूल्य—Value, Worth
मूल्यांकन, आकलन—Evaluation
मूत्र-रोग-विज्ञान—Urology
मृत्तिका-शिल्प—Ceramics
मैट्रल-संकट—Metral stenosis

य

यंत्रीकरण—Mechanization
यहूदी-उपासना-गृह—Synagogue
यहूदी कल्याण-कार्य-परिषद—Jewish Welfare Board
यहूदी खाद्य की दुकान—Kosher
यहूदी सामुदायिक सेवासंघ—Jewish Community Services
यात्री-निवास, यात्री-संवास—Wayfarer's Lodge
युद्ध-विराम—Armistice
योग्यता, अर्हता—Qualification
योजना—Scheme

र

रक्षक—Guard
रक्षा, प्रतिरक्षा—Defence
रक्षा-प्रायोजना,, प्रतिरक्षा-प्रायोजना—Defence Project
रक्षा-विभाग—Defence Department
राजकीय श्रम-गृह—Public Workhouse
राजकीय सहायता—Public Assistance
राजकीय सहायता-कार्यकर्ता—Public assistance worker
राष्ट्रीय अतिथि अध्यापक समिति—National Committee of Visiting Teachers
राष्ट्रीय-आवास-अधिकारी संघ—National Association of Housing Officials
राष्ट्रीय दान-संघटन-समिति-संघ—National Association of Societies for Organizing Charities
राष्ट्रीय दान एवं सुधार-सम्मेलन—National Charity and Correction Conference
राष्ट्रीय नागरिक संघ—National Civic Federation
राष्ट्रीय व्यवस्थापन संघ—National Federation of Settlements
राष्ट्रीय व्यवस्थापन एवं पड़ोस-केन्द्र—

National Federation of Settlements and Neighbourhood Centres
राष्ट्रीय समाज-कल्याण-सभा---National Social Welfare Assembly
राष्ट्रीय समामाजिक सेवाकार्य-सम्मेलन---National Conference of Social Work
राष्ट्रीय सैनिक चुनाव-सेवा-निकाय---National Selective Service System
रोगभ्रमी---Hypochondriae
रोग-लक्षण-विज्ञान---Symptomatology
रोग-विज्ञान---Pathology
रोगी-गृह, रुग्णावास---Infirmary
रोजगार---Job, Employment
रोजगार-दफ्तर---Employment Office

ल

लक्षणात्मक--- Symptomatic
लड़ाकू---Trucutent
लसीका---Lymph
लाभ, बीमा-लाभ---Benefit
लीक, प्रणाली---Groove
लेखा-परीक्षा---Audit
लोक-कल्याण-विभाग---Department of Public Welfare
लोक-रीति---Folk-ways
लोक-शिक्षा-संघ---Public Education Association
लोक-सेवा---Public Service
लोकाचार, लोक-संस्कृति---Mores
लोकोपकार-अभिकरण, दान-अभिकरण---Charity Agency
लोकोपकार विद्यालय---Philanthropic School

व

वरीयता---Preference
वर्गीकरण-समिति---Classification Committee
वर्गीकरण चिकित्सालय---Classification Clinic
वस्तुनिष्ठ, वस्तुपरक---Objective
वांछित, इच्छित---Coveted
वातावरण, स्थिति---Milieu
वातिलवक्ष---Pneumothorax
वार्ड, खण्ड---Ward
वाडन, खण्डपाल, संरक्षक---Warden
वार्षिक कार्य-विवरण---Annual Report
वास्तविकता---Reality
विकलांग---Crippled
विकलांग-चिकित्सा---Orthopedics
विकास---Evolution
विक्षोभ-रोष---Sullenness
विचार-गोष्ठी---Seminar
विजय-उद्यान---Victory Garden
विज्ञप्ति, बुलेटिन---Bulletin
वित्त---Finance
वित्तीय संघ---Financial Federation
विद्यालय-सामाजिक सेवा-विभाग---Department of School Social Services
विद्यालयीय परामर्शदाता---School Counsellor
विद्यालयीय सामाजिक कार्यकर्ता---School Social Worker
विधा, रूप---Form
विधान सम्बन्धी, वैधानिक---Legislative
विधि, कानून---Law
विधेयात्मक---Positive
विनिमय-व्यवस्था---Exchange Arrangement
विनियोजन---Appropriation
विभाग---Department, Staff
विरल---Sparse
विरोध, शत्रुता---Antagonism
विलम्बित, पिछड़ा हुआ---Retarded
विलीनीकरण---Merger

विवृत—Elaborate
विशिष्ट सेवा-प्रभाग—Division Special Services
विशेषाध्यापक—Special Teacher
विशेषीकरण—Specialization
विषय—Nub
विषाद-रोग—Melancholia
विस्तार, सीमा—Extent
वृत्ति—Profession, Pension
वृत्तिक कुशलता—Professional Guns
वृत्तिक कौशल—Professional Skill
वृत्तिक संघटन—Professional Organization
वृत्तिक सदस्य-संघटन—Professional Membership Organization
वृत्तिक सामाजिक कार्य-कर्ता—Professional Social Worker
वृत्तिक सामाजिक सेवा-कार्य—Professional Social Work
वृद्ध-आवास-गृह—Old Folk's Home
वृद्धता—Aging
वृद्ध-रोग-विज्ञान—Gerontology
वृद्धावस्था एवं उत्तराधिकारी-बीमा—Old Age and Survivors Insurance
वृद्धावास, वृद्ध-निवास-गृह—Home for the Aged
वृद्धावास-कक्षवाले होटल—Senior Apartment Hotel
बृहद् आन्त्र-शोथ—Colitis
वैयक्तिक जीवन-वृत्त—Case-history
वैयक्तिक सेवा-कार्य—Case-work
वैयक्तिक सेवा-कार्यकर्ता—Case-worker
वैयक्तिकीकरण—Individualization
वैयक्तिकीकृत सेवा—Individualized Service
व्यक्तित्व—Personality
व्यक्ति-वृत्त-अभिलेख—Case-record
व्यतिक्रमण—Infraction
व्यवसाय परिषद्—Board of Trade
व्यवस्था करना—Fend
व्यवस्थापन—Settlement, Placement
व्यवस्थापन-गृह—Settlement House
व्यादेश—Injunction
व्यायाम-निदेशक—Athletic Director
व्यावसायिक चिकित्सा, व्यवसाय मूलक चिकित्सा—Occuptional Therapy
व्यावहारिक कार्य, क्षेत्रीय कार्य—Field-work
व्यावहारिक कार्यकर्ता, क्षेत्रीय कार्यकर्ता—Field-worker
व्यावहारिक कार्य-प्रशिक्षण—Field-training
व्यावहारिक कार्य मंत्री, क्षेत्रीय कार्य-मंत्री—Field Secretary
व्यावहारिक कार्य-शिक्षण, क्षेत्रीय कार्य शिक्षण—Field-instruction

श

शरणार्थी, विस्थापित—Refugee
शरीर—Body, Soma
शरीर-विज्ञान—Phisiology
शर्त, प्रतिबन्ध—Priviso
शल्य-चिकित्सा—Operation
शाखा—Chapter
शासन—Government
शासन-पत्र—Charter
शिक्षक—Instructor
शिक्षात्मक प्रक्रिया—Educational Process
शिक्षा-परिषद्—Board of Education
शिक्षा-वृत्ति—Fellowship
शिशु-पक्षाघात, पोलियो—Poliomyelitis
शुल्क—Fee
शेरबच्चा-बालचर-दल—Cub-scouts
शैक्षणिक—Academic
शैक्षणिक वर्ष—Academic Year
शैक्षिक, शैक्षणिक, शिक्षात्मक—Educational

शौक, अभिरुचि—Hobby, Interest
श्रम-गृह—Work-house
श्रम-परिवीक्षक, श्रम-पर्यवेक्षक—Work Supervisor
श्रम-सहायता-कार्य—Work Relief Activity
श्रमालय—Shop, Workshop
श्रमिक, मजदूर, कार्यकर्ता, कार्मिक—Worker
श्रमिक-संघ, मजदूर संघ—Labour Union
श्रेणी, पंक्ति, विभाग—Tier

स

संकल्प, इच्छा-शक्ति—Will
संक्रामक—Infectious
संकेतन—Notation
संकेत-वाचन—Decode
संकोच, भीरुता—Timidity
संकोची, भीरु—Timid
संक्षिप्त—Succinct
संगति विहीन, असंगत—Anamalous
संग-रोध—Quarantine
संगीत-चिकित्सा—Musical Therapy
संग्रहागार—Deposittory
संघ-शासन—Feder Government
संघीय जन कल्याण-विभाग—Federal Department of Public Welfare
संघीय रक्षा-अभिकरण—Federral Security Agency
संघीय सुरक्षा प्रशासन—Federal Security Administration
संचार—Communication
संचालित करना—Conduct
संचित—Gummulative
संतुलन—Balance
संधि-शोथ—Arthritis
सम्बद्धता, संगति—Relevance
संयुक्त-राज्य जन-कल्याण-संघ—American Public Welfare Association
संयुक्त-राज्य पारिवारिक सेवा-संघ—Family Service Association of America
संयुक्त-राज्य बाल-कल्याण-संघ—Child Welfare League of America
संयुक्त-राज्य बाल-सेवा-केन्द्र—United States Children's Bureau
संयुक्त-राज्य मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्य-कर्ता-संघ—American Association of Psychiatric Social Workers
संयुक्त-राज्य सामाजिक कार्यकर्ता-संघ—American Association of Social Workers
संयुक्त स्वास्थ्य एवं कल्याण-कोश—United Help and welfare Fund
संरक्षण—Conservation
संरक्षा—Protection
संरक्षात्मक सेवाएँ—Protective Services
संरचना, ढाँचा—Structure
संवासी—Inmate
संविधान—Constitution
संविधि, परिनियम—Statute
संवेदनशील, सुग्राही—Sensitive
संशयशील, संदेहशील—Skeptical
संश्लिष्ट इकाई—Cohesive whole
संसदीय पद्धति—Parliamentary Procedure
संस्तुति—Recommendatoion
संस्थागत पालन-सेवा—Intitutional Foster Care
संस्थात्मकीकरण—Institutionalization
संस्थान—Institute
सभा-कक्ष—Hall
समचित्तता, समत्व—Equanimity
समतुल्य आधार—Matching Basis
समन्वय—Co-ordination

समवाय सम्बन्ध—Correlation
समस्तरीय—Horizontal
समस्या, प्रश्न—Issue
समस्या बालक—Problem Child
समाकलन, समन्वयन—Integration
समाज-कल्याण, सामाजिक कल्याण-कार्य—Social Welfare
समाज-कल्याण-वाक्पीठ—Social Welfare Forum
समाज-कल्याण-संघ—Welfare Federation
समाज-विज्ञान—Social Science
समाज वैज्ञानिक विषय—Social Sciences
समाजशास्त्र—Sociology
समाजीकरण, सामाजिकीकरण—Socialization
समायोजन, सामंजस्य-स्थापन, संगति-स्थापन—Adjustment
समायोजन-समिति—Adjustment Committee
समीक्षण, जिज्ञासा—Inquisition
समूह, संस्था—Group
सम्पर्क—Liaison
सम्प्रेषण, संचार—Communication
सम्मिलित समूह—Corporate Group
सरणि, माध्यम—Channel
सर्वेक्षण—Survey
सवाक् चलचित्र—Sound-movies
सशुल्क—Paid
सहकारी कार्य—Co-operative Work
सहजक्रिया—Reflex Action
सहजात, नैसर्गिक—Native
सहपाठिनी—Coed
सहयोगी संस्था, सहयोगी समूह—Associate Group
सहायक—Aide
सहायक, अभिरक्षक, सहायक पालक—Deputy Keeper
सहायता एवं अनुदान-समिति—Relief and Aid Society
सहायता द्वारा ज्ञानार्जन की प्रक्रिया—Helping earning Process
सहायतानुदान—Grant-in-aid
सहोदर—Sibling
साख्यिकी—Statistics
सांख्यिकीय—Statistical
सांविधिक—Statutory
साक्षात्कार, मुलाकात—Interview
सात्रिक सेवा, सात्रिक देखभाल—Terminal Care
साथी—Peer
साधन-स्रोत—Resource
सान्निध्य-सम्बन्ध—Propinquity
सापेक्षिकता—Relativity
सापेक्षिक व्यवस्था—Configuration
सामग्री, तथ्य—Data, Material
सामग्री-अधिकारी—Commissary
सामयिक—Current
सामाजिक अभिकरण-संघ—Federation of Social Agencies
सामाजिक अभिकरण-समिति—Council of Social Agencies
सामाजिक आयोजना—Social Planning
सामाजिक आयोजना-विभागीय कर्मचारी—Social Planning Staff
सामाजिक कल्याण-विभाग—Department of Social Welfare
सामाजिक जीवन-वृत्त—Social History
सामाजिक परिपक्वता, सामाजिक प्रौढ़ता—Social Maturity
सामाजिक बीमा-योजना—Social Insurance Scheme
सामाजिक विज्ञान, समाज-विज्ञान—Social Science
सामाजिक व्यक्ति-सेवाकार्य—Social Case work

सामाजिक व्यवस्थापन—Social Settlement
सामाजिक शिक्षा-समिति—Council of Social Education
सामाजिक समायोजन, सामाजिक सुसंगति—Social Adjustment
सामाजिक समूह-सेवाकार्य—Social Group-work
सामाजिक सेवा-अभिकरण—Social Service Agency
सामाजिक सेवा कार्य अनुसन्धान-संस्था—Social Work Research Group
सामाजिक सेवा-कार्य अब्दकोश—Social Work Year Book
सामाजिक सेवा-कार्य-प्रशिक्षण-विद्यालय-संघ—Association of Schools of Social Works
सामाजिक सुख-चैन—Social Ease
सामाजिक सुरक्षा-कानून—Social Security Act
सामाजिक सुरक्षा-प्रशासन—Social Security Administration
सामान्य, स्वाभाविक—Normal
सामान्यता—Normalcy
सामान्यीकरण—Generalization
सामुदायिक आयोजना-समिति—Community Planning Council
सामुदायिक केन्द्र—Community Centre
सामुदायिक गति-विज्ञान—Community Dynamics
सामुदायिक-गृह—Community House
सामुदायिक दानादाय, सामुदायिक दान-पेटिका—Community Chest
सामुदायिक संघटन–Community Organization
सामुदायिक संघटन-कार्यकर्ता–Community Organization Worker
सामूहिक आवास-गृह—Group-house
सामूहिक गत्यात्मकता-अनुसन्धान-केन्द्र—Research Centre for Group Dynamics
सामूहिक चिकित्सा—Group Therapy
सामूहिक विकास-प्रयोगशाला–Laboratory for Group Development
सामूहिक विचार-विमर्श, सामूहिक विवाद-गोष्ठी—Group Discussion
सामूहिक सेवा-कार्य, समूहगत सेवा-कार्य—Group-work
सामूहिक सेवाकार्य-अभिकरण—Group-work Agency
सामूहिक सेवा-कार्यकर्ता—Group-worker
साम्प्रदायिक, धार्मिक—Denominational
साम्य—Equity
सिद्धान्त-वाक्य—Dictum
सीमा, प्रतिबन्ध, बंधन—Limit
सुगम—Facile
सुधार-गृह—Penitentiary
सुधार-विद्यालय—Reform School
सुधारात्मक सेवा—Correctional Service
सुधारालय—Reformatory
सुरक्षोपाय—Safeguard
सुसमायोजित, सुव्यवस्थित—Well Adjusted
सुस्थित, दृढ़—Sound
सूजन—Swelling
सेवा, सहायता, नौकरी—Service
सेवा-कार्य-सलाहकार—Case-Consultant
सेवा-निवृत्त सैनिक-प्रशासन—Veteran Administration
सेवा-निवृत्ति, अवकाश प्राप्ति—Retirement
सेवामुक्ति—Discharge
सैर—Outing
सैर-सपाटा—Picnic
सोपानक, श्रेणी—Echelon

सौतेला बाप, उपपिता—Step-father
स्त्री-रोग-विज्ञान—Gynaecology
स्थानीकरण—Localize
स्थायित्व—Stability
स्थिति—Situation
स्नातक—Graduate
स्नातक-उपाधि—Baccalaureate Degree
स्नातकपूर्व—Under-graduate
स्नान-कुण्ड—Pool
स्नायविक मनोविकृति—Neuropsychiatric disorder
स्नायु तंत्र, स्नायु-संस्थान, तंत्रिकातंत्र—Nervous System
स्वागतकर्ता—Receptionist
स्वागत-विभाग, [illegible]—Reception Unit
स्वायत्त, स्वतंत्र—Autonomous
स्वायत्त शासन, स्वशासन—Self-government
स्वास्थ्य-बीमा—Health Insurance
स्वीकृत, स्वीकृति-प्राप्त—Approved

ह

हतबुद्धि, किंकर्तव्यविमूढ़—Confounded
हानिकारक, ध्वंसात्मक—Destructive
हास्यास्पद—Facetious
हिताधिकारी—Beneficiary
हृदय-विज्ञान—Cardiology
हेतु-विज्ञान—Etiology
हौसला, मनोबल—Morale

संक्षिप्त नामों की सूची

A. A. M. S. W.—American Association of Medical Social Workers—राष्ट्रीय चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता-संघ

A. A. S. G. W.—American Association for the Study of Group Work—सामूहिक सेवाकार्य-अध्ययन-संघ

A. A. P. S. W.—American Association of Psychiatric Social Workers—संयुक्त-राज्य मनश्चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता-संघ

A. A. S. S. W.—American Association of Schools of Social Work—संयुक्त-राज्य सामाजिक सेवाकार्य-विद्यालय-संघ

A. A. S. W.—American Association of Social Workers—संयुक्त-राज्य सामाजिक कार्यकर्ता-संघ

A. B.—Aid to the Blind—अन्ध-सहायता

A. D. C. (i)—Aid to Dependent Children—आश्रित-बाल-सहायता

A. D. C. (ii)—Aid to Disabled Children—अशक्त-बाल-सहायता

A. P. T. D.—Aid to the Permanently and Totally Disabled—स्थायी रूप से एवं पूर्णतः अशक्त-व्यक्तियों की सहायता

A. P. W. A.—American Public Welfare Association—संयुक्त-राज्य लोककल्याण-संघ

A. R. C.—American Red Cross—अमरीकी रेड क्रॉस

C. A. R. E.—Co-operative for American Remitence to Europe—यूरोप के लिए अमरीकी प्रेषण-सहकारी-समिति

C. C. C.—Civilian Conservation Corps—नागरिक संरक्षण-दल

C. C. C. A.—The Community Chests and Councils of America—संयुक्त-राज्य सामुदायिक दानादाय और समितियाँ

C. F.—Commonwealth Fund—राष्ट्रमण्डल-निधि, कामनवेल्थ कोष

C. J. F. W. F.—The Council of Jewish Federation and Welfare Funds—यहूदी संघ एवं कल्याण-निधि

C. O. S.—Charity Organization Society—दान-संघटन-समिति

C. O. S. M.—Charity Organization Society Movement—दान-संघटन-समिति-आन्दोलन

C. S. W. A.—Christian Social Welfare Association—ईसाई-समाज कल्याण-संघ

C. W. A.—Civil Work Administration—नागरिक श्रम-प्रशासन

C. W. A.—Civil Works Association—नागरिक श्रम-संघ

C. W. L. A.—The Child Welfare League of America—संयुक्त-राज्य बाल-कल्याण-परिषद्

D. S. W.—Doctor of Social Work—डी. एस. डब्ल्यू.

E. M. I. C. P.—Emergency Maternity and Infant Care Program—आपाती मातृ-शिशु-सेवा-कार्यक्रम

F. A. O.—Food and Agriculture Organization—खाद्य-कृषि-संघटन

F. E. R. A.—Federal Emergency Relief Act—आपाती सहायता कानून

I. L. O.—International Labour Organization—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संघटन (अं. श्र. सं.)

M. W. H. C.—Mid-Century White House Conference—मध्य-शती ह्वाइट हाउस-सम्मेलन

N. A. S. S. W.—National Association of School Social Workers—राष्ट्रीय विद्यालयीय सामाजिक कार्यकर्ता-संघ

N. C. C. C.—National Conference of Catholic Charities—राष्ट्रीय कैथलिक दान-सम्मेलन

N. C. M. H.—National Committee for Mental Hygiens—राष्ट्रीय मानसिक आरोग्य-समिति

N. C. V. T.—National Committee on Visiting Teachers—अतिथि अध्यापकों से सम्बन्धित राष्ट्रीय-समिति

N. M. C. C. Y.—National Mid-century Committee for Children and Youth—राष्ट्रीय मध्यशती बाल-युवक-कल्याण-समिति

N. C. J. C. S.—National Conference of Jewish Communal Service—राष्ट्रीय यहूदी सम्प्रदाय-सेवा-समिति

N. C. S. W.—National Conference of Social Work—राष्ट्रीय सामाजिक सेवाकार्य-सम्मेलन

N. F. S. N. C.—National Federation of Settlements and Neighbourhood Centres—राष्ट्रीय व्यवस्थापन एवं पड़ोस केन्द्र-संघ

N. H. S.—National Health Service—राष्ट्रीय स्वास्थ्य-सेवा

N. M. H. A.—National Mental Health Act—राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य-कानून

N. P. P. A.—National Probation and Parole Association—राष्ट्रीय परिवीक्षा एवं पेरोल-संघ

N. S. W. A.—National Social Welfare Assembly—राष्ट्रीय सामाजिक कल्याण-सभा

N. Y. A.—National Youth Administration—राष्ट्रीय युवक-सेवा-प्रशासन

O. A. A.—Old Age Assistance—वृद्धावस्था-सहायता

O. A. S. I.—Old Age Survivors Insurance—वृद्धावस्था एवं उत्तराधिकारी-बीमा

S. I. A.—Social Insurance Act—सामाजिक बीमा-कानून

S. P. C. A.—Society for the Prevention of Cruelty to Animals—पशु-निर्दयता-निरोधक-समिति

T. E. R. A. (i)—Temporary Emergency Relief Act—अस्थायी आपाती-सहायता-कानून (टेरा)

T. E. R. A.(ii)—Temporary Emergency Relief Administration—अस्थायी आपाती-सहायता-प्रशासन (टेरा)

U. A. B.—Unemployment Assistance Board—बेरोजगार-सहायता-परिषद्

U. N. E. S. C. O.—United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization—संयुक्त राष्ट्र-शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति-संघटन (यूनेस्को)

U. N. I. C. E. F.—United Nations International Children's Emergency Fund—संयुक्त राष्ट्र बाल-आपाती-निधि (उन्सेफ)

U. S. B. P.—United States Bureau of Prisons—संयुक्त-राज्य कारागार कार्यालय (ब्यूरो)

U. S. C. B.—United States Children's Bureau—संयुक्त-राज्य बाल-सेवा-कार्यालय (ब्यूरो)

U. S. P. H. S.—United States Public Health Service—संयुक्त राज्य लोक-स्वास्थ्य-सेवा

U. S. W. B.—United States Women's Bureau—संयुक्त-राज्य महिला-सेवा-कार्यालय (ब्यूरो)

V. A.—Veterans Administration—सेवा-निवृत्त (अवकाश-प्राप्त) सैनिक-प्रशासन

W. H. C.—White House Conference—ह्वाइट हाउस-सम्मेलन

W. H. O.—World Health Organization—विश्व-स्वास्थ्य-संघटन (हू)

W. P. A.—Works Progress Administration (Works Projects Administration—श्रम-प्रगति-प्रशासन (श्रम प्रायोजना-प्रशासन)

Y. M. C. A.—Young Men's Christian Association—ईसाई-नवयुवक-संघ

Y. M. H. A.—Young Men's Hebrew Association—यहूदी नवयुवक-संघ

Y. W. C. A.—Young Women's Christian Association—ईसाई नवयुवती-संघ

Y. W. H. A.—Young Women's Hebrew Association—यहूदी नवयुवती-संघ।